ओट (Oat) — ओट की पैदावार नम और ठंडे प्रदेशों में अधिक होती है। ओट के लिए गेहूँ की तरह ही उपजाऊ भूमि आवश्यक है। ओट की खेती में समय अधिक लगता है क्योंकि इसके पकने में देर लगती है। ओट की खेती उन देशों में अधिक महत्व पूर्ण है जहाँ वर्षा अधिक होती है और गरमी कम पड़ती है। यही कारण है कि ओट की पैदावार उत्तरी योरोप में अधिक होती है परन्तु भूमध्य सागर (Mediterrnean Sea) के देश उसके लिए अनुपयुक्त हैं। यद्यपि ओट की अच्छी पैदावार के लिए उपजाऊ मिट्टी चाहिए किन्तु वह कम उपजाऊ पर भी पैदा किया जा सकता है।

यह अनाज मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक है परन्तु इस रहस्य को स्काटलैंड निवासियों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। अन्य देशों में ओट का उपयोग पशुओं, विशेष कर घोड़ों के खिलाने में होता है। उपज की दृष्टि से योरोप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार में रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे अधिक ओट उत्पन्न करते हैं। इन दो देशों को छोड़ कर क्रमशः जर्मनी, पोलैंड फ्रांस, तथा ब्रिटेन ओट उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अरजनटाइन, इटली, हंगरी, डैनमार्क नार्वे, स्वीडन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, तथा न्यूजीलैंड में भी ओट की अच्छी पैदावार होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका में ओट की इतनी अधिक पैदावार होने पर भी वह ओट को बाहर नहीं भेजता। ओट बाहर भेजने वालों में जर्मनी, अरजनटाइन, और सोवियत रूस मुख्य हैं। अधिकतर ब्रिटेन, स्वीटजरलैंड, बैलजियम और इटली बाहर से ओट मँगाते हैं।

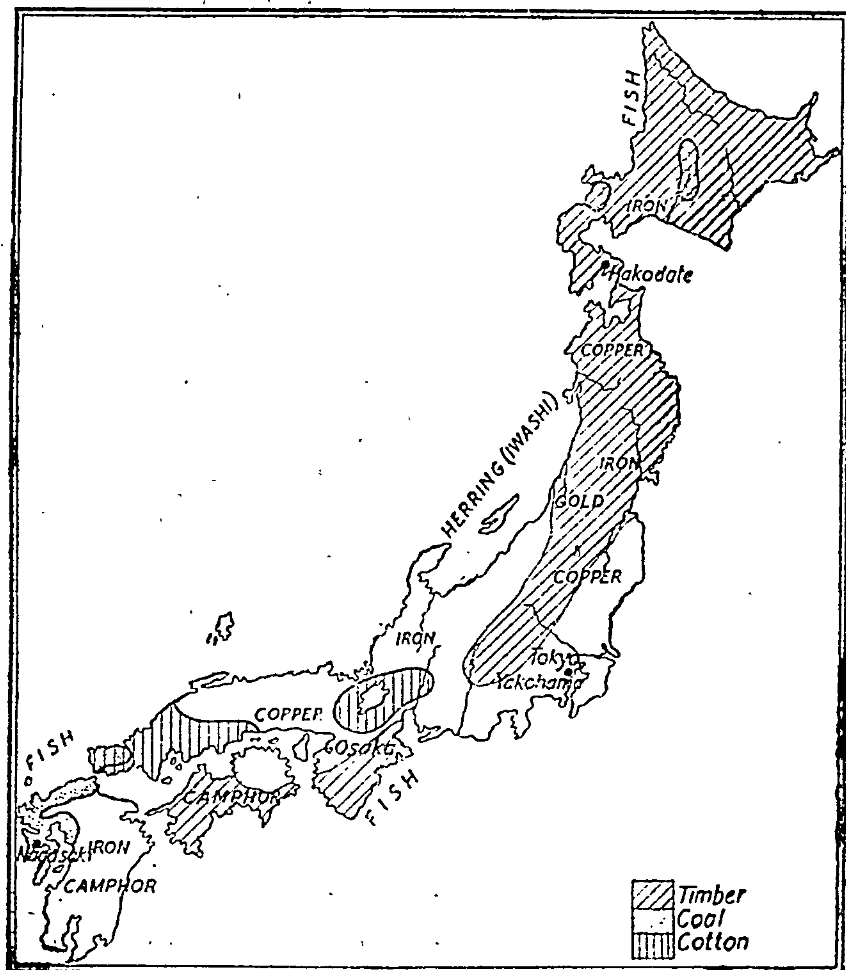
ओट (Oats) की पैदावार

(लाख टनों में)

संयुक्तराज्य अमेरिका ...	१८१
सोवियत रूस ...	११२
जरमनी ...	६६
कनाडा ...	६०
फ्रांस ...	४८
पौलैंड ...	२४
ब्रिटेन ...	२१

पत्तियाँ बराबर कटती रहती हैं इस कारण फसल को हानि नहीं पहुँचती। अन्दर के पहाड़ी ढालों पर जहाँ और कुछ पैदा नहीं हो सकता शहतूत का पेड़ जम आता है और कीड़े पालने का धंधा होता है।

जापान के उत्तरीय भाग तथा पहाड़ी मैदानों को छोड़कर बाकी सब मैदानों में चावल उत्पन होता है। चावल की खेती के लिए यहाँ सिंचाई की



आवश्यकता होती है। ऊँचे मैदानों में चावल बहुत कम होता है। लगभग एक तिहाई चावल की भूमि पर वर्ष में दो फसलें चावल की उत्पन्न की जाती हैं। शेष भूमि पर केवल एक फसल उत्पन्न की जाती है। जापान में पशु-पालन अधिक नहीं होता। इसका कारण यह है कि ब'स की घास जो समस्त देश में पाई जाती है दूसरी घास को उगने नहीं देती और पशु इस घास को खाते नहीं हैं। फिर भी पहाड़ी मैदानों पर पशु चराने का धंधा होता है।

आर्थिक भूगोल

[ECONOMIC GEOGRAPHY]

लेखक

प्रो० शंकर सहाय सक्सेना एम० ए० (इकान)

एम० ए० (काम) बी काम

अध्यक्ष कामर्स विभाग-बरेली कालेज

रचयिता

भारत सहकारिता आन्दोलन, ग्राम्य अर्थशास्त्र, प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, भारत का आर्थिक भूगोल, तथा पूर्व की राष्ट्रीय जागृति आदि

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

[द्वितीय संस्करण] १९४१ [मूल्य ७)

मुद्रक—
मुंशी रमजान अली शाह
नेशनल प्रेस
प्रयाग
१४६

निवेदन

आर्थिक भूगोल के दूसरे संस्करण को लेकर उपस्थित होते हुए लेखक को अत्यन्त हर्ष है। पुस्तक की उपयोगिता तो इसी से सिद्ध है कि संयुक्त-प्रान्त तथा मध्यप्रान्त में कामर्स के विद्यार्थियों द्वारा पुस्तक पाठ्य पुस्तक के रूप में काम में लाई जा रही है। आज समय भी बदल गया है। लेखक का स्वप्न सत्य होने जा रहा है। वह दिन दूर नहीं है जबकि उच्च शिक्षा भी हिन्दी के माध्यम द्वारा होगी। लेखक उन व्यक्तियों में से है जिनका विश्वास है कि उच्च शिक्षा भी हिन्दी माध्यम के द्वारा आसानी से दी जा सकती है। विद्यार्थी जीवन से आज तक लेखक का केवल एक ही लक्ष्य रहा है—अर्थात् हिन्दी में उपयोगी विषयों पर साहित्य उत्पन्न किया जाय। इसी उद्देश्य को लेकर वह पिछले पंद्रह वर्षों से हिन्दी में अर्थशास्त्र सम्बंधी साहित्य उत्पन्न करने का प्रयत्न करता रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रेरणा का फल है।

"आर्थिक भूगोल" इंटर कामर्स परीक्षा तथा बी० काम के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखा गया है। लेखक ने इस बात की भरसक चेष्टा की है कि पुस्तक में सभी आवश्यक बातों का समावेश हो। भारतवर्ष के आर्थिक भूगोल का एक पृथक् भाग में विशद विवेचन किया गया है तथा प्रथम भाग में पृथ्वी के आर्थिक भूगोल को लिखते समय कुछ बातों को जिनका पाठ्य-क्रम में उल्लेख नहीं है, परन्तु जिन्हें लेखक आवश्यक समझता है समावेश कर दिया है। लेखक का यह पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक इंटर कामर्स तथा बी० काम परीक्षा के लिए पूर्णतया पर्याप्त होगी।

पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द हिन्दी शब्दों के साथ ही कोष्टक में दे दिये गये हैं जिससे विद्यार्थियों को विषय का अध्ययन करने में कठिनाई न हो।

देश की राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त हम शीघ्र से शीघ्र अंग्रेजी की दासता को भी छोड़ देना चाहते हैं। हर्ष का विषय है कि सभी विश्वविद्यालय गम्भीरता पूर्वक हिन्दी को शिक्षा तथा परीक्षा का माध्यम

बनाने की बात सोच रहे हैं। बनारस, लखनऊ, नागपुर, पटना इत्यादि विश्वविद्यालयों ने तो हिन्दी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार भी कर लिया है। अतएव हिन्दी में भिन्न भिन्न विषयों पर शीघ्रता पूर्वक साहित्य उत्पन्न होना चाहिए उसी विचार से प्रेरित होकर लेखक ने इस पुस्तक का निर्माण किया है। पुस्तक लिखते समय तथा उसका संशोधन करते समय लेखक का बराबर यह ध्यान रहा है कि हिन्दी को वह आर्थिक भूगोल पर एक प्रामाणिक पुस्तक दे। वह अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुआ है यह तो विद्वान ही बतला सकेंगे परन्तु इस संस्करण में बहुत अधिक सुधार किए हैं कुछ परिच्छेद भी बढ़ाये हैं और मानचित्रों की संख्या भी बढ़ा दी है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में अभ्यास के प्रश्न दे दिए हैं। मुझे विश्वास है कि पुस्तक की उपयोगिता अब पहले से बहुत बढ़ गई है।

देश का विभाजन हो जाने से पाकिस्तान अलग हो गया है। उस कारण भारत के आर्थिक भूगोल के अतिरिक्त जिसमें सम्पूर्ण भारत का आर्थिक भूगोल दिया गया है पाकिस्तान पर भी एक परिच्छेद बढ़ा दिया है।

अन्त में लेखक आर्थिक तथा व्यापारिक भूगोल के उन प्रामाणिक ग्रन्थों के रचयिताओं के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करना अपना कर्त्तव्य समझता है जिनकी इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गई है। लेखक श्री रामनारायण लाल फर्म के अध्यक्ष का भी कृतज्ञ है जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन का भार लेकर लेखक को प्रकाशन सम्बन्धी कठिनाई से मुक्त कर दिया।

बरेली कालेज
बरेली

शंकर सहाय सक्सेना

विषय-सूची

प्रथम भाग

पृथ्वी

दूसरा भाग

भारतवर्ष

आर्थिक भूगोल

ECONOMIC GEOGRAPHY

आर्थिक भूगोल

प्रथम परिच्छेद

आर्थिक भूगोल के सिद्धान्त

आर्थिक भूगोल की परिभाषा

"आर्थिक भूगोल में हम मनुष्य की भौगोलिक परिस्थिति (Natural Environments) का उसके आर्थिक प्रयत्नों पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं।" इसके अध्ययन से हमें यह पता चलता है कि मनुष्य के आर्थिक प्रयत्न जहाँ तक वे वस्तुओं के उत्पादन, उनके एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने तथा ख़रीद-बिक्री से सम्बन्ध रखते हैं वहाँ तक भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। प्रोफ़ेसर जी० जी० चिज़ौल्म (G. G. Chisolm) ने इस विषय पर लिखते हुए कहा है—"इस विषय के अन्तर्गत उन सब भौगोलिक परिस्थितियों का विवरण होना चाहिए जो वस्तुओं की उत्पत्ति, उनके चलन, तथा क्रय-विक्रय पर प्रभाव डालती हैं।"

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र (Scope)

मनुष्य अपनी—भोजन-वस्त्र सम्बन्धी तथा अन्य, आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति की सहायता से वस्तुओं को उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए किसान भूमि वर्षा, धूप, और वायु की मदद से खेतों से बहुत तरह की फसलें पैदा करता है, जंगलों में प्रकृति बहुत प्रकार की बहुमूल्य लकड़ी, तथा अन्य वन-सम्पत्ति उत्पन्न करती है जिसके द्वारा मनुष्य तरह तरह की वस्तुयें तैयार करता है। इसी प्रकार प्रकृति ने भूमि के अन्दर बहुत प्रकार की धातुओं को इकट्ठा कर दिया है जिनकी सहायता से मनुष्य बहुत तरह की चीज़ें बनाता है। सारांश यह है कि खेती-बारी और उद्योग-धंधे प्रकृति पर ही निभर हैं। इसका दूसरे शब्दों में यह अर्थ हुआ कि किसी देश का समृद्धिशाली अथवा निर्धन होना वहाँ की प्रकृति पर निर्भर है। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन धनी देश हैं

और यदि भारतवर्ष तथा चीन में कभी उद्योग-धंधों की उन्नति होगी तो केवल इस लिए, कि इन देशों की प्रकृति धनी है।

किसी भी देश की 'प्रकृति'' कैसी है, यह वहाँ के भूगोल को जानने से ही जाना जा सकता है। अतएव आर्थिक तथा व्यापारिक भूगोल (Economic Geography) मनुष्य की आर्थिक (Economic) स्थिति तथा उसके निवास-स्थान का घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाता है। मनुष्य समाज उन्नति तभी कर सकता है कि जब प्रकृति उसे यथेष्ट भोजन तथा वे वस्तुयें प्रदान करे जिनकी मनुष्य को नितान्त आवश्यकता होती है।

सच तो यह है कि मनुष्य की आर्थिक उन्नति का आधार उसके निवास-स्थान की भौगोलिक परिस्थिति (Natural Environments) ही है। किसी देश की पैदावार कैसी होगी, कौन कौन सी फसलें उत्पन्न की जावेंगी, वहाँ कौन कौन से धंधे चल सकेंगे, शक्ति (power) का कितना उपयोग हो सकेगा, मजदूरों की कार्य क्षमता कैसी होगी, व्यापारिक मार्गों की सुविधा होगी या नहीं, इत्यादि सभी बातें किसी देश की भौगोलिक परिस्थिति (Natural Environments) पर ही अवलम्बित हैं। भौगोलिक परिस्थिति के अन्तर्गत धरातल की बनावट, जलवायु, तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश का भौगोलिक सम्बन्ध, इत्यादि सभी बातें आ जाती हैं।

यदि देखा जाय तो मनुष्य की आर्थिक उन्नति का आधार उसके निवास-स्थान की भौगोलिक परिस्थिति ही है। परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए यह भी मान लिया जावे कि केवल भौगोलिक परिस्थिति ही किसी देश की आर्थिक अवस्था को निश्चित नहीं करती तब भी यह तो मानना ही होगा कि किसी भी देश के आर्थिक भविष्य को बनाना अथवा बिगाड़ना बहुत कुछ प्रकृति के ही हाथ में रहता है। यदि ऐसी दशा में यह कहा जावे कि प्रकृति मनुष्य की आर्थिक अवस्था को निश्चित करती है तो भूल न होगी।

मनुष्य जाति के विकास की प्रथम सीढ़ियों में तो केवल प्रकृति ही मनुष्य का लालन-पालन करती है। परन्तु आज यंत्र और विज्ञान के युग में जब मनुष्य सोचता है कि उसने प्रकृति पर बहुत कुछ विजय प्राप्त कर ली है तब भी मनुष्य अपनी आर्थिक उन्नति के लिए प्रकृति पर बहुत अधिक अवलम्बित है।

आज भी कोई प्रदेश क्या उत्पन्न करेगा वह जलवायु और धरातल की बनावट पर ही निर्भर है। सब कुछ प्रयत्न करने पर भी गन्ना इंगलैंड में और

अंगूर आइसलैंड (Iceland) में उत्पन्न नहीं किया जा सकता। वन-सम्पत्ति और मछलियाँ भी जलवायु तथा धरातल की बनावट पर ही निर्भर हैं। किसी प्रदेश में कौन सी धातुयें निकलेंगी यह भी उस प्रदेश के धरातल की बनावट पर निर्भर है। अस्तु यह सिद्ध हो गया कि मुख्य धंधे (Primary Industries) अर्थात् खेती-बारी, पशु-पालन, वन-सम्पत्ति खनिज पदार्थ, तथा मछलियाँ प्रकृति पर अवलम्बित हैं। यही नहीं गमनागमन के साधन भी जलवायु और धरातल की बनावट पर निर्भर होते हैं। भौगोलिक परिस्थितियाँ ही मनुष्य की कार्य-क्षमता को निर्धारित करती हैं। शक्ति के साधनों (Power resources) का भी जलवायु तथा धरातल की बनावट से सीधा सम्बन्ध है। कोयले द्वारा उत्पन्न होने वाली शक्ति, बिजली की शक्ति, गैस की शक्ति, पानी की शक्ति, तथा वायु की शक्ति सभी जलवायु तथा धरातल की बनावट पर निर्भर हैं। इन्हीं बातों पर उद्योग-धंधों की उन्नति निर्भर है और उद्योग-धंधों पर ही व्यापार निर्भर है। अतएव यह स्पष्ट हो गया कि भौगोलिक परिस्थिति किसी देश की औद्योगिक उन्नति का मुख्य कारण है। आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को इन सभी समस्याओं का अध्ययन करना आवश्यक है। इन समस्याओं के अतिरिक्त हमें और भी समस्याओं का अध्ययन करना होगा। जैसे उजाड़ देशों को आबाद करने के कारण, एक देश से दूसरे देश में मनुष्यों का प्रवास के कारण, तथा भिन्न-भिन्न जातियों के मिलने से जो आर्थिक समस्याएँ उपस्थित होती हैं उनका भी समावेश इस विषय में होना आवश्यक है।

"अतएव आर्थिक भूगोल में उन सभी भौगोलिक परिस्थितियों का विवरण होता है जो खेती, उद्योग-धंधों, व्यापार, तथा जनसंख्या के प्रवास पर प्रभाव डालती हैं।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्थिक भूगोल देशों के प्राकृतिक तथा राजनैतिक विभाजन, जनसंख्या का वितरण, कृषि तथा अन्य सभी प्रकार के धंधों तथा मनुष्य के रहन-सहन तथा व्यापार इत्यादि विषयों का अध्ययन करता है।

आर्थिक भूगोल के कार्य.

आर्थिक भूगोल के मुख्य दो कार्य हैं। पहला कार्य तो यह कि वह पृथ्वी के आर्थिक साधनों (Economic resources) का ठीक-ठीक विवरण देता है और दूसरा मुख्य कार्य यह है कि वह हमें बतलाता है कि हम उन आर्थिक साधनों को मनुष्य के लाभ और उपयोग के लिए किस प्रकार काम में ला सकते हैं।

आर्थिक भूगोल कोई पृथक् शास्त्र नहीं है। यह भूगोल की एक शाखा मात्र है। इसका भूगोल की सभी शाखाओं से सम्बन्ध है। यही नहीं कि आर्थिक भूगोल को प्राकृतिक भूगोल, राजनीतिक भूगोल, तथा गणितात्मक भूगोल (Mathematical Geography) से ही सम्बन्ध है वरन् उसका सम्बन्ध भूगर्भ शास्त्र (Geology) तथा ज्योतिष शास्त्र से भी है।

'आर्थिक भूगोल' भूगोल शास्त्र की एक शाखा है

उदाहरण के लिए हम किसी देश के व्यापार का यदि अध्ययन करना चाहें तो हमें उस देश की बनावट, उसकी स्थिति, उसके समीपवर्ती प्रदेश तथा जलवायु का अध्ययन करना होगा और यह विषय प्राकृतिक भूगोल (Physical Geography) का है। किसी देश के निवासियों, राज्य संस्था तथा कानून इत्यादि का अध्ययन किये बिना हम वहाँ के आर्थिक भूगोल का अध्ययन नहीं कर सकते और यह विषय राजनैतिक भूगोल का है। भूगर्भ शास्त्र हमें धरातल की बनावट, खनिज पदार्थों, चट्टानों, और मिट्टी के बारे में जानकारी देता है जिनका मनुष्य जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। गणितात्मक भूगोल में हमें पृथ्वी के विस्तार, उसकी गति, ज्वार-भाटा (Tides) तथा समुद्र की धाराओं (Ocean Currents) का अध्ययन करते हैं जिनका हमारे समुद्री गमनागमन, जलवायु तथा वनस्पति पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

इनके अतिरिक्त, आर्थिक भूगोल को अर्थ-शास्त्र (Economics) समाज-शास्त्र (Socialogy) इतिहास (History) वनस्पति-शास्त्र (Botany) प्राणितत्व-शास्त्र (Biology) तथा रसायन-शास्त्र (Chemistry) से भी उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है अतएव वह इन शास्त्रों से भी सहायता लेता है।

गैस की शक्ति, पानी की शक्ति, तथा वायु की शक्ति सभी जलवायु तथा धरातल की बनावट पर निर्भर हैं। इन्हीं बातों पर उद्योग-धंधों की उन्नति निर्भर है और उद्योग-धंधों पर ही व्यापार निर्भर है। अतएव यह स्पष्ट हो गया कि भौगोलिक परिस्थिति किसी देश की औद्योगिक उन्नति का मुख्य कारण है। आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को इन सभी समस्याओं का अध्ययन करना आवश्यक है। इन समस्याओं के अतिरिक्त हमें और भी समस्याओं का अध्ययन करना होगा। जैसे उजाड़ देशों को आबाद करने के कारण, एक देश से दूसरे देश में मनुष्यों के प्रवास का कारण, तथा भिन्न-भिन्न जातियों के

मिलने से जो आर्थिक समस्याएँ उपस्थित होती हैं उनका भी समावेश इस विषय में होना आवश्यक है।

मनुष्य तथा उसकी परिस्थिति Environments

मनुष्य जिस स्थान में निवास करता है वहाँ के अनुसार ही उसे अपना जीवन बनाना पड़ता है। मानवीय-भूगोल (Human Geography) के विद्वानों का कथन है कि "जातियाँ अपने निवास-स्थान की उपज हैं" किसी देश के निवासियों का मुख्य धंधा क्या होगा ? वहाँ का पहनावा क्या होगा ? तथा उनका,—रहन सहन, स्वभाव और कार्यक्षमता कैसी होगी ? यह बहुत कुछ उस देश की भौगोलिक परिस्थिति पर ही निर्भर है। मनुष्य का पेशा उसके स्वभाव पर एक प्रकार का विशेष प्रभाव डालता है। भिन्न-भिन्न जातियों के स्वभाव का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

संसार की समस्त शिकारी जातियाँ लड़ाकू होती हैं। वे जंगलों में पशु-पक्षियों को मार कर तथा प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये हुये फलों पर अपना गुजारा करती हैं। प्रकृति की दी हुई चीज़ों को नष्ट करते-करते उनका स्वभाव नष्टकारी बन जाता है, विनाश ही उनका ध्येय होता है, यही कारण है कि ऐसी जातियाँ लड़ने-भिड़ने के लिए बहुत उत्सुक रहती हैं, और उनकी दृष्टि में जीवन का मूल्य नहीं होता। गड़रिये का स्वभाव शिकारियों से भिन्न होता है क्योंकि वह अपनी भेड़ों तथा पशुओं की रक्षा करता है, उसके लिए जीवन बहुत मूल्यवान है। उसका ध्येय अपनी पशु-सम्पत्ति की रक्षा करना है, फिर वह कलह प्रिय क्यों होगा ? इसी प्रकार किसान भी शान्ति-प्रिय होता है. क्योंकि उसका सम्बन्ध भूमि से है। भूमि पर खेती-बारी तभी ठीक तरह से हो सकती है जब देश में शान्ति हो। भूमि से सम्बन्धित होने के कारण किसान कभी प्रवास (Migration) का विचार ही नहीं करता, वह समाज के अन्दर कोई क्रान्तिकारी उलट-फेर पसन्द नहीं करता। यही कारण है कि वह पुरानी रीतियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है, और कोई नई बात जल्दी ही स्वीकार नहीं करता। उसको अपने वंश-परम्परागत अनुभव पर अधिक विश्वास होता है। पशु पालने वाली जातियाँ शान्ति प्रिय होती हैं, इस लिये वे भी रूढ़िवादी होती हैं और कोई परिवर्तन पसंद नहीं करतीं।

बड़े-बड़े कारखानों में काम करने वाले तथा विशाल नगरों में रहने वाले मिल मज़दूरों का स्वभाव सर्वथा भिन्न होता है। वह पुरानी रस्मों में विश्वास नहीं रखता और न उसे किसी स्थान विशेष से अधिक प्रेम ही

होता है। मैंचेस्टर के कारखाने में काम करने वाला मज़दूर यदि कनाडा में धन उपार्जन का अच्छा अवसर पाता है तो वह निस्संकोच अपना देश छोड़ कर कनाडा चला जाता है। इसके विपरीत संयुक्त प्रान्त का ग्रामीण भूखे रह कर भी अपने बाप-दादों के स्थान को नहीं छोड़ना चाहता। चाहे कोई भी देश क्यों न हो वहाँ की भिन्न-भिन्न पेशेवाली जातियों का स्वभाव अवश्य ही भिन्न होगा।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि धंधा या पेशा उस देश की भौगोलिक परिस्थिति (Natural Environment) पर निर्भर है, अतएव अप्रत्यक्ष रूप से जातियों के स्वभाव तथा उनके विचारों पर भी भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है। धीरे-धीरे इन जातियों में कुछ विशेष गुण उत्पन्न हो जाते हैं, यहाँ तक कि वे एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हो जाती हैं। हमें जो जातियों में भिन्नता दिखलाई देती है वह उनके निवास-स्थान के प्रभाव के कारण है। केवल स्वभाव और विचार ही नहीं, उसके स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास पर भी भौगोलिक परिस्थित का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि एक बिलोची, बिलोचिस्तान के पहाड़ों की तरह ही कठोर और बलशाली होता है तो केवल इसलिए कि वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति ने उसको ऐसा बना दिया है। यदि बंगाल प्रान्त का रहने वाला मनुष्य निर्बल होता है और नैपाल की घाटियों में रहने वाला मनुष्य हृष्टपुष्ट और बलवान होता है, तो इसका कारण दोनों देशों की भौगोलिक परिस्थिति में छिपा है। इसी प्रकार जातियों के रीति-रस्म तथा उनके आचार-विचार भी भिन्न हो जाते हैं। यही कारण है कि यदि एक देश के नाम पर कोई कार्य किया जाता है तो उस देश के निवासी उसमें भरसक सहयोग देते हैं किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय (International) कार्यों में सब उदासीन दिखलाई पड़ते हैं।

पृथ्वी के धरातल की बनावट (Relief) का प्रभाव

पृथ्वी की धरातल की बनावट सब जगह एक सी नहीं होती। कहीं ऊँचे पहाड़ हैं तो कहीं नीचे मैदान। धरातल में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है। वायु, जल, धूप, पौधे तथा हिम पृथ्वी के धरातल (Relief) का रूप बदलते रहते हैं। नदियों के द्वारा घाटियाँ और नीचे मैदान बनते हैं। वायु एक स्थान की मिट्टी को उड़ाकर दूसरे स्थान पर जमा देती है। बर्फ पौधे तथा तेज़ धूप भी धीरे धीरे धरातल को तोड़ते रहते हैं। इनके सिवा पृथ्वी के कुछ भाग प्राकृतिक रूप से ही ऊँचे उठते जा रहे हैं और कुछ भाग नीचे होते जा रहे हैं। समुद्र भी कहीं-कहीं पृथ्वी को काटता रहता है तो

कहीं वह पृथ्वी से दूर हट जाता है। भूकंपों के कारण तो धरातल में यकायक भयंकर परिवर्तन हो जाता है, थोड़े से ही समय में धरातल की कायापलट हो जाती है। किन्तु अधिकतर परिवर्तन इतने धीरे-धीरे होते हैं कि मनुष्य को उनका आभास तक नहीं होता।

धरातल की बनावट मनुष्य की आर्थिक स्थिति पर बहुत प्रभाव डालती है। जलवायु तथा पैदावार बहुत कुछ धरातल की बनावट पर ही निर्भर हैं, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से भी धरातल की बनावट (Relief) किसी भी प्रदेश की आर्थिक उन्नति की सीमा को निर्धारित करती है। जैसे, ऊँचे पहाड़ों से भरे हुये प्रदेश की आर्थिक उन्नति अधिक नहीं हो सकती क्योंकि न तो वहाँ खेती-बारी ही अधिक हो सकती है, न उद्योग-धंधों की ही उन्नति हो सकती है, और न मार्गों की ही सुविधा होती है। यही कारण है कि ऐसे प्रदेशों में आबादी घनी नहीं होती। पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों के मुख्य धंधे पशु-पालन, खान खोदना, तथा लकड़ी की वस्तुयें बनाना है। पहाड़ी प्रदेशों के विपरीत जहाँ नीचे मैदान होते हैं वहाँ यदि भूमि उपजाऊ हो तो आबादी घनी होती है, क्योंकि वहाँ खेती-बारी तथा धंधे पनप सकते हैं और मार्गों की सुविधा होने से व्यापार की उन्नति हो सकती है।

यही नहीं धरातल की बनावट मनुष्य के शरीर पर भी प्रभाव डालती है। उदाहरण के लिए पर्वत पर रहने वाला मनुष्य हृष्टपुष्ट सादा तथा परिश्रमी होता है क्योंकि वह कड़ी मेहनत के बाद ही अपनी थोड़ी सी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। किन्तु मैदानों में रहने वाला कमज़ोर होता है क्योंकि वह थोड़े से परिश्रम से ही अपनी बहुत सी आवश्यकताओं को पूरा कर लेता है।

इनके साथ ही हमें नदियों के प्रभाव पर भी विचार करना आवश्यक है। नदियाँ मनुष्य की आर्थिक उन्नति में बहुत अधिक सहायक होती हैं। खेतों की सिंचाई तो नदियों के द्वारा होती ही है रेलों के पूर्व यही मुख्य व्यापारिक मार्ग थे। आज भी बहुत सी नदियाँ मार्ग की सुविधा प्रदान करती हैं। आधुनिक काल में पानी से सस्ते दामों में बिजली उत्पन्न करने की विधि ने पहाड़ी नदियों के महत्व को बहुत बढ़ा दिया है।

पृथ्वी के धरातल की बनावट का अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है कि इससे एक प्रदेश का दूसरे से सम्बन्ध मालूम होता है। यदि कोई विद्यार्थी बम्बई के बन्दरगाह का महत्त्व जानना चाहता है तो उसे भारतवर्ष के उस प्रदेश के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहिए जिसकी पैदावार बम्बई से बाहर भेजी जाती है। आधुनिक औद्योगिक केन्द्र उन स्थानों पर पाये जाते

हैं जहाँ कच्चा माल तथा शक्ति (Power) उत्पन्न करने के साधन आसानी से उपलब्ध हो सकें। हमें केवल धरातल का ही अध्ययन नहीं करना होगा वरन् चट्टानों का भी अध्ययन करना होगा जिनके टूटने से मिट्टी बनी है। चट्टानों की बनावट पर ही धातुओं का होना निर्भर है। यही सब बातें किसी देश की पैदावार, खनिज सम्पत्ति (Mineral wealth) तथा आर्थिक उन्नति को निश्चित करती हैं।

जलवायु का प्रभाव

मनुष्य के जीवन पर जलवायु का बहुत अधिक प्रभाव है। गरमी, जल, तथा वायु मनुष्य के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वनस्पति (Vegetation) भी जलवायु पर ही निर्भर है। यद्यपि गरमी और जल थोड़ी बहुत मात्रा में सब जगह पाया जाता है, फिर भी इनके यथेष्ट मात्रा में न होने से अथवा ज़रूरत से ज्यादा होने से बहुत से प्रदेश मनुष्य के रहने के लिए उपयुक्त नहीं रहते। गरम रेगिस्तान, बर्फीले मैदान, तथा हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ मनुष्य के निवास-स्थान बनने के योग्य नहीं हैं। यद्यपि ऐसे स्थानों में भी कुछ मनुष्य रहते हैं परन्तु उनका जीवन इतना कठिनाई का है कि वहाँ अधिक जनसंख्या के निवास करने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती।

जलवायु का सम्बन्ध उन पैदावारों से है जिन पर मनुष्य का जीवन निर्भर है अतएव वह जलवायु के प्रभाव से नहीं बच सकता। मनुष्य जलवायु को नहीं बदल सकता। यदि किसी प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है तो मनुष्य पानी नहीं बरसा सकता। अधिक से अधिक वह यह कर सकता है कि जहाँ पानी अधिक बरसता है वहाँ के पानी को नहरों द्वारा लाकर अपनी भूमि सींच ले। परन्तु सिंचाई थोड़ी सी ही भूमि को उपजाऊ बना सकती है, क्योंकि बिना वर्षा के केवल सिंचाई से ही सारा काम नहीं चल सकता। यही कारण है कि रेगिस्तान आज भी रेगिस्तान बने हुये हैं। नील नदी से थोड़ा सा प्रदेश सींचा जा सकता है किन्तु सारे रेगिस्तान को उपजाऊ नहीं बनाया जा सकता। केवल पैदावार ही नहीं उद्योग-धंधे भी बहुत कुछ जलवायु पर निर्भर हैं और अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु का व्यापार पर भी प्रभाव पड़ता है।

मनुष्य की सभ्यता भी जलवायु से बिना प्रभावित हुये नहीं रहती। संसार में सबसे पहले सभ्यता ऊष्ण-प्रधान देशों में फैली। भाप का आविष्कार होने के बाद शीतोष्ण (Temperate) देशों में उसका प्रादुर्भाव हुआ। यह सब जलवायु का ही कारण है। उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों के प्रदेशों, (Polar Regions) दलदल मैदानों, तथा विषुवत् रेखा

(Equator) के सघन वनों में जो पिछड़ी हुई जातियाँ रहती हैं वे जलवायु के ही कारण इतनी पिछड़ी हुई हैं। जलवायु का प्रभाव केवल यहाँ तक ही परिमित नहीं है। जिन देशों में ठंड अधिक पड़ती है वहाँ का समुद्र तथा नदियाँ जाड़े में जम जाती हैं और इसका फल यह होता है कि वहाँ का व्यापार रुक जाता है। सायबेरिया सभ्य संसार से केवल इसी कारण पृथक् है क्योंकि उसकी नदियाँ तथा समुद्र जाड़े में जम जाते हैं और बन्दरगाहों में जहाज़ नहीं आ-जा सकते। यही कारण है कि रूस काले-सागर (Black-Sea) के द्वारा मैडीटरेनियन सागर में जाने के लिए दरेदानियाल के मुहाने को अपने कब्ज़े में रखना चाहता था, कि जिससे जाड़े में भी उसको व्यापार का सुविधा हो।

शीतोष्ण (Temperate) तथा ध्रुवों (Poles) के समीप के प्रदेशों में गरमी का मौसम पैदावार तथा व्यापार के लिए अत्यन्त सुविधा-जनक होता है, किन्तु जाड़ा सुस्ती तथा व्यापार की मंदी का समय होता है। इन देशों में जाड़े के दिनों में पौधा उग ही नहीं सकता, और यदि उग भी जाय तो ज्यादा दिनों ज़िंदा नहीं रह सकता। इसका फल यह होता है कि इन देशों में गरमी के मौसम में लोग साल भर के लिए भोजन उत्पन्न करने में बड़ी लगन तथा मेहनत से काम करते हैं तथा जाड़े के दिन आलस्य के होते हैं। बरसात के दिनों में मानसून वाले प्रदेशों में अधिक काम नहीं होता। भारतवर्ष में वर्षा के दिनों में किसान खाली रहता है, यही कारण है कि इन दिनों यहाँ अल्हा, नौटंकी तथा तमाशों की धूम रहती है।

जलवायु और प्रवास (Migration)

जो जातियाँ एक से जलवायु में रही हैं उनकी रहन-सहन बहुत कुछ एकसी ही होती है। इस कारण ऐसी जातियाँ शीघ्र ही अपने देश के समान जलवायु वाले देशों में जाने को तैयार हो जाती हैं। भिन्न जलवायु मनुष्य के प्रवास के लिए बाधक है। ब्रिटिश जाति के लोग प्रति वर्ष कनाडा तथा संयुक्तराज्य अमेरिका में जाकर बसते हैं किन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी-अफरीका में अधिक मनुष्य जाकर नहीं बसते। भारतवर्ष के गरम मैदानों की भीषण गरमी से घबराकर अंग्रेज़ तथा हिन्दुस्तानी हिमालय तथा दूसरे पहाड़ी स्थानों पर चले जाते हैं। इस थोड़े काल के प्रवास के ही कारण शिमला, नैनीताल, दार्जलिंग, मंसूरी, उटकमंड, पंचमढ़ी तथा आबू महत्त्वपूर्ण स्थान बन गये हैं।

जलवायु और इमारतें

मनुष्य को अपने मकान बनाने में जलवायु का बहुत विचार करना पड़ता है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है वहाँ के मकानों की छतें ढालू होती हैं। बहुत ठंडे देशों में मकान बिना आँगन के बनाये जाते हैं और गरम देशों में बिना आँगन का मकान रहने योग्य नहीं होता। ठंडे देशों में कमरे एक दूसरे से सटाकर बनाये जाते हैं जिससे रहने वाले ठंड से बच सकें। गरम देशों में छत ढालू नहीं होती और मकान में ज्यादा हवा आने के लिए बरामदा बनाया जाता है। ठंडे देशों में सड़कें अधिक चौड़ी बनाई जाती हैं जिससे सूरज की धूप खूब मिलती रहे। इसके विपरीत गरम देशों में पतली गलियाँ ही अधिक दिखलाई देती हैं, हाँ जहाँ आमदरफ़्त अधिक होती है वहाँ चौड़ी सड़क ही बनानी पड़ती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि मनुष्य का दैनिक जीवन जलवायु से बहुत कुछ प्रभावित होता है।

जलवायु और व्यापारिक मार्ग

व्यापारिक मार्गों पर भी जलवायु का कुछ कम प्रभाव नहीं है। जिन स्थानों पर बहुत बर्फ़ पड़ती है वहाँ रेल और जहाज व्यर्थ हो जाते हैं। जाड़े में उत्तर के समुद्र जम जाते हैं और जहाज़ों का आना-जाना रुक जाता है। जहाँ रेलवे लाइन बर्फ़ से दब जाती है वहाँ भी मार्ग की असुविधा हो जाती है। जिन देशों में वर्षा बहुत अधिक होती है वहाँ भी मार्ग की बहुत असुविधा हो जाती है। जिन देशों में अत्यधिक वर्षा होती है रेलवे लाइनें बह जाती हैं। सड़कों पर पुल न होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो सकता, साथ ही कच्चे रास्तों पर तो आना-जाना ही असम्भव हो जाता है। रेगिस्तानों में हवा रेत की पहाड़ियाँ खड़ी करके रास्ता रोक देती है और रेलवे ट्रेनों को घंटों रुकना पड़ता है। प्राचीन काल में जब जहाज़ भाप से नहीं चलते थे तब तो हवा ही उनका अवलम्बन था।

जलवायु और उद्योग-धंधे

वैसे तो अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु का प्रत्येक धंधे पर प्रभाव पड़ता है किन्तु कुछ धंधे प्रत्यक्ष रूप से जल-वायु पर निर्भर हैं। उदाहरण के लिए सूती कपड़े के धंधे को नम हवा की आवश्यकता होती है जिससे सूत के तार न टूटें, और फ़िल्म-व्यवसाय के लिए तेज धूप की आवश्यकता होती है। खेती, फलों का धंधा तथा अन्य धंधे तो बहुत कुछ जलवायु पर ही निर्भर हैं।

जलवायु का मस्तिष्क पर प्रभाव

मनुष्य के मस्तिष्क पर भिन्न-भिन्न जलवायु का कैसा प्रभाव पड़ता है इसका ठीक ठीक अनुमान कर सकना कठिन है। फिर भी यह सब मानते हैं कि ठंडे जलवायु में मनुष्य हृष्टपुष्ट और चुस्त रहता है, और गरम जलवायु सुस्ती उत्पन्न करती है। गरमी में थोड़ा परिश्रम करने पर ही मनुष्य थक जाता है। इसके विपरीत ठंडी हवा मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करती है। मनुष्य जातियों की विचार-शक्ति में जो भिन्नता पाई जाती है वह उन जातियों के निवास-स्थान के जलवायु का ही असर है। यदि ऐसा नहीं है तो भिन्न जातियों में विचार शक्ति की समानता क्यों पाई जाती है। नम हवा का प्रभाव मस्तिष्क पर बुरा पड़ता है और शुष्क तथा ठंडी हवा मस्तिष्क के लिए लाभदायक है। यदि देखा जावे तो भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों का स्वभाव उस देश के जलवायु के अनुसार ही बनता है। अँग्रेज़ लोग खेल-कूद बहुत पसंद करते हैं, क्योंकि इंगलैंड का मेघाच्छन्न आकाश सुस्त रहने वाले मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। पृथ्वी के पूर्वीय देशों में जो उदासीनता दृष्टिगोचर होती है तथा योरोपीय देशों और उत्तरीय अमेरिका में जो चंचलता का साम्राज्य है वह इन देशों की भिन्न जलवायु का ही फल है। स्काटलैंड के निवासियों में गम्भीरता, असीम-धैर्य, और कल्पना शक्ति का जो बाहुल्य दिखाई देता है वह वहाँ के कुहरे से परिपूर्ण जलवायु का ही प्रभाव है। इंगलैंड में गहरे रंगों का रिवाज़ न होने का कारण वहाँ के मेघाच्छन्न आकाश है, और भारतवर्ष जैसे गरम देश में जो तेज़ रंगों का इतना अधिक प्रचार है इसका कारण यहाँ की तेज धूप है।

जल-वायु और मनुष्य की कार्य-शक्ति

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् सी० ई० हंटिंगटन ने खोज के उपरान्त यह परिणाम निकाला है कि मनुष्य की शारीरिक शक्ति ६०° से ६५° फै० गरमी में सबसे अधिक चैतन्य रहती है, और मस्तिष्क सबसे अच्छा कार्य उस समय करता है जब बाहरी वायु का तापक्रम (Temperature) ३८° फै० हो। यदि कुहरा अधिक पड़ता हो अथवा तापक्रम सब मैदानों में एकसा रहता हो, या फिर तापक्रम में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता हो, तो मनुष्य की कार्य-शक्ति कम हो जाती है। जब वायु भीषण वेग से चलती है तो मनुष्य के हृदय में उत्तेजना फैलती है। थोड़े में हम कह सकते हैं कि जलवायु का मनुष्य की कार्य-शक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

वनस्पति जलवायु तथा मिट्टी पर निर्भर होती है। वर्षा, गरमी, रोशनी,

जलवायु और वनस्पति

और वायु पैाधे के लिए आवश्यक हैं। पैाधे अपनी पत्तियों के द्वारा हवा से अपना भोजन ले लेते हैं और उनकी जड़ें पृथ्वी से जल खींचती हैं। रोशनी और धूप के द्वारा ही जल और वायु पैाधे के लिये भोजन में परिणत होते हैं। भिन्न-भिन्न जाति के पैाधों के लिए भिन्न-भिन्न जलवायु चाहिए किन्तु पैाधे अपने अनुकूल जलवायु के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के जलवायु में भी उत्पन्न हो सकते हैं। जिस प्रकार ठंडे देश का रहने वाला मनुष्य कम गरम देश में रह सकता है उसी प्रकार पैाधा भी भिन्न जलवायु में उत्पन्न हो सकता है।

गरम देशों में पैाधे घने और बहुतायत से उत्पन्न होते हैं, तथा ठंडे देशों में बिखरे हुए और कम उत्पन्न होते हैं। पैाधे के लिए सूखी हवा हानिकर होती है क्योंकि वह पैाधे का रस सुखा देती है। यही कारण है कि प्रकृति ने रेगिस्तान में ऐसे पैाधे उत्पन्न कर दिये हैं जिन पर एक प्रकार का गोंद रहता है जिससे पैाधे का रस न सूख सके। इसके अतिरिक्त इन पैाधों पर पत्तियाँ ही नहीं होतीं, पत्तियों के स्थान पर काँटे होते हैं जिससे हवा रस नहीं सुखा सकती। पैाधे के लिए रोशनी भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि पैाधा रोशनी से ही जल्दी बढ़ता है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अत्यधिक गरमी तथा ठंड

वनस्पति का प्रभाव

पैाधे को नष्ट नहीं कर देती। रेगिस्तानों में १२०° फै० तापक्रम (Temperature) में भी पैाधे उगते हैं और ध्रुव प्रदेश में बहुत नीचे तापक्रमों में भी वहाँ की घास मर नहीं जाती। हाँ गरम प्रदेशों में जहाँ जल यथेष्ट होता है वनस्पति बहुत सघन होती है और ठंडे देशों में वनस्पति कम होती है।

वनस्पति दो प्रकार की होती है। सघन वन (Wood lands) और घास के मैदान (Grass lands)। जिस प्रदेश में घास अथवा वन कुछ नहीं होता वह रेगिस्तान कहलाता है। वन भी कई प्रकार के होते हैं। ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) के सघन वनों से लेकर ठंडे प्रदेशों के पाइन (Pine) के जंगलों तक भिन्न-भिन्न प्रकार के वन प्रदेश मिलते हैं। इसी प्रकार घास के मैदानों में भी बहुत तरह के मैदान होते हैं। सघन वनों के लिए अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है और घास के मैदानों के लिए यह आवश्यक है कि वर्षा थोड़ी बहुत साल भर होती रहे। वनों के लिए सूखी

हवा हानिकारक है, परन्तु घास के मैदानों पर सूखी हवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

वन प्रदेशों से हमें बहुमूल्य लकड़ी मिलती है, जिस पर कागज़ दियासलाई, लाख, फर्निचर, खिलौने, वार्निश इत्यादि अनेक धंधे निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त वनों से और भी आवश्यक वस्तुयें मिलती हैं। वनों के कारण वर्षा अधिक होती है। नदियों में बाढ़ नहीं आती। वनों से खेती को लाभ पहुँचता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जंगलों का मनुष्य जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। घास के मैदान क्रमशः खेतों में परिणत हो गये और वे भिन्न-भिन्न फसलें उत्पन्न करते हैं जिन पर मनुष्य अपने भोजन तथा औद्योगिक कच्चे माल के लिए निर्भर है।

ऊपर दिये हुये विवरण से यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि जलवायु पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है। उसके रहने का ढंग उसकी कार्य-शक्ति तथा उसकी आर्थिक उन्नति जलवायु पर ही अवलम्बित है।

मनुष्य के जीवन पर जीव-जन्तुओं का प्रभाव

पृथ्वी पर अगणित जीव-जन्तु रहते हैं। मनुष्य भी इनके साथ ही रहता है अतः उसे इनके द्वारा लाभ-हानि दोनों ही पहुँचा करते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जिनके बिना मनुष्य का काम ही नहीं चल सकता। उन्हें हम "मित्र" कहेंगे, और कुछ ऐसे हैं जो मनुष्य को हानि अधिक पहुँचाते हैं, उन्हें हम "शत्रु" कहेंगे।

शत्रु

शेर, भेड़िया तथा अन्य जंगली जानवर मनुष्य के शत्रु हैं। बीमारी फैलाने वाली मक्खियाँ और कीड़े भी मनुष्य के कम भयंकर शत्रु नहीं हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कीड़े भी हैं जो पेड़ों और फसलों को नष्ट कर देते हैं। गन्ना, कपास, गेहूँ रबर, चाय, अंगूर और कहवा की पैदावार बहुत से देशों में केवल इन कीड़ों के द्वारा ही कम हो गई। संसार में सबसे अधिक शराब बनाने वाला देश फ्रांस, फायलोक्सैरा (Phyllo-xera) नामक कीड़े के कारण भयंकर आर्थिक स्थिति में फँस गया। फ्रांस के कृषि-शास्त्रियों को एक दूसरी ही अंगूर की बेल उत्पन्न करनी पड़ी तब जाकर शराब का धंधा नष्ट होने से बचा। इसी प्रकार कपास के कीड़े बालवीविल (Bolweevil) के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। यही नहीं चूहे, खरगोश, सियार, सुअर और बन्दरों के कारण खेती की कितनी हानि होती है, इसका अन्दाज़ा कर सकना कठिन है। आस्ट्रेलिया में खरगोशों के कारण एक विकट समस्या

खड़ी हो गई जिसके लिए सरकार को विशेष प्रयत्न करना पड़ा। भारतवर्ष में भी इन जानवरों तथा कीड़ों से पैदावार का कम नुकसान नहीं होता। इन शत्रुओं से फसल को बचाने के लिए किसान का बहुत सा समय और धन नष्ट होता है।

मित्र

पृथ्वी पर ऐसे भी जीव-जन्तु हैं जिनके बिना मनुष्य का काम ही नहीं चल सकता। गाय, बैल, घोड़ा, गदहा, ऊँट, हाथी, भेड़, बकरी तथा कुछ अन्य पशु मनुष्य के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। गाय, भैंस और बकरी से हमें दूध मिलता है, बैल, और घोड़ा खेती के लिए आवश्यक हैं, साथ ही बोझा ढोने के काम भी आते हैं। भेड़, बकरी तथा ऊँट से मनुष्य को खाने और पहिनने की वस्तुयें मिलती हैं। इनके अतिरिक्त रेशम के तथा लाख के कीड़े से हमें रेशम और लाख मिलता है। जिन प्रदेशों में रेलों का विस्तार नहीं हुआ है वहाँ आज भी बैल, घोड़ा, ऊँट, हाथी और खच्चर ही सवारी का काम देते हैं। मनुष्य समाज की उन्नति में इन पशुओं का मुख्य भाग रहा है।

मज़दूर और जनसंख्या

उद्योग-धंधों की उन्नति के लिए मज़दूरों की उतनी ही अधिक आवश्यकता है जितनी कच्चे माल तथा शक्ति की। भिन्न-भिन्न जाति के मज़दूर एक से नहीं होते कुछ मज़दूर बहुत कार्य करने वाले होते हैं और कुछ नीचे दर्जे के होते हैं। किसी भी देश की औद्योगिक उन्नति (Industrial Development) बहुत कुछ वहाँ के मज़दूरों पर ही निर्भर होती है। यही कारण है जिन देशों में जन-संख्या कम है और वे प्रकृति की देन (Natural Resources) से भरे-पुरे हैं वहाँ कुलियों की माँग बहुत रहती है। यद्यपि घनी आबादी वाले पुराने देशों से बहुत से मज़दूर प्रतिवर्ष नये उपनिवेशों में जाकर बसते हैं, फिर भी उन नये देशों को जितनी उन्नति हो सकती थी उतनी नहीं हुई है। अमेरिका अफ्रीका, तथा ओशेनियाँ के देश इसी कारण अभी तक पूर्ण रूप से उन्नत नहीं हो सके। कुछ ऐसे गरम नये देश भी हैं जहाँ ठंडे देशों के निवासी नहीं रह सकते। इस कारण उन देशों को उन्नत करने के लिए गरम देशों के मज़दूरों को वहाँ ले जाकर रक्खा गया। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा केनिया उपनिवेशों में यह समस्या आज भी वर्तमान है। जब ये उपनिवेश वीरान थे उस समय इनको उन्नत करने के लिए भारतवर्ष, चीन और जापान से मज़दूरों को लाया गया, किन्तु जब यह उपनिवेश उन्नत हो गए

तब गोरी जातियाँ एशिया निवासियों को वहाँ रहने देना नहीं चाहतीं। वे उन उपनिवेशों को अपनी सन्तानों के लिए ही सुरक्षित रखना चाहती हैं। दक्षिणी अफ्रीका से हिन्दुस्तानियों को निकाल बाहर करने का प्रयत्न, आस्ट्रेलिया की सफ़ेद नीति, (अर्थात् गोरी जातियों के सिवाय दूसरी जातियों को न आने देना) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में एशिया वासियों को न आने देना इस बात का प्रमाण है कि रंग भेद का प्रश्न जटिल हो गया है। गोरी जातियों का पृथ्वी के अधिकांश भूभाग पर अधिकार है और वे एशिया के घने आबाद देशों अर्थात् हिन्दोस्तान, चीन, और जापान के निवासियों को अपने अधिकृत देशों में नहीं बसने देना चाहते। जो मज़दूर पहले इन उपनिवेशों की उन्नति करने के लिए बुलाये गये थे अब उन्हें भी निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। किन्तु इन उपनिवेशों में कुछ ऐसे देश हैं जहाँ गोरी जातियों के लोग काम ही नहीं कर सकते। उन देशों की उन्नति होना असम्भव है। आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में यही समस्या उपस्थित है। गोरी जातियाँ इन देशों को उन्नत नहीं करतीं और सरकार एशिया-वासियों को बसाना नहीं चाहती।

आज प्रत्येक देश उद्योग-धंधों की उन्नति करने की धुन में है। योरोप के औद्योगिक देशों की स्थिति तो यह है कि वे भोज्य पदार्थ तथा कच्चा माल बहुत कम उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक देश पक्का माल तैयार करके विदेशों में बेंचना चाहता है। इसका फल यह हुआ कि संसार का बहुत बड़ा भाग भोजन के लिए केवल थोड़े से देशों पर अवलम्बित है। परन्तु हिन्दोस्तान, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, न्यूज़ीलैंड तथा अरजैनटाइन जो आज औद्योगिक प्रधान देशों को भोजन दे रहे हैं स्वयं अपनी औद्योगिक उन्नति करने में लगे हुए हैं। क्रमशः नये देशों में भी जन-संख्या बढ़ रही है। इन नवीन उपनिवेशों में अभी भोज्य पदार्थ उत्पन्न करने की बहुत गुञ्जाइश है परन्तु मज़दूरों की कमी के कारण खेती-बारी की पूर्ण उन्नति नहीं हो सकती।

जनसंख्या का निवास

मनुष्य पृथ्वी भर पर फैला हुआ है। उत्तरी ध्रुव (North Pole) के समीप आइसलैंड से लेकर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, भूमध्य रेखा (Equator) के सघन वनों, तथा रेगिस्तानों में भी वह पाया जाता है। जो देश रहने के योग्य नहीं है वहाँ भी मनुष्य रहता है। जिन देशों में आबादी आवश्यकता से अधिक है उन देशों को उसकी बढ़वार को रोकना पड़ता है, और कुछ ऐसे देश हैं जहाँ जनसंख्या की कमी के कारण उस देश की

उन्नति नहीं हो पाती। अस्तु उन देशों में जनसंख्या को बढ़ाने की कोशिश की जाती है।

किसी भी देश की आबादी के घनी अथवा बिखरी होने के बहुत से कारण हैं, उनमें भूमि की पैदावार मुख्य है। मनुष्य के लिए भोजन-वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की ज़रूरत होती है। अतएव जिन देशों में पैदावार अधिक होती है वहाँ की आबादी घनी होती है और जहाँ पैदावार कम होती है वहाँ आबादी बिखरी होती है। जिस भूमि पर कुछ उत्पन्न नहीं होता वहाँ मनुष्य नहीं रह सकता। रेगिस्तान जहाँ किसी प्रकार की भी पैदावार नहीं हो सकती आज भी जनशून्य है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जहाँ अधिक वनस्पति हो वहाँ अधिक जनसंख्या पाई जावेगी। जंगलों में बहुत कम आबादी होती है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रदेश में भूमि से जितनी अधिक पैदावार उत्पन्न की जा सकेगी अथवा धंधों के द्वारा जितनी अधिक सम्पत्ति (Wealth) उत्पन्न की जा सकेगी उतनी ही अधिक वहाँ आबादी होगी। मनुष्य भिन्न-भिन्न पेशों को अपना-कर अपना निर्वाह करता है। शिकारी जातियाँ वनों के पशुओं और वनस्पति पर निर्भर रह कर, चरवाहा पशुओं को पालकर, किसान खेती के द्वारा, तथा औद्योगिक जातियाँ पक्का माल तैयार करके उनको भोज्य पदार्थों से बदल कर, निर्वाह करती हैं।

शिकारी जातियाँ

पेशे और आबादी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जंगलों में प्रति वर्गमील आबादी बहुत कम होती है। इसका कारण यह है कि शिकारी जातियाँ कोई चीज़ पैदा नहीं करतीं। वे तो केवल प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुई चीज़ों का उपभोग (Consume) करती हैं। पशु-पक्षियों को मार कर, मछलियों को पकड़ कर, तथा फलों को इकट्ठा करके ही शिकारी अपना निर्वाह करता है। अतएव उसको अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिये बहुत अधिक क्षेत्रफल (Area) की आवश्यकता होती है।

पशु चराने वाली जातियाँ

शिकार द्वारा वनों में भोजन प्राप्त करना कठिन होता है क्योंकि कभी कभी शिकार नहीं मिलता। इस कठिनाई से बचने के लिये मनुष्य ने पशुओं को पालना आरम्भ किया। पशुओं को पालने से भोजन निश्चित रूप से मिल सकता है। पशुओं को पालकर उनके दूध तथा मांस पर निर्वाह करके थोड़ी भूमि पर भी अधिक जनसंख्या

निवास कर सकती है। चरवाहों की आबादी शिकारियों से अधिक घनी होती है। यदि चरागाह अच्छे होते हैं तब तो पशु चराने वाली जातियाँ वहाँ स्थायी रूप से रहती हैं, नहीं तो चारे की खोज में ये जातियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती हैं। यही कारण है कि पशु चराने वाली जातियाँ अधिकतर एक स्थान पर नहीं रह सकतीं।

खेती करने वाली जातियाँ

जिन देशों की भूमि, जलवायु, तथा भौगोलिक परिस्थिति खेती बारी के अनुकूल है वहाँ की आबादी घनी तथा स्थायी होती है। खेती के द्वारा थोड़ी सी भूमि पर भी बहुत से मनुष्य निर्वाह कर सकते हैं। जितनी भूमि एक गाय के निर्वाह के लिये आवश्यक है उसी भूमि पर अन्न के उत्पन्न करने से आठ मनुष्यों का पालन हो सकता है। अतएव प्रति वर्ग मील भूमि पर खेती करके अधिक मनुष्य निर्वाह कर सकते हैं।

किसान का अपनी भूमि से इतना निकट का सम्बन्ध होता है कि वह अपनी भूमि को छोड़ कर नहीं जा सकता। खेती बारी के लिए उपजाऊ भूमि, यथेष्ट जल, और गरमी की आवश्यकता होती है। जिन प्रदेशों में ये तीनों ही बातें हों वहाँ खेती बारी खूब हो सकती है। कृषक जातियों को शिकारी तथा पशु चराने वाली जातियों की भाँति भोजन के लिए प्रतिदिन की दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती। इस कारण ये जातियाँ अवकाश का समय शिक्षा, साहित्य, कला, तथा अन्य विद्याओं को जानने में व्यय करती हैं। सच तो यह है कि सभ्यता का विकास तभी हुआ जब मनुष्य खेती-बारी करने लगा। खेती दो प्रकार की होती है, (१) गहरी खेती (Intensive cultivation) बिखरी खेती (Extensive cultivation) यदि गहरी खेती वैज्ञानिक ढंग से की जावे तो उपज अधिक होती है और उस पर अधिक जनसंख्या का निर्वाह हो सकता है। गहरी खेती का अर्थ यह है कि भूमि की खूब जुताई हो, खाद डाला जाय, सिंचाई का प्रबंध हो। उत्तम बीज डाला जाय, तथा अत्यन्त सावधानी से खेती बारी की जाय। चीन अपनी असंख्य जनसंख्या का भरणपोषण केवल गहरी खेती (Intensive cultivation) के ही द्वारा कर रहा है। सच तो यह है कि चीन में खेती इतनी सावधानी से की जाती है कि यदि उनको खेत न कह कर बाग कहें तो अत्युक्ति न होगी।

औद्योगिक देशों (Industrial countries) की आबादी बहुत घनी होती है क्योंकि उद्योग-धंधों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता नहीं होती। एक कारखाने में जितने मूल्य का माल एक साल में तैयार होता है उतने मूल्य की पैदावार हज़ारों एकड़ जमीन पर भी उत्पन्न नहीं की जा सकती। औद्योगिक देश पक्के माल के बदले में अन्य देशों से भोज्य पदार्थ तथा कच्चा माल (Raw material) मँगाते हैं। इस कारण इन देशों में थोड़ी सी भूमि पर ही अधिक मनुष्य निर्वाह कर सकते हैं। औद्योगिक देश ही सबसे घने आबाद देश हैं। इंगलैंड, बेलजियम, फ्रांस, जर्मनी और जापान इसके उदाहरण हैं। कृषक प्रधान देशों की आबादी औद्योगिक देशों की तुलना में बिखरी होती है क्योंकि किसान को खेती के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती है। कृषि प्रधान देशों में चीन और हिन्दोस्तान ही ऐसे देश हैं कि जहाँ आबादी घनी है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन देशों के निवासी गरीबी में रहकर थोड़े में ही गुज़ारा कर लेते हैं।

उद्योग-धंधे तथा जनसंख्या

नगर अथवा गाँव भौगोलिक सुविधाओं के कारण ही बसाये जाते हैं। गाँवों तथा नगरों की उन्नति को देखने से वहाँ के निवासियों की उन्नति का पता चलता है। नगर एक ऐसी सामाजिक संस्था है जिसका सर्वदा विकास होता रहता है। यद्यपि भौगोलिक सुविधाओं का नगरों की स्थापना पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, किन्तु उनकी स्थापना तथा विकास में अन्य बातें भी सहायक होती हैं। कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि नगर स्वयं ही बढ़ रहा है। ऐसा बहुधा देखने में आता है कि किसी भौगोलिक कारण से एक नगर बसा, कुछ हद तक तो भौगोलिक अथवा आर्थिक कारणों से वह बढ़ता रहता है फिर वह जनसंख्या को आकर्षित करने लगता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह बड़े नगरों में जाकर रहना चाहता है। नगरों का जीवन मनुष्य को आकर्षित करता है। इसका परिणाम यह होता है कि गाँवों तथा कस्बों को छोड़कर लोग बड़े शहरों में जाकर बसने लगते हैं। बड़े शहर और अधिक बढ़ते जाते हैं और वहाँ उद्योग-धंधों की आवश्यकता से अधिक जनसंख्या निवास करने लगती है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष में जमींदार तथा पढ़े लिखे लोग गाँव को छोड़ कर शहरों में रहना पसन्द करते हैं। जो भी गाँव का लड़का पढ़ लिख जाता है वह शहर की तरफ भागता है। बात यह है कि शहरों में एक अजीब आकर्षण होता

नगर बसने के कारण

है। जो व्यक्ति लखनऊ, देहली या कलकत्ते में रह चुका है वह छोटे शहरों में रहना पसंद नहीं करता और छोटे शहरों में रहने वाला गाँव में जाकर रहना पसंद नहीं करता। एक बार जब एक शहर उन्नति कर लेता है तो वह स्वतः ही बढ़ता रहता है।

आगे चल कर हम नगरों के बसने तथा उनकी उन्नति के मुख्य कारणों का विवेचन करेंगे, किन्तु यहाँ हम उन सुविधाओं का संकेत कर देना आवश्यक समझते हैं जिनके कारण किसी स्थान को नगर अथवा गाँव बसाने के लिए उपयुक्त समझा जाता है। वर्ष भर पीने योग्य जल की सुविधा, उपजाऊ भूमि का निकट होना, रास्तों के मिलने से आने जाने की सुविधा, उस स्थान की बाहरी आक्रमण से रक्षा करने की सुविधा, नदी का किनारा इत्यादि कुछ ऐसी सुविधायें हैं जिनको ध्यान में रखकर ही नगर अथवा गाँव बसाया जाता है। किसी नगर अथवा गाँव की स्थापना भौगोलिक कारणों से होती है। किन्तु उसकी उन्नति तभी हो सकती है जब कि या तो वह व्यापारिक मार्गों के मिलने का स्थान हो जिससे वह एक बड़ी मंडी बन सके अथवा वह औद्योगिक केन्द्र (Industrial centre) हो।

व्यापारिक केन्द्र (Commercial centres

व्यापारिक केन्द्र छोटे और बड़े सभी तरह के होते हैं। भारतवर्ष में ही छोटी छोटी मंडियों से लेकर करांची, बम्बई जैसे बड़े व्यापारिक केन्द्र मिलते हैं। जिस व्यापारिक केन्द्र (Commercial Centre) का सहायक प्रदेश (Tributary Area) उपजाऊ और घनी होता है वह एक बड़ा शहर बन जाता है। किन्तु कोई भी व्यापारिक केन्द्र अपने सहायक प्रदेश की ज़रूरत से ज्यादा से ज्यादा उस समय तक नहीं बढ़ सकता जब तक उसमें उद्योग-धन्धों (Industries) की उन्नति न हो।

महत्त्वपूर्ण सड़कों पर, कई रास्तों के मिलन स्थान पर, बड़ी नदियों के किनारे पर, तथा रेलवे जंकशनों पर व्यापारिक मंडियाँ या नगर स्थापित होते हैं। महत्त्वपूर्ण सड़कों तथा कई सड़कों के मिलन स्थान पर मंडी इसलिए स्थापित हो जाती है क्योंकि आने जाने की सुविधा के कारण उनको सहायक प्रदेश (Tributary Area) से बिक्री के लिए वस्तुयें मिलती रहती हैं। जिस स्थान पर चारों ओर से रास्ते आकर मिलते हैं वह यदि जंकशन होता है तो शीघ्र ही एक बड़ी व्यापारिक मंडी का रूप धारण कर लेता है, क्योंकि ऐसे स्थान पर प्रत्येक दिशा से आये हुये पदार्थों का विनिमय (Exchange) होने लगता है। पिछले कुछ वर्षों से सड़कों के मिलन स्थान पर स्थिति

मंडियों का भी महत्व बढ़ गया है क्योंकि मोटर बसों के प्रचलन के कारण उनका व्यापार बहुत बढ़ गया है। प्राचीन काल में नगर तथा व्यापारिक मंडियाँ अधिकतर नदियों के किनारे बसाये जाते थे क्योंकि नदियों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने की सुविधा थी। आज भी जिन प्रदेशों में रेलवे अथवा सड़कों का अभाव है, वहाँ नदियाँ ही व्यापारिक मार्ग का काम देती हैं और उनके किनारे पर व्यापारिक मंडियाँ स्थापित हैं। भारतवर्ष में गंगा तथा अन्य नदियों के किनारे जो बड़े बड़े शहर बसाये गये उसका कारण ऊपर लिखित ही है। प्राचीन समय में ऐसे स्थानों पर भी नगर बसाये गये जहाँ शत्रुओं से नगरवासियों की रक्षा करने का सुभीता था। राजपूताने में उदयपुर तथा अन्य शहर विकट पहाड़ियों के बीच में केवल इस कारण बसाये गये क्योंकि राजपूत राजाओं को मुगल सेनाओं के आक्रमण का सदा भय रहता था।

आधुनिक काल में वे ही स्थान बड़े नगर हो सकते हैं जो महत्वपूर्ण रेलवे जंकशन हैं, बन्दरगाह (Sea-ports) हैं, अथवा औद्योगिक केन्द्र (Industrial centres) हैं। बम्बई, कलकत्ता, तथा कानपुर के बड़े नगर बनने का यही कारण है। यह ध्यान में रखने की बात है कि केवल बन्दरगाह बनने से ही कोई बड़ा नगर नहीं बन जावेगा। जब तक कि उसका व्यापारिक प्रदेश (Hinterland) धनी न हो तब तक वह बड़ा नगर नहीं बन सकता।

औद्योगिक केन्द्र (Industrial centres)

कोरे व्यापारिक केन्द्रों की तुलना में औद्योगिक केन्द्र (Industrial centres) कहीं बड़े नगर बन जाते हैं। उनकी बढ़वार की कोई सीमा नहीं है। हाँ जब कोई नगर बड़ा औद्योगिक केन्द्र होने के कारण बहुत बढ़ जाता है, आबादी बहुत घनी हो जाती है और मकानों इत्यादि की असुविधा होने लगती है तो उस नगर की बढ़वार कुछ रुकती है। फिर भी औद्योगिक केन्द्र शीघ्रता पूर्ण बढ़ते ही जाते हैं। धंधे किसी स्थान विशेष पर क्यों पनपते और केन्द्रित होते हैं इस विषय पर आगे [धन्धों का स्थानीय करण (Localisation of Industries)] लिखा गया है।

स्वास्थ्य वर्धक स्थान

आज कल औद्योगिक केन्द्रों (Industrial centres) में अत्यधिक भीड़ होती है। घनी आबादी तथा कारखानों की चिमनियों के धुयें के कारण वे स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छे स्थान नहीं रहते। अतएव प्रत्येक देश में

ऐसे स्थानों की आवश्यकता है जहाँ छुट्टी के दिनों में नागरिक अपने स्वास्थ्य तथा मनोरंजन के लिए जाकर कुछ दिनों रहें। योरोप में पहाड़ी प्रदेश तथा समुद्र के किनारे प्राकृतिक सौंदर्य के इन स्थानों पर छोटे छोटे सुन्दर शहर बस गये हैं। जहाँ वर्ष में कुछ दिनों के लिए घने आबाद नगरों के लोग जाकर रहते हैं। भारतवर्ष में मैदानों की भीषण गरमी से घबराकर अँग्रेज़ों ने पहाड़ी स्थानों पर हिल-स्टेशन बसाये हैं, जहाँ गरमियों में सरकारी दफ्तर ले जाये जाते हैं तथा जनता भी जाकर रहती है।

खनिज केन्द्र (Mining towns)

खनिज प्रदेश में भी शहर बस जाते हैं जहाँ से आस पास की खानों से निकली हुई धातु बाहर भेजी जाती है। भारतवर्ष में रानीगंज, आसंसोल और झरिया ऐसे स्थान हैं।

ऊपर लिखे हुये कारणों के अतिरिक्त राजधानी बन जाने से भी नगर की जनसंख्या बढ़ने लगती है। परन्तु आज कल राजधानी होने से कोई नगर इतना बड़ा नहीं होता जितना औद्योगिक केन्द्र होने से। बम्बई और कलकत्ता इसी कारण देहली से बड़े हैं। भारतवर्ष में तीर्थस्थान भी बड़े नगर बन जाते हैं क्योंकि प्रतिवर्ष वहाँ बहुत से यात्री आते हैं, बनारस, हरिद्वार, मथुरा इत्यादि स्थानों का महत्व केवल तीर्थस्थान होने के कारण ही है।

धंधों का स्थानीय करण (Location or manufactures)

जिन स्थानों में कच्चा माल (Raw material) उत्पन्न होता है अथवा जिन व्यापारिक मंडियों में वह बिकने को आता है वहीं कभी कभी धन्धे भी खड़े हो जाते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं है। कभी कभी धन्धे कच्चे माल के उत्पत्ति स्थान से बहुत दूर स्थापित किये जाते हैं। कोई धन्धा किसी स्थान विशेष पर क्यों उन्नत होता है इसके बहुत से कारण हैं। किन्तु धन्धों के स्थानीय करण (Localisation of industries) पर भौगोलिक परिस्थिति का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। धन्धों कारखानों को स्थापित करते समय प्रत्येक व्यवसायी कुछ सुविधाओं का विचार कर लेता है। किसी भी धन्धे के लिए निम्नलिखित सुविधाओं की आवश्यकता होती है।

कच्चा माल (Raw material)

१—प्रत्येक कारखाने के लिए कच्चा माल चाहिए। कभी कभी कारखाने कच्चा माल उत्पन्न करने वाले स्थान पर ही खोले जाते हैं, किन्तु अधिकांश कारखाने दूर होते हैं और कच्चा माल उन तक लाया जाता है। जिन कारखानों के लिए कच्चा माल आसानी से नहीं लाया जा सकता उनको कच्चा माल उत्पन्न करने वाले स्थानों पर ही स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए शक्कर के कारख़ाने, दूध और मक्खन के कारख़ाने, तथा मांस तैयार करने वाले कारखाने, उन्हीं स्थानों पर स्थापित किए जा सकते हैं जहाँ कच्चा माल उत्पन्न होता है।

शक्ति का साधन (Source of power)

२—वास्तव में देखा जावे तो शक्ति के साधन का धन्धों के स्थानीय करण (Localisation) पर बहुत प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी के अधिकांश औद्योगिक केन्द्र कोयलों की खानों के समीप स्थापित हैं। जिन धन्धों का कच्चा माल बहुत भारी होता है अर्थात् जिसके ले जाने में व्यय अधिक होता है वह तभी उन्नत हो सकता है जब शक्ति (power) और कच्चा माल समीप ही पाया जावे। उदाहरण के लिए लोहे का धन्धा तथा अन्य ऐसे ही धन्धे तभी सफलता पूर्वक चलते हैं जब कोयला और लोहा एक ही स्थान पर पाया जाता है। फिर भी यदि लोहा अथवा अन्य धातुयें कोयले की खानों के समीप नहीं मिलती हैं तो कच्ची धातुओं को कोयले की खानों के समीप लाकर वहाँ उनका धन्धा खड़ा किया जाता है। शक्ति (power) के समीप ही धन्धों को स्थापित करने से कोयले की खानों के समीप बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये हैं। उनकी आबादी बहुत घनी होने के कारण वहाँ रहने के योग्य मकानों की कमी हो गई है तथा अन्य समस्यायें उपस्थित हो गई हैं। जिन धन्धों में शक्ति का इतना अधिक उपयोग नहीं होता वे कोयले की खानों से दूर भी स्थापित किये जा सकते हैं। जैसे-जैसे जल-विद्युत् (Water power) का अधिकाधिक उपयोग होता जायेगा वैसे वैसे धन्धों का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) हो सकेगा। इसका अर्थ यह है जल द्वारा उत्पन्न की हुई सस्ती बिजली को दूर तक पहुँचाया जा सकता है। अतएव बिजली उत्पन्न करने वाले स्थानों पर ही धन्धों को स्थापित करना ज़रूरी नहीं होगा। न्यागरा जलप्रपात के जल से उत्पन्न की जाने वाली बिजली उत्पत्ति स्थान से तीन सौ मील तक ले जाई जाती है और कारखानों इत्यादि में उसका उपयोग होता है। भारतवर्ष में भी सौ मील तक बिजली ले जाकर उसका भिन्न भिन्न कार्यों

के लिए उपयोग किया जाता है। आधुनिक औद्योगिक केन्द्रों में जो अत्यधिक घनी आबादी हो गई है उससे बचने का एक ही उपाय है कि धन्धों का एक ही स्थान पर जमघट न होने देना, और यह तभी हो सकता है जब बिजली का अधिकाधिक उपयोग हो।

श्रम (Labour)

व्यवसायियों को कारखाने स्थापित करते समय मज़दूरों की समस्या पर भी विचार करना पड़ता है। जहाँ तक साधारण मज़दूरों का प्रश्न है उनके मिलने में अधिक कठिनाई नहीं होती। यद्यपि कहीं कहीं साधारण मज़दूरों की भी कमी होती है। परन्तु जिन धन्धों में कुशल मज़दूरों (Skilled labourers) की विशेष आवश्यकता होती है उनको स्थापित करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जहाँ कारखाना स्थापित करना है वहाँ कुशल मज़दूर मिल सकते हैं अथवा नहीं। किसी-किसी स्थान पर कोई धन्धा केवल इसलिए केन्द्रित हो जाता है कि उस स्थान पर धन्धे के लिए कुशल मज़दूर मिलते हैं। जब कोई धन्धा कुछ समय तक एक स्थान पर ही चलता रहता है तो वहाँ के मज़दूरों को उस धन्धे का अनुभव हो जाता है और वे अधिक कुशल हो जाते हैं। अतएव यदि उस चीज़ को तैयार करने के लिए कोई नया कारखाना स्थापित होता है तो कुशल मज़दूरों की सुविधा के कारण उसी स्थान पर खोला जाता है। उदाहरण के लिए लंकाशायर में कपड़े का धन्धा केवल इसलिए पनपा क्योंकि ऊनी कपड़ा तैयार करने वाले बुनकर (जुलाहे) वहाँ मौजूद थे। इसी प्रकार स्काटलैंड के पूर्वीय ज़िलों में जूट का धंधा इस कारण पनपा क्योंकि वहाँ सन का कपड़ा पहले से बनता था और वहाँ कुशल मजदूर मौजूद थे। किसी किसी धन्धे में कुशल श्रमजीवियों की इतनी अधिक आवश्यकता होती है कि यदि स्थानीय मज़दूर नहीं मिलते तो बाहर से बुलाने पड़ते हैं। ताता के लोहे के कारख़ाने में काम करने के लिए आरम्भ में विदेशों से कुशल कारीगरों को बुलाना पड़ा। धीरे-धीरे जब स्थानीय कारीगर तैयार हो गए तब विदेशी कारीगरों की आवश्यकता नहीं रही।

सस्ती भूमि

कभी कभी धन्धे ऐसी जगह स्थापित कर दिये जाते हैं जहाँ कि भूमि सस्ती होती है और आबादी घनी नहीं होती। ऐसी जगह विशेष कर वे धन्धे स्थापित किये जाते हैं जिनमें कोयले की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती अथवा जो चीज़ तैयार की जाती है वह अधिक मूल्यवान होती है। अधिकतर रेलवे कम्पनियाँ अपना वर्कशाप ऐसी जगहों पर बनाती हैं जहाँ

भूमि की कमी न हो, क्योंकि कोयला इत्यादि वस्तुयें लाने में उन्हें कोई अड़चन नहीं होती।

माल के बेचने की सुविधा

किसी भी धन्धे की सफलता के लिए तैयार किये हुये माल को बेंचने की सुविधा का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि तैयार किया हुआ माल भारी होता है तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि धन्धा ऐसे स्थान पर स्थापित किया जावे जहाँ से माल भेजने की सुविधा हो। यही कारण है कि बहुत से धन्धे बंदरगाहों में केन्द्रित हैं क्योंकि वहाँ से माल विदेशों को आसानी से भेजा जा सकता है। रेलवे जंकशन तथा बन्दरगाह इसी कारण औद्योगिक केन्द्र बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में रेलवे कम्पनियों की किराये को नीति (Rate policy) का भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। कुछ धन्धे तभी पनप सकते हैं जब रेलवे का किराया कम हो। उदाहरण के लिए खेती की पैदावार तभी दूर दूर तक भेजी जा सकती है जब रेल किराया कम हो। जो भी वस्तुयें कम मूल्यवान तथा भारी होती हैं उनका धन्धा तभी पनप सकता है जबकि उनको भिन्न भिन्न प्रदेशों में भेजने के लिए सस्ते किराये पर रेलवे कम्पनियाँ ले जाने की सुविधा दें। कहीं कहीं केवल रेलवे कम्पनियों की किराये की नीति के कारण ही किसी विशेष स्थान पर धन्धे स्थापित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दोस्तान में रेलवे कम्पनियों की आरम्भ में यह नीति रही कि जो माल देश के किसी भी भाग से बन्दरगाहों को जाते अथवा बन्दरगाहों से जो माल देश के किसी अन्दरूनी भाग को जाते उस पर किराया कम लिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय व्यवसायियों ने बन्दरगाहों में ही कारखाने स्थापित किये। बन्दरगाह ही हिन्दोस्तान के प्रमुख-औद्योगिक केन्द्र बन गये। व्यवसायियों को बन्दरगाहों में कारखाने स्थापित करने से बहुत लाभ होता था। क्योंकि जब वे अन्दर से कच्चा माल मँगवाते तो उन्हें किराया कम देना पड़ता था और जब वे तैयार माल देश की मंडियों में भेजते तो उस पर भी किराया कम देना पड़ता था। यही कारण है कि सर्व प्रथम धन्धे बन्दरगाहों में स्थापित हुये।

जलवायु का प्रभाव

जलवायु का भी धन्धों के स्थानीय-करण (Location) पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में जलवायु के प्रकरण में लिख चुके हैं।

अधिकतर धन्धों की किसी स्थान विशेष पर स्थापना में भौगोलिक कारण ही मुख्य होते हैं परन्तु कोई कोई धन्धा बिना किसी भौगोलिक कारण

के ही किसी स्थान विशेष पर पनप जाता है। एक बार जब कोई धन्धा कहीं चल पड़ता है तो क्रमशः उसके लिए वहाँ अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए वहाँ उस धन्धे के लिए कुशल कारीगर उत्पन्न हो जाते हैं, और उस वस्तु की बिक्री के लिए वह एक मंडी बन जाता है। ऐसी ही दूसरी सुविधायें मिलने लगती हैं और उस धन्धे की वहाँ जड़ जम जाती है।

अभ्यास के प्रश्न

१—आर्थिक भूगोल की परिभाषा (Definition) कीजिए और उसके क्षेत्र (scope) की व्याख्या कीजिए।

२—आर्थिक भूगोल के अध्ययन से व्यापार के विद्यार्थी, व्यापारी तथा उद्योगपतियों को क्या लाभ होता है।

३—"मनुष्य अपनी भौगोलिक परिस्थिति की उपज है" इस कथन की व्याख्या कीजिए और उदाहरण देकर समझाइए कि यह कहाँ तक ठीक है।

४—धरातल की बनावट (Relief) का मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों (Economic activities) पर कहाँ तक प्रभाव पड़ता है?

५—जलवायु का उद्योग-धंधों पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से क्या प्रभाव पड़ता है उसकी विवेचना कीजिए।

६—मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों और उसके स्वभाव पर जितना प्रभाव जलवायु का पड़ता है उतना किसी दूसरी बात का नहीं पड़ता। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं।

७—खेती और उद्योग-धंधे बहुत कुछ मिट्टी और जलवायु पर अवलम्बित हैं। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

८—किसी प्रदेश में लोग किस प्रकार रहते हैं क्या धंधा करते हैं उनकी कार्य-क्षमता कैसी है यह बिना कारण नहीं है इसको उस प्रदेश की भौगोलिक परिस्थिति (Natural Environments) निर्धारित करती है।

९—नगर बसने के क्या कारण होते हैं?

१०—धंधों का स्थानीय करण (Nationalisation of industries) किन भौगोलिक कारणों पर निर्भर है।

दूसरा परिच्छेद

पृथ्वी के धरातल की बनावट (Relief) और मिट्टी (Soil)

पृथ्वी का क्षेत्रफल लगभग १९७० लाख वर्ग मील है। इसमें लगभग एक चौथाई सूखी भूमि ५४० लाख वर्ग मील है और शेष समुद्र है। १४३० लाख वर्ग मील सूखी भूमि का लगभग दो तिहाई उत्तरी गोलार्द्ध (Northern Hemisphere) में है और शेष एक तिहाई दक्षिणी गोलार्द्ध (Southern Hemisphere) में है। सूखी भूमि के इस असमान वितरण का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य की उन्नति उत्तरी गोलार्द्ध में ही अधिक हुई और वहीं वह अधिक फला फूला। उत्तरी गोलार्द्ध में जो भी सूखी भूमि के भूभाग हैं वे एक दूसरे से मिले हुए हैं। किन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, तथा आस्ट्रेलिया एक दूसरे, के बीच में महासागर लहराते हैं इस कारण वे एक दूसरे के बहुत दूर पड़ गये हैं। यही नहीं दक्षिणी महाद्वीप भी (Continents) उत्तरी गोलार्द्ध के भूभागों से मिले हुये हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ८० प्रतिशत सूखी भूमि, ३०° तथा ६०° उत्तर रेखाओं के बीच में स्थित है, इस कारण ठंडे तथा बदलने वाले जलवायु के कारण यहाँ मनुष्य उद्यमी और पुरुषार्थी होता है। परन्तु दक्षिणी गोलार्ध की ⅘ सूखी भूमि की जलवायु इतनी गरम और एक सी है कि मनुष्य के लिये वहाँ अधिक उन्नति कर सकना कठिन है।

धरातल का रूप सब जगह एक सा नहीं है। कहीं गगनचुम्बी ऊँचे पहाड़ हैं तो कहीं ऊँचे पठार (Plateau) कहीं नदियों की घाटियाँ (Valley) तो कहीं नीचे और चौरस मैदान दिखलाई पड़ते हैं। धरातल के यह भिन्न भिन्न स्वरूप पृथ्वी में होने वाले परिवर्तनों अथवा जलवायु के बने हैं। पृथ्वी में दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं। एक तो इतना धीरे होता है कि जिसका मनुष्य को आभास तक नहीं मिलता। उदाहरण के लिये पृथ्वी के कुछ भाग क्रमशः स्वयं ही ऊँचे उठते जा रहे हैं और कुछ भाग नीचे होते जा रहे हैं। दूसरे प्रकार का परिवर्तन भूकम्पों अथवा ज्वालामुखी विस्फोट के कारण होता है। इनके द्वारा धरातल में यकायक भयंकर परिवर्तन हो जाते हैं। जलवायु के द्वारा धरातल में जो परिवर्तन होते हैं वे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यदि देखा जाय तो धरातल को आधुनिक रूप देने में वर्षा, जल, वायु, धूप तथा वृक्षों का अधिक हाथ रहा है। नदियाँ पहाड़ों को काट काट कर घाटियाँ बनाती

हैं, चट्टानों को तोड़कर और पत्थरों को पीस कर मिट्टी को नीचे मैदानों पर बिछा देती हैं। हवा एक स्थान से मिट्टी को उड़ाकर दूसरे स्थान पर ले जाती है। बर्फ, पौधे तथा तेज धूप भी धीरे धीरे धरातल को तोड़ते रहते हैं। जब चट्टानों के बीच में ठंडक के कारण बर्फ जम जाती है तो वह चट्टानों को तोड़ देती है। ग्लेसियर (Glaciers) चट्टानों को तोड़ कर उन्हें घिस देता है और जहाँ वह पिघलता है वहाँ उस मिट्टी को बिछा देता है। हवा और पानी ने धीरे धीरे धरातल को बहुत कुछ बदल दिया है। गंगा और सिंध के मैदान इन दो नदियों के द्वारा लाई हुई मिट्टी से बने हैं। उत्तरी चीन में जो उपजाऊ मैदान हैं उनकी मिट्टी हवा द्वारा उड़ाकर लाई गई है। इसी प्रकार उत्तरीय योरोप तथा उत्तरीय अमेरिका के मैदान ग्लेशियरों (Glaciers) के द्वारा बने हैं।

यदि पृथ्वी के धरातल की बनावट का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि पृथ्वी पर दो पर्वत मालायें फैली हुई हैं। एक पूर्वीय गोलार्द्ध (Eastern Hemisphere) तथा दूसरी पश्चिमी गोलार्द्ध (Western Hemisphere) में हैं। पूर्वीय गोलार्द्ध की पर्वत माला पामीर के पठार से चार शाखों में बँट गई है। पहली शाखा अफगानिस्तान, फारस, टर्की होती हुई दक्षिण योरोप में फैल गई है। दूसरी शाखा (जो कम ऊँची और टूटी हुई है) अरब और अबसीनिया में होती हुई दक्षिण अफ्रीका में चली गई है, तीसरी मलाया प्रायद्वीप (Peninsula) तथा द्वीप समूह में होती हुई आस्ट्रलिया में चली गई है। और चौथी चीन तथा सायबेरिया में होती हुई बेरिंग जलसंयोजक तक चली गई है। पश्चिमी गोलार्द्ध की पर्वत माला अलास्का से हार्न अन्तरीप (Cape Horn) तक चली गई है। इन पर्वत मालाओं के अतिरिक्त कुछ फुटकर बिखरे हुये पहाड़ भी हैं। जैसे उत्तर-पश्चिम योरोप के पहाड़, अथवा उत्तर अमेरिका के अपलेशियन (Appalachians) तथा ब्राजील के पहाड़। किन्तु ये पहाड़ न तो बहुत ऊँचे ही हैं और न बहुत क्षेत्रफल में ही फैले हुये हैं।

इन पर्वत मालाओं से जुड़े हुये पठार तथा मैदान हैं। नदियाँ इन्हीं पहाड़ों से निकल कर मैदानों में बहती हुई समुद्र में गिरती हैं। कहीं कहीं पानी के एक स्थान पर इकट्ठा हो जाने से झीलें बन जाती हैं।

मैदानों तथा नदियों की घाटियों में मिट्टी उपजाऊ, जल की बहुतायत तथा गमनागमन की सुविधा होने की वजह से खेती बारी और उद्योग-धंधों की खूब उन्नति होती है और आबादी घनी होती है। परन्तु पर्वतीय प्रदेश में मनुष्य को बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। वहाँ औद्योगिक उन्नति केवल

विशेष अवस्थाओं में ही होती है। अतएव अधिकतर पर्वतीय प्रदेश घने आबाद नहीं होते।

चट्टानें

केवल पृथ्वी के धरातल की बनावट का ही अध्ययन करने से काम नहीं चल सकता। हमें उन चट्टानों के विषय में भी अध्ययन करना होगा जिनसे धरातल बना है। चट्टानों के टूटने से ही मिट्टी बनती है और चट्टानों की बनावट पर ही धातुओं का होना भी निर्भर है।

चट्टानें तीन प्रकार की होती हैं:—(१) आग्नेय (Igneous) तलछट वाली चट्टान (Sedimentary) और परवर्तित चट्टान (Metamorphic) अग्निमय चट्टान (Igneous Rocks) पिघले हुए पदार्थ के जम जाने से बनती हैं। पहले पृथ्वी जलता हुआ अग्नि का गोला थी और सब पदार्थ पिघली हुई दशा में थे। जब पृथ्वी के ठंडी होने के कारण वह पिघला हुआ पदार्थ जम गया उस समय ये चट्टानें बनीं। इसी कारण इन चट्टानों को मुख्य चट्टानें (Primary Rocks) भी कहते हैं। जब ये चट्टानें (मुख्य चट्टानें) हवा, पानी, बर्फ तथा धूप के कारण टूटीं और वह चूरा, हवा, अथवा पानी द्वारा दूसरे स्थानों पर जमा दिया गया तब उससे जो चट्टानें बनी उन्हें तलछट वाली चट्टान (Sedimentary Rocks) या गौण चट्टान (Secondary Rocks) कहते हैं। तीसरे प्रकार की चट्टानें अर्थात परिवर्तित (Metamorphic) पहली दोनों चट्टानों का बिगड़ा हुआ और परवर्तित रूप हैं। जब अत्यधिक दबाव (Pressure) तथा गर्मी के कारण इन दोनों प्रकार की चट्टानों का पूर्व रूप बिलकुल ही बदल जाता है तब वे पहिचानी ही नहीं जा सकतीं। इसी कारण उन्हें परिवर्तित चट्टानें (Metamorphic) कहते हैं।

मुख्य (Primary) अथवा अग्निमय (Igneous) चट्टानों में बहुमूल्य धातुयें अधिकता से पाई जाती हैं। गौण (Secondary) अथवा तलछट वाली (Sedimentary) चट्टानें ही पृथ्वी के अधिकांश भाग पर पाई जाती हैं, जिन प्रदेशों में ये चट्टानें पाई जाती हैं वे घने आबाद तथा समृद्धिशाली हैं। परिवर्तित (Metamorphic) चट्टानों में भी बहुत सी धातुयें मिलती हैं।

आग्नेय अथवा मुख्य चट्टानें Primary Rocks

मुख्य चट्टानों में ग्रैनाइट (Granite) बहुत अधिक मिलता है। ग्रैनाइट पत्थर सभी पुराने पहाड़ी प्रदेशों में पाया जाता है। यह भारी और मज़बूत होता है इस कारण इमारत के काम में अधिकतर आता है। यह बहुत चिकना और सुंदर होता है और वर्षा और धूप में सैकड़ों व

रह सकता है। इसी कारण उसका फर्श बनाने, इमारत बनाने, कंकरीट में तथा रेलों की पटरियों के पास डालने में बहुत उपयोग होता है।

तलछट वाली चट्टानें तथा गौण चट्टानें Secondary Rocks

गौण चट्टानों में रेत का पत्थर (Sand-stone) सबसे अधिक पाई जाने वाली चट्टान है। रेत का पत्थर चक्कियों के पाट बनाने में बहुत काम आता है। गौरण चट्टानों में जो दूसरी सबसे महत्वपूर्ण चट्टान मिलती है वह है कई प्रकार की मिट्टियां (Clays) और शेल (Shales)। इन्हीं मिट्टियों पर ईंटों और चीनी मिट्टी के बर्तनो का धंघा निर्भर है। इस कारण ये चट्टानें आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गौण चट्टानों में तीसरी महत्वपूर्ण चट्टान चूने का पत्थर (Limee-stone) है। चूने का पत्थर इमारत तथा कंकरीट बनाने में बहुत काम आता है।

परवर्तित चट्टानें Metamorphic rocks

इस चट्टान में अबरख़ की चट्टान, स्लेट (जिसका उपयोग इमारत की छतें पाटने में बहुत होता है) संगमरमर जो इमारत का बहु-मूल्य पत्थर है मुख्य हैं। भूगर्भ विद्या (Geology) के जानने वालों ने चट्टानों का समय के अनुसार भी विभाजन किया है। बात यह है कि आरम्भ में जब पृथ्वी ठंडी हो रही थी उस समय उस पर किसी प्रकार की वनस्पति, कीड़े मकोड़े तथा पशु पक्षी नहीं थे। जैसे जैसे पृथ्वी ठंडी होती गई और पिघले हुए पदार्थों के जमने से चट्टानें बनने लगीं तो क्रमशः वनस्पति, कीड़े, पशु, पक्षियों और मनुष्यों की सृष्टि आरम्भ हुई। जिस युग में चट्टान बनी होती है उस युग के जीवन के उसमें चिन्ह मिलते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी समय पृथ्वी पर सघन वन खड़े थे तो उस समय की बनी हुई चट्टानों में वृक्षों के चिन्ह अंकित (Fossil) मिलते हैं। पृथ्वी पर वनस्पति, पशु पक्षी तथा मानव जाति के प्रगट होने के समय क्रमशः जो चट्टानें बनीं उनमें इनके चिन्ह मिलते हैं और इसी आधार पर भूगर्भवेत्ताओं (Geologists) ने चट्टानों के बनने की क्रिया को चार युगों में बाँटा है। (१) प्राचीनतम (Archaezoic) युग की चट्टानें; उस समय बनीं जब पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव हो रहा था यद्यपि उस युग की चट्टानों में किसी प्रकार के फासिल (Fossil) नहीं मिले हैं। दूसरा युग वनस्पति तथा पशुओं का था। उस समय की बनी हुई चट्टानों में इसके चिन्ह मिलते हैं। इस युग को प्रारम्भिक (Palaeozoic) युग कहते हैं और इस युग की चट्टानों को प्रारम्भिक (Palaeozoic) चट्टानें कहते हैं। तीसरा

युग मध्य (Mesozoic) युग कहलाता है, और इस युग की बनी हुई चट्टानों को मध्यकालीन (Mesozoic) चट्टानें कहते हैं। इस युग में पृथ्वी पर सर्पों की बहुतायत थी इस कारण इसे सर्पों का युग भी कहते हैं। चौथा युग अर्वाचीन (Tertiary) युग कहलाता है। इस युग में, अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले पशुओं, और मनुष्य का आविर्भाव हुआ और उनकी ही बहुतायत रही। इस कारण यह युग दूध पिलाने वाले पशुओं और मनुष्य का युग कहलाता है। इन चार युगों का भी भूगर्भ वेत्ताओं ने छोटे छोटे युगों में विभाजन किया है।

प्राचीनतम युग (Archaeozoic) की चट्टानें संसार में सबसे पुरानी हैं। ये चट्टानें धीरे धीरे घिसती हैं और पृथ्वी पर उपजाऊ मिट्टी बिछाती हैं, इसके अतिरिक्त इन चट्टानों में बहुत सी धातुयें भी पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिका की कोयले की खानें इन्हीं चट्टानों में पाई जाती हैं। कहीं कहीं इन्हीं चट्टानों में लोहे और सोने की खानें भी मिलती हैं।

प्रारम्भिक युग (Palaeozoic) की चट्टानें प्राचीनतम युग की चट्टानों की घिसी हुई मिट्टी के जम जाने से बनी हैं। इन चट्टानों में महत्त्वपूर्ण धातुओं की खानें बहुतायत से पाई जाती हैं। इसी युग की कैम्ब्रियन (Cambrian) नामक चट्टानों में सोना बहुतायत से मिलता है। इसके अतिरिक्त इन्हीं चट्टानों में तेल की गैस और तेल पाया जाता है। विद्वानों का विश्वास है कि मछलियों इत्यादि के एक स्थान पर चट्टानों में दब जाने से तेल, तथा वनस्पति के दब जाने से गैस बनी। जिस जगह पर परवर्तित (Metamorphic) तथा अग्निमय (Igneous) चट्टानों का मेल होता है वहाँ टिन, लोहा, तथा ताँबा अधिक पाया जाता है। कार-बोनीफरस (Carboniferous) समय (प्रारम्भिक युग का एक उपयुग) की चट्टानों में ही संसार की समस्त कोयले की चट्टानें पाई जाती हैं। इन्हीं चट्टानों में योरोप उत्तरी अमेरिका तथा अन्य देशों की कोयले की खानें मिलती हैं। कहीं कहीं इन्हीं चट्टानों में लोहा भी बहुतायत से मिलता है। परमियन (Permian) चट्टानों (जो प्रारम्भिक युग की ही चट्टान है) के प्रदेशों से ही अधिकतर नमक निकलता है। योरोप में जो कुछ नमक खोदा जाता है वह इन्हीं चट्टानों का प्रसाद है।

मध्यकालीन (Mesozoic) चट्टानें धातुओं की दृष्टि से तो अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, परन्तु इन चट्टानों से जो मिट्टी बनती है वह अत्यन्त

उपजाऊ होती है। इन चट्टानों में ट्रैसिक (Triassic) उपयुग की चट्टानों में नमक, कोयला, सोना, और लोहा भी पाया जाता है।

वर्तमान

आधुनिक (Tertiary) युग की चट्टानें भी धातुओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। हाँ इस युग की चट्टानों में कहीं कहीं कोयला और तेल अवश्य मिलता है। किन्तु इस युग की चट्टानों का मिट्टी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण क्वाटरनैरी समय की चट्टानें हैं जिनका प्रभाव मिट्टी पर सबसे अधिक पाया जाता है।

ऊपर लिखे हुए संक्षिप्त विवरण से यह ज्ञात हो गया होगा कि चट्टानों तथा पृथ्वी के धरातल की बनावट का धातुओं तथा मिट्टी से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अब हम मिट्टी के विषय में लिखेंगे।

मिट्टी Soil

मनुष्य के लिए मिट्टी बहुत महत्त्वपूर्ण वस्तु है, क्योंकि सारी पैदावार मिट्टी पर ही निर्भर होती है। यदि किसी देश की मिट्टी उर्वरा होती है तो वहाँ खेती की उन्नति हो सकती है अन्यथा नहीं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मनुष्य के सारे आर्थिक प्रयत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी पर निर्भर हैं।

पृथ्वी की ऊपरी सतह पर जो चट्टानों का टूटा हुआ चूरा बिछा हुआ है उसी को मिट्टी कहते हैं। किसी भी प्रदेश की मिट्टी पर तीन बातों का प्रभाव होता है—(१) जिस चट्टान के टूटने से वह मिट्टी बनी है (२) जलवायु (३) उस चट्टान पर उत्पन्न होने वाली वनस्पति। इन्हीं तीन बातों के आधार पर मिट्टी दो प्रकार की मानी गई हैं। एक तो वह मिट्टी जिनके बनने में बाहरी शक्ति अर्थात् जलवायु तथा वनस्पति का प्रभाव मुख्य है। दूसरी वह मिट्टी जिन पर उनकी चट्टानों का मुख्य प्रभाव है। उदाहरण के लिए पहले प्रकार की मिट्टी प्रैरी (Prairie) मैदानों की मिट्टी है, और दूसरी प्रकार की मिट्टी मध्य प्रान्त भारत की काली मिट्टी है।

पहले प्रकार की मिट्टी अधिकतर भागों में पाई जाती है, उस पर जलवायु का अधिक प्रभाव है इस कारण, वह जलवायु के आधार पर तीन प्रकार की मानी जाती है—(१) वनों की मिट्टी (Forest Soil) (२) घास के मैदानों की मिट्टी (Grassland Soil) (३) मरुभूमि की मिट्टी (Desert Soil)।

वनों की मिट्टी

वनों की मिट्टी उन प्रदेशों में पाई जाती है जहाँ पानी की बहुतायत से जंगल खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार की मिट्टी घास के मैदानों की मिट्टी से कम उपजाऊ होती है क्योंकि

अधिक वर्षा के कारण बहुत से आवश्यक लवण (Salts) और विशेषकर चूना (Lime) बह जाता है। इस प्रकार की मिट्टी में वनस्पति का अंश भी घास के मैदानों की मिट्टी से कम होता है क्योंकि पेड़ों की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। अतएव वे मिट्टी को अधिक उपजाऊ नहीं बना पातीं, और न जड़ें शीघ्र ही सड़ती हैं, क्योंकि पेड़ों का जीवन अधिक लम्बा होता है। पेड़ से जो पत्तियाँ गिरती हैं वे शीघ्र ही सूख जाती हैं। अतएव वनों की भूमि खेती के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होती। लैटेराइट (Laterite) मिट्टी वन की ही मिट्टी है। यह खेती के उपयुक्त नहीं है।

घास के मैदानों की मिट्टी

यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है, इस कारण खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। घास के मैदानों में न तो अधिक वर्षा ही होती है इस कारण मिट्टी के आवश्यक पदार्थ घुलते नहीं हैं और न इसमें वनस्पति का अंश ही अधिक होता है।

मरुभूमि की मिट्टी

मरुभूमि की मिट्टी में वनस्पति का अंश अधिक नहीं होता है परन्तु आवश्यक पदार्थों के बह जाने का तो वहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। अधिकांश मरुभूमि की मिट्टी रेतीली होती है। किन्तु रेतीली मिट्टी में भी पौधे को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। यदि पानी मिल सके तो रेतीली मिट्टी पर भी खेती की जा सकती है।

दूसरे प्रकार की वह मिट्टी है जिस पर उसकी चट्टान का प्रभाव अधिक है। कुछ चट्टानों की मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ होती है तथा कुछ की फसलों के लिए हानिकारक होती है। दानेदार चट्टानों (Crystalline) तथा ग्रैनाइट Granite) चट्टानों में चूने की कमी होने के कारण उनसे बनी हुई मिट्टी खेती के काम की नहीं होती। ज्वालामुखी के फूटने से जो पिघले हुए पदार्थ निकलते हैं उनसे बनी हुई मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। चूने के पत्थर (Lime-stone) से बनी हुई मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है।

किन्तु यह न समझ लेना चाहिए कि जो मिट्टी हम अपने गाँव या प्रान्त में देखते हैं वह वहाँ की चट्टानों से ही बनी है। अधिकतर मिट्टी जहाँ बनी वहाँ से प्रकृति की शक्तियों द्वारा दूसरे स्थान पर लाकर जमा दी गई। मिट्टी को एक स्थान से लाकर दूसरे स्थान पर जमा देने में जल, वायु और बर्फ़ का मुख्य हाथ रहा है। जो मिट्टी नदियाँ चट्टानों को तोड़ कर बनाती हैं और बहाकर नीचे मैदानों में बिछा देती हैं उसे गंगवार (Alluv-

ial) मिट्टी कहते हैं। यह मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ होती है। जो मिट्टी कि हवा द्वारा उड़ाकर दूसरी जगह बिछा दी जाती हैं उन्हें लोयस (Loess) कहते हैं। चीन तथा मध्य योरोप में यही मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी भी अत्यन्त उपजाऊ होती है। एलूवियल (Alluvial) तथा लोयस (Loess) मिट्टी के मैदान संसार में सबसे अधिक उपजाऊ हैं। ग्लेशियरों (Glaciers) के द्वारा जमा की हुई मिट्टी को टिल (Till) कहते हैं। यह भी उपजाऊ होती है।

ऊपर दिये हुए विवरण में इस बात को बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि मिट्टी किस प्रकार बनी। अब हम मिट्टी के तीन रूपों का संक्षिप्त विवरण देंगे। मिट्टी के तीन रूप हैं :—चीका (Clay) रेत (Sand) और दोमट (Loam)। चीका मिट्टी बहुत कड़ी और चिकनी होती है, उसमें न तो पानी ही जल्दी पहुँच सकता है और न हवा ही जल्दी पहुँच सकती है। इस कारण चीका मिट्टी खेती के लिए उपयोगी नहीं होती। रेतीली मिट्टी में में चीका (Clay) का अंश बहुत कम होता है उसके कण अलग रहते हैं, उसमें कणों को जोड़ देने वाला पदार्थ नहीं होता। इस कारण उसमें उत्पन्न होने वाले पौधे की जड़ तक हवा और पानी सरलता से पहुँच सकता है। रेतीली मिट्टी पर खेती करना आसान होता है, किन्तु रेतीली मिट्टी पर खेती करने के लिए पानी की अधिक आवश्यकता होती है। यदि जल की कमी हो तो अधिक पैदावार नहीं होती। दोमट (Loam) में दोनों प्रकार की मिट्टी होती है, अर्थात् उसमें रेत और चीका (Clay) समान रूप से मिले रहते हैं। दोमट मिट्टी सब प्रकार की फसलों के उपयुक्त है क्योंकि इसमें दोनों मिट्टियों के गुण होते हैं। कुछ पौधों के लिए रेतीली मिट्टी अधिक उपयोगी होती है और कुछ के लिये रेतीली मिट्टी हानिकर होती है। रेतीली मिट्टी में पानी शीघ्र ही गहराई तक चला जाता है और साथ ही सूर्य के किरणों से वह शीघ्र ही सूख जाता है। अतएव उन पौधों के लिए जिन्हें जड़ के पास अधिक समय तक पानी की आवश्यकता होती है रेतीली मिट्टी उपयोगी सिद्ध नहीं होती। चीका मिट्टी तो खेती के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। क्योंकि एक तो पौधा उसमें अपनी जड़ को ही आसानी से नहीं फैला सकता फिर हवा और पानी भी जड़ तक आसानी से नहीं पहुँचता। इस कारण ऐसी मिट्टी पर खेती नहीं की जाती केवल घास उगती है।

कहीं कहीं मिट्टी पर रेह अथवा शोरा (Alkalies) जम जाने से भी मिट्टी खेती के लिये व्यर्थ हो जाती है। रेह तथा नमकीन मिट्टी पौधे को उगने ही नहीं देती। यह उन स्थानों में पाई जाती है जहाँ पानी कम बरसता

है अथवा जहाँ पानी तो काफी बरसता है किन्तु उसका बहाव ठीक न होने के कारण वह बह नहीं सकता। ऐसे स्थानों में वर्षा का पानी घुले हुए नमक के साथ पृथ्वी की तह में चला जाता है। पानी में नमक घुलकर अन्दर ही इकट्ठा हो जाता है। किन्तु जब अन्दर का पानी तेज़ धूप से भाप बनकर उड़ने लगता है तब नमक ऊपर आकर पृथ्वी पर जम जाता है। ऐसी भूमि खेती के काम की नहीं रहती।

मिट्टी का कार्य

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि मिट्टी चट्टानों का वह चूरा है जिसमें वनस्पति का अंश यथेष्ट मिला होता है। इस पर पौधा उगता है और अपनी जड़ों को इसमें घुसेड़ कर अपने जीवित रहने के लिए आवश्यक तत्वों को प्राप्त करता है। मिट्टी ६ इंच से लेकर २ फीट तक मोटी होती है। मिट्टी में पौधे के लिए आवश्यक निम्नलिखित चार तत्व होते हैं। नत्रजन (Nitrogen) कैलसियम, फासफोरस और पौटैसियम। जिस भूमि में उन तत्वों की कमी हो जाती है उसकी उर्वरा शक्ति घट जाती है और उस पर खेती करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि खाद देकर उन तत्वों की कमी को पूरा कर दिया जावे।

भूमि का कटाव (Soil Erosion)

कुछ समय से मिट्टी के विशेषज्ञों का ध्यान भूमि के कटाव की ओर आकर्षित हुआ है। वास्तव में यह है भी बहुत भयंकर। भूमि के कटाव से प्रति वर्ष देशों की अनन्त सम्पत्ति बहाकर समुद्रों में डाली जा रही है। हर एक देश में लाखों एकड़ भूमि की उर्वरा मिट्टी पानी बहाकर समुद्र में डाल देता है। जहाँ वर्षा मनुष्य की बहुत बड़ी सहायक है वहाँ वह खतरनाक भी है। यदि वर्षा के जल का नियंत्रण न किया जाय तो वह क्रमशः भूमि को रेगिस्तान और खेती के अयोग्य बना देती है। आज जब कि भूमि के कटाव की समस्या प्रत्येक देश में भयंकर रूप से उठ खड़ी हुई है तो यह पूछा जाने लगा है कि हमारी भूमि क्या स्थायी उत्पत्ति का साधन है? भय होने लगा है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति कहीं इस प्रकार नष्ट न हो जाय।

विशेषज्ञों का कहना है कि ऊपरी मिट्टी की गहराई ६ इंच से १ फिट तक होती है। यही मिट्टी खेत की जान होती है। भूमि की उत्पादन शक्ति इसी ६ इंच से १ फीट गहरी मिट्टी पर निर्भर रहती है। भूमि विशेषज्ञों का मत है कि यह ऊपरी मिट्टी ४०० वर्षों में एक इंच गहरी तैयार होती है। यही

किसान की सबसे बड़ी पूँजी है और यही पूँजी प्रति वर्ष कटाव के कारण नष्ट होती जाती है।

पश्चिमीय देशों में इस बात को जानने का प्रयत्न किया गया है कि प्रति वर्ष भूमि के कटाव से कितनी उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो जाती है। संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रति वर्ष १५००० लाख टन मिट्टी समुद्र की ओर बहाकर ले जाई जाती है। श्री बुचानन का अनुमान है कि अमेरिका को इससे प्रतिवर्ष दो अरब डालर की हानि होती है। अधिक खोज के उपरान्त संयुक्तराज्य अमेरिका में यह ज्ञात हुआ कि अमेरिका की भूमि ७५० वर्षों में एक इंच के हिसाब से कम होती जारही है। चीन, मध्य अमेरिका और अफ्रीका का जो आर्थिक पतन हुआ है उसका कारण अत्यधिक भूमि का कटाव ही है। मध्य एशिया में भी बहुत सी उपजाऊ मिट्टी बह बह कर झील में आगई है।

भूमि का कटाव या विलयन दो प्रकार से होता है (१) जल के द्वारा (२) हवा के द्वारा। जल द्वारा होने वाला कटाव दो तरह का होता है सतह का कटाव (Sheet erosion) और गहरा कटाव (Gulley erosion)। सतह के कटाव में बहता हुआ जल धीरे धीरे ऊपरी मिट्टी बहाकर ले जाता है। गहरे कटाव से एक विस्तृत प्रदेश में नाले और खाइयाँ बन जाती हैं। प्रति वर्ष यह नाले और खाइयाँ बढ़ती ही जाती हैं और कुछ ही वर्षों में यह एक बहुत बड़े क्षेत्र को काट कर नष्ट कर देती हैं।

पानी द्वारा कटाव नीचे लिखी हुई दशाओं में अधिक होता है (१) यदि मिट्टी ऐसी हो जो पानी को अधिक न सोख सके तो कटाव की सम्भावना अधिक होती है। (२) जो मिट्टी ढाल पर होती है उसका कटाव शीघ्र होता है (३) यदि पानी थोड़ा थोड़ा न बरस कर मूसलाधार बरसता है तो कटाव अधिक होता है। (४) यदि भूमि पर घांस और पौधे अधिक होते हैं तो कटाव कम होता है। अन्यथा अधिक होता है। (५) पहाड़ों के ढालों पर जंगलों को काट कर साफ़ कर देने से भूमि का कटाव बहुत होता है। (६) यदि खेती करने का ढंग अवैज्ञानिक हो तो भी भूमि का कटाव अधिक होता है।

तेज़ हवाओं द्वारा रेत तथा धूल के तूफान आते हैं इनसे भी भूमि का नाश होता है। उपजाऊ भूमि रेत से पट जाती है और खेती के लिए बेकार हो जाती है।

भूमि को इस प्रकार नष्ट होने से बचाने के लिए प्रत्येक देश में उपाय किये जा रहे हैं उनमें से पहाड़ों पर जंगलों का लगाना, केवल खेती

(Terrace cultivation) करना, वैज्ञानिक खेती करना, नालों और खाइयों में बाँध बनाकर भावी कटाव को रोकना, या वृक्ष लगाकर उनको न बढ़ने देना, उस प्रदेश के प्रकृति बहाव (Drainage) का नियंत्रण करना इत्यादि मुख्य हैं।

जैसे जैसे प्रत्येक देश की जनसंख्या बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे मनुष्य को भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता अनुभव होती है। वैज्ञानिक खेती और अधिकाधिक खाद के उपयोग से भूमि की उत्पादन शक्ति को घटने नहीं दिया जाता। भूमि के कटाव को रोककर, रेह वाली भूमि को वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा खेती के योग्य बनाकर, दलदल भूमि को सुखाकर और पथरीली तथा पहाड़ी भूमि का उपयोग करके मनुष्य भूमि की कमी को पूरा कर रहा है। आज मनुष्य की आर्थिक उन्नति और सभ्यता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि वह भूमि के अपव्यय को रोके। भूमि और सभ्यता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि भूमि का अपव्यय नहीं रुकता तो सभ्यता का विनाश अवश्यम्भावी है।

पृथ्वी का धरातल यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि पृथ्वी का धरातल एक सा नहीं है। कहीं गगन चुम्बी पर्वत हैं तो कहीं ऊँचे पठार तो कहीं नीचे और समथल मैदान हैं। धरातल के बहुत रूप होते हैं किन्तु मोटे तौर पर हम उन्हें ऊपर लिखे तीन भागों में बांट सकते थे अर्थात् मैदान, पठार, और पहाड़।

मैदान (Plains) मैदान नीचे होते हैं पठार और पहाड़ ऊँचे होते हैं। पठार और पहाड़ २००० फीट से अधिक ऊँचे होते हैं और अधिकतर ३००० फीट से भी ऊँचे होते हैं किन्तु अधिकांश मैदान २००० फीट से नीचे होते हैं।

पृथ्वी में जो भी भूमि है उसकी ऊँचाई इस प्रकार है:—

१५०० फीट से नीचे ५५% प्रतिशत

१५०० फीट से ३००० फीट तक १८% प्रतिशत

३००० फीट से ऊपर २७ प्रतिशत

यह मनुष्य के लिए सौभाग्य की बात है कि पृथ्वी का इतना बड़ा भाग नीचे मैदान हैं क्योंकि मैदानों पर ही वनस्पति, पशु और मनुष्य अधिकतर फलता फूलता है और वहाँ की आर्थिक उन्नति होती है। मैदानों की मिट्टी अधिकतर उपजाऊ होती है और वहाँ पत्थर इत्यादि नहीं होते। यही नहीं अधिक ऊबड़ खाबड़ न होने के कारण वहाँ भूमि का कटाव कम होता है और मिट्टी उपजाऊ बनी रहती है। मैदानों में गमनागमन के साधन (सड़क

रेल, इत्यादि) के बनाने में कोई रुकावट नहीं होती और जो भी नदियाँ मैदानों में बहती हैं वे भी व्यापार के लिए सुविधाजनक जलमार्ग बन जाती हैं। यही कारण है कि मैदान ही पृथ्वी के सबसे घने आबाद प्रदेश हैं। उदाहरण के लिए उत्तर पश्चिम योरोप, दक्षिणी रूस, चीन, भारत, तथा संयुक्तराज्य अमेरिका के मैदान संसार के अत्यन्त घने आबाद प्रदेश हैं। किन्तु जिन मैदानों में अत्याधिक शीत होती है उन मैदानों में जनसंख्या घनी नहीं होती। उदाहरण के लिए सायबेरिया तथा उत्तरी कनाडा के मैदान। जल की कमी भी मैदानों को वीरान बनाने का कारण हो सकती है। उदाहरण के लिए सहारा और अरब के विशाल मैदान जनसंख्या रहित हैं। क्योंकि वे अत्यन्त शुष्क प्रदेश हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी के स्थल भाग का केवल ३० प्रतिशत ही इतना समथल, गरम और नम है कि जिस पर खेती हो सकती है। पृथ्वी पर मैदान ही कृषि और उद्योग-धंधों की उन्नति के स्थान हैं और इन्हीं मैदानों में संसार के सभी प्रसिद्ध नगर बसे हुए हैं और यह मैदान ही संसार की सभ्यताओं और संस्कृति के केन्द्र हैं।

पठार और पहाड़ (Plateaus and mountains)

पृथ्वी की लगभग एक तिहाई भूमि २००० फीट से ऊँची है और वह पहाड़ कही जा सकती है। पठारों को नदियाँ काट कर उनमें घाटियाँ बना देती हैं। और खेती तथा आबादी इन्हीं नदियों की तंग घाटियों में फलती-फूलती हैं। जहाँ घाटियाँ बहुत छोटी होती हैं और तले का मैदान बहुत कम होता है वहाँ किसान घाटी के दोनों ओर पहाड़ियों के ढालों पर खेती करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु पहाड़ी ढालों पर मिट्टी की बहुत पतली तह जमी रहती है और बहता हुआ पानी उसका कटाव करता है (Erosion of soil) इस कारण वहाँ की भूमि अधिक उपजाऊ नहीं होती और न अच्छी खेती ही हो सकती है।

जहाँ पहाड़ों के आर्थिक महत्व का प्रश्न है पहाड़ों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे जो अपनी चोटी तक जंगलों झाड़ियों तथा घास से ढके रहते हैं दूसरे वे हैं जो उस रेखा से भी ऊँचे हैं जहाँ तक बनस्पति उग सकती हैं। इन पहाड़ों पर ग्लेशियर (बर्फ़) जम जाता है और जब वह पिघलते हैं तो घाटियों की ओर नीचे उतरते हैं।

पहले प्रकार के पहाड़ों पर मनुष्य अपना निवास स्थान बना सकता है। यद्यपि वहाँ खेती तो कम ही होती है किन्तु पशु पालन तथा दूध का धंधा बहुत होता है। भेड़ चराना भी वहाँ एक प्रमुख धंधा है और ढालों पर थोड़ी बहुत खेती भी होती है।

पहाड़ी प्रदेश खनिज केन्द्र बन सकते हैं। क्योंकि अधिकांश पहाड़ी प्रदेशों में अग्नेय (Igneous) तथा परवर्तित (Metamorphic) चट्टानें मिलती हैं जिनमें सोने, तांबे चाँदी, जस्ता, सीसा तथा अन्य धातुयें मिलती हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका के राकी पहाड़ी (Rockey Mountains) प्रदेश में बहुत से क्षेत्रों में खान खोदना ही मुख्य धंधा है।

पहाड़ों के कारण गमनागमन में असुविधा होती है इस कारण व्यापार में भी रुकावट उत्पन्न होती है। शताब्दियों तक चीन पश्चिमीय राष्ट्रों से पृथक् रहा क्योंकि भीतरी एशिया के पहाड़ उसे घेरे हुए हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में अपलेशियन पर्वत माला (Appalachian Mountains) ने पश्चिम की ओर आबादी को बढ़ने से बहुत समय तक रोका। आज भी तिब्बत संसार से पृथक् बना हुआ है।

पहाड़ी प्रदेशों में जो भी मार्ग बनाये जाते हैं वे उन तंग दर्रों में से होकर जाते हैं जो बहुत कम होते हैं और जिनमें मार्ग बनाना कठिन होता है। यह दर्रे बहुधा जाड़ों में बर्फ से ढक जाते हैं। किन्तु आज मनुष्य ने अच्छी सड़कें बनाने में इतनी अधिक निपुणता प्राप्त कर ली है कि वह पहाड़ों में सुरंग बनाकर रास्ता निकाल लेता है। किन्तु पहाड़ों के अन्दर सुरंग बनाना सदैव ही व्यय साध्य और कठिन कार्य रहेगा अतएव पर्वत श्रेणियाँ सदैव व्यापार के लिए बाधक बनी रहेंगी।

किन्तु पहाड़ों से होने वाले उस आर्थिक लाभ को हमें न भूल जाना चाहिए कि जो हमें परोक्ष रूप में होता है। यह पहाड़ों की ही कृपा है कि उनके नीचे मैदानों में वर्षा होती है अथवा बरफ़ पिघल कर नदियों में आता है। बहुत से मैदान आज शुष्क रेगिस्तान होते यदि उनके ऊपर पहाड़ न खड़े होते।

पठारों की ऊँचाई में बहुत भिन्नता होती है। बहुत ऊँचे पठार जैसा कि तिब्बत है वहाँ आर्थिक उन्नति के लिए सुविधा कम होती है और वे कम घने आबाद होते हैं किन्तु कम ऊँचे और साधारण ऊँचे पठारों पर आर्थिक उन्नति तेज़ी से होती है।

अभ्यास के प्रश्न

१—पृथ्वी की बनावट के भिन्न रूपों—मैदानों, पहाड़ों तथा पठारों के आर्थिक महत्व को बतलाइए ?

२—चट्टानें कितने प्रकार की होती हैं ? चट्टानों के आर्थिक महत्व को बतलाइए।

३—मिट्टी कितनी तरह की होती है और किस प्रकार बनती है?

४—चट्टानों को तोड़ने उनका चूरा बनाने, और मिट्टी को तैयार करने मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में कौन सी प्राकृतिक शक्तियों का हाथ होता है, विस्तार पूर्वक लिखिये।

५—मैदान घने आबादी वाले आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्यों होते हैं?

६—पहाड़ों से मनुष्य को क्या लाभ हानि है विस्तार पूर्वक लिखिये।

७—पौधे के लिए मिट्टी में किन तत्वों की आवश्यकता होती है? खेती के लिए किस प्रकार की मिट्टी अधिक उपयोगी होती है और क्यों?



तीसरा परिच्छेद

जलवायु तथा प्राकृतिक वनस्पति

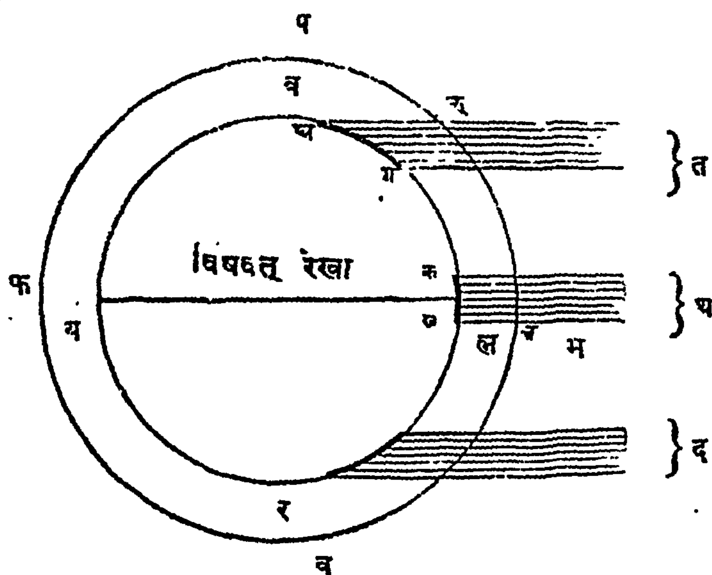
जलवायु

जलवायु किसी प्रदेश के वर्ष भर के मौसम को कहते हैं। मनुष्य समाज के आर्थिक विकास, जनसंख्या, तथा अन्य हलचलों पर जलवायु का गहरा प्रभाव पड़ता है। जलवायु के अन्तर्गत गरमी (Temperature) दबाव (Pressure) वायु का बहाव, धूप, बादलों का होना, वर्षा इत्यादि सभी बातें आ जाती हैं।

तापक्रम (Temperature)

भूमि पर गरमी अधिक होगी या कम, यह तीन बातों पर निर्भर है (१) अक्षांश (Latitudes), (२) भूमि की ऊँचाई और (३) समुद्र से दूरी। सूर्य की किरणें पृथ्वी पर लहरों की भाँति आती हैं और जब वे पृथ्वी के पास पहुँचती हैं तो पृथ्वी के समीप की वायु किरणों को अपने मार्ग से हटा देती है, किन्तु फिर भी अधिकांश किरणें उस वायु को भेद कर पृथ्वी पर गिरती हैं। वायु सूर्य की बहुत कम गरमी को ले पाती है। जिस कोण (Angle) से सूर्य की किरणें पृथ्वी के किसी हिस्से पर गिरती हैं उस पर गरमी का कम ज़्यादा होना निर्भर रहता है। जिस भूमि पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं उस पर अधिक किरणों के पड़ने के कारण गरमी अधिक पड़ती है और जिस प्रदेश पर किरणें तिरछी होती हैं वहाँ किरणों के कम होने के कारण गरमी कम पड़ती है। जब किरणें सीधी पड़ती हैं तो वायु में उनकी गरमी कम नष्ट होती है और जब किरणें तिरछी पड़ती हैं तो उनकी अपेक्षाकृत अधिक गरमी वायु में नष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए "क ख ग घ" घेरे को हम पृथ्वी मान लेते हैं और "य र ल व" घेरे को वायु की निचली घनी तह, तथा "प फ ब भ" को वायु की ऊपरी हल्की तह मानते हैं। अब "त"

"घ" "द" किरणों के समूह जो आकार में बराबर हैं पृथ्वी पर गिरते हैं। "घ" किरण समूह ठीक विषुवत् रेखा (Equator) पर गिरता है, "द." कुछ तिरछा होकर शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) पर गिरता है और "त" बहुत तिरछा होकर उत्तरी ध्रुव (North pole) पर गिरता है। नीचे दिये हुए चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि



यदि किरणें तिरछी होंगी तो वे अधिक क्षेत्रफल पर फैलेंगी अस्तु उनके द्वारा पृथ्वी पर गरमी कम उत्पन्न होगी किन्तु उतनी ही किरणें जब विषुवत् रेखा पर पड़ती हैं तो वे कम क्षेत्रफल पर फैलती हैं अतएव उनके द्वारा अधिक गरमी उत्पन्न होती है। ऊपर दिये हुए चित्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि "त" किरण समूह वायु की निचली घनी तह में से होकर अधिक दूर तक गुज़रता है इस कारण वायु में उसकी गरमी अधिक नष्ट होती है। इसके विपरीत "घ" किरण समूह की गरमी कम नष्ट होती है। गरमी दिन की लम्बाई पर भी निर्भर है। उष्ण कटिबन्ध (Tropics) में दिन अधिक घटता बढ़ता नहीं है। ब्रिटिश द्वीप में जाड़ों के मौसम में दिन केवल ६ घंटे का और गरमी के मौसम में १८ घंटे तक का होता है। उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव में ६ महीने का दिन और ६ महीने की रात्रि होती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विषुवत् रेखा से उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव की ओर गरमी कम होती जाती है।

पृथ्वी के द्वारा वायु का गरम होना (Radiation)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सूर्य की किरणों से वायु कुछ गरमी प्राप्त कर लेती है। किन्तु वायु को अधिकांश गरमी पृथ्वी से मिलती है। जो गरमी की किरणें पृथ्वी से निकलती हैं वे दिखलाई नहीं देतीं। अस्तु जितनी ही किसी प्रदेश की ऊँचाई अधिक होगी उतनी ही वायु को पृथ्वी से गरमी कम मात्रा में प्राप्त होगी और जितनी ही भूमि नीची होगी उतनी अधिक गरमी वायु को पृथ्वी से मिलेगी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि हर ३०० फीट की ऊँचाई पर एक डिगरी गरमी कम होती जाती है।

समुद्र का प्रभाव

अन्य वस्तुओं की अपेक्षा किसी डिगरी विशेष तक गरम होने में पानी को अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। साथ ही किसी विशेष तापक्रम तक ठंडा होने में पानी अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक गरमी निकालता है। यदि पानी तथा भूमि का बराबर क्षेत्रफल समान गरमी से गरम किया जाय तो यदि भूमि का तापक्रम (Temperature) १.७° बढ़ेगा तो पानी का केवल १° डिगरी ही बढ़ेगा। पानी धीरे-धीरे गरम होता है परन्तु एक बार गरम हो जाने पर ठंडा भी देर से होता है। गरमी में समान अक्षांश रेखाओं (Latitudes) के पानी की अपेक्षा भूमि अधिक गरम होती है। और जाड़े में इसके विपरीत भूमि की अपेक्षा समुद्र अधिक गरम होता है। अतएव समुद्र के किनारे के स्थान गरमियों में उन स्थानों की अपेक्षा जो समुद्र से अधिक दूरी पर हैं ठंडे रहते हैं और जाड़े में गरम रहते हैं। समुद्र के किनारे पर स्थित स्थानों के जाड़े तथा गरमी के तापक्रमों (Temperatures) में अधिक अन्तर नहीं होता। पृथ्वी पर कहाँ कितना तापक्रम है यह समताप रेखाओं (Isotherms) से ज्ञात हो सकता है। किन्तु मान चित्र में ये रेखायें यह मान कर खींची जाती हैं कि सब स्थानों की ऊँचाई समुद्र के बराबर है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। अतएव किसी स्थान का वास्तविक तापक्रम जानने के लिए वहाँ की ऊँचाई को भी जान लेना आवश्यक होगा। मान लो कि किसी स्थान की समताप रेखा (Isotherm) ६७° फै० है और वहाँ की ऊँचाई समुद्रतल (Sea level) से २१०० फीट है तो उसका ठीक तापक्रम ६७° फै० $-\frac{२१००^{\circ}}{३००}$ फै० $=$ ६०° फै० होगा।

दबाव (Pressure)

जिस प्रकार कोई तरल पदार्थ अधिक दबाव (Pressure) के स्थान से कम दबाव के स्थान की ओर बहता है उसी प्रकार वायु भी अधिक दबाव (High Pressure) के प्रदेश से कम दबाव (Lower Pressure) के प्रदेश की ओर बहती है। पृथ्वी पर स्थायी रूप से कुछ स्थानों पर अधिक दबाव रहता है। अतएव दबाव (Pressure) की उस स्थायी भिन्नता के कारण स्थायी वायु (Permanent winds) चलती हैं। इनके अतिरिक्त समय-समय पर जो दबाव में भिन्नता उत्पन्न होती है उसके कारण मौसमी हवा (Periodic winds) चलती हैं, और यदि दबाव में किसी स्थानीय विशेषता के कारण भिन्नता आ जाती है तो उसके द्वारा स्थानीय हवायें (Variable winds) चलती हैं। दबाव में भिन्नता तापक्रम (Temperature) के परिवर्तन के तथा वायु में भाप के अधिक होने पर निर्भर रहती है। यदि तापक्रम ऊँचा हो जाये तो वायु का घनत्व (Density) कम हो जायेगा और तदनुसार दबाव (Pressure) भी कम हो जावेगा। पानी की भाप हवा से हल्की होती है (९ और १४·५ के अनुपात में) अतएव यदि हवा में पानी की भाप अधिक होगी तो दबाव कम हो जावेगा। पृथ्वी पर कहाँ कितना दबाव है यह जानने के लिए ऐसी रेखायें खींची जाती हैं जो एक से दबाव के स्थानों से होकर जाती हैं। इन्हें दबाव सूचक रेखायें (Isobars) कहते हैं।

पृथ्वी पर वायु का दबाव विषुवत् रेखा के उत्तर में सबसे कम है। ६१° उत्तर अक्षांश और ६०° दक्षिण अक्षांश रेखाओं पर भी दबाव बहुत कम रहता है। इसके विपरीत मकर रेखा (Tropic of Cancer) और कर्क रेखा (Capricorn) के समीप ३०° उत्तर अक्षांश और ३०° दक्षिण अक्षांश रेखाओं पर दबाव सबसे अधिक है। दबाव का अधिक या कम होना केवल तापक्रम और भाप पर ही निर्भर नहीं है। पृथ्वी के घूमने के कारण दबाव (Pressure) विषुवत् रेखा के उत्तर तथा दक्षिण में बहुत अधिक हो जाता है। बात यह है कि जब पृथ्वी घूमती है तो उसके साथ वायु भी उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी ध्रुव (North pole) के समीप घूमती है और उत्तरी ध्रुव से चक्कर काटती हुई विषुवत् रेखा की ओर इकट्ठी होने के लिए आती है। इसी प्रकार दक्षिण ध्रुव से भी विषुवत् रेखा की ओर हवा चक्कर काटती हुई लौटती है। विषुवत् रेखा के कम दबाव वाले प्रदेश के ऊपर की हवा उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव की ओर बहती है।

वायु की इन विरोधी प्रवृत्तियों के कारण ३०° उत्तर तथा ३०° या ३५° दक्षिणी अक्षांश रेखाओं के पास वायु बहुत अधिक इकट्ठी हो जाती है और अधिक दबाव (High pressure) के दो प्रदेश बन जाते हैं। जब उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों से हवा चक्कर काट कर विषुवत् रेखा (Equator) की ओर लौटती है तो ५०° तथा ६५° अक्षांश रेखाओं (Latitudes) के बीच में बहुत कम हवा छोड़ती हैं, इस कारण वहाँ कम दबाव (Low pressure) का प्रदेश बन जाता है। अतएव उत्तरी गोलार्द्ध (North Hemisphere) में इस अधिक दबाव वाले प्रदेश से स्थायी वायु (Permanent winds) विषुवत् रेखा (Equator) तथा उत्तरी ध्रुव (North pole) की ओर बहती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में इस प्रदेश से स्थायी हवायें विषुवत् रेखा तथा दक्षिणी ध्रुव की ओर बहती हैं। इन स्थायी हवाओं (Permanent winds) का रुख पृथ्वी के घूमने के कारण बदल जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर से जो हवा विषुवत् रेखा की ओर चलती है वह दहिनी ओर को विचलित हो जाती है और दक्षिणी गोलार्द्ध में जो हवा विषुवत् रेखा की ओर चलती है वह बाँये हाथ की ओर विचलित हो जाती है। अतएव उत्तर में यह हवा उत्तर पूर्वी हवा के रूप में बहती है और दक्षिण में यह दक्षिण-पूर्वी हवा बन जाती है। अतएव इन स्थायी (Permanent) हवाओं को उत्तर पूर्वी (North-East) तथा दक्षिण पूर्वी (South-East) ट्रेड हवायें कहते हैं। जो हवायें अधिक दबाव के प्रदेश से उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव की ओर बहती हैं वे क्रमशः दक्षिणी पश्चिमी (South-westerly) तथा उत्तरी पश्चिमी (North-westerly) हवायें कहलती हैं। विषुवत् रेखा (Equator) के प्रदेश में गरमी बहुत अधिक होने के कारण वहाँ की हवा फैलकर हल्की हो जाती है और ऊपर उठती है। उसका स्थान उत्तर तथा दक्षिण से आने वाली हवायें ले लेती हैं। अतएव इस क्षेत्र में हवायें सीधी ऊपर की ओर चलती हैं और यहाँ अपेक्षाकृत हवाओं का अधिक परिवर्तन नहीं होता। यह क्षेत्र शान्त रहता है। यहाँ वर्षा बहुत होती है।

सामयिक वायु (Periodical winds)

दिन में स्थल (Land) समुद्र की अपेक्षा जल्दी गर्म हो जाता है इसका परिणाम यह होता है कि स्थल की वायु भी अधिक गरम हो जाती है। गर्म होने से वायु फैल जाती है और हल्की हो जाती है। इस कारण समुद्र पर से आई हुई ठंडी तथा भारी वायु स्थल की वायु

स्थलीय तथा समुद्रीय पवन Land and Sea breezes)

को ऊपर उठा देती है। समुद्र से वायु चलने का यही कारण है। रात्रि के समय स्थल (Land) समुद्र की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से ठंडा हो जाता है और स्थल की वायु समुद्रीय वायु की अपेक्षा अधिक ठंडी हो जाती है। इसका फल यह होता है कि स्थल से ठंडी और भारी वायु समुद्र की ओर चलती है। इसको स्थल की वायु कहते हैं।

वर्षा कालीन वायु (Monsoon)

उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मियों की ऋतु में सबसे अधिक गर्मी का प्रदेश विषुवत् रेखा के उत्तर की ओर पहुँच जाता है। विशेष कर मध्य एशिया का विशाल पठार बहुत गर्म हो जाता है और वहाँ का दबाव (Pressure) बहुत कम हो जाता है। अतएव प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) तथा हिन्द महासागर (Indian Ocean) से ठंडी और भारी हवा उसकी ओर बहती है। उत्तर पूर्वी ट्रेड हवा जो इस समय साधारणतः हिन्द महासागर पर बहती है बिलकुल दब जाती है, और दक्षिण पूर्वीय ट्रेड हवा विषुवत् रेखा को पार करके दक्षिण-पश्चिमी मानसून के रूप में चलती है। चीन में समुद्र दक्षिण-पूर्व की ओर है। इस कारण चीन पर यह हवा दक्षिण-पूर्वी मानसून के रूप में बहती है। भारतवर्ष, चीन, जापान, पश्चिमोत्तरीय आस्ट्रेलिया आदि मुख्य वर्षा कालीन वायु (Monsoon) के देश हैं।

स्थानीय वायु (Local अथवा Variable Winds)

ऊँचे-ऊँचे पर्वत और मरुस्थलादि के कारण विशेष वायु उत्पन्न हो जाती हैं। इनमें कुछ बहुत ही गर्म होती हैं। जो मरुभूमियों से चलती हैं वे बहुत गरम और जो पहाड़ों से चलती हैं वे ठंडी होती हैं।

वर्षा (Rainfall)

वर्षा के लिए दो बातों की आवश्यकता है। पहले तो वायु में भाप होनी चाहिए। दूसरे कोई ऐसा साधन होना चाहिए कि जिसके द्वारा वायु ठंडी हो जाय और द्रवीभूत होकर पानी की वर्षा कर दे। वायु में वाष्प थोड़ी बहुत रहती ही है, किन्तु एक निश्चित मात्रा से अधिक नहीं रह सकती। जितनी ही गरमी अधिक होगी उतनी ही अधिक

भाप हवा में रह सकेगी। जब हवा में उसकी वाष्प धारण शक्ति के अनुसार पूरी भाप होती है तो उसे वाष्प से भरी हुई (Saturated) कहते हैं। जल के भाप बनने की क्रिया को वाष्पी भवन क्रिया (Evaporation) कहते हैं और वाष्प के जल में परिवर्तित होने की क्रिया को द्रवीभवन क्रिया (Condensation) कहते हैं। धरातल से गर्म और आर्द्र (Humid) वायु उत्पन्न होकर फैलती है और जब वह किसी कारण से ठंडी होने लगती है उस समय वायु की भाप जल के छोटे-छोटे जल-कणों में द्रवीभूत होने लगती है। यही हमें बादलों के रूप में दिखलाई देती है। छोटे-छोटे जल-कण बड़े पानी के बूँद बन कर बरसते हैं। यह बिन्दु कभी-कभी धरातल पर पहुँचने के पहिले ही बीच में गर्म हवा होने के कारण फिर भाप बन जाते हैं, तो केवल बादल दिखलाई पड़ते हैं किन्तु वर्षा नहीं होती। जब वायु का ऊपरी भाग बहुत ठंडा होता है तब भाप जल के स्थान पर छोटे-छोटे बर्फ के टुकड़ों का रूप धारण कर लेती है और ओलों की वर्षा होती है। अत्यन्त ठंडे देशों में जलवाष्प रुई के गाले के समान कोमल बर्फ़ (Snow) बन जाती है।

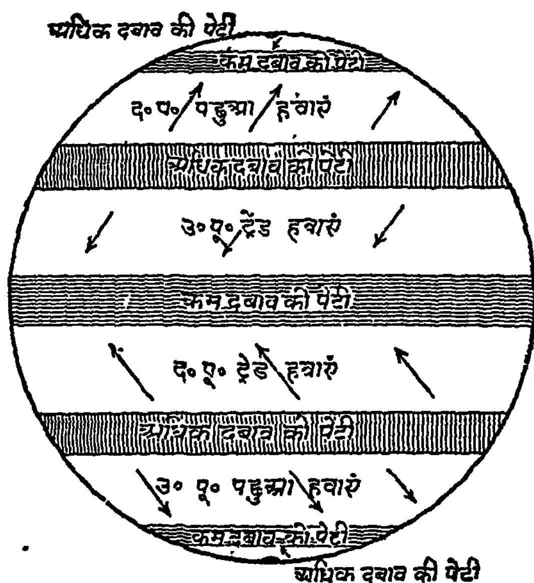
यह तो ऊपर ही कहा जा चुका है कि वायु को भाप समुद्र पर होने वाली वाष्पी भवन क्रिया (Evaporation) के द्वारा मिलती है। और वायु से जल वृष्टि द्रवीभवन क्रिया (Condensation) के द्वारा होती है। जब वायु किसी प्रकार ठंडी होने लगती है तभी जल-वर्षा होती है। वायु दो प्रकार से ठंडी होती है। एक तो वायु उठ कर ऊपरी ठंडे भागों में जाने से ठंडी हो जाती है और वर्षा करती है। विषुवत् रेखा पर गर्मी अधिक होती है इस कारण भाप खूब बनती है साथ ही दबाव (Pressure) बहुत कम होता है अतएव हवा हल्की होकर ऊपर उठ जाती है। ऊपर यह वाष्पमिश्रित वायु ठंडी हो जाती है और खूब वर्षा होती है। यही कारण है कि विषुवत रेखा के प्रदेश में अत्यधिक वर्षा होती है। वायु के शीतल होने का दूसरा कारण यह है कि जब वायु गरम प्रदेश से ठंडे प्रदेश की ओर बहती है अथवा पर्वतों से टकराती है तो ठंड के कारण द्रवीभवन क्रिया (Condensation) प्रारम्भ हो जाती है और वर्षा होने लगती है।

उष्ण कटिबन्ध (Tropics) में जहाँ वर्षा ८० इंच से अधिक होती है उसे अति वृष्टि, ४० से ८० इंच तक मध्यम वृष्टि, तथा १५ से ४० इंच तक अल्प वृष्टि और १५ इंच से नीचे अत्यल्प वृष्टि समझी जाती है। शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) में भाप कम बनती है इस

कारण वर्षा भी कम होती है। अतः वहाँ ४० इंच से अधिक वर्षा उत्तम, १५ से ४० इंच तक मध्यम, तथा ५ से १५ इंच तक अल्प और ५ इंच से कम अत्यल्प समझी जाती है।

सूखा

जिन प्रदेशों में वर्षा नहीं होती अथवा बहुत कम होती है उन्हें सूखे प्रदेश कहते हैं। वायु जब ठंडे प्रदेश से गर्म प्रदेश की ओर जाती है तो वह शुष्क हो जाती है। ऐसी वायु पानी देने के बजाय पानी को सोख लेती है। जब वायु ऊँचे से नीचे की ओर आती है तो भी वह शुष्क हो जाती है। उदाहरण



के लिए जब कोई हवा भाप से भरी हुई किसी पहाड़ को पार करती है तो पर्वत का वह भाग जो वायु के सामने पड़ता है उस पर खूब वर्षा होती है और पर्वत का पिछला ढाल सूखा रह जाता है। मध्य एशिया का बहुत बड़ा भाग हिमालय पर्वत की वृष्टिछाया (Rain shadow) में स्थित है, इस कारण हिमालय के पवनाभिमुख (Windward side) भाग पर खूब वर्षा होती है और मध्य एशिया का बहुत बड़ा भाग जो पवन विमुख (Leeward side) पर स्थित है वहाँ बहुत कम वर्षा होती है। साधारणतः यदि वर्षा १० इंच से कम हो तो वह प्रदेश शुष्क (Arid) माना जाता है और यदि वर्षा १० इंच से २० इंच तक हो तो अर्धशुष्क (Semi-Arid) माना जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तापक्रम (Temperature) तथा वर्षा निम्नलिखित बातों पर निर्भर है :—

तापक्रम (Temperature)

(१) पृथ्वी के गोले पर स्थित,
(२) समुद्र के धरातल से ऊँचाई
(३) वायु समुद्र की ओर से अथवा भूमि की ओर से आ रही है।
(४) चक्रवात (Cyclone) का प्रभाव

वर्षा

(१) समुद्र से दूरी।
(२) जल देने वाली हवाओं के रास्ते में पहाड़ों का होना।
(३) चक्रवात (Cyclone) का प्रभाव

पृथ्वी की जलवायु

पृथ्वी पर बहुत प्रकार की जलवायु पाई जाती है। जलवायु तथा वनस्पति में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव व्यापारिक भूगोल के विद्यार्थी को पृथ्वी की जलवायु के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए।

जलवायु तथा प्राकृतिक प्रदेश (Climate and Natural Regions)

पृथ्वी पर एक ही प्रकार की जलवायु सब जगह नहीं पाई जाती। कोई-कोई देश अत्यन्त गरम तो कोई अत्यन्त ठंडे हैं। खेती, उद्योग धंधे इत्यादि जितने भी कार्य हैं वे जलवायु के ऊपर निर्भर होते हैं। इसी कारण भिन्न-भिन्न देशों में हमें भिन्नता दिखलाई पड़ती है। परन्तु तुलना करने पर हम देखते हैं कि एक प्रदेश की जलवायु, पशु, वनस्पति तथा धंधे ठीक वैसे ही हैं जैसे एक दूसरे प्रदेश के जो पृथ्वी के दूसरे भाग में बहुत दूर पर स्थित है। इस कारण जलवायु तथा उत्पत्ति के आधार पर हम पृथ्वी को प्राकृतिक प्रदेशों (Natural Regions) में बाँट सकते हैं।

प्राकृतिक प्रदेश पृथ्वी का वह भूभाग है जिसकी परिस्थितियाँ जो मनुष्य जीवन को प्रभावित करती हैं एक समान हैं। प्रत्येक प्राकृतिक प्रदेश के अन्दर जल वायु, वनस्पति, तथा साधारण रहन-सहन की स्थिति एक समान है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि सभी भूभाग जो एक प्राकृतिक

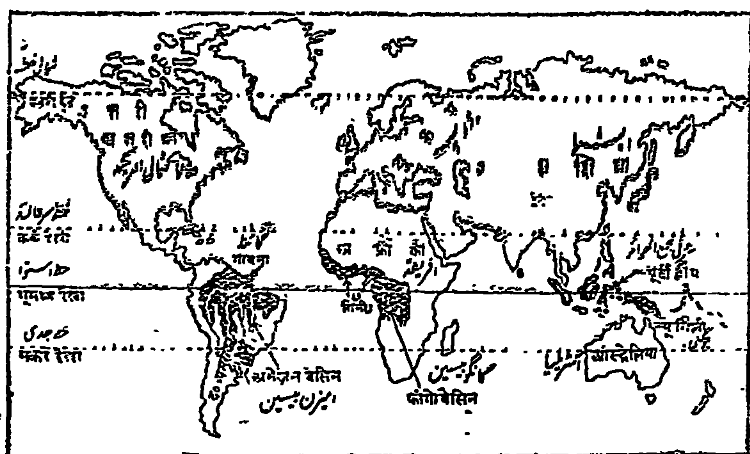
प्रदेश में होते हैं उनका जलवायु वनस्पति इत्यादि बिलकुल एक समान तो नहीं होता किन्तु लगभग एक समान होता है। भेद कम होता है।

प्राकृतिक प्रदेशों का अध्ययन आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी के लिए तथा व्यवसायियों के लिए विशेष महत्व का है क्योंकि जो भूभाग एक ही प्राकृतिक प्रदेश में हैं उनकी आर्थिक उन्नति एक समान हो सकती है। ब्राज़ील और बैलजियन कांगो तथा पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) का जलवायु एक सा है। आज से ३० वर्ष पूर्व संसार में जो भी रबर उत्पन्न होती थी वह ब्राज़ील तथा कांगो से आती थी। लोगों ने देखा कि पूर्वीय द्वीप समूह का जलवायु ब्राज़ील की ही भाँति है तो वहाँ भी रबर उत्पन्न हो सकती है। अतएव रबर के बाग मलाया तथा पूर्वीय द्वीप समूह में भी लगाये गए और वे इतने सफल हुए कि अब वे संसार की ६० प्रतिशत रबर उत्पन्न करते हैं।

भूमध्य रेखा की जलवायु (Equatorial Climate)

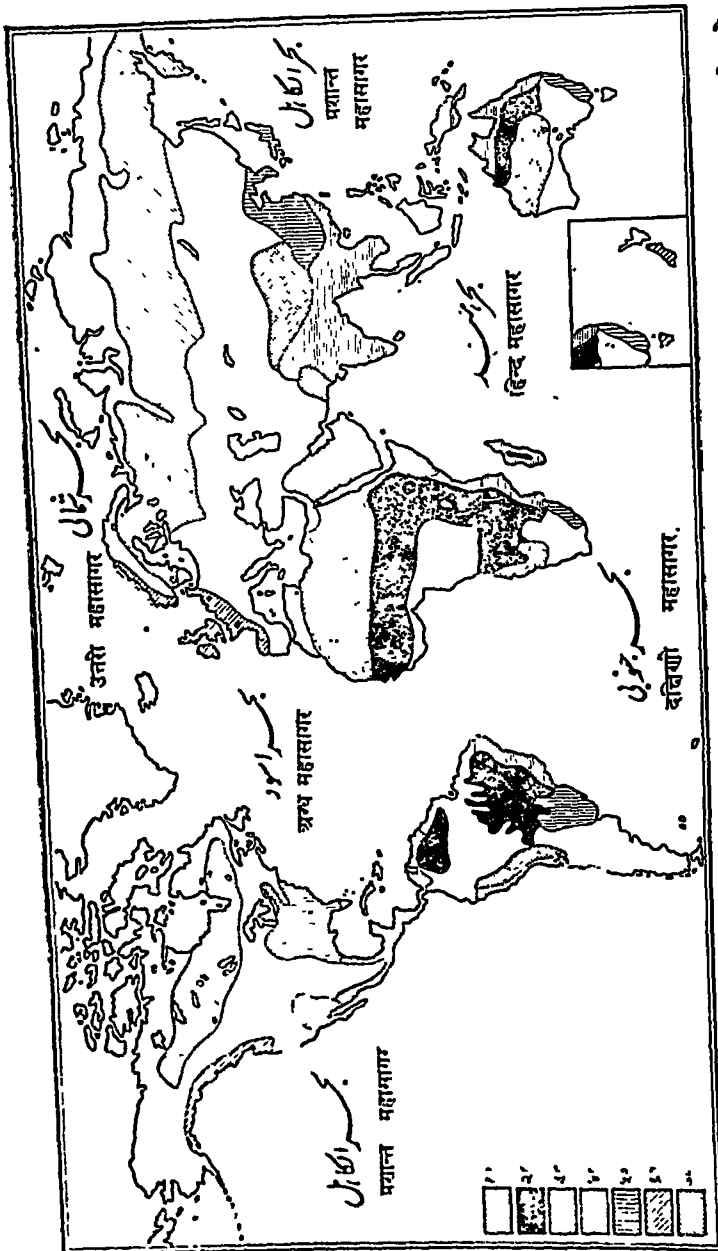
यह जलवायु विषुवत् रेखा के १०° उत्तर तथा १०° दक्षिण में पाई जाती है। यहाँ वर्ष भर वर्षा होती रहती है। यद्यपि वर्ष भर लगातार वर्षा होती है फिर भी कुछ महीनों में वर्षा अधिक होती है। वर्षा खूब होती है और भयंकर गर्जन और बिजली की चमक के साथ पानी बरसता है। अधिकतर आकाश मेघाच्छन्न रहता है।

भूमध्य रेखा की जलवायु के प्रदेश



यहाँ तापक्रम वर्षा भर ऊँचा रहता है। वर्ष भर सूर्य सिर पर ही रहता है। परन्तु बादल गर्मी को कुछ कम कर देते हैं। नहीं तो यहाँ प्रचंड गर्मी

पड़े। तापक्रम यहाँ ७०° फै० से ९०° फै० के बीच में रहता है। इस प्रदेश में स्थायी हवायें (Winds) नहीं चलतीं। यहाँ की वायु सदा नम और



१—शीतोष्ण वन (कोणधारी वन) २—उष्ण कटिबन्ध के घास के मैदान ३—मरुभूमि प्रदेश ४—मानसूनी प्रदेश
५—चीन की तरह की जलवायु ६—उत्तरी-पश्चिमीय योरप की तरह की जलवायु ७—तिब्बत की भाँति ऊँचे प्रदेश

गर्म रहती है। अतः यहाँ की जलवायु अच्छी नहीं है। यहाँ अत्यधिक गर्मी के कारण भाप बहुत बनती है। यह भाप वायु के ऊपरी भाग में जाकर ठंडी हो जाती है और पानी बन कर गिर पड़ती है। इस प्रकार की जलवायु

अमेज़न, कांगो, भूमध्य रेखा के समीपवर्ती द्वीपों, पूर्वी तथा पश्चिमी द्वीप समूहों (East and West Indies) बर्मा, के दक्षिणी भाग तथा अंडमन और लंका के कुछ भाग में पाई जाती है।

भूमध्य रेखा के जलवायु के प्रदेश में आज भी कोई आर्थिक उन्नति नहीं हुई। इस जलवायु में मनुष्य काहिल और पुरुषार्थ हीन हो जाता है उसकी आवश्यकताएँ कम होती हैं। भोजन बिना अधिक परिश्रम के पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है तथा मनुष्य को कपड़ा तथा शरीर रक्षा की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रदेश में केला, कठोर लकड़ी, मसाला, रबर, कोकोआ, हाथी दाँत तथा रंग वाली लकड़ी (Dye woods) बहुतायत पाई जाती है। यहाँ के जंगलों में पाई जाने वाली वस्तुओं में नीचे लिखी मुख्य हैं:—मसाला, गटापार्चा, ताड़, नारियल, कहवा, कोकाआ, सागो, (Sago) केला, लाख, मैरीबोलन (Myrobalans) बहेड़ा इत्यादि, भिन्न प्रकार के गोंद इत्यादि। इस प्रदेश में चिड़ियाँ, कीड़े, साँप, बन्दर बहुत मिलते हैं हाथी, चीता, शेर भी बहुत पाये जाते हैं परन्तु फर वाले जानवर बिलकुल नहीं मिलते।

इस प्राकृतिक प्रदेश में कुछ बहुमूल्य खनिज पदार्थ भी मिलते हैं जैसे टिन मलाया और पूर्वीय द्वीप समूह में, ग्रैफाइट मैडेगास्कर तथा लंका में तथा बाक्साइट और मैंगनीज़ गोल्ड कोस्ट में।

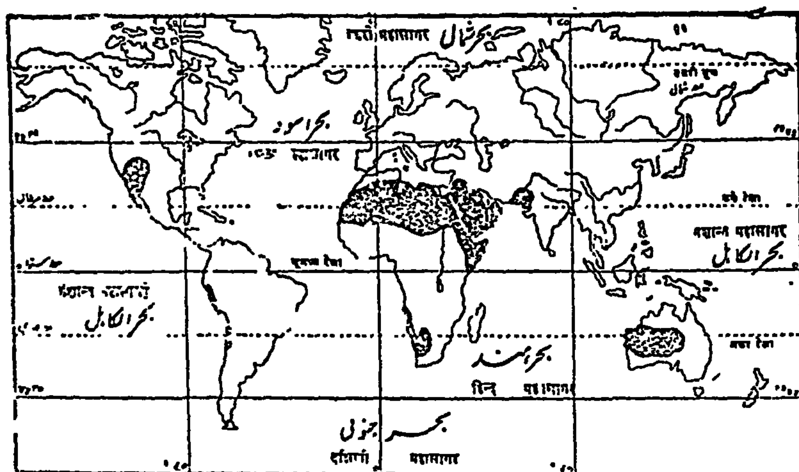
इन प्रदेशों की आर्थिक उन्नति करना कठिन है क्योंकि यहाँ का जलवायु बहुत गरम और नम है। बीमारियाँ यहाँ बहुत अधिक होती हैं। भूमि अधिक उपजाऊ नहीं है, जंगल बहुत घने हैं। पशुओं का यहाँ बहुत कम उपयोग हो सकता है। कांगो बेसिन में वहाँ के मूल निवासी आलसी, छोटे और कम बुद्धि वाले होते हैं इस कारण वे आर्थिक उन्नति कर ही नहीं सकते। वे लगभग नग्न रहते हैं और भूत-प्रेतों में विश्वास करते हैं और आज भी मनुष्य का शिकार करते हैं। वहाँ का जलवायु इतना गरम है कि घने आबाद पश्चिमीय राष्ट्रों से लोग वहाँ आकर नहीं बस सकते। वहाँ की नमी के कारण तथा सघन वनों के कारण अच्छी सड़कें तथा रेल बनाना कठिन है। नदियों द्वारा ही आना जाना होता है। फिर भी पूर्वीय द्वीप समूह में व्यापार तथा धन्धों की उन्नति हुई है क्योंकि उनकी स्थिति अच्छी है और वे रबर तथा गन्ना बहुत उत्पन्न करते हैं।

यह जलवायु विषुवत रेखा के कटिबन्ध के दोनों ओर २५° तक पाई

उष्ण कटिबन्धीय जलवायु (Tropical Climate)

जाती है। (१०° से ३५° तक) अफ्रीका में यह जलवायु स्पष्ट रूप से मिलती है। यहाँ वर्षा सूर्य का अनुसरण करती है। इसलिए सूर्य के लम्ब रूप (High Sun) में प्रकाशित होने पर यहाँ घोर वृष्टि हो जाती है। किन्तु वर्षा के दिन थोड़े ही होते हैं। वर्ष के अधिकांश दिन सूखे रहते हैं। इस प्रकार की जलवायु सुडान (Sudan) में पाई जाती है। यहाँ जाड़े में ७८° फै० तथा गर्मियों में ८३° फै० तापक्रम रहता है। यहाँ सूखे महीने में आँधी खूब चलती हैं।

मरुभूमि का चित्र



मरुभूमि की जलवायु (Climate of the deserts)

मकर रेखा (Cancer) और कर्क रेखा (Capricorn) पर कुछ ऐसे प्रदेश मिलते हैं जो बहुत गर्म और सूखे हैं। यहाँ वर्षा नहीं होती। यह प्रदेश इतने सूखे हैं कि पौधा उग ही नहीं सकता। यह मरुभूमि अधिक दबाव (High Pressure) के प्रदेश में स्थित हैं। यहीं से ट्रेड हवायें विषुवत् रेखा की ओर और विरुद्ध ट्रेड हवायें (Anti Trade Winds) ध्रुवों की ओर चलती हैं। यहाँ ऐसी वायु नहीं चलती जिससे वर्षा हो। इन प्रदेशों में से अधिकांश में वर्षा नहीं होती। दिन में प्रचंड गर्मी होती है किन्तु रात्रि को भूमि की गर्मी समाप्त हो जाती है और तेज़ सर्दी पड़ती है। यहाँ रात्रि और दिन तथा गर्मी और सर्दी के तापक्रमों में बहुत अधिक अन्तर रहता है। दिन में तापक्रम १००° फै० से ऊँचा जाता है और रात्रि में (Freezing point) हिमांक तक आ जाता है। बादल न होने के

कारण आकाश साफ रहता है। यही कारण है कि यहाँ प्रचंड गर्मी होती है। सायंकाल को यहाँ तेज़ अंधड़ चलते हैं जो बहुत गर्म और रेत से भरे होते हैं। इन मरुभूमियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है (१) नीची भूमि के ऊष्ण रेगिस्तान जिसमें सहारा, भारत की मरुभूमि, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका में कालाहारी, और दक्षिण अमेरिका में आटाकामा के रेगिस्तानों की गणना होती है। (२) शीतोष्ण रेगिस्तान पठारों पर पाये जाते हैं। जिसमें ईरान, गोबी, तथा उत्तरी अमेरिका में कालोरैडो के रेगिस्तान सम्मिलित हैं। इन मरुस्थलों में जाड़ों में बहुत ठंड रहती है। रेगिस्तानी प्रदेश आर्थिक दृष्टि से महत्व हीन हैं यही नहीं वे पड़ोस के देशों की आर्थिक उन्नति को भी रोकते हैं क्योंकि उनको पार करना कठिन होता है। किन्तु इन प्रदेशों का जलवायु स्वास्थ्य के लिए बुरा नहीं होता। परन्तु रेत के तूफान यहाँ आने-जाने में कठिनाई उपस्थित करते हैं।

यहाँ के मुख्य वृक्ष खजूर और अंजीर हैं जिनसे मनुष्य को भोजन मिलता है। जिन स्थानों में सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ गेहूँ ज्वार बाजरा, भूमध्य सागर के फल, कपास, गन्ना भी उत्पन्न होता है। अधिकांश मनुष्यों का धंधा यहाँ पशुपालन तथा खजूर, नमक, और चमड़े के सामान का व्यापार है। गरम रेगिस्तानों में मनुष्यों का जीवन बहुत कठिन है। जहाँ कहीं जलस्रोत (Oasis) मिलता है। वहाँ कुछ जनसंख्या निवास करती है। ऊँट, भेंड़ और बकरे बहुत पाले जाते हैं। यहाँ के मनुष्य निडर और साहसी होते हैं किन्तु अतिथि-सत्कार करने वाले तथा सच्चे होते हैं। कुछ मरुभूमि प्रदेशों में बहुमूल्य खनिज पदार्थ मिलते हैं। तेल और पैट्रोलियम पीरू और इराक़ में, हीरे कलाहरी मरूभूमि में, सोना कालोरैडो और पश्चिमीय आस्ट्रेलिया में, सहारा में नमक, नाइट्रेट (शोरा) और तांबा चाइल के अटकामा रेगिस्तान में तथा सीसा और जस्ता न्यू साऊथ वेल्स की मरुभूमि में मिलते हैं। अब अमेरिकन और इंगलैंड के पूंजीपति इन प्रदेशों में धंधे खड़े कर रहे हैं। और यहाँ के खनिज पदार्थों को निकाल रहे हैं।

मानसूनी-जलवायु (Monsoon Climate)

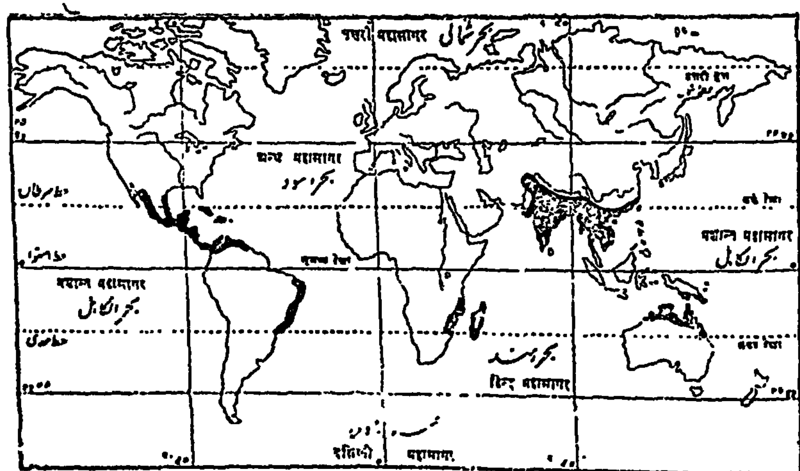
मानसूनी जलवायु के प्रदेश में वर्षा भर गर्मी अधिक रहती है। वर्ष में दो मौसम होते हैं। एक वर्षा का मौसम दूसरा सूखा। तापक्रम भिन्न भिन्न मौसमों में बहुत घटता बढ़ता रहता है। वर्षा के तापक्रम का मध्यमान ८०° से भी अधिक रहता है। वर्षा बहुत ही अनिश्चित होती है। वर्षा की ऋतु जून से सितम्बर तक रहती है। कहीं

कहीं वर्षा साधारण होती है और कहीं अत्यधिक। किन्तु इन चार महीनों के अतिरिक्त इस प्रदेश में शेष महीनों में वर्षा लगभग नहीं होती। दक्षिण-पूर्वी ट्रेड हवायें विषुवत् रेखा को पार करके दक्षिण-पश्चिमी मानसून के नाम से चलती हैं। इनमें बहुत जल होता है और एशिया के मानसूनी प्रदेश को यह खूब जल देती हैं। इस प्रकार की जलवायु हिन्द महासागर के चारों ओर विशेषकर भारत, बर्मा, पश्चिमोत्तर आस्ट्रेलिया, मध्य अमेरिका, पश्चिमीय द्वीप समूह, हिंद चीन, श्याम, फिलीपाइन्स, दक्षिण चीन, पूर्वीय अफ्रीका का समुद्र-तट, दक्षिण अमरिका के वैनज़िला तथा कोलम्बिया के प्रदेश में मिलती है।

मानसून वाले प्रदेशों में वर्षा धरातल की बनावट पर निर्भर होती है जिन प्रदेशों में समुद्र के सामने पहाड़ होते हैं वहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है क्योंकि मानसून हवा उन पहाड़ों से टकरा कर वहाँ अधिक वर्षा कर देती है

मानसून जलवायु शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) की जलवायु के समान स्वस्थकर तो नहीं होती किन्तु फिर मनुष्य को आलसी नहीं बनाती और उसकी कार्यशीलता को नहीं रोकती।

मानसूनी जलवायु का चित्र



इस प्रदेश के जंगलों में सागवान, साल, चंदन, बांस, गोंद, और कपूर मिलता है। सागवान और साल बर्मा, थाईलैंड, हिंद-चीन, तथा जावा में बहुत मिलता है। बांस और गोंद सभी मानसून प्रदेशों में मिलते हैं। किन्तु चीन और जापान में बहुत मिलते हैं।

मानसून के प्रदेशों में जनसंख्या का मुख्य धंधा खेती-बारी है। चावल,

मक्का, बाजरा, ज्वार, गन्ना, कपास, चाय, कहवा, तम्बाकू, नील, सिनकोना, जूट, रबर, तिलहन, और रालें यहाँ की मुख्य पैदावार हैं।

मानसून प्रदेशों में मनुष्य बहुत कुछ वर्षा पर निर्भर रहता है। यदि वर्षा ठीक होती है तो यहाँ समृद्धि रहती है न हीं तो दुर्भिक्ष पड़ जाता है। यहाँ वर्षा का जितना अधिक महत्व है उतना अन्य किसी प्रदेश में नहीं है। वर्षा पर इतनी अधिक निर्भरता के कारण इस भूभाग के निवासी अत्यधिक भाग्य-वादी बन गए हैं। क्योंकि वे चाहे जितना ही परिश्रम क्यों न करें यदि वर्षा नहीं होती अथवा कम होती है तो उनकी फसल नष्ट हो जाती है और वे दुर्भिक्ष से नहीं बच सकते। इन प्रदेशों में जनसंख्या बहुत घनी आबाद है इस कारण पशु पालन यहाँ महत्वपूर्ण नहीं है। खनिज पदार्थों को निकालने का धंधा भारतवर्ष, चीन तथा जापान में उन्नति कर रहा है। उत्तरी आस्ट्रेलिया में नारियल, चावल, कपास तथा केला उत्पन्न होता है और वहाँ खेती की अधिक उन्नति हो सकती है किन्तु गरम जलवायु के कारण गोरी जातियों के मज़दूर तो वहाँ रह नहीं सकते और एशिया-वासियों को वहाँ की सरकार घुसने नहीं देती। इस कारण यहाँ खेती की उन्नति नहीं हो पाती।

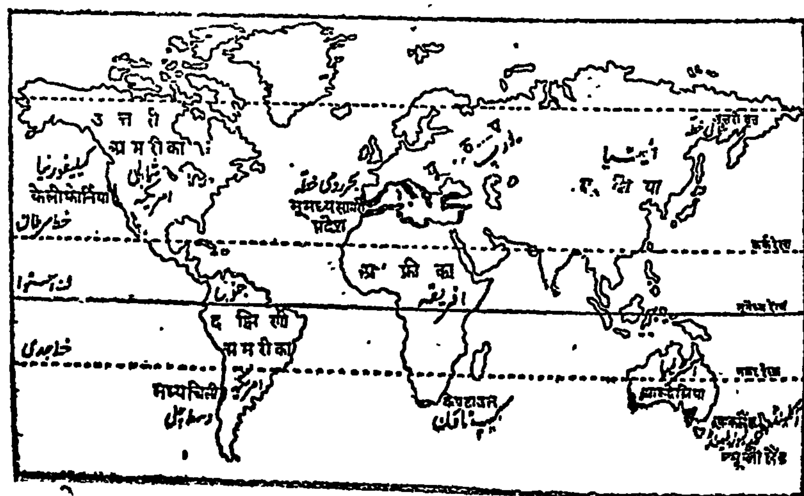
शीतोष्ण कटिबन्ध की जलवायुओं ही में भी बहुत भिन्नता पाई जाती है। भीतरी प्रदेशों में जाड़ों में ठंड बहुत पड़ती है किन्तु गरमियों में गरमी भी खूब पड़ती है। पश्चिमी समुद्र-तट पर जहाँ पश्चिमी हवायें चलती हैं जलवायु एक सा रहता है। पूर्वी तट पर वायु भूमि से समुद्र की ओर चलती है (विशेष कर जाड़ों में)। अतः यहाँ की जलवायु जाड़ों में ठंडी तथा गर्मियों में शीतल होती है।

शीतोष्ण कटिबन्ध के जलवायु पर समुद्र का गहरा प्रभाव है। समुद्र की गर्म तथा ठंडी धाराओं का यहाँ के जलवायु पर बहुत प्रभाव है। गल्फस्ट्रीम तथा क्यूरो-शियो गर्म धारायें हैं, तथा। लैब्राडर धारा ठंडी धारा है। जिन-जिन प्रदेशों के समीप ये धारायें बहती हैं वहाँ के जलवायु पर इनका बहुत प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि जब जाड़े में सेंट-लारेंस के बंदरगाह जम जाते हैं तब गल्फस्ट्रीम के कारण नार्वे के बन्दरगाह खुले रहते हैं। शीतोष्ण कटिबन्ध में चक्रवातों (Cyclones) का भी प्रभाव है। यह जलवायु को अनिश्चित बना देते हैं। इनके द्वारा थोड़े समय के लिये गर्मी और सर्दी उत्पन्न हो जाती है। शीतोष्ण कटिबन्ध में निम्नलिखित जलवायु हैं।

भूमध्य सागर की जलवायु (Mediterranean Climate)

यह जलवायु अधिकतर भूमध्य सागर के चारों ओर पाई जाती है। जाड़ों में यहाँ का तापक्रम ६०° फै० तथा गर्मियों ७८° फै० तक रहता है। यहाँ गर्मियों में गर्मी बहुत नहीं पड़ती है और जाड़ों में जाड़ा कम पड़ता है। थोड़ा-थोड़ा पाला भी यहाँ जाड़ों की रातों में पड़ता है किन्तु वह ऐसा भयंकर नहीं होता कि फसल को नष्ट कर दे। इस प्रदेश में वर्षा अधिक नहीं होती, ३० इंच से अधिक वर्षा कहीं भी नहीं होती जो कुछ वर्षा होती है वह केवल जाड़ों में ही होती है। कभी कभी कई दिनों तक वर्षा होती रहती है। इन प्रदेशों में बिजली की कड़क तथा घोर गर्जन प्रायः नहीं होती। भूमध्य-सागर के प्रदेशों में आकाश स्वच्छ रहता है।

भूमध्य सागर की जलवायु का चित्र



इस जलवायु के प्रदेशों में वसंत तथा गर्मी में धूल के तूफान खूब चलते हैं। इन प्रदेशों के आस-पास जो रेगिस्तान हैं उनसे गर्म हवायें चलती हैं। जब ये हवायें चलती हैं तो भूमध्य सागर के प्रदेशों का तापक्रम ऊँचा चढ़ जाता है। योरोप के भूमध्य सागर के प्रदेश में उत्तर से शुष्क तथा ठंडी हवायें भी चलती हैं इनके चलने से यहाँ कुछ ठंड हो जाती है।

यह जलवायु भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के चारों ओर अर्थात् (स्पेन, पोर्तुगाल, दक्षिणी फ्रांस, इटली, यूगोस्लाविया, बालकन प्रदेश, सीरिया, तथा उत्तरी अफ्रीका) उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमीय समुद्र-तट—अर्थात् कैलीफोर्निया (उत्तरी अमेरिका में) तथा

मध्य चिली (दक्षिण अमेरिका में) आस्ट्रेलिया का दक्षिणी भाग तथा दक्षिण-पश्चिमीय भाग, उत्तरीय न्यूज़ीलैंड, तथा दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के थोड़े से प्रदेश में पाई जाती है।

इन प्रदेशों की जलवायु बहुत ही सुखद होता है इस कारण जाड़ों में बहुत से यात्री इन देशों में भ्रमण के लिए आते हैं। इन देशों में वनस्पति वर्ष भर उगती है। जैतून (Olive) कार्क ओक (Oak) तथा शहतूत (Sweet chestnut) यहाँ बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त इन देशों में फल बहुतायत से उत्पन्न होते हैं जो विदेशों को भेजे जाते हैं। इनमें संतरा, नीबू, अंगूर, नासपाती, अंजीर, अखरोट इत्यादि मुख्य हैं। जाड़ों में गेहूँ और जौ इन देशों की मुख्य पैदावार है।

यद्यपि भूमध्य सागर की जलवायु में सब कहीं अंगूर उत्पन्न होता है किन्तु कुछ ही देशों में शराब बनाने का धंधा होता है। फ्रांस, स्पेन, इटली और पुर्तगाल में यह धंधा विशेष रूप से उन्नति कर गया है। कैलीफोर्निया तथा स्पेन से ताजे अंगूर बाहर भेजे जाते हैं तथा किश्मिश तथा मुनक्के के रूप में सूखे हुए अंगूर एशिया माइनर और कैलीफोर्निया से बाहर भेजे जाते हैं। एशिया माइनर अंजीर के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है। इन प्रदेशों में रेशम बहुत उत्पन्न होता है और रेशमी कपड़े का धंधा भी उन्नत दशा में है। स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस तथा इटली में औद्योगिक उन्नति भी खूब हुई है।

यह प्रदेश उपजाऊ है इस कारण यहाँ जीवन कठोर नहीं है। साधारण उद्योग से मनुष्य अपनी आजीविका प्राप्त कर लेता है।

शीतोष्ण महासागर प्रान्त की जलवायु

यह जलवायु महाद्वीपों के पूर्वी भाग में मिलती है। यह उन्हीं अक्षांश रेखाओं (Latitude) में मिलती है। जिनमें भूमध्य सागर की जलवायु पश्चिम में मिलती है। किन्तु इस जलवायु में बहुत शीघ्र परिवर्तन होता है। जाड़ों में यहाँ सर्दी बहुत होती है और पाला भी पड़ता है। गर्मियों में गर्मी खूब पड़ती है और तापक्रम ९०° फै० के लगभग रहता है। वायु में नमी भी बहुत रहती है। यहाँ वर्षा खूब होती है। जाड़ों में यहाँ ओलों की वर्षा होती है। कभी-कभी यहाँ भयंकर तूफान (हरीकेन और टाइफून) आया करते हैं जिनसे बहुत हानि होती है।

यह जलवायु उत्तरीय तथा मध्य चीन, पश्चिमी कोरिया, दक्षिण जापान, संयुक्तराज्य अमेरिका का पूर्वीय भाग (आइवा, मिसूरी, आरकानसास; पूर्वीय टैक्सास और गल्फ कोस्ट) दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी पूर्वीय ब्राज़ील तथा

यूरेग्वे में, दक्षिणी अफ्रीका के दक्षिण पूर्वीय तटीय प्रदेश में, आस्ट्रेलिया के न्यू-साऊथवेल्स के समुद्री तट तथा दक्षिणी क्वीन्सलैंड में पाई जाती है।

इन प्रदेशों की मुख्य पैदावारें मक्का, ज्वार, बाजरा, चावल, दाल, तम्बाकू, कपास, कपूर, चाय, केला, नारंगी तथा कहवा हैं। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति में पीला पाइन (Yellow Pines) (Walnut) (Chestnut) बीच, मैगनोलिया तथा ओक हैं।

इस जलवायु के जो प्रदेश एशिया में पाये जाते हैं वे बहुत घने आबाद हैं इस कारण वहाँ पशुपालन कम होता है। किन्तु युरेग्वे, ब्राजील, तथा दक्षिणी अफ्रीका के निवासियों का यह मुख्य धंधा है। इस जलवायु के प्रदेशों में दक्षिणी संयुक्तराज्य अमेरिका तथा जापान औद्योगिक दृष्टि से उत्पन्न प्रदेश हैं।

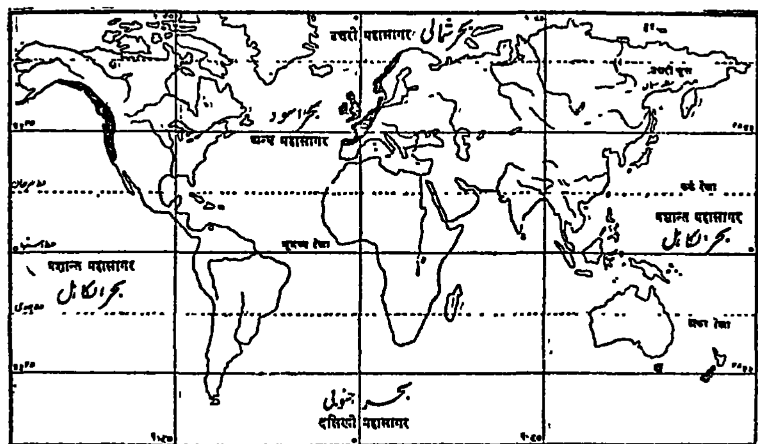
शीतोष्ण कटिबन्ध के आन्तरिक प्रान्त की जलवायु (Temperate Continental Climate)

इस जलवायु के प्रदेश भी पश्चिमी वायु के कटिबन्ध में स्थित हैं परन्तु समुद्र से बहुत दूर हैं। अतः समुद्र का कोमल करने वाला प्रभाव इन पर नहीं पड़ता। इस कारण यहां गर्मी में खूब गर्मी होती है और जाड़ों में अत्यन्त शीत होता है। गर्मियों में तापक्रम १००° फै० तक चला जाता है, और जाड़ों में २०° फै० तक नीचे उतर आता है। वर्षा अधिक नहीं होती, जो कुछ वर्षा होती है वह वसन्त और गर्मी में होती है। यहाँ वर्षा फुहार के रूप में होती है। जाड़ों में थोड़ा बर्फ गिरता है। कनाडा के प्रैरी घास के मैदान (Prairies) दक्षिण रूस और सायबेरिया के स्टेपीज घास के मैदान (Steppes) आस्ट्रेलिया के नीचे मैदान (Downland) और दक्षिण अमेरिका के पम्पाज़ (Pampas) की यही जलवायु है।

पश्चिमी योरोप के प्रकार की जलवायु

इन प्रदेशों में वर्षा भर पश्चिमी हवायें चलती हैं। यहाँ जाड़ों में न तो अत्यधिक सर्दी ही पड़ती है। और न गर्मियों में अधिक गरमी ही पड़ती है। जाड़ों के एक या दो महीनों में बर्फ़ गिरती है किन्तु अधिक समय तक भूमि पर नहीं रहती है। इस जलवायु में वर्षा साधारणतः अच्छी होती है। पश्चिम से पूर्व की ओर वर्षा घटती जाती है। वर्षा अधिकतर फुहार के रूप में पड़ती है। अधिकांश वर्षा जाड़े में होती है। गर्मी में सबसे कम वर्षा होती है। वर्षा के दिनों में बादल आकाश में छाये रहते हैं और समुद्र-तट पर कोहरा छाया रहता है। पतझड़ के मौसम में

चक्रवात (Cyclone) तूफान आते हैं जिनसे मौसम अनिश्चित हो जाता है। इस प्रदेश में हवायें समुद्र से बहती है। इस कारण उनमें नमी रहती हैं। प्रत्येक मौसम में थोड़ी बहुत वर्षा होती रहती हैं इस जलवायु के प्रदेश में आकाश बादलों से बहुत छाया रहता है और तेज़ धूप की रोशनी कम निकलती



है। यह जलवायु पश्चिमोत्तर योरोप जिसमें बृटिश द्वीप दक्षिण-पश्चिमी स्कैंडिनेविया, डैनमार्क, पश्चिमीय जर्मनी, हालैंड, वैलजियम, फ्रांस, उत्तरी, स्पेन, सम्मिलित है, पश्चिमी कनाडा, दक्षिणी चिली, टस्मानिया और न्यूज़ीलैंड तथा संयुक्तराज्य अमेरिका की उत्तरी पश्चिमी रियासतों में पाई जाती है।

इन प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति में मैप्लि (Maple) ओक, यल्म और वीच के वृक्षों की बहुतायत है। जो प्रदेश ठंडे हैं और जहाँ नमी अधिक है वहाँ कानफिरस वन हैं जिनमें पाइन और फर बहुत उत्पन्न होता है। इन प्रदेशों की मुख्य पैदावार ओट, रई, आलू, चुकंदर, और सब्ज़ी मुख्य फसले हैं। जिन प्रदेशों में वर्षा कम होती है और गरमी यथेष्ट होती है वहाँ गेहूँ बहुत अधिक उत्पन्न होता है। गाय, बैल, घोड़ा तथा भेड़ वहाँ अधिक पाली जाती हैं और गमनागमन के साधनों की सुविधा होने के कारण मक्खन का धंधा बहुत उन्नत अवस्था में है।

स्कैन्डिनेविया के पश्चिमीय भाग से तथा ब्रिटिश कोलम्बिया में कृषि से मछलियों का धंधा अधिक महत्वपूर्ण है।

यह प्रदेश व्यापारिक तथा औद्योगिक दृष्टि में अत्यन्त उन्नत है। पश्चिमीय योरोप की औद्योगिक उन्नति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है क्योंकि यहाँ

खनिज पदार्थ बहुत मिलते हैं और गमनागमन के साधन अत्यन्त उन्नत अवस्था में हैं। यही नहीं यहाँ का जलवायु मनुष्य को परिश्रमी और पुरुषार्थी बनाता है तथा व्यापार के लिए इन प्रदेशों की स्थिति बहुत उपयुक्त है। ब्रिटेन ने उद्योग-धंधों, व्यापार तथा उपनिवेश निर्माण में बहुत उन्नति की। फ्रांस ने विचार, कला तथा रुचि का नेतृत्व प्रदान किया और जर्मनी ने विज्ञान में संसार का नेतृत्व किया। संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा तथा न्यूज़ीलैंड भी तेजी से उन्नति कर रहे हैं और संयुक्तराज्य अमेरिका आज बहुत सी बातों में संसार का नेतृत्व प्रदान कर रहा है। इन प्रदेशों में वैज्ञानिक खेती तथा उद्योग-धंधे उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गए हैं।

ध्रुवों की जलवायु

उत्तरी वन प्रदेशों की जलवायु

इस प्रकार जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में ही पाई जाती है। जाड़ों में यहाँ अधिक शीत पड़ता है और जाड़े लम्बे होते हैं। गर्मियाँ छोटी होती हैं और साधारण गर्मी पड़ती है। गर्मियों में दिन बहुत लम्बे और रातें बहुत छोटी होती हैं। गर्मी के दिनों में साधारण अच्छी गर्मी पड़ जाती है। जाड़ों में अत्यधिक शीत पड़ता है। यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। यहाँ वर्षा अधिकतर हिम के रूप में गिरती है। यह वन प्रदेश (Coniferous foseet) उत्तरी अमेरिका, योरोप, तथा उत्तरी एशिया तक फैला हुआ है।

टुंड्रा की जलवायु (Tundra Climate)

यहाँ जाड़े की ऋतु बहुत लम्बी और अत्यधिक ठंडी होती है। गर्मी की ऋतु बहुत छोटी तथा साधारण गर्म होती है। गर्मियाँ यहाँ इतनी छोटी होती हैं कि जाड़े की बर्फ अच्छी तरह से पिघल भी नहीं पाती कि फिर जाड़ा आ जाता है और बर्फ गिरने लगती है। यहाँ बादल बहुत रहते हैं और शीत तो बेहद पड़ता है।

पर्वतीय जलवायु

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जैसे जैसे हम ऊँचे चढ़ते जावेंगे गरमी कम होती जावेगी। ३०० फीट ऊंचे चढ़ने पर एक डिगरी तापक्रम गिर जाता है। यहाँ तक कि यदि पर्वत बहुत ऊँचा है तो एक ऊँचाई पर बर्फ जमने लगती है। पहाड़ का जो ढाल जल लाने वाली हवाओं के सामने पड़ता है उस पर खूब वर्षा होती है और जो ढाल पवन विमुख

होता है उस पर पानी नहीं बरसता। भारतवर्ष में हिमालय के इस ओर वर्षा होती है परन्तु तिब्बत की ओर वर्षा नहीं होती।

प्राकृतिक वनस्पति (Vegetation)

धरातल पर वनस्पति प्रकृति रूप में उत्पन्न होती है यहाँ तक कि रेगिस्तान में भी वनस्पति उत्पन्न होती है। यद्यपि मरुस्थलों में उत्पन्न होने वाली वनस्पति बहुत छोटी तथा बिखरी हुई होती है। वनस्पति निम्नलिखित बातों पर निर्भर है—गर्मी, वर्षा वायु, रोशनी और मिट्टी। अधिकतर गर्मी और वर्षा ही पर वनस्पति निर्भर रहती है। एक से तापक्रम वाले प्रदेशों में जहाँ अधिक वर्षा होती है वहाँ वन होते हैं जहाँ वर्षा साधारण होती है वहाँ घास के मैदान होते हैं और जहाँ वर्षा बिल्कुल नहीं होती या बहुत कम होती है वहाँ मरुभूमि होती है। भूमि पर वनस्पति के तीन स्वरूप मिलते हैं—(१) वन (२) घास के मैदान (३) मरुस्थल।

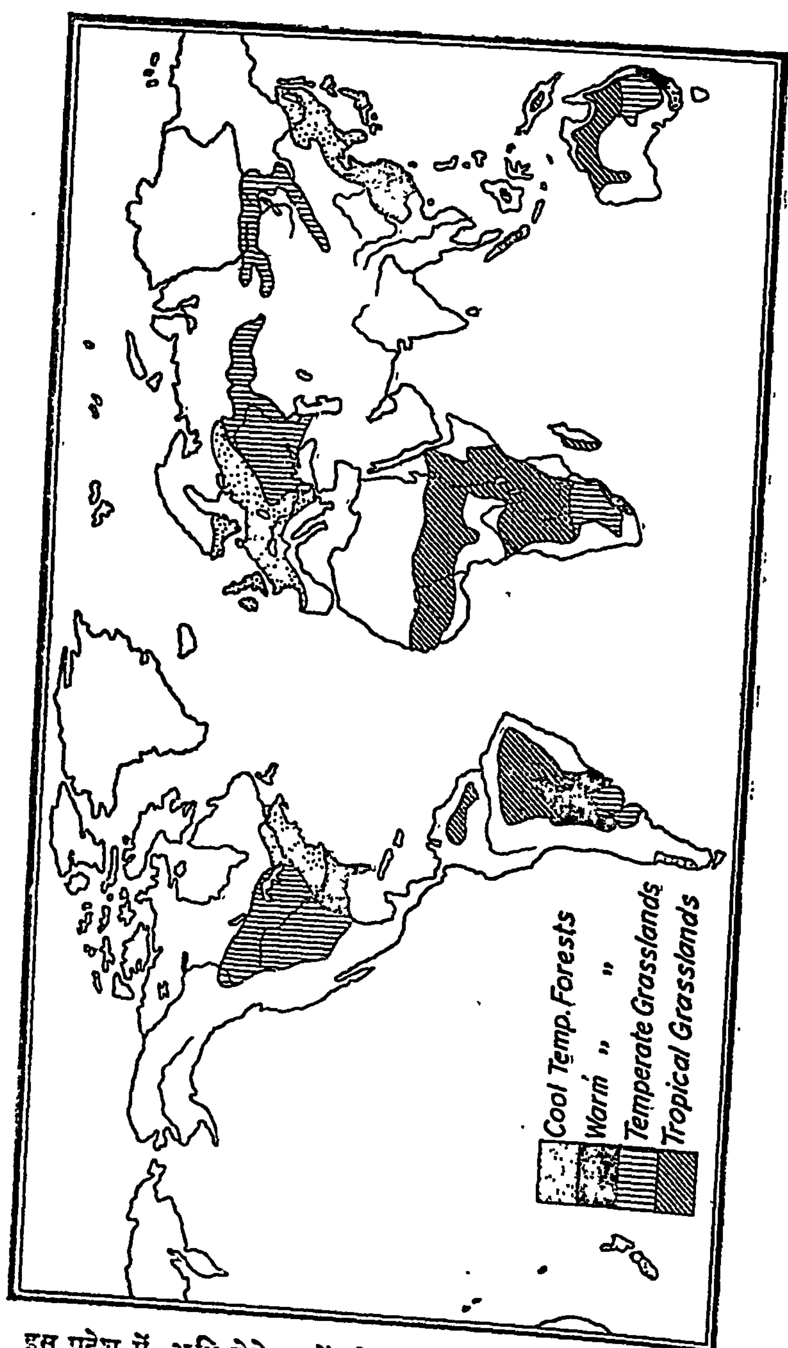
वन और घास के मैदान

भूमध्य रेखा प्रान्त के सदा हरे-भरे वन अथवा (Selvas)

भूमध्य रेखीय वर्षा के कटिबन्ध में और मानसून वाले प्रदेशों में जहाँ वर्षा ८० इंच से अधिक होती है वहाँ वायु और मिट्टी नम रहती है। गरम और नमी के कारण यहाँ के वृक्ष सघन और बड़े होते हैं। प्रकाश पाने के लिए इन सघन वनों के वृक्ष सदा ऊपर बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। जंगली लतायें इन बड़े बड़े वृक्षों पर चढ़ जाती हैं। इनका आकार प्रायः इतना बड़ा हो जाता है कि वृक्ष सूख जाते हैं। भूमध्य रेखा के अत्यन्त सघन वनों में पत्तियाँ इतनी सघन होती हैं कि सूर्य की रोशनी भूमि तक नहीं पहुँचती और वहाँ सर्वदा अंधकार रहता है। अमेज़न और काँगों के वन ऐसे ही हैं। अन्य वन इतने घने नहीं हैं और थोड़ा बहुत रोशनी पृथ्वी तक पहुँच जाती है। इन वनों में कठोर लकड़ी के वृक्ष मिलते हैं। इनमें मेहागनी, आबनूस मुख्य हैं। इन वनों में रबर, सिनकोना, नारियल और ताड़ व्यापारिक महत्व के वृक्ष भी बहुत पाये जाते हैं।

ऊष्ण कटिबन्ध के घास के मैदान और सवाना (Savana)

ऊष्ण कटिबन्धीय जलवायु की मुख्य उपज लम्बी घास हैं। इस घास में कहीं कहीं वृक्ष भी दिखलाई पड़ते हैं। अफ्रीका का बहुत बड़ा भाग सवाना घास से भरा पड़ा है। वर्षा होते ही घास शीघ्रता से उग आती है और गर्मी में सारा प्रदेश सूख कर भूरे रंग का हो जाता है। जिन प्रदेशों में वर्षा कुछ अधिक होती है वहाँ वृक्ष भी अधिक पाये जाते हैं।



इस प्रदेश में भूमि ऐसे वनों से ढकी होती है जो गरमी के मौसम में अपने पत्ते गिरा देते हैं।

मानसूनी प्रदेश जहाँ जहाँ ४० इंच से अधिक वर्षा होती है उन प्रदेशों में बड़े बड़े वृक्ष होते हैं, जिनकी लकड़ी मूल्यवान होती है। इनमें टीक और

साल मुख्य हैं परन्तु जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ वृक्ष छोटे रह जाते हैं। यहाँ तक कि मरुस्थलों की भाँति कहीं कहीं वृक्ष काँटेदार हो जाते हैं। ऐसे कम वर्षा वाले प्रदेश गुल्मभूमि (Scrubland) तथा काँटेदार वनों में परिणत हो जाते हैं।

भूमध्य सागर की जलवायु की वनस्पति

यहाँ पौधे विशेषकर जाड़े में उगते हैं क्योंकि यहाँ वर्षा जाड़े में ही होती है। इस प्रदेश की वनस्पति में छोटे छोटे वृक्ष तथा झाड़ियाँ अधिक होती हैं। गरमियों में यहाँ नमी की कमी होती है, इस कारण प्रकृति ने इन वृक्षों की पत्तियों पर रेशम के समान कोमल रोम उत्पन्न कर दिये हैं। यह पत्तियाँ नमी को नष्ट होने से बचाती हैं। कुछ वृक्ष जैसे कार्क अपनी मोटी छाल द्वारा नमी के नाश से अपनी रक्षा करते हैं। इन प्रदेशों में बलूत, जैतून तथा फलों के वृक्ष मुख्यतः पाये जाते हैं। अंगूर भी यहाँ बहुत उत्पन्न होता है।

शीतोष्ण कटिबन्ध के पतझड़ वन (Temperate deciduous foresil)

मानसूनी प्रदेश में वृक्ष ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से अपनी रक्षा के लिए पत्तों को गिराते हैं। इन वनों में पत्ते शीत तथा पाले से वृक्ष को बचाने के लिए जाड़े में गिरते हैं। इन वनों में बहुत सी बहुमूल्य लकड़ियाँ होती हैं। जैसे बलूत, एल्म, बीच, बर्च, मेपिल इत्यादि।

शीतोष्ण कटिबन्धीय घास के मैदान (Temperate Grass land)

शीतोष्ण कटिबन्ध की घास ऊष्ण कटिबन्ध की घास की अपेक्षा छोटी और कम फैलने वाली होती है, और १५ इंच वर्षा से भी कम में उत्पन्न हो जाती है। यहाँ बहुत दूर दूर तक एक भी वृक्ष नहीं होता। भिन्न भिन्न महाद्वीपों में इन मैदानों के भिन्न भिन्न नाम रक्खे गए हैं। यह एशिया और योरोप में स्टैपीज़ (Steppes) उत्तरी अमेरिका में प्रेरीज़ (Prairies) दक्षिणी अमेरिका में पम्पास (Pampas) दक्षिणी अफ्रीका में वेल्ड (Veld) और आस्ट्रेलिया में डाऊनलैंड (Downland) कहलाते हैं। परन्तु सभी जगह यह मैदान एक से ही होते हैं। वसन्त में भूमि हरी भरी रहती है, गरमियों में घास जल जाती है, और जाड़ों में यहाँ हिम गिरता है।

शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय कानिफेरस वन (Cold Temperate Coniferous forests)

उत्तरी गोलार्द्ध के उत्तर में सदा हरे भरे वनों का अत्यन्त प्रदेश है। इन वृक्षों की पत्तियाँ सूई के समान होती हैं, और वृक्षों की लकड़ी नरम होती है। संसार में सबसे अधिक मूल्यवान लकड़ी इन्हीं वनों में मिलती है। पाईन, स्प्रूस, फर, इत्यादि वृक्ष इन्हीं वनों में पाये जाते हैं। इन वन प्रदेशों में वर्षा न होकर हिम गिरता है। इन वनों के पशुओं के बाल लम्बे और कोमल होते हैं जिससे उनकी शीत से रक्षा होती है। जाड़े में यहाँ वृक्ष काट कर गिरा दिये जाते हैं और बर्फ़ पर जमा कर दिये जाते हैं। जब बर्फ़ पिघलती है तो पानी इस लकड़ी को बहाकर नदी में ले जाता है।



ऊष्ण तथा शीतोष्ण रेगिस्तान

मानसून प्रदेश के वनों के सम्बन्ध में लिखते हुए बतलाया गया है कि जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ वृक्ष भी छोटे और कम हो जाते हैं, और वह गुल्म भूमि (Scrubland) में परिणत होकर अन्त में मरुस्थल बन जाते हैं। मरुस्थल पर कहीं-कहीं छोटी घास तथा कहीं-कहीं बहुत छोटी-छोटी झाड़ियाँ होती हैं। कुछ रेगिस्तान ऐसे भी हैं जहाँ कुछ नहीं उगता। रेगिस्तान के पौधे बहुत तरह से जल को इकट्ठा करते हैं। कुछ पौधों की जड़ें बहुत लम्बी हैं जिनके द्वारा पौधा गहराई से जल खींचता है। कुछ पौधों की पत्तियों और डंठल पर मोम की

पतली परत सी जमी रहती है, जो पौधे की नमी को नष्ट नहीं होने देती। और कुछ वृक्षों में पत्तियाँ नहीं होतीं वरन काँटे होते हैं जिससे उनका रस नहीं सूखता। इन रेगिस्तानों में कहीं-कहीं जल श्रोत (Oasis) होते हैं जहाँ वनस्पति खूब उत्पन्न होती है। इनका मुख्य वृक्ष पिंड-खजूर है।

उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों में अत्यधिक ठंड पड़ती है इस कारण—अत्यधिक शीत के कारण यह मरुस्थल बन गए हैं।

टुंड्रा अथवा ठंडी मरुभूमि

यहाँ पैदावार कुछ भी नहीं होती। यहाँ केवल मास (Moss) और लिचन (Lichen) नामक घास उत्पन्न होती है। खेती यहाँ हो ही नहीं सकती। क्योंकि ६ महीने बर्फ़ गिरती है। टुंड्रा के कुछ भागों में गरमी के दिनों में (जो बहुत छोटी होती है) थोड़ी वनस्पति उग आती है।

पहाड़ी वन

हम ज्यों-ज्यों पहाड़ों पर चढ़ते हैं हमें उसी प्रकार की वनस्पति मिलती है जिस प्रकार की वनस्पति ध्रुवों की ओर जाने से मिलती है। हिमालय पर हमें उत्तरीय योरोप के समान कानीफेरस (Coniferous) के वन मिलते हैं। जिन पहाड़ी प्रदेशों में वर्षा कम होती है वहाँ घास के मैदान मिलते हैं; जो पहाड़ी प्रदेशों को ढके हुए हैं। स्वीटज़रलैंड के पहाड़ी प्रदेश में घास के मैदान बहुत अधिक हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—भूमध्य सागर की जलवायु तथा मानसून जलवायु में क्या अन्तर है? इन दोनों प्रकार की जलवायु में पैदा होने वाली मुख्य पैदावारें क्या हैं?

२—भूमध्य रेखा की जलवायु (Equatorial climate) की विशेषताएँ क्या हैं? समझा कर लिखिये और यह भी बतलाइये कि इन प्रदेशों की आर्थिक उन्नति क्यों नहीं हुई?

३—मानसून जलवायु की विशेषताएँ बतलाइए और उनका इन प्रदेशों की खेती, उद्योग-धंधों पर कैसा प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या कीजिए।

४—प्राकृतिक प्रदेश (Natural Region) से आप क्या समझते

हैं। आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को उनका अध्ययन करना चाहिए ?

५—गरम रेगिस्तानों का संक्षिप्त विवरण दीजिए और बतलाइए कि वहाँ से व्यापार की कौन सी वस्तुएँ हमें मिलती हैं ?

६—शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) में पश्चिमीय योरोप के प्रकार की जलवायु की विशेषताएँ बतलाइए और यह भी बतलाइए कि पश्चिमीय योरोप की आर्थिक उन्नति में जलवायु का क्या हाथ है।

७—ध्रुवों की जलवायु का वहाँ के मनुष्यों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है विस्तार-पूर्वक लिखिए।

चौथा परिच्छेद

मुख्य धंधे (Primary Industries)—मछलियाँ

मुख्य-धंधे (Primary Industries)

धन (Wealth) की उत्पत्ति का आधार प्रकृति की देन है। जिस देश में प्रकृति की देन की बहुलता है वही समृद्धि-शाली हो सकता है। मनुष्य अपने श्रम तथा यंत्रों इत्यादि (पूंजी) की सहायता से सम्पत्ति की उत्पत्ति करता है। **सम्पत्ति (Wealth) को उत्पत्ति करने की क्रिया को ही धंधा (Industry) कहते** हैं। धंधे दो प्रकार के होते हैं। (१) मुख्य धंधे (Primary Industries) और (२) गौण धंधे (Secondary Industries) मुख्य धंधों (Primary Industries) में मनुष्य अपने श्रम तथा पूंजी (Capital) की सहायता से प्रकृति के द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तु को प्राप्त करता है। मुख्य धंधों में प्रकृति का भाग मुख्य होता है और श्रम (Labour) तथा पूंजी (Capital) का भाग गौण होता है। मछलियों को पकड़ने का धन्धा, वन सम्बन्धी धन्धे, खेती और पशुपालन, तथा खनिज पदार्थों को निकालने का धन्धा मुख्य धन्धे हैं।

गौण धन्धे (Secondary Industries) वे धन्धे हैं जिनमें मुख्य धन्धों से उत्पन्न किए हुए कच्चे माल (Raw material) को पक्के माल (Manufactured articles) में परिणत किया जाता है। उदाहरण के लिए, कागज़ का धन्धा, लोहे का धन्धा और सूती कपड़े का धन्धा। इन धन्धों में श्रम (Labour) और पूँजी (Capital) का मुख्य भाग रहता है।

समुद्र का आर्थिक महत्व

समुद्र की लहरें जितना सोना उछालती हैं उतना सोना आज मनुष्य के पास नहीं है। इस सत्य का आज कोई आर्थिक महत्व नहीं है क्योंकि समुद्रों की लहरों से सोना प्राप्त करना बहुत ख़र्चीला है वह लाभदायक नहीं है। इसी प्रकार समुद्र की लहरों और ज्वार भाटा (Tides) में जो अनन्त शक्ति (Power) भरी हुई है उसका भी आज

कोई आर्थिक महत्व नहीं है क्योंकि उसको विस्तृत उपयोग किया जा सके उसके लिए यन्त्र तैयार नहीं किये जा सके हैं। यही नहीं समुद्र के गर्भ में ऐसे बहुमूल्य पदार्थ भरे हैं जो आज यद्यपि मनुष्य के लिए एक रहस्य हैं किन्तु भविष्य में मनुष्य उनको उपयोग में लाकर अधिक समृद्धिशाली और सुखी बन सकेगा।

समुद्र के इस रहस्यमय छिपे हुए भण्डार को यदि हम छोड़ भी दें तो भी मनुष्य के लिए समुद्र की जो कुछ देन है और जिसका आज हम उपयोग कर रहे हैं उसके मूल्य का हम आंक नहीं सकते। पृथ्वी के धरातल की बनावट को वर्तमान रूप देने में समुद्र का बहुत ही बड़ा हाथ रहा है। संसार में तलछट वाला चट्टानों (Sedimentary Rocks) का जो विस्तृत भूभाग है वह मनुष्य को समुद्र की ही देन है। जब ये चट्टानें जो वास्तव में पानी द्वारा बहाकर लाये हुए पदार्थों के जमने से बनी था ऊँची उठ गई तो वे वर्तमान स्थल बन गए जो आज सभी महाद्वीपों में फैले हुए हैं। इन्हीं चट्टानों में पेट्रोलियम और कोयला दबा हुआ है जिनके बिना आधुनिक सभ्यता ही असम्भव हा जावेगी।

आज भी समुद्र का जलवायु पर जो अमिट प्रभाव है उसका मूल्य रुपए पैसे में नहीं कूता जा सकता वर्षा जिस पर मनुष्य जीवन निर्भर है। समुद्र का ही प्रसाद है। यही नहीं समुद्र का तापक्रम (Temperature) पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। समुद्र के सीमावर्ती प्रदेश अधिक गरम नहीं रहते हैं।

समुद्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रशस्त प्रकृतिदत्त मार्ग है। इसको बनाने तथा इसकी मरम्मत करने में मनुष्य को कुछ व्यय नहीं करना पड़ता।

करोड़ों व्यक्ति जो उष्ण प्रदेशों (Tropics) में रहते हैं और विशेषकर चावल खाने वाले प्रदेशों में मछली ही मनुष्य के भोजन में पौष्टिक तत्व है। पश्चिमीय योरोप के देशों में जहाँ खेती के लिए भूमि कम है मछली पकड़ने का ही धंधा वहाँ के निवासियों का मुख्य धंधा है और लाखों की संख्या में लोग इस धंधे में लगे हुए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी यह धंधा उन्नत अवस्था में है। विशेषज्ञों का मत है कि मछली में यथेष्ट पौष्टिक लवण है और विशेषकर विटेमिन 'डा' तथा आयोडीन विशेष रूप से पाया जाता है इस कारण वह बहुमूल्य भोज्य पदार्थ है।

समुद्र की उत्पादन शक्ति

जिस प्रकार हर एक भूमि एक सी नहीं होती कोई उपजाऊ होती है तो कोई बंजर होती है उसी प्रकार समुद्र भी सब जगह एक सा नहीं होता हाँ समुद्र में भूमि के समान भिन्नता नहीं है। कहीं-कहीं समुद्र बहुत उपजाऊ होता है अर्थात् वहाँ मछलियाँ बहुत उत्पन्न होती हैं और कहीं समुद्र की मरुभूमि होती है जहाँ कुछ उत्पन्न नहीं होता। अत्यन्त सूक्ष्म वनस्पति प्लैन्कटन (Plankton plants) पौधे ही समुद्र में मछलियों का मुख्य भोजन है जिस पर वे जीवित रहती हैं और क्योंकि इन पौधों के लिए सूर्य की रोशनी आवश्यक है इस कारण यह वनस्पति ६०० फीट से अधिक गहराई पर नहीं मिलती। यही कारण है कि ६०० फीट के उपरान्त मछलियाँ बहुत कम मिलती हैं। इससे अधिक गहराई पर केवल वे ही बड़ी मछलियाँ या जंतु रहते हैं जो ऊपर से मरे हुए जंतुओं को खाकर जीवित रह सकते हैं।

समुद्र १३९,०००,००० वर्ग मील में फैला हुआ है जिसमें १०,०००,००० वर्ग मील तटीय समुद्र है जो छिछला है जिसकी गहराई ६०० फीट से अधिक नहीं है यही कारण है कि मछलियाँ अधिकतर इसी छिछले समुद्र में पाई जाती हैं।

जहाँ तक जलवायु का प्रश्न है शीतोष्ण कटिबन्ध तथा ध्रुवों से नीचे यहाँ वनस्पति प्लैन्कटन (plankton) पौधे अधिक मिलते हैं। भूमध्य रेखा के प्रदेश में वे कम ही मिलते हैं। जहाँ समुद्र की ठंडी तथा गरम धारायें मिलती हैं वहाँ भी यह वनस्पति प्लैन्कटन पौधे बहुतायत से पाये जाते हैं इसी कारण ये क्षेत्र मछली के मुख्य क्षेत्र हैं। उदाहरण के लिए जापान के उत्तर में जहाँ क्यूरो सिवो (Kuro Siwo) ठंडी धारा तथा गरम जापान धारा मिलता है वहाँ मछली बहुत उत्पन्न होती है इसी प्रकार अमेरिका के उत्तर पूर्व में न्यू-फाउंड लड (New Found Land) के तट पर ठंडी लैब्राडर धारा तथा गरम गल्फ-स्ट्रीम (Gulf Stream) मिलती है और अत्यधिक मछलियाँ उत्पन्न करती है।

मछलियाँ (Fishes)

मछलियाँ पकड़ने का धन्धा एक मुख्य धन्धा है। इस धन्धे के द्वारा मनुष्य को एक महत्त्वपूर्ण भोज्य पदार्थ प्राप्त होता है। उसे कृषि की तरह न भूमि जोतनी पड़ती है और न फसल के लिए प्रतीक्षा ही करना पड़ती है। केवल

समुद्र अथवा झील तक जाने और जाल डालने मात्र से ही उसको भोजन मिल जाता है। यदि सावधानी से मछलियों को पकड़ा जावे तो मछलियाँ कभी कम नहीं हो सकतीं क्योंकि मछलियों की बढ़वार इतनी तेज़ी से होती है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। साधारण समुद्री मछली एक बार में लाखों अंडे देती है, कुछ मछलियाँ तो ऐसी हैं जो पचास लाख से २ करोड़ तक अंडे एक साथ देती हैं। ऐसी दशा में, यदि मछलियों के पकड़ने में लापरवाही न की जावे तो मछलियाँ भोजन का एक ऐसा अटूट भंडार हैं जो कभी भी चुक नहीं सकता।

किन्तु मनुष्य ने जहाँ प्रकृति की देन को अन्य दिशाओं में नष्ट करने में संकोच नहीं किया वहाँ मछलियों को भी उसने नष्ट करने में कसर नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि छिछले समुद्र तथा नदियों के मुहानों के समीप मछलियाँ कम होती जा रही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की झीलों, नदियों तथा छिछले समुद्र की मछलियाँ बहुत तेज़ी से घटती जा रही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के अटलांटिक समुद्रतट पर सालमन (Salmon) बहुत अधिक मिलती थी किन्तु अब वह बिलकुल समाप्त हो गई।

मछलियों को नष्ट करने में वे सब बातें सहायक होती हैं जो पानी को गंदा करती हैं। जहाज़, कारख़ाने, कोयले की खानें, केमिकल वर्क्स, तथा औद्योगिक केन्द्र सभी पानी को गंदा करते रहते हैं, और इनसे मछलियों की बढ़वार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मछलियों के कम होने का दूसरा कारण है पकड़ने वालों की लापरवाही और पकड़ने का ढंग वैज्ञानिक न होना। दुर्भाग्यवश मनुष्य ने मछली को सुरक्षित रखने का प्रयत्न नहीं किया और मछलियाँ तेज़ी से घटती गईं। अब सभी देशों में उनको कम होने से रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है।

समुद्र में अनन्त सम्पत्ति भरी है परन्तु अभी तक मनुष्य ने उसका पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया है। समुद्र के पानी में अत्यन्त सूक्ष्म असंख्य वनस्पति के अंश Vegetable Plankton) होते हैं। इन्हीं वनस्पति के अंशों को खाकर एक प्रकार का अत्यन्त सूक्ष्म जीवित अंश (Plankton) जीवित रहता है। यह सूक्ष्म जीवित अंश भी समुद्र के पानी में असंख्य होते हैं। इनको छोटी-छोटी मछलियाँ खाती हैं और बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खाकर रहती हैं। किन्तु वास्तव में समुद्र के अन्दर रहने वाले जीवों का जीवन आधार वे सूक्ष्म वनस्पति के अंश (Vegetable

Plankton) ही हैं जो समुद्र में भरे पड़े हैं। अर्थात् मछलियाँ वस्तुतः वनस्पति पर ही निर्भर हैं।

यह वनस्पति के अंश नत्रजन (Nitrogen) नमक तथा कार्बन (Carbon) को सोख कर उसको मछलियों के भोजन में परिणत कर देते हैं। समुद्र में नमक तथा कार्बन की बहुतायत होती है, किन्तु नत्रजन (Nitrogen) केवल नदियों के पानी से ही मिलता है। यही कारण है कि जहाँ नदियाँ समुद्र से मिलती हैं वहाँ सूक्ष्म वनस्पति के अंश (Vegetable Plankton) अधिक होते हैं। यही नहीं यह वनस्पति के अंश सूर्य की रोशनी से बहुत बढ़ते हैं अतएव भूमि के समापवर्ती तटीय छिछले समुद्र में यह बहुत अधिक मिलते हैं, क्योंकि छिछले पानी में सूर्य की किरणें पानी को भेद कर अन्दर रोशनी पहुँचाती हैं। परन्तु बहुत गहरे पानी में बहुत कम रोशिनी पड़ती है। यही कारण है कि नदियों के मुहानों के समीप तथा छिछले समुद्र में ही अधिकतर मछलियाँ मिलती हैं। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि गहरे समुद्र में मछलियाँ नहीं होती हैं। उन्हें प्रकाश की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं होती।

किन्तु जो मछलियाँ साधारणतः तट से बहुत दूर गहरे समुद्र में रहती हैं वे तथा अन्य साधारण मछलियाँ भी दो कारणों से छिछले समुद्र तथा नदियों के मुहाने के समीप आकर इकट्ठी होती हैं। मछलियों की यह आदत है कि वे अपने अंडे नदियों के मुहाने में या छिछले समुद्र में ही देती हैं और वह भी तट के समीप। दूसरी आदत यह है कि वे अपना भोजन प्राप्त करने के लिए अगणित संख्या में छिछले समुद्र में जमा हो जाती हैं। इन्हें बैंक (Bank) कहते हैं। इन्हीं बैंकों अर्थात् मछलियों के जमाव के कारण उत्तर-पश्चिमी-योरोप, उत्तर-पूर्वी एशिया, तथा उत्तरी अमेरिका में मछलियों को पकड़ने का धंधा बहुत होता है। भिन्न-भिन्न जाति की मछलियाँ भिन्न-भिन्न मौसम में अंडे देती हैं। सैकड़ों मील दूर से चल कर मछली छिछले समुद्र में अंडे देने आती हैं। ह्वेल (Whale) तथा काड (Cod) जो इन मछलियों का शिकार करने के लिए छिछले समुद्र में आ जाती हैं स्वयं पकड़ी जाती हैं।

मछली मारने के मुख्य ४ तरीके हैं (१) भाले से मछली मारना, (२) फंदे से मछली पकड़ना (३) जाल से मछली पकड़ना और हुक (Hook) काँटों से मछली को छेदना।

मछली मारने के तरीके

भाले से मछली मारने का ढंग पुराना है, किन्तु आज भी वह उत्तरी ध्रुव तथा ऊष्ण कटिबंध के समुद्रों में प्रचलित है। छिछले समुद्रों में फंदे डाल कर मछली को पकड़ा जाता है। किन्तु पृथ्वी पर अधिकतर मछला हुकों से अथवा भिन्न प्रकार के जालों से पकड़ा जाती है। जाल भी कई प्रकार के होते हैं। ट्राल (Trawls) सीनस (Seines) तथा ड्रिफ्टिंग नैट (Drifting Nets) मुख्य हैं। कौन सा तरीका मछली पकड़ने का काम में लाया जावेगा यह मछलियों के स्वभाव तथा उनके रहने के स्थान पर निर्भर करता है।

मछलियाँ चार प्रकार की हैं।

१—गहरे समुद्र की मछलियाँ (Deep Sea Fisheries)

२—खुले हुए समुद्र की मछलियाँ (Open Sea Fisheries)

३—छिछले समुद्र की मछलियाँ (Shore Fisheries)

४—नदियों और झीलों की मछलियाँ (Fresh Water Fisheries)

व्यापारिक दृष्टि से दूसरे और तीसरे प्रकार की मछलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

छिछले समुद्र की मछलियाँ

तट का समुद्र छिछला होता है, क्योंकि महाद्वीपों के चारों ओर भूमि धीरे-धीरे ढालू हो गई है और उस पर समुद्र का पानी आ गया है। यह छिछला समुद्र ही महाद्वीप का किनारा (Continental Shelf) कहलाता है। इसकी गहराई ६०० फीट से अधिक नहीं होती। १०० फैदम गहराई के उपरान्त समुद्र एक साथ अधिक गहरा हो गया है। इस छिछले समुद्र में प्रकाश खूब पहुँचता है, और भोजन की यहाँ बहुलता है। इस प्रदेश में नदियों का पानी, समुद्र का पानी, भूमि और हवा सब ही मिलते हैं इस कारण वहाँ भोजन की अधिकता के कारण जीव जन्तुओं को उत्पन्न होने की सुविधा है। लहरें तथा ज्वारभाटा बहुत सा भोजन तथा आक्सीजन (Oxygen) लाते हैं। और इसी भोजन पर मछलियाँ पलती हैं। छिछले समुद्र की मछलियों में निम्नलिखित मुख्य हैं। मसल (Mussel) कोकिल (Cockle) आयस्टर (Oyster) लाब्स्टर (Lobster) क्रैब (Crab) प्रौन (Prown) टरबौट (Turbot) स्केट (Skate) काड (Cod) और हैडाक (Haddock)

छिछले समुद्र के आगे फैले हुए विस्तृत समुद्र में पाई जाने वाली मछलियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये मछलियाँ उसी समुद्र में पाई जाती हैं जिसमें प्रकाश खूब पहुँचता हो। प्रकाश २५० फैदम गहराई पर बहुत कम पहुँचता है। अतएव जो समुद्र २५० फैदम से कम गहरा है उसकी ही खुले हुए समुद्र में गणना हो सकती है। इस समुद्र में समुद्र की घास तथा सूक्ष्म वनस्पति के अंश बहुत तैरते हैं। मछलियाँ इन्हीं को खाती हैं। मछलियाँ गरमी के घटने बढ़ने को सहन नहीं कर सकतीं। अतएव जहाँ कहीं गरम तथा ठंडे जल की धारा मिलती है वहाँ सूक्ष्म जीव अंश (Plankton) बहुत मर जाते हैं, अतएव मछलियों को भोजन खूब मिलता है। इन समुद्रों में ह्वेल (Whale) तथा उसकी जाति की मछलियाँ, मैकेरल (Mackerel) स्प्रैट्स (Sprats) पिलचर्ड (Pilchard) और हैरिंग (Herring) अधिकतर पाई जाती हैं।

खुले हुए समुद्र की मछलियाँ

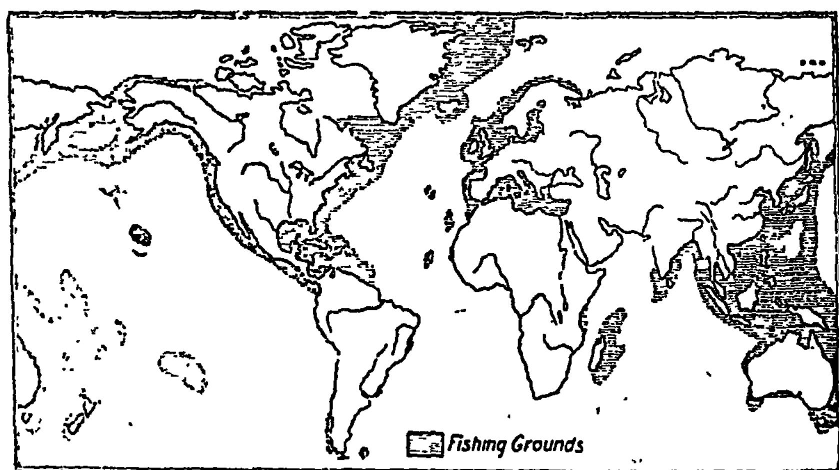
बहुत गहरे समुद्र में सर्वदा जाड़ा और सर्वदा रात्रि रहती है। वहाँ प्रकाश नहीं पहुँचता और न वहाँ किसी प्रकार की हलचल ही होती है। वहाँ वनस्पति नहीं होती केवल ऊपर से आने वाली वनस्पति तथा मरी हुई मछलियों पर ही इन अत्यन्त गहरे समुद्रों की मछलियाँ निर्भर रहती हैं। स्पंज, (Sponge) कोरल (Coral) समुद्र का कमल (Sea-Lilies) तथा अन्य बहुत प्रकार की मछलियाँ इन गहरे समुद्रों में पाई जाती हैं।

गहरे समुद्र

मछलियों को पकड़ने का धंधा उत्तर अटलांटिक (Atlantic) महासागर तथा उत्तर प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) में अधिक होता है। ठंडे जलवायु में मछलियाँ अधिक होती हैं। क्योंकि शीतोष्ण-कटिबन्ध के ठंडे पानी में कुछ थोड़ी सी जाति की ही मछलियाँ होती हैं और उनका स्वभाव एक साथ अगणित संख्या में जत्था बनाकर चलने का होता है, इस कारण उनको पकड़ने में आसानी होती है। यही नहीं शीतोष्ण कटिबन्ध में ठंडक होने के कारण मछली शीघ्र ही नष्ट नहीं हो जाती। इस कारण उसका धंधा सफलतापूर्वक चल सकता है। उत्तरी गोलार्द्ध में जिसको अटलांटिक तथा प्रशान्त महासागर घेरे हुए हैं—छिछला समुद्र (Continental Shelf) बहुत विस्तार में है और हज़ारों ही छोटी बड़ी नदियाँ अपना पानी तथा मिट्टी लाकर उसमें डालती हैं। इस कारण यहाँ बहुत अधिक मछलियाँ हैं। इसके अतिरिक्त शीतोष्ण कटिबन्ध के समुद्रों में

समीपवर्ती भूभाग की भूमि या तो उपजाऊ नहीं है या फिर आबादी बहुत घनी है, इस कारण बहुत से लोग मछली पकड़ने का धंधा करते हैं। यहाँ सुरक्षित बन्दरगाह बहुत हैं, समीपवर्ती वनप्रदेशों में नावें बनाने के लिए लकड़ी पर्याप्त मिलती हैं और ठंडे पानी में खतरनाक तथा जहरीली मछलियाँ कम होती हैं। इन सुविधाओं के कारण शीतोष्ण कटिबन्ध में मछलियाँ पकड़ने का धंधा अधिक होता है।

इसके विपरीत ऊष्ण कटिबन्ध के समुद्रों में मछलियों के लिए भोजन की कमी है। गरम पानी में बहुत जाति की मछलियाँ पाई जाती हैं इस कारण उन्हें पकड़ने की उतनी सुविधा नहीं है। इसके अतिरिक्त उष्ण कटिबन्ध में समुद्र अधिक गहरा है। २०० फैदम तक की गहराई का समुद्र अपेक्षाकृत



कम है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि २०० या २५० फैदम तक की गहराई में अधिकांश मछलियाँ मिलती हैं। गरम देशों में मछलियाँ शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं। इस कारण भी उनके व्यापार में कठिनाई होती है।

मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र निम्न लिखित हैं।

अटलांटिक महासागर में—

१—न्यू-फाउंड लैंड (New Foundland) लैब्राडर (Labrador) न्यू इङ्गलैंड (New England) और न्यू जरसी (New-Jersey) का समुद्री किनारा।

२—नार्थ सी (North Sea)।

३—आइसलैंड (Iceland) का समुद्र तट।

४—फ्लारिडा (Florida) का समुद्र तट।

प्रशान्त महासागर में—

१—कमचटका (Kamchatka) का पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वीय समुद्र।

२—उत्तरी अमेरिका का पश्चिमी समुद्र-तट।

३—चीन और जापान का समुद्र।

इन क्षेत्रों में काड (Cod) सालमन (Salmon) हैरिंग (Herring) और सारडीन (Sardines) सबसे महत्वपूर्ण मछलियाँ हैं।

सालमन (Salmon)

सालमन मछली शीतोष्ण कटिबन्ध के समुद्र की मुख्य मछली है। कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी समुद्र तट पर संसार में सबसे अधिक सालमन मछली मिलती है। इसके अतिरिक्त जापान समुद्र, स्कैनडिनेविया का मछली क्षेत्र तथा ब्रिटिश समुद्र-तट में सालमन (Salmon) बहुत मिलती है। प्रशान्त महासागर संसार में सबसे अधिक सालमन मछली उत्पन्न करता है। सालमन नदियों के जल में ही अंडे देती है। इस कारण यह बहुत दूर से चलकर नदियों के पानी में जहाँ वह समुद्र में मिलता है अंडे देती हैं। यही कारण है कि फ्रेज़र नदी में बहुत सालमन पकड़ी जाती हैं। फ्रेज़र (Fraser) और कोलम्बिया (Columbia) नदियों में सालमन बहुत अधिक पकड़ी जाती है। पगट-साऊंड (Puget Sound) के बन्दरगाह से बहुत सालमन विदेशों को भेजी जाती है। संसार में सालमन (Salmon) का व्यापार बहुत होता है।

काड (Cod)

काड की संसार में बहुत अधिक माँग है। संसार के प्रत्येक देश में काड (Cod) को खाया जाता है। काड (Cod) को उत्पन्न करने वाले दो मुख्य क्षेत्र हैं—

(१) (Iceland Bank) आइसलैंड का किनारा और (२) न्यू-फाऊँडलैंड (Newfoundland) तथा लैब्राडर (Labrador)। आइसलैंड के मछली क्षेत्र में अधिकतर फ्रेंच मछुये मछलियाँ पकड़ते हैं, कुछ अँग्रेज़, डैनिश, और नारवीजियन मछुये भी मछलियाँ पकड़ने का काम करते हैं। गरमी के मौसम में यहाँ बहुत चहल-पहल रहती है। मछलियों को नमक से लपेट कर मछुये नावों में जमा करके रखते जाते हैं और मौसम समाप्त होने पर उन्हें लाते हैं।

न्यू-फाऊंडलैंड तथा लैब्राडर का क्षेत्र आइसलैंड के क्षेत्र से अधिक

महत्वपूर्ण है। संसार में सबसे अधिक काड (Cod) यहीं से पकड़ी जाती है। किन्तु यहाँ मछली पकड़ना खतरनाक है, क्योंकि यहाँ कोहरा बहुत छाया रहता है और बर्फ की चट्टानें (Icebergs) बहती रहती हैं। मछलीं पकड़ने वाली नावें आपस में टकरा कर अथवा जहाज़ों और बर्फ की चट्टानों से टकरा कर नष्ट हो जाती हैं। उत्तर प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) में भी काड पकड़ी जाती है, किन्तु इतनी अधिक नहीं होती जितनी उत्तर अटलांटिक में होती है। काड (Cod) कनाडा, संयुक्त-राज्य अमेरिका, नार्वे, और न्यू-फाउंडलैंड से बाहर भेजी जाती है। अधिकांश काड योरोप, दक्षिण अमेरिका, तथा मध्य अमेरिका, के देशों को जाती है।

काड लिवर आयल (Cod liver oil) काड (Cod) मछली के जिगर को गरम करने से तैयार होता है। इस तेल की अधिक माँग होने के कारण अन्य मछलियों का तेल भी इसी नाम से बेचा जाता है। काड लिवर आयल का धंधा बृटेन, न्यू-फाऊन्डलैंड (Newfoundland) और नार्वे में अधिकतर होता है। इन्हीं देशों में यह तेल तैयार करके विदेशों को भेजा जाता है।

हैरिंग (Herring)

हैरिंग का उपयोग खाने में बहुत होता है। गरीब और मध्यम श्रेणी के व्यक्ति हैरिंग (Herring) ही अधिकतर खाते हैं। क्योंकि हैरिंग बहुत सस्ती होती है। हैरिंग उत्तर अटलांटिक विशेष कर संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के पूर्वीय समुद्र-तट पर बहुत मिलती है। जितने भी देश मछली पकड़ने के लिए प्रसिद्ध हैं वहाँ हैरिंग सब मछलियों से ज्यादा पकड़ी जाती है। यद्यपि हैरिंग मुख्यतया भोजन के लिए पकड़ी जाती है किन्तु उसका तेल भी बहुत निकलता है।

ह्वेल (Whale) और सील (Seal)

ह्वेल (Whale) मछली का शिकार पहले बहुत होता था क्योंकि तब मिट्टी का तेल रोशनी के लिए काम में नहीं लाया जाता था। उस समय ह्वेल मछली के तेल से ही घर में रोशनी की जाती थी। ह्वेल को ढूँढ़ कर पकड़ा जाता था, यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जब तेल को मनुष्य ने ढूँढ निकाला ह्वेल मछली बहुत कम हो गई थी। आज भी ह्वेल (Whale) मछली का शिकार उत्तरी महासागर (Arctic Ocean) में होता है। आइसलैंड (Iceland) के समीप, नार्वे से न्यू-फाऊन्डलैंड तक बेयरिंग (Behring) तथा

ओखटस्क (Okhotsk) समुद्रों में ह्वेल पाई जाती है। दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैंड, तथा आस्ट्रेलिया में काली ह्वेल मिलती है। डंडी (Dundee) और पीटरहैड (Peterhead) स्काटलैंड में; तथा न्यू बैडफोर्ड, (New Bedford) तथा सान फ्रैंसिसको (San Francisco) संयुक्तराज्य अमेरिका में, ह्वेल के मुख्य बन्दरगाह हैं।

सील (Seal) मछली की बहुत माँग है। उसकी मुलायम फर और खाल बहुत कीमती होती है। वास्तव में सील की खाल के नाम से जो वस्तु मिलती है वह असली सील मछली की नहीं होती किन्तु समुद्री रीछ की होती है। समुद्री रीछ बेरिंग समुद्र (Behring Sea) तथा प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) के दक्षिण में मिलता है।

फर सील (Fur Seal) उत्तर में बेरिंग समुद्र (Beiring Sea) में पाई जाती है। संसार में सबसे अधिक फर सील यहीं मिलती है। फर सील दक्षिणी गोलार्द्ध में हार्न अन्तरीप (Cape of Horn), दक्षिण अफ्रीका, तथा दक्षिण आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में भी मिलती है। सील मछली को पिछले वर्षों में इस बुरी तरह मारा गया कि सील के समाप्त होने की आशंका होने लगी। अतएव बृटेन, कनाड़ा, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान की सरकारों ने एक समझौता कर लिया है जिससे प्रति वर्ष कितनी सील पकड़ी जायँ यह निश्चित कर दिया जाता है।

जब सील को मारना आरम्भ किया गया था तो उस समय ऐसा अनुमान किया जाता था कि उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों में एक करोड़ से अधिक सील मछली थी क्रमशः सील मछली बहुत घट गई और जो कुछ चार पाँच लाख सील बच रही वह मुख्यतः संयुक्तराज्य अमेरिका के आधीन प्रिबिलाफ द्वीपों (Pribilof Islands) में ही रहती थी। यद्यपि संयुक्त-राज्य अमेरिका की सरकार ने उस झुंड की रक्षा करने का प्रयत्न किया किन्तु यह सम्भव नहीं हुआ क्योंकि गर्भवती सील का स्वभाव यह है कि वह वर्ष के अधिकांश भाग को समुद्रों में व्यतीत करती थी और वहाँ रूसी, अमेरिकन, जापानी तथा अंग्रेज़ी जहाज़ों द्वारा मारी जाती थी। अस्तु संयुक्तराज्य अमेरिका ने देखा कि सील का नाश होता जा रहा है तो १९११ में एक संधि की गई जिससे सील का मारना रोक दिया गया। जिस समय यह समझौता हुआ तो प्रिबिलौफ (Pribilof) द्वीप में केवल १२४,००० सील मछलियाँ रह गई थीं। किन्तु उस समझौते के उपरान्त उनकी संख्या बढ़ने लगी और आज पंद्रह लाख से भी अधिक सील हैं। संसार में फर उत्पन्न करने वाली सील मछली का यही प्रमुख झुंड है।

प्रति वर्ष राज्यकर्मचारी सील मछलियों की गणना करते हैं। और ३ वर्ष की उमर की मछलियों में जितनी नस्ल उत्पन्न करने के लिए आवश्यक होती हैं उतनी छोड़ दी जाती हैं मादा मछली को नहीं मारा जाता और नर मछली को जो नस्ल पैदा करने के लिए आवश्यक मछलियों से संख्या में अधिक है उनको मारा जाता है। समझौते के अनुसार जितने फर (खालें) मिलते हैं उनके ७० प्रति शत संयुक्तराज्य अमेरिका को १५ प्रतिशत ब्रिटेन को और १५ प्रतिशत जापान को बट जाते हैं। वर्ष भर में एक लाख फर उत्पन्न होते हैं।

मोती (Pearl-fish)

मोती एक प्रकार की मछली से निकाला जाता है जो गरम समुद्रों में पाई जाती है। मोती मलाया समुद्र (Malaya Sea) आस्ट्रेलिया के उत्तर-पश्चिमी तट पर, लंका के उत्तर में, फारस की खाड़ी में, लाल समुद्र में, कैलीफोर्निया की खाड़ी में, तथा पनामा की खाड़ी में मिलते हैं। कुछ नदियों में विशेष कर जर्मनी, अमेरिका और चीन की नदियों में बहुत बड़े और चमकदार मोती पाये जाते हैं।

स्पंज (Sponge)

स्पंज एक प्रकार के समुद्री जन्तु का रेशेदार ढाँचा है। इसको साफ करके तथा सुखा कर बाहर भेजा जाता है। सबसे अधिक स्पंज भूमध्य सागर (Mediterranean) तथा एड्रियाटिक (Adriatic) समुद्र से निकलता है। स्पंज छिछले समुद्र में मिलता है। बहामा द्वीप के समीप भी स्पंज बहुत मिलता है। स्पंज की अधिक माँग के कारण स्पंज को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। स्पंज के बीज (Seed Sponge) पत्थरों पर तारों से बाँध दिये जाते हैं और समुद्र के तल पर बढ़ने के लिए रख दिये जाते हैं।

आयस्टर (Oyster)

संयुक्त राज्य अमेरिका के तटीय समुद्र में सालमन (Salmon) को छोड़कर यही सबसे महत्वपूर्ण मछली है। यह मछली खाने में स्वादिष्ट होती है और छिछले समुद्र तथा नदियों के मुहाने में अधिकतर मिलती है। यह इङ्गलिश चैनल (English Channel), बिसके की खाड़ी (Bay of Biscay) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमीय तट पर बहुत मिलती हैं। संयुक्तराज्य के अटलांटिक समुद्र-तट पर भी आयस्टर बहुत मिलती है।

मछली शीघ्र ही ख़राब हो जाने वाली वस्तु है। इस कारण शीत भण्डार रीति (Refrigeration) के आविष्कार होने के उपरान्त उसको पकड़ने

का धन्धा उन्नति कर गया है। कुछ समय से मछली को जमा कर बाहर भेजने की रीति का आविष्कार हुआ है जिससे मछली के व्यापार को और भी प्रोत्साहन मिला है।

आज कल मछली को केवल भोजन के लिए ही नहीं पकड़ा जाता। मछली से बहुत तरह के औद्योगिक पदार्थ मिलते हैं, उसकी उत्तम और मूल्यवान खाद बनती है। मछली का तेल औषधियों, मशीनों को चिकना करने, साबुन बनाने, चमड़ा कमाने तथा औद्योगिक कार्यों के काम में लाया जाता है। किसी किसी मछली की खाल से बहुत अच्छा चमड़ा तैयार होता है। उदाहरण के लिए शार्क (Sharc) का चमड़ा मूल्यवान होता है। यही नहीं मछली का उपयोग पशुओं और मुर्गियों को खिलाने में भी होता है। दूध देने वाले पशुओं और अंडा देने वाली मुर्गियों को मछली से बना हुआ भोज्य पदार्थ (Fish Meal) देने से वे दूध और अंडा अधिक देती हैं। इस प्रकार मछली का उपयोग होने से जो बहुत कुछ मछलियों का अंश व्यर्थ में नष्ट हो जाता था वह अब नष्ट नहीं होगा। यह पशु भोजन बहुत ही लाभप्रद है, केवल उसका मूल्य अधिक होने के कारण ही उसका उपयोग कम होता है।

संसार में मछली के धंधे की दृष्टि से निम्नलिखित देश महत्वपूर्ण हैं—जापान, वृटेन, संयुक्त-राज्य अमेरिका, नार्वे, जर्मनी, कनाडा, और फ्रांस। जापान की स्थिति मछली के धंधे के बहुत अनुकूल है। बहुत अधिक लम्बाई में हज़ारों की संख्या में छोटे बड़े द्वीप समुद्र में फैले हुए हैं। इस कारण मनुष्य इस धंधे को आसानी से कर सकते हैं। साथ ही जापान में जनसंख्या घनी है किन्तु खेती योग्य भूमि देश में केवल १६ प्रतिशत है, इस कारण भी जापानियों को मछली के धंधे में लगना पड़ता है। जापान में किसान खेती के साथ मछली पकड़ने का भी काम करते हैं। देश की लगभग १० प्रतिशत जनसंख्या इस धंधे में लगी हुई है। जापान के तटीय समुद्र में ही यह धंधा अधिक होता है। जापान में अधिकांश सारडिन (Sardine) हैरिंग (Herring) तथा मैकेरल (Mackerel) मछलियाँ मिलती हैं। जापानी मछुये चीन समुद्र तथा पीले समुद्र में मछली पकड़ते हैं। नागासाकी (Nagasaki) बन्दरगाह इस धंधे का प्रधान केन्द्र है। हाकैडो (Hokkaido) द्वीप भी इस धंधे के लिए बहुत ही उपयुक्त है और यहाँ बहुत अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

जापान में मछलियों की बहुत खपत है, इस कारण वहाँ से अधिक मछली विदेशों को नहीं भेजी जाती। जो कुछ भी मछली बाहर भेजी जाती हैं वह चीन को जाती हैं।

सैकड़ों वर्ष पूर्व चीनी और जापानियों ने यह जान लिया था कि (घने आबाद देशों में) नदियों और तालावों में मछलियाँ उत्पन्न करके भोजन उत्पन्न करना एक सरल उपाय है। इन देशों में बहुत पुराने समय से मछलियों को तालावों और नदियों में उत्पन्न करने का धंधा चलता आया है। जर्मनी में भी हज़ारों बड़े छोटे तालाबों में मछलियाँ उत्पन्न करने का धंधा संगठित रूप से होता है। मछलियों को अनाज, आलू, माल्ट, बूचर खानों का बचा हुआ मांस खिलाया जाता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि बहुत से देशों में मछलियों को पकड़ने में अत्यधिक लापरवाही की गई। इस कारण कुछ मछलियाँ लगभग समाप्त सी हो गई। अब बहुत से देशों में सरकारी विभाग अरबों की संख्या में अंडों से बच्चे निकालते हैं और मादा (Fry) को नदियों और झीलों में छोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त मछलियों के पकड़ने के ढंग में भी सुधार किये जा रहे हैं, जिससे उनकी कमी न हो जावे।

यदि वास्तव में देखा जावे तो समुद्र में मछलियों के रूप में अनन्त राशि में भोजन भरा हुआ है। मनुष्य ने इस भोजन का अभी पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया है। भविष्य में यदि वैज्ञानिक ढंग से धंधे को चलाया गया तो मछलियों से अधिकाधिक भोजन प्राप्त हो सकेगा, और मछलियाँ भी कम नहीं होंगी क्योंकि मछलियों की बढ़वार बहुत अधिक होती है।

अभ्यास के प्रश्न

१—मछलियों के क्षेत्र का महत्व किन भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर है समझा कर लिखिए।

२—संसार के मुख्य मछली-क्षेत्र कौन से हैं?

३—अधिकांश मछली-क्षेत्र शीतोष्ण कटिबंध में क्यों हैं?

४—छिछले समुद्र का मछली के धंधे की दृष्टि से क्या महत्व है?

५—संसार में आर्थिक दृष्टि से मुख्य मछलियाँ कौन सी हैं और वे कहाँ मिलती हैं?

६—जापान के मछला के धंधे का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

७—सील मछली का क्या महत्व है, वह कहाँ पाई जाती है उसकी इतनी कमी क्यों हो गई और उसको बढ़ाने के लिए क्या उपाय किया जा रहा है?

८—अमेरिका तथा ब्रिटिश समुद्र-तट के मछली-क्षेत्र का वर्णन कीजिए।

पाँचवाँ परिच्छेद

मुख्य धंधे—वन-सम्पत्ति (Forests)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य की उन्नति के लिए वन अत्यन्त आवश्यक है। यही नहीं कि वनों से हमें बहुमूल्य लकड़ी मिलती है वरन् भाँति-भाँति के अन्य पदार्थ भी मिलते हैं जिन पर बहुत से धंधे निर्भर हैं। यहाँ तक कि वनों का देश की जलवायु तथा भूमि पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। सच तो यह है कि आधुनिक सभ्यता के लिए वन अत्यन्त आवश्यक हैं। आरम्भ में मनुष्य ने मूर्खतावश वनों को नष्ट कर दिया परन्तु अब प्रत्येक देश में वनों की रक्षा तथा उनकी उन्नति करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक देश में वनों की उन्नति तथा रक्षा करने के लिए वन-विभाग स्थापित कर दिए गए हैं जो उनकी देख भाल करते हैं।

वनों से होने वाले लाभ

यद्यपि आधुनिक सभ्यता के प्रादुर्भाव के साथ ही मनुष्यों ने वनों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया और पुराने घने आबाद देशों में बहुत से बहुमूल्य वन काट कर साफ कर दिए गए किन्तु आश्चर्य की बात है कि आधुनिक औद्योगिक सभ्यता वन सम्पत्ति पर बहुत अधिक निर्भर है। इस सत्य को सबसे पहले फ्रैंच तथा जर्मन वैज्ञानिकों ने आज से सवा दो सौ वर्ष पहले मालूम किया और उन्होंने वनों को काटने के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई। जर्मनी और फ्रांस में वनों को नष्ट करने का कार्य रोक दिया गया और वहाँ उनकी रक्षा की जाने लगी। इसके उपरान्त संसार के सभी राष्ट्रों ने वनों के राष्ट्रीय महत्व को समझा और वनों की रक्षा के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। आज का सभ्य पुरुष वनों की सम्पत्ति का जितना उपयोग करता है उतना वनों में रहने वाला असभ्य मनुष्य वनों का उपयोग नहीं करता था। आधुनिक सभ्यता वनों के नष्ट हो जाने पर थोड़े दिन भी जीवित नहीं रह सकती। वनों का लाभ केवल इतना ही नहीं है कि हमें उनसे मूल्यवान पदार्थ मिलते हैं वरन् उनका प्रभाव देश के समस्त आर्थिक जीवन पर बहुत गहरा पड़ता है। वनों से हमें कुछ तो प्रत्यक्ष

लाभ होते हैं और कुछ अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं जो बहुत ही महत्व-पूर्ण हैं।

वनों से अप्रत्यक्ष लाभ (Indirect-advantages of Forests)

१—पहाड़ों के ढालों पर खड़े हुए जंगलों को काट डालने से नीचे बसे हुए गाँवों तथा नगरों का जीवन ख़तरे में पड़ जाता है। जब वर्षा का जल पहाड़ के ढालों पर वन न होने के कारण स्वच्छंद गति से बहता है तो वह चट्टानों और भूमि को काटता है मिट्टी का कटाव (erosion) करता है जिससे बहुत सा प्रदेश नष्ट हो जाता है उसमें कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। यही नहीं वनों के वृक्ष पहाड़ी प्रदेश में नदी को अपनी धारा में बहने के लिए विवश कर देते हैं। नदी का जल वनों के कारण नियंत्रण में रहता है और जब नदी पहाड़ी प्रदेश में नियंत्रण में रहना सीख लेती है तो मैदानों में भी वह सीधी बहती है। किन्तु पहाड़ों पर खड़े हुए वनों को काट देने का परिणाम यह होता है कि नदियों में भीषण बाढ़ आती है और नीचे मैदानों में बसने वाली जनसंख्या का सत्यानाश कर देती है। चीन वासियों ने वनों को काट डालने की जो भयंकर भूल की थी उसका मूल्य वे अपने विनाश से आज चुकाते हैं। प्रतिवर्ष वहाँ की प्रमुख नदियों ह्वांगहो तथा यंगिटसीक्यांग इत्यादि में भयंकर बाढ़ आती है और लाखों घर नष्ट हो जाते हैं। यही नहीं पहाड़ों के ढालों पर खड़े हुए वनों के नष्ट हो जाने से उपजाऊ घाटियाँ कंकड़ पत्थर से पट जाती हैं और वहाँ की पैदावार नष्ट हो जाती है। ऐसी दशा में मनुष्य असहाय हो जाता है। खेती का धंधा चौपट हो जाता है और वह प्रदेश वीरान हो जाता है।

२—वनों से वर्षा अधिक तथा निश्चित होता है। वनस्पति पानी भरे बादलों को अपनी ओर खींचती है। पहले नील नदी के डेल्टा में वर्ष में केवल ६ वर्षा के दिन होते थे किन्तु वहाँ लाखों की संख्या में वृक्ष लगाये गए और अब वहाँ वर्ष में ४० दिन वर्षा के होते हैं। जिन देशों में वनों को बहुत अधिक काट डाला गया वहाँ वालों का अनुभव है कि वर्षा कम और अनिश्चित हो गई। भारतवर्ष के लोगों का भी यही अनुभव है। वनों के कट जाने से वहाँ वर्षा कम और अधिक अनिश्चित हो गई।

३—वन जलवायु और विशेषकर तापक्रम को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। वृक्ष प्रति दिन बहुत सा जल पत्तियों द्वारा वायु को देते रहते हैं इस

कारण गरम प्रदेशों में वनों के कारण समीपवर्ती प्रदेश का तापक्रम कम हो जाता है।

४—वन पानी को खेती के लिए सुरक्षित रखने और उसका भली प्रकार नियंत्रण करने में भी सहायक होते हैं। वृक्षों की अगणित जड़ें भूमि में असंख्य सूक्ष्म छिद्र कर देती है और वहाँ की भूमि एक विशाल स्पंज के समान बन जाती है जो वर्षा के अतिरिक्त जल को सोख लेती है और इस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में जो जल श्रोत बह रहा है उसको ऊँचा उठा देती हैं। इसका परिणाम यह होता है खेती की सिंचाई के लिए जो कुयें खोदे जाते हैं उनमें पानी कम गहराई पर ही निकल आता है जिसके कारण सिंचाई में सुविधा होती है और व्यय कम होता है।

५—जिस प्रदेश पर वन होते हैं वहाँ की भूमि उपजाऊ बन जाती है क्योंकि उस पर पत्तियाँ, घास, पैाधे इत्यादि उत्पन्न होकर फिर सड़ गल और सूख कर मिट्टी में मिलते रहते हैं अतएव वहाँ की भूमि उपजाऊ बन जाती है।

६—वन तेज हवाओं को रोक कर उनकी गति धीमी कर देते हैं जिससे वे खेती तथा आबादी को हानि नहीं पहुँचा पाती।

अप्रत्यक्ष लाभों के साथ-साथ वनों से हमें बहुत प्रत्यक्ष लाभ भी हैं:—

वनों से होने वाले प्रत्यक्ष लाभ (Direct advantages of Forests)

१—वनों से हमें बहुत प्रकार की बहुमूल्य लकड़ी मिलती है जिसका उपयोग इमारतों, जहाज़ों, रेल के डिब्बे, रेलवे-स्लीपर, फर्निचर, खिलौने इत्यादि के बनाने में होता है।

२—वनों से हमें कागज़, दियासलाई, तारपीन का तेल, बीरोज़ा, लाख, रबर, गोंद, गटापार्चा, कपूर, चमड़ा कमाने के लिए फल और छाल (Tanning material) ऐल्काहल, बनाने के लिए उपयोगी पदार्थ मिलते हैं।

३—वनों से हमें बहुत प्रकार की जड़ी-बूटी मिलती हैं जो औषधियों के काम में आती हैं।

४—वनों में जंगली जानवर मिलते हैं जिनकी खाल उपयोगी होती है।

५—वनों में चारे का अटूट भंडार होता है जिससे वहाँ दूध, घी मक्खन का धंधा खूब पनपता है और पशुपालन खूब होता है।

वन उन्हीं प्रदेशों में उग सकते हैं जहाँ गरमी के महीनों में कम से कम ५०° फै० से गरमी कम न रहती हो, और जहाँ गरमी के महीनों में कम से कम कुछ वर्षा २ इंच से ५ इंच तक अवश्य होती हो। जहाँ वर्षा अधिक और गरमी खूब पड़ती है वहाँ सघन वन होते हैं।

वन तीन प्रकार के हैं। (१) कानीफरेस (Coniferous) वन। इन वनों में उत्पन्न होने वाले वृक्षों की पत्तियाँ नुकीली और लम्बी होती हैं। (२) पतझड़ वाले वन (Deciduous forests) इनकी पत्तियाँ पतझड़ के मौसम में झड़ जाती हैं। यह वन शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) में पाये जाते हैं। (३) सदा हरे रहने वाले ऊष्ण कटिबन्ध के वन (Tropical ever-green forest) यह वन सदा हरे रहते हैं और बहुत ही घने होते हैं। कानीफेरस (Coniferous) वनों में उत्पन्न होने वाले वृक्षों की लकड़ी मुलायम होती है किन्तु पतझड़ तथा सदा हरे रहने वाले ऊष्ण कटिबन्ध के वनों के वृक्षों की लकड़ी बहुत कड़ी होती है।

पृथ्वी में जितने क्षेत्रफल पर वन प्रदेश हैं (पृथ्वी के क्षेत्रफल का पाँचवाँ भाग वनों से ढका हुआ है) उसका आधे भाग के लगभग सदा हरे रहने वाले ऊष्ण कटिबन्ध के वनों से आच्छादित है। लगभग ३५% क्षेत्रफल पर कानीफेरस (Coniferous) वन हैं और शेष १५ प्रतिशत पतझड़ वाले वन (Deciduous forest) खड़े हुए हैं।

पृथ्वी में वनों का विस्तार इस प्रकार है :—

महाद्वीप	दस लाख एकड़ में	समस्त भूमि की तुलना में	पृथ्वी के समस्त वन प्रदेश का प्रतिशत
एशिया	२०९६	२२ प्रतिशत के लगभग	२८%
दक्षिण अमेरिका	२०९२	४४ ,, ,,	२८%
उत्तरी अमेरिका	१४४३	२७ ,, ,,	१९%
अफ्रीका	७९७	११ ,, ,,	११%
योरोप	७७४	३१ ,, ,,	१०%
आस्ट्रेलिया	२८३	१५ ,, ,,	४%

सोवियत रूस प्रजातंत्र के वन प्रदेश बहुत विस्तृत हैं। संसार के किसी भी देश में इतने विस्तृत वन नहीं हैं। पृथ्वी के समस्त वन प्रदेश का पाँचवाँ

हिस्सा केवल सोवियत रूस में ही हैं। सोवियत रूस के उपरान्त कनाडा, संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्राज़ील तथा हिमालय प्रदेश के वन प्रदेश सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

कानीफेरस (Coniferous) वन

उत्तरी गोलार्द्ध में कानीफ़ेरस वन (Coniferous) उत्तरी अमेरिका से यूरेशिया के उत्तरी भाग में फैले हुए हैं। एशिया में इस वन प्रदेश की दक्षिणी सीमा ५५° अक्षांश रेखा (Latitude) तक है। उत्तर पश्चिम योरोप में इस वन प्रदेश की दक्षिणी सीमा ६०° ३ अक्षांश रेखा है। उत्तरी अमेरिका के पूर्व में यह वन ४५° ऊ अक्षांश रेखा तक मिलते हैं। दक्षिण गोलार्द्ध में कानीफ़ेरस वन इतने विस्तृत नहीं हैं जितने उत्तरी गोलार्द्ध में। कानीफेरस वन निम्नलिखित प्रदेशों में पाये जाते हैं। कनाडा, संयुक्तराज्य अमेरिका, मैक्सिको, योरोप, एशियाई रूस, मंचुकाऊ (मंचूरिया), उत्तरी जापान, न्यूजीलैंड, ब्राजील, अरजैनटाइन (Argentine) और चाइल (Chile)। ये वन प्रदेश उन भूमागों में हैं जहाँ ठंड के मौसम में ठंड बहुत पड़ती है और गरमियों में गरमी पड़ती है। इन प्रदेशों में वर्षा अधिक नहीं होती किन्तु वर्षा वर्ष भर लगातार होती रहती है। इन वनों में बहुमूल्य लकड़ी उत्पन्न होती है। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों में पाइन (Pine) हैमलाक (Hemlock) स्प्रूस (Spruce) और सनोवर (fir) लार्क (Lareh) लाल लकड़ी (Red-wood) के वृक्ष मुख्य हैं। जहाँ की जलवायु अधिक अनुकूल होती है वहाँ ये वृक्ष बहुत बड़े हो जाते हैं। कहीं कहीं पाइन वृक्षों की लकड़ी उपयोगी और नरम होती है। इन्हीं वनों की लकड़ी से तारपीन का तेल (पाइन से निकाला जाता है) बीरोज़ा, तथा अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं। लकड़ी की लुन्दी बनाई जाती है जिससे कागज तैयार होता है। और इमारत तथा फर्निचर के लिए लकड़ी प्राप्त होती है।

पतझड़ के वन (Deciduous-forests)

पतझड़ के वन मध्य तथा दक्षिण योरोप में बहुत फैले हुए हैं। पश्चिमी योरोप तथा मध्य रूस में भी पतझड़ के वन हैं उत्तर चीन, जापान, अपलेशियन पहाड़ के दोनों ओर मिसीसिपी नदी के पश्चिम में पैटेगोनिया (Patagonia) तथा दक्षिण चाइल में यह वन खड़े हुए हैं। किन्तु अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में यह नहीं मिलते। पतझड़ वाले वनों में मुख्य वृक्ष निम्नलिखित हैं:—

ओक (Oak) यम (Elm) वालनट (Walnut) मैपिल (Maple) चेस्टनट (Chestnut) बीच, (Beech) पापलर (Poplar) ऐश (Ash) ।

इन वनों की लकड़ी इमारत तथा फर्नीचर के काम अधिक आती है। पतझड़ वाले वनों की लकड़ी नरम नहीं होती वरन कठोर होती है। यह वन उपजाऊ भूमि पर खड़े हुए हैं इस कारण पूर्व काल में इनको साफ करके भूमि पर खेता करने का क्रम लगातार जारी रहा अब किन्तु योरोपीय देशों की सरकारें इनकी सतर्कतापूर्वक रक्षा करती हैं।

उष्ण कटिबन्धीय के सदा हरे रहने वाले वन (Tropical forest)

उष्ण कटिबन्ध के सदा हरे रहने वाले वन मुख्यतः दक्षिणी अमेरिका, मध्य अमेरिका, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) में पाये जाते हैं। इन वनों में देवदारु (Teak) मैहोगनी (Mahogany) और बाँस अधिक पाया जाता है। लकड़ी की अपेक्षा ये वन लाख, गोंद, भिन्न-भिन्न प्रकार की औद्योगिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण घासों, तथा रंग पैदा करने वाली वस्तुओं को अधिक उत्पन्न करते हैं। ये वस्तुयें वनों से आसानी से इकट्ठी की जा सकती हैं क्योंकि मार्गों की सुविधा न होने पर भी इनके इकट्ठा करने में कठिनाई नहीं होती।

यद्यपि उष्ण कटिबन्ध के वनों का विस्तार बहुत अधिक है परन्तु व्यापारिक दृष्टि से उनका महत्त्व बहुत कम है। व्यापारिक दृष्टि से कानीफ़ेरस (Coniferous) वन सबमें अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कागज बनाने के लिए लकड़ी इन्हीं वनों से मिलती है। वनों से मिलने वाले पदार्थों का ८० प्रतिशत इन जंगलों से मिलता है। पतझड़ वाले वनों से केवल फर्नीचर के लिए लकड़ी मिलती है। ये वन सब वनों से मिलने वाली लकड़ी का लगभग १८ प्रतिशत उत्पन्न करते हैं और उष्ण कटिबन्ध के वन केवल २% प्रतिशत लकड़ी उत्पन्न करते हैं।

भिन्न भिन्न वृक्षों की लकड़ी जिनका व्यापारिक दृष्टि से अधिक महत्व है निम्नलिखित हैं।

नरम लकड़ियाँ

पाइन (Pine) फर (Fir) हैमलाक (Hemlock) स्प्रूस, (Spruce) साइप्रैस, लाल लकड़ी (Red-wood) सीडार (Cedar) लार्च (Larch) टेमारक (Tamarack)

कठोर लकड़ियाँ (Hard-woods)

ओक (Oak) मैपिल (Maple) पोपलर (Poplar) गम (Gum) चेस्टनट (Chestnut) बीच (Beech) बर्च (Birch) बैसवुड (Bass-wood) यम (Elm) काटनवुड (Cotton wood) ऐश (Ash) हिकारी (Hickory) वालनट (Walnut) साइकामोर (Sycamore) चैरी (Cherry) मेहागनी (Mahogany) और देवदारू (Teak)

संयुक्त राज्य अमेरिका के वन

संयुक्तराज्य अमेरिका का वन प्रदेश ५५ करोड़ एकड़ भूमि पर फैला हुआ है। इन वनों में अत्यन्त बहुमूल्य लकड़ी भरी पड़ी है। संयुक्तराज्य अमेरिका में सात मुख्य लकड़ी के धंधे के क्षेत्र हैं जहाँ के वनों से लकड़ी प्राप्त होती है।

१—उत्तर-पूर्व का वन प्रान्त—इस क्षेत्र में न्यू इगलैंड तथा ऐड्रिानडक (Adirondack) के वन सम्मिलित हैं। यहाँ का प्रदेश ऊँचा है और ठंडक बहुत पड़ती है इस कारण यह खेती के लिए अनुपयुक्त है। इस पहाड़ी प्रदेश में मार्गों की सुविधा न होने के कारण यहाँ रेल इत्यादि नहीं हैं परन्तु जाड़ों में बर्फ जम जाती है। अतएव लकड़ी के लट्ठे घोड़ों द्वारा बर्फ पर आसानी से खींचे जाते हैं। जब लकड़ी के बड़े-बड़े ढेर नदी पर आ जाते हैं और नदी का बर्फ पिघलता है तो लकड़ी के लट्ठे उसमें बह कर शहरों के समीप पहुँच जाते हैं। लकड़ी को शहरों के समीप तक लाने की सुविधा के कारण ही प्रान्त में लकड़ी का धंधा पनप उठा है। इस वन प्रदेश में पाइन् (Pine) स्प्रूस (Spruce) और हैमलाक (Hemlock) बहुत मिलता है।

झीलों के समीपवर्ती वन प्रदेश

इसमें विसकान्सिन (Wisconsin) मिचिगन तथा मिनसोटा (Minnesota) के वन प्रदेश सम्मिलित हैं। इन वनों में सफेद पाइन, स्प्रूस, और हैमलाक मिलता है। किन्तु यहाँ के वन बहुत कुछ समाप्त हो गए हैं इस कारण उसका महत्व कम हो गया है। झीलों के जल मार्ग तथा बर्फ के जमने से लकड़ी को लाने की यहाँ भी सुविधा है।

अपलेशियन

अपलेशियन पहाड़ी प्रदेश के वन दक्षिण न्यू-यार्क से ज्यार्जिया (Georgia) और अल्बामा (Albama) के उत्तरी भाग तक फैले हुए हैं। इस वन प्रदेश में हैमलाक

पहाड़ी प्रदेश के वन

(Hemlock) बहुत मिलता है। स्प्रूस (Spruce) तथा पीला और सफ़ेद पाइन (Pine) भी इन वनों में अधिकता से पाया जाता है। इस वन प्रदेश में पहाड़ों का अत्यधिक ढाल तथा बर्फ़ की कमी के कारण स्लेड (एक प्रकार की गाड़ी जो बर्फ़ पर चलती है) का उपयोग नहीं हो सकता। इस कारण लकड़ी को लोहे के बड़े बड़े वैगनों में भर कर नीचे ले जाते हैं।

कठोर लकड़ी के जंगल

ये वन मध्य में स्थित हैं। उनमें ओक (Oak) हिकारी (Hickory) चेस्टनट (Chestnut) ट्यूलिप (Tulip) काला वालनट (Black Walnut) तथा ऐश (Ash) मिलते हैं।

अरकांसस (Arkansas) टेनेसी (Tennessee) पश्चिम विरजीनिया (West Virginia) मिचिगन और विसकन्सिन (Wisconsin) रियासतें सबसे अधिक लकड़ी उत्पन्न करती हैं। इंडियाना (Indiana) ईवैन्सविली (Evansville) तथा मैमफिस (Memphis) लकड़ी की प्रसिद्ध मंडिया हैं। मैमफिस (Memphis) कठोर लकड़ी की संसार में सबसे बड़ी मंडी है।

दक्षिण पाइन के वन

यह वन अटलांटिक समुद्र-तट के समीपवर्ती तटीय मैदान में हैं। इस वन प्रदेश में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वृक्ष पीला पाइन (Yellow pine) है। यह कठोर और बहुत मज़बूत होता है। इस वन प्रदेश की भूमि समतल तथा रेतीली है इस कारण वनों से लकड़ी काटकर लाने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। अटलांटिक महासागर के बन्दरगाहों से बहुत लकड़ी विदेशों को जाती है।

पश्चिमी मिसिसिपी तथा राकी पर्वत के वन

मिसिसिपी वन प्रदेश में भी ओक (Oak) मैपिल (Maple) हिकारी (Hickory) तथा ऐश (Ash) इत्यादि वृक्ष मिलते हैं। किन्तु राकी पर्वत पर कानीफेरस (Coniferous) वन हैं, वहाँ पाइन, स्प्रूस और फर बहुत मिलता है।

प्रशान्त महासागर के ढाल के वन

ये वन संसार में सबसे अधिक लकड़ी उत्पन्न करते हैं। कैलीफोर्निया (California) के वन तो प्रसिद्ध ही हैं। लाल लकड़ी (Red-Wood) डोगलास फर (Doglas fir) मुख्य वृक्ष हैं। इन वृक्षों की ऊँचाई सौ फीट से भी अधिक होती है और उनके तने की मोटाई ८ से १०

फिट तक होती है। इतने भारी वृक्षों को लकड़ी के कारखानों तक पहुँचाना कठिन है। इस कारण बहुत सी लकड़ी व्यर्थ में खड़ी खड़ी नष्ट हो जाती हैं। साधारण गाड़ियों में यह लकड़ी नहीं लाई जा सकती है। इस कारण इंकी ऐंजिनों से लकड़ी के लट्ठों को खिंचवाया जाता है। प्रशांत महासागर के तटीय प्रदेशों के वनों से बहुत लकड़ी पूर्व की तरफ भेजी जाती है।

कनाडा के वन

कनाडा का सारा भूभाग पहले वन से अच्छादित था किन्तु बाद में दक्षिण तथा पूर्व के झील प्रदेश तथा अन्य प्रान्तों में वनों को काट कर उन्हें साफ कर लिया गया। इसके उत्तर में सारा देश अब भी वनों से भरा है। कनाडा के वन कानीफेरस हैं। बहुत उत्तर में वन क्रमशः कम हो गये हैं। कनाडा के वनों में अत्यधिक आग लगते रहने के कारण वहाँ वृक्षों की बढ़वार अधिक नहीं होती। कनाडा में लगभग ६० करोड़ एकड़ भूमि पर वन हैं।

योरोप के वन

भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के उत्तर में सारा योरोप वास्तव में एक वन प्रदेश ही है। किन्तु जनसंख्या की अत्यधिक बढ़वार के कारण वन साफ कर दिये गए हैं। और अब योरोप के अधिकांश देशों में बहुत कम जंगल रह गए हैं। इस कारण इन देशों में वैज्ञानिक ढंग से वनों की उन्नति करने और लकड़ी का किफायत से उपयोग करने का प्रयत्न किया जाता है। योरोप में केवल कुछ ही ऐसे देश हैं जो लकड़ी अन्य देशों को भेजते हैं वे हैं, फिनलैंड (Finland) स्वीडन (Sweden) नार्वे (Norway) और रूस। इन्हीं देशों से अन्य देशों को लकड़ी भेजी जाती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य देशों में वन हैं ही नहीं। योरोपीय देशों के वनों का क्षेत्रफल नीचे लिखे अनुसार है।

देश	वनों का क्षेत्रफल हज़ार एकड़ में	वनों का देश की तुलना में क्षेत्रफल
ब्रिटेन	३,३१५	४.३ प्रतिशत
रूस (योरोपीय)	४४०,०००	३८.७ "
सायबेरिया	१०८३,५००	३०.५ "
फ्रांस	२४,४२०	१८.४ "
जर्मनी	३०,६०५	२३.८ " (यह १९३९ के पूर्व के अंक हैं)

देश	वनों का क्षेत्रफल हज़ार एकड़ में	वनों का देश की तुलना में क्षेत्रफल
इटली	१४,२५२	१८.१
स्पेन	१६,८८६	१३.६
नार्वे	१७,०३७	२१.४
स्वीडन	५५,५५०	५४.८
फिनलैंड	४६,४१०	६०.०
स्वीटज़रलैंड	२,३२०	२२.७

नार्वे तथा स्वीडन का प्रदेश पहाड़ी है, तथा अधिकांश भाग खेती के लिए अनुपयुक्त है। उस पर वनों के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न ही नहीं होता। वास्तव में नार्वे, स्वीडन, तथा बाल्टिक प्रदेश के वन फिनलैंड और रूस में होते हुए सायबेरिया तक फैले हुए हैं। इन प्रदेशों में पाइन, लार्च और स्प्रूस खूब होता है। जब वसंत में फिनलैंड और स्वीडन की नदियों की बर्फ पिघलने लगती है तो ये नदियाँ अनन्त राशि में लकड़ी को बहा कर बाल्टिक समुद्र के कारखानों में ले जाती हैं, जहाँ उनके लट्टे, कागज़ की लुब्दी, तथा कागज़ तैयार होकर बाहर भेजा जाता है। मध्य येरोप में फ्रांस, आल्पस पर्वतीय प्रदेश, मध्य राइन, उत्तर जर्मनी, चेकोस्लावाकिया, तथा पोलैंड के वन हैं जो वास्तव में एक दूसरे से मिले हुए हैं। इन देशों में बड़ी सतर्कता पूर्वक वनों की देख भाल की जाती है तथा उनकी खूब उन्नति की गई है। इसमें अधिकांश वनों को तो लगाया गया है, क्योंकि येरोप में लकड़ी की कमी है। ब्रिटेन ही एक ऐसा देश है जहाँ वन लगभग हैं ही नहीं, केवल ४ प्रतिशत भूमि पर वन खड़े हैं।

रूस के उत्तरी वन प्रान्त कार्नीफेरेस (Coniferous) वृक्षों से भरे हुए हैं, बीच में मिलावट के वृक्ष हैं और दक्षिण में केवल पतझड़ वाले वृक्ष ही पाये जाते हैं। उत्तर के कार्नीफेरेस (Coniferous) वन बाल्टिक समुद्र से सुदूर पूर्व में आखट्स्क (Okhotsk) तक फैले हुए हैं। संसार में इन वनों के बराबर बहुमूल्य लकड़ी कहीं भी नहीं है। वास्तव में देखा जावे तो येरोप तथा एशिया के लिए यहाँ प्रकृति ने लकड़ी का अटूट भंडार भर रक्खा है। वैसे तो सारे रूस में लकड़ी का धंधा होता है परन्तु पश्चिम में जहाँ बड़े बड़े नगर हैं यह विशेष रूप से केन्द्रित है। उत्तर में डुइना-नदी के समीप

यह धंधा तेजी से बढ़ रहा है। आरचौंगल (Archangel) लकड़ी के धंधे का प्रसिद्ध केन्द्र है, सोवियत रूस के प्रजातंत्र संघ में यद्यपि वन प्रदेश संसार में सबसे अधिक हैं परन्तु उत्तर में अत्यन्त शीत प्रधान बर्फीले प्रदेश तथा दलदलों के वन व्यापारिक दृष्टि से महत्व पूर्ण नहीं हैं। फिर भी रूस तथा सायबेरिया में सबसे अधिक लकड़ी है।

पूर्वीय एशिया के वन

पूर्व एशिया में जापान, कोरिया, मंचूरिया, श्याम, इंडोचीन, बर्मा, फारमोसा तथा चीन के वन सम्मिलित हैं। जापान के वनों में बाँस, कपूर (Camphor) तथा लेक्वेर (Lacquer) के वृक्ष व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। फारमोसा से ही अब अधिकांश कपूर बाहर भेजा जाता है। वैसे चीन के फूकन (Fukien) प्रान्त, जापान के शिकाक और कियूशू द्वीप, कोचीन चीन, सुमात्रा जावा, और बोर्नियो में भी कपूर के वृक्ष बहुत बहुत उत्पन्न होते हैं। जापान में लगभग ४८ प्रतिशत भूमि पर वन खड़े हैं।

वन प्रदेशों से मिलने वाली लकड़ी, कागज़ की लुब्दी, कागज, घासें रबर, लाख, गोंद, तथा अन्य प्रकार के पदार्थ मुख्य हैं। कनाडा, रूस, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड और संयुक्त-राज्य अमेरिका ही संसार भर को लकड़ी भेजते हैं। कनाडा में नरम लकड़ी का अटूट भण्डार है परन्तु ब्रिटेन तथा योरप से अधिक दूरी पर होने के कारण लकड़ी को भेजने में व्यय अधिक पड़ता है। बाहर भेजी जाने वाली लकड़ियों में पाइन (Pine) फर (Fir) तथा ओक (Oak) मुख्य हैं। मैहागनी (Mahogany) मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका से विदेशों को बहुत भेजी जाती है। क्यूबा, जमायका, हैटी तथा मैक्सिको से मैहागनी बहुत अधिक बाहर भेजी जाती है। सागवान (Teak) मुख्यतः बर्मा तथा श्याम से जाता है। श्याम के सागवान (Teak) के वन बहुत कम हो गए हैं इस कारण यह लकड़ी अब मुख्यत: बर्मा से ही बाहर भेजी जाती है। इस लकड़ी का उपयोग जहाज़ बनाने में होता है, क्योंकि इससे लोहा खराब नहीं होता। सागवान (Teak) में दीमक भी नहीं लगती इस कारण इसका उपयोग बढ़िया चीज़ें बनाने में बहुत होता है। संयुक्त-राज्य अमेरिका तथा कनाडा को छोड़कर बाल्टिक देशों से ही लकड़ी बाहर भेजी जाती है। ब्रिटेन सबसे अधिक लकड़ी बाहर से मँगाता है।

रबर (Rubber)

रबर एक वृक्ष का रस है जो सूखने पर रबर के रूप में परिणत हो जाता है। औद्योगिक युग में रबर की माँग इतनी अधिक बढ़ गई है कि वैज्ञानिक रीतियों से नक़ली रबर बनाने

का प्रयत्न किया जा रहा है। जब से मोटर का अधिक प्रचार हुआ है तब से तो रबर की माँग बढ़ती ही जा रही है। आरम्भ में रबर का उपयोग कम होता था क्योंकि सूखने पर वह बहुत कठोर और शीघ्र टूटने वाली बन जाती थी। किन्तु जबसे गंधक मिलाकर उसको लचीली बनाने की क्रिया का आविष्कार हुआ है तबसे इसका उपयोग तथा माँग बहुत बढ़ गई है।

आरम्भ में अमेज़न (Amazon) नद का विस्तृत बेसिन ही संसार को रबर देता था। वहाँ के सघन वनों में रबर का वृक्ष जंगली अवस्था में पाया जाता है। रबर जमा करने वाले नदी के द्वारा सघन वन में प्रवेश करते हैं और वृक्षों से रबर जमा करके उसे आग पर सुखाते हैं। जब रबर सूख जाती है तो वह बन्दरगाहों को ले जाई जाती है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक दक्षिण अमेरिका, पश्चिमी अफ्रीका, तथा एशिया के ऊष्ण वनों (Tropical forests) से ही रबर मिलती थी। दक्षिण अमेरिका के अमेज़न नदी के वनों से संसार की सम्पूर्ण उत्पत्ति की लगभग ५० प्रतिशत रबर उत्पन्न होती थी। शेष पश्चिम अफ्रीका तथा एशिया के वनों से मिलती थी। किन्तु अब प्राकृतिक रबर के वनों से बहुत कम रबर प्राप्त होती है। उसका स्थान रबर के लगाये हुए वनों (Rubber Plantations) ने ले लिया है। आरम्भ में रबर जमा करने में इतनी अधिक लापरवाही की गई कि बहुत से वृक्षों ने रबर देना बन्द कर दिया और रबर के वन लगाने पड़े। अब अधिकांश रबर लगाये हुए वनों (Rubber Plantations) से आती है। संसार की लगभग ९० प्रतिशत रबर एशिया के पूर्वीय देशों तथा द्वीप समूह से प्राप्त होती है।

रबर का वृक्ष ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) में उत्पन्न होता है। जहाँ कहीं ८०″ से १२०″ इंच तक वर्षा होती हो और ७५° फै० से लेकर ९०° फै० तक तापक्रम (Temperature) रहता हो वहाँ रबर का वृक्ष उत्पन्न किया जा सकता है। जो भूमि प्रतिवर्ष जल से ढक जाती है, वह रबर के वृक्ष के लिए अत्यन्त उपयुक्त होती है। इस समय संसार में जो रबर उत्पन्न होती है उसकी लगभग ९५ प्रतिशत लगाये हुए वनों से प्राप्त होती है।

ब्रिटिश मलाया संसार में सबसे अधिक रबर उत्पन्न करता है। संसार की सम्पूर्ण उत्पत्ति की लगभग ५० प्रतिशत रबर ब्रिटिश मलाया से आती है। रबर उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में दूसरा स्थान पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) का है। कुल उत्पत्ति का ३१ प्रतिशत के लगभग पूर्वीय द्वीप

समूह उत्पन्न करते हैं। इनके अतिरिक्त सीलोन, बोरनियो (Borneo) तथा दक्षिण भारत में भी रबर अधिकता से उत्पन्न होती है। संसार की दो तिहाई रबर ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही उत्पन्न होती है।

संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.) सबसे अधिक रबर विदेशों से मँगाता है। लगभग आधी रबर संयुक्तराज्य अमेरिका को जाती है। इसका कारण यह है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में मोटरकार तैयार करने का धंधा बहुत उन्नति कर गया है। जितनी रबर संयुक्तराज्य अमेरिका में आती है उसकी दो तिहाई केवल ट्यूब और टाइर बनाने के काम में आती है। संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और फ्रांस रबर मँगाने वालों में मुख्य हैं। पिछले दिनों में ब्रिटेन और रूस में रबर की खपत तेज़ी से बढ़ रही है।

यद्यपि रबर ऊष्ण कटिबन्ध की पैदावार है परन्तु रबर का समान संयुक्त-राज्य अमेरिका तथा योरोप के औद्योगिक केन्द्रों में ही तैयार होता है। कच्ची रबर कुछ तो सीधी संयुक्तराज्य अमेरिका को ही भेज दी जाती है परन्तु अधिकांश रबर ब्रिटेन तथा अन्य योरोपीय मंडियों को जाती है जहाँ से वह भिन्न भिन्न स्थानों को भेजी जाती है। अभी तक रबर वृक्ष से निकाल कर उसी स्थान पर सुखाई जाती थी और सूख जाने पर फिर बाहर भेजी जाती थी, किन्तु अब यह प्रयत्न हो रहा है कि जहाज़ों की टंकियों में भर कर कच्ची रबर को संयुक्त राज्य अमेरिका तथा योरोप के औद्योगिक केन्द्रों में ले जाया जाय। इस प्रकार रबर का सामान बनाने में ख़र्च कम होगा।

गटापार्चा (Guttaparcha) यह एक पेड़ का रस है जो रबर की भाँति निकाला जाता है। गंधक तथा कार्बन (Carbon) मिलाने से यह कठोर बन जाता है। तार के ऊपर जो खोल रहता है उसके बनाने में इसका उपयोग होता है। बिजली के अधिक प्रचार के साथ साथ इस कार्य में गटापार्चा का उपयोग बढ़ गया है। गटापार्चा के खिलौने बहुत सुंदर बनते हैं। अब तो गटापार्चा की सैकड़ों चीज़ें बनाई जाने लगी हैं। आज ऐसी कोई बिसातखाने की दूकान नहीं मिल सकती जिसमें गटापार्चा का सामान न हो। गटापार्चा अधिकतर मलाया प्रायद्वीप (Malaya Peninsula) पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) तथा अन्य ऊष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में उत्पन्न होता है और वहीं से विदेशों को जाता है। रबर की तरह ही गटापार्चा के वन भी लगाये गए हैं। आरम्भ में भूल से इस वृक्ष को नष्ट कर डाला गया किन्तु अब तो इसको सावधानी से लगाया गया है।

लाख और गोंद (Gums and Resin)

पाइन के वृक्ष से तारपीन का तेल (Turpentine oil) तथा बीरोज़ा (Resin) निकाला जाता है। पाइन वृक्षों को काट कर उनसे गाढ़ा गाढ़ा गोंद (Resin) इकट्ठा किया जाता है। इसमें से तारपीन का तेल निकाल लिया जाता है और बीरोज़ा बच रहता है। इस तेल का उपयोग पेंट, वार्निश, तथा साबुन बनाने में किया जाता है। तारपीन का तेल (Turpentine oil) संयुक्त राज्य अमेरिका, फिनलैंड, रूस, फ्रांस और भारतवर्ष में बनाया जाता है।

रूस और स्वीडन में इन्हीं वृक्षों की लकड़ी से वुडटार (Wood-Tar) बनाया जाता है।

कपूर के वृक्ष से कपूर तैयार किया जाता है। आरम्भ में कपूर के वृक्ष को काट कर उसकी लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़े करके उसको पानी के साथ गरम करके कपूर निकाला जाता था। किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि पत्तियों तथा डालों में तने से भी अधिक कपूर होता है। इस कारण अब वृक्षों को काटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सब से अधिक कपूर फारमोसा (Formosa) से बाहर भेजा जाता है। चीन का फूकन (Fukien) प्रान्त, जापान के शिकाकू (Shikoku) तथा क्यूशू (Kiushu) द्वीप, कोचीन चीन, सुमात्रा, जावा और बोरनियो (Borneo) से भी कपूर बाहर भेजा जाता है।

उष्ण कटिबन्ध के वनों में बहुत तरह का गोंद (Gum) मिलता है। एक प्रकार का गोंद तो वह होता है जो पानी में घुल जाता है चिपकाने के काम में आता है। यह गोंद, भारतवर्ष, अफ्रीका, सोमालीलैंड, और आस्ट्रेलिया से बाहर भेजा जाता है। दूसरे प्रकार का गोंद जिसे कोपाल कहते हैं वह पानी में नहीं घुलता अतएव उनका उपयोग वार्निश में होता है। न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, तथा मलाया प्रायद्वीप से दूसरे प्रकार का गोंद कोपाल (Copal) बाहर बहुत राशि में भेजा जाता है। भारतवर्ष के कुछ वन प्रदेशों लाख का कीड़ा वृक्षों पर लाख जमा करता है। भारतवर्ष संसार भर को लाख भेजता है। मलाया प्रायद्वीप में बेत भी बहुत अधिक उत्पन्न होता है।

वनों से चमड़ा कमाने के लिए छाल तथा फल भी मिलते हैं। हैमलाक (Hemlock) तथा ओक (Oak) की छाल इस काम में बहुत आती है। स्प्रस (Spruce) और लार्च (Larch) का भी उपयोग चमड़ा कमाने में होता है। गैम्बियर (Gambier) जो एक झाड़ी की पत्तियों से निकाला जाता है चमड़ा कमाने के काम में बहुत आता है। यह झाड़ी

मलाया, जावा और सुमात्रा में होती है। भारतवर्ष के वनों में माईरोबैलन (Myrobalans) नामक वृक्ष का फल भी चमड़ा कमाने के उपयोग में बहुत आता है। सिसीलियन झाड़ी (Sicilian Shrub) तथा उसकी तरह के अन्य पौधों की टहनियों से भी एक पदार्थ बनाया जाता है (Sumach) जिसका उपयोग चमड़ा कमाने में होता है।

कार्क (Cork)

कार्क एक प्रकार के ओक (Oak) वृक्ष का बाहरी मोटी छाल को कहते हैं। कार्क का वृक्ष पुर्तगाल, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, तथा अफ्रीका के उत्तरी पहाड़ी प्रदेश मरक्को (Morocco) ट्यूनिस (Tunis) और अलजीरिया में पाया जाता है। इन्हीं देशों से कार्क बाहर भेजा जाता है। संयुक्तराज्य अमेरिका में भी इस वृक्ष को लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

लकड़ी की लुग्दी और कागज़ (Wood-Pulp)

नरम लकड़ी की माँग कागज की माँग के साथ साथ बहुत बढ़ गई है। नरम लकड़ी की लुग्दी से कागज बनाया जाता है। स्प्रूस (Spruce) फर (Fir) तथा पाइन (Pine) की लुग्दी पानी में गला कर बनाई जाती है। ऐस्पन (Aspen) तथा पोपलर (Poplar) इत्यादि कठोर लकड़ियों की लुग्दी रासायनिक ढंग से तैयार की जाती है। रासायनिक ढंग से लुग्दी तैयार करने में कुछ रासायनिक पदार्थों के घोल में लकड़ी को गलाया जाता है। रासायनिक ढंग से बनी लुग्दी का कागज़ अच्छा होता है। लकड़ी से बनी हुई लुग्दी का कागज़ समाचार पत्रों के काम ही में अधिकतर आता है। जैसे जैसे शिक्षा का प्रचार अधिकाधिक होता जाता है वैसे ही वैसे कागज़ की माँग बढ़ती जा रही है।

लकड़ी से कागज़ बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि वन प्रदेश और जल पास ही पास हों। क्योंकि लुग्दी बनाने के लिए बहुत अधिक स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है। लुग्दी बना कर उसे यन्त्रों से दबाने पर कागज़ तैयार हो जाता है।

सबसे अधिक लकड़ी की लुग्दी संयुक्तराज्य अमेरिका में तैयार होती है उससे कुछ ही कम कनाडा में लुग्दी तैयार होती है। संयुक्तराज्य और कनाडा में लुग्दी बनाने योग्य लकड़ी के वन नदियों से सम्बन्धित हैं। ये नदियाँ लकड़ी को बहा कर लाती हैं और उन्हीं के जल से कारखानों में लुग्दी तैयार होती और कागज़ बनता है। इन दो देशों को छोड़ कर क्रमशः स्वीडन, जर्मनी, फिनलैंड, तथा रूस लकड़ी की लुग्दी बनाने वाले देशों में मुख्य हैं।

कनाडा, स्वीडन, नार्वे, फिनलैंड, और रूस लकड़ी की लुब्दी बाहर भेजते हैं। कनाडा और स्वीडन सबसे अधिक लुब्दी बाहर भेजते हैं। लुब्दी बाहर से मँगाने वाले देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और जापान मुख्य हैं। इन देशों में लुब्दी से केवल कागज़ ही तैयार नहीं किया जाता वरन नकली रेशम भी बनाया जाता है।

लकड़ी की लुब्दी के अतिरिक्त स्पार्टा (Sparta) घास, सबाई (Sabai) भावर (Bhabar), बैब (Baib) तथा बाँस की भी लुब्दी बनाई जाती है। स्पार्टा घास स्पेन तथा उत्तरी अफ्रीका में बहुत होती है। सबाई, भावर तथा बैब का भारतवर्ष में कागज़ बनाने में बहुत उपयोग होता है। बाँस की लुब्दी से भी बढ़िया कागज़ तैयार हो सकता है। कागज़ की बढ़ती हुई माँग के कारण लकड़ी की लुब्दी की माँग बहुत बढ़ गई इस कारण लुब्दी बनाने योग्य लकड़ी शीघ्रता पूर्वक समाप्त होती जा रही है। लुब्दी तैयार करने योग्य वृक्षों को लगभग ६० वर्ष पूरे बढ़ने में लगते हैं इस कारण नये वृक्ष धीरे धीरे ही तैयार होते हैं। जितनी लकड़ी प्रतिवर्ष कागज़ बनाने के लिए काट ली जाती है उतनी उत्पन्न नहीं होती। इस कारण क्रमशः लुब्दी बनाने योग्य लकड़ी कम होती जा रही है। भविष्य में जब लकड़ी की कमी पड़ जावेगी तब भारतवर्ष तथा बर्मा इत्यादि के मानसून वन प्रदेश की घासें तथा अनन्त राशि में खड़े हुए बाँस से अधिकाधिक कागज़ तैयार किया जा सकेगा।

वन सम्बन्धी धंधों (Forestry) के लिए दो बातों की आवश्यकता है। मज़दूरों की और मार्गों की। यदि वन प्रदेश में ही जलप्रपात हों तो और भी अच्छा क्योंकि पानी की शक्ति से वृक्षों को चीरने की सुविधा हो जाती है। जिससे वहाँ चीरने के कारखाने (Saw mills) स्थापित किए जा सकते हैं। लकड़ी एक भारी चीज़ है इस कारण यदि वनों के पास ही लकड़ी की खपत के केन्द्र भी हों तो यह धंधा उस स्थान पर शीघ्र ही पनप उठता है। अन्यथा बाहर तो बहुत कीमती लकड़ी ही भेजी जाती है।

वन सम्बन्धी धंधों (Forestry) की दृष्टि से शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate lands) के वन अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो इन वनों में नरम तथा कम कठोर लकड़ी मिलती है जो व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है दूसरे इन वनों में झाड़ी तथा छोटे छोटे पौधे और बेलें नहीं होतीं इस कारण लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठों को वनों से लाने में कठिनाई नहीं होती।

नरम लकड़ी के वन अधिकतर शीत प्रधान देशों में है अस्तु जाड़े में जब बर्फ गिरकर जम जाती है तो लकड़ी को वनों से ले जाने के लिए सुगम मार्ग बन जाता है। घोड़ों के द्वारा वनों में इकट्ठी की हुई लकड़ी जमी हुई नदियों तक ले जाई जाती है। जब नदियाँ पिघलती हैं तब यह लकड़ी नीचे जाती है और लकड़ी चीरने के कारखानों में इसको चीरा जाता है। बर्फ तथा पानी के द्वारा इन वनों में लकड़ी बहुत कम ख़र्चे से कारख़ानों तक पहुँच जाती है। अधिकांश नरम लकड़ी के वन प्रदेशों में जाड़ों में इतनी अधिक ठंडक होती है कि खेती नहीं हो सकती इस कारण उन दिनों में खेती में लगे हुए लोग वनों में लकड़ी काटने का काम करते हैं इस कारण मज़दूरी भी कम देनी पड़ती है। इन सुविधाओं के अतिरिक्त शीतोष्ण कटिबन्ध के वनों में कुछ पेड़ बहुत विस्तृत क्षेत्र में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि कहीं पाइन (Pine) मिलता है तो मीलों तक पाइन के ही पेड़ दिखाई देते हैं। बहुत बड़े क्षेत्रफल में एक से ही वृक्ष होने से उनके काटने में सुविधा होती है।

यदि वन-प्रदेशों में जल-प्रपात (Waterfalls) होते हैं तो लकड़ी चीरने के लिए जल-शक्ति का उपयोग आसानी से हो सकता है। विशेषकर कागज़ तैयार करने के लिए लुब्दी बनाने में तो जल-शक्ति का बहुत उपयोग होता है। बात यह है कि लकड़ी बहुत मूल्यवान चीज़ तो है नहीं जो उस पर बहुत ख़र्च किया जा सके। अतएव उसको वनों से लाने में तथा चीरने और उसकी लुब्दी बनाने में जल-शक्ति का उपयोग आवश्यक हो जाता है क्योंकि जल-शक्ति बहुत सस्ती होती है। कनाडा और नार्वे में जल-शक्ति की अधिकता से ही वहाँ लकड़ी का धंधा इतना अधिक पनप उठा है। एक बात और भी है जिससे सस्ती शक्ति का महत्व बढ़ जाता है। लकड़ी चीरने के कारखानों (Saw mills) में बहुत सी लकड़ी व्यर्थ में नष्ट हो जाती है। यदि वहाँ शक्ति सस्ते दामों पर मिल सके तो उस लकड़ी को लुब्दी तथा अन्य पदार्थों में परिणत करके बाहर भेजा जा सकता। अन्यथा उस लकड़ी का कोई उपयोग नहीं हो सकता।

लकड़ी भारी चीज़ है इस कारण वह अधिक भाड़ा सहन नहीं कर सकती। अस्तु लकड़ी के उत्पन्न होने के स्थान के समीपवर्ती प्रदेश में ही यदि उसकी माँग हो तो धंधा बहुत उन्नत कर सकता है। शीतोष्ण कटिबन्ध में वन प्रदेशों के समीप ही औद्योगिक केन्द्र हैं तथा उनके समीप ही उपजाऊ और घने आबाद प्रदेश हैं। अतएव लकड़ी की खपत वहीं हो जाती है। ऊपर लिखी हुई सुविधाओं के कारण शीतोष्ण कटिबन्ध में वन-प्रदेशों

की लकड़ी का खूब उपयोग होता है और वनों से सम्बन्धित धन्धे उन्नति कर गए हैं।

ऊष्ण कटिबन्ध के वनों में ऊपर लिखी हुई सुविधायें नहीं मिलतीं। छोटी छोटी घनी झाड़ियाँ, पौधे तथा बेलें वन को इस तरह ढके रहती हैं कि वनों में चलना और लकड़ी को लाना कठिन हो जाता है। अत्यधिक वर्षा होने के कारण बहुधा दलदल हो जाता है जिनको पार करना कठिन होता है। अधिकाश वनों की जलवायु खराब होती है जिससे वनों में काम करने के लिए अधिक संख्या में मज़दूर तैयार नहीं होते। इन वनों में भिन्न भिन्न तरह के वृक्ष एक साथ उगे हुए होते हैं इस कारण उनको काटना और अलग अलग रखने में बड़ी ही कठिनाई होती है। उदाहरण के लिए यदि मेहागनी (Mahogany) को काटना हो तो भिन्न स्थानों पर वह खड़ा मिलता है उसको सघन वन में ढूंढने में बहुत समय और परिश्रम नष्ट होता है। यही नहीं ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) के वनों को न शक्ति की सुविधा है और न समीपवर्ती प्रदेश औद्योगिक तथा कृषि की दृष्टि से उन्नत दशा में ही है।

इन वनों में असुविधायें अधिक होते हुए भी कुछ सुविधायें भी हैं। एक तो बड़ी बड़ी नदियाँ होने के कारण लकड़ी को बहाकर लाने मे सुविधा होती है, दूसरे यह प्रदेश पिछड़े हैं इस कारण यहाँ मज़दूरी सस्ती है। इसके अतिरिक्त इन प्रदेशों मे मेहागनी, देवदारु (Teak) और एबोनी (Ebony) जैसी सुंदर मजबूत और मूल्यवान लकड़ी मिलती है जिसकी संसार में बहुत अधिक माग है।

अभ्यास के प्रश्न

१—वनों से मनुष्य को क्या लाभ है समझाकर लिखिए।

२—कागज तैयार करने के लिए नरम लकड़ी की लुग्दी किन देशों में मुख्यतः पाई जाती है।

३—पतझड़ के वन (Deciduous Forests) तथा कानीफ़ेरस वन (Coniferous Forests) के मुख्य वृक्ष कौन से हैं उनका आर्थिक महत्व क्या है। और वे कहाँ पाये जाते हैं।

४—संयुक्तराज्य अमेरिका के वनों का विस्तार पूर्वक विवरण कीजिए और उनके आर्थिक महत्व को समझाइए।

५—ऊष्ण कटिबन्ध के सदा हरे रहने वाले वन (Tropical Ever Green Forests) कहाँ मिलते हैं और उनका आर्थिक महत्व क्या है?

छठा परिच्छेद

मुख्य धंधे—पशु-पक्षियों पर अवलंबित धंधे

संसार में पालतू पशु-पक्षियों की संख्या अधिक नहीं है। मनुष्य समाज को पशु से मांस, दूध, तथा अन्य कच्चे पदार्थ (Raw materials) मिलते हैं। जब मनुष्य समाज उन्नत अवस्था में नहीं था तभी पशु पालन आरम्भ हो गया था। आये दिन के अनुभव से मनुष्य ने जान लिया कि पशु बहुत उपयोगी हैं। इसी कारण सीधे और उपयोगी पशु पालतू बनाये गए। असंख्य वर्षों से पाले जाने के कारण पशु मनुष्य के आज्ञाकारी बन गए। जब कि रेलों का आविष्कार नहीं हुआ था तब पशुओं की पीठ पर बैठ कर अथवा उनके द्वारा खींची गई गाड़ियों में ही बैठकर मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता था। आज भी पहाड़ी प्रदेशों, रेगिस्तानों, तथा कृषि प्रधान देशों में पशुओं का बहुत महत्व है।

मांस (Meat) का धंधा

गाय-बैल

मांस के लिए मुख्यतः गाय, बैल, भेड़ तथा सुअर को पाला जाता है। घोड़ा और बकरी भी मांस के लिए पाले जाते हैं किन्तु इनका स्थान गौण है। पशुओं को मांस के लिए पालने का धंधा उसी भूमि पर अधिकतर होता है जो खेती के योग्य नहीं है। जिस भूमि पर खेती नहीं की जा सकती उस पर पशुओं को चराकर मांस बनाया जाता है। किन्तु जिन देशों में आबादी बहुत बिखरी होती है अथवा जो बहुत पिछड़े होते हैं वहाँ खेती योग्य भूमि पर भी पशुओं को चराया जाता है। ऐसे प्रदेशों में या तो गमनागमन के साधन नहीं होते जिससे वहाँ की पैदावार बाहर नहीं भेजी जा सकती अथवा अन्य किसी कारण से वहाँ खेती नहीं हो सकती। जो कुछ भी हो मांस के लिए पशु उन्हीं प्रदेशों में चराये जाते हैं जहाँ की भूमि खेती के योग्य नहीं होती।

संसार के प्रमुख पशु चराने के योग्य मैदान (Pasture lands) पश्चिमी एशिया, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, तथा आस्ट्रेलिया के सूखे घास के मैदान हैं जहाँ कि अगणित पशु चराये जाते हैं। योरोप में पशु चराने योग्य मैदान उन स्थानों पर हैं जहाँ कि भूमि बहुत

उपजाऊ है अथवा पहाड़ों की ढालों पर हैं। पहाड़ों की ढालों पर सर्वत्र ही पशु चराने की सुविधा है और यह धंधा वहाँ खूब होता है।

जिन देशों में पशुओं को चराने के लिये यथेष्ट घास के मैदान हैं वहाँ पशुओं को पहले मैदानों में चराकर उन स्थानों पर लाया जाता है जहाँ मक्का इत्यादि चर्बी बढ़ाने वाले अनाज बहुतायत से मिलते हैं।

कुछ दिनों पशुओं को वहाँ रख कर मोटा किया जाता है फिर पशुओं को मांस बनाने वाले कारखानों को भेज दिया जाता। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसी प्रकार पशुओं को शिकागो (Chicago) के समीपवर्ती प्रदेश में मोटा करके शिकागो के कारखानें में भेज दिया जाता है।

मांस बनाने का धंधा अरजैनटाइन (Argentina), संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, तथा योरोप में महत्त्वपूर्ण है। संसार में समस्त मांस जो विदेशों को भेजा जाता है, दक्षिण अमेरिका उसका ४० प्रतिशत बाहर भेजता है। संयुक्त राज्य लगभग २१% मांस बाहर भेजता है। योरोप में डैनमार्क तथा बैलजियम और हालैंड से मांस बाहर जाता है। मांस बाहर से मँगाने वालों में ब्रिटेन, जर्मनी, फ्राँस और इटली मुख्य हैं। अधिकांश मांस ऊपर लिखे हुए देशों से ब्रिटेन को ही जाता है।

मांस के अतिरिक्त जिंदा पशुओं को भी भेजा जाता है जिससे मँगाने वाले देशों को ताजा मांस मिल सके। जिंदा पशुओं को बाहर भेजने वालों में आरजैनटाइन (Argentina) तथा आयरलैंड मुख्य हैं। किन्तु अब क्रमशः जिंदा पशुओं का बाहर भेजा जाना कम हो रहा है क्योंकि शीत भण्डार रीति (Cold Storage System) का आविष्कार होने से मांस बहुत दिनों तक रक्खा जा सकता है और वह खराब नहीं होता। रिफरिजरेशन (Refrigeration) की उन्नति होने के कारण मांस का धंधा बहुत उन्नति कर गया है। अब कारखानों में मांस को भण्डारों में भर रखने तथा उसे योरोप भेजने में कोई कठिनाई नहीं होती। ताज़ा मांस भेजने के अतिरिक्त नमकीन मांस, सूखा मांस, तथा जमाया हुआ मांस भी भेजा जाता है। संसार में शिकागो (Chicago) मांस के धंधे का प्रधान केन्द्र है जहाँ सैकड़ों विशाल कारखानों में मांस तथा उसके अन्य गौण पदार्थ (By-products) तैयार होते हैं।

मांस बनाने के कारखानों में गाय और बैल के प्रत्येक अंग का, हड्डी खाल, बाल, खुर, सींग, आँतें, चर्बी यहाँ तक कि खून का भी उपयोग कर लिया जाता है और उसकी वस्तुयें बनाकर बेची जाती हैं। वास्तव में पशु

का एक कण भी व्यर्थ नष्ट नहीं होता। यदि देखा जावे तो मांस का धंधा उन्हीं देशों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए है जहाँ भूमि यथेष्ट है और आबादी कम है। जैसे जैसे आबादी बढ़ती जावेगी मांस की उत्पत्ति और खपत कम होती जावेगी। पिछले वर्षों से संसार में मांस की खपत कम होती जा रही है तथा दूध और मक्खन की माँग बढ़ती जा रही है। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि एक बैल जितनी भूमि पर निर्वाह कर सकता है उतनी ही भूमि पर ८ आदमियों के निर्वाह योग्य अन्न उत्पन्न हो सकता है। फिर घनी आबादी वाले देशों में जहाँ मनुष्यों के लिए यथेष्ट भोजन ही उत्पन्न नहीं होता पशुओं को मांस के लिए कैसे पाला जा सकता है। घनी आबादी वाले देशों में गाय को दूध के लिए तथा बैल को खेती के लिए पाला जाता है। नये देशों में जहाँ बहुत सी भूमि विना जुती हुई पड़ी है वहाँ ही मांस का धंधा चल सकता है।

संसार के प्रमुख देशों में गाय-बैलों की संख्या

संसार में पशुगणना के अनुसार कुल ६६ करोड़ ढोर थे जिनमें २१½ करोड़ केवल भारतवर्ष में थे दूसरे शब्दों में भारतवर्ष में संसार के लगभग एक तिहाई गाय-बैल थे। अब हम नीचे कुछ मुख्य देशों में गाय बैलों की संख्या देते हैं :—

(००० छोड़ दिये गए हैं)

भारतवर्ष	२१५,०००
संयुक्त राज्य अमेरिका	६०,६६७
सोवियत रूस	६५,०००
ब्राज़ील	४७,४६२
अरजैनटाइन	३२.३१३
चीन	२३,०००
जर्मनी	१६,१३६
फ्रांस	१५,६४३
आस्ट्रेलिया	१२,७८३
दक्षिण अफ्रीका	१०,७५१
मैक्सिको	१०,०८३



संयुक्तराज्य अमेरिका में गाय-बैल के मांस का धंधा बहुत उन्नत

संयुक्त राज्य अमेरिका में मांस का धंधा

अवस्था में है। इस धंधे का मुख्य केन्द्र शिकागो (Chicago) है इसके उपरान्त निम्नलिखित केन्द्र महत्वपूर्ण हैं:—सेंट-पाल ओमाहा, सेंट लुइस, कैन्सास सिटी, सेंटजोसेफ इन्डियानापोलिस, फोर्ट वर्थ, (Fort Worth) मिलावाकी (Milawakee) डेनवर (Denver) तथा ओक्लोहामा सिटी। संयुक्त राज्य में मांस की बहुत अधिक खपत है इस कारण वहाँ से विदेशों को अधिक मांस नहीं भेजा जाता जो कुछ भी मांस यहाँ से बाहर जाता है वह अधिकतर हवाई द्वीप, प्यूरटोरिको (Puerto Rico) तथा अलास्का को जाता है।

दक्षिण अमेरिका का मांस का धंधा

अरजैनटाइन और यूरग्वे (Uruguay) में मास का धंधा मुख्य धंधा है। यहाँ आरम्भ में पशु पालन इस कारण बढ़ गया क्योंकि यहाँ विस्तृत मैदानों पर अत्यन्त पौष्टिक घास उत्पन्न होती थी। इन घास के मैदानों को पांपा (Pampa) के घास के मैदान कहते हैं। यहाँ जाड़ा साधारण होता है। यहाँ वर्ष भर पशुओं को चराया जा सकता है। इस कारण भी यह धंधा यहाँ केन्द्रित हो गया। इन घासों के अतिरिक्त अल्फाल्फा (Alfalfa) घास यहाँ खेतों पर बहुत अधिक उत्पन्न की जाती है जिसके कारण यहाँ अच्छे चारे की बहुतायत है। अरजैन्टाइन तथा यूरग्वे की जनसंख्या बहुत कम होने के कारण यहाँ से मांस योरोप को बहुत अधिक भेजा जाता है।

आस्ट्रेलिया में गौ मांस का धंधा

आस्ट्रेलिया में यह धंधा क्वीन्सलैंड तथा उत्तर-पश्चिमीय आस्ट्रेलिया के अर्धशुष्क प्रदेशों में केन्द्रित है। आस्ट्रेलिया में जन-संख्या बहुत कम है इस कारण अधिकांश मांस विदेशों-विशेष कर योरोप को भेजा जाता है। मांस जमा कर भेजा जाता है क्योंकि एक तो दूरी बहुत है दूसरे गरम प्रदेश में से होकर जाता है। न्यूजीलैंड से भी बहुत सा गो मांस योरोप भेजा जाता है।

योरोप

यद्यपि योरोप में गाय-बैल बहुत हैं किन्तु वहाँ ब्रिटेन तथा आइरलैंड के कुछ भागों को छोड़ कर इन पशुओं को मांस के लिए नहीं पाला जाता उनका उपयोग खेती के लिए अथवा दूध के धंधे के लिए होता है। यद्यपि प्रत्येक योरोपीय देश में कुछ हद तक यह धंधा होता है परन्तु जनसंख्या बहुत अधिक होने के कारण यहाँ बाहर से बहुत सा मांस मँगवाना पड़ता है।

गाय और बैल के उपरान्त मांस उत्पन्न करने की दृष्टि से सुअर मुख्य है। सुअरों को अधिकतर खेतों पर ही किसान पालते हैं। सबसे अधिक सुअर संयुक्त-राज्य अमेरिका में पाले जाते हैं। जो देश मक्खन और दूध अधिक उत्पन्न करते हैं वहां सुअर अधिकता से पाला जाता है, क्योंकि मक्खन निकाला हुआ दूध सुअरों को पिलाने के काम आता है। संयुक्त-राज्य अमेरिका में मक्का सुअरों को बहुत खिलाई जाती है। इसी कारण वहाँ मक्का की खेती इतनी अधिक बढ़ गई। संसार के लगभग आधे सुअर संयुक्त-राज्य अमेरिका में पाले जाते हैं। उसको छोड़कर क्रमशः जर्मनी, रूस, फ्रास, डैनमार्क सुअर पालने वालों में मुख्य हैं। चीन और ब्राजील में भी सुअर बहुत पाले जाते हैं।

सुअर (pig)

सुअर का मांस बाहर भेजने वाले देशों में संयुक्त-राज्य अमेरिका प्रमुख है। लगभग संसार का आधा सुअर का मांस संयुक्त राज्य अमेरिका से आता है। इसके अतिरिक्त डैनमार्क, आयरलैंड, हालैंड, बैलजियम, और कनाडा सुअर का मांस भेजते हैं। सबसे अधिक सुअर का मांस ब्रिटेन मंगाता है। जर्मनी और फ्रास भी सुअर का मांस मँगाते हैं। सुअर का मांस तैयार करने वाले कारखानों में सुअर के शरीर का अणु अणु काम में ले आया जाता है कोई वस्तु भी नष्ट नहीं होती।

संसार के प्रमुख सुअर पैदा करने वाले देश

(००० छोड़ दिये गए हैं)

देश	संख्या	देश	संख्या
चीन	६५,०००	सोवियत रूस	१२,०६८
संयुक्त राज्य अमेरिका	३७,००७	फ्रांस	६,४८८
जर्मनी	२३,८९०	पोलैंड	५,७५३
ब्राजील	२१,६१५	डेनमार्क	४,४०७

संसार में सुअर का पालन केवल योरोप तथा अमेरिका में होता है क्योंकि मुसलमान, हिन्दू और यहूदी सुअर का मांस नहीं खाते।

यह धंधा संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत उन्नत दशा में है और वहाँ अधिकतर मक्का उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में सुअर पाला जाता है। आयोवा (Iowa) इलीनियास (Illinois) इंडियाना ओहियो, कान्सास, और नैब्रास्का रियासतों में अधिकांश सुअर पाले जाते हैं और यहीं पर सुअर का मांस बनाने के कारखाने हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका से सुअर का मांस और चाय यहां से बाहर भेजी जाती है।

मेड़ (sheep)

मेड़ का मांस (Mutton) गाय और बैल के मांस (Beef) तथा सुअर के माँस (Pork) से कम महत्वपूर्ण है। भेड़ के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि जो जाति अच्छा मटन उत्पन्न करती है वह ऊन उत्पन्न नहीं करती और जिसका ऊन अच्छा होता है उसका मांस अच्छा नहीं होता। अब कुछ ऐसी नस्लें उत्पन्न की गई हैं जो मांस और ऊन दोनों ही उत्पन्न करती हैं। मटन उत्पन्न करने वाले देशों में न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया अरजैनटाइन तथा उरग्वे (Uruguay) मुख्य हैं। न्यूजीलैंड में मटन बनाने का धंधा पिछले दिनों में विशेष उन्नति कर गया है।

ऊन (wool)

संसार में पालतू पशुओं में भेड़ों की संख्या सबसे अधिक है। संसार में भेड़ों की संख्या की दृष्टि से क्रमशः निम्नलिखित देश महत्वपूर्ण हैं :—आस्ट्रेलिया, रूस, संयुक्तराज्य अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, अरजैनटाइन, तथा न्यूजीलैंड। आस्ट्रेलिया में लगभग ग्यारह करोड़ भेड़ें हैं।

भेड़ें अधिकतर शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) के शुष्क प्रदेशों में पाली जाती हैं। भेड़ में एक विशेषता यह है कि वह शुष्क प्रदेशों तथा पहाड़ी स्थानों में जहां कि थोड़ी सी भी घास उत्पन्न होती हो रह सकती है। भेड़ के लिए नम और अधिक गरम जलवायु उपयुक्त नहीं है। भेड़ ऊँचे प्रदेश में रहने वाला पशु है। इस कारण इसके पालने से खेती के योग्य भूमि नष्ट नहीं होती। जनसंख्या के अधिक बढ़ने पर नये देशों में इतने अधिक गाय और बैल न पाले जा सकेंगे जितने कि आज पाले जाते हैं, किन्तु भेड़ों की संख्या में कोई अन्तर नहीं आ सकता। भेड़ एक ऐसा पशु है जो कठिन परिस्थिति में भी रह सकता है। यही कारण है कि बहुत से द्वीप तथा प्रदेश जहाँ खेती बारी तथा दूसरे धन्धों के लिए परिस्थिति अनुकूल नहीं है भेड़ पालकर ऊन बाहर भेजते हैं। कुछ प्रदेश तो ऐसे हैं कि जहाँ भेड़ों को पालने के अतिरिक्त और कोई धन्धा ही नहीं होता। फाकलैंड (Falkland) तथा आइसलैंड (Iceland) के निवासियों का भेड़ चराना ही एक मात्र धन्धा है। आरम्भ में लिखे हुए देशों के अतिरिक्त ब्रिटेन में भी भेड़ों को चराने का धन्धा बहुत पुराने समय से होता आ रहा है।

ऊन भेड़ की ही उपज है। ऊन तीन प्रकार का होता है। मैरिनो ऊन जो मैरिनो (Merino) जाति की भेड़ से उत्पन्न होता है, क्रासब्रैड (Crossbred) तथा कारपेट (Carpet) ऊन। मैरिनो जाति की भेड़ सबसे उत्तम ऊन उत्पन्न करती हैं। भिन्न भिन्न नस्लों के संसर्ग

से ऐसी भेड़ें उत्पन्न की गई हैं जो इतना अधिक ऊन उत्पन्न करती हैं कि ऊन के बोझ से वे चल फिर भी नहीं सकतीं। किसी किसी जाति की मैरिनो भेड़ पर एक फीट से भी लम्बा ऊन उत्पन्न होता है। ऊन का अच्छा अथवा बुरा होना उन स्थानों पर भी निर्भर है जहाँ भेड़ें पाला जाती हैं। यदि भेड़ के लिए यथेष्ट पानी न हुआ अथवा बीमारी हुई तो ऊन घटिया होगा। लम्बा ऊन कीमती होता है और बढ़िया कपड़े बनाने के काम में आता है। और छोटे रेशे वाला ऊन कम्बल, गलीचे तथा अन्य मोटी वस्तुओं के बनाने के काम में आता है।

संसार में सबसे अधिक मैरिनो ऊन (४० प्रतिशत) उत्पन्न होता है। यही नहीं मैरिनो ऊन की उत्पत्ति दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। क्रासब्रैड (Crossbred) तथा कारपैट (Carpet) ऊन क्रमशः ३५ प्रतिशत तथा २५% प्रतिशत उत्पन्न होता है।

आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका में मैरिनो ऊन बहुत उत्पन्न होता है। यूरुग्वे (Uruguay) तथा अरजैनटाइन (Argentina) में भी कुछ मैरिनो ऊन उत्पन्न होता है। क्रासब्रैड (Crossbred) ऊन को उत्पन्न करने वाले देशों में क्रमशः अरजैनटाइन, न्यूजीलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, यूरुग्वे (Uruguay) तथा बृटेन मुख्य हैं।

संसार में सबसे अधिक ऊन आस्ट्रेलिया में उत्पन्न होता है। अधिकतर भेड़ पालने का धंधा न्यू साऊथ-वेल्स में बहुत होता है। पश्चिमी भाग में ऊन के लिये भेड़ें बहुत पाली जाती हैं। आस्ट्रेलिया के विशाल मरुभूमि प्रदेश में भेड़ें चराने की सुविधा नहीं है क्योंकि वहाँ पानी नहीं है। साथ ही वहाँ गरमी बहुत पड़ती है इस कारण वहाँ भेड़ें नहीं पाली जातीं। आस्ट्रेलिया के भेड़ चराने वालों को कुछ भागों में भेड़ों की बीमारियों का सामना करना पड़ता है। इन बीमारियों के कारण कहीं कहीं भेड़ को पालने में कठिनाई उत्पन्न हो गई है। यही नहीं आस्ट्रेलिया में एक प्रकार की काँटेदार वनस्पति (Prickly pear) होता है जो भेड़ के ऊन में चिपट जाती है और ऊन को खराब कर देती है। आस्ट्रेलिया के पूर्वीय तट पर पहाड़ की एक ऊँची और लम्बी दीवार खड़ी है। यह दीवार पानी की हवाओं को रोक लेती है अतएव पहाड़ तथा समुद्र के बीच पतली पट्टी में खेती के लिए यथेष्ट पानी बरसता है। किन्तु पहाड़ के पश्चिम की ओर पानी बहुत कम होता है अस्तु वहाँ केवल घास ही उत्पन्न हो

सकती है। यह घास के मैदान प्रसिद्ध भेड़ चराने के मैदान हैं। किन्तु जहाँ वर्षा बहुत कम होती है वहाँ प्रति वर्ग मील भेड़ें पाली जा सकती हैं। अस्तु भेड़ों का पालना वर्षा के ऊपर निर्भर है। जहाँ बहुत अधिक वर्षा होती है उन प्रदेशों में भी भेड़ नहीं पाली जा सकती। भेड़ को सूखा प्रदेश चाहिये किन्तु ऐसा सूखा भी न हो कि घास ही उत्पन्न न हो सके।

संसार में ऊन उत्पन्न करने वाले देशों में क्रमशः निम्न लिखित मुख्य हैं। आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, अरजैनटाइन, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, रूस, यूरग्वे, और बृटेन।

ऊन को विदेशों में भेजने वाले देशों में आस्ट्रेलिया दक्षिण अफ्रीका, न्यूज़ीलैंड, अरजैनटाइन तथा यूरग्वे मुख्य हैं। अधिकांश ऊन योरोपीय देशों को जाता है। जहाँ कारखानों में उसका कपड़ा तैयार होता है। ऊन मंगाने वालों में बृटेन, फ्रांस, संयुक्त-राज्य अमेरिका, जर्मनी और जापान मुख्य हैं।

भेड़ के ऊन के अतिरिक्त मोहेर तथा काश्मीर बकरों का बाल भी ऊनी कपड़े के बनाने में काम आता है। मोहेर का बाल बहुत चिकना और मुलायम होता है अतएव यह बढ़िया कपडा बनाने के काम में आता है। ऊंट के बाल से भी कपड़ा बनता है। अल्पका और लामा में ऊँट के ही बालों से बहुत बढ़िया कपड़े तैयार किये जाते हैं। मोहेर दक्षिण अफ्रीका में बहुत पाला जाता है।

एशिया के सभी देशों में अर्थात् एशियामायनर, फारस, अफगानिस्तान, भारतवर्ष का पहाड़ी प्रदेश, तिब्बत, मचूरिया तथा चीन के भीतरी भाग में भेड़ बड़ी संख्या में पाली जाती है। किन्तु एशियामायनर के अतिरिक्त अन्य देशों में ऊन बढ़िया नहीं होता।

भेड़ उत्पन्न करने वाले मुख्य देशों के आंकड़े

(००० छोड़ दिए गए हैं)

आस्ट्रेलिया	११४, ०००
संयुक्तराज्य अमेरिका	४६, ७६६
सोवियत रूस	४५, ७००
अरजैनटाइन	४४, ४४०
दक्षिण अफ्रीका	४८, ७००
भारतवर्ष	४३, ५८१
न्यूज़ीलैंड	२७, ७५६
चीन	२६, ०००
यूनाइटेड किंगडम	२५, ८११
दुनिया की कुल भेड़ों का अनुमान	७४२, ०००

ऊन उत्पन्न करने वाले देशों के आंकड़े टनों में
(००० छोड़ दिए गए हैं)

आस्ट्रेलिया	५१५
संयुक्त राज्य अमेरिका	२१०
अरजैनटाइन	१८०
न्यूजीलंड	१४५
दक्षिण अफ्रीका	१२५
सोवियत रूस	१६०
भारतवर्ष	४५

दूध का धंधा (Dairy farming)

वैसे तो दूध देने वाले पशु बहुत से हैं परन्तु गाय, भैंस, बकरी, तथा भेड़ मुख्य हैं। भैंस का दूध भारतवर्ष में ही अधिक होता है। संसार में मुख्यतः गाय ही दूध देने वाला पशु है अतएव जहाँ गाय पालने की सुविधा है वहीं दूध का धंधा उन्नत कर गया है। दूध अधिकतर तरल पदार्थ के रूप में ही पिया जाता है। अधिकांश दूध का उपयोग पीने में अथवा चाय के साथ पीने में होता है। इसके अतिरिक्त मक्खन और पनीर के रूप में भी दूध का बहुत उपयोग होता है। भारतवर्ष में दूध से घी, तथा अन्य पदार्थ बनाये जाते हैं।

संसार में क्रमशः दूध और दूध से तैयार होने वाले पदार्थों की खपत बढ़ती जा रही है। जैसे-जैसे भूमि की कमी होगी वैसे ही वैसे मांस की खपत कम और दूध का उपयोग बढता जावेगा। क्योंकि दूध का धंधा खेती का एक सहायक धंधा है। गहरी खेती (Intensive cultivation) का यह एक आवश्यक अंग है। गहरी खेती का अर्थ यह है कि थोड़ी सी भूमि से अधिक सम्पत्ति उत्पन्न की जावे। अस्तु घनी आबादी वाले देशों में किसान खेती के साथ साथ दूध का भी धंधा करता है। खेत में उत्पन्न किये हुए चारे तथा अनाज को खिलाकर वह बहुत अधिक मूल्य का दूध उत्पन्न करता है। अतएव जहाँ गहरी खेती (Intensive cultivation) को अपनाना आवश्यक हो गया है वहाँ किसान दूध का भी धंधा करता है।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि दूध का धंधा मुख्यतः गाय पर निर्भर है। यह धंधा उन प्रदेशों में अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकता है जो साधारणतः ठंडे हों और जहाँ यथेष्ट वर्षा होती हो जिससे घास तथा अन्य प्रकार का चारा यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न हो सके। दूध अधिकतर जहाँ

उत्पन्न होता है उसके समीपवर्ती नगरों तक ही जाता है। क्योंकि दूध अधिक समय तक अच्छा नहीं रह सकता बड़े बड़े नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों में समीपवर्ती प्रदेश से प्रतिदिन ताजा दूध आता है। जो प्रदेश बड़े शहरों से दूर हैं वे दूध जमाकर बाहर भेजते हैं। पिछले दिनों में जमे हुए दूध का व्यापार बढ़ गया है।

दूध का धंधा उत्तरी अमेरिका के पूर्वीय समुद्रतट के समीप, पश्चिमीय योरोप में, तथा दक्षिण-पूर्वीय आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़िलैंड में बहुत अधिक होता है।

कनाडा का पूर्वीय भाग जिसमें आन्टेरियो (Ontario) तथा क्यूबैक (Quebec) के प्रान्त सम्मिलित हैं पहाड़ी होने के कारण खेती के लिए अनुपयुक्त है किन्तु जलवायु दूध के पशु पालने के अनुकूल है। अतएव आरम्भ से ही यहाँ के किसान दूध उत्पन्न करने का धंधा करते आये हैं। पूर्वीय कनाडा में औद्योगिक बड़े बड़े केन्द्र न होने के कारण ताजे दूध की अधिक खपत नहीं है। इसके विपरीत इस प्रदेश में बहुत अधिक राशि में दूध उत्पन्न होता है। अस्तु आवश्यकता से अधिक दूध का पनीर (Cheese) बनाया जाता है। क्यूबैक (Quebec) तथा आन्टैरियो (Ontario) में तीन हज़ार के लगभग पनीर बनाने के कारखाने हैं। कनाडा का पनीर अधिकतर ब्रिटेन को भेजा जाता है। कनाडा का पनीर बहुत अच्छा होता है और उसकी ब्रिटेन में खासी माँग रहती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की उत्तर-पूर्वीय रियासतों में भी दूध का धंधा बहुत उन्नत दशा में है। विशेषकर न्यू-यार्क और विसकान्सिन (Wisconsin) रियासतों में दूध तथा पनीर (Cheese) बहुत उत्पन्न होता है। उत्तर-पूर्व की रियासतों की भूमि इतनी उपजाऊ नहीं है जितनी पश्चिमीय रियासतों की। अस्तु पश्चिमीय भाग की तुलना में यहाँ खेती में लाभ कम है। इस कारण किसान दूध का धंधा अधिक करता है। यद्यपि इस भाग में बड़े बड़े विशाल औद्योगिक केन्द्र हैं और बहुत सा दूध उनमें खप जाता है फिर भी दूध आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होता है। उस दूध का पनीर बनाया जाता है। फिर भी संयुक्तराज्य अमेरिका पनीर बाहर से मँगाता है।

उत्तर-पश्चिमी योरोप में दूध के धंधे के लिए बहुत ही अनुकूल स्थिति है। वहाँ की मिट्टी अच्छी है जलवायु नम और ठंडा है जिसमें घास खूब उत्पन्न होती है और जनसंख्या घनी है। दूध के धंधे के लिए यह आदर्श स्थिति है। उत्तर-पश्चिम योरोप में दूध का प्रदेश पश्चिमी फ्रांस, हालैंड,

डेनमार्क, स्वीडन, और रूस तक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त आइरलैंड भी बहुत अधिक मक्खन बनाता है। उत्तर फ्रान्स में बहुत अच्छा मक्खन तैयार होता है जो लंदन और पेरिस को जाता है। इंग्लिश चैनल (English Channel) के द्वीपों का मुख्य धंधा मक्खन है। हालैंड तो बहुत प्राचीन काल से दूध के पशुओं के लिए प्रसिद्ध है। हालैंड के बहुत नम मैदान जिन पर बहुत उपजाऊ मिट्टी बिछी हुई है खेती के योग्य नहीं हैं किन्तु उन पर बहुत अच्छा चारा और घास उत्पन्न होती है। इन्हीं उपजाऊ घास के मैदानों पर डच किसान अपनी गायों को चराता है। डैनमार्क मक्खन बनाने में संसार में सर्वश्रेष्ठ है। डैनिश मक्खन की प्रसिद्धि संसार व्यापी है और ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ के गृहस्थों के भोजन गृह में डेनमार्क का मक्खन काम में न लाया जाता हो सच तो यह है कि समस्त डेनमार्क एक विशाल गऊशाला है। दूध उत्पन्न करना डैनमार्क के किसानों का मुख्य धंधा है। मक्खन के धन्धे की आशातीत उन्नति होने के कारण डैनमार्क में अधिकांश भूमि चारा उत्पन्न करने के काम आती है और डैनमार्क अनाज बाहर से मँगाता है। डैनमार्क में मक्खन बनाने के एक हजार से भी अधिक कारखाने हैं। इनके अतिरिक्त स्वीडन, उत्तर पश्चिम जर्मनी, स्वीटज़रलैंड, तथा रूस में दूध और मक्खन का धंधा महत्वपूर्ण है। योरोप तथा अमेरिका में दूध के पशु की नस्ल को बहुत अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। हालैंड और डैनमार्क में १६ सेर से कम प्रति दिन दूध देने वाली गाय को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं समझा जाता है। वहाँ की गायों का औसत १६ सेर से १८ सेर प्रति दिन और किसी जाति की गाय का प्रति दिन का औसत २० सेर भी होता है। उसकी तुलना में भारतवर्ष की गाय के दूध का औसत एक सेर प्रति दिन है।

आस्ट्रेलिया और न्युजीलैंड मक्खन और पनीर मँगाने वाले योरोपीय देशों से बहुत दूर हैं, परन्तु फिर भी शीत भण्डार रीति (Refrigeration) के आविष्कार से घी दूध का धन्धा पनप उठा है। आस्ट्रेलिया का पूर्वीय तथा दक्षिणी समुद्र तट का प्रदेश दूध और मक्खन उत्पन्न करता है। न्यूज़ीलैंड (Newzealand) विशेष कर दूध के धन्धे में अधिक उन्नति कर गया है। न्यूज़ीलैंड का अधिकतर प्रदेश पहाड़ी होने के कारण वहाँ खेती अधिक नहीं हो सकती। अतएव न्यूजीलैंड के लिए दूध के धन्धों की उन्नति करना आवश्यक है। न्यूज़ीलैंड में पानी बहुत बरसता है। इस कारण वहाँ अच्छी घास की बहुतायत है। न्यूज़ीलैंड सरकार ने मक्खन के धन्धे को बहुत प्रोत्साहन दिया है। इस कारण न्यूज़ीलैंड का मक्खन ब्रिटेन तथा अन्य योरोपीय देशों में बहुत बिकता है। आज न्यूज़ीलैंड ने मक्खन बनाने में

इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि डैनमार्क के बाद मक्खन बनाने वाले देशों में उसका सबसे ऊँचा स्थान है। केवल मक्खन ही नहीं न्यूज़ीलैंड में पनीर भी बहुत तैयार होता है। प्रतिवर्ष न्यूज़ीलैंड से अधिकाधिक मक्खन और पनीर बाहर भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त जमा हुआ दूध (Condensed Milk) भी न्यूज़ीलैंड से बाहर जाता है।

दूध का धंधा अब बहुत उन्नत दशा में है। गायों की नस्ल को सुधार कर उनसे अधिक से अधिक दूध उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। गायों के पालने तथा उन्हें खिलाने के तरीकों में बहुत सुधार किए गए हैं, तथा मक्खन और पनीर बनाने के आधुनिक वैज्ञानिक ढंग ढूँढ निकाल लिए गये हैं। विज्ञान के प्रभाव से दूध, मक्खन, और पनीर को सुरक्षित रखने तथा उसे दूर तक भेजने की सुविधा हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि दूध, मक्खन और पनीर का धन्धा दिन प्रति दिन उन्नति कर रहा है।

संसार के प्रमुख देशों में दूध की उत्पत्ति और उपयोग

देश	दूध की उत्पत्ति (लाख गैलनों में)	प्रति मनुष्य पीछे दैनिक दूध की उत्पत्ति औंस	प्रति मनुष्य पीछे दूध की खपत औंस
न्यूज़ीलैंड	८७००	२४४	५६
डेनमार्क	१२०००	१४८	४०
फिनलैंड	६२००	७४	६३
स्वीडन	६८००	६६	६१
आस्ट्रेलिया	१०४६०	६६	४५
कनाडा	१५८००	६६	३५
स्वीज़रलैंड	६०७०	६५	४६
निदरलैंडस	६७००	५४	३५
नार्वे	२६००	४५	४३
संयुक्त राज्य	१०३८००	३७	३५
जेकोस्लावाकिया	१२०००	३६	३६
वेल्जियम	६५१०	३५	३५
आस्ट्रिया	५४५०	३५	३०
जर्मनी	५०६६०	३४	३५
फ्रांस	३१५००	३३	३०
पोलैंड	१६०००	२७	२१
ब्रिटेन	१४७४०	१४	३६
इटली	२०५००	११	१०
रुमानिया	६८२०	६	६
भारतवर्ष	६४००० (८० करोड़ मन)	८	७

मुर्गी पालने का धंधा (Poultry Farming)

मुर्गी पालने का धन्धा यद्यपि साधारण व्यक्ति की दृष्टि से अधिक महत्व पूर्ण नहीं है किन्तु आर्थिक दृष्टि से उसका बहुत महत्व है। संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्पन्न होने वाले अंडों का मूल्य वहाँ उत्पन्न होने वाले लोहे से कहीं अधिक है। किन्तु उस धंधे ने लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं किया क्योंकि इसमें अधिक पूँजी नहीं लगती और यह सभी देशों में थोड़ा बहुत होता है। विशेष कर संयुक्त राज्य अमेरिका, योरोप, तथा पूर्व एशिया में तो यह धन्धा महत्वपूर्ण है।

मुर्गी पालने का धन्धा उन्हीं देशों में अधिक होता है जहाँ आबादी घनी है और गहरी खेती (Intensive cultivation) होती है। क्योंकि मुर्गी खेत तथा घर के कूड़े पर निर्वाह कर लेती है। किसान के घरवाले मुर्गियों की आसानी से देख भाल कर लेते हैं। केवल जाड़े में उनको ठंड से बचाने की आवश्यकता होती है। अन्यथा खेत के कूड़े और बचत पर ही ये पल सकती हैं। जहाँ गहरी खेती होती है वहाँ किसान खेती के साथ साथ दूध और मुर्गी पालने का धन्धा भी करता है। इस प्रकार थोड़ी सी भूमि से अधिक से अधिक धन उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में असंख्य मुर्गियाँ पाली जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का उत्पन्न करने वाले प्रदेश में बहुत मुर्गियाँ पाली जाती हैं। चीन में भी मुर्गियाँ बहुत पाली जाती हैं। प्रत्येक चीनी किसान मुर्गी पाल कर अंडे उत्पन्न करता है। चीन से अंडे बहुत बड़ी राशि में बाहर भेजे जाते हैं। शांटुंग प्रायद्वीप तथा अन्य स्थानों पर बहुत से कारखाने हैं जहाँ करोड़ों अंडों तथा उनके सफ़ेद पदार्थ को सुखा कर विदेशों को भेजा जाता है।

सम्भवतः चीन को छोड़ कर सबसे अधिक अंडे योरोप में उत्पन्न होते हैं। डैनमार्क, हालैंड, आयरलैंड, पोलैंड तथा बैलजियम में मुर्गी पालने का धन्धा बहुत उन्नत दशा में है और बहुत अधिक राशि में अंडे इन देशों में उत्पन्न किये जाते हैं। डैनमार्क में मक्खन की ही तरह बहुत अच्छे अंडे उत्पन्न किये जाते हैं क्योंकि सरकार ने मुर्गी पालने के धन्धे को भी खूब ही प्रोत्साहन दिया है।

ब्रिटेन और जर्मनी बहुत अधिक राशि में अंडे बाहर से मँगाते हैं। चीन, डैनमार्क, संयुक्तराज्य अमेरिका, हालैंड, पोलैंड, रूमानिया और युक्रेन से अंडे इन देशों को भेजे जाते हैं।

अंडे की माँग बढ़ने के कारण व्यापारिक ढंग से बड़ी मात्रा में अंडे उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। बड़े बड़े फार्मों (खेतों) पर हज़ारों की संख्या में मुर्गियाँ पाली जाती हैं और बहुत प्रकार का बना हुआ भोजन उन्हें खिलाया जाता है। ऐसे यन्त्र भी तैयार कर लिए गए हैं जिनसे अंडे को गरमी पहुँचा कर बच्चे निकाल लिए जाते हैं। पिछले दिनों से बड़ी मात्रा में अंडे उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है क्योंकि शीत भण्डार रीति (Refrigeration) के द्वारा अब अंडे दूर दूर भेजे जा सकते हैं किन्तु फिर भी अंडे का धन्धा मुख्यतः छोटी मात्रा में ही अधिकतर होता है और उसमें सफलता भी अधिक मिलती है।

आस्ट्रिच (Ostrich) पालने का धन्धा अधिकतर दक्षिण अफ्रीका तथा सुदान में होता है। आस्ट्रिच को उसके मुलायम और सुंदर परों के लिए पाला जाता है, क्योंकि उनका उपयोग सुंदर तथा फैशनेबिल वस्त्रों को तैयार करने में किया जाता है। अफ्रीका के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया न्यूज़ीलैंड, अरजैनटाइन, तथा फ्लौरिडा में भी यह पक्षी पाला जाता है।

वैसे तो शहद संसार के प्रत्येक देश में थोड़ा बहुत उत्पन्न होता है।

शहद की मक्खी पालना

जहाँ वर्षा खूब होती है और वनस्पति खूब लहलहाता है वहाँ शहद अधिक उत्पन्न होता है, क्योंकि शहद की मक्खी फूलों तथा कलियों से ही शहद इकट्ठा करती है। ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) के जँगलों में शहद खूब उत्पन्न होता है क्योंकि वहाँ के अधिकांश वृक्षों में शहद होता है। किसान शहद की मक्खी को पाल लेते हैं और उनसे अधिकाधिक शहद उत्पन्न करते हैं। शहद की मक्खी पालने का धन्धा संयुक्तराज्य अमेरिका तथा उत्तरी योरोप में बहुत फैला हुआ है। यह किसान का सहायक धन्धा (Subsidiary Occupation) है और वह अपने अवकाश का समय इस धन्धे में लगा कर अपनी आय को बढ़ा लेता है।

शहद की मक्खी तथा मुर्गी पालने के धन्धे में परिस्थिति इतनी सहायक नहीं होती है जितनी कि मनुष्य की कुशलता तथा उसका परिश्रम। यही कारण है जहाँ के किसान अधिक परिश्रमी तथा कुशल है वहाँ यह धन्धे बहुत उन्नति कर गए हैं।

पशु केवल भोजन (माँस दूध इत्यादि) तथा चमड़ा ही नहीं देते हैं

बोझा ढोने वाले पशु

उनका उपयोग खेती में तथा बोझा ढोने में बहुत अधिक होता है।

घोड़ा

घोड़ा बहुत उपयोगी जानवर है। मनुष्य समाज के लिए यदि गाय और बैल को छोड़ कर कोई महत्वपूर्ण पशु है तो वह घोड़ा ही है। पश्चिमी प्रदेशों में बैल खेती बारी के काम के लिए इतना उपयोगी नहीं है जितना घोड़ा। किन्तु पूर्वीय देशों में भी घोड़े का महत्व कुछ कम नहीं है। आज भी पूर्वीय देशों में घोड़े का उपयोग सवारी में बहुत होता है। जहाँ रेलपथ नहीं है वहाँ घोड़ा ही सवारी का मुख्य साधन है। फौजों में आज भी घोड़ों का महत्व है। घोड़े के लिए शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) की जलवायु बहुत अनुकूल है। घोड़ा मरुभूमि ऊष्ण कटिबन्ध के वनों, तथा उत्तर के अत्यन्त शीत प्रदेशों में नहीं होता है। ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) के सूखे प्रदेशों में घोड़ा बहुत पाया जाता है किन्तु जहाँ वर्षा बहुत होती है वहाँ नहीं होता। संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा, योरोप के सब देश, एशियाटिक रूस, तथा पश्चिमी एशिया में घोड़े बहुत पाले जाते हैं।

अरबी घोड़ा संसार में अपनी तेज़ी के लिए प्रसिद्ध है। यह सवारी के काम आता है बोझा ढोने के काम में इसका उपयोग नहीं होता। योरोप तथा विशेषकर ब्रिटेन की भिन्न भिन्न घोड़ों की जातियाँ अरबी घोड़ों के संसर्ग से ही उत्पन्न हुई हैं। जर्मनी, फ्रांस, बैलजियम तथा मध्य योरोप में घोड़े पालने का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। आस्ट्रेलिया में वेलर जाति के घोड़े प्रसिद्ध हैं किन्तु यह सवारी के काम के नहीं होते। संयुक्तराज्य अमेरिका में भी अच्छी जाति के घोड़े बहुत पाले जाते हैं। भारतवर्ष में कठिया'वाड़ के घोड़े प्रसिद्ध हैं।

खच्चर और गदहा (Mule & Donkey)

खच्चर गदहे और घोड़े के संसर्ग से उत्पन्न हुआ पशु है। घोड़ा बहुत तेज़ जानवर है, परन्तु वह कठोर जीवन का अभ्यस्त नहीं होता और न अधिक बोझा ही खींच सकता है। गदहे में तेज़ी नहीं होती किन्तु ऊपर लिखे हुए सब गुण होते हैं। यही कारण है कि खच्चर में शरीर की सुंदरता और तेज़ी तो घोड़े की होती है, और बोझा ढोने की शक्ति तथा अधिक परिश्रम करने का अभ्यास गदहे के दिए हुए गुण हैं। गदहे में एक विशेषता यह है कि वह बुरा से बुरा चारा पाकर भी खूब परिश्रम कर सकता है। बोझा ढोने की तो उसमें अकथनीय शक्ति होती है। यदि घोड़े को एक दिन भी अच्छा चारा तथा दाना न मिले तो वह काम नहीं देता परन्तु गदहा भोजन न मिलने पर भी मेहनत कर सकता है। यद्यपि

गद्दा सब प्रकार से घोड़े से श्रेष्ठ पशु है परन्तु मनुष्य ने उसका कभी आदर नहीं किया।

चीन, टर्की तथा भारतवर्ष में संसार के दो तिहाई गदहे मिलते हैं। इनके अतिरिक्त स्पेन इटली, ईजिप्ट, तथा मरक्को (Morocco) में संसार के लगभग एक चौथाई गदहे हैं। खच्चर दक्षिण फ्रांस और स्पेन में बहुत हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण के ऐन्डीज़ पर्वतीय प्रदेश तथा चीन और मंचूरिया में खच्चर बहुत पाये जाते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में बोझा ढोने के लिए, तथा फौज़ का सामान ढोने के लिए खच्चरों का बहुत उपयोग होता है।

ऊँट ऊँट गरम देश में रहने वाला जानवर है। रेगिस्तानों तथा पर्वतीय प्रदेशों में जहाँ सघन वन न हों वहाँ उसका उपयोग सवारी तथा बोझ ढोने के लिए होता है। गरम प्रदेशों तथा मरुभूमि में तो यह मनुष्य के जीवन का आधार ही है। मध्य अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान से लेकर अरब, फारस, तुर्किस्तान, तथा मध्य एशिया होता हुआ जो गरम और सूखा प्रदेश मंगोलिया तक जाता है उसमें मुख्यत: ऊँट का ही उपयोग होता है। अफ्रीका तथा एशिया के रेगिस्तानों में यदि ऊँट न होता तो वहाँ मनुष्य निवास ही न कर सकता। भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में भी ऊँट का बहुत उपयोग होता है। अब आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान में भी ऊँट पहुँच गया है। ऊँट रेगिस्तान की सूखी घास तथा काँटेदार झाड़ियों को खाकर रह सकता है। इसी कारण जलरहित प्रदेशों में इसका इतना अधिक महत्व है।

हाथी यह सबसे बड़ा पशु है। अब उसका अधिक उपयोग नहीं होता क्योंकि इसके पालने में खर्च बहुत होता है। हाथी सघन वनों में मिलता है। मध्य अफ्रीका, बर्मा, तथा श्याम के वनों में हाथी बहुत पाया जाता है। हाथी की हड्डी तथा दाँत बहुमूल्य व्यापारिक वस्तु है। बर्मा तथा श्याम के पहाड़ी प्रदेशों में यह लकड़ी ढोने के काम आता है।

इनके अतिरिक्त रैनडियर (Reindeer) उत्तरी ध्रुव के समीपवर्ती अत्यन्त ठंडे प्रदेश का मुख्य पशु है। इस शीत प्रदेश में उत्पन्न होने वाली झाड़ियाँ, थोड़ी घास और बर्फ पर उत्पन्न होने वाली काई तक पर वह निर्वाह कर लेता है। नार्वे से लेकर बेरिंग (Bering Strait) तक यूरेशिया में, तथा उत्तरी कनाडा में यह बहुत पाया जाता है। हिमालय के प्रदेश में याक (Yak) नामक बैल जो बर्फ पर भी चल सकता है बोझ ढोने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह भी बहुत थोड़े भोजन पर निर्वाह कर

सकता है। दक्षिण अमेरिका के ऐंडीज़ पहाड़ी प्रदेश में लामा (Llama) माल ढ़ोने के काम में बहुत आता है।

रेशम (Silk) रेशम को उत्पन्न करने वाला एक कीड़ा होता है परन्तु इस कीड़े का शहतूत के वृक्ष से घनिष्ठ संबंध है। यह कीड़ा शहतूत की पत्तियों (Mulberry leaves) पर ही निर्वाह करता है। शहतूत की पत्तियों पर रेशम का कीड़ा पाला जाता है। यही उसका भोजन है। इस कारण जहाँ शहतूत का वृक्ष उत्पन्न हो सकता है वहीं पर रेशम उत्पन्न किया जा सकता है।

शहतूत का वृक्ष बहुत प्रकार के जलवायु में उत्पन्न हो सकता है। परन्तु रेशम का कीड़ा सफलतापूर्वक वहीं पाला जा सकता है जहाँ कि वृक्ष वर्ष में पत्तियों की दो फसलें उत्पन्न करते हों। शहतूत के वृक्ष पत्तियों की दो फसलें उन्हीं प्रदेशों में उत्पन्न करते हैं जहाँ न अधिक ठंड हो और न बहुत गरमी। शीतोष्ण कटिबंध (Temperate zone) का गरम भाग और ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) का वह भाग जो बहुत गरम न हो शहतूत के वृक्ष उत्पन्न करने के लिए बहुत उपयुक्त है। अस्तु रेशम का कीड़ा भूमध्य रेखा (Equater) के १५° उत्तर और दक्षिण से लेकर ४०° उत्तर और दक्षिण के भूभाग में पाला जाता है। इन्हीं प्रदेशों में कीड़ा पाला जा सकता है क्योंकि उसका मुख्य भोजन यहीं उत्पन्न होता है। रेशम के कीड़े पालने के लिए दूसरी आवश्यकता है सस्ते मज़दूरों की। क्योंकि रेशम के कीड़े पालने का काम बहुत झंझट का है और उसमें अपेक्षाकृत अधिक मज़दूरों की ज़रूरत होती है। चीन और जापान रेशम के कीड़े पालने के लिए बहुत उपयुक्त हैं, क्योंकि वहाँ की जलवायु शहतूत के वृक्ष के अनुकूल है और वहाँ मज़दूर सस्ते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका की कुछ रियासतों की जलवायु शहतूत के वृक्ष के लिए उपयुक्त है किन्तु मज़दूरी बहुत महँगी होने के कारण वहाँ रेशम के कीड़े पालने का धंधा पनप नहीं सकता।

कीड़े से रेशम को पृथक करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। रेशम के कीड़ों को पालने में बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अधिकतर उनकी देख-भाल स्त्रियाँ और बच्चे करते हैं। रेशम कीमती होने के साथ साथ बहुत हल्का होता है इस कारण वह बहुत दूर तक भेजा जा सकता है। रेशम का कीड़ा जब सुप्त अवस्था में जाने को होता है तो सिर के दो छेदों से बहुत बारीक तार निकालने लगता है, और वह रेशम का तार उसके शरीर के चारों ओर लिपट जाता है।

चीन और जापान संसार का अधिकांश रेशम उत्पन्न करते हैं। चीन से बहुत सा रेशम विदेशों को भेजा जाता है परन्तु जापान रेशम के कपड़े बना कर बाहर भेजता है। रेशम का सूत जापान से भारतवर्ष में बहुत आता है। इनके अतिरिक्त एशिया में फारस, एशिया-मायनर और ट्रांस काकेशिया (Trans Caucasia) में भी कीड़े पाले जाते हैं तथा थोड़ा रेशम उत्पन्न होता है।

योरोप के अन्तर्गत इटली और फ्रांस रेशम उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य है। इटली में मिलन (Milan) और फ्रांस में लियान्स (Lyons) रेशमा कपड़ा बनाने के मुख्य केन्द्र हैं। ग्रीस में भी कुछ रेशम उत्पन्न होता है। संसार में रेशम की उत्पत्ति क्रमशः बढ़ती जा रही है। किन्तु असली रेशम की स्थिति बहुत डवाँडोल है क्योंकि सन् १९२० के उपरान्त नक़ली रेशम बहुत बनने लगा है और क्रमशः नकली रेशम असली रेशम से घोर प्रतिद्वन्द्विता करने लगा है।

ब्रिटेन, जर्मनी और संयुक्तराज्य अमेरिका बहुत सा रेशम इन देशों से मँगाते हैं और रेशमी कपड़ा तैयार करते हैं। नक़ली रेशम का कपड़ा सस्ता होने के कारण अधिक बिकता है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह असली रेशम की खपत को बहुत अधिक घटा देगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—पशु-पालन के धंधे के लिए कैसे जलवायु और भूमि की आवश्यकता है। पशु पालन का धंधा कहाँ अधिक होता है।

२—गौ मांस के धंधे का वर्णन कीजिए और बतलाइए कि वह कहाँ अधिकतर केन्द्रित है और क्यों।

३—ऊन उत्पन्न करने वाले प्रमुख देश कौन से हैं और वहाँ ऊन का धंधा किस प्रकार होता है।

४—दूध और मक्खन के धंधे का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

५—रेशम किन देशों में अधिकतर उत्पन्न होता है उनका संक्षिप्त विवरण लिखिये।

६—पशुओं का खेती, माल ढोने तथा गमनागमन के साधनों को उपलब्ध करने में कितना उपयोग होता है विस्तार पूर्वक लिखिए।

———

सातवाँ परिच्छेद

मुख्य धन्धे—कृषि (Agriculture)

कृषि का प्रादुर्भाव

आरम्भ में मनुष्य जब वनों में रह कर वहाँ के पशु पक्षियों को मारकर तथा फलों इत्यादि से अपनी उदर पूर्ति करता था उस समय उसमें तथा पशुओं में विशेष अन्तर नहीं था। किन्तु क्रमशः मनुष्य की जनसंख्या बढ़ती गई और उसके लिए अधिकाधिक भोजन की आवश्यकता हुई। बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन के लिए केवल वनों से यथेष्ट भोजन नहीं प्राप्त हो सकता था, अतएव मनुष्य ने पशुओं को न मारकर उन्हें पालना आरम्भ किया। क्योंकि उन्हें मार कर खाने में जितना भोजन प्राप्त हो सकता था उससे कहीं अधिक भोजन उन्हें पाल कर उत्पन्न किया जा सकता था। साथ ही पशुओं को पालने से भोजन अधिक निश्चित रूप से प्राप्त हो सकता था। अतएव मनुष्य ने उपयोगी पशुओं के पालने का धंधा अपना लिया। वनों से फल इत्यादि इकट्ठा करने से मनुष्य को यह भी ज्ञात हो गया कि कुछ पौधे (गेहूँ, चावल, इत्यादि) उसके लिए अधिक उपयोग के हैं और अन्य पौधे उपयोगी नहीं हैं। आरम्भ में प्रत्येक पौधा जंगली अवस्था में उत्पन्न होता था, अतएव उपयोगी पौधों के आस पास अनुपयोगी पौधे भी उगे रहते थे। मनुष्य को उपयोगी पौधों के अनाज को इकट्ठा करने में बड़ी कठिनाई होती थी। अतएव उसने अनुपयोगी पौधों को काटना आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ज़मीन के टुकड़े पर केवल उपयोगी पौधे ही रहने दिये जाते थे और जब अनाज पकता था उस समय आसानी से अनाज को काट कर इकट्ठा किया जा सकता था। अब मनुष्य ने देखा कि इस प्रकार अनुपयोगी पौधों के नष्ट कर देने से उपयोगी पौधों की बढ़वार अच्छी होती है, और वे अनाज अधिक उत्पन्न करते हैं। इधर जन संख्या के बराबर बढ़ने के कारण मनुष्य को अधिक भोजन की आवश्यकता थी। उसने देखा कि इस प्रकार अनाज इकट्ठा करने से बहुत सी भूमि व्यर्थ में नष्ट हो जाती है क्योंकि दो पौधों के बीच में बहुत सी भूमि छूटी रहती थी। अतएव उसने सारे टुकड़े को साफ करके उसे जोत कर उपयोगी पौधों के बीज बराबर बराबर दूरी पर डाल कर खेती करना आरम्भ कर दी। आरम्भ में मनुष्य जंगलों को जलाकर साफ कर लेते और फिर कुछ वर्ष लगातार उस पर फसल पैदा करते रहते

थे। जब इस प्रकार खेती करने से भूमि निर्बल हो जाती तब वे उस टुकड़े को छोड़ कर दूसरे टुकड़े को साफ करते और उस पर खेती करने लगते। आज भी कतिपय पिछड़े हुये भूभागों में जंगली जातियाँ इसी प्रकार खेती करती हैं। परन्तु जैसे जैसे जन संख्या बढ़ती गई और भूमि की कमी होती गई इस प्रकार की खेती करना असम्भव होता गया। अब मनुष्य एक ही स्थान पर जम कर रहने लगा और उसी भूमि पर लगातार खेती करने के लिए विवश हो गया किन्तु ऐसा करने से बहुत सी समस्यायें उठ खड़ी हुई। भूमि की उपजाऊ शक्ति को कम न होने देना, पानी की कमी होने पर सिंचाई का प्रबंध करना, तथा फसल के शत्रुओं से फसल की रक्षा करना इत्यादि। जैसे जैसे मनुष्य को खेती का अनुभव होता गया वैसे ही वैसे वह खेती की उन्नति करता गया।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि खेती जलवायु और भूमि पर निर्भर है। किन्तु जलवायु तथा भूमि सब जगह एक सी नहीं होती। अतएव भिन्न प्रकार की जलवायु तथा भूमि पर खेती करने के ढंग में थोड़ा हेर फेर करना पड़ा। यही नहीं खेती की अन्य समस्याओं को हल करने के लिए मनुष्य ने सिंचाई, खाद, और फसल की रक्षा का प्रबंध किया तथा भिन्न भिन्न जलवायु में उत्पन्न हो सकने वाले बीज उत्पन्न किए। सच तो यह है कि मुख्य धंधों (Primary Industries) में खेती ही एक ऐसा धंधा है कि जिसमें मनुष्य के श्रम का महत्वपूर्ण स्थान है अन्यथा अन्य मुख्य धन्धों (Primary Industries) में प्रकृति का ही मुख्य हाथ रहता है। मनुष्य केवल प्रकृति की देन को एकत्रित कर लेता है, वनों, खानों तथा समुद्री मछलियों से क्रमशः लकड़ी, धातु और मछलियाँ इकट्ठी करने में मनुष्य का कोई विशेष हाथ नहीं रहता।

आधुनिक काल में, खेती वैज्ञानिक ढंग से की जाती है और जनसंख्या के अधिक बढ़ जाने के कारण थोड़ी भूमि से आवश्यक भोज्य पदार्थ तथा कच्चा माल उत्पन्न करना पड़ता है, इस कारण अधिकांश देशों में गहरी खेती (Intensive Cultivation) की जाती है। (अर्थात् थोड़ी भूमि पर अधिक से अधिक पूँजी (Capital) और श्रम (Labour) लगा कर उत्पत्ति के बढ़ाने का प्रयत्न करना)।

आधुनिक काल में मनुष्य ने खाद का उपयोग सीख कर भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने का उपाय ढूँढ़ निकाला है। जहाँ पानी की कमी होती है वहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध कर दिये हैं। और यदि किसी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसका वह कोई उपाय नहीं ढूँढ़

सकता तो वह खेती में ही आवश्यक हेर फेर कर लेता है। उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिका में पाला अधिक पड़ने के कारण विशेषज्ञों ने ऐसा गेहूँ उत्पन्न किया है जो शीघ्र ही पक जावे और फसल को पाले से हानि न पहुँचे। यदि देखा जावे तो गरमी ही एक ऐसी चीज़ है जिसकी कमी को मनुष्य किसी प्रकार पूरा नहीं कर पाता। अस्तु खेती की उन्नति होगी या नहीं यह बहुत कुछ गरमी पर ही निर्भर रहती है। अस्तु जिन देशों में गरमी कम होती है वहाँ खेती उन्नति नहीं कर सकती। साधारणतः जिस प्रदेश में सबसे अधिक गरम महीने में ५०° फै० से कम गरमी होती है वहाँ खेती हो ही नहीं सकती। खेती की सफलता के लिए लम्बी गरमियाँ आवश्यक हैं क्योंकि गरमी में ही पौधा उगता और बढ़ता है। उत्तर में गरमियाँ लम्बी नहीं होती किन्तु दिन लम्बा होने के कारण फसल के लिए यथेष्ट गरमा मिल जाती है।

पौधे के लिए कितने जल की आवश्यकता होगी यह इस बात पर निर्भर है कि उस प्रदेश में गरमी कैसी पड़ती है। यदि गरमी अधिक पड़ती है तो अधिक जल की आवश्यकता होगी और यदि गरमी कम पड़ती है तो कम जल की आवश्यकता होगी। साधारणतया शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) में कम से कम २० इन्च वर्षा खेती के लिए आवश्यक है, और ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) में ३० इंच से ४० इंच तक वर्षा आवश्यक है। इससे कम वर्षा होने पर खेती होना कठिन है। हाँ सिंचाई के द्वारा ऐसे स्थानों पर खेती की जा सकती है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि मिट्टी कैसी है—इस पर खेती बहुत कुछ निर्भर रहती है। यदि मिट्टी उपजाऊ होगी तो फसल अच्छी उत्पन्न होगी और यदि मिट्टी कम उपजाऊ होगी तो फसल अच्छी उत्पन्न नहीं होगी। जिस मिट्टी में चिकनी मिट्टी (Clay) का अंश अधिक होता है वह वर्षा के जल को अपने कणों में सुरक्षित रखती है और इस कारण जहाँ वर्षा कम होती है और गरमी अधिक होती है वहाँ इस प्रकार मिट्टी खेती के लिए उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि वह पानी को भाप बन कर नहीं उड़ने देती। किन्तु जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ इस प्रकार की मिट्टी हानिकारक होती है क्योंकि वहाँ फिर भूमि में आवश्यकता से अधिक नमी रहती है। जिस मिट्टी में रेत का अंश अधिक होता है वह पानी को अपने कणों में सुरक्षित नहीं रख सकती अस्तु अधिकांश जल भाप बन कर उड़ जाता है।

पौधों को मिट्टी में मिले हुए पानी द्वारा भोजन मिलता है। कुछ ऐसे

तत्व हैं जो पौधों को पैदा करने के लिए बहुत ज़रूरी हैं और जिन्हें पौधे अपनी जड़ों द्वारा खींचते हैं। इन आवश्यक तत्वों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। पहले जो हवा और पानी से प्राप्त होते हैं जैसे कार्बन (Carbon) ओषजन (Oxygen) उद्‌जन (Hydrogen) और दूसरे वे जो मिट्टी से प्राप्त होते हैं, जैसे नोषजन (Nitrogen) हरिन (Chlorine) गंधक (Sulphur) पोटेसियम (Potassium) खटिक (Calcium) मगनीसियम (Magnesium) और लोहा इत्यादि।

इस तरह पौधा मिट्टी से सदैव यह आवश्यक तत्व खींचता रहता है। परन्तु लगातार फसल उत्पन्न करने तथा पानी के साथ बह जाने के कारण यह तत्व कम होते रहते हैं। किसान का यह कर्तव्य है कि वह इन तत्वों की कमी को पूरा कर दे नहीं तो भूमि की उपजाऊ शक्ति घटती जावेगी। सब अच्छी मिट्टियों में वनस्पति का अंश (Humus) होना आवश्यक है। यद्यपि ह्यूमस (Humus) पौधे को स्वयं भोजन नहीं देता किन्तु वह नोषजन को सुरक्षित रखने तथा उससे वनस्पति नोषेत (Nitrate) को उत्पन्न करने का काम करता है।

खेती में मिट्टी का बहुत अधिक महत्व है यही कारण है कि खेती की अधिकांश समस्यायें मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने से संबंध रखती हैं। अब हम यहाँ उनके विषय में लिखेंगे।

मिट्टी का कटाव (Soil Erosion)

वर्षा का पानी मिट्टी के उपजाऊ अंश को बहा ले जाता है, इसी को मिट्टी का कटाव कहते हैं। जहाँ वर्षा बहुत अधिक और तेज़ होती है वहाँ यह समस्या उपस्थित हो जाती है। यह कटाव दो प्रकार से होता है। (१) समतल कटाव (Sheet erosion) तथा गहरा कटाव (Gully erosion)। समतल कटाव (Sheet erosion) अधिक हानिकर नहीं होता क्योंकि प्रति वर्ष थोड़ी सी ही मिट्टी पानी द्वारा बहती है यद्यपि इस प्रकार मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम होती रहती है किन्तु उस पर खेती की जा सकती है। परन्तु गहरा कटाव (Gully erosion) बहुत भयंकर होता है। पानी ज़ोर से बहकर भूमि को काट देता है, भूमि में गहरे नाले बन जाते हैं, प्रतिवर्ष अधिकाधिक भूमि कटती जाती है और थोड़े ही वर्षों में बहुत विस्तृत मैदान में नाले ही नाले बन जाते हैं। इसका फल यह होता है कि वह सारी भूमि खेती के लिए अनुपयुक्त हो जाती है। जमना और चम्बल के प्रदेश में इस प्रकार कटाव बहुत देखने को मिलता है। भूमि के

कटाव से खेती को बहुत अधिक हानि होती है और इसका केवल एक मात्र उपाय उस भूमि पर पेड़ों को उत्पन्न करना है। पेड़ों की जड़ें मिट्टी को जकड़े रहती हैं इस कारण वर्षा का जल उसे काट नहीं सकता।

मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को घटने से रोकना

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि फसल को उत्पन्न करने से मिट्टी के कुछ तत्व कम हो जाते हैं। बात यह है कि प्रत्येक फसल किन्हीं विशेष तत्वों को कम करती है और कुछ तत्वों को भूमि में बढ़ाती है। अतएव यदि लगातार एक ही फसल बहुत समय तक भूमि पर उत्पन्न की जावे और भूमि पर खाद न डाली जावे तो उन नमकों (Salts) की कमी के कारण जिन्हें फसल कम कर देती है भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो जावेगी। भूमि की उपजाऊ शक्ति को रोकने के लिए किसान तीन उपाय काम में लाता है (१) फसलों का हेर फेर (Rotation of crops) (२) भूमि को विश्राम देना (३) भूमि पर खाद डालना। फसलों के हेर फेर का अर्थ यह है कि एक बार जिस फसल को भूमि पर उत्पन्न किया गया है उसी को दूसरी बार उत्पन्न न किया जावे। किसान ने अनुभव से यह जान लिया है कि कुछ फसलें जिन नमकों (Salts) को भूमि में कम कर देती हैं वही तत्व या नमक दूसरी फसल भूमि में बढ़ा देती हैं। अतएव वह एक के बाद दूसरी उस फसल को उत्पन्न करता है जो एक दूसरे की पूरक हों।

अनुभव से यह भी ज्ञात हुआ है कि यदि भूमि को थोड़ा विश्राम दिया जावे अर्थात् उस पर कोई फसल उत्पन्न न की जावे तो भूमि हवा से खाये हुए तत्वों या नमकों को फिर प्राप्त कर लेती है। किन्तु ऊपर लिखे उपायों से कुछ हद तक ही काम चल सकता है। क्योंकि जिन देशों की आबादी घनी है वे न तो भूमि को उचित विश्राम ही दे सकते हैं और न फसलों का हेर फेर से खोये हुए तत्वों को पूरा पूरा प्राप्त किया जा सकता है। इस कारण किसान को भूमि पर खाद डालना आवश्यक हो जाता है।

अधिकतर भूमि के आवश्यक तत्वों में नोषजन (Nitrogen) पोटेशियम (Potassium) तथा फासफोरस (Phosphorus) की ही कमी होती है। अतएव किसान खाद डाल कर इन तत्वों की कमी को पूरा करता है। किसान पशुओं के गोबर, घास तथा चारा इत्यादि से तैयार की हुई खाद को भूमि पर डालता है, अथवा खेत पर विशेष फसलें उत्पन्न करके उन्हें खेत में ही जोत देता है जो सड़कर खाद बन जाती हैं। अथवा

पशुओं को खेत पर रख कर उनके गोबर तथा पेशाब के द्वारा भूमि को उपजाऊ बनाता है।

कुछ समय से पश्चिमीय देशों में रासायनिक खाद का भी उपयोग होने लगा है। आवश्यकता पड़ने पर किसान सोडा-नाईट्रेट (Nitrate of Soda) अमोनिया-सलफेट (Sulphate of Amonia) तथा फास्फेट्स (Phosphates) का भी उपयोग करता है। किन्तु यह रासायनिक खाना (Chemical fertilizers) अधिक खर्चीले होते हैं इस कारण उनका उपयोग केवल अधिक मूल्यवान फसलों के लिए होता है। साथ ही केवल वे ही किसान इसका उपयोग करते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो। जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती जा रही है और उसके लिए अधिकाधिक भोजन को उत्पन्न करने की आवश्यकता भी बढ़ रही है वैसे ही वैसे अधिकाधिक खाद का उपयोग बढ़ रहा है।

खेती में जल का महत्त्व

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि खेती के लिए जल भी नितान्त आवश्यक है। अधिकांश भूभाग में खेती वर्षा के जल से ही होती है। किन्तु जिन प्रदेशों में २० इंच से भी कम वर्षा होती है वहाँ जल की कमी के कारण खेती बिना सिंचाई के नहीं हो सकती। यह न भूल जाना चाहिए कि संसार में जितनी भूमि पर खेती होती है उसका अधिकांश भाग बिना सिंचाई के फसलें उत्पन्न करता है। उसकी तुलना में सींची जाने वाली भूमि बहुत थोड़ी है।

सिंचाई (Irrigation)

जिन प्रदेशों में वर्षा लगातार नहीं होती वरन किसी खास मौसम में होती है वहाँ सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए मानसून वाले प्रदेशों में जहाँ वर्षा केवल वर्ष के तीन चार महीनों में ही होती है बिना सिंचाई के खेती नहीं की जा सकती। यही नहीं जहाँ वर्षा आवश्यकता से कम होती है वहाँ भी सिंचाई की जाती है। सिंचाई के द्वारा खेती करने में खर्च तथा श्रम अधिक पड़ता है। किन्तु सिंचाई पर निर्भर रह कर खेती करने वालों को एक सुविधा यह रहती है कि पानी उनके अधिकार में रहता है, जब आवश्यकता होती है तभी वह खेत को पानी दे सकता है। इस कारण सिंचाई द्वारा खेती करने से पैदावार अधिक होती है।

सिंचाई के निम्नलिखित तीन साधन हैं (१) नदियों से नहरें निकाल कर सिंचाई की जाती है। नदियाँ ऐसी होना ज़रूरी हैं कि जिनमें सदैव पानी रहता हो (२) तालाब अथवा झील में जिसमें वर्षा का पानी इकट्ठा

कर लिया जाता है और फिर सूखे मौसम में उसका उपयोग सिंचाई के लिए होता है (३) पृथ्वी के अन्दर बहते हुए पानी को कुयें खोद कर सिंचाई के काम में लाया जाता है।

सिंचाई के साधनों तथा धरातल की बनावट का गहरा सम्बंध है। यदि भूमि पथरीली हो और प्रदेश पहाड़ी हो तो नहरें नहीं खोदी जा सकतीं क्योंकि नहरें खोदने में बहुत अधिक व्यय पड़ेगा। साथ ही नहरें उन्हीं नदियों से निकाली जा सकती हैं कि जिनमें बराबर पानी रहता हो। भारतवर्ष में केवल उन्हीं नदियों से नहरें निकाली गई हैं जो बर्फ़ीले पहाडों से निकलती हैं। तालाब और झील बनाने में अधिक व्यय नहीं होता क्योंकि उसमें केवल बाँध बना कर पानी को रोकना पड़ता है। किन्तु भूमि पथरीली होने पर कुओं का खोदना तथा विशेष कर पाताल फोड़ कुओं (Artisan wells) का बनाना बहुत कष्ट साध्य तथा खर्चीला होता है।

सिंचाई केवल उन्हीं प्रदेशों में नहीं होती जहाँ वर्षा कम होती है, जहाँ वर्षा यथेष्ट होती है वहाँ भी सिंचाई होती है क्योंकि किन्हीं किन्हीं प्रदेशों में वर्षा तो साधारणतः यथेष्ट होती है किन्तु वह अनिश्चित होती है इस कारण वहाँ सिंचाई की जाती है। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि यदि पंद्रह दिन के अन्दर एक इंच से कम वर्षा हो तो फसल को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। अतएव जिन प्रदेशों में वर्षा तो यथेष्ट होती है किन्तु बीच बीच में पंद्रह दिन से अधिक सूखा पड़ता है वहाँ सिंचाई की आवश्यकता होती है।

संसार में सबसे अधिक भूमि भारतवर्ष में सींची जाती है। यहाँ बड़े बड़े तालाब तथा नहरों के द्वारा सिंचाई की जाती है। संसार के भिन्न भिन्न देशों में सिंचाई के द्वारा खेती की जाने वाली भूमि इस प्रकार है।

भारतवर्ष—पाँच करोड़ एकड़
संयुक्त राज्य अमेरिका—दो करोड़ एकड़
रूस———८० लाख एकड़
जापान——७० लाख एकड़
मिश्र (Egypt)—६० " "
मैक्सिको (Mexico)—५७ " "
इटली————————४५ " "

सिंचाई के द्वारा जितनी भूमि पर खेती होती है उसका क्षेत्रफल भविष्य में बढ़ जावेगा क्योंकि भारतवर्ष तथा ईजिप्ट इत्यादि देशों में नई नई नहरें

तथा तालाब बनाने का क्रम जारी है। संसार में नील, सिंध, गंगा, पंजाब की नहरें, अन्य भारतीय नदियों से निकलने वाली नहरें, यांगटसीकियांग तथा यूफ्रैटीज़ और टाइग्रीस नदियों से बहुत अधिक सिंचाई होती है। सच तो यह है कि इन नदियों के समीपवर्ती प्रदेश इनके पानी से ही जीवित हैं।

सूखी खेती (Dry farming)

कुछ प्रदेश तो ऐसे भी हैं जो बहुत ही सूखे हैं। जहाँ वर्षा तो बहुत कम होती ही है साथ ही सिंचाई के साधन भी नहीं होते वहाँ सूखी खेती (Dry farming) के द्वारा फसल उत्पन्न की जाती है। सूखी खेती में किसान बाहर के पानी का उपयोग नहीं करता वरन जो कुछ थोड़ा बहुत जल वर्षा के दिनों में गिरता है उसका अधिक से अधिक उपयोग करने का प्रयत्न करता है।

सूखी खेती (Dry farming) में किसान फसल काटने के उपरान्त ही खेत को खूब गहरा जोत देता है जिससे जो भी वर्षा का जल गिरे वह इधर उधर न बह कर पृथ्वी में सूख जाय। यही नहीं किसान समय समय पर भूमि को जोतता रहता है जिससे व्यर्थ पौधे उग कर भूमि को नष्ट न कर दें। इसके अतिरिक्त वह भूमि की ऊपरी सतह की मिट्टी को बहुत ही बारीक कर देता है जिससे पानी भाप बन कर न उड़ सके। सूखी खेती प्रति वर्ष नहीं होती। कहीं कहीं एक वर्ष छोड़ कर दूसरे वर्ष खेती की जाती है जिससे फसल भूमि में जमा किए हुए पानी का उपयोग कर सके। सूखी खेती में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि केवल वही फसल पैदा की जाय जो शुष्कता को सहन कर सके और जो कम खर्चीली हो।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी भाग में सूखी खेती का खूब उपयोग किया गया है। गेहूँ, कपास, जौ, ओट, रुई तथा अन्य अनाज सूखी खेती के द्वारा उन प्रदेशों में उत्पन्न किये जाते हैं जहाँ साधारणतया फसल उत्पन्न ही नहीं हो सकती। सबसे पहले सूखी खेती का प्रयोग संयुक्तराज्य में ही हुआ और अब क्रमशः यह उन प्रदेशों में फैल रही है जो बहुत सूखे हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त कनाडा, आस्ट्रेलिया, पश्चिमीय एशिया, और दक्षिण अफ्रीका में सूखी खेती के द्वारा फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

सूखी खेती प्रत्येक देश में एक ही तरह से नहीं हो सकती क्योंकि प्रत्येक देश की जलवायु तथा भूमि एक सी नहीं होती। जलवायु तथा भूमि की भिन्नता के साथ सूखी खेती की पद्धति में भी हेर फेर करना पड़ता है। कहीं कहीं जहाँ धूप तेज़ पड़ती है वहाँ भूमि को अच्छी तरह से जोत कर वर्षा के पानी को उसमें सुला कर ऊपर से पत्थर के टुकड़े बिछा दिये

जाते हैं जिससे पानी भाप बन कर न उड़ सके। कहीं कहीं जहाँ नीचे की तह में कहीं चिकनी मिट्टी की तह नहीं होती वहाँ एक या दो फिट मिट्टी हटा कर नीचे की भूमि को पीट कर कठोर कर दिया जाता है और मिट्टी को फिर उस पर डाल दिया जाता है जिससे वर्षा का पानी बहुत गहराई तक न जा सके। सूखी खेती की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जल्दी पकने वाली फसलें उत्पन्न की जायें।

अभ्यास के प्रश्न

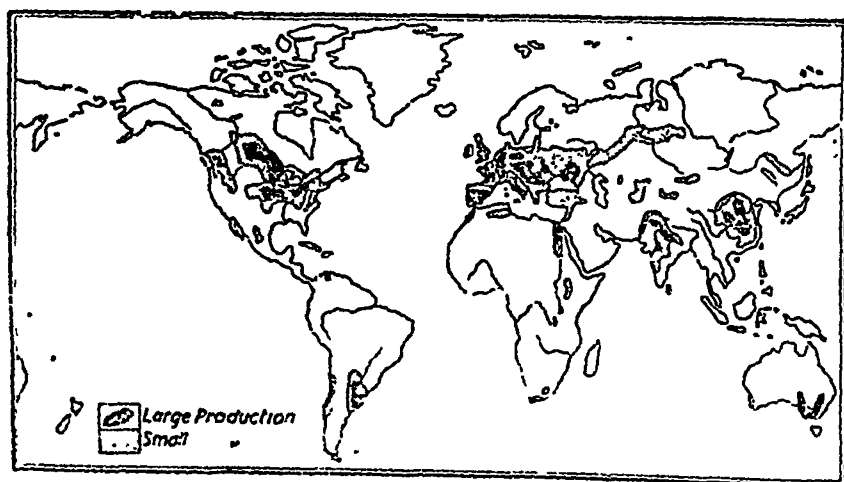
१. भूमि के कटाव (Soil Erosion) से क्या हानियाँ होती हैं उसे किस प्रकार रोका जा सकता है?
२. खेती के लिए खाद और सिंचाई का क्या महत्व है?
३. सूखी खेती (Dry farming) किसे कहते हैं विस्तार पूर्वक लिखिए।

आठवाँ परिच्छेद

खेती की पैदावार—भोज्य पदार्थ

गेहूँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण अनाज है। मनुष्य जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गेहूँ ही खाता है यद्यपि चावल खाने वालों की संख्या गेहूँ खाने वालों से कम नहीं है। गेहूँ की खेती अत्यन्त प्राचीन काल से होती आ रही है और भिन्न भिन्न जलवायु में इसको उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है इस कारण इसकी अगणित जातियाँ हैं। रूस के उत्तरी भाग में उत्पन्न होने वाला गेहूँ भारतवर्ष में उत्पन्न नहीं हो सकता। भारतवर्ष का गेहूँ शीघ्र पकने वाला होता है इस कारण उन प्रदेशों में जहाँ गरमी कम पड़ती है वहाँ उत्पन्न नहीं हो सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक देश में वहाँ के जलवायु के अनुकूल ही गेहूँ के बीज को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

गेहूँ



गेहूँ शीतोष्ण (Temperate) प्रदेशों की पैदावार है। ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) में इसकी पैदावार लगभग नहीं के बराबर होती है। यही कारण है कि ६० प्रतिशत गेहूँ की उत्पत्ति उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण प्रदेशों में होती है। गेहूँ के बोने के समय ठंड और नमी होना आवश्यक है। जब पौधा धीरे धीरे बढ़ता है उस समय भी ठंड की ज़रूरत होती है। गेहूँ की अच्छी फसल के लिए ठंड और नमी बहुत लाभदायक है। किन्तु फसल

के पकने के समय तेज़ धूप उतनी ही आवश्यक है। यदि पकने के समय गरमी न पड़े अथवा वायु में नमी आ जाय तो भी फसल को हानि पहुँचती है। यह अनाज उन प्रदेशों में भी उत्पन्न हो सकता है। जहाँ अत्यधिक ठंड पड़ती है परन्तु पकने के समय गरमी और सूखी हवा नितान्त आवश्यक है। यही कारण है कि रूस और कनाडा में जहाँ जाड़ा बहुत तेज़ होता है। गेहूँ की फसल उतने जाड़े में नहीं उत्पन्न की जाती वरन शीघ्र पकने वाली जाति का गेहूँ एप्रिल और कहीं कहीं मई में बोया जाता है और जुलाई तथा अगस्त में काट लिया जाता है।

गेहूँ के लिए आदर्श जलवायु वह है जिसमें जाड़े में थोड़ी वर्षा हो और क्रमशः जैसे जैसे फसल पकने पर आवे हवा सूखी होती जावे और गरमी बढ़ती जावे। फसल पकते समय तथा कटते समय गरम और शुष्क मौसम का होना ज़रूरी है।

गेहूँ की पैदावार के लिए अधिक वर्षा की ज़रूरत नहीं है। जिन प्रदेशों में १०" इंच वर्षा भी होती है वहाँ भी गेहूँ की पैदावार की जा सकती है वैसे ३०" इंच वर्षा गेहूँ के लिए काफी है।

गेहूँ बहुत प्रकार की भूमि पर पैदा होता है। किन्तु मटियार भूमि गेहूँ के लिए अधिक उपयुक्त है। अधिक कठोर भूमि पौधे के लिए अच्छी सिद्ध नहीं होती नरम मटियार भूमि इसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

गेहूँ की पैदावार उत्तर में बहुत दूर तक फैल गई है। कनाडा और रूस में ऐसी जाति का गेहूँ उत्पन्न किया गया है जो लगभग १०० दिन में ही पक जाता है। अतएव उस गेहूँ को ठंडे मैदानों में गरमी के दिनों में उत्पन्न कर लेते हैं। रूस के कृषि विशारद तो ऐसा गेहूँ उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहे हैं जो उत्तरी ध्रुव के समीप वाले प्रदेश में भी उत्पन्न हो सके क्योंकि सोवियट रूस में बहुत सा उत्तरी भूभाग ठंडा होने के कारण बेकार पड़ा हुआ है।

योरोप और एशिया संसार की सारी उत्पत्ति का लगभग दो तिहाई गेहूँ उत्पन्न करते हैं किन्तु रूस को छोड़ कर अन्य कोई देश गेहूँ बाहर नहीं भेजता क्योंकि इन देशों की आबादी घनी है। योरोप के लगभग सभी देशों (रूस को छोड़ कर) और भारतवर्ष तथा चीन में खेती योग्य सारी भूमि को जोत डाला गया है अतएव वहाँ अधिक पैदावार की सम्भावना नहीं है। भविष्य में सायबेरिया, मंचूरिया (मंचकाऊ) संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा, अर्जनटाइन, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड ही ऐसे देश हैं जहाँ गेहूँ की पैदावार बढ़ाई जा सकेगी क्योंकि यहाँ बहुत सी उपजाऊ भूमि बेकार पड़ी हुई है।

सन् १९१४ के पहले संयुक्तराज्य अमेरिका सबसे अधिक गेहूँ (८९ १०, ००, ०००, बुशल) उत्पन्न करता था और अधिकांश गेहूँ बाहर भेजता था। संयुक्तराज्य अमेरिका के बाद रूस गेहूं उत्पन्न करने वाले देशों में प्रमुख था किन्तु १९१८ ई० के उपरान्त युद्ध तथा बोलशेविक क्रान्ति के कारण रूस में गेहूँ की पैदावार बहुत घट गई। किन्तु पिछले पंद्रह वर्षों में सोवियट सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं (Five Years Plans) के कारण रूस में गेहूँ की पैदावार आश्चर्यजनक रीति से बढ़ी है। १९१४ के पूर्व फ्रांस भी गेहूँ उत्पन्न करने वाले देशों में प्रमुख था किन्तु युद्ध के उपरान्त वहाँ की पैदावार बहुत घट गई और अब वह गेहूँ बाहर नहीं भेजता। पहले भारतवर्ष से भी विदेशों को यथेष्ट गेहूँ जाता था किन्तु कुछ वर्षों से गेहूँ का बाहर जाना कम होता जाता है क्योंकि देश में ही गेहूँ की खपत बढ़ती जा रही है।

पृथ्वी के प्रमुख गेहूँ उत्पन्न करने वाले भूभाग निम्नलिखित हैं:—

१—दक्षिण रूस के मैदान तथा डैन्यूब नदी की घाटी। २—भूमध्य सागर (Mediterranean) के समीप वाले प्रदेश ३—उत्तर पश्चिमीय योरोप, ४—कनाडा तथा सयुक्तराज्य के मैदान, ५—उत्तर पश्चिमी भारतवर्ष, ६—अरजनटाइन, ७—दक्षिणी आस्ट्रेलिया।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि योरोप और एशिया मिलकर संसार का दो तिहाई से अधिक गेहूँ उत्पन्न करते हैं और अकेला योरोप ही संसार का लगभग आधा गेहूँ उत्पन्न करता है। योरोप का एक भी देश ऐसा नहीं है जहाँ गेहूँ उत्पन्न न होता हो, ब्रिटिश द्वीप समूह, जर्मनी, इटली, बैलजियम, डैनमार्क, हालैंड, स्पेन, फ्रांस, हंगरी, रुमानिया, बलगेरिया, रूस, स्वीडन, नार्वे और स्वीटज़रलैंड तथा ग्रीस सभी देश गेहूँ उत्पन्न करते हैं। किन्तु इनकी औद्योगिक उन्नति हो चुकने के कारण आबादी घनी है अतएव इनमें से रूस, रुमानिया, और बल्गेरिया और हंगरी को छोड़ कर सभी देशों को गेहूँ बाहर से मंगाना पड़ता है। जो भी देश गेहूँ बाहर भेजते हैं वह सब योरोप में ही आता है। ब्रिटेन संसार में सबसे अधिक गेहूँ बाहर से मँगाता है इसके बाद क्रमशः इटली जर्मनी बैलजियम, फ्रांस, डैनमार्क, जापान, नार्वे, स्वीडन तथा स्विटज़रलैंड विदेशों से गेहूँ मँगाने वालों में मुख्य हैं।

संसार में गेहूँ बाहर भेजने वालों में क्रमशः निम्नलिखित देश मुख्य हैं।

१—कनाडा

२—संयुक्तराज्य अमेरिका

३—सोवियट रूस

४—अरजनटाइन

५—आस्ट्रेलिया

६—भारतवर्ष

७—रूमानिया

८—बलोरिया

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं गेहूँ के उत्पन्न होने के लिए ठंडक और थोड़ी वर्षा, और पकने के लिए गरमी और सूखी वायु की आवश्यकता है। इस कारण जिन देशों में भी उपयुक्त जलवायु मिलती है गेहूँ उत्पन्न होता है। भिन्न भिन्न देशों की भौगोलिक परिस्थिति में भिन्नता होने के कारण गेहूँ प्रत्येक महीने में किसी न किसी देश में अवश्य काटा जाता है। यही कारण है कि गेहूँ का बाजार अन्तर्राष्ट्रीय (International) बन गया है और मूल्य सब कहीं लगभग एक सा रहता है।

फसल कटने का समय

नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी—अरजैनटाइना, चिली, आस्ट्रेलिया दक्षिण अफ्रीका, न्यूज़ीलंड

फरवरी, मार्च—मिश्र और भारतवर्ष

अप्रैल, मई—मैक्सिको, ईरान, चीन, और जापान

जून, जूलाई—दक्षिणी और मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमीय और भूमध्य सागर के पास का योरोप

अगस्त—पोलैंड, मध्य रूस, उत्तरीय संयुक्तराज्य अमेरिका और कनाडा।

सितम्बर, अक्टूबर—स्काटलैंड, स्वीडन, और नारवे।

संसार में गेहूँ उत्पन्न करने वाले देशों की तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार है :—

(१९४० की पैदावार लाख मैटरिक क्विन्टल Quintal में)
[१ मैटरिक क्विन्टल बराबर है ३·६७४३ बुशल के]

सोवियत रूस	४०९०	जर्मनी ...	५६०
संयुक्तराज्य अमेरिका ...	२२२०	फ्रांस ...	५२०
चीन ...	१९००	टर्की ...	४२०
कनाडा ...	१५००	पौलैंड ...	२३०
भारतवर्ष ...	१०९०	आस्ट्रेलिया ...	२२०
अरजैन्टाइन ...	७४०	स्पेन ...	२१०
इटली ...	७१०	हंगरी ...	२००

प्रति एकड़ पीछे गेहूँ की उत्पत्ति

(बुशल में)

हालैंड	...	४५	इटली	...	२१
डैनमार्क	...	४३	कनाडा	...	१६
ब्रिटेन	...	३३	संयुक्तराज्य अमेरिका	...	१५
जर्मनी	...	३२	अरजैनटाइन	...	१३
न्यूजीलैंड	...	३०	सोवियत रूस	...	११
जापान	...	२८	आस्ट्रेलिया	...	११
फ्रांस	...	२४	भारतवर्ष	...	१०

ऊपर के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में प्रति एकड़ सबसे कम पैदावार होती है। गेहूँ उत्पन्न करने वाले देशों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं एक तो वे देश जो कि गेहूँ उत्पन्न तो बहुत करते हैं किन्तु घनी आबादी होने के कारण बाहर नहीं भेज सकते। उदाहरण के लिए सोवियत रूस संयुक्तराज्य अमेरिका, चीन, और भारतवर्ष संसार के सबसे बड़े गेहूँ उत्पन्न करने वाले देशों में से हैं परन्तु वे बहुत कम गेहूँ बाहर भेजते हैं। कनाडा, आस्ट्रेलिया और अरजैनटाइन संसार में गेहूँ का जितना निर्यात व्यापार (Export Trade) होती है उसका ८२ प्रतिशत गेहूँ भेजते हैं यद्यपि वे केवल संसार का १२ प्रतिशत गेहूँ उत्पन्न करते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में मुख्यतः गेहू कानसास, उत्तरीय डकोटा, नैब्रास्का, आक्लोहामा, इलीनायास, वाशिंग्टन, मिसूरी, मिनीसोटा तथा ओहियो रियासतों में होता है। मिनियापोलिस, ड्यूलथ, शिकागो और बफैलो गेहूँ की बड़ी मंडियाँ हैं और यहाँ गेहूँ का आटा तैयार करने के बड़े बड़े कारखाने हैं।

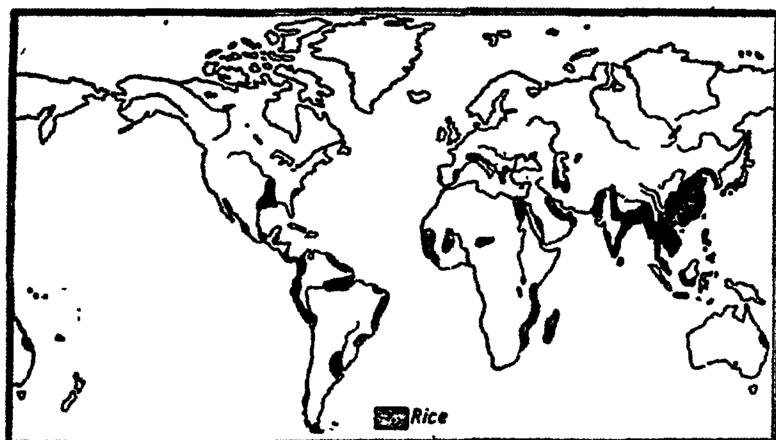
सोवियत रूस संसार में सबसे अधिक गेहूँ उत्पन्न करता है। यहाँ केवल काली मिट्टी के प्रदेश युक्रेन में ही अब गेहूँ उत्पन्न नहीं होता वरन उत्तर रूस, पूर्वीय तथा पश्चिमीय सायबेरिया तथा ओरनबर्ग के प्रदेश में भी बहुत गेहूँ उत्पन्न होने लगा है। फिर भी युक्रेन सबसे अधिक गेहूँ उत्पन्न करता है। खरसोन और ओडेसा के बंदरगाहों से (काले सागर पर) कुछ गेहूँ बाहर भेजा जाता है। इनके अतिरिक्त मास्को, गोरकी और ओरनबर्ग गेहूँ के मुख्य केन्द्र हैं।

कनाडा संसार को सबसे अधिक गेहूँ भेजता है। मनीटोबा, ससकैचुवान, अल्बरी, और आन्टेरियो प्रान्तों में बहुत गेहूँ उत्पन्न होता है। विनीपेग तथा पोर्ट आर्थर गेहूँ के मुख्य केन्द्र हैं।

चावल उष्ण कटिबन्ध (Tropics) की पैदावार है। एशिया के पूर्वीय देशों का तो यह मुख्य भोजन है। चावल बहुत तरह का होता है किन्तु जलवायु सबों के लिए लगभग एक सी ही चाहिए।

चावल

चावल के लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। यह अधिकतर नदियों के डेल्टों, तथा उनकी घाटियों में उत्पन्न किया जाता है। क्योंकि



नदियाँ प्रति वर्ष नई मिट्टी लाकर खेतों में जमा कर देती हैं जिससे उन खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है।

चावल के लिए अधिक वर्षा और गरमी अत्यन्त आवश्यक है। यदि चावल के छोटे पौधे आरम्भ में पानी में डूबे रहें तो पैदावार अच्छी होती है। जिन देशों में वर्षा ६०'' इंच के लगभग हो और तापक्रम (Temperature) ८०° फै॰ तक रहता हो वे देश चावल की खेती के योग्य हैं। चावल की वर्ष में दो और कहीं कहीं तीन फसलें भी उत्पन्न की जाती हैं। यही कारण है कि चावल उत्पन्न करने वाले देशों की जनसंख्या बहुत घनी है। क्योंकि एक एकड़ पर जितना अनाज चावल उत्पन्न करके पैदा किया जा सकता है उतना अन्य किसी फ़सल के द्वारा नहीं किया जा सकता।

चावल की पैदावार की दृष्टि से क्रमशः नीचे लिखे देश महत्वपूर्ण हैं :—

१—चीन (मुख्यतः चावल की पैदावार यंगटसी तथा सी-कियांग नदियों की घाटियों में होती है)

२—भारतवर्ष (भारतवर्ष में चावल मुख्यतः गंगा की घाटी में उत्पन्न होता है)

३—बर्मा (मुख्यतः इरावदी नदी की घाटी में)

४—जापान

५—मलाया प्राय-द्वीप

६—इंडो-चीन

७—जावा-सुमात्रा

८—कोरिया और फारमोसा

९—पूर्वीय तथा पश्चिमीय द्वीपसमूह (East and West Indies)

१०—ईजीप्ट, लम्बार्डी के मैदान मैडेगास्कर, ज़ैंज़ीबार के दक्षिण में अफ्रीका के समुद्र तट पर, नाइगर नदी की घाटी, मिसिसिपी नदी की घाटी, मध्य अमेरिका, ब्रिटिश गयना, सुदान, फारस, रूसी तुर्किस्तान, लंका, स्पेन और इटली में पो-नदी की घाटी।

संसार में चावल की कुल पैदावार प्रति वर्ष १, ५००, ०००, ००० क्वीन्टल कूती जाती है। इस प्रकार संसार में मक्का से भी अधिक चावल उत्पन्न होता है और किसी किसी वर्ष तो चावल की पैदावार गेहूँ से भी अधिक होती है।

चावल की उत्पत्ति

(लाख क्विन्टल में)

चीन	... ४८०	श्याम	... ५१
भारत	... ३८५	कोरिया	... ३७
जापान	... १२८	फिलीपाइन्स	... २३
हिन्द चीन	... ७१	संयुक्तराज्य अमेरिका	... ११
बर्मा	... ७१	इटली	... ८

चावल पहाड़ों पर भी उत्पन्न हो सकता, किन्तु गरमी तथा वर्षा आवश्यक हैं। संसार में चावल खाने वालों की संख्या का ठीक ठीक अनुमान करना कठिन है। मौनसून जलवायु के देशों का तो यह मुख्य भोजन है। चावल की खेती दो प्रकार से होती है—एक तो बीज बोकर, दूसरे पौधे लगा कर। छोटी छोटी क्यारियों में चावल का बीज बो दिया जाता है और जब पौधा कुछ बड़ा होता है तो उसे जड़ सहित उखाड़ कर खेत में रख देते हैं। दूसरे प्रकार का चावल अच्छा होता है।

चावल का व्यापार बहुत कम होता है। क्योंकि चीन, भारतवर्ष, जापान इत्यादि प्रमुख देश इतने घने आबाद हैं कि उन्हीं के लिए पूरा नहीं होता। चावल बाहर भेजने वालों में क्रमशः बर्मा, इंडोचीन तथा श्याम मुख्य हैं।

सबसे अधिक चावल चीन, जापान, ब्रिटिश मलाया तथा पूर्वीय द्वीप समूह बाहर से मँगाते हैं। यद्यपि इन देशों में चावल की बहुत पैदावार होती है परन्तु फिर भी आबादी घनी होने के कारण इन्हें चावल बाहर से मँगाना पड़ता है। योरोप में जर्मनी और फ्रांस चावल मँगाने वालों में मुख्य हैं।

चावल का निर्यात (Export)

(हजार टनों में)

बर्मा	...	२२२४
हिन्दचीन	...	१३७५
श्याम	...	११८५
कोरिया	...	८०६
फारमोसा	...	३३३
इटली	...	१६८
संयुक्तराज्य अमेरिका	...	१०१
स्पेन	...	५४
ब्रिटिश गायना	...	२२

गन्ना (Sugar cane) गन्ना संसार को भारत की देन। मूलतः यह भारतवर्ष का पौधा है। यहाँ से यह पौधा चीन को गया और वहाँ से अन्य देशों को मुख्यतः अफ्रीका तथा अमरीका के समीपवर्ती द्वीपों को गया।



गन्ना एक प्रकार की घास है जिससे शक्कर तैयार होती है। इसकी लम्बाई १० फीट के लगभग होती है। प्रतिवर्ष फूलने के पूर्व ही गन्ना

काट लिया जाता है किन्तु जड़ छोड़ दी जाती है, उसी जड़ से दूसरे वर्ष भी फसल तैयार हो सकती है। किन्तु कुछ देशों में प्रति वर्ष गन्ना बोया जाता है। गन्ने के छोटे छोटे टुकड़े काट कर खेत में रख दिये जाते हैं। कुछ गन्ने की जातियाँ ८ महीने में पक कर तैयार हो जाती हैं किन्तु अधिकतर १२ से २४ महीने तक लेती हैं।

गन्ने की फसल के लिए ७५° फै० से लेकर ८०° फै० तापक्रम (Temperature) आवश्यक है। गन्ने के लिए केवल अधिक गरमी ही नहीं अधिक जल की भी आवश्यकता है। कम से कम ६०" इंच वर्षा तो होनी ही चाहिए। जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ सिंचाई से काम लिया जाता है। गन्ने के लिए पाला अत्यन्त हानिकारक है अतएव ऐसे देशों में जहाँ पाला पड़ता है गन्ना उत्पन्न नहीं हो सकता। गन्ने की पैदावार के लिए साधारण भूमि उपयुक्त नहीं है। उसके लिए उर्वरा भूमि चाहिए। कोहरा गन्ने की फसल के लिए हानिकर है। गन्ने की खेती में मज़दूरों की अधिक आवश्यकता होती है इसी कारण इसकी पैदावार उन गरम देशों में होती है जहाँ औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है और मज़दूर सस्ते हैं। गन्ने की पैदावार अधिकतर ऊष्ण कटिबंध (Tropics) में ही होता है।

जब गन्ना बढ़ रहा हो तब जल की बहुत आवश्यकता होती है फिर चाहे वह वर्षा से मिले और अच्छा हो यदि सिंचाई से मिले। नम ऊष्ण कटिबन्ध की जलवायु और तेज धूप यह गन्ने के लिए आदर्श जलवायु है। इससे गन्ना मोटा, लम्बा और अधिक शक्कर उत्पन्न करने वाला होता है। जब गन्ना पक रहा हो तो मौसम सूखा होना चाहिए। यदि उस समय अधिक वर्षा हो जावे तो रस पतला पड़ जाता है और शक्कर कम बैठती है। यही कारण है कि गन्ना अमेजन नदी तथा कांगो नदी के ऊष्ण प्रदेश में उत्पन्न नहीं किया जा सकता जहाँ लगातार वर्षा होती रहती है। गन्ने की पैदावार उन्हीं प्रदेशों में होती है जहाँ कोहरा या पाला नहीं पड़ता जहाँ कम से कम ५० इंच वर्षा है अथवा सिंचाई के साधन हैं और जहाँ कुछ समय तक सूखा मौसम रहता है और जहाँ गरमी खूब पड़ती है।

पहले संसार में क्यूबा सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करता था किन्तु अब संसार में सबसे अधिक गन्ना भारतवर्ष में उत्पन्न होता है। भारतवर्ष के बाद क्यूबा, जावा और हवाई द्वीप गन्ना उत्पन्न करने वालों में मुख्य है। मैक्सिको, मध्य अमेरिका, डच द्वीप समूह, फिलीपाइन्स, पोर्टोरिको, तथा संयुक्तराज्य अमेरिका में भी गन्ने की अच्छी पैदावार होती है। दक्षिण अमेरिका ब्राजील, पीरू, तथा अरजनटाइन में गन्ने की पैदावार बढ़ रही

है। इनके अतिरिक्त फारमोसा, मारिशस, तथा ईजिप्ट और नैटाल में भी गन्ने की पैदावार तेज़ी से बढ़ती जा रही है।

चुकन्दर से भी शक्कर तैयार होती है। जब इंगलैंड का नैपोलियन से युद्ध आरम्भ हुआ तो मध्य योरोप को शक्कर मिलना बंद हो गया। अतएव नैपोलियन ने मध्य योरोप में चुकन्दर की अधिकाधिक खेती कराना आरम्भ किया। तब से बराबर गन्ने की शक्कर तथा चुकन्दर की शक्कर में प्रतिद्वन्द्विता रही है, किन्तु गन्ने की शक्कर आज भी अधिकतर खाई जाती है।

चुकन्दर (Beet)

चुक़न्दर शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) की पैदावार है। इसके लिए मटियार भूमि अधिक उपयुक्त है। जिस ज़मीन पर चुकन्दर की पैदावार हो उसका ढालू होना जरूरी है जिससे पानी एक जगह पर न ठहर सके। चुक़न्दर के लिए ६०° फै० से लेकर ७०° फै० तापक्रम (Temperature) लाभदायक होता है। यदि वर्ष भर वर्षा होती रहे तो भी फसल को हानि नहीं पहुँच सकती, किन्तु सितम्बर में सूर्य की तेज धूप तथा सूखी हवा अत्यन्त आवश्यक है। नहीं तो फसल पक नहीं सकती। चुकन्दर की खेती प्रतिवर्ष होती है और पौधे को अधिक बढ़ने नहीं दिया जाता। इसकी खेती में मेहनत बहुत करनी पड़ती है। इस कारण अधिकतर लड़के और स्त्रियाँ ही खेतों पर काम करने के लिए रक्खी जाती हैं, जिससे मज़दूरी कम देनी पड़े। ऐसा अनुमान है कि एक एकड़ चुकन्दर के खेत पर मक्का के खेत से छः गुने कुली चाहिए।

चुकन्दर की फसल सितम्बर अथवा अक्टूबर में तैयार होती है। कुछ वर्ष पहले संसार में जर्मनी सबसे अधिक चुकन्दर पैदा करता था। किन्तु अब उसका स्थान सोवियट रूस ने ले लिया है। रूस के बाद क्रमशः जर्मनी, संयुक्तराज्य अमेरिका, फ्राँस, जैकोस्लोवाकिया, पोलैंड, इटली, हालैंड और बैलजियम मुख्य चुकन्दर उत्पन्न करने वाले देश हैं। इंगलैंड में भी अब चुकन्दर का पैदावार बढ़ रही है।

गन्ने में चुकन्दर से कहीं अधिक शक्कर होती है। शक्कर बनाने में केवल सफ़ेद चुकन्दर काम में आता है, लाल चुकन्दर में शक्कर बहुत कम होती है। गन्ने की शक्कर बनने में पहले गन्ने को कोल्हू अथवा मशीन से पेर कर रस निकाल लिया जाता है फिर चूना तथा अन्य पदार्थों को मिलाकर गरम किया जाता है। तत् उपरान्त राब बना लेते हैं। राब से शीरे को अलहदा करके दानेदार शक्कर तैयार की जाती है। चुकन्दर को धोकर उसके मशीन के द्वारा छोटे छोटे टुकड़े कर लिए जाते हैं फिर उसको

गरम पानी में डाला जाता है जिससे पानी में शक्कर का अंश घुल जाता है। फिर रस की तरह ही उस मीठे पानी से शक्कर बना लेते हैं। चुकन्दर की पत्तियाँ तथा टहनियाँ पशुओं के खाने में आती हैं। चुकन्दर की लुब्दी भी जानवरों को खिलाई जाती है। चुकन्दर की खेती घने आबाद कृषि-प्रधान देशों में अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि खेती में काम आने वाले को सहज में ही चारा मिल जाता है।

गन्ना और चुकन्दर जिन देशों में उत्पन्न होता है वहाँ शक्कर भी तैयार की जाती है किन्तु अधिकांश चुकन्दर उत्पन्न करने वाले देशों में ही सारी शक्कर खप जाती है बाहर भेजने के लिए कुछ नहीं बचती। केवल जैकोस्लोवाकिया ही चुकन्दर की चीनी विदेशों में भेजता है। कुछ चीनी पोलैंड से भी विदेशों को जाती है। शक्कर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिकतर गन्ने की शक्कर में ही होता है। १९२९ ई० के पूर्व भारतवर्ष बहुत सी शक्कर बाहर से (विशेष कर जावा से) मँगाता था। किन्तु १९२९ में शक्कर के धन्धे को रकार ने संरक्षण (Protection) प्रदान किया तबसे शक्कर के कारख़ानों की भारतवर्ष में इस तेज़ी से स्थापना हुई कि अब भारतवर्ष नाम मात्र को ही शक्कर बाहर से मँगाता है। यद्यपि भारतवर्ष संसार में सबसे अधिक शक्कर तैयार करता है किन्तु यहाँ से विदेशों को शक्कर नहीं जाती। गन्ने की शक्कर बाहर भेजने वालों में क्रमशः क्यूबा, जावा, हवाई फिलीपाइन्स और पीरू मुख्य हैं। शक्कर बाहर से मँगाने वालों में संयुक्तराज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन मुख्य हैं। थोड़ी सी शक्कर जापान, चीन और भारतवर्ष में भी आती है।

गन्ना और सफ़ेद चुक़न्दर के अतिरिक्त कनाडा और संयुक्तराज्य अमेरिका में मैपिल (Maple tree) से चीन तथा संयुक्तराज्य अमेरिका में ज्वार बाजरा मक्का और सारझूम (Sarghum) से, तथा गरम देशों (Tropics) में खजूर, नारियल, सागो (Sago) तथा खजूर (Palmyra Palm) से भी थोड़ी शक्कर उत्पन्न की जाती है।

शक्कर का धंधा (Sugar Industry)

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि क्यूबा, जावा, तथा हवाई द्वीपों में गन्ने का धंधा बहुत उन्नत कर गया है। हम यहाँ उसका संक्षिप्त विवरण देंगे।

क्यूबा (Cuba) का जलवायु गन्ने की पैदावार के लिए आदर्श है हाँ कभी कभी सूखा पड़ जाता है। गन्ने की फसल को तैयार होने में १२ से १५ महीने लगते हैं। और एक बार गन्ना बो देने से कई वर्षों तक लगातार

पेड़ों से ही फसल पैदा की जाती है हर साल फसल बोई नहीं जाती। भूमि उर्वरा है और बहुत सस्ती है यहां नहीं वहाँ भूमि की बहुतायत भी है। हां जनसंख्या कम है इस कारण मज़दूरी ऊँची है।

जब से क्यूबा स्वतन्त्र हुआ वहां शक्कर का धंधा बहुत उन्नत कर गया। अमेरिकन पूंजीपतियों ने वहां शक्कर के कारख़ाने स्थापित किये हैं जिनमें अधिकतर कच्ची शक्कर तैयार की जाती है और संयुक्तराज्य के फिलाडेलफिया, बलटिमोर, न्यू-यार्क, तथा न्यू आरलियन्स (New-Arleaus) को भेजी जाती है जहां वह साफ की जाती है।

जावा में शक्कर का धंधा डच पूँजीपतियों के हाथ में है। जावा में जनसंख्या घनी होने के कारण मज़दूर सस्ते हैं। जलवायु गन्ने के लिए आदर्श है क्योंकि मानसून जलवायु में कुछ दिन सूखे मिल जाते हैं जो गन्ने के रस को गाढ़ा कर देते हैं। जावा की भूमि भी उपजाऊ है। किन्तु वहां भूमि का मूल्य बहुत अधिक है और भारत की तरह हर साल फसल बोनी पड़ती है। इससे व्यय अधिक होता है। इस दोष को गन्ने की गहरी खेती (intensive cultivation) करके दूर किया गया है और गन्ने की बड़ी मात्रा में खेती करने वालों और वैज्ञानिकों में गहरा सहयोग है जिसके फल स्वरूप जावा में प्रति एकड़ संसार में सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न होता है।

हवाई द्वीप का समुद्री जलवायु है और वहां अधिक गरमी नहीं पड़ती इस कारण गन्ने की फसल २० से २४ महीने तक ले लेती है। उत्तर पूर्व में वर्षा बहुत होती है किन्तु पहाड़ों के पीछे वर्षा कम होती है इस कारण सिंचाई के द्वारा गन्ने की खेती होती है। हवाई द्वीप की सारी शक्कर संयुक्तराज्य अमेरिका के प्रशान्त महासागर के तट तथा अटलांटिक महासागर के तट पर स्थित शक्कर के कारख़ानों में शुद्ध होने के लिए भेज दी जाती है।

इनके अतिरिक्त पोर्टोरिको (Porto Rico) पीरू (दक्षिण अमेरिका में) ब्राज़ील और अरजेनटाइन में शक्कर का धंधा पनप उठा है और वहाँ गन्ना उत्पन्न किया जाता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में दक्षिण लूज़ियाना (Louisiana) में गन्ना उत्पन्न होता है और शक्कर तैयार की जाती है। यद्यपि राष्ट्रीय दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है किन्तु संसार के उत्पादन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण नहीं है।

इनके अतिरिक्त फिलीपाइन्स, फारमोसा, क्वीन्सलैंड (आस्ट्रेलिया में) नैटाल, मारिशस में भी गन्ना खूब पैदा होता है।

गन्ने की पैदावार

(लाख किन्टल Quintals में)

भारतवर्ष	... ३५०	फारमोसा	... ८०
क्यूबा	... २७०	आस्ट्रेलिया	... ७०
जावा	... १६०	अरजैनटाइन	... ५०
ब्राजील	... १२०	पीरु	... ४०
फिलीपाइन्स	... ९०	मारिशस	... ३०
हवाई	... ८०	संयुक्तराज्य अमेरिका	... ३०

संसार की कुल गन्ने की पैदावार १.८००, ०००, ००० क्विन्टल कूती जाती है ; इस युद्ध के पूर्व जावा का शक्कर का धंधा बहुत अच्छी अवस्था में था किन्तु जापान का आक्रमण तथा युद्ध के उपरान्त राजनैतिक अशान्ति के कारण धंधे को हानि पहुँची है।

चुकन्दर की शक्कर की उत्पत्ति

(लाख किन्टल Quintals में)

सोवियत रूस	... २४०	इटली	... ४०
जरमनी	... २१०	पौलैंड	... ४०
फ्रांस	... ९०	संयुक्तराज्य अमेरिका	... १५०
जैकोस्लावाकिया	... ५०	संसार की कुल उत्पत्ति	...१०५०
ब्रिटेन	... ५०		

सोवियत रूस सबसे अधिक चुकन्दर की चीनी उत्पन्न करता है। ट्रांस काकेशिया, पश्चिमीय सायबेरिया, उत्तरी तथा मध्य रूस में चुकन्दर खूब पैदा होता है।

कुछ वर्षों पूर्व चुकन्दर की चीनी का संसार में प्राधान्य था किन्तु अब गन्ने की शक्कर की प्रधानता है। इसका कारण यह है गन्ने की खेती सहल है और एक एकड़ में पैदावार बहुत होती है गरम देशों में जहाँ गन्ना उत्पन्न होता है मज़दूरी सस्ती है। किन्तु योरोपीय देशों ने चुकन्दर की चीनी के धंधे को राजकीय प्रोत्साहन देकर उसको जीवित रक्खा है क्योंकि वे समझते हैं कि शक्कर के लिए विदेशों पर नितान्त निर्भर हो जाना उचित नहीं है।

मक्का मक्का शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) के गरम प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला अनाज है। संयुक्तराज्य अमेरिका इसका मुख्य निवास-स्थान है।

मक्का की अच्छी पैदावार के लिए रेत मिली हुई मटियार भूमि की आवश्यकता होती है। यदि भूमि ढालू हो तो और भी अच्छा, कि जिससे वर्षा का जल एक स्थान पर न ठहर सके। जिन प्रदेशों में ४ से ७ महीने तक गरमी रहती हो, तापक्रम (Temperature) ७०° फै० से ८०° फै० तक रहता हो, तथा वर्षा १५ इंच से ३० इंच तक होती हो, वे इसकी पैदावार के लिए उपयुक्त हैं। मक्का की फसल के लिए पाला बहुत हानिकारक है।

मक्का की पैदावार प्रति एकड़ गेहूँ से लगभग दुगनी होती है और इसमें शरीर को मोटा बना देने का आश्चर्यजनक गुण है। अतएव संसार में मक्का का उपयोग मुख्यतः पशु को खिलाने में होता है। हाँ निर्धन देशों में यह मनुष्य-भोजन के उपयोग में भी लाया जाता है।

संयुक्त अमेरिका संसार की तीन चौथाई मक्का से कुछ कम उत्पन्न करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद क्रमशः अरजनटाइन; रुमानिया; सोवियट रूस; ब्राज़ील; युगोस्लाविया, भारतवर्ष, इजिप्ट, मैक्सिको दक्षिण अफ्रीका और इटली मुख्य मक्का उत्पन्न करने वाले देश हैं। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक मक्का उत्पन्न करता है किन्तु वह मक्का बाहर नहीं भेजता। वहाँ मक्का पशुओं के खिलाने के काम आती है क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में असंख्य पशुओं को मोटा करके उन्हें मांस के लिए तैयार किया जाता है। संसार में अरजनटाइन तथा रुमानिया मक्का बाहर भेजने वालों में मुख्य हैं। थोड़ी मक्का यूगोलाविया तथा दक्षिण अफ्रीका से भी भेजा जाता है। इङ्गलैंड, फ्रांस और हालैंड अधिकांश मक्का अपने पशुओं को खिलाने के लिए लेते हैं।

मक्का का उपयोग शराब, स्टार्च तथा ग्लूकोज़ बनाने में भी होता है।

मक्का (Maize) की पैदावार

(लाख किन्टल-Quintals में)

संयुक्तराज्य अमेरिका	...६६५०	इटली	... २६०
अरजैनटाइन	...१०६०	सोवियत रूस	... २७०
चीन	... ६१०	हंगरी	... २३०
रुमानिया	... ६००	भारत	... २१०
ब्राज़ील	... ६००	डच पूर्वी द्वीप समूह	... २००
यूगोस्लाविया	... ४००	मैक्सिको	... १७०
मंचूरिया	... ३००	मिश्र	... १५०

संसार में मक्का की कुल उत्पत्ति लगभग १२,३०० लाख किन्टल है।

जौ गेहूँ की ही जाति का अनाज है; किन्तु यह अन्य अनाजों से अधिक कठोर होता है। उर्वरा भूमि में जौ की पैदावार खूब होती है यद्यपि साधारण भूमि भी जौ की खेती के लिए उपयुक्त है। जौ गेहूँ से अधिक शीत को सहन कर सकता है। जौ की पैदावार उत्तरी ध्रुव (North pole) के समीप भी होती है। जौ को अधिक वर्षा की आवश्यकता नहीं होती, जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ जौ उत्पन्न नहीं हो सकता।

जौ

संसार में क्रमशः सोवियत रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी और भारतवर्ष जौ उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं। जौ केवल ठंडे ही देशों में उत्पन्न नहीं होता वरन गरम देशों में भी उत्पन्न होता है। जहाँ एक ओर जौ की पैदावार नार्वे तथा स्वीडन में खूब होती है वहाँ दूसरी ओर नील नदी की घाटी, सुडान, और भारतवर्ष में भी इसकी खूब पैदावार होती है। प्रति एकड़ जौ की पैदावार और अनाजों से अधिक होती है। कुछ समय पूर्व जौ योरोपीय देशों का भोज्य पदार्थ था किन्तु अब स्कैन्डिनेविया, रूस, तथा दक्षिण योरोप के देशों के अतिरिक्त कहीं इसका उपयोग खाने में नहीं होता। अधिकतर जौ का उपयोग पशुओं को खिलाने तथा बियर और ह्विस्की नामक शराब बनाने में होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में जौ का उपयोग पशुओं को खिलाने के लिए होता है तथा इंगलैंड और जर्मनी में जौ का उपयोग शराब बनाने में होता है।

सबसे अधिक जौ योरोप में उत्पन्न होता है। सोवियत रूस संसार में सबसे अधिक जौ उत्पन्न करता है। रूस के अतिरिक्त संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी, और भारतवर्ष जौ उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं। परन्तु आस्ट्रिया, हंगरी, रुमानिया, फ्रांस, इटली, चीन, नार्वे, स्वीडन, डैनमार्क टर्की ब्रिटेन, स्पेन, जापान और कोरिया में भी जौ की अच्छी पैदावार होती है।

जौ (Barley) की पैदावार
(लाख टनों में)

संयुक्तराज्य अमेरिका	...	६६	स्पेन	...	२६
सोवियत रूस	...	४०	उत्तरी अफ्रीका	...	२१
जरमनी	...	३२	रुमानिया	...	१५
जापान	...	२६	पोलैंड	...	१४
भारतवर्ष	...	२४	जैकोस्लावाकिया	...	१५
कनाडा	...	१८			

संसार में जौ की कुल उत्पत्ति ४०८ लाख टन के लगभग है।

संसार में ओट (Oats) की कुल पैदावार ६४४ लाख टन के लगभग है।

रई (Rye) जई

रई, गेहूँ और जौ की ही भाँति एक अनाज है जो भूमि गेहूँ की खेती के लिए उपयोगी न हो उस कम उर्वरा भूमि में रई की पैदावार खूब होती है। मध्य योरोप रई का घर है, किन्तु उत्तर में इसकी पैदावार बहुत कम हो जाती है क्योंकि रई का पौधा कोहरे युक्त जलवायु में उत्पन्न नहीं हो सकता। रई यद्यपि देखने में गेहूँ की ही भाँति होती है परन्तु इसका मूल्य गेहूं से बहुत कम है इस कारण उपजाऊ भूमि पर तो गेहूँ उत्पन्न किया जाता है, और कम उपजाऊ भूमि पर रई की खेती होती है। रई गेहूँ से भी अधिक ठंडे जलवायु में पनप सकती है। किन्तु रई को जल की गेहूँ से अधिक आवश्यकता होती है।

रई योरोपीय देशों का मुख्य भोजन है। किन्तु इसका उपयोग केवल उन्हीं प्रदेशों में होता है जहाँ कि ग्रामीण जनता धनी नहीं है। रई की रोटी अधिकतर मध्य योरोप, नार्वे स्वीडन तथा रूस में खाई जाती है। संसार में सबसे अधिक रई रूस में उत्पन्न होती है। रूस के बाद जर्मनी और पोलैंड रई उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं। योरोप के बाहर रई बहुत कम उत्पन्न होती है केवल संयुक्तराज्य अमेरिका की रियासतों में ही थोड़ी रई उत्पन्न होती है। रई का भूसा पशुओं के खाने के काम में नहीं आता। हाँ रई का उपयोग पशुओं के खाने में अवश्य बढ़ रहा है। रई अधिकतर स्थानीय आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही उत्पन्न की जाती है, अतएव इसका व्यापार नहीं होता।

रई (Rye) जई की पैदावार

(लाख टनों में)

सोवियत रूस	...	८२०	भारत	...	२१०
संयुक्तराज्य अमेरिका	...	६७०	जापान	...	१८०
चीन	...	६४०	पोलैंड	...	१५०
जरमनी	...	४३०	फ्रांस	...	१३०
टर्की	...	२३०.	जैकोस्लावाकिया	...	१३०
कनाडा	...	२२०	इराक़	...	११०

संसार में जई की कुल उत्पत्ति ४५०० लाख टन से अधिक है।

ज्वार और बाजरा (Millets)

ज्वार और बाजरा उष्ण कटिबन्ध (Tropics) में उत्पन्न होने वाले अनाज हैं। जहाँ थोड़ी सी भी वर्षा होती है वहाँ यह उत्पन्न किये जा सकते हैं। २० इंच वर्षा से जहाँ अधिक वर्षा होती है वहाँ इनकी पैदावार अधिक नहीं होती। अनुत्पादक भूमि में भी यह उत्पन्न किये जा सकते हैं। बाजरा तो ज्वार से भी अधिक सूखे प्रदेशों की पैदावार है। बहुत से शुष्क प्रदेश जहाँ वर्षा बहुत कम होती है बाजरा के ही कारण आबाद हैं। ये दोनों अनाज भारतवर्ष में बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। यहाँ का यह मुख्य भोजन है। चीन, जापान, भारतवर्ष, और अफ्रीका में इनका उपयोग खाने के लिये होता है। संयुक्त-राज्य अमेरिका में सारझुम (Sorjhum) नामक अनाज जो कि ज्वार बाजरा के समान ही होता है पशुओं के लिये उत्पन्न किया जाता है। ज्वार और बाजरे को चारे के लिये भी उत्पन्न किया जाता है।

बकह्वीट (Buckwheat)

बकह्वीट महत्त्वपूर्ण अनाज नहीं है। चाहे जितनी अनुपजाऊ भूमि हो और चाहे जितनी जलवायु प्रतिकूल हो बकह्वीट वहाँ भी उत्पन्न हो सकता है। इसकी फसल बहुत जल्दी पक जाती है। यही कारण है कि जहाँ दूसरा अनाज उत्पन्न नहीं हो सकता वहाँ बकह्वीट उत्पन्न होता है। बकह्वीट शरीर को शक्ति देने वाला अनाज है। इसका उपयोग पशुओं और मुर्गियों को खिलाने तथा रोटी बनाने में होता है। रूस, जापान, फ्रांस, और संयुक्तराज्य अमेरिका इसको उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं।

सागो (Sago)

सागो उसी नाम के वृक्ष के गूदे से तैयार किया जाता है। सागो का वृक्ष ३० से ४० फीट तक ऊँचा होता है। यह वृक्ष नम और गरम प्रदेशों में बहुतायत से उत्पन्न होता है। इसकी खेती बहुत आसानी से की जा सकती है और एक वृक्ष से लगभग ६०० पौंड सागो प्राप्त होता है जैसे ही वृक्षों में फूल आते हैं उनको काट लिया जाता है, उनके तनों को चीर कर उनके गूदे को निकाल लेते हैं। उस गूदे को सुखाकर पीस लेते हैं और फिर पानी में मिला देते हैं। इसके उपरान्त पानी को छान देते हैं और सागो तैयार हो जाता है। विदेशों को भेजने के लिए सागो की छोटी-छोटी गोलियाँ बनाते हैं जिन्हें हम सागूदाना कहते हैं। मलाया प्रायद्वीप तथा उसके समीपवर्ती द्वीप समूह तथा प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) के द्वीपों में सागो बहुतायत से उत्पन्न होता है और हजारों आदमियों का यह मुख्य भोजन है।

आरारोट कतिपय गरम देशों के पौधों की जड़ों से प्राप्त किया जाता है। इसकी पैदावार मुख्यतः वेस्ट इंडीज़, ईस्ट-इंडीज़ नैटाल, क्वीन्सलैंड और बंगाल में होती है।

आरारोट (Arrowroot)

आलू

आलू का उपयोग सर्व व्यापी है। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा योरोप के देशों में तो यह भोजन का मुख्य अंग ही है, किन्तु भारतवर्ष तथा चीन जैसे गरम देशों में भी आलू बहुत खाया जाता है। आलू का मूलस्थान अमेरिका है। मैक्सिको के पहाड़ी प्रदेश में आज भी यह जंगली अवस्था में पाया जाता है। भोजन में अनाज के उपरान्त यदि कोई महत्वपूर्ण वस्तु है तो वह आलू है; इसी कारण इसकी पैदावार प्रत्येक देश में होती है।

आलू भिन्न जलवायु में उत्पन्न हो सकता है। जहाँ अलास्का के ठंडे प्रदेश में आलू की अच्छी पैदावार होती है वहाँ भारतवर्ष जैसे गरम देश में भी इसकी पैदावार होती है। आलू की खेती के लिए गेहूँ उत्पन्न करने वाली भूमि अधिक उपयोगी है, परन्तु आलू में एक विशेषता है कि वह कम उपजाऊ भूमि पर भी उत्पन्न हो सकता है। हाँ आलू के लिए अधिक मटियार भूमि उपयोगी नहीं होती। आलू ठंडे से ठंडे अर्थात् ध्रुव प्रदेश (Polar Regions) और ऊष्ण प्रदेशों (Tropics) सभी में एक समान उत्पन्न होता है।

आलू की फसल और अनाजों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। प्रति एकड़ भूमि में आलू गेहूँ से पाँच गुना अधिक उत्पन्न होता है। किन्तु आलू की खेती में परिश्रम अधिक करना पड़ता है। साथ ही आलू में कीड़ा बहुत जल्दी लग जाता है। योरोपीय देशोंमें आलू एक महत्वपूर्ण भोज्य पदार्थ है। पूर्वीय जर्मनी, और आयरलैंड के निवासियों का तो यह मुख्य भोजन है। भोजन के अतिरिक्त इसका उपयोग स्टार्च (Starch) तथा एलकाहल (Alcohol) बनाने में भी किया जाता है। भारतवर्ष में आलू का उपयोग सब्ज़ी के रूप में करते हैं। आलू का अब आटा भी तैयार किया जाने लगा है। भविष्य में सम्भव है कि आलू का आटा गेहूँ और चावल से प्रतिद्वन्दता करने लगे। अभी तो जर्मनी का छोड़कर और कहीं इसकी रोटी नहीं बनाई जाती है। आयरलैंड में तो आलू ही मुख्य भोजन है, यदि किसी कारण वहाँ आलू की फसल नष्ट हो जाती है तो वहाँ अकाल पड़ जाता है।

आलू उत्पन्न करने वाले देशों में जर्मनी, आयरलैंड आस्ट्रिया हंगरी, रूस, फ्रांस, संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा, इंगलैंड, जेकोस्लावाकिया और

इटली मुख्य हैं। यद्यपि आलू बहुत से देशों में उत्पन्न होता है किन्तु उसका व्यापार नहीं होता इसका कारण यह है कि वह भारी और सस्ता होता है।

शकरकंद (Sweet Potato)

शकरकंद आलू से अधिक पौष्टिक तथा मीठा होता है। यह रेतीली भूमि में अच्छी तरह से उत्पन्न हो सकता है। शकरकंद गरम प्रदेशों की पैदावार है। प्रति एकड़ शकरकंद की भी पैदावार बहुत अधिक होती है। यदि शकरकंद के आटे का भोजन में अधिकाधिक उपयोग होने लगे तो इसकी पैदावार बहुत आसानी से बढ़ाई जा सकती है और यह एक महत्वपूर्ण भोज्य पदार्थ बन सकता है। अभी यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है और न इसका व्यापार ही होता है। संयुक्तराज्य अमेरिका के गरम भागों में, दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका तथा मलाया प्रायद्वीप में इसकी पैदावार अधिक होती है।

केसावा (Caesava)

केसावा आलू की भाँति उपजाऊ रेतीली भूमि पर उत्पन्न होता है इसके लिए नमी की अधिक आवश्यकता होती है। यह उष्ण कटिबन्ध (Tropics) की पैदावार है। इसका पौधा झाड़ी की तरह है और लम्बाई ८ फीट के लगभग होती है। दक्षिण अमेरिका में भूमध्य रेखा के समीपवर्ती प्रदेश (Equatorial belt) वेस्ट-इंडीज़, पश्चिमी अफरीका, ईस्ट इंडीज़, और मलाया प्रायद्वीप में निर्धन ग्रामीण जनता का यह मुख्य भोजन है। इस पौधे की जड़ को खाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है एक मीठा और दूसरा कड़वा। कड़ुये में ज़हर होता है किन्तु वही मुख्य भोज्य पदार्थ है। विष को गरमी के द्वारा आसानी से उड़ा दिया जाता है इस कारण इसके खाने में कोई हानि नहीं होती।

दालें

दालें अधिकतर उष्ण कटिबन्ध (Tropics) और शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) में उत्पन्न होती हैं। जो लोग कि माँस नहीं खाते उनके लिए दालें मुख्य भोज्य पदार्थ हैं। विशेषकर मानसून प्रदेशों में तो दालें बहुत खाई जाती हैं।

मटर ठंडे जलवायु में खूब पैदा होती है। गरम देशों में यह गेहूँ के साथ जाड़े में उत्पन्न की जाती है। बाकुला की फली उष्ण कटिबन्ध (Tropics) की पैदावार है। सोयाबीन (Soya Bean) जो मंचूरिया और कोरिया में बहुतायत से पैदा की जाती है, बहुत तरह के जलवायु में उत्पन्न हो सकती है। यह फली अधिक वर्षा नहीं चाहती, सूखे प्रदेशों में यह भलीभाँति उत्पन्न की जाती है। पाला भी इसको हानि नहीं पहुँचा सकता। संयुक्तराज्य

अमेरिका में भी सोया बीन बहुत उत्पन्न होती है। मंचूरिया, कोरिया तथा संयुक्तराज्य अमेरिका से सोया बीन विदेशों को बहुत भेजी जाती है। भारतवर्ष में भिन्न भिन्न जातियों की दालें उत्पन्न की जाती हैं। यहाँ दाल भोजन की आवश्यक वस्तु है। मूँग, उर्द, अरहर, मटर, चना, मसूर इत्यादि यहाँ बड़ी मात्रा में उत्पन्न की जाती हैं, परन्तु इनका निर्यात अधिक नहीं होता क्योंकि देश के अन्दर ही इनकी खपत बहुत होती है। मसूर ठंडे देशों में अधिक उत्पन्न होती है। मानसून देश घने आबाद हैं। यहाँ की जनसंख्या अधिकतर निर्धन है और यहाँ माँस भी कम मिलता है अस्तु भोजन में दालों का महत्वपूर्ण स्थान है।

साग सब्ज़ी (Vegetables)

पिछले कुछ वर्षों में योरोप, अमेरिका, तथा एशिया में सब्जी की माँग बेहद बढ़ गई है क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान से पता लगा कि साग सब्ज़ी में विटामिन (Vitamins) बहुत अधिक मात्रा में मौजूद हैं जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। आँकड़े देखने से ज्ञात होता है कि अनाज के उपरान्त सब्ज़ी ही मुख्य भोज्य पदार्थ है। हंटिंगटन महोदय ने अनुमान लगाया है कि संसार में प्रतिवर्ष १, ४०, ००० डालर की सब्ज़ी उत्पन्न की जाती है।

सब्ज़ी अधिकतर शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) की पैदावार है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सब्ज़ी गरम देशों में पैदा नहीं हो सकती या पैदा नहीं की जाती है। भेद इतना ही है कि शीतोष्ण कटिबन्ध में ठंडक अधिक होने के कारण यह आवश्यक नहीं है कि सब्ज़ी बड़े बड़े शहरों के पास ही उत्पन्न की जाये। जहाँ की जलवायु तथा भूमि अनुकूल होती है वहाँ बड़ी मात्रा में सब्जी पैदा की जाती है और वहाँ से बड़े बड़े शहरों को भेज दी जाती है। किन्तु गरम देशों में सब्ज़ी जल्दी सड़ जाती है इस कारण अधिकतर सब्ज़ी की खेती बड़े बड़े शहरों के पास ही की जाती है जिससे उसे दूर भेजने की आवश्यकता न पड़े।

वास्तव में देखा जाये तो सब्जी की बड़ी मात्रा में खेती तो बड़े बड़े शहरों के लिए ही होती है क्योंकि गाँवों में तो भूमि की कमी नहीं होती और किसान अपने घर के उद्यान में ही अपने लायक सब्ज़ी उत्पन्न कर सकता है। यही कारण है कि योरोप तथा उत्तरी अमेरिका में ही सब्ज़ी की खेती बहुत होती है क्योंकि वहाँ बहुत बड़े बड़े औद्योगिक (Industrial) तथा व्यापारिक केन्द्र हैं।

सब्ज़ी की खेती के लिए जलवायु तथा भूमि की अनुकूलता अत्यन्त आवश्यक है। सब्ज़ी के लिए शीतोष्ण जलवायु बहुत अनुकूल पड़ती है किन्तु वह पाले को बिलकुल सहन नहीं कर सकती। यही कारण है कि उत्तर अमेरिका तथा योरोप में सब्ज़ी उत्पन्न करने वाले प्रदेश सब समुद्र के किनारे स्थित हैं। क्योंकि समुद्र पाले को रोकता है। संयुक्तराज्य अमेरिका का पूर्वीय समुद्र तट का प्रदेश, कैलीफोर्निया, फ्राँस का ब्रिटैनी (Brittany) का प्रदेश तथा इंगलैंड का दक्षिण-पश्चिमी समुद्र तट का प्रदेश अनन्त राशि में सब्ज़ी उत्पन्न करते हैं।

सब्ज़ी के लिए रेतीली दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है क्योंकि रेत का अंश होने से मिट्टी शीघ्र गरम हो जाती है इससे फसल जल्दी तैयार हो जाती है। साथ ही रेतीली दोमट मिट्टी को जोतने में आसानी होती है। सब्ज़ी के लिए भूमि की गहरी जुताई करने तथा उसमें अत्यधिक खाद डालने की आवश्यकता पड़ती है। सब्ज़ी की खेती गहरी (Intensive cultivation) होती है उसमें बहुत मज़दूरों की जरूरत पड़ती है। साधारणतः तो औद्योगिक केन्द्रों (Industrial centres) में मज़दूरी बहुत होती है किन्तु इन शहरों में स्त्रियों तथा बच्चों को कारखाने में काम कठिनाई से मिलता है अतएव वे सस्ती मज़दूरी पर इन खेतों पर काम करते हैं।

जैसे जैसे गमनागमन के साधनों की उन्नति होती जाती है वैसे ही वैसे सब्ज़ी की खेती बड़े बड़े शहरों से दूर अनुकूल जलवायु तथा उपयुक्त भूमि पर अधिकाधिक होती जा रही है। संयुक्तराज्य अमेरिका में सब्ज़ी की ऐक्सप्रेस तेज़ी से ताजी सब्ज़ी-औद्योगिक केन्द्रों में सुबह होते ही पहुँचा देती है। इन सब्ज़ी की स्पेशलों के लिए पैसेंजर ऐक्सप्रेसों तक को खड़े रहना पड़ता है और सब्ज़ी की ऐक्सप्रेसें तेजी से निकल जाती हैं। शीत भण्डार रीति (Cold Storage) तथा सब्ज़ी को सुरक्षित रखने के अन्य तरीकों की उन्नति होने के कारण अब सब्ज़ी हर मौसम में खाई जा सकती है। अतएव उसका प्रचार बेहद बढ़ गया है।

फल (शीतोष्ण कटिबन्ध Temperate Zone)

सेब (Apple) यह फल शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) में बहुत उत्पन्न होता है। सेब का वृक्ष बड़ा होता है और एक फसल में एक से डेढ़ मन तक फल उत्पन्न करता है। यह ऐसा फल है जो बहुत ऊँचे पर तथा ६५° उत्तर अक्षांश रेखाओं (Latitudes) तक उत्पन्न किया जाता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में सेव बहुतायत से उत्पन्न होता है। वैसे तो ऐसी कोई रियासत नहीं जिसमें सेव की पैदावार न होती हो किन्तु न्यू-यार्क पैनसलवेनिया, ओहियो तथा मिचिगन रियासतें सेव उत्पन्न करने के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। संयुक्तराज्य के पश्चिमीय भाग कैलीफोर्निया में भी सेव बहुतायत से उत्पन्न होता है।

कनाडा में भी सेव बहुत उत्पन्न होता है। नवास्कोशिया (Nova Scotia)तथा ईरी और आन्टैरियो झीलों के समीपवर्ती मैदानों में सेव बहुतायत से उत्पन्न करते हैं। कनाडा में पश्चिम की ओर राकी पर्वतमाला में भी सेव बहुत उत्पन्न होता है। बृटिश कोलम्बिया तो सेव का घर है। कनाडा प्रति वर्ष बहुत सा सेव इंगलैंड को भेजता है।

सेव का मूल-स्थान यूरेशिया है। स्पेन से लेकर जापान तक सेव उत्पन्न होता है। इंगलैंड, स्वीटज़रलैंड, जर्मनी का दक्षिणी भाग, तथा आस्ट्रिया का पहाड़ी प्रान्त सेव उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध है। बर्लिन, पैरिस, और लंदन सेव की योरोप में मुख्य मंडियाँ हैं जहाँ आस पास के प्रदेशों से सेव आता है।

एशिया में जापान, चीन और कोरिया में सेव बहुत उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, चाइल (Chile) और टसमैनिया में भी सेव की पैदावार बहुत होती है। भारतवर्ष में भी सेव, काश्मीर तथा हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में कहीं कहीं थोड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है। सेव यदि सावधानी से रक्खा जावे तो बहुत दिनों तक खराब नहीं होता। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा कनाडा से बहुत राशि में सेव योरोपीय देशों को जाता है।

नीबू (Lemon) नारंगी (Oranges)

नारंगी और नीबू ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) तथा गरम शीतोष्ण कटिबंध में उत्पन्न होने वाले फल हैं। नारंगी का मूलस्थान चीन है परन्तु भारतवर्ष में भी यह बहुत समय से उत्पन्न किया जा रहा है। पंद्रहवीं शताब्दी में यह पौधा योरोप में पहुँचा और वहाँ से इसको अमेरिका ले जाया गया। नारंगी के लिए पाला हानिकारक है।

नारंगी की फसल बहुधा बहुत अच्छी होती है इस कारण थोड़ी सी भूमि पर भी बहुत सी फसल उत्पन्न की जा सकती है। लेकिन नारंगी का व्यापार इतना अधिक नहीं होता जितना और फलों का। क्योंकि यह शीघ्र खराब हो जाती है तथा इसको दूर भेजने में अड़चन होती है। भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के देशों में नारंगी खूब ही उत्पन्न होती है। योरोप में स्पेन, इटली, सिसली, माल्टा, फ्रांस, तथा ग्रीस में इसकी अधिक

पैदावार होती है। दक्षिण अमेरिका में ब्राज़ील और परेग्वे (Paraguay) में इसकी बहुत पैदावार होती है किन्तु इसका व्यापार नहीं होता। संयुक्तराज्य अमेरिका की फ्लोरिडा (Florida) नामक रियासत बहुत नारंगियाँ उत्पन्न करती है। एक प्रकार से यों कहना चाहिए कि यहाँ से ही नारंगियाँ सारे देश को भेजी जाती हैं। पश्चिमीय द्वीप समूह (West Indies) में भी नारंगियों की बहुत पैदावार होती है, किन्तु विदेशों को यहाँ से नारंगियाँ नहीं भेजा जातीं। कैलीफोर्निया की रियासत में भी नीबू और नारंगी के बहुत बाग़ हैं। एशिया में नारंगी की बहुत कम पैदावार होती है। चीन, जापान और भारतवर्ष मे ही थोड़ी सी नारंगी उत्पन्न होती है।

नारंगी ऊष्ण कटिबंध तथा भूमध्य सागर की जलवायु में खूब पैदा होता है। ब्राज़ील और परेग्वे (Paraguay) में नारंगी के लिए प्राकृतिक स्थिति इतनी अनुकूल है कि नारंगी के जंगली पेड़ बहुत मिलते हैं और नारंगी जंगली अवस्था में उत्पन्न होती है। भूमध्य सागर के देशों में नारंगी का धंधा बहुत उन्नत अवस्था में हैं क्योंकि वहाँ पाला नहीं पड़ता और गमनागमन के साधन उपलब्ध होने से शीघ्र ही योरोपीय देशों को भेजा जा सकता है।

भूमध्य सागर के देश

स्पेन संसार में सबसे अधिक नारंगियाँ विदेशों को भेजता है। स्पेन का भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) का प्रदेश वैलेन्शिया नारंगी उत्पन्न करने में मुख्य है। स्पेन अधिकतर अपनी नारंगी ब्रिटेन और जरमनी को भेजता है। यों थोड़ी नारंगी फ्रांस, बेलजियम, डैनमार्क तथा नार्वे स्वीडन को भी जाती हैं। स्पेन की नारंगी की कुल पैदावार ४ करोड़ बाक्सों (७० पौंड प्रति बाक्स) के लगभग प्रतिवर्ष होती है।

इटली का नारंगी उत्पन्न करने वालों में छटा नम्बर है किन्तु नारंगी विदेशों को भेजने में इटली दूसरा महत्त्वपूर्ण देश है। इटली की नारंगी की पैदावार प्रति वर्ष एक करोड़ बाक्स (७० पौंड प्रति बाक्स) के लगभग होती है जिसका ४० प्रतिशत विदेशों को भेज दिया जाता है।

पिछले दिनों में जब से यहूदी पैलेस्टाइन में जाकर बसे हैं उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से नारंगी के बड़े बड़े बाग लगाये हैं, इस कारण पैलेस्टाइन भी प्रतिवर्ष बहुत सी नारंगी विदेशों को भेज देता है। यहाँ तक कि वह इटली से भी अधिक नारंगी बाहर भेजता है। १९३९ में तो पैलेस्टाइन से १२,५००,००० बाक्स नारंगी विदेशों को भेजी गई।

इनके अतिरिक्त अलजीरिया, सीरिया, मिश्र, ग्रीस, ट्यूनीसिया, टर्की,

और सायप्रस में भी नारंगी अधिक उत्पन्न होती है किन्तु वे ऊपर लिखे देशों के समान महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया पिछले कुछ वर्षों से दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में भी नारंगी की पैदावार खूब होने लगी है। दक्षिण अफ्रीका से चालीस लाख बाक्स प्रतिवर्ष ब्रिटेन को भेजे जाते हैं। आस्ट्रेलिया से नारंगी अधिकतर न्यूज़ीलैंड को जाती है।

दक्षिण अमेरिका दक्षिण अमेरिका के अन्य राज्यों में नारंगी देश की खपत के योग्य उत्पन्न होती है किन्तु ब्राज़ील से नारंगी बाहर भी बहुत भेजी जाती है। ब्राज़ील में प्रति वर्ष लगभग ६० लाख बक्स नारंगी बाहर भेजी जाती है। वहाँ 'नेवल' नामक जाड़े की ऋतु की नारंगी उत्पन्न की जाती है ब्राज़ील की नारंगी अब स्पेन और संयुक्तराज्य अमेरिका की नारंगी से होड़ करने लगी है।

चीन सम्भवतः चीन नारंगी का मूल स्थान है और वहाँ नारंगी उत्पन्न भी बहुत होती है किन्तु देश में ही उसकी खपत हो जाती है बाहर नहीं भेजी जाती।

जापान जापान का नारंगी उत्पन्न करने वाले देशों में चौथा स्थान है। उसकी वार्षिक पैदावार १२,०००,००० बाक्स है। जापान की नारंगी अधिकतर जापान, कोरिया, मंचूरिया और चीन में ही खप जाती है फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा को भी काफी नारंगी भेजा जाती है।

संयुक्तराज्य अमेरिका संयुक्त राज्य अमेरिका संसार में सब से अधिक नारंगी उत्पन्न करता है। अधिकांश नारंगी कैलीफोर्निया और फ्लौरिडा (Florida) में उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त टैक्सास (Texas) ऐरिज़ोन (Arizona) तथा लयूज़ियाना (Louisiana) में भी नारंगी उत्पन्न होती है।

नीबू नींबू के लिए उर्वरा भूमि, यथेष्ट जल, धूप तथा सम शीतोष्ण (mild) जलवायु उपयुक्त है। इसको पाला और कीड़े से बहुत हानि पहुँचती है। कैलीफोर्निया में तो बागों में गरमी पहुँचाई जाती है जिससे पाला हानि न पहुँचा सके और कीड़े से वृक्षों की रक्षा का विशेष उपाय किया जाता है।

नीबू अधिकतर सिसली, इटली, स्पेन, पोर्तुगाल, कैलीफोर्निया, फ्लौरिडा और नैटाल तथा क्वीन्सलैंड से बाहर भेजा जाता है। मोटे छिलके वाला, खट्टा (Citron) भूमध्यसागर के समीपवर्ती प्रदेशों, जापान और भारतवर्ष से बाहर भेजा जाता है। क्रमशः इसकी पैदावार घट रही है और नीबू इसका स्थान ले रहा है।

संसार में सबसे अधिक नीबू इटली में (१ करोड़ २० लाख बक्स) उत्पन्न होते हैं। इसकी ६० प्रतिशत पैदावार इटली के सिसली द्वीप में होती है। नीबू उत्पन्न करने में दूसरा नम्बर संयुक्तराज्य अमेरिका का है जहाँ लगभग एक करोड़ बाक्स (एक बाक्स में ७० पौंड नीबू होते हैं) नीबू वार्षिक उत्पन्न होते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका का अधिकांश नीबू कैली-फोर्निया में उत्पन्न होते हैं। तीसरा नम्बर स्पेन का है। जहाँ १५ लाख नीबू उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के समीपवर्ती सभी प्रदेशों में नीबू उत्पन्न होते हैं मुख्यतः मिश्र में। इसके अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका, फ्लारिडा, आस्ट्रेलिया तथा मैक्सिको में भी नीबू की अच्छी पैदावार होती है। इटली, कैलीफोर्निया तथा स्पेन के अतिरिक्त थोड़ा सा नीबू पैलेस्टाइन, सीरियां और मैक्सिको से भी विदेशों को भेजा जाता है किन्तु पहले तीन देश ही संसार को मुख्यतः नीबू देते हैं।

नाशपाती (Pears) (Stone Fruits) बेर (Plums) अखरोट (Apricots) आड़ू (Peaches) शीतोष्ण प्रदेशों के फल हैं और ब्रिटिश कोलम्बिया, कैलोफोर्निया, टसमानिया, यूगोस्लविया, आस्ट्रिया, दक्षिण अफरीका, आनटैरियो (Ontario) और फ्रांस में इनकी पैदावार अधिक होती है। अंजीर (Fig) नारंगी की तरह पाले से नष्ट नहीं हो जाता और इसका फल आसानी से भेजा जा सकता है। अधिकतर इसे सुखा कर भेजते हैं। स्पेन, इटली, एशिया-मायनर, ग्रीस, अलजीरिया, और टर्की से यह अधिकतर विदेशों को भेजा जाता है। स्मर्ना अंजीर के व्यापार का मुख्य केन्द्र है। संयुक्तराज्य अमेरिका में कैलीफोर्निया और टैक्सास में भी अंजीर बहुत पैदा होता है। अंगूर अधिकतर शराब बनाने के काम आता है किन्तु जिन प्रदेशों में शराब बनाने के योग्य नहीं होता वहाँ से वह फल के रूप में बाहर भेज दिया जाता है। अंगूर अफ्रीका के केप-आव-गुड-होप प्रान्त, स्पेन, तथा पोर्तुगाल अधिकतर बाहर भेजा जाता है। भारतवर्ष में चमन में भी अंगूर की थोड़ी पैदावार होती है। सूखे हुए अंगूर अर्थात् किशमिश और मुनक्का (Currants and Raisins) अधिक-तर स्पेन, टर्की, आस्ट्रेलिया, ईजीप्ट, कैलोफोर्निया, भारतवर्ष, सायप्रस

(Cyprus) और अफ्रीका के केप-प्रान्त (Cape of Good Hope Province) से बाहर भेजे जाते हैं। आलू बुखारा (Almonds) अधिकतर स्पेन, मरक्को, इटली, पोर्तुगाल, फ्रांस, कैली-फोर्निया, और पैलेस्टाइन से बाहर भेजा जाता है। चेस्टनट (Chestnuts) वालनट (Walnuts) काला शहतूत (Black Mulberry) पौमेग्रेनेट (Pomegranate) पिश्ता (Pistachio nut) और जैतून (Olive) का फल अधिकतर दक्षिण योरोप और उत्तर अफ्रीका में उत्पन्न होता है। जैतून का फल खाया जाता है और उसका तेल निकाला जाता है। यह स्पेन, इटली और पोर्तुगाल में बहुतायत से उत्पन्न होता है। संसार का ८० प्रतिशत जैतून इन्हीं तीनों देशों में होता है।

आजकल सूखे हुए फलों का व्यापार बहुत बढ़ गया है। प्रत्येक देश में सूखे हुए फलों की खपत बढ़ती जाती है। संयुक्तराज्य की कैलीफोर्निया रियासत सूखे फल बाहर भेजने में सबसे बढ़ी चढ़ी है। भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के समीपवर्ती देश बहुत राशि में फल सुखा कर विदेशों को भेज देते हैं। फलों को वैज्ञानिक ढंग से सुखाने के लिये बड़े बड़े कारखाने स्थापित किये गये हैं। किशमिश मुनक्का सूर्य की गरमी में ही सुखाये जाते हैं।

गरम देशों के फल

केला उष्ण कटिबन्ध (Tropics) का मुख्य फल है। जहाँ अधिक गरमी और वर्षा होती है वहाँ केला उत्पन्न हो सकता

केला (Banana) है। भूमध्य रेखा (Equatorial) के घने जंगलों में केले की पैदावार बहुतायत से होती है। केले की खेती में बहुत कम परिश्रम करना पड़ता है। एक बार केले को लगा देने से ही केले की फ़सल तैयार हो जाती है। जब तक कि केले में पहली बार फल आते हैं तब तक उसके समीप और पौधे फल देने के लिए तैयार हो जाते हैं। भूमध्य रेखा के प्रदेश (Equatorial Belt) का यह मुख्य भोज्य पदार्थ है। गरीब लोग इसे अपने झोपड़ों के पास बड़ी ही आसानी से उत्पन्न कर लेते हैं और इसके फल पर निर्वाह करते हैं। मध्य अफ्रीका तथा कान्गो नदी के प्रदेश में लाखों हब्शी जाति के मनुष्यों का एकमात्र यही भोजन है। पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) दक्षिण चीन, भारतवर्ष पश्चिमी द्वीप समूह (West Indies) मध्य अमेरिका, मैक्सिको और फिलीपाइन्स में इसकी बहुत अधिक पैदावार होती है।

यद्यपि केला योरोप तथा उत्तरीय अमेरिका को इन देशों से भेजा जाता है परन्तु शीघ्र ही खराब हो जाने के कारण इसका व्यापार अधिक नहीं बढ़ सका। कुछ वर्षों से केले का आटा भी बनाया जाने लगा है। यदि भविष्य में केले का आटा खाया जाने लगा तो इसकी खेती बहुत बढ़ जायगी क्योंकि अभी तो केला केवल स्थानीय माँग के लिए ही उत्पन्न किया जाता है। सम्भव है कि भविष्य में यह फल घनी आबादी वाले देशों में भोजन का काम दे। किन्तु केले का आटा शीघ्र ही व्यापारिक वस्तु नहीं बन सकती क्योंकि मनुष्य भोजन में शीघ्र ही परिर्वतन नहीं कर सकता।

अनन्नास Pine Apple

अनन्नास (Pine Apple) के लिए बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। यदि जाड़े में पाला पड़ता हो तो यह नष्ट हो जाता है। अनन्नास की योरोप में बहुत माँग है। ब्राज़ील अनन्नास का मूल स्थान है जहाँ समुद्र के किनारे रेतीली भूमि में यह अब भी जंगली अवस्था में उत्पन्न होता है। किन्तु अब पश्चिमी द्वीप समूह (West Indies) फ्लैरिडा, नैटाल, क्वीन्सलैंड, हवाई द्वीप (Hawaii Islands) तथा मलाया प्रायद्वीप, में यह बहुतायत से उत्पन्न किया जाता है। अनन्नास के गोल गोल टुकड़े काट कर शक्कर के रस में रख कर टीन के डब्बों में बंद कर दिये जाते हैं। इस प्रकार अनन्नास संसार के प्रत्येक देश में पहुँचता है। प्रति वर्ष केवल मलाया प्रायद्वीप ही दस लाख पौंड का अनन्नास ब्रिटेन को भेज देता है।

खजूर (Date)

खजूर रेगिस्तान का फल है। यद्यपि यह फल रेगिस्तान में पाया जाता है परन्तु खजूर के वृक्ष को जल की बहुत आवश्यकता होती है। इजिप्ट, सहारा और सुदान में खजूर बहुत होता है। लेकिन संसार में सबसे अधिक पैदावार इराक़ में होती है। प्रतिवर्ष इराक़ एक लाख पचास हज़ार टन के लगभग खजूर विदेशों को भेज देता है। यूफ्रैटीज़ नदी के किनारे डेढ़ सौ मील दोनों ओर तीन तीन मील तक खजूर ही खजूर दिखाई देता है। इराक़ से खजूर एशिया के देशों तथा ब्रिटेन को भेजा जाता है। खजूर की अधिकतर पैदावार रेगिस्तान के जल स्रोतों के पास ही होती है। इन जल स्रोतों के समीप रहने वालों का यह जीवन आधार ही है।

शीतभण्डार रीति (Cold Storage System) के द्वारा अब फल दूर दूर तक भेजे जा सकते हैं और सभ्य समाज में इनके खाने

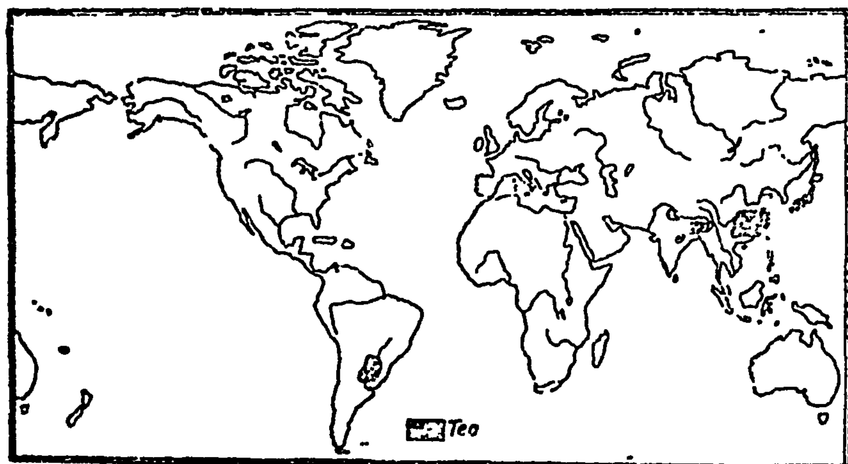
का रिवाज़ प्रत्येक देश में बढ़ रहा है। सूखे हुये मेवे तथा डिब्बों में बंद किये हुये फलों का भी अब बहुत अधिक व्यापार होता है।

पेय पदार्थ (Beverages)

चाय (Tea)

चाय एक प्रकार की झाड़ी की पत्ती है। सम्भवतः इसका मूल निवास स्थान चीन व भारत है। चीन में बहुत समय से चाय का प्रचार था, परन्तु योरोप में इसका प्रवेश केवल अट्ठारहवीं शताब्दी में हुआ और तब से इसकी माँग बेहद बढ़ गई है। आज तो चाय सभ्य समाज का एक आवश्यक पेय पदार्थ बन गया है। संसार के प्रत्येक देश में चाय का प्रचार बढ़ रहा है।

चाय का पेड़ ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) में ही उत्पन्न हो सकता है। इसकी पैदावार के लिये गरमी तथा नमी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। यदि जल पेड़ की जड़ों के पास ठहर जावे तो चाय की पैदावार नहीं हो सकती। यह ढालू पृथ्वी पर ही अच्छी तरह उत्पन्न होती है। यही कारण है कि चाय के बाग़ अधिकतर पहाड़ी स्थानों में ही पाये जाते हैं। चाय की खेती के लिए कम से कम ५४° फै० तथा अधिक से अधिक ८०° फै० गरमी की आवश्यकता है। अच्छी पैदावार के लिए ६०" इंच वर्षा से कम न होनी चाहिए। हाँ यदि ढाल अच्छा हो तो अधिक वर्षा फसल के लिये लाभदायक होती है।



चाय की खेती में केवल जलवायु और भूमि ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। कुलियों की समस्या इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। अभी तक ऐसा कोई यंत्र नहीं बन सका जो बिना पत्तियों को हानि पहुँचाये

पत्तियों को तोड़ सके। चाय की पत्तियाँ केवल हाथ से ही तोड़ी जा सकती हैं। पत्तियों को यदि सावधानी से न तोड़ा जाये तो अच्छी चाय नहीं बन सकती। अतएव चाय की पत्तियों को तोड़ने का कार्य अधिकतर बच्चे और स्त्रियाँ ही करती हैं। खेती का कठिन कार्य पुरुष करते हैं। इस कारण चाय की खेती में बड़ी संख्या में कुलियों की आवश्यकता होती है। जिन देशों में कुली सस्ते दामों पर नहीं मिल सकते, वहाँ जलवायु के अनुकूल होने पर भी चाय उत्पन्न नहीं हो सकती।

चाय का पौधा लगभग पाँच वर्षों में चाय उत्पन्न करने योग्य हो जाता है। इसकी ऊँचाई अधिक होती है किन्तु इसको अधिक बढ़ने नहीं दिया जाता। साधारणतः इसकी ऊँचाई ३ फ़ीट से लेकर ८ फ़ीट तक होती है। अधिक पत्तियाँ उत्पन्न करने के लिए भूमि में नत्रजन (Nitrogen) फासफैरिक एसिड, और पोटाश का होना ज़रूरी है। अतएव चाय के बागों में प्रतिवर्ष खाद द्वारा इन आवश्यक पदार्थों की पूर्ति करनी पड़ती है। मानसून वनों से भरे हुए पहाड़ी के ढाल चाय के लिये आदर्श भूमि हैं। क्योंकि वनों को साफ करके निकाली गई भूमि में वनस्पति का अंश बहुत होता है जो कि चाय की खेती के लिये उपयोगी है। पाला और ठंडक पत्तियों को हानि पहुँचाते हैं किन्तु वृक्ष नष्ट नहीं होता। चाय की खेती के लिये गरमियों में वर्षा होना विशेष लाभदायक है।

वर्ष में पत्तियाँ तीन बार चुनी जाती हैं। अधिकतर औरतें अपनी कोमल अंगुलियों से पत्तियाँ तोड़ती हैं। जितनी ही मुलायम पत्ती होगी उतनी ही अच्छी चाय बनेगी और सख्त पत्ती घटिया चाय बनाने के काम में आती है। जब पत्तियाँ इकट्ठी हो जाती हैं तो उन्हें धूप में सुखाया जाता है। पत्ती के सूख जाने पर उसे मशीन से रोल (Rolling) करते हैं जिन बागों में मशीन से काम नहीं लिया जाता वहाँ पत्तियों को हाथ से ही मसलते हैं। जब पत्तियाँ मसल (Roll) ली जाती हैं तब उन्हें सीमेंट के फर्श पर बिछा दिया जाता है और ऊपर से गीला कपड़ा डाल दिया जाता है। इसके उपरान्त यह नम पत्तियाँ फाइरिंग मशीन के बड़े बड़े तख्तों पर फैला दी जाती हैं। गरम हवा के द्वारा पत्तियों को भूना और सुखाया जाता है जब तक कि वह बिलकुल सूखी और काली न हो जाय।

चाय दो प्रकार की होती है काली चाय (Black Tea) और हरी चाय (Green Tea), यह कोई भिन्न प्रकार की पत्तियाँ नहीं होती। केवल उनके तैयार करने में ही थोड़ा सा अन्तर होता है। हरी चाय

बनाने के लिए पत्तियों को तोड़ने के उपरान्त बड़े बड़े कढ़ाहों में भून लिया जाता है जिससे कि पत्ती का रंग न बदल सके। भुन जाने के उपरान्त हरी चाय तैयार हो जाती है। भारतवर्ष, सीलौन, और डच पूर्वीय द्वीप समूह में काली चाय ही तैयार की जाती है। जापान में हरी चाय और चीन में दोनों प्रकार की चाय बनती है।

सम्भवतः चीन संसार में सबसे अधिक चाय उत्पन्न करता है किन्तु उसके विषय में कुछ ठीक ठीक ज्ञात नहीं है। ७० वर्ष पूर्व तो चीन ही संसार को चाय पिलाता था। किन्तु अब चीन बहुत कम चाय विदेशों को भेजता है क्योंकि अधिकांश चाय की खपत चीन में ही हो जाती है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारतवर्ष में चाय की पैदावार आरम्भ हुई और क्रमशः भारतवर्ष चाय उत्पन्न करने वाले देशों में प्रमुख हो गया। चाय उत्पन्न करने वालों में क्रमशः निम्नलिखित देश मुख्य हैं। चीन, भारतवर्ष, सीलौन, जापान, जावा, नैटाल, फिजी, और फारमोसा, ब्राज़ील और कैलीफोर्निया में भी चाय की पैदावार होती है।

सबसे अधिक चाय भारतवर्ष से विदेशों को जाती है दूसरा नम्बर लंका का है। भारतवर्ष और लंका मिलकर विदेशों में भेजी जाने वाली चाय की दो तिहाई चाय भेजते हैं। इनके उपरान्त जावा, चीन, जापान, और फारमोसा से चाय बाहर भेजने वालों में मुख्य हैं। चाय मँगाने वालों में क्रमशः ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, रूस और कनाडा मुख्य हैं। पिछले वर्षों में चाय की पैदावार बहुत बढ़ गई इस कारण उसकी कीमत घट गई है। जहाँ अंग्रेज़ लोग बसे हैं वहाँ चाय की खपत बहुत है और जहाँ अंग्रेज लोग नहीं हैं वहाँ क़हवा पिया जाता है।

संसार में चाय की पैदावार

(मैट्रिक क्विन्टल Quintals में)

चीन	४,०००,०००
भारतवर्ष	१,७४८,०००
लंका	१,१२०,०००
डच पूर्वीय द्वीप समूह	८१६,०००
जापान	५७५,०००

संसार में सबसे अधिक चाय चीन उत्पन्न करता है किन्तु सबसे अधिक चाय भारतवर्ष विदेशों को भेजता है।

चाय का निर्यात (Export)

(टनों में)

भारतवर्ष	१६६.०००
सीलोन (लंका)	१११,०००
चीन	७७,०००
डच पूर्वी द्वीप समूह	७७,०००
जापान	१२,०००
फारमोसा	६,०००

कहवा (Coffee)

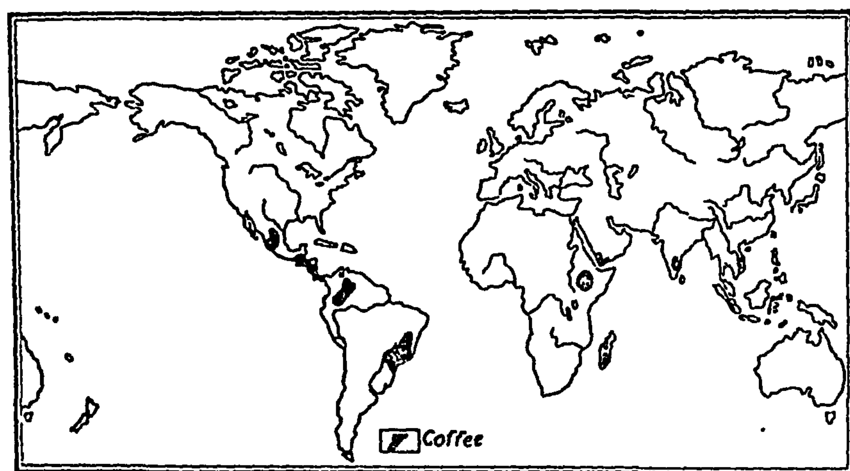
क़हवा भी उष्ण कटिबन्ध (Tropics) की उपज है। कहवा चाय की ही भाँति पीने के काम में आता है। कहवा का कहवा वृक्ष गरमी और जल अधिक चाहता है। क़हवे की अच्छी पैदावार के लिए ६०° फै० से ७०° फै० तक गरमी और ६०" से लेकर ७०" वर्षा होना आवश्यक है। किन्तु कहवे का पौधा आरम्भ में सूर्य की तेज़ धूप को सहन नहीं कर सकता। इस कारण रबर इत्यादि बड़े बड़े पेड़ों की छाया में इसको उत्पन्न करते हैं। पाला पड़ने से कहवे का वृक्ष नष्ट हो जाता है। इसी कारण इसकी पैदावार ठंडे देशों में नहीं हो सकती। कहवे का वृक्ष ३० से ४० वर्ष तक फसल देता रहता है, परन्तु ४० वर्ष के उपरान्त वृक्ष फसल देना बंद कर देता है।

बाजार में जो कहवा मिलता है उसे बनाने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। कहवा का फल वृक्ष से तोड़ लिया जाता है। फल के गूदे में दो बीज होते हैं। मशीन के द्वारा इन बीजों को गूदे से निकाल लिया जाता है। फिर बीजें सात दिन तक धूप में सुखाये जाते हैं। जब बीजें बिलकुल सूख जाते हैं तब उनकी भूसी मशीन के द्वारा साफ की जाती है।

अरब में लाल सागर के समीप यमन का एक छोटा सा राज्य है यहाँ का कहवा संसार में उत्तमता के लिये प्रसिद्ध है। यद्यपि यहाँ अधिक वर्षा नहीं होती पर मैदानों पर एक प्रकार की ओस पड़ती है तथा आकाश पर धुंधलापन रहता है जिससे कि सूर्य की तेज़ धूप पौधे को हानि नहीं पहुँचाती।

ब्राजील कहवा उत्पन्न करने वाले देशों में प्रमुख है। संसार का दो

तिहाई कहवा ब्राज़ील में ही उत्पन्न होता है। साम्रो-पोलो (Sao-Polo) रायो-डी जैनिरो (Rio-De Janeiro) और सैन्टो (Santo) ब्राज़ील में कहवा को उत्पन्न करने वाली मुख्य रियासतें हैं। यद्यपि ब्राज़ील संसार में सबसे अधिक कहवा उत्पन्न करता है किन्तु वहाँ का कहवा बहुत घटिया होता है। दक्षिण अमेरिका में ब्राज़ील के अतिरिक्त वैनीज़ुला (Venezuela) कोलम्बिया तथा इक्वेडर (Ecuador) राज्यों में भी कहवा बहुत उत्पन्न होता है। पश्चिमीय द्वीप समूह (West Indies) के प्रत्येक द्वीप में कहवा उत्पन्न हो सकता है परन्तु हैटी (Haiti) का द्वीप मुख्य है। यहाँ से बहुत सा कहवा बाहर भेजा जाता है। जैमाका (Jamaica) में सबसे कीमती कहवा जिसे नीले पर्वत का कहवा



(Blue Mountain Coffee) कहते हैं उत्पन्न किया जाता है। इनके अतिरिक्त मैक्सिको, डच पूर्वीय द्वीप समूह (Dutch East Indies) तथा भारतवर्ष कहवा उत्पन्न करने वालों में मुख्य हैं। आरम्भ में लंका में भी कहवा के बहुत बाग़ लगाये गये थे किन्तु एक बीमारी के कारण कहवा के बाग नष्ट हो गये तब बाग़ के मालिकों ने कहवा के स्थान पर चाय और सिनकोना (कुनैन) के बाग़ लगाना आरम्भ किये।

कहवा लेने वालों में संयुक्तराज्य अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इटली, तथा अन्य योरोपीय देश मुख्य हैं। जितना कहवा, उत्पन्न करने वाले देशों से बाहर भेजा जाता है उसका ७० प्रतिशत ऊपर लिखे देश मँगाते हैं। इनमें संयुक्तराज्य अमेरिका ही लगभग ५० प्रतिशत कहवा लेता है।

संसार में क़हवा की पैदावार

(क्विन्टल में)

ब्राज़ील	१२,५००,०००
कोलम्बिया	२,६७०,०००
डच पूर्वीय द्वीप समूह	१,०७१,०००
मैक्सिको	५००,०००
वैनीज़ुला	६५०,०००
सालवेडर	५४०,०००
ग्वाटामाला	५५०;०००
ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका	३८५,०००
ह्याटी (Haiti)	२५०,०००
क्यूबा	३२०,०००
कास्टारिका (Costa-Rica)	२४०,०००
मैडेगास्कर	३००,०००
वैल्जियन काम्गो	२३०,०००

संसार में क़हवा की उत्पत्ति २ करोड़ २० लाख क्विन्टल है।

कोकोआ (Cocoa) कोकोआ के वृक्ष का मूल निवास स्थान अमेरिका के गरम प्रदेश हैं। मैक्सिको तथा अमेज़न नदी (Amazon River) की बेसिन में यह वृक्ष जंगली अवस्था में पाया जाता है।

कोकोआ का वृक्ष क़हवा से अधिक गरमी चाहता है फिर भी सूर्य की तेज धूप सहन नहीं कर सकता इस कारण इसको ऊंचे वृक्षों की छाया में उत्पन्न किया जाता है। कोकोआ की खेती के लिए उपजाऊ भूमि तथा अधिक जल आवश्यक है यही कारण है कि उसकी पैदावार ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) के मैदानों में जहाँ कि वर्षा अधिक हो, दृष्टिगोचर होती है। कोकोआ का फल बहुत बड़ा होता है। इसके अन्दर २० से ६० तक बीज निकलते हैं। यदि हवा तेज चले तो फल कच्ची अवस्था में ही गिर पड़ता है, इस कारण जिन देशों में आँधी अधिक आती है वहाँ इसकी पैदावार सफलता पूर्वक नहीं हो सकती। ३ या ४ वर्ष की अवस्था में वृक्ष फल देने लगता हैं और ४० वर्ष तक फल देता रहता है। कोकोआ के नाम से जो चीज़ बाज़ार में बिकती है वह इस फल के बीज होते हैं। फल के गूदे की टिकियाँ तैय्यार की जाती हैं जिन्हें

चाकलेट (Chocolate) कहते हैं। कोकोआ उत्पन्न करने वाले देशों में अफ्रीका का गोल्ड कोस्ट (Gold Coast) ब्राज़ील, इक्वेडर (Equador), कोलम्बिया और पश्चिमीय द्वीप समूह (West Indies) मुख्य हैं। इन देशों की जलवायु कोकोआ के लिए अनुकूल है क्योंकि यह ऊष्ण कटिबंध का वह भाग है जहाँ हवा तेजी से नहीं बहती। लेकिन इन देशों में एक बड़ी कठिनाई यह है कि यहाँ ठंडे देशों के मनुष्य आकर नहीं रह सकते। और जब तक यहाँ पूंजी लगा कर बाग़ न लगवाये जायँ इसकी पैदावार नहीं बढ़ सकती।

अधिकांश कोकोआ संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी हालैंड, बैलजियम, और फ्रांस को जाता है। ब्राजील, कोलम्बिया और ट्रिनीडाड यूक्वेडर, नाइगेरिया, कोकोआ भेजने वालों में मुख्य हैं।

संसार में कोकोआ की उत्पत्ति

(क्विन्टल Quintal में)

गोल्ड कोस्ट	२,७४७,०००
ब्राजील	१,१००,०००
नाइगेरिया	६६५,०००
फ्रैंच पश्चिमी अफ्रीका	५१८,०००
डोमनिकन रिपब्लिक	२८३,०००
फ्रैंच कैमरुन	२३७,०००
ट्रिनीडाड	२०१,०००
यूक्वेडर	१६७,०००
स्पैनिश गायना	१४६,०००
वेनीजुला	१४२,०००

अंगूर की शराब

अंगूर का अधिकतर उपयोग शराब बनाने में होता है। अंगूर की खेती के लिए गरमी अत्यन्त आवश्यक है। जिन देशों में सितम्बर तक कड़ी गरमी पड़ती है वहाँ अंगूर की पैदावार बहुत अच्छी होती है। अंगूर की बेल की जड़ें जमीन के अन्दर गहरी चली जाती हैं, इस कारण सूखी भूमि पर भी अंगूर की खेती बिना सिंचाई के होती हैं। अधिक जल अंगूर के लिए हानिकर है। वर्षा अधिक होने से अंगूर की बेल में कीड़ा लग जाने का भय रहता है। यही कारण है कि भारतवर्ष, चीन और जापान में जहाँ कि गरमियों में अधिक वर्षा होती है अंगूर की पैदावार नहीं होती। अंगूर के लिए ढालू

भूमि बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। ढालू भूमि पर वर्षा का जल नहीं ठहरता और धूप भी तेज पड़ती है। यही कारण है कि अंगूर की पैदावार नदियों की घाटियों के ढालों पर अधिक होती है। जाड़े के दिनों में अंगूर की बेल में पत्तियाँ नहीं रहतीं इस कारण पाला बेल को नष्ट नहीं कर सकता।

अंगूर के द्वारा शराब बनाने में फ्रांस सर्व प्रथम है। इसके उपरान्त स्पेन, इटली, जर्मनी का राइन प्रदेश, पोर्तुगाल, आस्ट्रिया, हंगरी, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, स्वीटजरलैंड तथा दक्षिणी पश्चिमी रूस क्रमशः अंगूर की शराब उत्पन्न करने वालों में मुख्य हैं। फ्रांस, स्पेन और इटली, तीनों मिला कर संसार की तीन चौथाई शराब तैयार करते हैं।

अंगूर की खेती करने तथा उसकी शराब बनाने के लिए बहुत कुशल मजदूरों की ज़रूरत होती है। तनिक सी भी लापरवाही से शराब घटिया हो सकती है। इसके अतिरिक्त शराब एक ऐसी वस्तु है, कि जो जिस शराब को पसन्द करता है फिर दूसरी शराब को पसन्द नहीं करता। फ्रांस की शराब जगत प्रसिद्ध है इस कारण अन्य देशों से शराब फ्रांस में आती है और वह फ्रेंच शराब के नाम से बिकती है। स्पेन, इटली, पोर्तुगाल तथा जर्मनी की भी शराब प्रसिद्ध हो चुकी है। यही कारण है कि अन्य देशों की शराब बाज़ार में अच्छे दामों पर नहीं बिकती।

फ्रांसीसी लोग अंगूर की खेती करने और शराब को तैयार करने में बहुत कुशल हैं। क्लैरेट (Claret) शैम्पेन (Champaigne) तथा बरगंडी (Burgundy) नाम की शराब संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध है जो फ्रांस के इन्हीं नामों के प्रदेशों में तैयार होती हैं। शराब फ्रांस की मुख्य व्यापारिक वस्तु है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में फाइलाक्सेरा (Phylloxera) नामक कीड़ा फ्रांस में संयुक्त-राज्य अमेरिका से पहुँचा और थोड़े ही दिनों में इस कीड़े ने अंगूर की खेती को नष्ट कर डाला। समस्त फ्रेंच राष्ट्र इस कीड़े के प्रकोप से भयभीत हो उठा क्योंकि शराब बनाने का ही धन्धा उनका मुख्य धन्धा था। अन्त में एक युक्ति निकाली गई जिससे अंगूर की खेती नष्ट होने से बच गई। अमेरिका की बेल की जड़ पर फ्रांस की बेल की कलम लगाने से कीड़ा बेल को नष्ट नहीं कर सकता था।

इटली के आल्पस पहाड़ों की ढालों पर अंगूर की खेती बहुत अधिक होती है। फ्रांस के उपरान्त इटली ही मुख्य शराब तैयार करने वाला देश है। इटली की शराब बहुत बढ़िया नहीं होती। फिर भी मारसला

(Marsala) सिसली की, कापी (Capri) नेपिल्स की, शियान्टी (Chianti) फ्लोरैन्स की प्रसिद्ध शराब हैं। स्पेन की शैरी (Sherry) तथा पोर्तुगाल की पोर्ट (Port) भी बहुत प्रसिद्ध हैं। हाक (Hock) मोसले (Moselle) जर्मनी की मशहूर शराब हैं, किन्तु जर्मनी अधिक शराब उत्पन्न नहीं करता।

कुछ वर्षों से आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका अधिकाधिक शराब ब्रिटेन को भेजते हैं। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका की शराब क्रमशः प्रसिद्धि प्राप्त करती जा रही है और उसकी उत्पत्ति भी बढ़ रही है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि आस्ट्रेलिया की शराब बहुत अच्छी होती है। दक्षिण आस्ट्रेलिया तथा विक्टोरिया में अंगूर की अधिक खेती होती है।

दक्षिण अफ्रीका में केप कालोनी में अधिकतर अंगूर की पैदावार होती है। दक्षिण अमेरिका में चाइल (Chile) तथा अरजनटाइन (Argentine) में अंगूर की पैदावार अच्छी होती है। यद्यपि संयुक्तराज्य अमेरिका के दक्षिणी भाग तथा कैलीफोर्निया में अंगूर की पैदावार खूब होती है किन्तु शराब नहीं बनाई जाती। भूमध्यसागर के देशों में प्रतिवर्ष ५,५००,०००,००० गैलन शराब तैयार की जाती है।

तम्बाकू (Tobacco)

तम्बाकू

तम्बाकू पत्तियों से बनाई जाती है। तम्बाकू का प्रचार सारे संसार में है। तम्बाकू का पौधा यद्यपि ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) की उपज है परन्तु यह बहुत प्रकार के जलवायु में उत्पन्न हो सकता है। हाँ गरम तथा ठंडे रेगिस्तान इसके लिए अनुपयुक्त हैं। पाला तम्बाकू के लिए अत्यन्त हानिकर है। पत्ती के पकते समय गरमी की अधिक आवश्यकता होती है। तम्बाकू की खेती के लिए बहुत उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है, चूना और पोटाश मिली हुई मिट्टी तम्बाकू की खेती के लिए अधिक उपयुक्त है। तम्बाकू की अगणित जातियाँ हैं और उनके उपयोग भी भिन्न भिन्न हैं। तम्बाकू को बनाने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। तम्बाकू उत्पन्न करने वाले देश पत्तियाँ सुखा कर बाहर भेज देते हैं; किन्तु कुछ देशों में तम्बाकू की खपत देश के सिगरेट बनाने के कारखानों में ही हो जाती है।

समुद्र के समीप उत्पन्न होने वाली तम्बाकू (क्यूबा, सुमात्रा, मैनिला) सिगार के लिए सर्वोत्तम होती हैं। पाइप के लिए सबसे अच्छी तम्बाकू

ओहियों, डैन्यूब और गरोन नदियों की बेसिन में उत्पन्न होती है। और सिगरेट के लिए सर्वोत्तम तम्बाकू भूमध्य सागर (Mediterranean) की जलवायु (सीरिया, ग्रीस, अनातोलिया, ईजीप्ट, वरजनिया) में उत्पन्न होती है। तम्बाकू कैसी होगी यह बहुत कुछ भूमि पर निर्भर है। भारी मिट्टी में उत्पन्न होने वाली तम्बाकू तेज़ होती है और हल्की मिट्टी में हल्की तम्बाकू उत्पन्न होती है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में सबसे अधिक तम्बाकू उत्पन्न होती है किन्तु वह वहाँ के कारखानों में ही खप जाती है। संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A) बहुत अधिक राशि में सिगरेट और सिगार बनाकर विदेशों को भेजता है क्योंकि वहाँ अच्छी जाति की तम्बाकू उत्पन्न होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) मैक्सिको, ब्राज़ील, क्यूबा, मध्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका का उत्तरी भाग, पश्चिमी द्वीप समूह (West Indies) फिलीपाइन्स, आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी रूस, टर्की, ग्रीस, सीरिया, ईजीप्ट, भारतवर्ष, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया और ट्रान्सवाल मुख्य हैं। क्यूबा में सिगार बनाने के कारखाने हैं और वहाँ के सिगार संसार भर में प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में अधिकतर तम्बाकू हुक्का तथा बीड़ी के काम में आती है फिर भी बहुत सी बाहर भेज दी जाती है। ब्रिटेन तम्बाकू मंगाने वालों में मुख्य है वहाँ अधिकतर तम्बाकू संयुक्तराज्य अमेरिका, भारतवर्ष, एशिया मायनर, सुमात्रा और फिलीपाइन्स से आती है।

संसार में तम्बाकू का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि यह जीवन की एक आवश्यक वस्तु बन गई है। किसी न किसी रूप में सर्वसाधारण इसका उपयोग करते ही हैं। परन्तु अब इसका उपयोग दवाइयों में, भेड़ के कीड़े नष्ट करने में और खाद के रूप में भी बहुत होने लगा है।

संसार में तम्बाकू (Tobacco) उत्पन्न करने वाले देश

(क्विन्टलों में)

चीन	७,७२३,०००
संयुक्तराज्य अमेरिका	८,०२७,०००
भारतवर्ष	४,९५८,०००
सोवियत रूस	२,५००,०००
जापान	८२०,०००

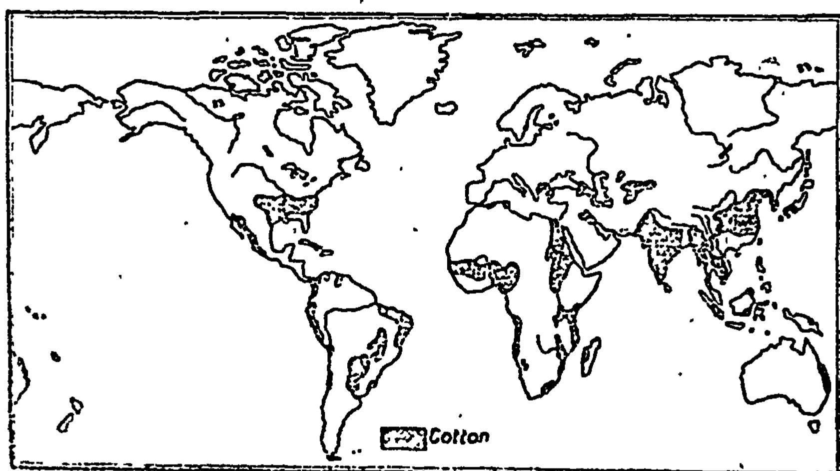
दारचीनी (Cinnamon) यह एक छोटे पेड़ की सूखी हुई छाल होती है जो मूलतः लंका का निवासी था। यह मुख्यतः सीलौन (लंका) के नम पहाड़ी ढालों तथा मैदानों पर उत्पन्न होती है। कुछ दारचीनी जावा में भी उत्पन्न होती है। क्योंकि पेड़ से अधिक से अधिक छाल लेना अभीष्ट होता है इस कारण उसको छाँट देते हैं और उसे झाड़ी में परिणत कर देते हैं।

सीलौन से घटिया जाति की दारचीनी का पेड़ दक्षिण भारत, डच पूर्वी द्वीप समूह (Dutch East Indies) हिन्द चीन, और दक्षिणी चीन में बहुत उत्पन्न किया जाता है और अधिकतर यही दारचीनी काम में आती है।

जायफल (Nutmeg)

जायफल मुख्यतः डच पूर्वीय द्वीप समूह में उत्पन्न होता है।

कपास (Cotton) कपास एक झाड़ी सदृश पौधे का फूल है जिसके रेशे से सूत तैयार किया जाता है। कपास का जितना उपयोग मनुष्य समाज अपने कपड़ों के तैयार करने में करता है, सम्भवतः उतना उपयोग अन्य किसी वस्तु का नहीं करता। अधिकतर मनुष्य सूती कपड़े ही पहनते हैं। गरम देशों में तो सूती कपड़े का उपयोग होता ही है ठंडे देशों में भी सूती कपड़े की कम माँग नहीं है। कपास का पौधा भारतवर्ष का मूल निवासी है।



यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से इसकी खेती होती आ रही है। यहाँ से ही कपास का पौधा अन्य देशों को गया। कपास बहुत तरह की होती है। परन्तु

व्यापारिक दृष्टि से तीन प्रकार की कपास महत्वपूर्ण है। संयुक्त-राज्य अमेरिका, भारतवर्ष और ईजीप्ट से ही अधिकतर कपास अन्य देशों को भेजी जाती है।

कपास ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) की पैदावार है। ४०° उत्तर तथा ३०° दक्षिण अक्षांश रेखाओं (Latitudes) के बीच में यह पौधा सब जगह उत्पन्न किया जा सकता है। कपास की पैदावार के लिए गरमी और धूप की नितान्त आवश्यकता है परन्तु अत्यधिक गरमी इसे हानि पहुँचाती है। गरमी के दिनों में साधारण वर्षा की आवश्यकता होती है, किन्तु अधिक वर्षा पैदावार को हानि पहुँचाती है। पौधे की बढ़वार के समय यदि गरमी बढ़ती जाय तो फसल अच्छी होती है। परन्तु जब पौधा पूरा बढ़ जाये, तब गरमी कम हो जानी चाहिये। जहाँ समय पर वर्षा नहीं होती वहाँ सिंचाई करनी पड़ती है। पाला कपास का भयंकर शत्रु है। पाला पड़ जाने से फसल नष्ट हो जाती है। इस कारण कपास की खेती उन देशों में नहीं हो सकती जहाँ कि पाला पड़ता हो

कपास की खेती के लिए हल्की मटियार भूमि जिसमें चूना मिला हो अथवा रेतीली दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त है। यदि दिन में धूप निकले और रात्रि को ओस पड़े तो वह पौधे की बढ़वार के लिए विशेष लाभदायक है। कपास के लिए ६ या ७ महीने गरम मौसम की आवश्यकता होती है। कपास की खेती में बहुत परिश्रम तथा सावधानी की आवश्यकता है। यही कारण है कि कुछ देशों ही में इसकी पैदावार होती है।

संसार में सर्वश्रेष्ठ कपास समुद्र के समीपवर्ती नीचे मैदानों में उत्पन्न होती है, उसे Sea Island Cotton कहते हैं। यह कपास रेशम की भाँति मुलायम और इसका फूल सब कपासों से अधिक लम्बा होता है। इस कपास का रेशा बहुत ही मज़बूत और चिकना होता है। बहुत बारीक और मज़बूत कपड़ा बनाने में यही कपास काम में आती है। पहले संयुक्तराज्य अमेरिका के समुद्री तट के समीप यह कपास बहुत अधिक उत्पन्न होती थी। किन्तु १८९२ ई० में कपास के भयंकर शत्रु बाल-वीविल (Boll Weevil) नामक कीड़े ने अमेरिका में प्रवेश किया, जिससे समुद्र तट के नीचे मैदानों में उत्पन्न होने वाली Sea Island Cotton की खेती तो बिलकुल चौपट हो गई। किन्तु भीतरी प्रदेश में उत्पन्न होने वाली कपास (Up-land Cotton) को वह कीड़ा अधिक हानि नहीं पहुँचा सका। पहले तो समस्या बड़ी कठिन हो गई थी। ऐसा प्रतीत होता था कि समुद्र तट के मैदानों में कपास की खेती हो ही नहीं सकती परन्तु मीड (Meade) जाति की कपास उत्पन्न

करने में सफलता मिल जाने से कठिनाई दूर हो गई। यह कपास Sea-Island Cotton की जैसी अच्छी नहीं होती किन्तु शीघ्र पक जाने के कारण इसमें कीड़ा नहीं लग पाता। जब से बाल-वीविल (Boll-Weevil) ने Sea Island Cotton की खेती को चौपट कर दिया तब से इसकी पैदावार केवल कुछ द्वीपों (Islands) में ही सीमित है। अब Sea Island Cotton की खेती चार्ल्सटन बन्दरगाहों के समीप जेम्स, ऐडिस्टो, और सेंट जोन्स. नामक द्वीपों में तथा पश्चिमीय द्वीप समूह (West Indies) के पोर्टोरिको (Porto Rico) इत्यादि द्वीपों में ही होती है। अब इसकी पैदावार दस हज़ार गाँठों से अधिक नहीं होती। दुर्भाग्यवश बाल वीविल कीड़ा इस कपास को हर समय लग सकता है। इस कारण इसकी पैदावार बढ़ाई नहीं जा सकती। कीड़ा लगने से पहले संयुक्तराज्य अमेरिका में इसकी बहुत पैदावार होती थी किन्तु अब तो बहुत कम हो गई है। Sea-Island Cotton का फूल १½ इंच से २½ इंच तक लम्बा होता है। इस कपास से घटकर ईजीप्ट (Egypt) की साकेल (Sakel) और जैनाविच (Joanovich) जाति की कपास लम्बाई के लिए प्रसिद्ध हैं। ऊपर दिये हुए प्रदेशों के अतिरिक्त नई और पुरानी दुनिया के सभी देशों में ऊँचे प्रदेश वाली कपास (Upland Cotton) उत्पन्न की जाती है जिसकी लम्बाई एक इंच के लगभग होती है।

लम्बाई के आधार पर कपास को हम तीन जातियों में बाँट सकते हैं। (१) लम्बी कपास (Long Staple) जिसके फूल की लम्बाई १½" इंच से २½" इंच तक हो। (२) मझोल कपास (Medium Staple) जिसके फूल की लम्बाई १" इंच से १½" इंच तक होती है। (३) छोटी कपास (Short Staple) जिसकी लम्बाई १" इंच से कम होती है। मझोल कपास (Medium Staple) संयुक्तराज्य अमेरिका, ईजीप्ट तथा अन्य अफ्रीकन प्रदेशों में उत्पन्न होती है। छोटी कपास (Short Staple) उन देशों में उत्पन्न होती है जहाँ वर्षा अधिक होती है। भारतवर्ष की कपास छोटी जाति की ही होती है। यहां की कपास की लम्बाई लगभग आध इंच है। यही नहीं कि भारतवर्ष की कपास की लम्बाई कम है यह मुलायम और चिकनी भी नहीं होती। छोटी कपास से घटिया और मोटा वस्त्र ही तैयार किया जाता है। हाँ घटिया कपास को अच्छी कपास में मिलाकर बारीक और सुंदर वस्त्र बनाने का सफल प्रयत्न किया गया है। जापान में यह मिलाने की कला बहुत उन्नति कर गई है। बात यह है कि प्रतिद्वन्द्विता के कारण प्रत्येक देश सस्ते दामों पर कपड़ा बेंचना चाहता है

किन्तु बढ़िया कपास का सूत तैयार करने से कीमत अधिक हो जाती है इस कारण बढ़िया और घटिया कपास को मिलाकर बारीक सूत तैयार किया जाता है।

यद्यपि बाल वीविल (Boll-Weevil) ने संयुक्तराज्य अमेरिका की खेती को बहुत अधिक हानि पहुँचाई है और यह कीड़ा समस्त कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र में पहुँच गया है परन्तु फिर भी संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक (५०% प्रतिशत से कुछ कम) कपास उत्पन्न करता है। यहाँ की कपास अच्छी होती है। लंकाशायर तथा मैंचेस्टर की मिलें, फ्रांस तथा अन्य योरोपीय देश अधिकांश में अमेरिका की कपास का ही उपयोग करते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में लगभग ६५,००० वर्ग मील भूमि पर खेती की पैदावार होती है। प्रति एकड़ यहाँ की उत्पत्ति लगभग १६५ पौंड के हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में कपास उत्पन्न करने योग्य बहुत सी भूमि बिना जुती हुई पड़ी हैं परंन्तु मज़दूरी अधिक होने के कारण उस पर कपास उत्पन्न करना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक नहीं हो सकता।

बात यह है कि कपास की खेती में मज़दूरों की बहुत आवश्यकता होती है क्योंकि कपास का फूल हाथ से ही चुना जाता है इस कारण कपास की खेती में मज़दूरों की बहुत आवश्यकता होती है। यही कारण था कि पहले अमेरिका में कपास की खेती के लिए अफ्रीका से दासों को लाया जाता था। अमेरिका में मिसिसीपी की बेसिन, टक्सास, अल्बामा, तथा आक्लेहमा में अधिकांश कपास उत्पन्न होता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका को छोड़ कर भारतवर्ष संसार में सबसे अधिक कपास उत्पन्न करता है। यहाँ की कपास छोटी होती है। प्रति एकड़ यहाँ की पैदावार ८८ पौंड के लगभग है। यहाँ लगभग ४०,००० वर्ग मील पर कपास उत्पन्न की जाती है। भारतवर्ष संसार की २० प्रतिशत कपास उत्पन्न करता है और अधिकतर यहाँ की कपास जापान को जाती है।

मिस्र (Egypt) में नील नदी के बेसिन में ही कपास की खेती होती है। यहाँ भूमि कम होने के कारण पैदावार तो अधिक नहीं होती किन्तु प्रति एकड़ यहाँ कपास की उत्पत्ति सबसे अधिक अर्थात् ४०० पौंड प्रति एकड़ से अधिक है। ईजीप्ट में लगभग तीन हज़ार वर्ग मील पर कपास की खेती होती है। ईजीप्ट संसार की कुल केवल ६ प्रतिशत के लगभग कपास उत्पन्न करता है। ईजीप्ट की कपास संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, और जापान को जाती है।

चीन में भी बहुत कपास उत्पन्न होती है। जबसे वहाँ अफीम की खेती बन्द हुई तबसे कपास की खेती बहुत तेजी से बढ़ी है। चीन की कुल पैदावार ईजीप्ट (Eygpt) से अधिक (संसार की ९.५ प्रतिशत) होती है। परन्तु प्रति एकड़ यहाँ की पैदावार केवल २२५ पौंड होती है। चीन अपने कपास को बाहर नहीं भेजता अधिकतर कपास देश में ही खप जाती है।

पिछले वर्षों में सोवियट रूस (U. S. S. R.) ने अपने यहाँ बड़ी तेजी से कपास की पैदावार बढ़ाने का प्रयत्न किया है और इस समय वहाँ चीन और ईजीप्ट (Eygpt) से भी अधिक कपास उत्पन्न होती है। बात यह है कि रूसी तुर्किस्तान तथा काकेशस प्रान्त में सरकार अनाज की खेती कम करवा कर कपास की खेती करवा रही है क्योंकि अनाज तो सोवियट रूस के अन्य भागों में भी उत्पन्न होता है। रूस संसार की १० प्रतिशत से भी अधिक कपास उत्पन्न करता है। यहाँ प्रति एकड़ लगभग २५० पौंड कपास उत्पन्न होती है, रूस भी कपास बाहर नहीं भेजता। सोवियत रूस में कपास की खेती बहुत बढ़ गई है और अब ५० लाख एकड़ पर कपास उत्पन्न होती है।

इनके अतिरिक्त नायगेरिया (Nigeria) युगंडा (Uganda) पश्चिमी द्वीप समूह (West Indies) ईजिपशियन सुदान (Sudan) रोडेशिया (Rhodesia) पीरू (Peru) और ब्राज़ील (Brazil) अरजैनटाइन में भी कपास की खेती बढ़ती जा रही है। पिछले दिनों ब्राजील में कपास की पैदावार बहुत बढ़ गई है विदेशों को कपास भेजने वाले देशों में उसका चौथा नम्बर है।

कपास बाहर से मंगाने वालों में जापान, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली और चैकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia) क्रमशः मुख्य हैं। जापान और ब्रिटेन पचीस-पचीस प्रतिशत कपास मोल लेते हैं, जर्मनी और फ्रांस लगभग बारह बारह प्रतिशत, और इटली लगभग ८ प्रतिशत कपास मंगाते हैं।

कपास की पैदावार

(क्विन्टल में)

संयुक्तराज्य अमेरिका	२७,२४५,०००
भारतवर्ष	१०,४६६,०००
सोवियत रूस	८,५००,०००
ब्राज़ील	५,४६६,०००

चीन	७,०००,०००
मिश्र (Egypt)	४,१२०,०००
युगन्डा	४,१२०,०००
ऐंग्लो इजिपशियन सुदान	४६६,०००

भिन्न भिन्न देशों में कपास की प्रति एकड़ पैदावार

मिश्र (Egypt)	५३१
पीरु	५०८
सुदान	२७७
अरजैनटाइन	१५१
सोवियत यूनियन	३२२
संयुक्तराज्य अमेरिका	२६४
ब्राजील	१५४
युगन्डा	८४
भारतवर्ष	८४

लंकाशायर के व्यवसायी संयुक्तराज्य अमेरिका पर ही सोलह आना कपास के लिए निर्भर हैं। क्रमशः संयुक्तराज्य अमेरिका अपनी कपास को बाहर भेजना कम करता जाता है क्योंकि वहाँ कपड़े का धंधा तेजी से बढ़ रहा है। भारतवर्ष भी कपड़े का धंधा तेज़ी से बढ़ने के कारण भविष्य में अधिक कपास बाहर न भेज सकेगा। फिर भारतवर्ष की कपास का लंकाशायर के कारख़ाने उपयोग नहीं करते इस कारण लंकाशायर के व्यवसायी भविष्य में कपास की कमी की आशंका से भयभीत हो उठे और British Cotton Growing Association की स्थापना करके वे अफ्रीका में अधिकाधिक कपास की खेती बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

बिनौला (Cotton Seed)

कपास के बीज को बिनौला कहते हैं। इसका अधिक उपयोग तेल निकालने में होता है। इसकी खली का उपयोग खाद के रूप में होता है। बिनौला दूध देने वाले पशुओं को भी खिलाया जाता है। अधिकतर संयुक्तराज्य अमेरिका, भारतवर्ष तथा चीन से बिनौला बाहर भेजा जाता है। ब्रिटेन और संयुक्तराज्य अमेरिका अधिकांश बिनौले का तेल बाहर भेजते हैं और डैनमार्क, हालैंड, बैल्जियम, तथा कनाडा में बिनौले का तेल दूध देने वाले पशुओं को खिलाने के लिए मँगाया जाता है।

जूट (Jute) जूट एक प्रकार के लम्बे पौधे का छिलका होता है। इस रेशेदार छिलके को कातकर सुतली तैयार की जाती है और बोरे बनाये जाते हैं।

जूट की खेती के लिए अति वृष्टि तथा अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। जूट की खेती से भूमि शीघ्र ही कमज़ोर हो जाती है। इस कारण जूट की खेती उन्हीं स्थानों पर की जा सकती है जहाँ प्रति वर्ष नदियाँ उपजाऊ मिट्टी लाकर जमा कर देती हैं। जो भूमि प्रति वर्ष प्रकृति की सहायता से उपजाऊ मिट्टी पा जाती हो वही जूट की खेती के लिए उपयुक्त है।

भारतवर्ष में भी केवल बंगाल, बिहार, नैपाल और आसाम के नीचे के मैदानों में ही जूट की खेती होती है। संसार में भारतवर्ष ही जूट उत्पन्न करता है। यद्यपि थोड़ा सा जूट चीन, फारमोसा, मलाया तथा जापान में भी उत्पन्न होता है किन्तु वह नगण्य है। संसार को जूट भारतवर्ष से ही जाता है। भारतवर्ष में कलकत्ते के समीप हुगली नदी के किनारे जूट के बड़े बड़े कारखाने स्थापित हैं जिनमें भारत का आधे से अधिक जूट खप जाता है। शेष जूट बाहर भेजा जाता है। जूट मँगाने वालों में ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा इटली मुख्य हैं। युद्ध के समय जर्मनी से व्यापार बंद है।

सन (Flax) कपास के बाद सन ही मुख्य रेशेदार पदार्थ हैं। इसके छिलके से मोटे कपड़े (Linen) रस्सी तथा अन्य वस्तुयें बनाई जाती हैं। सन शीतोष्ण कटिबंध (Temperate zone) की पैदावार है परन्तु इसकी खेती भिन्न प्रकार के जलवायु में भी हो सकती है। सन की खेती के लिए उपजाऊ भूमि और जल की अत्यन्त आवश्यकता है। सन भी भूमि को शीघ्र ही निर्बल बना डालता है इस कारण इसकी खेती उपजाऊ भूमि पर ही हो सकती है। सन का बीज भी व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसका तेल निकाला जाता है जो कि बहुत से उपयोग में आता है। परन्तु सन की खेती की विशेषता यह है कि यदि बीज अधिक उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाये तो छिलका कम और घटिया होता है और यदि छिलके की उत्पत्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया जाये तो बीज की फसल कम होती है। सन की खेती में भी मज़दूरों की बहुत अधिक आवश्यकता होती है इस कारण इसकी खेती घने आबाद देशों में ही हो सकती है।

संसार में अधिकांश सन का छिलका योरोप में ही उत्पन्न होता है। रूस और बाल्टिक प्रदेश संसार की अधिकांश सन की पैदावार उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त मध्य योरोप, आयरलैंड तथा उत्तरी इटली में भी सन की पैदावार होती है। किन्तु रूस तथा बाल्टिक प्रदेश से ही अधिकांश सन बाहर भेजा जाता है।

भारतवर्ष संयुक्तराज्य अमेरिका, तथा अरजनटाइन में सन की खेती बीज के लिए की जाती है। अरजनटाइन सबसे अधिक सन का बीज उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त रूस में भी सन का बीज उत्पन्न होता है। सन का बीज अधिकतर अरजनटाइन, रूस, तथा भारतवर्ष से विदेशों को भेजा जाता है।

सन का छिलका अधिकतर बैलिजयम, आयरलैंड, फ्रांस, जर्मनी और जापान को जाता है और बीज अधिकतर संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, बैल्जियम, हालैंड तथा डैनमार्क को जाता है।

हैम्प (Hemp) फुलसन

हैम्प (Hemp) एक प्रकार का सन है। किन्तु सन से यह अधिक मज़बूत होता है। हैम्प की खेती के लिए भी सन की ही भाँति उपजाऊ भूमि तथा जल की आवश्यकता होती है किन्तु हैम्प की खेती में समय कम लगता है, हैम्प का अधिकतर उपयोग रस्सा बनाने में होता है।

रूस में हैम्प सबसे अधिक उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त इटली, कोरिया, हंगरी, चीन और भारतवर्ष में भी हैम्प की अच्छी पैदावार होती है।

हैम्प के बीज का तेल निकाला जाता है जो सन के बीज की तरह साबुन पेंट तथा वार्निश बनाने के काम में आता है। हैम्प का बीज भी रूस से ही अधिकतर बाहर भेजा जाता है। भारतवर्ष में हैम्प की पत्ती का भाँग के रूप में उपयोग होता है।

ब्रिटेन संयुक्तराज्य अमेरिका जर्मनी फ्रांस और जापान अधिकतर हैम्प बाहर से मंगाते हैं। और रूस तथा इटली अधिकतर हैम्प बाहर भेजते हैं।

अन्य रेशेदार पदार्थ

न्यूजीलैंड का सन (Flax)

यह एक पौधे की लम्बी नुकीली पत्तियों से निकाला जाता है। इसका उपयोग रस्से बनाने में होता है। यह पौधा न्यूजीलैंड की विशेष उपज है। क्रमशः इसके रेशे का व्यापारिक महत्व बढ़ता जाता है।

मैनिला हैम्प फिलीपाइन्स द्वीप समूह की पैदावार है। एक प्रकार के केले के रेशा होता है जो फिलीपाइन्स में बहुतायत

मैनिला हैम्प Manila Hemp

से उत्पन्न होता है। यह बहुत मज़बूत, कड़ा और चिकना होने के कारण मोटे रस्से बनाने के काम आता है।

सिसल हैम्प (Sisal Hemp)

यह एक प्रकार के पेड़ की तलवार जैसी बड़ी बड़ी पत्तियों से निकाला जाता है। यह मध्य अमेरिका, बहामा (Bahamas), किनिया, टंगनियाका (Tanganyika) न्यसालैंड (Nyasaland) पश्चिमी द्वीप समूह (West Indies) क्वीन्सलैंड तथा हवाई द्वीप में उत्पन्न होता है।

चीनी घास (China Grass)

यह घास मलाया, भारतवर्ष, पश्चिमी द्वीप समूह, किनिया, चीन, मैक्सिको, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य योरोप में मिलती है। इस पौधे के तनें से रेशा निकाला जाता है। किन्तु गोंद की अधिकता होने के कारण रेशे को निकालने में कठिनाई होती है। इसका रस्सा तथा मोटे कपड़े बनते हैं।

इनके अतिरिक्त नारियल (Coconut) के वृक्ष की जड़ों से भी रस्से तैयार होते हैं।

तिलहन (Oilseeds)

संसार में बहुत प्रकार के ऐसे फल और बीज हैं जिनसे तेल निकाला जाता है। इन बीजों का तेल खाने में, औषधि में, साबुन, वार्निश, पेंट तथा अन्य वस्तुओं के तैयार करने में काम में आता है। यही कारण है कि तिलहन की माँग बहुत है।

खजूर का तेल (Palm oil)

खजूर के फल से यह तेल निकाला जाता है। यह अधिकतर अफ्रीका में उत्पन्न होता है। इसके लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। इस वृक्ष को जल और गरमी की भी बहुत आवश्यकता होती है, ७० इंच के लगभग वर्षा में यह खूब उत्पन्न होता है। पश्चिमी अफ्रीका में इसके सघन वन हैं। यह अधिकतर साबुन तथा मोमबत्ती बनाने के काम आता है। अफ्रीका में यह भोजन के साथ खाया भी जाता है। अधिकतर यहाँ से योरोप को यह तेल भेजा जाता है।

नारियल का तेल (Coconut oil)

नारियल; तेल उत्पन्न करने वालों में विशेष महत्त्वपूर्ण है। ऊष्ण कटिबन्ध के समुद्रीय प्रदेशों में यह सब जगह पाया जाता है। वृक्ष छः वर्ष की आयु में फल देने लगता है और पचास वर्ष तक फल देता रहता है। इसकी गरी व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। गरी से ही तेल निकलता है। तेल निकली हुई गरी पशुओं को खिलाई जाती है। लंका (Ceylon) भारतवर्ष का दक्षिणी भाग, मलाया, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी द्वीप समूह (West Indies) मारिशस, फिजी, केनिया (Kenya) ज़ैंज़ीबार (Zanzibar) तथा गोल्ड कोस्ट (Gold Coast) में नरियल बहुतायत से उत्पन्न होता है।

पूर्वीय देशों से बहुत सी गरी ऐन्टवर्प (Antwerp) लिवरपूल (Liverpool) हैम्बवर्ग (Hamburg) तथा मार्सलीज़ (Marseilles) के साबुन बनाने के कारखानों को प्रतिवर्ष भेजी जाती है। ट्रिनीडाड तथा जमैका (Jamaica) से भी नारियल संयुक्तराज्य अमेरिका को भेजा जाता है। ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) के बहुत से टापू केवल नारियल के व्यापार के ही कारण आबाद हैं।

अंडी का तेल (Castor oil)

इसका पौधा एक झाड़ी के आकार का होता है। इसके फल में जो बीज निकलते हैं उनसे ही अंडी का तेल तैयार किया जाता है। अंडी का तेल साबुन बनाने तथा दवा के काम में आता है। यह अधिकतर भारतवर्ष, जावा, कैलीफोर्निया, इटली तथा दक्षिण चीन में उत्पन्न होता है। और यहाँ से ही बाहर भेजा जाता है।

ज़ैतून (Olive)

ज़ैतून भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) के जलवायु में बहुत पैदा होता है। ज़ैतून के वृक्ष के फल से तेल निकाला जाता है। ज़ैतून का तेल खाने में बहुत उपयोग होता है इससे एक प्रकार की चर्बी (Fat) तैयार की जाती है जो दूध तथा मक्खन की स्थानापन्न होती है। भूमध्य सागर के प्रदेश में पशुपालन के लिए जलवायु अनुकूल नहीं है इस कारण ज़ैतून का तेल अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है। इसका उपयोग साबुन बनाने में भी किया जाता है। इसकी पैदावार फ्रांस, इटली, स्पेन, तथा एशिया मायनर में अधिक होती है।

मूंगफली का तेल (Ground-nut Oil)

मूंगफली सूखे प्रदेशों में अधिक उत्पन्न होती है। इसकी उत्पत्ति भारतवर्ष, पश्चिमी अफ्रीका, पश्चिमीय द्वीप समूह (West Indies) सुदान (Sudan) मलाया, अरजनटाइन तथा संयुक्तराज्य अमेरिका में अधिक होती है। मूंगफली का तेल साबुन बनाने के काम में आता है।

लाही का तेल (Rape Seed)

यह अधिकतर योरोप तथा भारतवर्ष में उत्पन्न होता है। इसका तेल मशीन के पुर्जों को चिकना करने के लिए डालते हैं, कहीं कहीं यह जलाया भी जाता है।

तिल का तेल (Sesamum)

यह जाड़े में पैदा होता है। इसमें तेल बहुत निकलता है। इसकी पैदावार ईजिप्ट (Egypt) भारतवर्ष, एशिया-मायनर, केनिया (Kenya) उगंडा (Uganda) पश्चिमी अफ़्रीका, ब्राज़ील, मेक्सिको और पश्चिमी द्वीप समूह में बहुत उत्पन्न होता है। तिल के तेल का साबुन बनाने में उपयोग होता है।

सरसों का तेल (Mustard oil)

सरसों भारतवर्ष में बहुत उत्पन्न होती है। इसके लिए गेहूँ का जलवायु तथा भूमि अनुकूल पड़ती है। सरसों का तेल बहुत उपयोगी है। रोशनी करने में, खाने में, तथा साबुन बनाने में इसका उपयोग होता है। यहाँ से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों की सरसों मुख्यत:फ्रांस को भेजी जाती है।

बिनौले तथा सन के बीजों का तेल

(देखो कपास तथा सन का विवरण)

सोयाबीन का तेल (Soya Bean oil)

यह सोयाबीन के बीच से निकाला जाता है। इसकी पैदावार अधिकतर मंचूरिया, चीन और जापान में होती है। इसका उपयोग रबर के स्थान पर तथा साबुन बनाने में होता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—चुकन्दर (Beet) और गन्ने की पैदावार के लिए किस प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति आवश्यक है। इनकी पैदावार कहाँ होती है।

२—कपास की खेती के लिए किस प्रकार की भूमि और जलवायु चाहिए। कपास की खेती के लिए और किन बातों की आवश्यकता है। संसार में कपास की खेती कहाँ-कहाँ होती है?

३—चाय और कहवे की खेती के लिए किस प्रकार का जलवायु चाहिए। चाय और कहवा किस प्रकार तैयार किया जाता है। उसका वर्णन कीजिए और बतलाइए कि चाय और कहवा कहाँ उत्पन्न होता है?

४—आगे लिखी पैदावारें कहाँ होती हैं:—चावल, जूट, मसाले और तम्बाकू।

५—कपास और गेहूँ की खेती के लिए किस प्रकार का जलवायु चाहिए। कौन से देश कपास और गेहूँ बाहर भेजते हैं और कौन से देश गेहूँ और कपास बाहर से मंगवाते हैं?

६—भूमध्य सागर के प्रदेश फलों को उत्पन्न करने के लिए क्यों उपयुक्त स्थान हैं समझा कर लिखिये, अंगूर, नारंगी तथा सूखे फल कहाँ अधिकतर उत्पन्न होते हैं विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

७—मांस के धंधे के बारे में आप क्या जानते हैं विस्तारपूर्वक लिखिए।

८—कोकोआ (cocoa) की पैदावार के लिए किस प्रकार का जलवायु चाहिए। कोकोआ की पैदावार कहाँ अधिक होती है?

९—कपास कितनी तरह की होती है भारतवर्ष में कैसी कपास उत्पन्न होती है। कपास के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade) का वर्णन कीजिए।

नवाँ परिच्छेद

मुख्य धंधे—खनिज सम्पत्ति (Mineral Wealth)

आधुनिक औद्योगिक उन्नति का आधार खनिज पदार्थ ही हैं। मनुष्य को खनिज पदार्थों (Minerals) का उपयोग बहुत पीछे ज्ञात हुआ। प्राचीन समय में मनुष्य पत्थर तथा अन्य कठोर वस्तुओं से काटने तथा छीलने का काम लेता था। परन्तु धीरे-धीरे धातुओं का पता लगा और उनका उपयोग किया जाने लगा। यदि मनुष्य समाज के पास धातुयें न होतीं तो उसकी उत्पादन शक्ति बहुत कम होती। बिना धातुओं का उपयोग किये जो औद्योगिक उन्नति आज दिखलाई देती है वह हो ही नहीं सकती। सभ्यता के विकास में धातुओं का बहुत बड़ा भाग रहा है। जब तक लोहे को गला कर मनुष्य ने हल तथा खेती के अन्य औज़ार बनाना नहीं सीखा तब तक खेती बहुत नरम ज़मीन पर ही सम्भव थी। आज-कल बिना लोहे और कोयले के औद्योगिक उन्नति सम्भव ही नहीं है। बीसवीं शताब्दी में जल विद्युत् (Water power) उत्पन्न की जाने लगी है परन्तु फिर भी थोड़ी बहुत कोयले की आवश्यकता तो बनी ही रहेगी। लोहे के बिना तो किसी देश की भी औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। केवल लोहा ही नहीं, बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में मनुष्य समाज अन्य धातुओं का इतना अधिक उपयोग करने लगा है कि उनके बिना उसका एक दिन भी काम नहीं चल सकता।

वनस्पति की भाँति खनिज पदार्थ (Minerals) भिन्न-भिन्न स्थानों पर उपजाये नहीं जा सकते। वे पृथ्वी के गर्भ में प्रकृति के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। यदि मनुष्य खनिज पदार्थों को खोदकर न निकाले तो वे अनन्त काल तक पृथ्वी के गर्भ में ही पड़े रहें। मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी धातुओं को उत्पन्न नहीं कर सकता। हाँ वह यह अवश्य जान सकता है कि वे धातुयें कहाँ मिलेंगी। एक बार खनिज पदार्थ को निकाल लेने के उपरान्त उन खानों में फिर से धातु उत्पन्न नहीं की जा सकती। इस कारण खान को खोदना प्रकृति के जुटाये हुए धन को निकाल लेना है। यदि मनुष्य मूर्खतावश खानों को शीघ्र ही

खोदकर खाली कर दे तो आने वाली पीढ़ियों को अपने पूर्वजों की मूर्खता का फल बिना मिले नहीं रह सकता। यही कारण है कि बहुत से विद्वानों का कहना है कि आवश्यक धातुओं का उपयोग बहुत किफायत के साथ होना चाहिए। क्योंकि धातुयें समाप्त भी हो सकती हैं। उस समय मनुष्य समाज के सामने बहुत कठिन समस्या उठ खड़ी होगी। पौधों की भाँति खनिज पदार्थों (Minerals) का सम्बन्ध जलवायु से नहीं है, यही कारण है कि खनिज पदार्थ प्रत्येक देश में पाये जाते हैं।

धातुओं की बढ़ती हुई माँग के कारण मनुष्य ने सारी पृथ्वी छान डाली, यहाँ तक कि जिन प्रदेशों में वनस्पति उत्पन्न नहीं हो सकती, और जहाँ पहिले मनुष्य जाति निवास भी नहीं करती थी वे केवल खनिज पदार्थों के कारण आबाद हो गए। उत्तरी अमेरिका का यूकान (Yukan) का प्रान्त जो अत्यन्त ठंडा है केवल सोना उत्पन्न करने के कारण ही आबाद है। पश्चिम आस्ट्रेलिया में कालगूर्डी (Kalgoordi) और कालगूर्ली (Kalgoorli) की खानों के समीप नगर बस गए हैं। यह दोनों स्थान मरुभूमि में स्थित हैं, इस कारण लगभग ३०० मील की दूरी से नलों द्वारा यहाँ जल लाया जाता है। उस मरुभूमि में आबादी केवल सोने की खानों के कारण ही दिखाई देती है।

प्रकृति ने धातुओं को पृथ्वी के गर्भ में बहुत नीचे इकट्ठा किया है इस कारण अधिकतर खनिज पदार्थ पुरानी चट्टानों में ही पाई जाती हैं। जहाँ कि गहराई में स्थित चट्टानों को प्रकृति ने खोल दिया है और उन चट्टानों में विशेष परिवर्तन कर दिया है, वहीं अधिकतर खानें पाई जाती हैं। अधिकांश खनिज प्रदेश पुराने और टूटे हुए पूर्वीय प्रदेश में मिलते हैं। अग्निमय (Igneous) चट्टानों में जो धातुओं के कण होते हैं उनके एक स्थान पर इकट्ठा करने के लिए ज्वालामुखी परिवर्तन (Volcanism) तथा पानी की सहायता आवश्यक है। ज्वालामुखी परिवर्तन (Volcanism) के द्वारा प्रकृति ने चट्टानों के धातु कणों को एक स्थान पर इकट्ठा करने का कार्य किया है। ज्वालामुखी विस्फोट के कारण जल को पृथ्वी के गर्भ में गहराई तक जाने का अवसर मिलता है, पानी धातु के कण को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है। लावा ने भी बहुत सी धातुओं को एक स्थान पर इकट्ठा करने में बहुत सहायता दी है। जब पानी चट्टानों से छन-छन कर अन्दर जाता है तो वह धातुओं के कणों को बहा कर एक-एक स्थान पर इकट्ठा कर देता है। अग्निमय (Igneous) चट्टानें जो गरम पानी

छोड़ती हैं वह धातुओं को ऊपर की ओर ले आता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप में ज्वालामुखी परिवर्तन ही संसार के अधिकांश खनिज पदार्थों को उत्पन्न करता है। साधारण धातुयें प्रत्येक युग की चट्टानों में मिलती हैं परन्तु अधिकतर खनिज पदार्थ अग्निमय (Igneous) तथा दानेदार (Crystalline) चट्टानों में पाये जाते हैं। जिन चट्टानों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है उनमें खनिज पदार्थ नहीं होते। यही कारण है कि गङ्गवार (Alluvial) मिट्टी के मैदानों में धातुयें बहुत कम मिलती हैं।

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि खनिज सम्पत्ति समाप्त हो जाने वाली है। यह सम्भव है कि भविष्य में खानें खोदने की कला में उन्नति होने तथा कच्ची धातु (Ore) से धातु निकालने में कम व्यय होने के कारण सम्भव है कि अधिक गहराई के खनिज पदार्थों को निकालना लाभदायक हो जावे, किन्तु फिर भी अन्ततः खनिज पदार्थ समाप्त हो जावेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है। अतएव खानों का धंधा अस्थायी है।

खान खोदने के धंधे में खान की गहराई महत्वपूर्ण है। जितनी ही खान गहरी होगी खनिज पदार्थ निकालने का व्यय उतना ही अधिक होगा। अधिक गहराई में गरमी अधिक होने से मज़दूरों को काम करने में कठिनाई होती है तथा हवा पहुँचाने की समस्या कठिन होती जाती है। अभी तक संसार में जितनी भी खाने हैं उनकी गहराई एक मील से अधिक नहीं है। जैसे जैसे खान गहरी होती जाती है गरमी बढ़ती जाती है यहाँ तक कि यदि खान दो मील गहरी हो तो हवा इतनी गरम हो जावेगी कि जितना खौलता हुआ पानी। मनुष्य बहुत देर तक १२०° फै० से अधिक सूखी गरमी तथा १०५° फै० नम गरमी को सहन नहीं कर सकता। खान खोदने के धन्धे में जो कुछ भी पूँजी होती है वह केवल खान के अन्दर रेल डालने तथा ऊपर तक धातु को उठाने के लिए साधन उपलब्ध करने में लगती है। अतएव खान जितनी भी गहरी होगी पूँजी भी उतनी ही अधिक लगानी होगी।

खानों को खोदना उतना कठिन नहीं हैं जितना कि धातु का उन स्थानों तक ले जाना जहाँ कि उनकी माँग है। अतएव खान खोदने का धंधा रेलवे लाइनों के ऊपर बहुत कुछ निर्भर है। पहाड़ी प्रान्तों में रेलों के न होने से बहुत सी खानें व्यर्थ पड़ी हैं। उनका उपयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक कि गमनागमन (Transportation) के साधन वहाँ उपलब्ध न हो जावें।

लोहा Iron

संसार का ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ कि यह धातु न पाई जाती हो। थोड़ी बहुत राशि में लोहा सभी देशों में मिलता है। यदि कच्चे लोहे में अन्य धातुओं की मिलावट कम होती है तथा वह बहुत गहराई पर नहीं होता तो उसको खोद कर निकालना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक होता है। लोहा पृथ्वी के अन्दर बहुत से अन्य खनिज पदार्थों से मिला रहता है। इस कारण उसे गला कर साफ करना पड़ता है। कहीं-कहीं कच्चे लोहे में मिश्रित पदार्थ कम होते हैं और किसी किसी जाति के लोहे में अन्य पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं। जिस लोहे में अन्य प्रकार के पदार्थ कम मात्रा में मिले होते हैं वही अच्छी जाति का लोहा है। लोहा बहुत प्रकार का होता है उसकी निम्नलिखित जातियाँ मुख्य हैं।

(१) मैगनेटाइट (Magnetite) इस जाति का कच्चा लोहा (Ore) देखने में काला होता है। यह लोहा सबसे अच्छा होता है।

(२) हैमेटाइट (Hematite) या स्पैकुलर (Specular) देखने में लाल या भूरा होता है। स्पैथोज़ (Spathose) और ब्लैकबैंड (Black band) भी भूरा होता है। यह लोहा अच्छी जाति का नहीं होता।

हैमेटाइट (Hematite) तथा मैगनेटाइट (Magnetite) लोहे में ६५ से ७० प्रतिशत लोहा रहता है, और ३० से ३५ प्रतिशत तक अन्य पदार्थ रहते हैं। जिस कच्चे लोहे में ४० प्रतिशत भी लोहा हो उसको खोद कर निकालने में लाभ होता है। कच्चे लोहे (Iron ore) में अन्य पदार्थ मिले हुए होते हैं। उनको अलहदा करके शुद्ध लोहा निकाला जाता है। कच्चे लोहे में दो प्रकार की अशुद्धता होती है। एक तो कैलशियम कारबन (Calcium and Carbonate) इत्यादि, जिनसे अधिक हानि नहीं होती क्योंकि उनसे लोहा कमज़ोर नहीं होता। दूसरी प्रकार की अशुद्धियाँ अर्थात् गंधक, फासफोरस (Phosphorus) की मिलावट अधिक हानिकारक होती है क्योंकि उनसे लोहा कमज़ोर हो जाता है। इन हानिकारक पदार्थों को लोहे से अलहदा करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय किए जाते हैं।

लोहे को उत्पन्न करने वाले मुख्य प्रदेश निम्नलिखित हैं :—

(१) संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.) का झील प्रदेश,

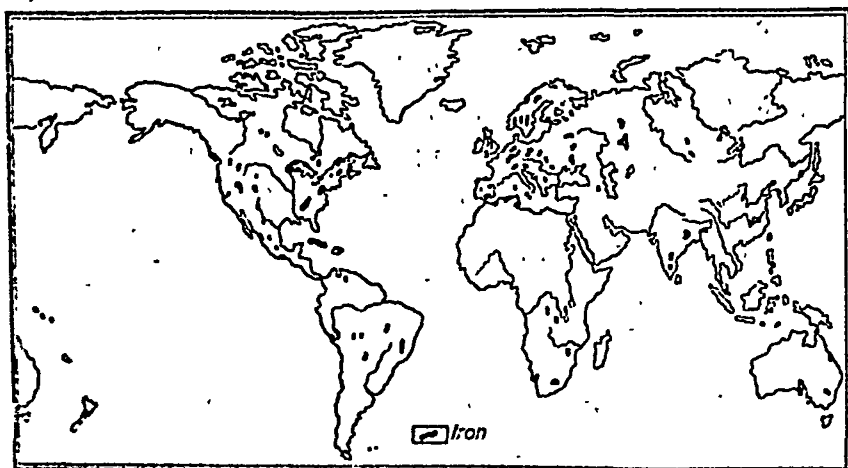
(२) योरोप का उत्तर पश्चिमी प्रदेश, जिसमें स्वीडन (Sweden) और इंङ्गलैंड मुख्य हैं।

(३) पश्चिमी योरोप, जिसमें फ्रांस और स्पेन की खानें हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष, न्यू-फाउन्डलैंड (Newhoundland) और अलजीरिया (Algeria) में भी लोहे की खानें हैं। इनके अतिरिक्त रूस के कुर्सक (Kursk Province) प्रान्त तथा एशियाई प्रदेश में लोहा बहुत अधिक राशि में भरा पड़ा है किन्तु अभी तक उसको निकाला नहीं गया था।

पिछले युद्ध के समय में सोवियत रूस ने अपने लौह क्षेत्र की बहुत उन्नति की क्योंकि लोहे की बहुत आवश्यकता थी। पहले केवल दक्षिण यूराल तथा डानेटज़ बेसिन (Donetz Basin) में लोहा निकाला जाता था किन्तु अब बहुत से लौह प्रदेशों की उन्नति की गई है और वहां से लोहा निकाला जाता है। रूस के मुख्य लौह प्रदेश नीचे लिखे हैं :—

१. कुर्स्क प्रान्त (Kursk) में
२. दक्षिण यूराल (Southern Urals)
३. कुज़बास (Kuzbas) प्रदेश में तैलवेस (Telbes) में
४. मुरमंस्क प्रायद्वीप (Murmansk Peninsula)
५. यूराल में मैगनेट पहाड़ियाँ
६. यूक्रेन में क्रिवोई राग (Krivoi-Rog) में

ऐसा अनुमान किया जाता है कि ब्राज़ील में लोहा अनन्त राशि में भरा हुआ है किन्तु अभी तक खोदने की वहाँ उन्नति नहीं हुई है।



संसार के अनुमानित लोहे का २३ प्रतिशत ब्राज़ील (Brazil) में, १६·५ प्रतिशत संयुक्तराज्य अमेरिका में, १६·३३ प्रतिशत फ्रांस में, ११·१६ प्रतिशत न्यू फाऊन्डलैंड (Newfoundland) में, ६·६७ प्रतिशत क्यूबा में, तथा शेष २० प्रतिशत अन्य देशों में पाया जाता है। इसमें रूस के कुर्स्क प्रान्त (Kursk) तथा एशियाई रूस के लोहे को सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि उसके सम्बंध में अभी तक ठीक-ठीक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

इस समय संसार में जो लोहा उत्पन्न होता है उसका लगभग ४२ प्रतिशत संयुक्तराज्य अमेरिका उत्पन्न करता है। फ्रांस २१ प्रतिशत, ब्रिटेन ७ प्रतिशत, स्वीडन ५ प्रतिशत, लक्सबर्ग जर्मनी ४ प्रतिशत, स्पेन २ प्रतिशत, रूस २·५ प्रतिशत, भारतवर्ष १ प्रतिशत।

संसार में संयुक्तराज्य अमेरिका सबसे अधिक लोहा उत्पन्न करता है। सुपीरियर झील (Superior Lake) के निकटवर्ती प्रदेश में सबसे अधिक लोहा पाया जाता है। सुपीरियर झील (Superior Lake) प्रदेश के अन्तर्गत मिचिगन (Michigan) मिनीसोटा (Minnesota) तथा उत्तर विस्कान्सिन (Wisconsin) की रियासतें हैं। इनके अतिरिक्त दक्षिण अपलेशियन (Appalachians) रियासतों—विशेषकर अल्बामा (Albama) में भी लोहा निकलता है। संयुक्तराज्य अमेरिका में जितना लोहा निकलता है उसका लगभग ८५ प्रतिशत सुपीरियर झील (Superior Lake) के प्रदेश से निकलता है।

सुपीरियर झील (Superior Lake) का प्रदेश संसार में लोहा उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

इस प्रदेश की खानों में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है और इस कच्चे लोहे (Iron ore) में शुद्ध लोहे का अंश बहुत अधिक है। कच्चा लोहा इस प्रदेश में धरातल के ऊपरी सतह के इतने पास है कि लोहा निकालने में व्यय बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त इन झीलों से मिलने वाली नदियों ने जो एक अद्भुत जलमार्ग प्रस्तुत कर दिया है उसके द्वारा कच्चा लोहा बड़ी आसानी और कम खर्च से दूर तक भेजा जा सकता है। लोहे की खानों के समीप तक अनेकों रेलवे लाइनें डाल दी गई हैं जिसका परिणाम होता है कि लोहे को बड़ी आसानी और कम खर्च से इच्छित औद्योगिक स्थानों पर भेजा जा सकता है। वास्तविक बात तो यह है कि गमनागमन (Transportation) की सुविधा के कारण ही संयुक्तराज्य

अमेरिका का यह खनिज प्रदेश इतना प्रसिद्ध है। यदि मार्गों की इतनी सुविधा न होती तो लोहे के धंधे की उन्नति इतनी शीघ्रता पूर्वक नहीं हो पाती।

लारेन (Lorraine) का लौह प्रदेश

लारेन (Lorraine) प्रदेश की खानें सुपीरियर झील के लौह प्रदेश को छोड़कर सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। लारेन की लोहे की खानें फ्रांस और जर्मनी की सीमा पर स्थित हैं। पिछले योरोपीय महायुद्ध के फल स्वरूप लारेन की लोहे की खानें जर्मनी से फ्रांस ने छीन ली थीं। अब वे फिर जर्मनी के अधिकार में पहुँच गई हैं। उत्तर में लारेन (Lorraine) का प्रदेश लक्सम्बर्ग (Luxemberg) तथा बैलजियम तक फैला हुआ है। यह लौह प्रदेश एक समतल धरातल में फैला हुआ है जिसकी मोटाई ६० से १२० फीट तक है। यह लोहे की मोटी सतह भूमि के अन्दर ३०० से ७५० फीट की गहराई पर पाई जाती है। यद्यपि लारेन (Lorraine) की खानों से निकले हुये कच्चे लोहे (Iron ore) में केवल ४० या ४२ प्रतिशत ही शुद्ध लोहा निकलता है परन्तु लोहा अच्छी जाति का होने के कारण व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस लोहे में फासफोरस (Phosphorus) का अंश अधिक है। इस कारण इस लोहे से बने हुये पिग आयरन (Pig Iron) का उपयोग बेसिक स्टील (Basic Steel) बनाने में अधिक होता है।

ब्रिटेन की लोहे की खानें यार्कशायर (Yorkshire) से डारसेट (Dorset) तक फैली हुई चौड़ी भूमि में स्थित हैं। क्लीवलड (Cleveland) के प्रदेश में सबसे अधिक खानें हैं और ब्रिटेन का अधिकांश लोहा यहीं से निकलता है। ब्रिटेन का लोहा लारेन की खानों जैसा ही है और कच्चे लोहे में शुद्ध लोहा २७ प्रतिशत के लगभग ही निकलता है। फिर भी यह खानें खोदी जाती हैं।

स्पेन लोहे की उत्पत्ति की दृष्टि से योरोप में एक विशेष स्थान रखता है। यहां की खानों से निकला हुआ लोहा बहुत बढ़िया होता है। यही नहीं कच्चे लोहे में शुद्ध लोहा भी बहुत अधिक (६० प्रतिशत) निकलता है। जर्मनी और इङ्गलैंड बहुत कुछ स्पेन के लोहे पर ही निर्भर हैं। लोहा बहुत कम गहराई पर मिलता है इस कारण खानों में से खोद कर निकालने में अधिक व्यय नहीं होता। किन्तु खानों के पहाड़ी प्रदेश में होने के कारण उसको खानों से बंदरगाहों तक ले जाने में कठिनाई होती है और व्यय बहुत अधिक होता है। छोटी-छोटी रेलवे लाइनों तथा ऊँचे तार पर चलने वाले खटोलों से लोहा खानों से अभीष्ट स्थान पर पहुंचाया जाता है।

स्पेन का कनटैब्रियन (Cantabrian) प्रदेश जिसमें विज़काया (Vizcaya) सैनटन्डर (Santandar) और ओविडो (Oviedo) प्रान्त है, स्पेन का लगभग दो तिहाई लोहा उत्पन्न करता है। दक्षिण में ज़िराल्टर के पूर्व में जो लोहे की खानें हैं वे भी महत्त्वपूर्ण हैं।

स्वीडन (Sweden) भी लोहा उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य है। स्वीडन की खानें दो प्रदेशों में पाई जाती हैं। एक तो उत्तर के लैपलैंड (Lapland) प्रदेश में और दूसरी दक्षिण में स्टाकहाम के समीपवर्ती प्रदेश में। उत्तर की खानों में अनन्त राशि में बहुत बढ़िया लोहा भरा पड़ा है। यही नहीं कि लोहा बहुत उत्तम जाति का है, साथ ही कच्चे लोहे में ६० प्रतिशत से भी अधिक शुद्ध लोहा निकलता है। उत्तर की खानें बहुत कम गहरी हैं इस कारण लोहा निकालने में अधिक व्यय भी नहीं होता। लैपलैंड से निकलने वाले लोहे में फासफोरस (Phosphorus) का अंश अधिक होता है। स्टाकहाम (Stockholm) के समीप वाली खानों में उत्तर की तुलना में लोहा कम है, किन्तु इन खानों से निकलने वाले लोहे में फासफोरस तथा गंधक का अंश कम है। स्वीडन का अधिकांश लोहा रूर (Ruhr) के कारखानों में खपता और थोड़ा सा इङ्गलैंड को भेजा जाता है।

तांबा (Copper)

लोहा को छोड़कर तांबा (Copper) ही सबसे अधिक उपयोगी धातु है। मानव समाज इस धातु का उपयोग ऐतिहासिक काल के पूर्व से करता आया है। जब तांबे को जस्ता (Zinc) के साथ मिला देते हैं तो वह पीतल बन जाता है। तांबे को टिन (Tin) के अथवा ऐल्यूमीनियम (Aluminium) के साथ मिलाने से कांसा (Bronze) बनाया जाता है, और तांबे का निकल (Nickel) के साथ सम्मिश्रण करने से जर्मन सिल्वर बनता है। तांबे का उपयोग बिजली की करंट को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले तार (Wire) बनाने में बहुत अधिक होता है। जैसे जैसे बिजली का उपयोग बढ़ता जा रहा है वैसे ही वैसे तांबे की मांग अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक तांबा उत्पन्न करता है। संसार की सम्पूर्ण उत्पत्ति का आधे से अधिक केवल संयुक्तराज्य अमेरिका में ही उत्पन्न होता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में तांबा अधिकतर राकी (Rocky) पर्वती प्रदेश में पाया जाता है। ऐरिज़ोना (Arizona) मौनटाना (Montana)

न्यू मैक्सिको (New Mexico) और नवाडा (Nevada) रियासतें अधिकांश ताँबा उत्पन्न करती हैं। इनके अतिरिक्त मिचिगन (Michigan) की खानों से बहुत ताँबा निकलता है। संयुक्तराज्य अमेरिका के उपरान्त मैक्सिको (Mexico) सबसे अधिक ताँबा उत्पन्न करता है। यद्यपि संयुक्तराज्य अमेरिका की तुलना में वह बहुत कम होता है। इनके अतिरिक्त जापान, चाइल (Chile) पीरू (Peru) स्पेन, आस्ट्रेलिया, बैलजियन-कोंगो (Belgian Congo), कनाडा, रूस, न्यूफाउन्डलैंड (New-foundland) जर्मनी, चैको-स्लावाकिया, दक्षिण अफ्रीका तथा क्यूबा (Cuba) ताँबा उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं। अलास्का (Alaska) तथा यूनान (Yunan) में ताँबा अधिक पाया जाता है किन्तु अभी उसे खोदने का प्रयत्न नहीं किया गया। योरोप के देशों को ताँबे की बहुत आवश्यकता रहती है क्योंकि योरोप में ताँबा बहुत कम उत्पन्न होता है। संयुक्तराज्य अमेरिका पक्का ताँबा (Manufactured) तथा बैलिजयन कोंगो कच्चा ताँबा विदेशों को सबसे अधिक भेजते हैं। ताँबा मंगाने वाले देशों में ब्रिटेन और जर्मनी प्रमुख हैं। आधे से अधिक ताँबा बिजली के तार बनाने में खप जाता है। शेष सिक्का बनाने, अन्य धातुओं में मिलाने, यंत्रों के बनाने, तथा मोटरकार तैयार करने के काम में आता है।

संसार में ताँबे की उत्पत्ति

(Copper Production in the World)

देश	संसार की कुल उत्पत्ति प्रतिशत
संयुक्तराज्य अमेरिका	२८·८%
चिली (Chile)	१७·३%
रोडेशिया (Rhodesia)	११.४%
कनाडा	११·३%
बैलजियन कांगो	५·६%
सोवियत रूस	४·७%
जापान	४ ५%
मैक्सिको	२%
पेरू (Peru)	१·७%
स्पेन	१·३%
अन्य सब देश	११·१%

टिन (Tin)

टिन मुलायम धातु है, इस कारण कठोर वस्तुओं के बनाने में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। यह धातु लोहे की पतली चादरों पर चढ़ाने तथा मोटरकार बनाने के काम में आती है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग अन्य धातुओं से मिश्रण करने में भी होता है। टिन का उपयोग पेंट तैयार करने में भी होता है। अधिकतर टिन धातु के बड़े-बड़े ढेलों अथवा छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में धरातल की ऊपरी सतह के समीप ही मिलता है। इस कारण अधिकतर टिन को निकालने में खानों को नहीं खोदना पड़ता वरन् ऊपर से ही खोद कर धातु निकाल ली जाती है।

संसार में सबसे अधिक टिन मलाया प्रायद्वीप में निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त स्याम (Siam), चीन, पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) के बैंका (Banca) तथा बिलटन (Billiton) द्वीपों में, तथा बोलीविया (Bolivia) में भी बहुत टिन निकलता है। इसके अतिरिक्त नायगेरिया (Nigeria), बर्मा, इङ्गलैंड की कार्नवाल (Cornwall) की खानें, आस्ट्रेलिया में क्वींसलैंड, न्यू साऊथवेल्स, तथा टसमानिया से भी टिन निकलता है। मलाया प्रायद्वीप (Malaya Peninsula) को छोड़ कर बोलीविया में सबसे अधिक टिन निकलता है। इन्हीं दो प्रदेशों से टिन विदेशों को भेजा जाता है। पेनॉंग (Penang) तथा सिंगापूर (Singapore) के बन्दरगाह से ही अधिकांश टिन भेजा जाता है। टिन मँगाने वालों में संयुक्तराज्य अमेरिका U. S. A, ब्रिटेन तथा योरोपीय देश मुख्य हैं। संसार की टिन की सम्पूर्ण उत्पत्ति का लगभग आधा संयुक्तराज्य अमेरिका को जाता है, क्योंकि वहाँ मोटरकार बनाने का धंधा बहुत उन्नत दशा में है और उसमें टिन का उपयोग होता है।

संसार में टिन की उत्पत्ति

मलाया स्टेट	६४.००० टन
डच पूर्वीय द्वीप समूह	३५,००० ,,
बोलीविया	२८,००० ,,
स्याम (थाईलैंड)	१६,००० ,,
चीन	१०,००० ,,
नाइगेरिया	१०,००० ,,
बैलजियन कांगो	८,००० ,,
अन्य दूसरे देश	१६,५०० ,,

जस्ता (Zinc) जस्ता को लोहे ताँबे तथा सीसे (Lead) से मिलाकर बहुत सी वस्तुयें बनाई जाती हैं। जस्ता लोहे तथा तार पर चढ़ाया जाता है जिससे उन पर जंग न चढ़े। रबर बनाने में जस्ते का उपयोग अनिवार्य है, इसको पेंट बनाने में भी काम में लाते हैं। जस्ता की उत्पत्ति अधिकतर संयुक्त राज्य अमेरिका के मिसौरी (Missouri) कन्सास (Kansas) आक्लोहामा (Oklohama) और मानटान (Montana) रियासतों में, जर्मनी के सिलीशिया (Silesia) प्रान्त में तथा आस्ट्रेलिया (Australia) की न्यू साउथवेल्स (New South Wales) तथा टसमानिया (Tasmania) राज्यों में होती है। इनके अतिरिक्त थोड़ा सा जस्ता कनाडा, बैलजियम, रोडेशिया (Rhodesia) तथा स्पेन में भी निकाला जाता है। किन्तु अधिकतर जस्ता संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी तथा आस्ट्रेलिया से ही बाहर भेजा जाता है।

सीसा (Lead) सीसा के साथ चाँदी भी निकलती है। यह धातु मुलायम होने के कारण थोड़ी गरमी से ही पिघल जाती है। वायु और जल का इस पर प्रभाव नहीं पड़ता, यही कारण है कि इसका अधिक उपयोग पाइप तथा छत्तों के लगाने में होता है। सीसा जलाकर वार्निश बनाने के काम आता है। टिन और सीसा मिल कर जो धातु तैयार होती है उसका उपयोग भिन्न-भिन्न औद्योगिक पदार्थों के तैयार करने में होता है।

संसार में संयुक्तराज्य अमेरिका सबसे अधिक सीसा उत्पन्न करता है। संसार की सम्पूर्ण उत्पत्ति का ४० प्रतिशत यहाँ की खानों से ही निकलता है। संयुक्तराज्य अमेरिका की इडाहो (Idaho) मिसौरी (Missouri) उटाहा (Utaha) तथा कालोरैडो (Colorado) रियासतों में बहुत अधिक सीसा (Lead) उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त स्पेन, जर्मनी, मैक्सिको, ग्रीस तथा आस्ट्रेलिया की ब्रोकिन हिल (Broken Hill) नामक पर्वतीय प्रदेश में भी इसकी बहुत सी खानें हैं। कुछ सीसा बर्मा, कनाडा, तथा ब्रिटेन में भी निकलता है।

एलूमीनियम (Aluminium) यह संसार की मुख्य धातुओं में सबसे बाद को प्राप्त हुआ। इस धातु की विशेषता यह है कि बहुत मज़बूत और टिकाऊ होने पर भी यह बहुत ही हल्का है। इसमें जंग शीघ्र ही नहीं लगता। बिजली के तार के लिए तो यह ताँबे से भी अधिक उपयोगी है। एलूमीनियम का बर्तनों के अतिरिक्त हवाई जहाज़ बनाने में भी बहुत उपयोग होता है।

एलूमीनियम साधारण मिट्टी में भी अच्छी राशि में मिलती है, किन्तु इस धातु को निकालना बहुत कठिन है, क्योंकि इसे शुद्ध करने में बहुत अधिक व्यय होता है। बिजली की शक्ति से भट्टियों में एलूमीनियम तैयार किया जाता है। इस कारण उन देशों में जहाँ जल द्वारा बिजली कम खर्चे से उत्पन्न की जा सकती है वहाँ इस धातु को शुद्ध करने का धंधा सरलता पूर्वक पनप सकता है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि एलूमीनियम प्रत्येक प्रकार की मिट्टी में मिलता है। किन्तु बाक्साइट (Bauxite) में इसका अधिक अंश होता है। अतएव अधिकतर बाक्साइट (Bauxite) से ही एलूमीनियम तैयार किया जाता है। बाक्साइट (Bauxite) को शुद्ध करके पिघले हुए क्रायोलाइट (Cryolite) में मिलाते हैं और तब उसको बिजली की भट्टियों में गलाया जाता है। इस क्रिया के परिणाम स्वरूप एलूमीनियम नीचे बैठ जाता है और उसको निकाल लिया जाता है। क्रायोलाइट (Cryolite) ग्रीनलैंड (Greenland) के दक्षिण पश्चिम भाग में पाया जाता है किन्तु बाक्साइट (Bauxite) अमेरिका तथा योरोप में बहुत से स्थानों पर मिलता है। संयुक्तराज्य की अरकांसास (Arkansas), ज्यार्जिया (Georgia) और अलबामा (Albama) रियासतों में, उत्तरी आइसलैंड, फ्रांस जर्मनी, इटली तथा गायना (Guinea) में बाक्साइट निकाला जाता है। सब बाक्साइट केवल एलूमीनियम के बनाने के उपयोग में ही नहीं आता वरन् अन्य धंधों में भी उसका उपयोग होता है। किन्तु संसार की तीन चौथाई उत्पत्ति एलूमीनियम बनाने में ही व्यय हो जाती है।

बाक्साइट (Bauxite) की उत्पत्ति

टनों में

फ्रांस	७२५,०००
हंगरी	४८०,१००
सुरीनाम	४२५,०००
इटली	४००,०००
ब्रिटिश गायना	३६०,०००
संयुक्त राज्य अमेरिका	३६०,०००
यूगोस्लाविया	३१०,०००
सोवियत रूस	२५०,०००
डच पूर्वी द्वीप समूह	२२५,०००

लड़ाई के पूर्व जर्मनी ने एलूमीनियम के धन्धे की बहुत उन्नति की और वह संसार में सबसे अधिक एलूमीनियम तैयार करने लगा था। १९४० में एलूमीनियम की उत्पत्ति इस प्रकार थी :—

जर्मनी	१६४,०००	टन
संयुक्तराज्य अमेरिका	१३८,०००	टन
कनाडा	६०,०००	टन
सोवियत रूस	४३,०००	टन
फ्रांस	४१,०००	टन
इटली	२४,०००	टन
स्वीटज़रलैंड	२३,०००	टन
ब्रिटेन	२१,०००	टन

मैंगनीज़ (Manganese)

मैंगनीज़ का महत्व पिछले कुछ वर्षों से बहुत अधिक बढ़ गया है। इसका उपयोग स्टील (स्पात) को कठोर बनाने में होता है। इसके अतिरिक्त चीनी के बर्तनों को रंगने के लिए, शीशे पर से पीले धब्बे छुटाने के लिये, तथा बिजली के काम में भी इसका उपयोग होता है। मैगनीज़ से बने हुए स्टील में चुम्बकीय शक्ति नहीं होती इस कारण इसका उपयोग जहाज़ों के बनाने में बहुत होता है।

१९१४—१८ के योरोपीय महायुद्ध के पूर्व रूस संसार में सबसे अधिक मैंगनीज़ उत्पन्न करता था, किन्तु युद्ध के उपरान्त रूस की उत्पत्ति बहुत घट गई थी। अब फिर सोवियट रूस ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं (Five-Year plans) के फल स्वरूप पुरानी स्थिति को प्राप्त कर लिया है। संसार की समस्त उत्पत्ति का लगभग ३५ प्रतिशत सोवियट रूस के काकेशस (Caucasia) प्रान्त से निकाला जाता है। सोवियट रूस के उपरान्त भारतवर्ष मैंगनीज उत्पन्न करने वालों में प्रमुख है। भारतवर्ष संसार की सम्पूर्ण उत्पत्ति का ३० प्रतिशत के लगभग मैंगनीज़ उत्पन्न करता है। यही नहीं कि भारतवर्ष मैंगनीज़ उत्पन्न करने वालों में प्रमुख है वरन् यहाँ का मैंगनीज़ बहुत अच्छी जाति का होता है। कच्चे मैंगनीज़ (Manganese ore) में ५० प्रतिशत से भी अधिक शुद्ध मैंगनीज़ निकलता है। भारतवर्ष में मध्यप्रान्त अधिकांश मैंगनीज़ उत्पन्न करता है। गोल्ड-कोस्ट (Gold Coast) ब्राज़ील, और ईजिप्ट (Egypt) में भी मैंगनीज़ अधिक निकलता है। इन प्रमुख उत्पादकों के अतिरिक्त संयुक्तराज्य अमेरिका, चीन, तथा स्वीडन में भी थोड़ा सा मैंगनीज़ निकलता है। मैंगनीज़ बाहर भेजने

वालों में भारतवर्ष, रूस, गोल्डकोस्ट (Gold-Coast) और ब्राज़ील मुख्य हैं। मैंगनीज़ मंगाने वालों में क्रमशः फ्रांस, संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी, बैल्जियम, ब्रिटेन तथा नार्वे मुख्य हैं।

टंगस्टन (Tungsten) यह धातु कभी अलहदा नहीं निकलती। अधिकतर यह वोलफ्रम (Wolfram) स्क्यूलाइट (Schulite) के साथ मिलती है। यह बढ़िया स्टील (High Speed steel) बनाने के लिए एक नितान्त आवश्यक पदार्थ है। बर्मा, पोर्तुगाल, संयुक्तराज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया (न्यू साऊथवेल्स, विक्टोरिया, क्वीन्सलैंड, तथा टसमानिया) कनाडा, चीन, तथा कार्नवाल (Cornwall) में यह बहुत निकाला जाता है।

निकल (Nickel) निकल स्टील को कठोर बनाने, अन्य धातुओं के साथ मिलाने, तथा अन्य धातुओं पर निकल प्लेटिंग करने के काम में आता है। अधिकतर निकल ओनटैरियो (Ontario) न्यू कैलीडोनिया, नार्वे, टसमानिया (Tasmania) दक्षिण अफ्रीका, ईजिप्ट (Egypt) तथा न्यू-फाऊंडलैंड (Newfoundland) की खानों से निकलता है।

क्रोमियम (Chromium) क्रोमियम अधिकतर क्रोम आयरनस्टोन (Chrome Iron Stone) से निकाला जाता है। इसका उपयोग भी स्टील को कठोर बनाने में होता है। यह अधिकतर टर्की, नार्वे, सिलीशिया (Silesia) फ्रांस, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा न्यू-साउथ वेल्स (New South Wales) में पाया जाता है।

पारा (Mercury) पारा ही एक ऐसी धातु है जो कि साधारण तापक्रम (Temperature) पर पिघली हुई रहती है। पारा अन्य धातुओं से जल्दी ही मिल जाता है इस कारण पिसी हुई चट्टानों में से सोना तथा चाँदी निकालने के काम में पहले यह बहुत आता था, किन्तु अब नवीन रीतियों से काम लिया है जिनमें पारे का उपयोग नहीं होता। अब इसका उपयोग वैज्ञानिक यंत्र बनाने में ही होता है। इस धातु का मूल्य अधिक है इस कारण जिस कच्चे पारे में शुद्ध पारा अधिक नहीं निकलता उससे भी धातु का निकालना लाभदायक है। पहले स्पेन के अलमैडन (Almaden) प्रान्त में सबसे अधिक पारा निकलता था, किन्तु अब कैलीफोर्निया (California) में बहुत पारा निकाला जाता है। स्पेन और संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त रूस,

मैक्सिको, इटली, पीरू, जापान, चीन और बोलीविया (Bolivia) में भी पारा निकाला जाता है।

यह धातु संसार में बहुत कम पाई जाती है। इस धातु की विशेषता यह है कि यह कठोर होती है। वायु, गरमी तथा तेज़ाब का इस पर कोई असर नहीं होता। इस कारण इस धातु का उपयोग वैज्ञानिक कार्यों में होता है तथा आभूषण बनाने में भी इसका उपयोग होने लगा है। यह मुख्यतः रूस के यूराल पर्वतीय प्रदेश में, कोलम्बिया (Columbia), साइबेरिया, कनाडा और संयुक्तराज्य अमेरिका की कैलीफोर्निया (California) तथा आरीगान (Oregon) रियासतों से निकाला जाता है।

प्लैटिनम (Platinum)

चाँदी बहुत प्रकार की कच्ची धातुओं में पाई जाती है। लगभग तमाम सीसे (Lead) तथा ताँबे (Copper) की कच्ची धातु में चाँदी रहती है। चाँदी और सोना ही ऐसी धातुयें हैं जो देखने में सुन्दर, मज़बूत तथा कभी ज़ंग न लगने वाली हैं। साथ ही इन धातुओं को गलाकर आसानी से जिस रूप में चाहें ढाल सकते हैं। यही कारण है कि इन धातुओं का उपयोग आभूषण तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों के बनाने में होता है। चाँदी का उपयोग सिक्के बनाने तथा बर्तन बनाने में भी होता है। चाँदी पिसी हुई चट्टानों से बड़ी आसानी से निकाली जा सकती है।

चांदी (Silver)

मैक्सिको (Mexico) संसार में सबसे अधिक चाँदी निकालता है। इसके उपरान्त संयुक्त-राज्य अमेरिका की गणना होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा मैक्सिको मिलकर संसार की ७० प्रतिशत चाँदी उत्पन्न करते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका के राकी (Rocky) पर्वतीय प्रदेश में चाँदी की बहुत खानें हैं। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया (ब्रोकिन हिल Broken Hill), कनाडा के आंटैरियो (Ontario) ब्रिटिश कोलम्बिया (Br. Columbia) पीरू (Peru) बोलीविया (Bolivia), बर्मा, जर्मनी, स्पेन और जापान में भी चाँदी की खानें हैं।

सोना (Gold)

सोना थोड़ा बहुत प्रत्येक देश में पाया जाता है। किन्तु ऐसे देश बहुत कम हैं जहाँ कि धातु अधिक राशि में निकलती हो। सोना बहुत प्राचीन काल से उपयोग में लाया जा रहा है। आभूषण, सिक्कों तथा बहुमूल्य पदार्थों के बनाने में इसका उपयोग होता है। जिन प्रदेशों में सोना चट्टानों में मिला नहीं रहता अर्थात् अलहदा मिलता है वहाँ इस धातु का निकालना सहल होता है,

परन्तु जहाँ चट्टानों को तोड़ कर भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा सोना निकाला जाता है वहाँ बहुत परिश्रम तथा पूंजी की आवश्यकता होती है। सोना बहुत मुलायम होता है। देखने में सुन्दर और जल तथा वायु के प्रभाव से खराब न होने वाली यह धातु अत्यन्त मूल्यवान है। यही कारण है कि संसार में ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जहाँ सोना पाया जाता हो और मनुष्य वहाँ न पहुँचा हो। अलास्का (Alaska) तथा सायबेरिया (Sibaria) जैसे ठंडे प्रदेशों में भी सोने की खानों के समीप नगर बस गये। सोने को कठोर बनाने के लिए इसमें ताँबा मिलाया जाता है।

अफ़्रीका का ट्रांसवाल (Transwaal) प्रान्त संसार का आधे से अधिक सोना उत्पन्न करता है। जोहन्सबर्ग (Johannesburg) इसका खनिज केन्द्र है। ट्रांसवाल के समीप ही रोडेशिया की खानें हैं जहाँ से बहुत सोना निकाला जाता है। ट्रांसवाल के उपरान्त संयुक्तराज्य अमेरिका की गणना होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका की अलास्का (Alaska) कैलीफोर्निया (California) कालेरैडो (Calerado) नवाडा (Navada) डकोटा (Dakota) मानटाना (Montana) ऐरीज़ोना (Arizona) और उटाहा (Utaha) रियासतों में सोना बहुत निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त कनाडा, मैक्सिको, आस्ट्रेलिया, भारतवर्ष, जापान, न्यूज़ीलैंड, गोल्डकोस्ट (Gold Coast) ब्रिटिश गायना (Br. Guiana) रूस और रूमानिया में भी सोना निकाला जाता है। दक्षिण अमेरिका के कोलम्बिया (Columbia) पीरु (Peru) बोलिविया (Bolivia) तथा वेनेजुला (Venezu'a) में भी कुछ सोने की खानें हैं।

नमक (Salt)

नमक बहुत देशों में निकाला जाता है. किन्तु उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International commerce) में अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। नमक या तो चट्टानों के रूप में अथवा झीलों में तथा दानेदार जमाव के रूप में मिलता है। अधिकांश नमक संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.) ब्रिटेन, भारतवर्ष, जर्मनी, रूस, फ्रांस, स्पेन, इटली, चाइल (Chile) पीरू (Peru) और पोर्तुगाल में तैयार किया जाता है।

गंधक (Sulphur)

जिन देशों में ज्वालामुखी पर्वतों के फूटने से निकाला हुआ लावा तथा अन्य पिघले हुए पदार्थ चट्टानों के रूप में जम गए हैं, वहीं पर अधिकतर गंधक पाई जाती है। गंधक बारुद बनाने, तेज़ाब तैयार करने, तथा अन्य वैज्ञानिक कार्यों में काम आती है। संयुक्तराज्य अमेरिका की लूज़ियाना (Louisiana)

उटाह (Utah) तथा वयोमिंग (Wyoming) तथा टैक्सास रियासतों में, सिसली (Sicily) जापान, इटली, आइसलैंड (Iceland) तथा न्यूज़ीलैंड में बहुत गंधक पाई जाती है। कच्ची गंधक में लगभग २५ प्रतिशत शुद्ध गंधक निकलती है। जापान और मैक्सिको में भी गंधक निकाला जाती है।

गंधक के उपयोग

गंधक का उपयोग गंधक का तेजाब (Sulphuric acid) तथा कागज बनाने में बहुत होता है। बिना गंधक के यह बन ही नहीं सकते। यह दियासलाई, बारूद बनाने, दवाओं के लिए तथा रबर को मज़बूत बनाने के काम में बहुत आती है।

गंधक की कुल उत्पत्ति लगभग ३० लाख टन वार्षिक है। जिसमें ८० प्रतिशत संयुक्तराज्य अमेरिका उत्पन्न करता है १० या १२ प्रतिशत इटली उत्पन्न करता है। इनके अतिरिक्त जापान, स्पेन और चिली (Chile) ही ऐसे देश हैं जहाँ गंधक उल्लेखनीय है।

असफाल्ट (Asfa't)

यह काला या भूरे रंग का लगभग ठोस पदार्थ होता है। यह पैट्रोलियम के समान बहुत गाढ़ा हो जाने से जम जाता है। इसका अधिकतर उपयोग सड़कों पर डालने के लिए होता है किन्तु इसको छत बनाने तथा वाटर प्रूफ (Water-proof) तैयार करने में भी काम में लाते हैं। यह मुख्यतः स्वीटज़रलैंड, बारबैडास (Barbados) ट्रीनीडाड (जिसमें प्रसिद्ध पिच झील) (Pitch lake) असफाल्ट से भरी हुई है वैनीज़ुला (Venezula) की बरमुडेज़ (Bermudez) झील; कैलीफोर्निया तथा क्यूबा (Cuba) में निकाला जाता है।

शोरा (Nitrate)

शोरा बहुत उपयोगी वस्तु है। बारूद बनाने में तथा खेतों में खाद के रूप में डालने के लिए इसका बहुत उपयोग होता है। चाइल में प्रकृति ने बहुत सा शोरा जमा कर दिया है। इस कारण चाइल (Chile) ही संसार को शोरा भेजता है। पिछले महायुद्ध के समय से शोरे की माँग बहुत बढ़ गई थी। अब जर्मनी और नार्वे में वैज्ञानिक रीतियों द्वारा शोरा (Nitrate) तैयार किया जाने लगा है।

मिट्टी शीशा बनाने का रेत तथा चीनी मिट्टी

संसार में प्रत्येक देश के अन्दर मिट्टी द्वारा बहुत सी वस्तुओं को तैयार किया जाता है। मिट्टी के बर्तन, पाइप, ईंटें तथा खपड़ैल सभी देशों में मिट्टी से ही तैयार होती हैं। यह धन्धा केवल उन्हीं स्थानों पर चल सकता है जहाँ कि इन वस्तुओं की माँग हो, क्योंकि दूर तक भेजने

में एक तो इनके टूटने का डर रहता है दूसरे व्यय बहुत होता है इस कारण यह धन्धा बड़े-बड़े नगरों के समीप ही पनप सकता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका की सभी रियासतों में मिट्टी के द्वारा खपड़ैल तथा पाइप बनाने के बड़े-बड़े कारखाने हैं। जर्मनी में चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने का धन्धा बहुत उन्नत अवस्था में है। फ़्रांस और ब्रिटेन में भी चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के कारख़ाने (Pottery Works) बहुत हैं और यह तीनों देश संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों को चीनी मिट्टी के बर्तन भेजते हैं। इनके अतिरिक्त योरोप में बोहेमिया तथा चैकोस्लावाकिया (Czechoslovakia) में भी चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के बहुत से कारख़ाने हैं।

एशिया में जापान में यह धन्धा बहुत उन्नत अवस्था में है। चीन और भारतवर्ष में भी चीनी मिट्टी के बर्तन बनते हैं।

शीशा (Glass)

शीशा एक प्रकार के रेत से तैयार किया जाता है रेत को गला कर तथा उसमें अन्य पदार्थों को मिलाने से शीशा तैयार होता है। शीशे की वस्तुयें बनाने में संयुक्तराज्य अमेरिका अन्य देशों से बढ़ा हुआ है। विशेषकर पिट्स्बर्ग (Pictsburg) पेन्सिलवेनिया (Pennsylvania) तथा ओहियो (Ohio) तो इस धन्धे के मुख्य केन्द्र है। योरोप में जर्मनी में यह अन्य देशों से अधिक उन्नत अवस्था में है। सैक्सनी (Saxony) और सिलीशिया (Silesia) में इस धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं। फ़्रांस, इङ्गलैंड, बैलजियम तथा चेकोस्लावाकिया (Czechoslovakia) में भी शीशे का धन्धा अच्छी अवस्था में है। पिछले बीस वर्षों में जापान ने भी शीशे के धन्धे में विशेष उन्नति कर ली है। ऊपर दिये हुए देशों से संसार के अन्य देशों को शीशे का बहुत अधिक सामान भेजा जाता है।

बहुमूल्य पत्थर (Precious Stones)

बहुमूल्य पत्थर जहाँ भी पाये जाते वहाँ उनको निकालने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि उनका मूल्य बहुत होता है। हीरा (Diamond) दक्षिण अफ्रीका की किम्बरले (Kimberley) की खानों से निकलता है। किम्बरले की खानें इस समय संसार की उत्पत्ति का अधिकांश भाग उत्पन्न करती हैं। किम्बरले की खानों में हीरे सुस ज्वालामुखी पहाड़ों के पाइप में, नीली चट्टानों तथा मिट्टी में मिलते हैं और इसी कारण उनको निकालने में बहुत श्रम तथा पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ब्राज़ील, ब्रिटिश गायना, और न्यू-साऊथ वेल्स तथा

भारतवर्ष में भी हीरे निकलते हैं। लाल (Ruby & Sapphire) देखने में बहुत सुन्दर तथा कम होने के कारण अधिक मूल्यवान होते हैं। लाल (Ruby) अधिकतर सीलौन, वर्मा और स्याम में निकाला जाता है। अपर वर्मा में मैगाक (Magok) इस धंधे का प्रधान केन्द्र है। एमेरेल्ड (Emeralds), कोलम्बिया (Columbia), सायवेरिया, और न्यू साऊथ वेल्स में मिलते हैं। टोपाज़ (Topazes) ब्राज़ील और रूस के यूराल पर्वतीय प्रदेश में मिलते हैं।

Tourmalines सीलौन सायवेरिया, तथा संयुक्तराज्य अमेरिका में निकाले जाते हैं। ओपल (Opals) क्वीन्सलैंड (Queensland) हंगरी और सैक्सनी (Saxony) में पाये जाते हैं। ऐम्बर (Amber) बाल्टिक समुद्र के तटवर्ती प्रदेश में निकलता है। मोती (Pearls) मैनार की खाड़ी, बैहरिन द्वीप (Bahrein Island) सुलू द्वीप (Sulu Island) कैलीफोर्निया की खाड़ी, और आस्ट्रेलिया के उत्तरी तथा पश्चिमी समुद्र तट के किनारे छिछले समुद्र में निकलते हैं।

शक्ति के साधन (Sources of power)

मनुष्य समाज जैसे-जैसे अपनी सभ्यता का विकास करता गया, वैसे ही वैसे वह प्रकृति से अधिक लाभ उठाता गया। जब मनुष्य प्रकृति के अधीन था उस समय उसे बहुत थोड़ी वस्तुओं पर ही निर्वाह करना पड़ता था। परन्तु जैसे जैसे उसने प्रकृति पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया वैसे ही वैसे उसने बहुत से पदार्थ बनाना शुरू कर दिये। किन्तु वस्तुओं को बनाने के लिए कच्चे (Raw material) तथा शक्ति की आवश्यकता होती है। यदि यन्त्र तथा मशीनों को चलाने के लिए संचालन शक्ति (Mechanical power) न हो तो वे बेकार पड़े रहें। यदि मनुष्य शक्ति के नये-नये साधन (भाफ और बिजली) न ढूँढ़ निकालता तो आधुनिक औद्योगिक उन्नति सम्भव ही नहीं होती। वास्तव में यन्त्र तो शक्ति का उपयोग कर लेने के साधनमात्र हैं। किसी भी देश की आर्थिक उन्नति शक्ति (Power) पर ही निर्भर होती है। आधुनिक युग में यह बात बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है कि जिन देशों ने संचालन शक्ति को बढ़ा लिया वे ही औद्योगिक उन्नति कर सके हैं। नीचे दी हुई तालिका से यह और भी स्पष्ट हो जावेगा :—

देश	घोड़ों की शक्ति, प्रति कुली
संयुक्तराज्य अमेरिका	३·६
इङ्गलैंड	२·४

देश	घोड़ों की शक्ति, प्रति कुली
जर्मनी	१·५
फ्रांस	०·६७
इटली	०·३१
चीन	०·१२

कुछ वर्षों से रूस और जापान ने अपनी शक्ति (Power) को बढ़ाया है।

यदि प्रत्येक देश में प्रति कुली शक्ति की उपलब्धि को ध्यान में रक्खा जाये तो यह समझ लेने में कठिनाई नहीं होती कि इसी क्रम से इन देशों की सम्पत्ति भी लिखी जा सकती है। उपरोक्त कथन से यह तो स्पष्ट ही हो गया कि औद्योगिक उन्नति के लिए संचालन शक्ति की आवश्यकता है। अब देखना यह है कि मनुष्य के पास कौन-कौन सी शक्ति उत्पन्न करने के साधन उपलब्ध हैं और उनका औद्योगिक उन्नति पर क्या प्रभाव पड़ा है।

आरम्भ में मनुष्य स्वयं अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा ही सारे उत्पादन कार्य करता था। धीरे-धीरे उसे ज्ञात हुआ कि पशुओं की शक्ति उससे कहीं अधिक है। अस्तु भारी कामों में पशुओं का उपयोग किया जाने लगा। गदहा, घोड़ा, बैल, ऊंट इत्यादि पशु खेती-बारी का काम करने, बोझा लादने, पहियों को घुमाने, तथा मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए। यद्यपि आधुनिक काल में मनुष्य अपनी तथा पशुओं की शक्ति का उपयोग कम करता है फिर भी कृषि तथा माल ढोने में पशुओं का यथेष्ट उपयोग होता है। पश्चिम में यद्यपि भाप और बिजली का अधिक उपयोग होता है किन्तु पशु-शक्ति का उपयोग बिलकुल नष्ट नहीं हो गया है। मनुष्य का स्थान अब यन्त्र ने ले लिया है, वह केवल यन्त्र की देख भाल करता है। जैसे जैसे शक्तियों के नवीन साधन ढूंढ़ निकाले गये वैसे ही वैसे मनुष्य तथा पशु शक्ति का उपयोग कम होता गया।

सबसे पहले जल-शक्ति का उपयोग किया गया। बहते हुए जल में कितनी शक्ति है, इसका अनुमान नदी की तेज धार देख कर ही मालूम किया जा सकता है। आजकल भी जहाँ जल बराबर तेज़ी से बहता रहता है वहाँ आटे की चक्कियाँ पानी की शक्ति से ही चलाई जाती हैं। भाप के आविष्कार के पूर्व जल का ही शक्ति के रूप में अधिक उपयोग होता था। प्राचीन काल में औद्योगिक केन्द्र नदियों के किनारे इसी कारण बसाये गए। अधिकांश औद्योगिक नगर उस समय पहाड़ी की घाटियों में बसाये गए थे क्योंकि नदियों की धार पहाड़ों में तेज होती है। इङ्गलैंड में पैनाइन (Pennine) पहाड़ी प्रदेश में ऊनी कपड़े का धंधा इसी कारण उन्नत हो सका। स्काटलैंड,

आइरलैंड तथा योरोप के अन्य देशों में पहले जल के द्वारा ही कपड़े के कार-में कपड़ा तैयार होता था। आज भी मिसिसिपी नदी (Mississippi) के तट पर स्थित मिनियापोलिस (Mineapo'is) नगर में आटे के बड़े कारखाने जल-शक्ति से ही चलते हैं। नार्वे, स्वीडन, तथा फिनलैंड में आज भी लकड़ी चीरने के कारखानों में जल-शक्ति का उपयोग होता है। परन्तु जल-शक्ति स्थायी नहीं होती। ठंडे देशों में जाड़े के दिनों में पानी जम जाता है तथा कहीं कहीं नदियाँ सूख जाती हैं। ऐसी दशा में कारखाने नहीं चल सकते। इसके अतिरिक्त पहाड़ी प्रान्त में जहाँ कि जल-शक्ति अधिक मिल सकती है, रेलपथ नहीं बन सकते, इस कारण भी जल-शक्ति का अधिक उपयोग नहीं हो सकता।

मनुष्य ने केवल जल का ही उपयोग नहीं किया, हवा से भी उत्पादन कार्य में सहायता ली गई। यद्यपि हवा का उपयोग सब स्थानों पर नहीं हो सकता परन्तु जहाँ भी हवा तेज़ चलती है वहाँ हवा से ही कारखाने चलाये गये। हवा में अनन्त शक्ति है। उन्नीसवीं शताब्दी तक मनुष्य ने जहाज़ों के चलाने में हवा का ही उपयोग किया। हालैंड और बैलजियम के समुद्री तट पर आज भी आटा पीसने के कारखाने हवा से ही चलते हैं। परन्तु हवा भी स्थायी रूप से नहीं बहती, कभी तेज़ तो कभी धीरे, इस कारण इसका भी अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता।

अत्यन्त प्राचीन काल से लकड़ी का ईंधन के रूप में उपयोग होता आया है। जहाँ कोयला नहीं मिलता वहाँ आज भी लकड़ी के कोयले का उपयोग होता है। स्वीडन की रेलों के एंजिनों में लकड़ी जलाई जाती है। कांगो नदी की बेसिन में स्टीम बोट लकड़ी का ही उपयोग करती हैं। किन्तु लकड़ी भारी वस्तु है उसे ले जाने में व्यय अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यदि शक्ति उत्पन्न करने में लकड़ी का अधिक उपयोग किया जाने लगे तो वन-प्रदेश समाप्त हो जायँ। कोई भी देश अपने वन-प्रदेशों को इस प्रकार नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि वे देश की आर्थिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इन कारणों से लकड़ी का इस कार्य के लिए अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता।

कोयला (Coal)

कोयले का उपयोग मनुष्य समाज लगभग डेढ़ सौ वर्षों से करने लगा है। यन्त्रों के आविष्कार के साथ ही कोयले का भी उपयोग होने लगा। किन्तु उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में कोयला इतना महत्त्वपूर्ण हो गया कि संसार के अधिकांश औद्योगिक केन्द्र कोयले की खानों के ही समीप दृष्टिगोचर

होते हैं। आज कल कोयला औद्योगिक उन्नति का मुख्य साधन बन गया है। आज जो बड़े कारख़ाने चलाये जा रहे हैं वे कोयले के बल पर ही चल रहे हैं। आज जिन देशों के पास यथेष्ट कोयला है, वे ही औद्योगिक उन्नति कर सकते हैं। यद्यपि बीसवीं शताब्दी में जल द्वारा बिजली उत्पन्न की जाने लगी है और सम्भव है कि भविष्य में बिजली भाप से भी अधिक महत्वपूर्ण हो, किन्तु फिर भी कोयला बिलकुल नष्ट नहीं हो सकता।

कोयला दो प्रकार से बना है या तो दलदल के सघन वनों के वृक्ष गिर गिर कर पृथ्वी पर जमा होते गए। यह क्रिया हज़ारो वर्षों तक चलती रही जब तक कि अनन्त राशि में वनस्पति इकट्ठी न हो गई। अथवा पेड़ बह कर छिछली झीलों में जमा होते गए और धीरे-धीरे वे कोयले में परिणत हो गए। इसके उपरान्त अनन्त राशि में जमा हुई वनस्पति के ऊपर नदियों के द्वारा लाई हुई मिट्टी जमा होती गई और यह वनस्पति का ढेर उसमें दब गया। यह वनस्पति गरमी तथा दबाव (Pressure) के कारण कोयले में परिणत हो गई और यह कोयले की एक तह (Seam) बन गई। किन्तु यह क्रिया बराबर जारी रही इसी कारण कोयले की एक तह (Seam) के ऊपर दूसरी तह (Seam) मिलती है। कोयले की यह तहें (Seams) कुछ इंचों से लेकर हज़ारों फीट से भी अधिक मोटाई की होती हैं। यदि कोयले की तह कम से कम दो फीट मोटी होती है तो उसको खोद कर निकाला जाता है। इससे कम मोटाई होने पर वह खोदने के योग्य नहीं होती। अधिक से अधिक ४००० फीट की गहराई तक कोयला खोदा जा सकता है। इससे अधिक गहराई पर गरमी तथा दबाव की अधिकता होने के कारण खुदाई असम्भव हो जाती है। झरिया में कोयले की १८ तहें (Seams) मिलती हैं और उनकी मोटाई कहीं-कहीं १०० फीट से भी अधिक है। कोयले की तहें (Seams) कारबोनीफेरस (Carboniferous) युग की चट्टानों में ही मिलती हैं।

कोयला कई प्रकार का होता है। कार्बन (Carbon) का अंश जितना अधिक होता है कोयला उतनी ही अधिक गरमी उत्पन्न कर सकता है। इसी के आधार पर कोयले को कई जातियों में बाँटा जाता है:—

(१) ऐन्थ्रासाइट Anthracite कोयले में कार्बन Carbon सबसे अधिक होता है। इसमें ९५ प्रतिशत कार्बन होता है, इसमें बहुत कम धुआँ निकलता है और न अधिक राख ही बचती है। यह सबसे अधिक गरमी उत्पन्न करता है। ऐन्थ्रासाइट (Anthracite) सबसे अधिक कठोर होता है, इस कारण कठिनाई से जलता है।

(Bituminous) कोयला कई प्रकार का होता है उसमें कार्बन ७० प्रतिशत से लेकर ६० प्रतिशत तक होता है। इसमें गैस तथा अन्य पदार्थ अधिक होते हैं। यह आसानी से जल जाता है किन्तु जलते समय अधिक धुआँ उत्पन्न करता है और उसकी राख भी बहुत होती है।

कैनल (Cannel) कोयला निम्न श्रेणी का होता है। इसमें, ४० प्रतिशत कार्बन होता है। इस कोयले में गैस बहुत अधिक होती है इसी कारण इसे गैस का कोयला भी कहते हैं।

लिगनाइट कोयले से गरमी कम उत्पन्न होती है, यद्यपि इसमें ४५ प्रतिशत तक कार्बन होता है।

लिगनाइट
(Lignite)

पीट वास्तव में पूर्ण रूप से कोयला नहीं होता वह लिगनाइट तथा लकड़ी के बीच की स्थिति में होता है। यही कारण

पीट (Peat) है कि वह लकड़ी की भाँति ही जलता और धुआँ बहुत देता है, किन्तु गरमी बहुत कम उत्पन्न करता है।

कोयले की खानों के लिए कुली अच्छी संख्या में होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त गमनागमन के साधन भी बहुत आवश्यक हैं क्योंकि या तो कोयले को औद्योगिक केन्द्रों में भेजना पड़ता है और यदि खानों के समीप ही औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये जाते हैं तो उन तक कच्चा माल (Raw material) लाना पड़ता है। कोयले की बढ़ती हुई माँग के कारण साधारण खानें भी खुदने लगी हैं। कोयले की खानों में लगभग २५% प्रतिशत कोयला खोदते समय व्यर्थ में नष्ट हो जाता है।

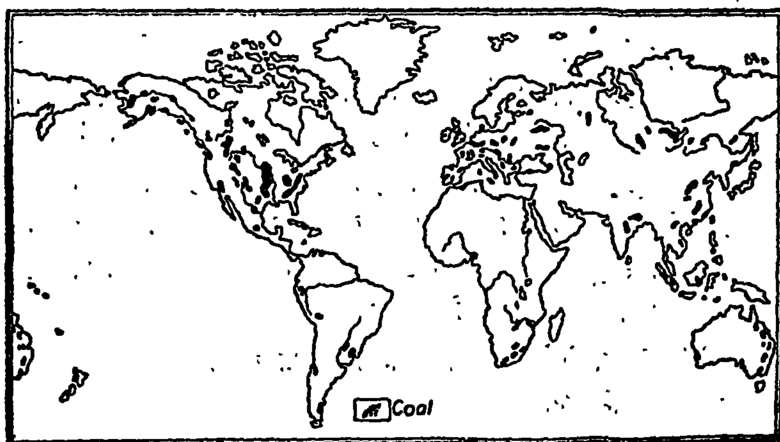
कोयले की अधिकाधिक माँग तथा उसकी भावी कमी का विचार करके अब कोयला निकालने में कोयला व्यर्थ में नष्ट न हो इसका ध्यान रक्खा जाता है।

पृथ्वी पर कोयला उत्पन्न करने वाले देशों में संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.), जर्मनी और इङ्गलैंड मुख्य हैं। यह तीनों देश संसार का लगभग तीन चौथाई कोयला उत्पन्न करते हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे देश हैं जिनमें अनन्त राशि में कोयला भरा पड़ा है किन्तु अभी उसको खोदा नहीं गया है। चीन, सायबेरिया, आस्ट्रेलिया में बहुत कोयला पृथ्वी के गर्भ में छिपा हुआ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि संयुक्तराज्य अमेरिका, चीन, कनाडा, जर्मनी, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा सायबेरिया में संसार का ६० प्रतिशत कोयला दबा हुआ है।

संसार में कोयले की अनुमानित राशि

देश का नाम	कोयले का अनुमान एक अरब (Million) मैट्रिक टन में
संयुक्तराज्य अमेरिका	३,५००
चीन	९०० से १,५०० तक
कनाडा (अधिकांश लिगनाइट)	१,२००
जर्मनी	४०० से अधिक
ब्रिटिश द्वीप समूह	१९०
सायबेरिया (अधिकांश लिगनाइट)	१७४
आस्ट्रेलिया (न्यू साऊथ वेल्स में)	१६६
भारतवर्ष	७९
रूस	५८
दक्षिण अफ्रीका	५६
जापान	७
फ्रांस	१७
बैलजियम	१०
शेष पृथ्वी	७४००

ऊपर दी हुई तालिका से ज्ञात होगा कि संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक कोयला उत्पन्न ही नहीं करता वरन उसकी खानों में सबसे अधिक कोयला भरा हुआ है। जितना कोयला इस समय उद्योग-धंधों में



प्रति वर्ष व्यय हो रहा है यदि इतना ही व्यय होता रहे तो समस्त पृथ्वी का कोयला ५००० वर्षों में समाप्त हो जावेगा; किन्तु कुछ देशों का कोयला तो बहुत जल्दी ही समाप्त हो जावेगा। उदाहरण के लिए ब्रिटेन का कोयला इस हिसाब से ४५० वर्षों में समाप्त हो जावेगा और संयुक्तराज्य अमेरिका का कोयला २००० वर्षों तक चलेगा।

संयुक्तराज्य अमेरिका में अपलेशियन (Appalachian) का पहाड़ी प्रदेश कोयला उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। देश की उत्पत्ति का लगभग तीन चौथाई से अधिक कोयला इसी प्रदेश से निकाला जाता है। इस प्रदेश से निकलने वाला कोयला बहुत अच्छा होता है। अपलेशियन प्रदेश की कोयले की खानें उत्तर में पेनसिलवेनिया (Pennsylvania) से अलबामा (Albama) तक फैली हुई हैं। यहाँ की भौगोलिक स्थिति खान खोदने के लिए अनुकूल है। यही कारण है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में इङ्गलैंड से कम खर्च में कोयला खोदा जाता है। यही नहीं इस प्रदेश में नदियों तथा अन्य गमनागमन के साधनों की सुविधा होने के कारण कोयले को इच्छित स्थानों पर ले जाने में कम व्यय और सुविधा होती है। इसी कारण अपलेशियन प्रदेश इतना महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है कि जिससे यह प्रदेश महत्त्वपूर्ण है। संयुक्तराज्य अमेरिका में जितना भी एन्थ्रासाइट (Anthracite) कोयला उत्पन्न होता है वह सब इसी प्रदेश में मिलता है।

अपलेशियन के अतिरिक्त भीतर की तरफ उत्तर में मिचिगन (Michigan) इत्यादि, पूर्व में इलिनायस (Illinois) इत्यादि, तथा पश्चिम में आइवा (Iowa) इत्यादि की खानें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

पिछले योरोपीय युद्ध के पूर्व जर्मनी और ब्रिटेन में से प्रत्येक संसार का उत्पत्ति का २० प्रतिशत के लगभग उत्पन्न करते थे। वार्साई संधि के अनुसार जर्मनी से सार बेसिन (Saar Basin) तथा सिलीशिया (Silesia) प्रान्त की महत्त्वपूर्ण कोयले की खानें छीन ली गईं। परन्तु अब जर्मनी ने पुनः अपने खनिज प्रदेशों पर ही अधिकार नहीं कर लिया वरन चेकोस्लावाकिया की महत्त्वपूर्ण खानें भी अब उसके अधिकार में आगई हैं, अतएव इस समय जर्मनी के पास पहले से भी अधिक कोयला है।

योरोप में इन दो देशों के अतिरिक्त केवल फ्रांस, बैलजियम और रूस में ही कोयला निकाला जाता है।

एशिया में चीन कोयले की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि जब उसके कोयले की खानें भविष्य में खोदी जायेंगी तब वह संसार के कोयला उत्पन्न करने वाले देशों में प्रमुख स्थान प्राप्त करेगा। चीन में इस समय कोयला निकाला नहीं जाता। चीन के अतिरिक्त भारतवर्ष और जापान में ही कोयला निकाला जाता है।

आस्ट्रेलिया में कोयला केवल न्यू साऊथ-वेल्स (New South Wales) में निकाला जाता है।

दक्षिण अमरीका तथा अफ्रीका में कोयला बहुत कम मिलता है। सच तो यह है कि दक्षिण गोलार्द्ध में कोयला कम है इस कारण जहाँ कहीं कोयला मिलता है उसका महत्त्व बढ़ जाता है। दक्षिण अफ्रीका में नेटाल (Natal) ट्रांसवाल (Transvaal) तथा आरेंज-फ्री-स्टेट (Orange Free State) में कोयला पाया जाता है। रोडेशिया में भी कोयला है किन्तु खोदा नहीं गया है। दक्षिण अमेरिका में कोलम्बिया (Columbia) तथा पीरू (Peru) में थोड़ा कोयला मिलता है, परन्तु समुद्र तट के समीप न होने के कारण इसका उपयोग नहीं किया जा सकता।

कोयले के अतिरिक्त आयरलैंड, स्काटलैंड तथा जर्मनी में पीट (Peat) भी बहुत पाया जाता है। भविष्य में इन खानों का भी उपयोग किया जावेगा।

संसार में सबसे अधिक कोयला ब्रिटेन भेजता है। कुल जितना कोयला इन देशों से निर्यात (Export) होता है उसका आधे से अधिक केवल ब्रिटेन से जाता है। ब्रिटेन की खानें समुद्र तट के पास हैं इस कारण कोयले को बाहर भेजने में बहुत सुविधा रहती है। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा जर्मनी की कोयले की खानें बन्दरगाहों से दूर अन्दर की तरफ हैं इस कारण कोयले को बन्दरगाहों तक लाने में व्यय अधिक हो जाता है। ब्रिटेन अधिकांश में पक्का माल (Manufactured articles) विदेशों को भेजता है अतएव ब्रिटेन से जाने वाले जहाजों में बहुत स्थान खाली रहता है अस्तु कोयला उस खाली स्थान को भर देता है, यही कारण है कि जहाज़ सस्ते किराये पर कोयले को ले जाते हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.) यद्यपि संसार में सबसे अधिक कोयला उत्पन्न करता है किन्तु वह कोयला विदेशों को नहीं भेजता। कारण यह है कि संयुक्तराज्य अमेरिका की कोयले की खानें लगभग २०० मील अन्दर की तरफ हैं इस कारण कोयले को बन्दरगाहों तक लाने में व्यय बहुत होता है। दूसरा कारण यह है कि योरोप जहाँ कि कोयले की माँग

है संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.) से बहुत दूर है। तीसरे संयुक्तराज्य अमेरिका कच्चा माल (Raw materials) बाहर भेजता है और पक्का माल बाहर से मंगाता है इस कारण इधर से जाने वाले जहाज़ों में जगह नहीं रहती। दक्षिण अमेरिका में औद्योगिक उन्नति न होने के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका से वहाँ भी अधिक कोयला नहीं जाता।

जर्मनी और पोलैंड भी योरोपीय देशों को कोयला भेजते हैं। कोयला बाहर से मंगाने वाले देशों में फ्रांस, इटली तथा बाल्टिक प्रदेश के राज्य मुख्य हैं।

कोयले के अतिरिक्त मनुष्य ने शक्ति के और भी साधन ढूँढ निकाले हैं। घटिया कोयले का उपयोग बिजली और गैस उत्पन्न करने में होता है। क्रमशः इङ्गलैंड और जर्मनी में लिगनाइट कोयले का उपयोग बिजली और गैस तैयार करने में बढ़ता जा रहा है। इसके अतिरिक्त तेल (Petroleum) तथा जल विद्युत (Hydro-Electricity) का भी अधिकाधिक उपयोग हो रहा है। यही नहीं जहाज़ों में कोयला तथा तेल मिला कर उपयोग में लाने की बात भी सोची जा रही है। यद्यपि अन्य शक्ति के साधन (Sources of power) ढूंढ निकाले गए हैं परन्तु फिर भी कोयला मुख्य औद्योगिक शक्ति का साधन है और उसकी माँग घट नहीं रही है।

कोयले से अन्य महत्वपूर्ण गौण पदार्थ (By-Products) भी निकाले जाते हैं। भिन्न क्रियाओं द्वारा कोयले को धुंआरहित कोक (Coke) में परिणत किया जाता है साथ ही बहुत से तेल, खाद, और कोलतार इत्यादि निकाले जाते हैं। कोयले के मुख्य गौण पदार्थ (By-Products) निम्नलिखित हैं :—

कोलतार (Tar) तथा उससे उत्पन्न होने वाली वस्तुयें। अमोनिया (Ammonia Sulphate) जो खाद के रूप में काम आता है। इसके अतिरिक्त गैस, तेल, बैन्जाल (Benzol) नैप्था (Naphtha) मोटर बैन्जाल (Motor Benzol) तथा अन्य प्रकार के तेल निकाले जाते हैं। कुछ फुटकर पदार्थ गंधक (Sulphur) इत्यादि भी निकलते हैं।

कोयले की बढ़ती हुई माँग के कारण प्रत्येक देश में इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि कोयले को किफायत से खर्च किया जाय। खानों को खोदने के तरीके में सुधार किया जा रहा है, तथा ऐसे ऐंजिन बनाये जा रहे हैं जिनमें कोयला कम खर्च हो।

कोयले की उत्पत्ति

(दस लाख टनों में)

संयुक्तराज्य अमेरिका	४५६
ब्रिटेन	२३१
जरमनी	१८६
सोवियत रूस	१४७
जापान	५३
फ्रांस	४६
पोलैंड	१८
भारत	२९
बैलजियम	२५
चीन	१७
मंचूरिया	११

संसार की कुल कोयले की उत्पत्ति १.२३२,०००,००० टन है।

तेल (Petroleum)

खनिज तेल एक बहता हुआ पदार्थ है जो पृथ्वी के गर्भ में पाया जाता है। तेल जलाने में, मशीनों में, तथा एंजिनों के चलाने में काम आता है। जब तेल कुयें से निकलता है तो उसके साथ मिट्टी तथा अन्य धातुयें मिली रहती हैं। मिट्टी तथा धातुओं को साफ करके तेल निकाला जाता है। तेल बहुत तरह का होता है, कहीं कच्चे तेल में मिट्टी तथा धातुयें अधिक रहती हैं और कहीं कम। बाज़ार में जो मिट्टी का तेल मिलता है वह साफ किया हुआ हल्का तेल होता है जो जलाने के काम में आता है। पैट्रोलियम को साफ करके पेट्रोल (Petrol) तैयार करते हैं जो मोटर तथा हवाई जहाज़ के चलाने में काम आता है। आधुनिक समय में युद्ध में हवाई जहाज़ों के अत्यधिक उपयोग के कारण पेट्रोल का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। प्रत्येक देश तेल की खानों पर अपना अधिकार करना चाहता है। पैरेफिन (मोम) मोमबत्ती बनाने के काम में आता है। कच्चे तेल से कुछ भारी तेल भी तैयार किये जाते हैं। जो मशीन के पुर्जे को चिकना करने के काम में आते हैं। नैप्था (Naphtha) तथा वैसलीन (Vaseline) भी मिट्टी के भारी तेलों से ही तैयार की जाती है।

डिसल ऐंजिन (Diesel Engine) के आविष्कार के कारण तेल की माँग बहुत बढ़ गई, क्योंकि उसमें पेट्रोल के स्थान पर कच्चा तेल ही

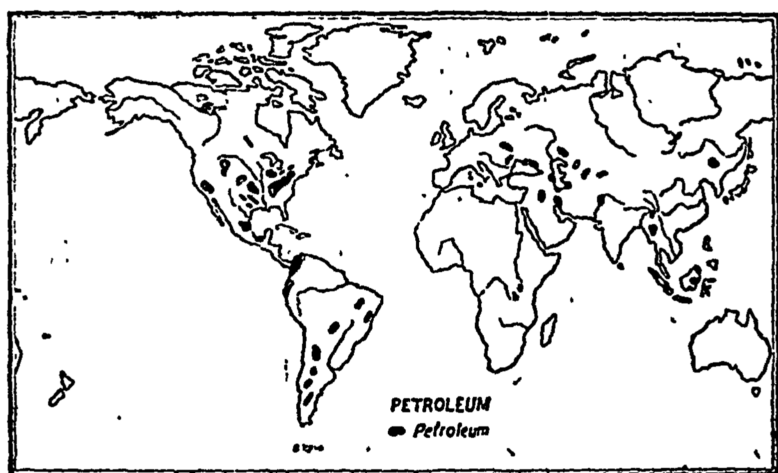
काम में आता है। जहाँ बिजली नहीं है और जहाँ बड़े बड़े ऐंजिन जो भाप से चलते हैं, काम में नहीं आ सकते, वहाँ यह छोटा सा ऐंजिन तेल से चलने के कारण अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। गाँवों में, खेतों पर, समुद्री तथा हवाई जहाजों में, डिज़ल ऐंजिन ने कोयले को अपने स्थान से हटा दिया है किन्तु बड़े बड़े कारखानों में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसमें व्यय अधिक होता है।

मिट्टी का तेल जिन देशों में निकाला जाता है वहाँ इसका उपयोग अधिक नहीं होता, अधिकांश तेल विदेशों को भेजा जाता है। अधिकतर तेल की खानें समुद्र तट से दूर हैं इस कारण कच्चे तेल को पाइप लाइनों के द्वारा बन्दरगाहों तक ले जाया जाता है और वहाँ कारखानों (Refineries) में शुद्ध किया जाता है। वहाँ से तेल बाहर भेजा जाता है। मिट्टी के तेल की माँग बढ़ जाने से नई नई तेल की खानें ढूँढ़ निकाली गई हैं। तेल (Petroleum) की खानों को अपने अधिकार में लाने के लिए संसार के प्रबल साम्राज्यवादी राष्ट्रों में आपस में बहुत कुछ संघर्ष हुआ है और बहुत से प्रदेशों को अपनी स्वाधीनता केवल इस लिए खोनी पड़ी है क्योंकि उनके धरातल के नीचे तेल बहुता था। खनिज तेल ने वनस्पति के तेल का महत्व कम कर दिया है। खनिज तेल कोयले से भी अधिक शक्ति उत्पन्न करता है किन्तु उसको भर कर रखने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

संसार के भिन्न भिन्न देशों में खनिज तेल (Petroleum) का अनुमान इस प्रकार है।

देश	दस लाख-बैरल (Barrel) में (१ बैरल = ४२ गैलन)
संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.)	७००० से ९००० तक
फारस और इराक़	५८२१
रूस (दक्षिण पूर्व)	६०००
मैक्सिको (Mexico)	४५२५
दक्षिण अमेरिका (उत्तरी भाग)	५७३०
,, ,, (दक्षिणी भाग)	३५५०
पूर्वीय द्वीपसमूह (East Indies)	३०१५
भारतवर्ष	६००
कनाडा	६००
कुल पृथ्वी का अनुमानित तेल	४३००० से ६५००० तक

संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.) संसार में सबसे अधिक तेल प्रति वर्ष उत्पन्न करता है। यही नहीं उसका अनुमानित तेल राशि भी संसार में सबसे अधिक है। संयुक्तराज्य अमेरिका के उपरान्त रूस तथा फारस और इराक़ (मैसोपोटैमिया) में सबसे अधिक तेल पाया जाता है। संसार में संयुक्तराज्य अमेरिका तथा वैनीजुला (Venezula) सबसे अधिक तेल विदेशों को भेजते हैं, परन्तु संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक तेल मँगाता भी है। इसका कारण यह है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में तेल शोधक कारखाने (Refineries) बहुत हैं जहाँ दक्षिणी अमेरिका की खानों का कच्चा तेल शुद्ध होने के लिए आता है। संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त ब्रिटेन और जर्मनी भी बहुत अधिक तेल विदेशों से मँगाते हैं।



अभी तक तेल के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि संसार में कितना तेल है। नई नई खानों को ढूंढने का प्रयत्न जारी है, साथ ही तेल निकालने के तरीकों में सुधार और परिवर्तन किये जा रहे हैं। साधारणतः जब तेल का कुआँ खोदा जाता है तो गैस अथवा पानी के दबाव के कारण तेल स्वयं ऊपर आ जाता है। यदि तेल स्वयं ऊपर नहीं आता तो फिर कुयें में पम्प करके तेल को निकालते हैं। इसके उपरान्त कुयें को छोड़ दिया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि काफी तेल (५० प्रतिशत) चट्टानों के भीतर ही रह जाता है, क्योंकि एक सीमा के बाद पम्प करने में खर्चा बहुत अधिक पड़ता है। भिन्न भिन्न प्रदेशों के कुओं का जीवन भिन्न होता है। कोई देर में समाप्त होते हैं तो कोई कोई शीघ्र समाप्त हो जाते हैं।

मिट्टी का तेल उत्पन्न करने में संयुक्तराज्य अमेरिका की पूर्वी तथा मध्य की रियासतें मुख्य हैं। मध्य को रियासतों से नलों द्वारा तेल मैक्सिको की खाड़ी तथा अटलांटिक महासागर के बंदरगाहों तक ले जाया जाता है। रूस का काकेशस प्रान्त तथा दक्षिणी पश्चिमी सायबेरिया तेल की उत्पत्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। बाकू और बाटूम (Baku and Battum) तक तेल पाइपों द्वारा ले जाया जाता है। फारस तथा इराक की खानों को अभी थोड़े दिनों से खोदा गया है। मैक्सिको की खानों से भी बहुत तेल निकलता है। अब तेल नलों द्वारा ले जाया जाकर सीधा जहाज़ों में भर दिया जाता है इस कारण तेल को बंदरगाहों में भर कर नहीं रखना पड़ता। दक्षिण अमेरिका के उत्तरी प्रदेश तथा पीरू (Peru) में भी तेल निकाला जाता है। पूर्व में पूर्वीय द्वीप समूह (East Indies) वर्मा, चीन, जापान, फारमोसा, गैलीशिया (Galicia) तथा मिस्र में भी तेल की खानें हैं। योरोप में रुमानिया की खानों की उत्पत्ति भी पिछले दिनों में बहुत बढ़ गई है।

पैट्रोलियम की उत्पत्ति

देश	समस्त संसार की उत्पत्ति का प्रतिशत।
संयुक्तराज्य अमेरिका	६०.८१%
सोवियत रूस	१०.७५%
वैनीजुला	१०.३%
ईरान	३.७%
डच पूर्वी द्वीप समूह	२.६७%
रुमानिया	२.४५%
मैक्सिको	१.६७%
इराक़	१.५१%
कोलम्बिया	१.११%

संसार की कुल उत्पत्ति २७५,८०५,००० टन के लगभग है।

प्राकृतिक गैस (Natural Gas)

यह गैस तेल का ही एक रूप है। संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक गैस उत्पन्न करता है। आरम्भ में बहुत सी गैस व्यर्थ नष्ट कर दी गई थी क्योंकि उस समय उसका उपयोग ज्ञात नहीं था। संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त पश्चिमी कनाडा तथा पोलैंड में भी प्राकृतिक गैस (Natural Gas) निकलती है। पैनसिलवेनिया (Pennsylvania)

और ओहियो (Obio) की रियासतों से गैस को पाइपों के द्वारा औद्योगिक केन्द्रों (Industrial Centres) में कारखानों तथा घरों के उपयोग के लिए ले जाया जाता है। Pittsburgh इत्यादि केन्द्रों में गैस का बहुत उपयोग होता है।

जल-विद्युत् (Hydro Electric power)

बीसवीं शताब्दी में पानी के द्वारा बिजली उत्पन्न करने का नवीन आविष्कार हुआ है। पानी के द्वारा बिजली उत्पन्न करने में व्यय कम होता है साथ ही बिजली को दूर तक ले जाया जा सकता है। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के उपरान्त औद्योगिक केन्द्र कोयले की खानों के पास होते थे किन्तु अब उन प्रदेशों में भी औद्योगिक उन्नति हो सकेगी जहाँ कि कोयला नहीं है किन्तु जल द्वारा बिजली उत्पन्न करने की सुविधा है।

जल-शक्ति (Water power) पानी की बहुतायत तथा धरातल की बनावट पर निर्भर है। जल-शक्ति निम्नलिखित स्थानों पर उत्पन्न की जा सकती है :—(१) जहाँ जल-प्रपात (Waterfalls) हो। (२) जहाँ नदियों में पानी बहुत अधिक घटता-बढ़ता न हो क्योंकि बाढ़ आने से प्लांट (Plant) को हानि पहुँचती है, और पानी कम हो जाने से काम रोकना पड़ता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि जल-शक्ति को उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि पानी बहुत अधिक ऊँचाई से ही गिरता हो।

फ्रांस की सरकार ने अपने देश की जल-शक्ति का अनुमान करने के लिए विशेषज्ञों की एक कमेटी बिठाई थी। उस कमेटी ने संसार के अन्य देशों की जल शक्ति का भी अनुमान किया है जो इस प्रकार है।

संसार की जल-शक्ति

देश	देश की जल शक्ति के अंक जो भविष्य में उत्पन्न की जा सकेगी (घोड़ों की शक्ति में)
संयुक्तराज्य अमेरिका (U. S. A.)	२, ८०, ००, ०००
कनाडा	२, ००, ००, ०००
फ्रांस	४७, ००, ०००
नार्वे (Norway)	५, ५१, ००, ०००
स्वीडन (Sweden)	४५, ००, ०००
इटली	३८, ००, ०००

स्विटज़रलैंड	१४, ००, ०००
जर्मनी	१३, ५०, ०००
जापान	६०, ००, ०००
स्पेन	४०, ००, ०००
मैक्सिको (Mexico)	६०, ००, ०००
ब्राज़ील (Brazil)	२, ५०, ००, ०००
ब्रिटेन	५, ८५, ०००
फिनलैंड	१५, ००, ०००
भारतवर्ष	२, ७०, ००, ०००
वेलजियम कांगो	६, ००, ००, ०००
फ्रैंच कांगो	३, ५०, ००, ०००
चीन	२, ००, ००, ०००
फ्रैंच कैमेरून (French Cameroon)	१, ३०, ००, ०००
सायबेरिया	८०, ००, ०००
नाइगेरिया (Nigeria)	६०, ००, ०००

ऊपर दिये हुए विवरण से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि जहाँ कोयला कम है वहाँ जल-शक्ति अधिक मिलती है। कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ कच्चा माल उत्पन्न नहीं होता परन्तु जल-शक्ति बहुत है। आइसलैंड (Iceland) ऐसे ही देशों में से है, वहाँ जल शक्ति बहुत है अतएव वहाँ बिजली के द्वारा रासायनिक पदार्थ बनाने के कारख़ाने खोले गये हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि जल द्वारा बिजली उन्हीं स्थानों पर उत्पन्न हो सकती है जहाँ जल-प्रपात (Waterfall) हो। नदी में पानी एक सा रहता हो। किन्तु इनके साथ ही इस बात की आवश्यकता है कि शक्ति के उत्पत्ति स्थान से औद्योगिक केन्द्र अधिक दूरी पर न हो। क्योंकि अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि जितनी ही दूर बिजली ले जाई जावेगी उतनी ही शक्ति अधिक नष्ट होगी। यहाँ तक कि ५०० मील बिजली ले जाने में २० प्रतिशत शक्ति नष्ट हो जाती है। जिन स्थानों पर कोयला अथवा पैट्रोलियम सस्ते दामों पर नहीं मिलता वहाँ बिजली उत्पन्न करने की अधिक सुविधा होती है। क्योंकि हाइड्रो इलेक्ट्रिक प्लांट को खड़ा करने में बहुत पूंजी की आवश्यकता होती है। यदि कहीं प्राकृतिक जलप्रपात नहीं हुआ और नदियों में पानी का वर्ष भर एक सा बहाव न हुआ तो वर्षा का अथवा नदी का पानी इकट्ठा करने के लिए बड़ी बड़ी झीलें बनानी पड़ती हैं। जैसा कि

भारतवर्ष में है) और उनमें बहुत अधिक पूंजी लग जाती है। उस पूंजी का सूद व्यय में जोड़ने से शक्ति का लागत खर्च अधिक बैठता है। परन्तु यदि पानी को सिंचाई के काम में लाया जा सके जैसा कि संयुक्तराज्य में हुआ है तो यह खर्चा कम हो सकता है।

अभी तक जल शक्ति का यथेष्ट उपयोग नहीं हो सका है। अनुमान यह किया जाता है कि पृथ्वी की समस्त जल-शक्ति की केवल ५ प्रतिशत जल-शक्ति इस समय उत्पन्न की जा रही है।

सबसे अधिक जल-शक्ति संयुक्तराज्य अमेरिका तथा कनाडा में उत्पन्न की जाती है। नायगरा (Niagara) जलप्रपात से अनन्त जल-विद्युत् उत्पन्न की जा सकती है। नायगरा नदी ईरी (Erie) तथा आन्टैरियो के बीच में १२७ फीट की ऊँचाई से गिरती है। नायगरा जलप्रपात के जल से कनाडा तथा संयुक्तराज्य अमेरिका दोनों ही बिजली उत्पन्न करते हैं। अधिकांश बिजली उत्पत्ति-स्थान के समीपवर्ती प्रदेश में ही काम आती है। वैसे नायगरा जलप्रपात की बिजली २५० मील तक ले जाई गई है। अभी हाल में सेंट लारेंस नदी के जल से भी बिजली उत्पन्न की जाने लगी है। सच तो यह है कि राकी पर्वत माला तथा अपलेशियन पहाड़ों में जल-विद्युत् का अत्यधिक विस्तार हुआ है।

यदि भविष्य में जल विद्युत् को उत्पन्न करने में विशेष उन्नति हुई तो फिर एक औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) होगी। जलविद्युत् के सुलभ हो जाने पर धंधों के केन्द्रीयकरण (Centralisation) की आवश्यकता नहीं होगी वरन वे कहीं भी ग्रामों में स्थापित किये जा सकेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि घनी आबादी से उत्पन्न होने वाली समस्यायें स्वतः ही हल हो जावेंगी। कारखाने के मज़दूर खुली हवा में अपने घरों के स्वास्थ्यप्रद वातावरण में रह सकेंगे। चिमनियों से निकलकर धुआँ शहरों पर नहीं फैलेगा और शहरों की गंदगी बहुत कुछ दूर हो जावेगी। यही नहीं जल-शक्ति के सुलभ होने पर गृह-उद्योग-धंधों (Cottage Industries) की भी उन्नति हो सकेगी। क्योंकि उस दशा में प्रत्येक कारीगर शक्ति का उपयोग आसानी से कर सकेगा और सस्ते तथा हल्के यन्त्रों द्वारा चीज़ें बनाकर वह भी बड़े कारखानों की प्रतिद्वन्द्विता में अपना माल बेंच सकेगा। बड़ी मात्रा की उत्पत्ति (Large-Scale-production) की सबसे अधिक बचत इसमें है कि उसमें शक्ति का उपयोग हो सकता है किन्तु एक जुलाहा तो एक स्टीम ऐंजिन मोल नहीं ले सकता। बिजली के सुलभ होने पर यह अड़चन नहीं रहेगी। यही नहीं

बिजली के उपयोग से एक लाभ यह भी होगा कि जहाँ कच्चा माल (Raw Material) मिलेगा वहीं कारख़ाना खड़ा किया जा सकेगा। कच्चे माल को कारखाने तक लाने का खर्चा बच जावेगा। सच तो यह है कि इस सफ़ेद कोयले (बिजली) के द्वारा उद्योग-धंधों की काया पलट हो जावेगी।

संसार में जल-विद्युत् की उत्पत्ति

संयुक्तराज्य अमेरिका	११, ११०, ००० किलोवाट
कनाडा	४, ५८०, ००० ,,
इटली	३, ६००, ००० ,,
जापान	३, ०५०, ००० ,,
फ्रांस	२, २५०, ००० ,,
जरमनी	१, ४६०, ००० ,,
अन्य देश	७, ४३०, ००० ,,

पिछले दिनों सोवियत रूस में जल-विद्युत् का बहुत विस्तार हुआ है किन्तु उसके आँकड़े प्राप्त नहीं हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका में अपलेशियन पहाड़ी प्रदेश तथा राकी पर्वत माला में अत्यधिक जल-विद्युत् उत्पन्न होती है। कनाडा में तो उतनी जल-विद्युत् होती है कि प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र को वह बिजली मिलती है। योरोप में आल्पस पर्वत माला के प्रदेश में जल-विद्युत् का खूब प्रचार हुआ है।

एलकाहल (Alcohol)

सम्भवत: भविष्य में एलकाहल (Alcohol) भी शक्ति उत्पन्न करने के साधनों में महत्वपूर्ण हो जावेगा। इसकी क़ीमत कम होने के कारण यह पैट्रोलियम के स्थान पर उपयोग में लाया जाता है। एलकाहल कतिपय वनस्पतियों से बनता है। इस कारण इसकी उत्पत्ति उन वनस्पतियों को पैदा करने से बढ़ सकती है।

मनुष्य ने शक्ति के अन्य साधन भी ढूँढ निकाले हैं और अधिक की खोज में हैं। प्रकृति के भण्डार में अनन्त शक्ति भरी पड़ी है। ज्वार भाटी के चढ़ाव उतार तथा तेज धूप से भी शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु अभी व्यापारिक दृष्टि से इन साधनों का उपयोग सफल नहीं हुआ है। भविष्य में आशा की जाती है कि सूरज की किरणों तथा समुद्र की लहरों से शक्ति उत्पन्न की जा सकेगी। यदि इन प्रयत्नों में सफलता मिल गई तो ऊष्ण

कटिबंध के देशों तथा समुद्रतट के किनारे शक्ति उत्पन्न करने में बहुत आसानी हो जावेगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—लोहे की खानें कहाँ कहाँ मिलती हैं विस्तार पूर्वक लिखिए।

२—कोयले की खानों का उल्लेख कीजिए उसका औद्योगिक महत्व बतलाइए।

३—पैट्रोलियम का क्या उपयोग है वह कहाँ पाया जाता है।

४—जल-विद्युत् के बारे में आप क्या जानते हैं और उसका कहाँ कहाँ उपयोग हुआ है।

५—आधुनिक काल में कोयला और लोहा सोने और हीरों से अधिक महत्वपूर्ण है। उस पर अपना मत लिखिए।

६—मैंगनीज़ बाक्साइट, सीसा कहाँ मिलता है।

७—टिन, ताँबा और चाँदी की खानें कहाँ अधिक हैं।

८—पैट्रोलियम का पिछले दिनों इतना महत्व क्यों बढ़ गया।



दसवाँ परिच्छेद

गौण उद्योग-धंधे (Secondary Industries)

यह तो पहले परिच्छेद में ही कहा जा चुका है कि उद्योग-धंधों का स्थानीयकरण निम्नलिखित बातों पर निर्भर है :—

(१) शक्ति के साधन, (२) कच्चा माल, (३) कुशल श्रमजीवी, (४) सस्ते दामों पर यातायात की सुविधा, (५) बाजार, (६) जलवायु। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक धंधे के स्थानीयकरण में इन सभी बातों की आवश्यकता हो। साधारणतः शक्ति के साधन और विशेष कोयले की खानों के समीप उद्योग-धंधे स्थापित होते हैं। कोयले की खानों के प्रदेश मुख्य औद्योगिक प्रदेश हैं। क्योंकि कोयले को दूर ले जाने में व्यय अधिक होता है। कभी कभी धंधे कोयलों की खानों के प्रदेश से दूर स्थापित किये जाते हैं जिससे कि अन्य सुविधायें प्राप्त हो सकें। जिन धंधों का कच्चा माल भारी और कम मूल्यवान होता है वे कच्चा माल उत्पन्न करने वाले प्रदेश में ही स्थापित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए लकड़ी का धंधा। यदि कच्चे माल के प्रदेश में शक्ति की भी सुविधा हो तब तो कहना ही क्या है। उस दशा में धंधा खूब उन्नति करता है। यातायात की सुविधा के बिना तो कोई धन्धा पनप ही नहीं सकता। किसी किसी धन्धे में कुशल कारीगरों का बहुत महत्व होता है। ऐसे धन्धे उन्हीं स्थानों पर स्थापित होते हैं जहाँ कुशल मज़दूर मिलते हैं। उदाहरण के लिए जोधपूर का छपाई और रंगाई का धन्धा। बाज़ार का समीप होना अथवा बाज़ार में माल ले जाने की सुविधा का होना धन्धों की स्थापना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु आजकल प्रतिस्पर्द्धा अधिक बढ़ जाने से तथा आयात कर (Import duties) के अधिकाधिक लगाये जाने के कारण धन्धे बाज़ार के समीप ही स्थापित किये जाने लगे हैं। भारतवर्ष में जो सूती कपड़े के कारखानें, संयुक्तप्रान्त तथा बंगाल इत्यादि में स्थापित किए गये तथा फोर्ड इत्यादि ने अपने कारखानें भारतवर्ष में स्थापित किए वह इसी कारण से।

लोहा और स्पात का धंधा (Iron & Steel)

लोहे और स्पात का धंधा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण धंधा है। क्योंकि यंत्र, औज़ार, रेल, जहाज़, मोटर इत्यादि सभी आवश्यक चीज़ों को तैयार करने में लोहे और स्पात की ज़रूरत होती है। लोहे का धंधा उन्हीं स्थानों पर पनप सकता है जहाँ कि कोयला, लोहा, तथा लाइमस्टोन मिलता हो। क्योंकि यह कच्चा माल भारी और कम मूल्यवान होता है। इस कारण दूर नहीं ले जाया जा सकता। यही नहीं लोहा और स्टील की बनी हुई चीज़ें यंत्र तथा रेल इत्यादि भारी होती हैं। इस कारण उन्हें बाज़ारों तक ले जाने की भी एक समस्या होती है। इस कारण यह धंधा उन्हीं स्थानों पर स्थापित किया जाता है जहाँ से माल बाज़ारों में आसानी से भेजा जा सके। इसके अतिरिक्त पानी, मज़दूरों तथा यातायात के साधनों की सुविधा भी आवश्यक होती है।

लोहे और स्पात के धंधे में कोयले की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। एक टन लोहे को गलाने के लिए लगभग दो टन कोयला और एक टन लाइमस्टोन की ज़रूरत होती है। अधिकतर लाइमस्टोन कोयले की खानों के समीप ही मिलता है। इस कारण कोयला उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में यह धंधा अधिकतर स्थापित किया जाता है। भारतवर्ष में ताता का स्टील का कारखाना लोहे की खानों से कोयले की खानों के अधिक समीप है।

कच्चे लोहे से शुद्ध लोहे को निकालने के लिए उसे बड़ी बड़ी भट्टियों में कोयले और लाइमस्टोन के साथ गलाया जाता है। भट्टी में इन तीनों चीज़ों को रख देने के उपरान्त तेज़ गरम हवा पहुँचाई जाती है जिससे धातु गलकर बहने लगती है। धातु उसमें मिले हुए पदार्थों से हल्की होती है इस कारण पिघले हुए पदार्थ के ऊपर आ जाती है। अन्य पदार्थों को लाइमस्टोन सोख लेता है। यह पिघली हुई धातु भट्टी से नली द्वारा बड़े बड़े रेत के बने हुए स्थानों पर ले जाकर ठंडी कर ली जाती है। यही पिग आयरन कहलाता है। किन्तु इसमें भी कुछ अशुद्धियाँ विशेषकर गंधक, फासफोरस, तथा कार्बन रहता है, इस कारण यह टूट जाता है। पिग आयरन को अधिक कठोर बनाने के लिए उसे राट-आयरन में परिणत करते हैं। राट-आयरन साधारणतः कठोर होता है किन्तु बहुत अधिक कठोर नहीं होता। राट आयरन इतना कठोर नहीं होता कि उससे यन्त्र, जहाज़, रेल तथा पुल इत्यादि बनाये जा सकें। पिग आयरन को किसी लम्बी वस्तु से चलाने से राट-आयरन तैयार होता है क्योंकि इस क्रिया से कार्बन आयरन से निकल जाता है।

पिग आयरन से स्पात (Steel) बनाने की बहुत सी क्रियायें हैं,

किन्तु तीन क्रियायें मुख्य हैं, (१) बैसीमर (Bessemer), ओपिन हर्थ (Open Hearth) तथा बेसिक (Basic)। बैसीमर क्रिया में पिग आयरन की समस्त अशुद्धियों को लोहे में से ठंडी हवा पास करके नष्ट कर देते हैं। जब लोहा बिलकुल शुद्ध हो जाता है, कोई अशुद्धि नहीं रहती तब आवश्यकतानुसार कार्बन मिला देते हैं। ओपिन हर्थ (Open Hearth) में पिग आयरन की समस्त अशुद्धियों को भट्टी में रख कर जला देते हैं। ओपिन-हर्थ तथा बैसीमर क्रिया में भेद केवल भट्टियों का है। जब पिग आयरन की सब अशुद्धियाँ जल जाती हैं तो कार्बन भी जल जाता है। इस कारण बाद में आवश्यकतानुसार कार्बन मिला लिया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से बेसिक (Basic) क्रिया अधिक प्रचलित हो गई है और अधिकतर स्पात इसी क्रिया से तैयार किया जाता है। इस क्रिया में लाइम के द्वारा लोहे में जितना भी फासफोरस होता है वह निकाल लिया जाता है। इस कारण अब उस कच्चे लोहे से भी स्पात तैयार हो सकता है जिसमें फासफोरस का अंश अधिक हो। जर्मनी का स्पात का धन्धा इस क्रिया के आविष्कार के उपरान्त अधिक चमक उठा क्योंकि लारेन के लोहे में फासफोरस का अंश अधिक था।

कुछ वर्षों से स्पात के साथ भिन्न भिन्न धातुओं को मिलाकर भिन्न भिन्न कार्यों के लिए स्टील तैयार किया जाता है। निकल, मैंगनीज़, क्रोम, टंगस्टन, तथा वैनेडियम को स्टील के साथ मिलाया जाता है। पिछले वर्षों में स्टील तथा पिग आयरन की उत्पत्ति बहुत तेज़ी से बढ़ गई है। विशेषकर सन् १९१८ के उपरान्त तो स्टील और पिग आयरन की उत्पत्ति बेहद बढ़ गई। क्योंकि दिन प्रतिदिन उद्योग-धन्धों की उन्नति हो रही है और रेल तथा जहाज़ों का चलन बढ़ रहा है। इसी कारण लोहे की माँग बहुत बढ़ गई। इसके अतिरिक्त पिछले वर्षों में प्रत्येक देश अनन्त धन राशि व्यय करके अस्त्र-शस्त्रों को जमा करने में लगा रहा। इस कारण भी स्टील की माँग बेहद बढ़ गई।

लोहे और स्पात (Steel) का धन्धा उन्हीं देशों में उन्नति कर सका जहाँ कच्चा माल मिलता है और जो औद्योगिक उन्नति कर गए हैं। कारण यह है कि लोहे और स्पात के धन्धे में बहुत अधिक पूंजी तथा कुशलता की आवश्यकता होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी तथा ब्रिटेन में यह धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। जितना लोहा और स्टील पृथ्वी के सब देशों में तैयार होता है उसका ७५% प्रतिशत इन तीन देशों में तैयार होता है। संयुक्तराज्य अमेरिका तथा योरोपीय देशों को

मिला लें तो पृथ्वी की समस्त उत्पत्ति का लगभग ६० प्रतिशत लोहा इन देशों में तैयार होता है। इनके अतिरिक्त फ्रांस, बैलजियम, स्वीडन तथा स्पेन में भी यह धन्धा उन्नत दशा में है। यह ध्यान में रखने की बात है कि जिन देशों में लोहे और स्टील का धन्धा स्थापित हो चुका है वे ही औद्योगिक उन्नति कर सके हैं। यद्यपि दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया में लोहा यथेष्ट मात्रा में मिलता है किन्तु यहाँ बहुत कम लोहा और स्टील तैयार होता है।

संयुक्त-राज्य अमेरिका के लोहे तथा स्पात का धन्धा

संयुक्तराज्य अमेरिका में सबसे अधिक लोहा और स्टील (स्पात) तैयार किया जाता है। संयुक्तराज्य की लोहे की खानों में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है और समीप ही कोयले की खानें हैं। अतएव यहाँ लोहे के धन्धे की स्थापना के लिए सभी सुविधायें मौजूद हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में लोहे और स्पात (Steel) का धन्धा मिसिसिपी नदी के पूर्व में ही दिखलाई पड़ता है। क्योंकि पूर्वी भाग में ही लोहे और कोयले की खानें हैं। यही नहीं संयुक्तराज्य अमेरिका के पूर्वी भाग में ही देश के प्रधान औद्योगिक केन्द्र हैं। अपलेशियन पर्वत माला के आस पास लोहे के बहुत से कारखाने स्थापित हैं जो प्रति वर्ष बहुत बड़ी राशि में लोहा और स्टील तैयार करते हैं।

पिट्स्बर्ग तथा ओहियो का प्रदेश

संयुक्तराज्य अमेरिका में पिट्स्बर्ग तथा ओहियो नदी की घाटी का प्रदेश लोहे तथा स्पात के धन्धों का मुख्य केन्द्र है। पिट्स्बर्ग को संसार में लोहे के धन्धे का सबसे बड़ा केन्द्र होने का गौरव प्राप्त है। पिट्स्बर्ग के समीप ही कोयले की खानें हैं और लोहा भी मिलता है। इस कारण लोहे का धन्धा आरम्भ में यहाँ स्थापित हो गया। ओहियो नदी की घाटी के मुँह पर स्थित होने के कारण यहाँ लोहा तथा कोयला आसानी से आ सकता है। यही नहीं तैयार माल को यहाँ से अन्य केन्द्रों तक ले जाने की भी सुविधा है। इस कारण यहाँ धन्धा खूब चमक उठा। अब यद्यपि कच्चा लोहा मुख्यतः झील प्रदेश से आता है किन्तु फिर भी धन्धे को क्षति नहीं पहुँची। क्योंकि लोहे को दूरस्थ खानों से लाने के लिए यातायात का उत्तम प्रबंध कर दिया गया है जिससे पिट्स्बर्ग के कारखानों तक झील प्रदेश से लोहा लाने में अधिक व्यय नहीं होता। फिर भी पिट्स्बर्ग अर्थात् उत्तरी आपलेशियन प्रदेश की यही एक कमी है। उत्तम कोयले का समीप ही मिलना नदी का जल तथा उससे यातायात की सुविधा,

घनी आबादी के कारण लोहे की अत्यधिक माँग, तथा रेलवे लाइनों का विस्तार, ये कुछ ऐसी सुविधायें हैं जिनके कारण आज भी पिट्सबर्ग इस धन्धे का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

झील-प्रदेश (Lake Region)

झील प्रदेश में लोहे और स्पात का धन्धा ईरी (Erie) झील के डैट्रायट (Detroit), क्लीवलैंड (Cleveland) और बफैलो इत्यादि बन्दरगाहों, मिचिगन झील के सिरे के केन्द्रों में शिकागो (Chicago), गारी (Gary) ज़िलों में, तथा सुपीरियर झील (Superior Lake) के प्रदेश में डूलिथ (Duluth) में केन्द्रित है। इन केन्द्रों को एक बड़ी सुविधा यह है कि झीलों पर स्थित होने के कारण लोहा तथा कोयला इत्यादि सुविधा तथा कम खर्च से वहाँ तक पहुँच सकता है। यह केन्द्र लोहे और स्पात के बाज़ार से दूर पर है। बात यह है कि यह केन्द्र घनी आबादी तथा औद्योगिक प्रदेश में नहीं है। इस कारण इन कारखानों में तैयार होने वाले लोहे और स्पात की माँग उस प्रदेश में नहीं है। किन्तु कच्चे माल के मिलने की सुविधा होने के कारण तथा यातायात (Transportation) की सुविधा होने के कारण यह प्रदेश इस धन्धे की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया है।

अटलांटिक समुद्र से मिले हुए प्रदेश में मध्य अटलांटिक का प्रदेश महत्वपूर्ण है। न्यू-यार्क (New York) फिलेडैलफिया, (Philadelphia) तथा बाल्टीमोर (Baltimore) के प्रदेश इसके मुख्य केन्द्र हैं। इस प्रदेश को दो मुख्य सुविधायें प्राप्त हैं। प्रथम यह प्रदेश अत्यन्त घने आबादी के औद्योगिक प्रदेश हैं। दूसरे समुद्र के समीप होने से तैयार माल विदेशों को आसानी से भेजा जा सकता है तथा क्यूबा (Cuba) और चिली (Chile) से कच्चा लोहा आसानी से आ सकता है। मध्य अटलांटिक का ही प्रदेश ऐसा है जहाँ स्थानीय आवश्यकता से अधिक लोहा और स्टील तैयार होता है।

दक्षिण अपलेशियन के अल्बामा (Albama) राज्य में लोहा और स्टील तैयार करने की जैसी सुविधा है वैसी अन्य किसी भी देश में नहीं है। अल्बामा प्रान्त में ब्रिमिंगहम (Birmingham) ज़िले में लोहा, कोयला, तथा लाइमस्टोन तीनों हीं पास पास मिलते हैं। इस कारण यह प्रदेश लोहे के धन्धे की दृष्टि से उन्नति कर रहा है। यातायात के साधनों की भी यहाँ सुविधा है। इस कारण दक्षिण में लोहे और स्पात की बढ़ती

हुई माँग को यह पूरा करता है। फिर भी यहाँ स्थानीय आवश्यकता से अधिक पिग आयरन तैयार होता है जो उत्तर की ओर भेज दिया जाता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका के लोहे और स्पात (Steel) के धन्धे की उन्नति पिछले योरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) के उपरान्त विशेषकर हुई। उस समय लोहे और स्टील की माँग इतनी अधिक बढ़ गई कि संयुक्तराज्य अमेरिका के कारख़ानों ने अपनी शक्ति के बाहर लोहा और स्टील बनाने का प्रयत्न किया। इसके उपरान्त भी संसार में लोहे तथा स्टील की माँग बढ़ती गई। यद्यपि संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक लोहा और स्टील तैयार करता है, किन्तु अधिकांश लोहा और स्टील देश में ही खप जाता है। कुल उत्पत्ति का केवल पाँच प्रतिशत स्टील विदेशों को जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में ही लोहे और स्टील की माँग बहुत है। यंत्र तथा मोटर इत्यादि का धन्धा संयुक्तराज्य अमेरिका में इस तेज़ी से बढ़ा है कि सारा लोहा और स्टील इन धन्धों में ही खप जाता है।

योरोप का लोहे तथा स्टील का धन्धा

योरोप में ब्रिटिश, रूर लारेन, सिलीशिया (जर्मनी में) तथा स्वीडन में लोहे का धन्धा मुख्यतः स्थापित है। इन प्रदेशों में लोहा और कोयला समीप ही मिलता है। इस कारण वहाँ यह धन्धा पनप उठा है। यही नहीं कि इन प्रदेशों में लोहा और कोयला बहुतायत से मिलता है वरन ब्रिटिश लोह केन्द्रों तथा रूर लारेन (Rhur-Lorraine) को समुद्र के समीप होने से माल को बाहर भेजने की विशेष सुविधा है। हाँ सिलीशिया (Silesia) अवश्य ही समुद्र से दूर अन्दर की तरफ है।

ब्रिटेन का धन्धा

लोहे और स्टील का धन्धा सबके पहले ब्रिटेन में ही स्थापित हुआ और आरम्भ में बहुत समय तक ब्रिटेन ही संसार में सबसे अधिक लोहा और स्टील तैयार करता था। इङ्गलैंड में लोहे और कोयले की खानें बहुत पास हैं और वे समुद्र से भी दूर नहीं हैं। इस क़ारण यहाँ धन्धे के पनप जाने के लिए सभी सुविधाएँ मौजूद हैं। क्रमशः कुछ लोहे की खानें समाप्त हो गईं तथा बैसीमर (Bessemer) क्रिया का आविष्कार हो जाने के उपरान्त विदेशों से फासफोरस रहित कच्चे लोहे (Iron ore) तथा अन्य प्रकार के कच्चे लोहे को मँगाने की आवश्यकता हुई। इस कारण जो केन्द्र कि बंदरगाहों के समीप थे उन्हें और भी सुविधा हो गई। तटवर्ती केन्द्रों को बाहर से

कच्चा लोहा मँगाने की तथा तैयार माल को बाहर भेजने की विशेष सुविधा प्राप्त है। इसी कारण अधिकांश मुख्य केन्द्र समुद्र के किनारे हैं। जो अन्दर की तरफ हैं वे भी समुद्र से अधिक दूरी पर नहीं हैं। बर्मिंगहम (Birmingham) तथा शैफील्ड ब्रिटेन के प्रधान केन्द्र हैं। यद्यपि यह कुछ अन्दर की तरफ हैं परन्तु फिर भी उन्हें यातायात की बहुत सुविधा है। इसी कारण वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं। ब्रिटेन के लोहे और स्टील के धन्धे की यही एक विशेषता है। लोहा और कोयला समीप ही मिलने के अतिरिक्त बाहर से लोहा मँगाने तथा तैयार माल को बाहर भेजने की भी उन्हें विशेष सुविधा है। इसी भौगोलिक अनुकूलता के ही कारण ब्रिटेन का धन्धा इतना अधिक उन्नति कर गया है।

ब्रिटेन के लोहे तथा स्पात के निम्नलिखित मुख्य केन्द्र हैं—उत्तरी पूर्वी समुद्र तट, डर्बी (Derby), लीसस्टर (Leicester) इत्यादि, दक्षिण वेल्स (South Wales), लिंकन-शायर (Lincolnshire) पश्चिमी समुद्रतट, स्काटलैंड, शैफील्ड (Sheffield) इत्यादि, स्टैफर्डशायर (Stafford-shire) इत्यादि।

ब्रिटेन के कच्चे लोहे की माँग देश की खानों से ही पूरी नहीं हो जाती। लगभग एक चौथाई कच्चा लोहा ब्रिटेन को विदेशों से मँगाना पड़ता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि अधिकांश खानों में घटिया लोहा निकलता है। इस कारण हैमेटाइट (Hematite) लोहा बाहर से मँगाया जाता है। ब्रिटेन की अधिकांश लोहे की खानों में से निकले कच्चे लोहे में २५ से ३० प्रतिशत शुद्ध लोहा होता है। परन्तु कोयले की खानों के समीप होने के कारण यह घटिया लोहा काम में लाया जा सकता है। ब्रिटेन में स्टील केवल उन्हीं प्रदेशों में तैयार किया जाता है जहाँ कि अच्छा कोयला मिलता है। दक्षिण वेल्स, उत्तरी पूर्वी समुद्र तट, तथा स्काटलैंड स्टील बनाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। पश्चिमी समुद्र तट के समीप उत्तम जाति का कोयला न मिलने के कारण स्टील का धन्धा उन्नति नहीं कर सका। वहाँ अधिकतर पिग आयरन ही बनता है।

पिछले योरोपीय महायुद्ध (सन् १९१४-१८) में यहाँ के कारखानों ने अधिक से अधिक लोहा और स्टील बनाना शुरू किया। तबसे यहाँ यह धन्धा बहुत बढ़ गया है। पिग आयरन की उत्पत्ति इतनी अधिक नहीं बढ़ी जितनी की स्टील की। इस कारण बाहर से लोहा मँगा कर तथा पुराने लोहे (टूटी फूटी लोहे की चीज़ों) से स्टील बनाया जाता है। १९३९ में प्रारम्भ होने वाले द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ब्रिटेन के सामने एक समस्या

भयंकर रूप से खड़ी हुई थी अर्थात् ब्रिटेन के कारखाने जितना स्टील (Steel) तैयार करते थे उसकी देश में खपत नहीं हो पाती थी। साथ ही विदेशों में प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक बढ़ गई थी कि ब्रिटिश स्टील जर्मनी तथा अन्य योरोपीय देशों के स्टील की प्रतिस्पर्धा में महँगा पड़ता था। इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रिटेन में मज़दूरी इन देशों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन से विदेशों-मुख्यतः ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तरगत देशों को जाने वाले स्टील में प्रतिवर्ष कमी होती गई। यही नहीं द्वितीय योरोपीय महायुद्ध के पूर्व ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, वैलजियम और लक्सम्बर्ग से थोड़ा स्टील मँगाता था।

रुर लारेन प्रान्त (Ruhr-Lorreine)

यह प्रदेश लोहे और स्टील के धन्धे के लिए योरोप में प्रसिद्ध है। यहाँ के लोहे में फासफोरस का अंश अधिक है। इस कारण जब तक बेसीमर (Bessemer) क्रिया का आविष्कार नहीं हुआ इसका उपयोग स्टील बनाने में नहीं हो सकता था। अतएव बेसीमर क्रिया के आविष्कार के उपरान्त ही लारेन प्रान्त में स्टील का धन्धा चमका। रुर-लारेन प्रदेश फ्रांस वैलजियम लक्सम्बर्ग, तथा पश्चिमी जर्मनी में स्थित है। इस प्रदेश को रुर की कोयले की खानों से ही अधिकांश कोयला मिलता है। सार (Saar) की कोयले की खानें अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अस्तु रुर (Ruhr) प्रदेश का कोयला तथा लारेन (Lorraine) प्रदेश का लोहा ही इस खनिज केन्द्र का आधार है। इस प्रदेश में रुर तथा लारेन ही लोहे तथा स्टील के धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं। यद्यपि लोहे के धन्धे में कोयला ही मुख्य वस्तु है। इस कारण लोहे का धन्धा कोयले की खानों के समीप ही बहुधा स्थित होता है, परन्तु रुर और लारेन में इतनी कम दूरी है कि लारेन के लोहे के कारखाने रुर के कोयले का उपयोग कर लेते हैं।

पिछले योरोपीय महायुद्ध (सन् १६१४—१८) के उपरान्त वार्साई संधि के अनुसार रुर-लारेन प्रान्त का बटवारा इस प्रकार कर दिया गया कि जर्मनी के हिस्से में अधिकांश कोयला, और फ्रांस के हिस्से में अधिकांश लोहा चला गया। इससे पूर्व जर्मनी संयुक्तराज्य अमेरिका को छोड़कर अन्य सब देशों से अधिक लोहा और स्टील तैयार करता था और संसार में सबसे अधिक लोहा और स्टील बाहर भेजता था। वार्साई संधि के उपरान्त लारेन का प्रान्त जर्मनी से छीन लिया गया। इस कारण जर्मनी के धन्धे को क्षति पहुँच गई। कुछ दिनों तो फ्रांस और जर्मनी में तनातनी रही। जर्मनी अपना

कोयला फ्रांस को, तथा फ्रांस अपना लोहा जर्मनी को नहीं देना चाहता था, किन्तु फिर भी जर्मनी के रुर प्रान्त की स्थिति लारेन प्रान्त से अच्छी थी क्योंकि वह स्पेन तथा स्वीडन से लोहा मँगा सकता था किन्तु लारेन को यथेष्ट कोयला मिलना कठिन था। कुछ समय के उपरान्त दोनों में समझौता हो गया और कोयला तथा कच्चा लोहा आपस में ले देकर दोनों काम चलाने लगे। वार्साई संधि के उपरान्त फिर जर्मनी ने अपने धन्धे को बढ़ाना आरम्भ किया और कुछ ही वर्षों में उसके कारखानों की उत्पत्ति १९१४ की उत्पत्ति से कुछ ही कम रह गई।

बैलजियम के लोहे तथा स्पात (Steel) के धन्धे का आधार वहाँ का कोयला तथा सस्ते मज़दूर हैं। आरम्भ में यहाँ लोहा भी निकलता था किन्तु अब तो लोहे की खानें प्राय: समाप्त हो गई हैं और लारेन प्रदेश के लोहे का उपयोग होता है। कोयला भी बैलजियम में यथेष्ट नहीं है इस कारण कोयला भी बाहर से मँगवाना पड़ता है।

जर्मनी का लोहे का धंधा

संसार में जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़ कर सब से अधिक लोहा तथा स्टील तैयार करता है। पिछले योरोपीय महायुद्ध के फल स्वरूप जर्मनी के हाथ से लारेन (Lorraine) तथा लक्समबर्ग (Luxemberg) की लोहे की खानें निकल जाने से तथा रुर की कुछ कोयले की खानें भी फ्रांस को मिल जाने से जर्मनी के धंधे को बहुत क्षति पहुँची किन्तु जर्मनी ने पिछले वर्षों में बड़ी शीघ्रता से अपने धंधे को बढ़ाया है। जर्मनी में जो लोहे की खानें हैं उनमें अधिक लोहा नहीं है। और कच्चे लोहे में शुद्ध लोहे का प्रतिशत भी बहुत कम है। अतएव जर्मनी को स्पेन, स्वीडन, तथा अन्य देशों से लोहा मँगाना पड़ता है।

जर्मनी में लोहे तथा स्टील के धन्धे का प्रधान केन्द्र रैनिश वेस्टफैलिया (Rhenish West Phalia) का प्रदेश है। इसके अतिरिक्त सीगरलैंड (Siegerland) सिलीशिया (Silesia) उत्तर, मध्य, तथा दक्षिण जर्मनी तथा सैक्सनी (Saxony) में भी लोहे के कारखानें हैं। रुर की घाटी में एसेन (Essen) का प्रसिद्ध लोह-केन्द्र है जहाँ कि संसार प्रसिद्ध क्रुप (Krupp) के कारखाने हैं। जर्मनी में जितना लोहा और स्टील तैयार होता है उसका दो तिहाई से अधिक जर्मनी में ही खप जाता है शेष विदेशों को जाता है।

ऊपर लिखी हुई स्थिति सन् १९३९ के पूर्व की है। द्वितीय योरोपीय महायुद्ध के आरम्भ होने पर तो सारी स्थिति ही बदल गई। फ्रांस का

पराभव हो गया. लरेन (Lorrain) तथा लक्सम्बर्ग (Luxemberg) के प्रदेश जर्मनी ने फिर अपने साम्राज्य में मिला लिया। यही नहीं पोलैंड, आस्ट्रिया तथा चैकोस्लावाकिया के लोहे के केन्द्र भी जर्मन साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गए हैं। यदि यह प्रदेश स्थायी रूप से जर्मनी के हाथ में रहे तो आगे चल कर जर्मनी आज से कहीं अधिक लोहा और स्टील तैयार कर सकेगा।

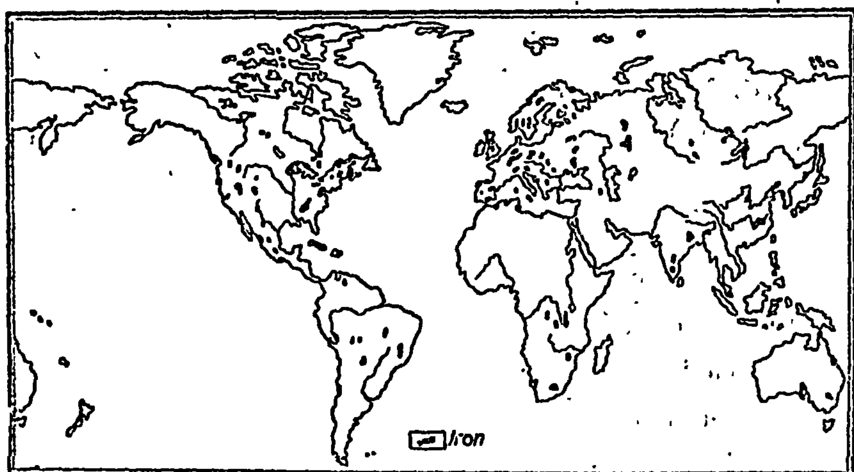
स्वीडन (Sweden)

स्वीडन में लोहे की बहुत खानें हैं और उनमें बहुत अच्छा लोहा भरा पड़ा है। उत्तरी ध्रुव रेखा (Arctic Circle) के आगे बोथनिया (Bothnia) की खाड़ी के पास बहुत अधिक लोहा निकाला जाता है। यहाँ की खान में लोहा बहुत बड़ी राशि में भरा हुआ है। स्वीडन में कोयला नहीं है इस कारण स्वीडन अपना अधिकांश लोहा जर्मनी, ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को भेज देता है। स्वीडन में वन बहुत हैं। देश के आधे से अधिक क्षेत्र फल पर वन खड़े हुए हैं। इस कारण स्वीडन में लोहे को लकड़ी के कोयले से गलाया जाता है। लकड़ी के कोयले से तैयार किया हुआ लोहा कोयले से तैयार किये हुए लोहे की अपेक्षा अच्छा होता है। इस कारण उस लोहे की प्रत्येक देश में मांग रहती है। शैफील्ड (Sheffield) में चाकू, कैंची स्वीडन के लोहे से ही तैयार होती हैं। लकड़ी के कोयले से बने हुए लोहे और स्टील का उपयोग अब बढ़िया यंत्रों के बनाने में किया जाने लगा है। स्वीडन में यन्त्र बनाने का अच्छा धन्धा क्रमशः उन्नति कर रहा है।

पिछले योरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) के उपरान्त जब जैकोस्लावाकिया का नवीन राष्ट्र बनाया गया तो बोहेमिया का प्रान्त जिसमें बहुत सी कोयले की और कुछ लोहे की खानें थी जैकोस्लावाकिया को मिल गया। इसी प्रदेश में संसार प्रसिद्ध स्कोडा (Skoda) के कारखाने हैं।

भूमध्य-सागर (Mediterranean Sea) के समीपवर्ती प्रदेश में लोहे का चिह्न भी नहीं मिलता। केवल रूस में अजफ़ (Azou) बेसिन में लोहे और स्टील का धंधा स्थापित है। पंचवर्षीय योजना के फल स्वरूप इस प्रदेश में लोहे और स्टील का धन्धा आश्चर्यजनक गति से उन्नति कर गया है। स्पेन में बिलबाओ (Bilbao) के बन्दरगाह में लोहे का धन्धा स्थापित है। स्पेन में कोयला न होने के कारण कोयला ब्रिटेन से आता है। कोयला न होने के कारण स्पेन का अधिकांश कच्चा लोहा ब्रिटेन को भेज दिया जाता है।

एशिया में लोहे और स्टील का धन्धा अभी तक अधिक उन्नति नहीं कर सका। जापान में न तो कोयला ही है और न लोहा ही। जो कुछ लोहा और कोयला है भी वह बहुत घटिया है। आरम्भ में तो जापान योरोपीय देशों से लोहा मँगाता था। किन्तु अब कुछ वर्षों से लोहे के कारखाने जापान में भी स्थापित हुए हैं जिनमें मध्यचीन की खानों से निकला हुआ लोहा काम में आता है।



चीन में बहुत उत्तम जाति का लोहा पृथ्वी के गर्भ में भरा पड़ा है। सम्भवतः संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़ कर किसी भी अन्य देश में इतना अधिक लोहा नहीं है। लोहा और कोयला तो चीन में है ही वहाँ मज़दूरी भी बहुत ही सस्ती है। इस कारण भविष्य में यदि चीन को अवसर मिले तो वह संसार का प्रमुख लोहा और स्टील तैयार करने वाला देश बन सकता है। चीन की खनिज सम्पत्ति के ही आकर्षण ने जापान को उस पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया है। चीन में हंकाऊ में आधुनिक ढंग के कारखाने हैं किन्तु अभी यह धन्धा वहाँ पनपा नहीं है। भविष्य में चीन में यह धन्धा पनपेगा उसमें तनिक भी सन्देह नहीं। भारतवर्ष में भी यह धन्धा क्रमशः उन्नति कर रहा है।

लोहे का धन्धा यद्यपि बहुत उन्नति कर गया है परन्तु अभी तक अधिकतर अच्छी जाति का लोहा ही काम में लाया जाता है। किन्तु संसार में अधिकांश लोहा घटिया है। अभी तक जहाँ भी लोहे और स्टील का धन्धा केन्द्रित है वह समीपवर्ती प्रदेशों से ही कच्चा लोहा मँगाते हैं। किन्तु यदि लोहा जलमार्ग से लाया जा सकता हो तो बहुत दूर से भी मँगाया जाता है।

उदाहरण के लिए स्पेन से लोहा ब्रिटेन को जाता है। स्वीडन से राइन नदी के द्वारा लोहा जर्मनी को आता है, तथा सुपीरियर झील के प्रदेश का लोहा *पिट्सबर्ग जाता है। यहाँ तक कि ब्राजिल, मध्य-अमेरिका तथा* मैक्सिको (Mexico) का कच्चा लोहा भी संयुक्त राज्य अमेरिका के कारखानों में काम आता है।

कुछ समय हुआ जब से बिजली द्वारा लोहे को गलाने का प्रयत्न किया गया है नार्वे और स्वीडन में बिजली द्वारा लोहा गलाने में व्यापारिक सफलता भी मिली है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जिस कच्चे लोहे में ४० प्रतिशत शुद्ध लोहा हो उसे बिजली से गलाया जा सकता है। यदि बिजली द्वारा कम खर्चे से लोहा गलाने में सफलता मिल गई तो नार्वे तथा स्वीडन में यह धन्धा खूब चमक उठेगा क्योंकि वहाँ पानी द्वारा बिजली सस्ते दामों में उत्पन्न की जा सकती है।

स्पात (Steel) की उत्पत्ति

संसार की उत्पत्ति का प्रतिशत

संयुक्तराज्य अमेरिका	३७%
जरमनी	१६% (युद्ध के पूर्व)
सोवियत रूस	११%
ब्रिटेन	९%
फ्रांस	६%
जापान	४% (युद्ध के पूर्व)
बैलजियम	३%
इटली	३%
जैकोस्लावाकिया	२%
लक्सम्बर्ग	२%
कनाडा	१.१%
पोलैंड	१.५%
स्वीडन	१%

मोटरकार का धन्धा

यद्यपि मोटरकार का धन्धा अभी पचास वर्ष पुराना भी नहीं है किन्तु उसका प्रचार इतना अधिक बढ़ गया है कि उसका उपयोग रेल से अधिक है। जिस प्रकार वाष्प (Steam) का आविष्कार होने से अधिक दूर के यातायात में घोर क्रान्ति हुई उसी प्रकार मोटर के आविष्कार से थोड़ी दूर के

यातायात में भीषण क्रान्ति हो गई है। मोटरकार का धन्धा अन्ततः लोहे और स्टील के धन्धे पर ही निर्भर है इस कारण औद्योगिक देशों में ही यह धन्धा भी पनप सका।

सर्व प्रथम १८९१ में फ्रांस में मोटरकार बनाया गया। किन्तु प्रारम्भिक मोटरकार बहुत ही भद्दा तथा कठिनाई से चलने वाली सवारी थी, क्योंकि उसमें एक सिलिंडर का गैस इंजन लगाया जाता था। क्रमशः अमेरिकन इंजिनियरों ने उसमें चार सिलिंडर लगा कर उसको सवारी के उपयुक्त बनाया। यही कारण है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह धन्धा बहुत उन्नति कर गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति ६ मनुष्य पीछे एक मोटरकार है, फ्रांस में ९० मनुष्य पीछे १ मोटरकार है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में निचला झील प्रदेश (Lower Lake Region) इस धन्धे का मुख्य स्थान है। लोहा, कोयला तथा लकड़ी मिलने की सुविधा के अतिरिक्त यह प्रदेश मुख्य रेलवे लाइनों के द्वारा पूर्व के सभी प्रधान औद्योगिक केन्द्रों से जुड़ा है। मोटरकार बनाने वाले कारखानों के मुख्य केन्द्र डेट्राइट (Detroit), शिकागो (Chicago), इंडियानापोलिस (Indianapolis), ओहियो (Ohio), क्लीवलैंड (Cleveland) तथा टालेडो (Toledo) इत्यादि हैं। इनमें डेट्राइट (Detroit) इस धन्धे का प्रमुख केन्द्र है। इसी केन्द्र में संसार प्रसिद्ध फोर्ड कम्पनी के कारखाने हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका ने सस्ते तथा स्टैंडर्ड कार बनाने में बहुत उन्नति की है। इसका मुख्य कारण यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में मोटर कार की बहुत माँग है वहाँ का साधारण किसान भी कार रखता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के अतिरिक्त फ्रांस, इङ्गलैंड तथा जर्मनी मुख्य कार तैयार करने वाले देश हैं। फोर्ड कम्पनी ने मैनचेस्टर में अपना विशाल कारखाना स्थापित किया है। फ्रांस, इंगलैंड तथा जर्मनी में अधिकतर अधिक मूल्य के बढ़िया कार बनाये जाते हैं। किन्तु पिछले वर्षों में योरोपीय देशों ने भी सस्ते कार बनाने की ओर ध्यान दिया है और प्रतिस्पर्धा की जा रही है।

यंत्र बनाने का धंधा (Machinery)

यन्त्र (Machinery) मुख्यतः लोहे और स्पात से बनाये जाते हैं। थोड़ी बहुत लकड़ी भी काम में आती है इस कारण जो यन्त्र कि बड़े और भारी होते हैं वे अधिकतर उन्हीं स्थानों पर बनाये जाते हैं जहाँ कि उनकी माँग होती है। उदाहरण के लिए फिलेडैल्फिया

(Philadelphia) में कपड़े के धन्धे में काम आने वाले यन्त्र तैयार किये जाते हैं क्योंकि वहाँ कपड़े का धन्धा स्थापित है। इसी प्रकार मैंनचेस्टर में भी कपड़े के धन्धे में काम आने वाले यन्त्र तैयार किये जाते हैं। जो यंत्र भारी नहीं होते किन्तु जिनमें श्रम बहुत अधिक आवश्यक होता है वह ऐसे स्थानों पर स्थापित किए जाते हैं जहाँ अन्य सुविधाओं के साथ कुशल मज़दूर मिल सकें। उदाहरण के लिये घड़ियों का धन्धा।

अधिकतर यंत्रों (Machineries) का धन्धा वहीं स्थापित होता है जहाँ कि उन यंत्रों की माँग होती है। इससे केवल यही लाभ नहीं होता कि यातायात का खर्च बचता है साथ ही उससे दो लाभ और भी होते हैं। प्रथम, यंत्र बनाने वाले कारखाने अपने इंजिनियरों के द्वारा उन मशीनों का फिटिंग इत्यादि करवा सकते हैं, दूसरे मशीनों में क्या कमी है किस दिशा में सुधार की आवश्यकता है इसकी जानकारी आसानी से हो सकती है। जो लोग कि मशीनों पर काम करते रहते हैं वे उसमें सुधार किस दिशा में होना चाहिए यह भली प्रकार बता सकते हैं। अस्तु अधिकतर मशीनों का धन्धा उन्हीं स्थानों पर केन्द्रित हैं जहाँ कि उनकी विशेष माँग है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, और इङ्गलैंड इस धन्धे में प्रमुख हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में खेती के यंत्र सबसे अधिक तैयार किए जाते हैं। मशीन टूल (मशीनों की मरम्मत करने वाले यंत्र) एंजिन, मोटर तथा अन्य प्रकार की मशीनें औद्योगिक केन्द्रों में तैयार की जाती हैं। एंजिन बनाने में जर्मनी प्रमुख है। रेलवे एंजिन तैयार करने का संसार भर में सबसे प्रसिद्ध केन्द्र फिलीडैलफिया है।

सूती कपड़े के धन्धे के यंत्र (Textile Machinery)

यह यंत्रों का धंधा संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जरमनी और इटली में मुख्यतः केन्द्रित है। संयुक्तराज्य अमेरिका में इस धन्धे का मुख्य केन्द्र मैसाचुसेट्स (Massachusetts) है अब दक्षिण में करोलिना में भी यह धन्धा उन्नति कर गया है।

खेती के यंत्र

संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक खेती के यंत्र तैयार करता है। जिन देशों में मजदूर सस्ते हैं जैसे भारत और चीन में वहाँ खेती में यंत्रों का उपयोग नहीं होता किन्तु जहाँ मजदूरों की कमी है जैसे कनाडा, संयुक्तराज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अरजैनटाइन इत्यादि वहाँ यंत्रों का खेती में बहुत उपयोग होता है।

इलीनायस (Illinois) तथा विस्कानसिन (Wisconsin) इस धन्धे के मुख केन्द्र हैं। इंडियाना ओहियो और न्यू-यार्क में इसके कारखाने हैं।

समुद्री जहाज़ बनाने का धंधा

समुद्री जहाज़ बनाने का धन्धा मुख्यतः ब्रिटेन में केन्द्रित है। ब्रिटेन के नौकाश्रयों (Docks) को एक यह सुविधा है कि वे लोहे के धन्धे के समीप ही स्थित हैं, तथा तट प्रदेश के अत्यधिक टूटे फूटे होने के कारण वहीं के नौकाश्रयों में जहाज़ बनाने की बहुत सुविधा है। संसार के सब देशों में जितने जहाज़ बनते हैं उनके आधे के लगभग ब्रिटेन में तैयार होते हैं। पश्चिमी स्काटलैंड में क्लाइड नदी (River Clyde) उत्तरीय इङ्गलैंड में टाइन नदी पर तथा आयरलैंड के बैल्फास्ट बन्दरगाह पर ब्रिटेन के मुख्य जहाज़ बनाने के केन्द्र स्थित हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में यह धन्धा न्यू-इङ्गलैंड, अटलांटिक महासागर के तटीय प्रदेश, तथा गलफ कोस्ट पर स्थित हैं। जर्मनी में यह धंधा मुख्यतः स्टेटिन बंदरगाह में केन्द्रित है। फ्रांस में मार्सेल्ज़, हैवर, तथा बोर्डियो, इटली में जिनोआ नेपिल्स, तथा वैनिस इस धंधे के केन्द्र हैं। जापान में यद्यपि जहाज़ बनाने के लिए लोहा इत्यादि नहीं है किन्तु फिर भी वहाँ के बन्दरगाहों में जहाज़ बनाये जाते हैं।

कपड़े का धंधा (Textiles)

भोजन के उपरान्त मनुष्य जीवन के लिए कपड़ा ही सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। किन्तु जहाँ कपड़ा आवश्यक है वहाँ कपड़े में नई नई डिज़ाइनों, तथा फैशन परिवर्तन के लिए बहुत गुंजाइश हैं। इस कारण कपड़े का धंधा बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है। जहाँ एक ओर यह आवश्यक वस्तु को तैयार करता है वहाँ दूसरी ओर यह विलासिता (Luxuries) की वस्तु भी तैयार करता है। कपड़े के धंधे में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धंधा सूती कपड़े का है क्योंकि संसार के सभी देशों में इसका अत्यधिक उपयोग होता है।

सूती कपड़े का धंधा (Cotton Textile)

सूती कपड़े का धंधा कच्चे माल (कपास) पर अधिक निर्भर नहीं रहता। क्योंकि रुई आसानी से अभीष्ट स्थान पर ले जाई जा सकती है। इसमें अधिक खर्च नहीं होता। सूती कपड़े का धंधा मुख्यतः जलवायु, शक्ति, श्रमजीवियों की सुविधा, तथा बाज़ार पर निर्भर है।

जलवायु का इस धंधे पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। सूत के

कातते समय तथा कपड़ा बिनते समय वायु में नमी होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि वायु शुष्क होगी तो तार टूट जावेंगे। जितना अधिक बारीक सूत होगा उतना ही नमी की अधिक आवश्यकता होगी। लंकाशायर की सूती कपड़े का धंधा जलवायु के कारण ही वहाँ केन्द्रित है। इङ्गलैंड के पश्चिमी भाग में पहाड़ियों के कारण पूर्वीय शुष्क वायु नहीं पहुँच सकती। इसके अतिरिक्त सब महीनों में वर्षा होती है इस कारण वायु में नमी बनी रहती है। किन्तु अब पानी की भाप तैयार करके उसको पाइपों द्वारा कारखाने के कमरों में (जहाँ कताई बुनाई होती है) छोड़ने से कारखाने के अंदर की वायु नम कर दी जाती है। इस नवीन पद्धति के आविष्कार से उन स्थानों में भी सूती धंधा पनप उठा है जहाँ की वायु शुष्क है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष में अहमदाबाद इत्यादि केन्द्रों की वायु गर्मी के मौसम में बहुत शुष्क होती है किन्तु भाप के द्वारा कारखाने की वायु को नम बना लेते हैं। हाँ उससे कुछ खर्चा बढ़ जाता है। सूती कपड़े के धंधे में पानी की भी आवश्यकता पड़ती है। भिन्न भिन्न धोने की क्रियाओं में पानी की आवश्यकता होती है अतएव जहाँ पानी की बहुतायत होती है वहाँ धंधे को स्थापित करने में सुविधा होती है। लंकाशायर में सूती कपड़े के कारखाने अधिकतर नहरों अथवा नदियों के किनारे बसे हुए हैं। परन्तु पानी धंधे के लिए नम वायु की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण है।

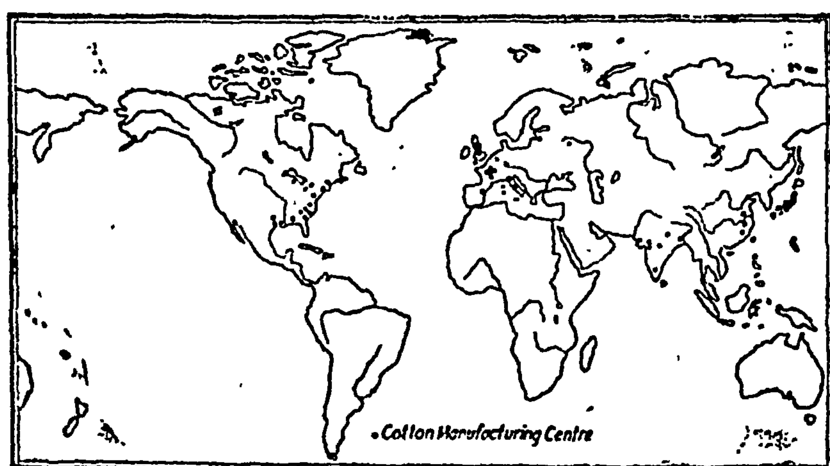
कुशल बुनकरों (Weavers) तथा अन्य मज़दूरों के ऊपर भी कपड़े का धंधा बहुत कुछ निर्भर रहता है। इङ्गलैंड में जो सूती कपड़े का धंधा इतना अधिक उन्नति कर गया है, और पैनाइन (Pennine) प्रदेश में जो यह धंधा केन्द्रित हो गया उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ ऊनी कपड़े का धंधा पहले से ही उन्नत अवस्था में था, तथा ऊनी कपड़ों को बुनने वाले कुशल बुनकर मौजूद थे। आज भी जो लंकाशायर केन्द्र अन्य सूती कपड़े के केन्द्रों की प्रतिस्पर्द्धा में खड़ा हुआ है उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ कुशल बुनकर तथा अन्य कारीगर मिलते हैं। जापान के सूती धंधे को रेशमी कपड़ा बुनने वालों के कारण बहुत सहायता मिली है। भारतवर्ष में भी बम्बई तथा अहमदाबाद में अधिकांश जुलाहे और कोरी जो कि पहिले हाथ कर्घे पर कपड़ा बुनते थे काम करते हैं।

सूती कपड़े के धंधे के लिए तैयार माल बाज़ार तक ले जाने की सुविधा अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। संसार के सभी प्रमुख सूती कपड़े के केन्द्र उन प्रदेशों से दूर हैं जहाँ कपड़े की माँग अधिक है। उदाहरण के लिए लंकाशायर के सूती कपड़ों के कारखानों का कपड़ा पूर्वीय देशों में बिकता

है, जापान के कपड़े का बाज़ार भारतवर्ष तथा चीन इत्यादि देशों में है, तथा संयुक्तराज्य अमेरिका में बना हुआ कपड़ा, दक्षिण अमेरिका तथा पश्चिमीय द्वीप समूह में बिकता है। अतएव माल लाने और ले जाने की सुविधा पर भी सूती कपड़े के धंधे का केन्द्रित होना निर्भर है। भारतवर्ष में जो सर्वप्रथम बम्बई में सूती कपड़े का धंधा केन्द्रित हुआ वह केवल इस कारण कि वहाँ समुद्र द्वारा योरोप से मशीनरी तथा कोयला मँगाने की सुविधा थी और कपास को भीतरी भाग से मँगाने तथा कपड़े को अन्दरूनी भाग में रेल द्वारा ले जाने की सुविधा थी।

सूती कपड़े के धंधे के लिए बाज़ार सबसे महत्त्वपूर्ण है। ब्रिटेन का सूती कपड़े का धंधा केवल इस कारण इतना अधिक चमक उठा क्योंकि उसका साम्राज्य विशाल था और उस राजनैतिक प्रभुत्व का फल यह हुआ कि ब्रिटिश माल के लिए वह विस्तृत बाज़ार बन गया। जैसे, जैसे ब्रिटेन का यह राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव कम होता जा रहा है वैसे ही वैसे उसके धंधों की गति मंद होती जा रही है। आज इङ्गलैंड के सूती कपड़े की स्थिति इतनी अच्छी नहीं है जितनी की आज से २५ या ३० वर्ष पहिले थी। भारतवर्ष में बम्बई की प्रतिस्पर्द्धा में जो अहमदाबाद, सूरत, नागपुर, कानपूर तथा अन्य केन्द्र स्थापित हो गए और क्रमशः धंधा देश के भीतरी भाग की ओर बढ़ने लगा उसका एकमात्र कारण यह है कि यह केन्द्र सूती कपड़े के बाजार के मध्य में स्थित है।

सूती कपड़े के धंधे की दृष्टि से जगत में निम्नलिखित देश प्रमुख हैं।



१ ब्रिटेन, २ संयुक्तराज्य अमेरिका, ३ जापान, ४ जर्मनी, ५ फ्रांस, ६ भारतवर्ष, ७ इटली, ८ चीन। इनमें ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा

जापान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पिछले वर्षों में लंकाशायर के धंधे को अन्य देशों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण गहरा धक्का लगा है और क्रमशः लंकाशायर की उत्पत्ति पहले से कुछ कम होती जा रही है। हाँ जापान ने पिछले वर्षों में बहुत उन्नति कर ली है। प्रतिवर्ष वह अधिकाधिक सस्ता कपड़ा बनाकर पूर्वी एशिया के बाज़ारों में बेचता है। किन्तु चीन से युद्ध में फंस जाने के कारण उसके धंधे की गति भी कुछ वर्षों के लिए मंद पड़ गई। एशिया के बाज़ारों में प्रथम योरोपीय महायुद्ध (१९१४) के पूर्व लंकाशायर का ही प्राधान्य था। जापान का सूती कपड़े का धंधा उस समय शैशव अवस्था में था। किन्तु महायुद्ध के दिनों में लंकाशायर का कपड़ा आना बंद हो गया। इस कारण जापान को अपूर्व अवसर मिला। सच तो यह है कि उस समय भारत तथा अन्य एशियाई देशों में सूती कपड़े का अकाल पड़ गया। युद्ध के समय भारतवर्ष के सूती कपड़े का व्यवसाय भी चमका किन्तु जापान के सूती वस्त्र व्यवसाय ने तो आश्चर्य जनक उन्नति कर ली। चीन, भारतवर्ष, तथा अन्य एशियाई देशों के बाज़ारों को जापान ने हथिया लिया।

यद्यपि प्रथम योरोपीय युद्ध के समाप्त होने पर लंकाशायर का माल भारतीय तथा अन्य उपनिवेशों में फिर आने लगा किन्तु जापान और संयुक्तराज्य अमेरिका के सूती वस्त्र व्यवसाय की उन चार वर्षों में जो आशातीत उन्नति हो गई उसके फल स्वरूप लंकाशायर के दो प्रबल प्रतिद्वन्द्वी उत्पन्न हो गए। यही नहीं भारतवर्ष तथा चीन इत्यादि देशों में भी सूती वस्त्र व्यवसाय पनप उठा। अतएव लंकाशायर का वस्त्र व्यवसाय पूर्व स्थिति को नहीं पहुँच सका।

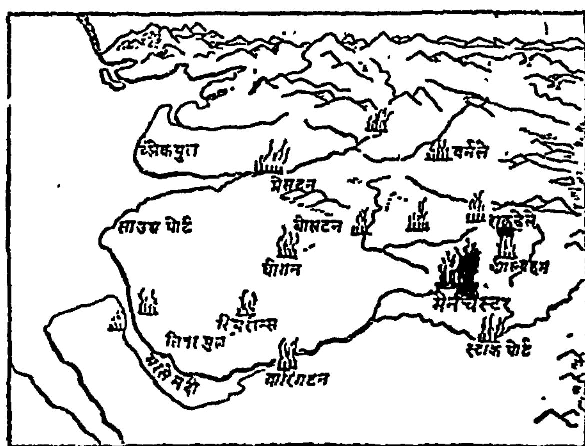
ब्रिटेन का सूती कपड़े का धंधा

सूती कपड़े का प्रधान केन्द्र लंकाशायर का प्रान्त है। यह कांऊटी यद्यपि पहाड़ियों से भरी हुई है परन्तु पहाड़ियाँ अधिक ऊँची नहीं हैं। यहाँ कोयले की खानें भी बहुत हैं। इन्हीं खानों के समीप कपड़े के केन्द्र स्थापित हैं। लंकाशायर के अतिरिक्त यार्कशायर, डरबीशायर, तथा चेशायर (Cheshire) में सूती कपड़े के कारखाने हैं। ब्रिटेन अन्य सब देशों से अधिक कपड़ा बनाता है। ब्रिटेन के सूती धंधे की उन्नति के मुख्य कारणों का हम दिग्दर्शन ऊपर करा चुके हैं। जलवायु, कोयला, कुशल श्रमजीवी, बाज़ार पर प्रभुत्व, और माल ले जाने की सुविधा के ही कारण यहाँ का धन्धा इतनी अधिक उन्नति कर गया है।

ब्रिटेन में कपास उत्पन्न नहीं होती क्योंकि यहाँ के जलवायु में कपास उत्पन्न हो ही नहीं सकती। अतएव कपास संयुक्तराज्य अमेरिका से मँगाई

जाती है। लंकाशायर का नम जलवायु बारीक और बढ़िया सूत कातने तथा कपड़ा बुनने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। कुछ वर्षों से संयुक्तराज्य अमेरिका कपास कम भेजने लगा है क्योंकि सूती कपड़े का धन्धा वहाँ भी बहुत उन्नति कर गया है। इस कारण लंकाशायर के मिल मालिकों को यह भय होने लगा था कि भविष्य में बढ़िया कपास यथेष्ट राशि में नहीं मिल सकेगी। इसी कारण ईजिप्शियन सुदान (Sudan) और गायना (Guinea) में कपास की पैदावार बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। जितनी कपास ब्रिटेन विदेशों से मँगाता है उसकी लगभग ७० प्रतिशत संयुक्तराज्य अमेरिका से और शेष ईजिप्ट (मिश्र) युगंडा, तथा अन्य अफ्रीका प्रदेशों से आती है। पिछले दिनों में भारतवर्ष से कुछ कपास लंकाशायर को जाने लगी है।

वह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि लंकाशायर में यह धन्धा केन्द्रित है। किन्तु लंकाशायर के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न क्रियाओं की प्रधानता है। उदाहरण के लिए लंकाशायर के दक्षिणी भाग में तथा



चेशायर और डर्बीशायर के निकटवर्ती प्रदेश में सूत कातने का धन्धा केन्द्रित है। मैंचेस्टर ओल्डहम (Oldham) बोल्टन (Bolton) स्टैलीब्रिज (Stalybridge) तथा बरी (Bury) सूत कातने के प्रधान केन्द्र हैं। लंकाशायर के उत्तर में कपड़ा बुनने का धन्धा केन्द्रित है। ब्लैकबर्न (Blackburn) प्रेस्टन (Preston) डारविन (Darwen) तथा नेल्सन (Nelson) सूती कपड़े के धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं। सूती कपड़े के केन्द्रों में भी भिन्न भिन्न केन्द्र एक विशेष प्रकार के कपड़े तैयार करते हैं। उदाहरण के लिए प्रेस्टन में बढ़िया कपड़े (Fancy goods) तैयार होते

हैं। रंगीन कपड़े कोलने (Colne) में तथा धोतियाँ ब्लैकबर्न में बनती हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कपड़ा बुनने के केन्द्रों में सूत कातने के कारखानें नहीं हैं अथवा सूत कातने के केन्द्रों में कपड़ा बुनने के केन्द्र नहीं हैं। लंकाशायर के बाहर लॉंग-ऐटन (Long-Eaton) ग्लासगो (Glasgow) नाटिंगहम (Nottingham) तथा पैस्ले (Paisley) मुख्य सूती कपड़े के धन्धे के केन्द्र हैं। यह केन्द्र ऐसी जगह स्थित हैं जहाँ समुद्र की नम हवा खूब आती है।

ब्रिटेन के सूती कपड़े के धंधे की विशेषता यह है कि वहाँ बढ़िया कपड़ा ही अधिकतर तैयार किया जाता है। मोटा कपड़ा बहुत कम बनाया जाता है। जब से जापानी और भारतीय कपड़े की स्पर्द्धा बढ़ गई तबसे तो ब्रिटेन के कारखानों ने अधिकाधिक बढ़िया कपड़ा बनाने की ओर ही अधिक ध्यान दिया है। पिछले वर्षों में जापान की प्रतिस्पर्द्धा इतनी तीव्र हो गई कि ब्रिटेन के धंधे में बहुत परिवर्तन हो गए हैं। यही नहीं कि वहाँ के कारखाने अधिकाधिक बढ़िया कपड़ा बनाने लगे हैं वरन प्रबंध तथा व्यवस्था में सुधार करने तथा व्यय को कम करने की दृष्टि से मिलों का एकीकरण (Amalgamation) किया जा रहा है जिससे जापान की प्रतिस्पर्द्धा का सामना किया जा सके।

इस प्रदेश में सूती कपड़े के धंधे के साथ ही साथ रंगाई, छपाई तथा कपड़े के धन्धे की मशीनें बनाने का धन्धा भी चल पड़ा है। कारण यह है कि कपड़े की रँगाई और छपाई होती है अतएव यह सहायक धन्धे भी मुख्य धन्धे के आस पास ही केन्द्रित हैं। कोयला और लोहा समीप ही होने के कारण मशीनें बनाने का धन्धा भी यहाँ उन्नति कर गया है क्योंकि उनकी माँग इसी प्रदेश में है।

ब्रिटेन के निर्यात व्यापार (Export Trade) में सूती कपड़ा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जितने मूल्य का कुल निर्यात (Export) व्यापार होता है। उसके २० प्रतिशत मूल्य का केवल कपड़ा बाहर जाता है। अधिकतर ब्रिटेन का कपड़ा भारतवर्ष, तथा ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत देशों को जाता है। लिवरपूल और मैंचेस्टर यहाँ के मुख्य बंदरगाह हैं। लिवरपूल अमेरिका से आई हुई कपास की बहुत बड़ी मंडी है।

जगत में संयुक्तराज्य अमेरिका का सूती कपड़ा तैयार करने वाले देशों में दूसरा स्थान है। वास्तव में संयुक्तराज्य अमेरिका का सूती कपड़े का धन्धा

संयुक्तराज्य अमेरिका का सूती कपड़े का धंधा

अपलेशियन (Appalachian) पर्वतमाला के पूर्व में मेन (Maine) से अलबामा (Alabama) तक जो प्रदेश फैला हुआ है उसमें स्थित है। सूती कपड़े का धन्धा इस पूर्वीय प्रदेश के तीन विभागों में विशेष रूप से केन्द्रित है। (१) न्यूइङ्गलैंड (New England) रियासत, (२) मध्य अटलांटिक की रियासतें (३) दक्षिणी रियासतें। आरम्भ में न्यू इङ्गलैंड में सबसे अधिक कारखाने थे किन्तु अब दक्षिणी रियासतों की उत्पत्ति बहुत बढ़ गई है और दक्षिण प्रदेश ही सूती धन्धे का प्रमुख केन्द्र बन गया है। फाल रिवर (Fall River) न्यू बेडफोर्ड (New Bedford) न्यू इङ्गलैंड के प्रमुख केन्द्र हैं। मध्य अटलांटिक रियासतों में फिलेडैल्फिया (Philadelphia) पैनसलवेनिया (Pennsylvania) न्यू-यार्क (New York) तथा मैरीलैंड (Maryland) में सूती कपड़े के कारखाने हैं। इनमें फिलेडैलफिया प्रमुख केन्द्र है। मध्य अटलांटिक रियासतों में बनियायन, मोजा तथा अन्य बुनावट की चीजें बहुत तैयार होती हैं। न्यू यार्क पैनसलवेनिया फिलेडैल्फिया तथा मोहाक की घाटी में स्थित कोहोस (Cohoes) में निटिंग का धन्धा (Knitting Industry) केन्द्रित है। दक्षिण में उत्तरी तथा दक्षिणी करोलिना (Carolina) तथा ज्यार्जिया (Georgia) में भी यह धन्धा केन्द्रित है।

न्यू-इङ्गलैंड में सूती कपड़े का धन्धा आरम्भ में जल-शक्ति की बहुतायत के कारण स्थापित हुआ। फाल रिवर (Fal1 River) लावेल (Lowell) इत्यादि केन्द्रों में सूती कपड़े के कारखाने इस कारण स्थापित किए गए क्योंकि वहाँ जल-शक्ति मिलने की सुविधा है। किन्तु आगे चल कर सूती कपड़े के धन्धे में वाष्प का अधिक उपयोग होने लगा इस कारण न्यू इङ्गलैंड के दक्षिण में स्थित केन्द्रों की अधिक उन्नति हो गई क्योंकि वहाँ कोयला मिलने की सुविधा है। न्यू-इङ्गलैंड के कारखाने अधिकतर बढ़िया कपड़ा तैयार करते हैं। फिनिशिंग, रंगाई और छपाई का काम भी यहाँ बहुत होता है। दक्षिण के कारखानों का बना हुआ कपड़ा यहाँ रंगाई छपाई तथा फिनिशिंग के लिए आता है।

पिछले कुछ वर्षों में दक्षिणी रियासतों में इस धन्धे की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। अब दक्षिण की रियासतें ही सबसे अधिक कपड़ा तैयार करती हैं। दक्षिण के सूती कपड़े के धन्धे को निम्नलिखित सुविधायें हैं। (१) दक्षिण कपास बहुत अधिक उत्पन्न करता है अतएव दक्षिण में स्थित कारखानों को कपास सस्ते दामों पर मिल जाती है क्योंकि उन्हें कपास को

लाने तथा उसे गाँठों में बाँधने का व्यय नहीं देना पड़ता। (२) इस प्रदेश में भी जल-शक्ति की बहुतायत होने से शक्ति सस्ते दामों पर मिलती है। (३) इन रियासतों को सस्ते मज़दूरों की बहुत बड़ी सुविधा है। पीडमॉंट (Piedm nt) के प्रदेश से अधिकांश मज़दूर इन कारखानों में काम करने आते हैं। यहाँ मज़दूरी संयुक्तराज्य के अन्य प्रदेशों से कम है। यही कारण है कि दक्षिणी रियासतों ने पिछले दिनों में आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है। किन्तु दक्षिणी रियासतों में सब सुविधायें होते हुए भी एक असुविधा है—वहाँ का पानी फिनिशिंग के लिए अनुपयुक्त है। इसी कारण अधिकतर कपड़ा न्यू इंगलैंड में फिनिशिंग के लिये भेजा जाता है किन्तु अब कुयें खोदकर तथा पानी को छानकर ब्लीचिंग (Bleaching) के योग्य बनाया जाता है और फिनिशिंग की क्रिया की जाने लगी है।

अधिकतर संयुक्तराज्य अमेरिका में और विशेषकर दक्षिणी रियासतों में मोटा कपड़ा तैयार किया जाता है। ब्रिटेन की तुलना में संयुक्तराज्य अमेरिका का कपड़ा बहुत घटिया और मोटा होता है यही कारण है कि संयुक्तराज्य अमेरिका के कारखानों में ब्रिटेन तथा अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक कपास खप जाती है।

जापान का सूती कपड़े का धंधा

जापान के सूती कपड़े के धन्धे की उन्नति पिछले चालीस वर्षों में आश्चर्यजनक गति से हुई है। जहाँ १९०७ में जापान के कारखानों में केवल १३६० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ वहाँ १९३० में लगभग एक अरब साठ करोड़ गज़ से भी अधिक कपड़े तैयार किये गये। देखते-देखते जापान ने लंकाशायर की प्रतिस्पर्द्धा में उसके कपड़े के बाज़ारों को छीन लिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि यदि जापान ने इसी प्रकार उन्नति की तो वह सम्भवतः बहुत आगे बढ़ जायेगा।

जापानी सूती कपड़े के धन्धे की इस आश्चर्यजनक उन्नति के निम्नलिखित कारण हैं:—(१) जलवायु की अनुकूलता, (२) सस्ती जल शक्ति, (३) माल लाने तथा ले जाने की सुविधा, (४) सस्ते और कुशल मज़दूर, (५) भारतवर्ष तथा चीन जैसे विशाल महाराष्ट्रों के समीप होने के कारण वहाँ से कपास मँगाने तथा उन देशों के बाज़ारों में कपड़ा बेंचने की सुविधा, (६) राज्य का प्रोत्साहन तथा संरक्षण, (७) धन्धे की व्यवस्था और संगठन अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अच्छा होना, (८) मशीनों का रा उपयोग करना।

जापान में मिल मज़दूर बहुत कम मज़दूरी पर काम करते हैं। सूती कपड़े के धन्धे में अधिकांश मज़दूर स्त्रियाँ हैं। उनकी मज़दूरी अन्य देशों की तुलना में बहुत कम हैं। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि मज़दूर कुशल नहीं होंगे, जापानी मज़दूर कुशल होते हैं और अच्छा काम करते हैं। जापानियों ने मशीनों में बहुत सुधार किया है जिससे कपड़ा तैयार करने का ख़र्चा बहुत कम होता है। उनका बराबर यह प्रयत्न रहता है कि किसी प्रकार लागत व्यय कम किया जाय। जापानी कारखाने रात और दिन काम करते हैं अस्तु वहाँ मशीनों का पूरा पूरा उपयोग होता है और मशीनों के पुरानी हो जाने तथा घिस जाने पर नई और बढ़िया मशीन खरीद ली जाती है।

जापान से चीन और भारतवर्ष पास है इस कारण तैयार माल को इन बाज़ारों में भेजने की सुविधा रहती है। साथ ही जापानी रेलें तथा जहाज़ी कम्पनियाँ जो माल विदेशों का जाता है उस पर अपेक्षाकृत बहुत कम किराया लेती हैं। किसी किसी माल पर तो जाहाज़ी कम्पनियाँ अन्य देशों की कम्पनियों से पचास प्रतिशत कम किराया लेती हैं।

जापान के दाक्षिणी प्रदेश में मुख्यतः यह धन्धा केन्द्रित है। इस धन्धे के मुख्य केन्द्र ओसाका (Osaka) नागोया (Nagoya) और टोकियो (Tokiyo) हैं। ओसाका प्रमुख केन्द्र है। अभी तक जापानी कारखाने अधिकतर घटिया कपड़ा तैयार करते थे किन्तु पिछले कुछ वर्षों से बढ़िया कपड़े तैयार करने का प्रयत्न किया जा रहा है अस्तु अमेरिकन कपास की खपत तेज़ी से बढ़ रही है। जापानी कपड़े के मुख्य खरीदार भारतवर्ष तथा चीन हैं। चीन और जापान युद्ध के कारण जापानी कपड़े की माँग चीन में बहुत कम हो गई। इस कारण जापानी धन्धे को क्षति पहुँची है।

जापान में कपास उत्पन्न नहीं होती। अधिकांश कपास भारतवर्ष तथा संयुक्तराज्य से आती है। कुछ कपास ईजिप्ट तथा चीन से भी आती है। पिछले वर्षों में जापान ने संयुक्तराज्य अमेरिका की कपास को पहले की अपेक्षा अधिक खरीदना प्रारम्भ किया है क्योंकि वहाँ बढ़िया कपड़ा तैयार किया जाने लगा है। जापानी कारखानों में भारतीय कपास को बढ़िया अमेरिकन कपास में मिलाकर बारीक सूत कातने का आविष्कार किया गया है। यह खोज बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। पहिले जापान भारतवर्ष अपनी आवश्यकता के ६५ प्रतिशत कपास खरीदता था किन्तु अब ४५ प्रतिशत से कुछ ही अधिक खरीदता है। मिश्र की कपास की खपत भी जापान में बढ़ रही है। चीन जापान युद्ध से जापान के धन्धे की प्रगति रुक गई है। यदि इस युद्ध के फलस्वरूप जापान का चीन पर प्रभुत्व स्थापित हो

गया तब तो जापान का सूती कपड़े का धन्धा और भी पनप उठेगा। यदि चीन विजयी हो गया तो चीन का बाज़ार जापान के हाथ से निकल जावेगा जिसका बुरा प्रभाव धन्धे पर अवश्य पड़ेगा।

जर्मनी

जर्मनी का सूती कपड़े का धन्धा मुख्यत: सैक्सनी (Saxony) तथा वैस्टफ़ेलिया (Westphalia) के प्रदेश हैं। सैक्सनी में कैमनिज (Chemnitz) प्लायन (Plauen) ज्वीकाऊ (Zwickau) तथा वैस्टफ़ेलिया में मुनचन (München) ग्लैडबाच (Gladbach) बारमन (Bremen) और ऐल्बरफ़ेल्ड (Alberfeld) मुख्य केन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त राइनलैंड, सिलीशिया दक्षिण जर्मनी में भी कुछ केन्द्र हैं जहाँ सूती कपड़े का धन्धा केन्द्रित है। पिछले योरोपीय युद्ध के फल स्वरूप जर्मनी के सूती कपड़े का प्रमुख केन्द्र अल्सैटियन (Alsatian) उससे छिन गया। अल्सैटियन ही जर्मनी का ऐसा केन्द्र था जहाँ की जलवायु बढ़िया तथा बारीक सूत कातने तथा बढ़िया कपड़ा बुनने के लिए अनुकूल थी। जर्मनी ने १६३६ के युद्ध में उसे फिर अपने अधिकार में कर लिया।

फ्रांस

फ्रांस में भिन्न भिन्न प्रकार के फैशनेबिल डिज़ाइन का कपड़ा बनाने का चलन है। एक ही प्रकार का बहुत कपड़ा वहाँ नहीं बनाया जाता। उत्तर पूर्वी कोयले की खानों के समीप वोसजेस (Vosges) प्रदेश में तथा अल्सेस (Alsace) और सेंट इटिनी (St. Etienne) के ज़िलों में केन्द्रित है। इनके अतिरिक्त रोयन (Rouen) नैनर्टीज़ (Nantes) ज़िलों में भी सूती कपड़े के कारखाने हैं।

इन देशों के अतिरिक्त इटली, चीन तथा भारतवर्ष में भी यह धन्धा उन्नति कर रहा है। प्रथम योरोपीय महायुद्ध के पूर्व १६१३ में ब्रिटेन जगत का तीन चौथाई कपड़ा तैयार करता था किन्तु अब वह पैंतालीस प्रतिशत से भी कम कपड़ा तैयार करता है। भविष्य में जापान, अमेरिका तथा अन्य देशों की प्रतिस्पर्द्धा में लंकाशायर तभी खड़ा रह सकेगा जब कि वह लागत खर्च के घटाने तथा धन्धे की नवीन व्यवस्था करने में सफल होगा।

सूती कपड़े के धन्धे के साथ साथ सब देशों में कारखानों की खराब कपास (Waste Cotton) को कातकर उसका मोटा कपड़ा बनाने का धन्धा चल पड़ा है। लंकाशायर में यह धन्धा बहुत उन्नति कर गया है।

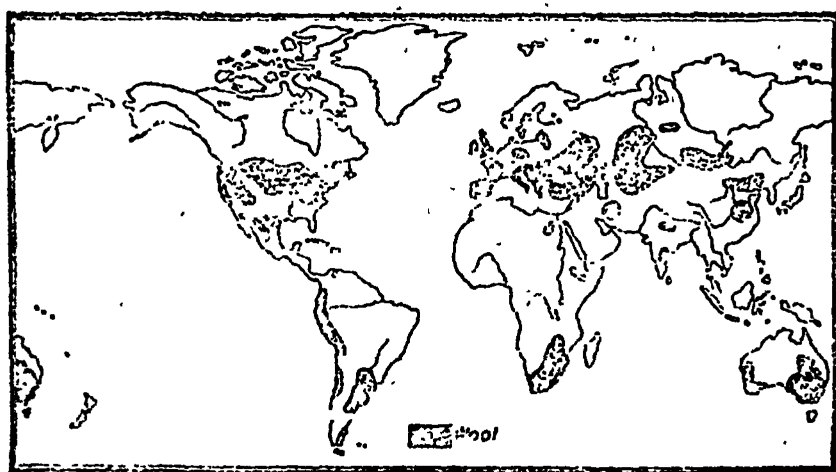
यहाँ तक कि अन्य देशों से कारखानों की खराब कपास (Waste Cotton) मँगाकर वहाँ उसको कात कर मोटा कपड़ा तैयार किया जाता है।

संसार में प्रमुख देशों में तकुओं (Spindles) की संख्या

संयुक्तराज्य अमेरिका	२५,३७८,०००
जापान	११,५०२,०००
भारत	१६,०५४,०००
चीन	४,४५०,०००
ब्रिटेन	३६,३२२,०००
जरमनी आस्ट्रिया	१२,६६७,०००
रूस	१०,३५०,०००
फ्रांस	६,७६४,०००
इटली	५,३२४,०००
ब्राजील	२,७६५,०००

ऊनी कपड़े का धन्धा

ऊनी कपड़े की माँग ठण्डे प्रदेशों में बहुत अधिक है। इसी कारण ऊनी कपड़े का धन्धा शीतोष्ण (Temperate) देशों में ही पाया जाता है। ऊनी धन्धे की विशेषता यह है कि जहाँ ऊन उत्पन्न होता है वहीं ऊनी कपड़े के कारखाने स्थापित किए गए हैं।



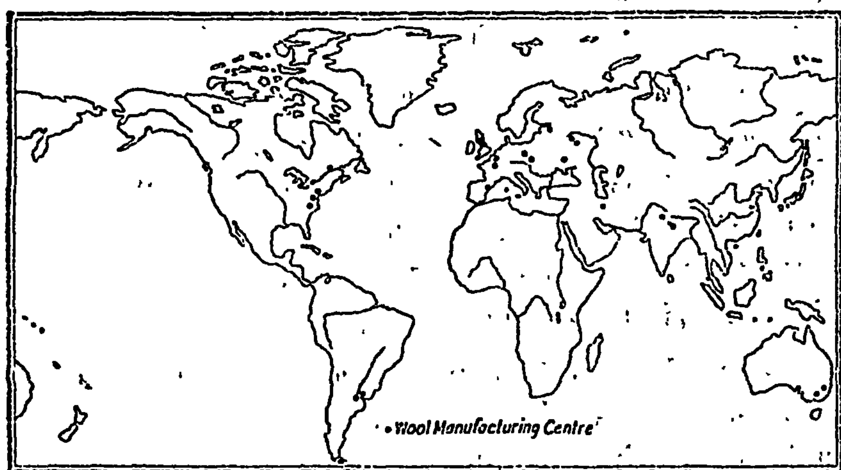
ऊनी कपड़े के धन्धे के लिए निम्नलिखित सुविधाओं की आवश्यकता होती है। (१) ऊन मिलने की सुविधा, (२) मीठा और स्वच्छ जल

जिससे ऊन को धोने, रंगने तथा अन्य क्रियाओं के करने की सुविधा हो। (३) शक्ति, (४) कुशल मजदूर, (५) माल लाने तथा ले जाने की सुविधा। यद्यपि ऊनी कपड़े का धन्धा आधुनिक ढंग से संगठित हो गया है और बड़े बड़े कारखाने स्थापित हो गए हैं परन्तु फिर भी प्रत्येक देश में जहाँ ऊन उत्पन्न होता है ऊनी कपड़ा कम्बल तथा अन्य ऊनी सामान तैयार करने का घरेलू धन्धा (Cottage Industry) प्रचलित है। ऐसा कोई देश नहीं हैं जहाँ ऊनी कपड़े का घरेलू धन्धा प्रचलित न हो। जिन देशों में ऊन उत्पन्न होता है वहाँ आज भी यह धन्धा जीवित अवस्था में है। स्काटलैंड, वेल्स, दक्षिण अमेरिका, भारतवर्ष, जर्मनी, फ्रांस तथा अन्य देशों में घरेलू धन्धा गाँवों में और खेतों पर खूब होता है।

ऊन एक सा नहीं होता, कपास से अधिक कीमती होता है और उसका कपड़ा बनाना सूती कपड़े की तुलना में कठिन है। किन्तु उसके शरीर की गरमी की रक्षा करके के अद्भुत गुण के कारण उसकी ठंडे देशों में बहुत माँग है। यह तो पहले कहा जा चुका है कि ऊन एक सा नहीं होता। ऊन की गाँठों में अच्छा, साधारण तथा बुरा सभी प्रकार का ऊन निकलता है। अतएव कारखानों में ऊन को छाँटा जाता है। इसके उपरान्त ऊन को साफ मीठे पानी के हौज़ में जिसमें साबुन या अमोनिया घुला रहता है, डाला जाता है। एक किनारे से दूसरे किनारे तक ऊन को चलाया जाता है फिर उसको रोलरों से दबाते हैं। इससे जो भी ऊन की गन्दगी होती है, निकल जाती है। जो कुछ मिट्टी तथा काँटे इत्यादि रह जाते हैं उनको रोलरों के द्वारा निकाल दिया जाता है। इनके उपरान्त ऊन को रोलरों में दबाकर उसको एकसा किया जाता है। इसे Carding कहते हैं। इसके उपरान्त ऊन की पट्टियाँ या लम्बी पोनी बना ली जाती हैं। ऊन को काँटेदार कातने तथा बुनने की क्रियायें रुई जैसी ही हैं। जब कपड़ा तैयार हो जाता है तो फिर उसे धोकर साबुन घुले हुए पानी से तर करके लपेट दिया जाता है। इससे लाभ यह होता है कि कपड़े की सतह एक सी हो जाती है। बुनावट नहीं मालूम पड़ती। इसे फुलिंग (Fulling) कहते हैं। इसके उपरान्त कपड़े को साफ करके भाप से सुखा कर दबाया जाता है।

ऊनी कपड़े का धन्धा विशेषकर ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका, जर्मनी, रूस, फ्रांस, जापान, जैकोस्लाविका तथा बैलजियम में होता है। इधर कुछ वर्षों से इटली, आस्ट्रेलिया तथा जापान में भी यह धन्धा पनप रहा है। इन देशों में ऊनी कपड़े के कारखाने इस कारण स्थापित हुए क्योंकि यहाँ ऊन उत्पन्न होता है।

ब्रिटेन संसार में सबसे अधिक ऊनी कपड़ा तैयार करता है। ऊन का धन्धा ब्रिटेन के बहुत पुराने धन्धों में से है। पैनाइन (Pennines) पर्वत



माला के पश्चिम में यार्क शायर (Riding of Yorkshire) की काऊन्टी इसका प्रमुख केन्द्र है। लंकाशायर में भी कुछ ऊनी कपड़े के कारखाने हैं। इस धन्धे का पैनाइन पर्वतमाला के प्रदेश में केन्द्रित होने का मुख्य कारण यह है कि पूर्व काल में यहाँ भेड़ें बहुत चराई जाती थीं, और यहाँ से ऊन फ्लैंडर्स (Flanders) को भेजा जाता था। पीछे जब धार्मिक विद्वेष के कारण फ़्लैंडर्स के कुशल कारीगरों को अपना देश छोड़ना पड़ा तो वे बहुत बड़ी संख्या में यहाँ आकर बस गए इस कारण यहाँ ऊनी कपड़े का धन्धा चमक उठा। कोयला समीप ही होने के कारण यंत्र युग में यह धन्धा और भी उन्नति कर गया। ऊनी कपड़े के यहाँ बहुत से केन्द्र हैं। प्रत्येक केन्द्र किसी विशेष प्रकार के कपड़े को तैयार करता है। लीड्स (Leeds) हडर्सफील्ड (Huddersfield) तथा ब्रैडफोर्ड (Bradford) बढ़िया ऊनी कपड़ा तैयार करते हैं। हैलीफैक्स (Halifax) में गलीचे बहुत बनाये जाते हैं। बैटले और ड्यूसबरी (Dewsbury) में फलालैन बनती है. और सलटेर (Saltaire) में अल्पका का कपड़ा बनता है। स्काटलैंड में हाविक (Hawick) गेलाशील्स (Galashiels) इत्यादि केन्द्रों में ट्वीड (Tweed) बहुत बनती है। अलोआ (Allon) और पेसले (Paisley) में बुनने का ऊन, तथा शाल बनाये जाते हैं। ब्रैडफोर्ड-आन-ऐवन (Bradford-on-Avon) स्ट्राऊड (Stroud) ट्राऊब्रिज तथा फ्रोम (Frome) में प्रसिद्ध ब्राडक्लाथ तैयार होता है।

फ्रांस में फ्लैंडर्स (Flanders) का कोयले का प्रदेश ऊनी कपड़े के धन्धे का केन्द्र है। टोरकोइंग (Tourcoing) तथा रोबेक्स (Roubaix) इस धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं। फ्रांस अधिकतर सुन्दर और बढ़िया ऊनी कपड़े तैयार करता है। काश्मीर, मैरिनो, तथा डिलेनस इत्यादि बढ़िया कपड़े यहाँ की विशेषता है।

जर्मनी का ऊनी कपड़े का धन्धा सैक्सनी में, वैस्टफेलिया (Westphalia) के बर्मन (Bermen) तथा एल्बरफेल्ड (Alberfeld) केन्द्रों में, थूरिंगिया, सिलीशिया, तथा दक्षिण जर्मनी में फैला हुआ है। जर्मनी जितना सूती कपड़ा तैयार करता है उसका लगभग आधा ऊनी कपड़ा तैयार करता है।

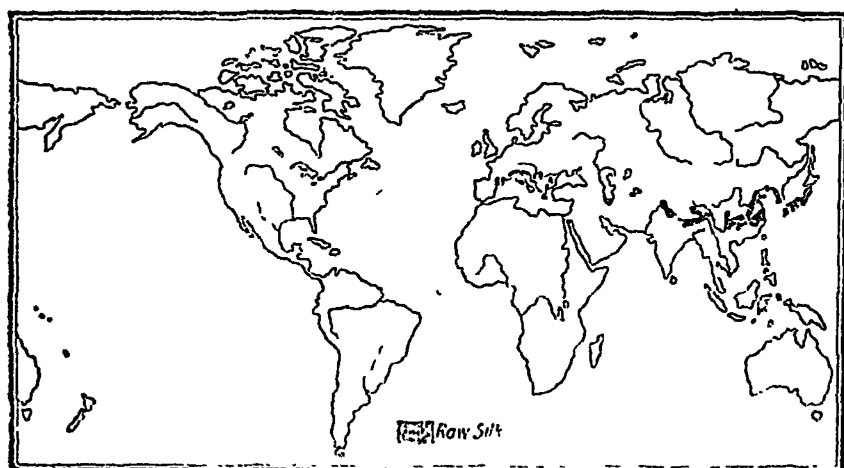
पिछले वर्षों में संयुक्तराज्य अमेरिका, जापान, तथा आस्ट्रेलिया में भी ऊनी कपड़े का धन्धा तेज़ी से बढ़ रहा है। यही कारण है कि संयुक्तराज्य अमेरिका तथा जापान प्रतिवर्ष अधिकाधिक ऊन बाहर से मँगाते हैं। क्रमशः इन देशों में ऊन की खपत बढ़ रही है। संयुक्तराज्य अमेरिका में न्यू-इङ्गलैंड रियासतों में इस धन्धे के केन्द्र हैं। फिलीडैल्फिया, बोस्टन, न्यूयार्क प्रावीडैंस तथा लारैंस इस धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं।

ब्रिटेन में ऊन पैदा होता है किन्तु वह देश की माँग का १५ प्रतिशत से अधिक नहीं होता अतएव अधिकांश ऊन आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड से मँगाना पड़ता है। लंदन ऊन की बहुत बड़ी मंडी है। यहाँ से ऊन अन्य देशों को भी भेजा जाता है। किन्तु अब संयुक्तराज्य अमेरिका तथा जापान लंदन से ऊन न मँगा कर सीधा आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड से मँगा लेते हैं। कुछ वर्षों से ब्रिटेन का ऊनी कपड़े का धन्धा उन्नति नहीं कर रहा है। फ्रांस की प्रतिस्पर्द्धा से उसकी उन्नति रुक गई है। कारण यह है कि विदेशों में फ्रैंच डिजाइनों को लोग अधिक पसंद करते हैं। क्रमशः फ्रांस का धन्धा उन्नति कर रहा है। और ब्रिटेन के धन्धे में अवनति के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

रेशमी कपड़े का धन्धा

रेशम को तैयार करने में सबसे पहली क्रिया रेशम के ककून (Cocoon) को गरम करने की होती है। इस क्रिया से रेशम का कीड़ा अन्दर ही मर जाता है। इसके उपरान्त रेशम को गरम पानी में उबालते हैं जिससे रेशम पर जो गोंद की तरह चिपकना पदार्थ होता है वह पिघल जाता है। इसके उपरान्त रेशम के तार को निकाला जाता है। इस क्रिया को रीलिंग (Reeling) कहते हैं। यह क्रिया हाथ से ही होती है। रेशम का तार

लम्बा और एकसा होता है अतएव उसे कातने की आवश्यकता नहीं पड़ती रेशम का तार लगभग ५०० गज का होता है। रेशम के तार से ही रेशमी



कपड़े तैयार किए जाते हैं। यदि रेशम को सूत अथवा ऊन में मिलाना होता है तो इनके साथ रेशम के तार को मिला कर काता जाता है। शुद्ध रेशमी डोरा तैयार करने में तो केवल रेशमी तार को थोड़ा ऐंठ दिया जाता है। अधिक मज़बूत तार तैयार करने के लिए कई तारों को एक साथ मिला कर ऐंठ देते हैं। किन्तु सब रेशम इसी प्रकार का नहीं होता। बहुधा ककून ऐसे भी होते हैं जिनका तार निकाला नहीं जा सकता। इन ककूनों को साफ करके उनको कातना पड़ता है किन्तु कते हुए रेशम में वह चमक और सुन्दरता नहीं रहती जो रीलिंग (Reeling) द्वारा निकाले हुए रेशमी तारों में रहती है। अधिकतर कते हुए रेशम का उपयोग सूती तथा ऊनी कपड़े में मिलाने के लिए, घटिया रेशमी कपड़ा टसर इत्यादि बनाने, रेशमी डोरा तैयार करने, तथा रिबन और वैल्वट तैयार करने में होता है।

रेशमी कपड़े की माँग पिछले दिनों में बहुत बढ़ गई है। रेशमी कपड़े का प्रचार बढ़ने के कारण इसकी माँग भी बढ़ गई है। जब से रेशम को सूत, ऊन, तथा नकली रेशम के साथ मिला कर सस्ते रेशमी कपड़े तैयार करने में सफलता मिल गई है तब से इसकी माँग बहुत बढ़ गई क्योंकि मूल्य कम हो जाने से सर्व साधारण भी इसका उपयोग करने लगे हैं। मूल्य के कम होने का एक कारण यह भी हुआ कि अब अधिकतर रेशमी कपड़ा पावरलूम (शक्ति संचालित कर्घा) से तैयार होने लगा है। इससे पहले अधिकांश बढ़िया रेशमी कपड़ा कारीगरों द्वारा हाथ के कर्घे पर तैयार होता था।

रेशम बहुत हल्का तथा मूल्यवान कच्चा माल है अतएव वह आसानी से उन स्थानों पर ले जाया जा सकता है जहाँ धन्धे के लिए सुविधायें हों।



रेशमी कपड़े के धन्धे के लिए मुख्य आवश्यकता कुशल कारीगरों की है। जहाँ कुशल मजदूर तथा अन्य सुविधायें हों वहीं यह धन्धा पनप सकता है। जगत में संयुक्तराज्य अमेरिका, फ्रांस, जापान, इटली, जर्मनी और ब्रिटेन रेशमी कपड़ा तैयार करने वालों में मुख्य हैं।

फ्रांस में रेशमी कपड़े का धन्धा लायन्स (Lyons) के समीपवर्ती प्रदेश-विशेष कर रोन की घाटी में केन्द्रित है। कोई भी देश फ्रैंच जैसी सुन्दर डिजाइन वाले तथा सुन्दर रंगीन रेशमी कपड़े तैयार नहीं करता। संयुक्तराज्य अमेरीका में सबसे अधिक रेशमी कपड़ा तैयार होता है। रेशमी कपड़ा न्यू जर्सी (New Jersey) में बहुत तैयार किया जाता है। इसका मुख्य केन्द्र पैटरसन (Paterson) है। इसके अतिरिक्त पैनसिलवेनिया (Pennsylvania) कनेकटिकट (Connecticut) तथा न्यू यार्क रियासतों में भी रेशमी कपड़े के कारखाने हैं। न्यू यार्क संसार में सबसे बड़ी रेशम मंडी है। संयुक्तराज्य अमेरिका से रेशमी कपड़ा कनाडा तथा दक्षिण अमेरिका को बहुत जाता है। जर्मनी का रेशमी कपड़े का धन्धा अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। बर्लिन तथा क्रेफेल्ड (Krefeld) इसके प्रधान केन्द्र हैं। ब्रिटेन का रेशमी कपड़े का धन्धा भी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। वहाँ अधिकतर कते हुए रेशम का घटिया कपड़ा ही तैयार होता है। मैकलेस फील्ड (Macclesfield) कांगलीटन (Congleton) डर्बी, कावेंटरी (Coventry) ब्रैडफोर्ड (Bradford) तथा मैंचेस्टर इसके मुख्य केन्द्र हैं।

जापान में रेशम बहुत उत्पन होता है। किसान रेशमी कीड़े पालने का

भी धन्धा करते हैं और ककूनों को बेंच देते हैं। याकोहामा (Yokohama) रेशम की मुख्य मंडी है। यहाँ से ही रेशम विदेशों को भेजा जाता है। जापान और चीन संसार का लगभग ८५ प्रतिशत कच्चा रेशम उत्पन्न करते हैं। अस्तु अधिकतर कच्चा रेशम इन्हीं दो देशों से जाता है। चीन में रेशम के कीड़े पालने का धन्धा निचली यंगटिसी बेसिन में बहुत होता है। इसके मुख्य केन्द्र शंघाई, हांगचाऊ, सूचाऊ, हांकाऊ, कैंटन और चीफू हैं। जापान का रेशम बहुत बढिया नहीं होता है। योरप में इटली कच्चा रेशम बाहर भेजने वालों में मुख्य है। इटली का रेशम बढ़िया होता है। इटली में पीडमांट (Piedmont) लम्बार्डी (Lombardy) तथा वेनेशिया (Venetia) रेशम उत्पन करने के मुख्य केन्द्र हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका में बढ़िया रेशमी कपड़े की बहुत मांग है, इस कारण बाहर से रेशमी कपड़ा तथा रेशम बहुत आता है। संयुक्तराज्य अमेरिका के बाद ब्रिटेन रेशम तथा रेशमी कपड़ा मँगाने वालों में मुख्य है। रेशमी कपड़ा बाहर भेजने वालों में फ्रांस, जापान और इटली प्रमुख हैं।

वेस्ट-सिल्क (कारखानों का बना हुआ रेशम) का धन्धा उन सभी देशों में होता है जहाँ रेशम का धन्धा होता है। किन्तु विशेष रूप से यह धन्धा पूर्वीय स्वीटजरलैंड, दक्षिणी पूर्वीय फ्रांस तथा जापान में केन्द्रित है।

नकली रेशमी कपड़े का धन्धा (आर्टिफिशियल सिल्क)

पिछले कुछ वर्षों से नकली रेशम बहुत बनने लगा है। धीरे धीरे नकली रेशमी कपड़े की मांग भी बढ़ती जा रही है। इस कारण यह धन्धा बहुत जल्दी ही उन्नति कर गया। सर्व प्रथम नकली रेशम बनाने का धन्धा फ्रांस में १८६५ में स्थापित हुआ और वहाँ से योरोप के अन्य देशों में फैला।

नकली रेशम सैलुलाज (Cellulose) से बनाया जाता है। सैलुलाज एक पदार्थ है जो कि वृक्षों और पौधों से निकाला जाता है। अधिकतर सैलुलाज (Cellulose) लकड़ी की लुब्दी (Woodpulp) विशेष कर पाइन (Pine) और स्प्रूस की लुब्दी से तथा कपास से निकाला जाता है। तदुपरान्त सैलुलाज (Cellulose) को रसायनिक क्रियाओं द्वारा चिपकने वाली पतली लुब्दी में परिणत कर लिया जाता है। यह पतली लुब्दी जब पतली नलियों में दबाई जाती है तो रस्सी के रूप में परिणत हो जाती है जो कि कात ली जाती है और सूत तैयार हो जाता है। नकली रेशम बनाने के चार मुख्य तरीके हैं परन्तु अधिकांश नकली रेशम (९०%) ऊपर बताये हुए तरीके से ही तैयार होता है।

अधिकतर नकली रेशम स्प्रूस (Spruce) तथा पाइन (Pine) की लकड़ी से बनता है। थोड़ा सा रेशम कारखानों की बची हुई कपास से भी बनाया जाता है। अतएव लकड़ी ही इस धन्धे का मुख्य कच्चा माल है। इनके अतिरिक्त अन्य रसायनिक द्रव्यों की भी ज़रूरत पड़ती है। १९२० के उपरान्त इस धन्धे ने आश्चर्यजनक उन्नति कर ली और वह बहुत तेजी से बढ़ा। नकली रेशम के धन्धे में सस्ते मज़दूरों की आवश्यकता है, अतएव अधिकतर स्त्रियाँ ही इन कारखानों में काम करती हैं। इन सुविधाओं के अतिरिक्त सस्ती जल शक्ति की बहुतायत भी धन्धे के लिए आवश्यक है।

नकली रेशम तैयार करने वालों में संयुक्तराज्य अमेरिका, जरमनी, फ्रांस, ब्रिटेन, जापान, और इटली मुख्य हैं। संयुक्तराज्य, सबसे अधिक नकली रेशम तैयार करता है। योरोप में इटली, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, हालैंड तथा बेलजियम में यह धन्धा होता है।

यद्यपि संयुक्तराज्य अमेरिका सबसे अधिक नकली रेशम तैयार करता है फिर भी सबसे अधिक नकली रेशम बाहर से मँगाता है। बाहर से नकली रेशम मँगाने वालों में ब्रिटेन का स्थान दूसरा है। जापान और इटली नकली रेशम विदेशों को भेजने वालों में मुख्य हैं।

अब धीरे धीरे सभी सूती कपड़े के केन्द्रों में नकली रेशम का धन्धा स्थापित होता जा रहा है क्योंकि कारखानों की बची हुई रूई (Waste cotton) से नकली रेशम तैयार होता है। इस प्रकार कारखाने की बची हुई खराब रूई का उपयोग हो जाता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में यह धंधा अपलेशियन पर्वत माला के दोनों ओर केन्द्रित है। ब्रिटेन में यह धंधा कावैंटरी, डर्बी, वोलवरहैम्पटन, फ्लिंट, मैंचेस्टर, तथा लिवरपूल में केंद्रित है इटली में यह धंधा उत्तर में केन्द्रित है। जर्मनी में कलोन (Cologne) तथा ब्लैक-फारेस्ट प्रदेशों में यह धंधा स्थापित है। फ्रांस में उत्तर पूर्वीय कोयले के प्रदेश में तथा रोन नदी की घाटी में यह धंधा स्थापित है। जापान में यह धंधा पिछले वर्षों में बहुत उन्नति कर गया है।

नकली रेशम अधिकतर मोज़े बनियान इत्यादि होज़ियरी का सामान बनाने, साधारण कपड़ा तैयार करने, अंडर-वियर, रिबन इत्यादि तैयार करने तथा सूत, रेशम, और ऊन के साथ मिलाने के काम में आता है। अधिकतर नकली रेशम का उपयोग मिलावट के लिए ही होता है। क्रमशः नकली रेशम के कपड़े की माँग तेज़ी से बढ़ती जा रही है। अभी यह कह सकना कठिन है कि

नकली रेशम शुद्ध रेशम तथा बढ़िया सूती कपड़े की माँग को कितना कम कर सकेगा किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इनकी मांग कुछ कम अवश्य हो जायगी।

संसार में नकली रेशम (Rayon) की उत्पत्ति

संयुक्तराज्य अमेरिका	१२६,००० टन
जापान	१२०,००० "
जरमनी	६०,००० "
इटली	५०,००० "
ब्रिटेन	५०,००० "
फ्रांस	३८,००० "
निदरलैंड	१०,००० "
बैलजियम	५,००० "
स्विटज़रलैंड	७,५०० "

पहिनने के कपड़ों का धंधा

अभी तक पहिनने के वस्त्र छोटे छोटे कारीगरों (दर्जियों) द्वारा होता है। परन्तु अब कुछ देशों में बड़े बड़े कारखानों में पहिनने के कपड़े तैयार किए जाते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में यह धंधा बहुत उन्नति कर गया है। संयुक्तराज्य में अधिकांश पुरुष और यथेष्ट स्त्रियाँ बने बनाये वस्त्र पहिनती हैं। अब योरोप में भी यह धंधा बढ़ रहा है. यह धंधा न्यू-यार्क, न्यू जरसी (New Jersey) फिलीडेलफिया, शिकागो, लास ऐंजिल्स (Los Angeles) सेंट लुईस तथा बोस्टन में केन्द्रित है।

सन के कपड़े का धंधा (Linen Industry)

पट-सन (Flax) के पौधे को जड़ से उखाड़ कर उसके बीज को पृथक कर दिया जाता है। इसके उपरान्त सन के साटों को बड़े बड़े बंडलों में बाँध कर पानी में १० से १५ दिन तक डुबो कर रक्खा जाता है। सन को सड़ाने के लिए बहुत शुद्ध जल की आवश्यकता है। जब सन सड़ जाता है तब उसको पानी से निकाल कर सूखने के लिए डाल दिया जाता है। सूखने पर उसको रोलरों के बीच में दबाकर रेशों को लकड़ी से पृथक कर लिया जाता है। जब रेशा साफ हो जाता है तब उसको कात कर बुनते हैं। सन की बुनाई तभी हो सकती है जब सन का डोरा गरम और भीगा हो। इस कारण बुनने के पूर्व डोरे को गरम पानी में डाला जाता है। सन बहुत मज़बूत और सुंदर होता है।

सन का कपड़ा (Linan) अधिकतर आइरलैंड में तैयार होता है। संसार में सन के कपड़े का सबसे बड़ा केन्द्र बैलफास्ट है। बैल्फास्ट (Belfast) के अतिरिक्त लंडनडैरी (Londonderry) लिस्बर्न (Lisburn) तथा नारवी (Norvy) आयरलैंड में इस धंधे के मुख्य केन्द्र हैं। जर्मनी में इस धंधे के गोरलिज़ (Gorlitz) दक्षिण पूर्व में, तथा बीलेफेल्ड (Bielefeld) वैस्टफैलिया (Westphalia) में मुख्य केन्द्र हैं। लिली (Lille) और कम्बराई (Kambrai) फ्रांस में. तथा, डंडी (Dundee) और डनफरमलाइन (Dunfermline) स्काटलैंड में इस धन्धे के प्रमुख केन्द्र हैं। बैलज़ियम के घैंट (Ghent) और कोर्टराइ (Courtrai) केन्द्रों में भी इसके कारखाने हैं। इन केन्द्रों के लिए सन अधिकतर रूस तथा बल्टिक देशों से आता है। कुछ सन बाल्कन देशों से भी जाता है।

जूट का धन्धा अधिकतर भारतवर्ष, स्काटलैंड के डंडी (Dundee) इत्यादि केन्द्रों, और संयुक्तराज्य अमेरिका में केन्द्रित है। कुछ कारखाने घैंट (Ghent) में भी हैं (बैल्जियम)

रसायनिक धंधे (Chemical Industries)

यदि देखा जाये तो रसायनिक धन्धे (Chemical Industries) आधारभूत धन्धे हैं। क्योंकि अधिकांश धंधे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रसायनिक धन्धों पर निर्भर हैं। उदाहरण के लिए सूती कपड़े का धन्धा बहुत कुछ रसायनिक धन्धों पर निर्भर है। जब तक कि रसायनिक धन्धों की उन्नति न हो तब तक कपड़े की धुलाई, रंगाई और छपाई अच्छी तरह से हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार अन्य धन्धों में भी रसायनिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। अतएव प्रत्येक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र में रसायनिक धन्धे स्थापित हो गए हैं। रसायनिक क्रियायें और धन्धे अगणित हैं किन्तु चार प्रकार के मुख्य हैं (१) गंधक का तेज़ाब तथा अल्काली (Alkalis) जैसे रसायनिक पदार्थ। (२) कोलतार से निकलने वाले रंग तथा ड्रग इत्यादि (३) ऐलैक्ट्रो केमिकल (Electro-Chemical) जैसे हवा की नायट्रोजन को खाद के रूप में पृथ्वी पर जमाना। (४) साबुन, कागज़, चमड़ा और शीशा इत्यादि।

जर्मनी रसायनिक पदार्थ तथा रंग इत्यादि बनाने में संसार भर में सर्वश्रेष्ठ है। जर्मनी में पोटास तथा अन्य साल्टों (Salts) की बहुतायत वैज्ञानिक खोज की उन्नति तथा कारीगरी की उन्नति के कारण ही यह धन्धा वहाँ इतनी उन्नत दशा में है। जर्मनी में इस धन्धे के मुख्य केन्द्र

लुडविग-शेफेन (Luudwigshafen) एसेन (Essen) एल्बरफेल्ड (Elberfeld) फ्रैंकफर्ट आन मेन) (Frankfut-on-Maine) स्टैसफर्ट (Stassfurt) तथा म्यूनिख (Munich) हैं। जर्मनी केवल रसायनिक पदार्थों, रसायनिक खाद, तथा रंग में ही अन्य देशों से आगे नहीं है वरन औषधियों, तथा शीशे के धन्धे में भी बहुत आगे है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में भी रसायनिक धन्धों की पिछले दिनों में बहुत उन्नति हुई है। वहाँ विशेषकर रंग बहुत तैयार होता है। विलमिंगटन, बफैलो, और न्यू यार्क इस धन्धे के केन्द्र हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में भी पोटाश, कोक बनाने की भट्टियों की बहुतायत, तथा कुशल कारीगरों के कारण, यह धंधा उन्नति कर गया है।

ब्रिटेन में यह धन्धा मुख्यतः चेशायार के मैदान (Cheshire Plain) में केन्द्रित है। रनकार्न (Runcorn) नार्थविच, ग्लासगो, मिडिल्सबरो, न्यू कौसिल, हडर्सफल्ड, बैडफोर्ड, मैंचेस्टर तथा मिडिल्सबरो इसके मुख्य केन्द्र हैं। फ्रांस और बेल्जियम में भी यह धन्धा अच्छी दशा में है। ऐलैक्ट्रो केमिकल धन्धा स्कैन्डिनेवियां, स्वीटज़रलैंड तथा उत्तरी इटली में स्थापित है।

शीशे के धन्धे के लिए रेता, चूना, रेह (Alkali) फ्लिंट (Flint) तथा अन्य रसायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। संसार में शीशे का सामान बनाने वाले देशों में जर्मनी, चेकोस्लावाकिया, आस्ट्रिया, पोलैंड, बेल्जियम, इटली, संयुक्तराज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, और जापान मुख्य हैं।

साबुन सोडा, पोटाश और चर्बी तथा तेलों के मिश्रण से बनता है। साबुन तथा अन्य टायलट सामग्री तैयार करने वालों में संयुक्त-राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस प्रमुख हैं।

खाल को कमाने (टैन करने) से चमड़ा तैयार होता है। खाल को टैन करने (कमाने) के लिए या तो कुछ वृक्षों की छाल और फल का उपयोग होता है अथवा खनिज पदार्थों का उपयोग किया जाता है। बढ़िया चमड़ा तैयार करने वाले देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, और ब्रिटेन मुख्य हैं।

चीनी मिट्टी के बर्तन बहुत प्रकार की मिट्टी से बनते हैं। हाँ, मिट्टी में लोहे का अंश न होना चाहिए नहीं तो पकाने में

चीनी मिट्टी के बर्तन खराब हो जाते हैं। मिट्टी के अतिरिक्त फ्लिंट

बर्तन (Pottery) (Flint) चूना (Phosphate of lime) तथा फेल्सपार (Felspar) की आवश्यकता होती है।

सबसे बढ़िया बर्तन काओलिन (Kaolin) से बनते हैं जो फ्रांस, ब्रिटेन,

जर्मनी, और संयुक्त राज्य अमेरिका में पाई जाती है। बर्तन के ऊपर ग्लेज़ चढ़ाकर उसे सुन्दर तथा टिकाऊ बनाते हैं। पाटरी तीन प्रकार की होती है। (१) मिट्टी के बर्तन, (२) पत्थर के बर्तन, तथा पोरसिलेन (Porcelain)।

चीन और जापान के पोर्सिलेन संसार प्रसिद्ध हैं। अब फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन में यह धन्धा विशेष उन्नति कर गया है। इन्हीं देशों में यह धन्धा केन्द्रित हैं।

चमड़े तथा चमड़े की वस्तुएँ बनाने का धंधा

चमड़े का सभ्य संसार में बहुत उपयोग होता है। अधिकांश चमड़ा जूते बनाने के काम में आता है किन्तु कारख़ानों की मशीनों की बेल्ट, सूट केस, दस्ताने, पर्स तथा अन्य विलासिता की सामग्री भी चमड़े की ही बनती है।

चमड़ा गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर, साँप और मगर की खाल से तैयार किया जाता है। इन खालों को कुछ छालों वृक्षों की पत्तियों और फलों की सहायता से कमाया जाता है और चमड़ा तैयार होता है। हल्के चमड़े को रसायनिक पदार्थों से कमाया जाता है। संयुक्तराज्य अमेरिका में आधा चमड़ा क्रोम पद्धति से तैयार किया जाता है। चमड़ा कमाने का धन्धा सभी देशों में होता है किन्तु मुख्य नीचे लिखे हैं:—संयुक्तराज्य अमेरिका, जरमनी, ब्रिटेन, और फ्रांस। इन देशों में खाल बहुत कम होती है। वे खाल बाहर से मँगाते हैं। खालें भेजने वालों में अरजैनटाइन, यूरग्वे, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, तथा भारत मुख्य हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में जूते का धन्धा मैसाचुसटस (Massachusetts) न्यू-यार्क इलीनायस (Illinois) विसकौन्सिन (Wisconsin) और न्यूजरसी (New Jersey) में केन्द्रित है। संयुक्तराज्य अमेरिका के अतिरिक्त इङ्गलैंड, फ्रांस तथा जैकोस्लाविका जूता बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं।

कागज का धन्धा

सभ्यता के विकास के साथ साथ कागज की माँग बहुत बढ़ गई है। पुस्तकों, पत्रों और मासिक पत्रों का प्रकाशन संसार में इस तेजी से बढ़ा है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अधिकांश कागज नरम लकड़ी (कानीफेरस) का बनता है इस कारण लकड़ी की माँग इस धन्धे के लिए बेहद बढ़ गई है। अधिकतर कागज स्प्रूस (Spruce) और हैमलाक (Hemlock) का बनता है किन्तु पिछले दिनों पीला पापलर (Yellow Poplar) तथा ऐसपन (Aspen) बहुत काम में आने लगा है। इन पेड़ों की नरम लकड़ी की लुन्दी (Pulp) बनाई जाती है। लकड़ी की लुन्दी दो प्रकार से बनाई जाती

है। एक यांत्रिक पद्धति (Mechanical Process) द्वारा दूसरे रसायनिक पद्धति (Chemical Process) द्वारा। रसायनिक पद्धति में लुग्दी को भाप द्वारा पकाया जाता है और उसमें भिन्न भिन्न रसायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं। पहली पद्धति से न्यूजप्रिंट (अखबारी कागज) तथा घटिया कागज बनता है किन्तु सस्ता होता है। दूसरी पद्धति में व्यय अधिक होता है किन्तु पुस्तकों के लिए अधिक टिकाऊ सफ़ेद और बढ़िया कागज तैयार होता है।

लुग्दी बनाने के लिए केवल सस्ती लकड़ी ही नहीं चाहिए वरन यथेष्ट जल शक्ति भी आवश्यक होती है। यही कारण है कि यह धन्धा संयुक्तराज्य अमेरिका के कानीफ़ेरस वनों के प्रदेश के दक्षिणी सिरे पर तथा फिनलैंड, नारवे, और स्वीडन के समुद्र तट पर केन्द्रित है जहाँ लकड़ी और जल-शक्ति दोनों की ही बहुतायत है। यह धन्धा संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा, जरमनी, स्वीडन, नारवे, फिनलैंड और रूस में केन्द्रित है। संयुक्तराज्य अमेरिका में कागज के कारखाने वाशिंगटन, मेन, विस्कानसिन और न्यू-यार्क में केन्द्रित है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कागज की इतनी खपत है और इतना कागज तैयार होता है कि वहाँ बहुत से वन साफ हो गए। लकड़ी की कमी के कारण बहुत सा न्यूज प्रिंट, लुग्दी और लकड़ी प्रतिवर्ष कनाडा से मँगवानी पड़ती है। संयुक्त राज्य के वाशिंग्टन और औरीगान (Oregon) में कुछ वर्षों से यह धन्धा पनप उठा है। कनाडा में यह धन्धा क्यूबैक (Quebec) तथा आनटैरियो (Ontario) प्रमुख हैं। किन्तु अब धन्धा पश्चिमी तट के पास भी स्थापित होगया। वहाँ समीप ही कोलम्बिया के विस्तृत वन है।

कागज की बढ़ती हुई माँग के कारण बहुत से कानीफेरस वन साफ हो गए। यद्यपि अभी उत्तर ध्रुव प्रदेश के नीचे नरम लकड़ी के वन हैं फिर भी वनों की रक्षा की ओर ध्यान गया है और सभी देशों में इन वनों की विशेष रूप से रक्षा और उन्नति की जा रही है।

अभ्यास के प्रश्न

१—धन्धों के स्थानीयकरण (Localisation) से क्या लाभ होता है ? धन्धों का स्थानीयकरण क्यों होता है उसके भौगोलिक कारण लिखिए।

२—स्पात (Steel) बनाने की भिन्न भिन्न क्रियायें क्या हैं उनका वर्णन कीजिए।

३—पिट्सबर्ग स्टील के धन्धे का मुख्य केन्द्र क्यों है कारण बताइये।

४—संयुक्तराज्य अमेरिका के लोहे और स्टील के धन्धे का विवरण दीजिए।

५—सूती वस्तु व्यवसाय के केन्द्रित होने के लिए किन बातों की आवश्यकता है समझा कर लिखिए और बतलाइए कि मैंचेस्टर में यह धन्धा क्यों केन्द्रित है।

६—जापान में सूती कपड़े का धन्धा इतनी उन्नति क्यों कर गया।

७—ऊन के धंधे का विवरण दीजिए और बतलाइए कि वह कहाँ केन्द्रित है।

८—कागज के धन्धे के लिए किन बातों की आवश्यकता है और वह कहाँ केन्द्रित है?

९—सयुक्तराज्य अमेरिका के सूती वस्त्र के धन्धे का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

व्यापार

व्यापार का अर्थ यह है कि एक मनुष्य अथवा प्रदेश जिस किसी वस्तु को सरलता पूर्वक तथा अधिक राशि में उत्पन्न करें अपनी उस वस्तु का दूसरे व्यक्ति अथवा प्रदेश की किसी ऐसी वस्तु से परिवर्तन कर लें जिसको वह प्रदेश बहुतायत से उत्पन्न करता है। पदार्थों के इस पारस्परिक विनिमय को ही व्यापार कहते हैं। जब पदार्थों का यह विनिमय किसी देश की सीमा के अन्दर होता है तो उसे देशीय व्यापार कहते हैं और जब यह विनिमय भिन्न भिन्न देशों में होता है तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं।

व्यापार से दोनों पक्षों को लाभ होता है। प्रत्येक मनुष्य की कार्य-क्षमता एक सी नहीं होती। इसी प्रकार प्रत्येक देश में प्रकृति की देन तथा उस देश के निवासियों की कार्य-क्षमता एक सी नहीं होती। व्यापार के द्वारा प्रत्येक देश अपनी कमी को पूरा कर लेता है। उदाहरण के लिए यदि ब्रिटेन का जलवायु कपास उत्पन्न करने के उपयुक्त नहीं है तो वह संयुक्तराज्य अमेरिका से कपास मँगाकर तथा उसके बदले में अन्य तैयार माल देकर कपास की आवश्यकता को पूरी कर लेता है। व्यापार के द्वारा मानव समाज का जीवनसंघर्ष सरल हो जाता है और वह कम से कम परिश्रम करके अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा कर लेता है।

आरम्भ में जब गमनागमन के साधनों की सुविधा नहीं थी, रेल और जहाज़ का आविष्कार नहीं हुआ था, तब हल्की और बहुमूल्य वस्तुओं का ही व्यापार होता था किन्तु अब तो दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का ही व्यापार अधिक होता है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों की प्रकृति देन की भिन्नता तथा उनके निवासियों की कार्य-क्षमता की भिन्नता ही व्यापार का मूल कारण है। जलवायु मिट्टी, खनिज, और वन-सम्पति की; भिन्नता, जनसंख्या का घना अथवा बिखरा होना, तथा औद्योगिक उन्नति की भिन्नता के फल स्वरूप प्रत्येक देश में किसी धंधे विशेष के लिए अनुकूल परिस्थिति होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों में जब भिन्न प्रकार के धंधे स्थापित होते हैं तो वस्तुओं का आदान-प्रदान आरम्भ होता है। प्रत्येक देश उन

धंधों की ओर अधिक ध्यान देता है जिनमें उसे सबसे अधिक अनुकूलता होती है।

यदि किसी देश में जनसंख्या बहुत कम है और प्रकृति की देन अर्थात् उपजाऊ भूमि, खेती के योग्य जलवायु, यथेष्ट खनिज, तथा वन-सम्पति है तो वहाँ खेती तथा कच्चा माल उत्पन्न करने के धंधे अर्थात् मुख्य धंधे (Primary Industries) स्थापित होंगे। किसी देश में क्या-क्या वस्तु उत्पन्न होगी यह वहाँ की भूमि तथा जलवायु निर्धारित करती है। किसी देश में कौन से धंधे स्थापित होंगे यह वहाँ के जलवायु, शक्ति के साधन, मज़दूरों की कुशलता, गमनागमन के साधन, तथा कच्चे माल के प्राप्त करने की सुविधा पर निर्भर है। प्रकृति की देन तथा किसी भी देश की सभ्यता का वहाँ के धंधों पर मुख्य प्रभाव पड़ता है।

यह तो पहले परिच्छेद में ही हम लिख चुके हैं कि मनुष्य अपनी भौगोलिक परिस्थिति की उपज है। शीतोष्ण कटिबन्ध तथा ऊष्ण कटिबन्ध के वह भाग जो विषुवत रेखा के अधिक समीप नहीं है वहाँ के रहने वाले क्षमता वाले होते हैं। यही कारण है कि इन देशों में व्यापार और उद्योग धंधों की अधिकता है। विषुवत रेखा पर स्थित प्रदेशों के रहने वाले व्यापार तथा धंधों के प्रति अधिक अभिरुचि नहीं रखते क्योंकि वहाँ जीवन की आवश्यकतायें थोड़ी होती हैं और वह भी बिना अधिक श्रम किए ही पूरी हो जाती हैं।

जिन देशों का विस्तार कम है उनका प्रति मनुष्य पीछे विदेशी व्यापार का औसत अधिक है। इसका मुख्य कारण यह है कि देश जितना ही छोटा होगा उसका जलवायु तथा भूमि सब भागों में एक सी ही होगी। अर्थात् भूमि और जलवायु की भिन्नता कम होगी। इस कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलें न उत्पन्न हो सकेंगी और न भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुयें ही तैयार हो सकेंगी। उदाहरण के लिए ब्रिटेन को ले लें। इसके विपरीत चीन जैसे महादेश में उत्तर से लेकर दक्षिण तक भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु तथा भूमि है। अतएव वहाँ गरम और ठंडे देशों की सभी पैदावारें हो सकती हैं। अस्तु उसे बाहर से कम वस्तुयें मँगाने की आवश्यकता पड़ती है। जो बहुत ही छोटे देश हैं उनका विदेशी व्यापार सबसे अधिक है। ब्रिटेन बैलजियम की अपेक्षा बड़ा देश है। इसी कारण प्रति मनुष्य पीछे ब्रिटेन का व्यापार बैलिजयम से कम है। फाकलैंड (Falkland) द्वीप में भेड़ चराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यही कारण है कि इस छोटे से द्वीप का वैदेशिक व्यापार प्रति मनुष्य पीछे बहुत अधिक है।

प्रत्येक देश आयात पदार्थों (Imports) का मूल्य पदार्थों का निर्यात (Export) करके चुकाता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि कोई देश जितने मूल्य का माल बाहर से मँगाता है ठीक उतने ही मूल्य का माल बाहर भेजेगा, कम या ज्यादा नहीं भेजेगा । किसी निश्चित समय में कोई देश जितना माल बाहर से मँगाता है उससे अधिक या कम बाहर भेजता है। इस अंतर को व्यापार का अंतर (Balance of Trade) कहते हैं। व्यापार का अन्तर किसी देश के पक्ष अथवा विपक्ष में हो सकता है। किन्तु अन्ततः आयात और निर्यात बराबर हो जाते हैं।

आधुनिक युग में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अत्यधिक उन्नति हुई है। इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को द्रव्य (Money) के चलन, बिल (हुँडी) के प्रचार, बैंकिंग की सुविधा, समुद्री बीमा, जहाज़, रेल तथा हवाई मार्ग की सुविधाओं, तार, बेतार, तथा रेडियो के आविष्कार से बहुत प्रोत्साहन मिला है। इनके कारण बाज़ार भाव एक क्षण में सब देशों में प्रगट हो जाता है। माल भेजने की सुविधा हो गई है और लेन देन का हिसाब आसानी से निबट जाता है। यदि ये सब सुविधायें न होतीं तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इतना नहीं बढ़ पाता।

जहाँ ऊपर बताई हुई सुविधाओं से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिला है वहाँ कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनसे व्यापार में रुकावट पड़ती है। प्रत्येक देश आज अपने उद्योग-धन्धे की उन्नति का प्रयत्न कर रहा है अतएव बाहर से आने वाले माल पर चुंगी (कर) बिठाई जाती है । कभी-कभी बाहर से आने वाले माल पर इतना अधिक कर लगा दिया जाता है कि वह देश में बिक ही न सके । इस संरक्षण नीति (Protection) के कारण व्यापार में रुकावट पड़ती है । इसके अतिरिक्त व्यापारिक समझौते तथा संधियाँ (Commercial agreements) भी व्यापार के स्वाभाविक प्रवाह को रोकते हैं। इन सब के ऊपर यह जो आये दिन युद्ध होते रहते हैं यह व्यापार को सबसे अधिक हानि पहुँचाते हैं। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है और होता रहेगा क्योंकि यह प्राकृतिक है।

व्यापार और भौगोलिक परिस्थितियाँ

व्यापार पर भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतएव हम यहाँ उनका अध्ययन करेंगे।

किसी देश के व्यापार पर वहाँ की स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है।

स्थिति (Situation)

जिन देशों की स्थिति ऐसी है कि संसार के मुख्य व्यापार मार्गों से उसका सम्बन्ध है तब तो वहाँ की व्यापारिक उन्नति शीघ्र होगी और यदि उसकी स्थिति ऐसी है कि वह देश अकेला पड़ जाता है तो उसका व्यापारिक महत्व कम हो जाता है। उदाहरण के लिए रूस, सायबेरिया, मध्य एशिया व्यापारिक मार्गों से दूर अन्दर की ओर है किन्तु ब्रिटेन, भारत, संयुक्तराज्य अमेरिका की स्थिति अच्छी है। ब्रिटेन के व्यापार की जो इतनी अधिक उन्नति हुई इसका एक कारण यह भी है कि वह उन्नतशील महाद्वीपों के मध्य में है। आजकल जो देश समुद्र के किनारे नहीं हैं, समुद्र से दूर हैं वे व्यापारिक उन्नति नहीं कर सकते। यदि देश की स्थिति ऐसी है कि वह सुरक्षित है तो उसके उद्योग-धंधे और व्यापार की उन्नति होगी।

कटा हुआ समुद्र तट (Broken coastline)

जिन देशों का समुद्र तट बहुत कटा हुआ होता है वहाँ बंदरगाह अधिक होते हैं, देश का प्रत्येक भाग समुद्र के समीप हो जाता है। इस कारण वहाँ व्यापार अधिक होता है। यही नहीं वहाँ के निवासी सामुद्रिक यात्रा के अभ्यस्त होने के कारण अधिक साहसी होते हैं इस कारण उस देश की औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति होती है। ब्रिटेन तथा हालैंड का समुद्र तट उनकी आर्थिक उन्नति में बहुत ही सहायक हुआ है।

नदियाँ

नदियाँ भी व्यापार के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। संसार में कुछ नदियों ने तो वहाँ की सभ्यता का निर्माण करने में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। उदाहरण के लिए नील, गंगा, सिंध, यूफ्रैटीज़ और टाइग्रीज़ तथा यांग्टिसी कियांग और हांगहों की घाटियाँ इन देशों की सभ्यता का निर्माण करने वाली हैं। यदि नदियों में यथेष्ट जल होता है और वे खुले हुए समुद्र में गिरती हैं तो वे व्यापार का एक मुख्य साधन बन जाती हैं। नदियों की घाटियों में पैदावार खूब होती है और उसके आधार पर व्यापार होता है।

पहाड़—मैदान

पहाड़ अधिकतर जनसंख्या के विस्तार तथा व्यापार के लिए बाधक होते हैं क्योंकि मार्गों की सुविधा उनमें नहीं होती। किन्तु मैदान व्यापार तथा जनसंख्या के विस्तार में सहायक सिद्ध होते हैं। क्योंकि वहाँ पैदावार भी खूब होती है और मार्गों की भी सुविधा होती है।

जलवायु खेती की पैदावार, वन-सम्पत्ति को निर्धारित करती है और वहाँ के उद्योग धंधा पर भी प्रभाव डालती है इस कारण जलवायु का भी व्यापार पर प्रभाव पड़ता है। जिन देशों का जलवायु स्फूर्तिदायक है और धंधा और खेती की पैदावार के लिए अनुकूल है वहाँ व्यापार भी चमक उठता है।

जलवायु

अभ्यास के प्रश्न

१—व्यापार क्यों आवश्यक है और व्यापार से देशों को क्या लाभ है?

२—व्यापार के लिए किन सुविधाओं की आवश्यकताएँ हैं?



बारहवाँ परिच्छेद

व्यापारिक मार्ग तथा व्यापारिक केन्द्र

गमनागमन के साधनों की प्रत्येक समय और प्रत्येक देश में आवश्यकता पड़ती है। बिना गमनागमन के साधनों के व्यापार हो ही नहीं सकता। यदि गमनागमन के साधन न हों तो प्रत्येक छोटा छोटा प्रदेश एक पृथक् क्षेत्र बन जाये और उसका अन्य प्रदेशों से कोई सम्बन्ध ही न रहे। मानव-समाज की सभ्यता के विकास में गमनागमन के साधनों का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। आज भी चाहे अफ्रीका के पिछड़े महाद्वीप को ले लीजिए और चाहे उन्नतिशील योरोप को लीजिए—गमनागमन के साधनों की आवश्यकता सभी जगह प्रतीत होती है। माल लाने और ले जाने के साधनों (Transportation) के बिना व्यापार हो ही नहीं सकता और गमनागमन के लिए व्यापारिक मार्ग (Trade routes) चाहिए।

गमनागमन तथा माल लाने ले जाने के साधन भिन्न प्रकार के हैं। भिन्न भिन्न साधनों को हम तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं—(१) मनुष्यों द्वारा, (२) पशुओं द्वारा, (३) यंत्रों द्वारा।

अत्यन्त प्राचीन काल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने के लिए मनुष्य का उपयोग होता था। उस समय केवल पगडंडियाँ ही व्यापारिक मार्ग थीं। बड़े और चौड़े मार्गों की आवश्यकता ही न थी। किन्तु मनुष्य अपेक्षाकृत बहुत कम बोझा ले जा सकता है। आज भी घने जंगलों तथा पहाड़ी प्रदेशों में जहाँ मार्ग नहीं है मनुष्य ही माल ले जाने का मुख्य साधन है।

जब मनुष्य ने अपने पालतू जानवरों का उपयोग माल ले जाने और लाने में करना आरम्भ किया तो पगडंडियों के स्थान पर चौड़े मार्गों की आवश्यकता हुई क्योंकि पगडंडियों पर माल से लदे हुए पशु नहीं चल सकते थे। किन्तु उस समय भी कोई विधिवत मार्ग नहीं बनाया जाता था। सौदागर माल से लदे हुए पशुओं के कारवाँ को ऐसे रास्तों से ले जाते थे जो सुविधाजनक थे और पशुओं के लगातार चलने से चौड़े मार्ग बन जाते थे। तदुपरान्त गाड़ियों का आविष्कार हुआ और पहियेदार गाड़ियों में पशुओं को जोत कर कई गुना अधिक माल ले जाया जाने लगा। एक घोड़ा या बैल जितना बोझ पीठ पर लाद कर ले जा सकता है उससे कई गुने माल से भरी हुई गाड़ी को आसानी

से खींच सकता है। पहियेदार गाड़ी के उपयोग से अच्छे और मजबूत मार्गों की आवश्यकता पड़ी और सड़कों को बनाया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में यांत्रिक गमनागमन के साधनों के आविष्कार के कारण मार्गों में फिर परिवर्तन हुआ है। मोटर बस ट्रैफिक के लिए साधारण मार्गों से काम नहीं चलता, बढ़िया और मजबूत सड़कों की आवश्यकता होती है। रेलों के लिए तो और भी अधिक मज़बूत रेल मार्गों की आवश्यकता पड़ती है।

आज तो जलमार्ग भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये हैं। जब से स्टीमशिप (भाप द्वारा चलने वाले जहाज़) बनने लगे हैं तब से जलमार्गों का महत्व बहुत बढ़ गया है। जलमार्गों के बनाने में कुछ व्यय नहीं होता प्रकृति ने मार्ग की व्यवस्था कर दी है। हाँ जब नदियों को काट कर नहरें निकाली जाती हैं और उनका उपयोग व्यापारिक मार्ग के रूप में किया जाता है तब अवश्य मार्ग बनाने में व्यय होता है। क्रमशः वायुयानों द्वारा आने जाने तथा माल ले जाने की सुविधा बढ़ती जा रही है। यद्यपि अभी वायुयानों का व्यापार के लिए अधिक उपयोग नहीं हो सका है। वायुयानों के लिए भी मार्ग बनाने में व्यय नहीं होता, आकाश ही उसका मार्ग है।

माल ले जाने के भिन्न भिन्न साधनों और व्यापारिक मार्गों पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव

गमनागमन के साधनों और व्यापारिक मार्गों के बनाने तथा उनके महत्व पर भौगोलिक परिस्थिति का विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक देश अथवा भूभाग में कौन सा साधन काम में लाया जायेगा तथा व्यापारिक मार्ग का कितना उपयोग हो सकेगा यह वहाँ के धरातल की बनावट और जलवायु पर ही निर्भर रहता है। सड़कें अधिकतर मैदानों में ही बनाई जाती हैं और पहाड़ी प्रदेशों में जो सड़कें बनाई जाती हैं वे घाटियों में ही बनाई जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश में सड़कों को बनाते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि बहुत अधिक चढ़ाई और दर्रों को बचाया जाये नहीं तो सड़क बनाने में बहुत अधिक व्यय होता है। मैदानों में भी सड़कों को केवल इसलिए घुमा करके बनाया जाता है कि उससे नदी के ऊपर पुल बनाने के लिए उचित स्थान मिलने की सुविधा हो। सड़क बनाने के लिए कंकड़-पत्थर इत्यादि का उपयोग होता है और वह भी उस प्रदेश की धरातल की बनावट पर निर्भर है।

रेलवे लाइनों के बनाने में भी ऊपर लिखी हुई बातों का ध्यान रखना [पड़]ता है। रेलवे लाइनें भी अधिकतर मैदानों में ही बनाई जाती हैं। पहाड़ों में

रेलवे लाइन बनाने में बहुत कठिनाई और व्यय होता है। अधिकांश पहाड़ी रेलवे लाइनें नदियों की घाटियों में ही बनाई जाती हैं।

जलवायु का भी व्यापारिक मार्गों पर कुछ कम प्रभाव नहीं है। जिन प्रदेशों में वर्षा अधिक होती है और नदियों में बाढ़ अधिक आती है वहाँ सड़कों तथा रेलों को बनाने तथा उनको ठीक रखने में अधिक व्यय होता है। और जहाँ अधिक वर्षा तथा बाढ़ नहीं आती वहाँ कठिनाई नहीं होती। जलमार्गों पर तो जलवायु का बहुत अधिक प्रभाव है। बहुत से समुद्र तथा जलमार्ग जाड़ों में जम जाते हैं इस कारण उनका व्यापार के लिए उपयोग ही नहीं हो सकता। नदियाँ और नहरें भी उन ठंडे प्रदेशों में जाड़े के दिनों में बेकार हो जाती हैं। हवायें जहाज़ों के मार्ग को निर्धारित करती हैं। जब जहाज़ पालों के द्वारा चलते थे उस समय तो वे बिलकुल हवाओं के रुख पर ही निर्भर रहते थे किन्तु भाप से चलने वाले जहाज़ों को भी हवाओं का ध्यान रख कर अपना मार्ग निर्धारित करना पड़ता है। ठंडे देशों में पृथ्वी के नीचे चलने वाली रेलें ट्राम तथा सड़कें बनाई जा सकती हैं किन्तु गरम देशों में यह सम्भव नहीं है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि धरातल की बनावट तथा जलवायु मार्ग किस ओर होकर जायेगा, मार्ग बनाने में कितना व्यय होगा तथा उसको ठीक रखने में कितना व्यय होगा निर्धारित करता है। यही नहीं धरातल की बनावट तथा जलवायु उस प्रदेश की पैदावार को भी निर्धारित करता है और भिन्न भिन्न प्रदेशों की पैदावार को ले जाने और लाने के लिए ही मार्गों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार भौगोलिक परिस्थिति का मार्गों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

माल ले जाने के भिन्न भिन्न साधन

मनुष्य

यद्यपि मनुष्य का उपयोग बोझा ढोने में बहुत कम हो गया है, परन्तु आज भी कुछ पहाड़ी प्रदेशों में मनुष्य ही माल ले जाने का मुख्य साधन है। भूमध्य रेखा के समीपवर्ती घने जंगलों और एशिया के हिमालय तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशों में मनुष्य ही माल ले जाने का मुख्य साधन है। एक मनुष्य केवल ३५ पौंड बोझ लाद कर प्रतिदिन ६ या ७ मील के हिसाब से चल सकता है। मनुष्य अधिक बोझा नहीं ले जा सकता। इसी कारण उसका उपयोग केवल वहीं होता है जहाँ अन्य साधन उपलब्ध नहीं हैं।

पशु — यद्यपि रेल और मोटर बस के कारण पशुओं का माल ले जाने में कम उपयोग होने लगा है, फिर भी पशु एक महत्त्वपूर्ण साधन है किन्तु एक ही पशु सब स्थानों पर काम नहीं दे सकता। भिन्न प्रदेशों में भिन्न पशुओं का उपयोग होता है।

घोड़ा — घोड़ा अच्छा भोजन चाहता है और अच्छे जलवायु में ही रह सकता है। इस कारण उसका उपयोग अधिकतर मैदानों में ही होता है। पीठ पर लाद कर घोड़ा ३०० पौंड बोझ आसानी से ले जा सकता है। किन्तु गाड़ी में जुत कर घोड़ा एक टन बोझ ६ से ८ मील प्रति घंटा ले जा सकता है। कुछ घोड़े इससे भी अधिक बोझ खींच सकते हैं।

गदहा और खच्चर — गदहा और खच्चर सूखी घास और खराब चारे पर भी निर्वाह कर सकते हैं, ये घोड़े से अधिक कठोर होते हैं। इस कारण इनका उपयोग शुष्क प्रदेशों, तथा पहाड़ी प्रदेशों में होता है। खच्चर साधारण घोड़े के बराबर ही बोझा पीठ पर लादकर (३०० पौंड) तथा खींच कर (१ टन) ले जा सकता है। गदहा खच्चर से कुछ ही कम बोझा लाद और खींच कर ले जा सकता है।

बैल — बैल घोड़े से धीरे चलने वाला है। यह अधिकतर ऊष्ण कटिबंध तथा शीतोष्ण कटिबंध के गरम भागों में बोझा ढोने का काम करता है। पीठ पर लाद कर यह १५० पौंड बोझ ले जा सकता है तथा खींच कर २००० पौंड ले जाता है।

ऊँट — ऊँट रेगिस्तान का जहाज है। ऊँट १० दिन तक बिना पानी और चारे के रह सकता है। रेगिस्तान की सूखी घास तथा अन्य चारे पर निर्वाह कर सकता है। इस कारण रेगिस्तानों में बोझा ढोने का कार्य ऊँट ही करते हैं। पीठ पर लाद कर ४५० पौंड बोझ प्रतिदिन १५ से २० मील ले जा सकता है। खींच कर ऊँट १२०० पौंड बोझ प्रति घंटा २ से ३ मील तक ले जा सकता है।

हाथी — हाथी को बहुत अधिक चारे की आवश्यकता पड़ती है। इसका उपयोग अधिकतर पहाड़ी तथा नम प्रदेश में होता है। बर्मा तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के जंगलों तथा टिन की खानों के प्रदेश में इसका उपयोग होता है। हाथी बहुत शक्ति-

शाली जानवर होता है इस कारण वह पीठ पर लाद कर १००० पौंड तथा खींचकर २ से ३ टन तक बोझ ले जा सकता है। किन्तु हाथी बहुत धीरे चलता है इस कारण उसका अधिक उपयोग नहीं होता।

इनके अतिरिक्त लामा (Llama) ऐन्डीज़ पर्वतमाला के बहुत ऊँचे भागों में बोझ ढोने के काम आता है। जहाँ बहुत ठंड पड़ती है और ऊँचाई अधिक होती है वहाँ बोझ ढोने का काम यही पशु करता है। यह १०० पौंड बोझ लादकर १२ से १४ मील प्रति दिन चल सकता है।

मध्य एशिया के बर्फीले हिमालय प्रदेश में याक बोझ ढोने का काम करता है। याक १०० पौंड बोझा ले जाता है। याक के अतिरिक्त निचले पहाड़ी प्रदेश में (मध्य एशिया) भेंड और बकरों का भी बोझ ढोने के लिए उपयोग होता है किन्तु यह २५-३० पौंड से अधिक बोझ नहीं ले जा सकते।

उत्तर के बर्फीले प्रदेश (टुंड्रा) में रेंडियर बोझ ढोने के काम आता है। यह साधारण बैल से कम बोझ ले जा सकता है। इनके अतिरिक्त उन प्रदेशों में जहाँ अन्य पशु नहीं मिलते वहाँ कुत्तों का भी उपयोग होता है।

सड़कें

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि पशुओं के द्वारा खींची जाने वाली पहियेदार गाड़ियों का आविष्कार होने पर सड़कों की आवश्यकता हुई। किन्तु आज तो मोटर बस के अधिक प्रचलित हो जाने से सड़कों का महत्व बहुत बढ़ गया है। मोटर बस ट्रैफिक के लिए बहुत अच्छी और मज़बूत सड़कों की आवश्यकता है। पिछले बीस पच्चीस वर्षों में मोटर बसों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण रेलों की आय कम हो गई। प्रत्येक देश में मोटर रेल स्पर्द्धा ने भीषण रूप धारण कर लिया है। मोटर के लिए विशेष प्रकार के मार्ग, स्टेशन तथा अन्य बातों की आवश्यकता नहीं पड़ती। साथ ही मोटर में सामान ले जाने में माल को भिन्न भिन्न स्थानों पर उतरना चढ़ना नहीं पड़ता। फिर भी अधिक दूरी तथा भारी चीज़ों के लिए रेल ही अधिक उपयुक्त और सस्ती रहती है।

गाँवों में गमनागमन के लिए सड़कें ही अधिक उपयुक्त होती हैं क्योंकि वहाँ इतना गमनागमन और माल नहीं होता कि रेलों का खोलना लाभदायक हो। यदि रेलों को गाँवों से सड़कों द्वारा जोड़ दिया जावे तो गाँवों का माल वहाँ आ सकता है और वहाँ से दूसरे स्थानों को जा सकता है। पिछले दिनों में सड़कों का महत्व बहुत बढ़ गया है। इस सम्बंध में यहाँ कुछ आंकड़े देते हैं :—

देश	मोटर योग्य सड़क की लम्बाई	मोटरों की संख्या (लाखों में)
संयुक्तराज्य अमेरिका	२० लाख मील	३०१
फ्रांस	४६४,७५० मील	२२
ब्रिटेन	१७७,००० मील	२६
जरमनी	१७१,२५० मील	१६
कनाडा	३६४,३०० मील	१४
भारत	७५,००० मील	

संसार में कुल ६,२२५,००० मील सड़क है जिस पर मोटर चल सकते हैं उसमें से लगभग एक तिहाई संयुक्तराज्य अमेरिका में है। यहाँ संसार में मोटर द्वारा गमनागमन बहुत है। संसार की ७५ प्रतिशत मोटरें संयुक्तराज्य अमेरिका में हैं।

भारतवर्ष में मोटर योग्य सड़कें केवल ७५,००० मील हैं। यों कच्ची सड़कें मिलाकर ३लाख मील सड़कें भारत में हैं। भारत जैसे विशाल देश के लिए यह बहुत कम हैं।

रेल

स्टीम ऐंजिन का आविष्कार होने के बाद रेलों का प्रचार बढ़ा और आज कल तो सभी देशों में व्यापार और सफर रेलों के द्वारा ही होता है। वास्तव में रेलों का व्यापार तथा उद्योग-धंधों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। यदि किसी देश में रेलों का प्रबंध अच्छा है, रेलवे कंपनियाँ देश के व्यापार को बढ़ाना चाहती हैं तो वहाँ का व्यापार शीघ्र हीं बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका के पश्चिमी भाग को आबाद तथा उन्नत करने में रेलों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। रेलवे कंपनियों ने उन भागों को सामान ले जाने तथा वहाँ से माल लाने के भाड़े को कम करके उन प्रदेशों को बसाने तथा उनकी उन्नति करने में सहायता पहुँचाई। बिना रेलवे लाइनों के देश के उद्योग-धंधे और व्यापार पनप ही नहीं सकते। सभ्य संसार में कुछ ही देश ऐसे हैं जहाँ रेलें नहीं हैं। जिन देशों में रेल पथ कम हैं वे औद्योगिक तथा व्यापारिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

रेलों का विशेष गुण यह है कि वह कम भाड़े में माल तथा मुसाफिरों को तेज़ी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देती हैं। समय की बचत अर्थात् तेज रफ़्तार ही रेलों का विशेष गुण है। किन्तु रेल को तेज़ चलाने के लिये चौरस भूमि पर पटरी डालना आवश्यक है। यदि चढ़ाई होगी तो रेल की रफ़्तार बहुत कम हो जावेगी। थोड़ी सी चढ़ाई के कारण ही रेल की चाल

बहुत धीमी हो जाती है। यही कारण है कि पर्वतीय प्रदेशों में टनल खोद कर तथा चक्कर देकर ऊँचाई को बचाया जाता है किन्तु इसका परिणाम यह होता है कि इन प्रदेशों में रेल बनाने में अत्यधिक व्यय होता है।

रेलों के खुल जाने से बहुत से वीरान देश आबाद हो गए। कनाडा और सायबेरिया में जो कुछ उन्नति हुई है वह रेलों का ही प्रसाद है। यदि आस्ट्रेलिया में सब रियासतें रेलवे लाइनों द्वारा न जोड़ दी जातीं तो केन्द्रीय सरकार का संगठन होना बहुत कठिन था। भारतवर्ष तथा चीन जैसे महाराष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य रेलों ने ही किया है। जो देश मनुष्य निवास के योग्य नहीं हैं किन्तु जहाँ खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं बिना रेलों के खुले उन्नति नहीं कर सकते। जिन देशों में कच्चा माल बन्दरगाहों से दूर उत्पन्न होता है वहाँ रेलों के द्वारा ही वह बन्दरगाहों तक लाया जाता है।

किन्तु रेलों का उपयोग अभी तक देश के अन्दर के व्यापार के ही लिए हो सका है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए इनका अधिक महत्त्व नहीं है। इसके दो मुख्य कारण हैं। प्रथम, रेलों द्वारा माल ले जाने में जहाजों की अपेक्षा व्यय अधिक होता है, दूसरे भिन्न भिन्न देशों में लाइनों की चौड़ाई भिन्न होने से माल को भिन्न भिन्न स्थानों पर उतारना चढ़ाना पड़ता है। योरोप में ही रूस की रेलवे लाइनों की चौड़ाई ५ फीट है, स्पेन पोर्तुगाल की चौड़ाई ५ फीट ५½ इंच तथा अन्य योरोपीय देशों की लाइनें ४ फीट ८½ इंच चौड़ी हैं। प्रत्येक देश में यदि एक ही चौड़ाई की रेलवे लाइनें हों तो रेलों का भी उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए हो सकता है। किन्तु सैनिक दृष्टि से एक ही चौड़ाई की लाइनें होना देश की रक्षा के लिए भयानक सिद्ध हो सकता है। इस कारण प्रत्येक देश अपने पड़ोसी देश से भिन्न चौड़ाई की रेलवे लाइनें बनाता है।

रेलों के विस्तार पर पृथ्वी की बनावट और जलवायु का प्रभाव बहुत पड़ता है। जहाँ हिम अधिक पड़ता है वहाँ पहाड़ी दर्रों को हिम रोक देता और रेल नहीं निकल सकती और जहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है वहाँ की भूमि इतनी नम हो जाती है कि रेल नहीं निकाली जा सकती। उदाहरण के लिए उत्तरीय ध्रुव के समीपवर्ती प्रदेश तथा भूमध्यरेखा (Equator) के समीपवर्ती प्रदेश में रेलों का विस्तार नहीं हो सकता।

धरातल की बनावट रेलों को किस ओर से निकाला जावेगा यह निर्धारित करती है। उदाहरण के लिए पहाड़ी प्रदेशों में नदियों की घाटियों और दर्रों में से होकर ही रेलें निकाली जाती हैं। पहाड़ रेलों के विस्तार में बहुत

रुकावट डालते हैं। यद्यपि कहीं कहीं सुरंग बनाकर पहाड़ों में से रेलें निकाली गई हैं फिर भी पहाड़ी प्रदेश में रेलों का विस्तार कम हुआ है।

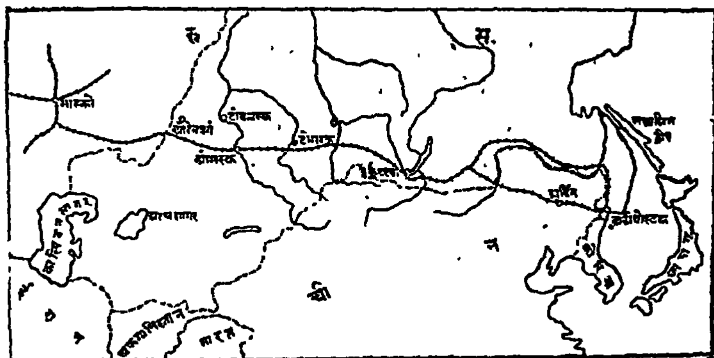
संसार के प्रमुख देशों में रेलों का विस्तार

संयुक्तराज्य अमेरिका	२४२, ७४४
सोवियत रूस	६०, ०००
जरमनी	४२, ३००
कनाडा	३१, ७००
भारतवर्ष	४१, १५६
आस्ट्रेलिया	२७, ९६२
अरजैनटाइन	२६, २४९
फ्रांस	२६, ४२७
ब्राजिल	२४, ०००
ब्रिटिश द्वीप समूह	२२, ९१५
जापान	१५, २५४
पोलैंड	१२, ७००
दक्षिण अफ्रीका	१३, २४४
इटली	१४, ५५०
चिली	५, २००
बैलजियम	३, १८९

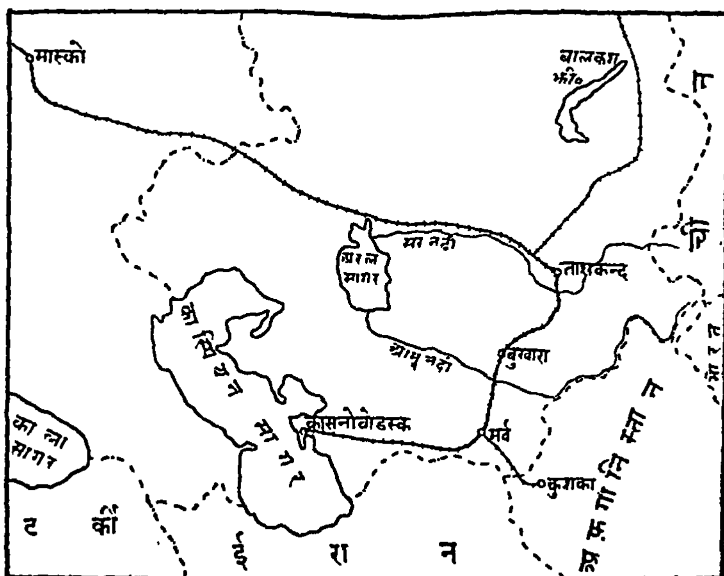
संसार की कुछ प्रमुख महादेशीय रेलें

१. ट्रांस सायबेरियन रेलवे इस रेल के द्वारा योरोपीय रूस को सुदूर पूर्व से जोड़ दिया गया है। यह मास्को से चलती है और प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) पर स्थित वैलाडीवास्टक (Vladivostok) पर समाप्त होती है। इसकी लम्बाई ५४०० मील लम्बी है। यह संसार में सबसे लम्बी रेल है। मध्य तथा पूर्वीय सायबेरिया जो आबादी और आर्थिक उन्नति दिखलाई देती है वह इसी रेल का प्रसाद है। मास्को से लाइन यूराल पर्वत को पार कर के ओमस्क (Omsk) को जाती है। यह अत्यन्त उपजाऊ भाग है और उसमें गेहूँ की पैदावार खूब होती है। ओमस्क से लाइन ठीक पूर्व की तरफ जाती है। बीच में 'ओबी' और यनिसी महानदियों को पार करती हुई वह बैकाल झील और इरक्यूटस्क (Irkutsk) पहुँचती है।

इसके उपरान्त यह लाइन आमूर नदी की घाटी में होती हुई मंचूरिया होकर वैलाडिवास्टक पहुँचती है। मंचूरिया में इस रेल की एक दक्षिणी



शाखा हारबिन से निकाली गई है जो 'मकडन' होती हुई 'पोर्ट आर्थर' पहुँचती है। मकडन को पीपिंग से रेल द्वारा जोड़ दिया गया है।

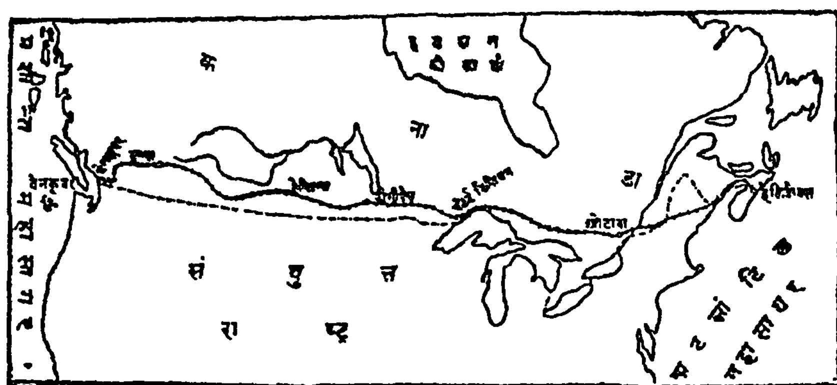


ट्रांस कैस्पियन रेलवे (Trans-Caspian Railway) ट्रांस कैस्पियन रेलवे मध्य एशिया को योरोपीय रूस से जोड़ती है। यह उस सम्भावित रेल मार्ग का एक भाग है जो योरोप और भारत को जोड़ सकता है। यह लाइन क्रैस्नोवोडस्क (Krasnovodsk) जो कास्पियन समुद्र पर है वहाँ से यह लाइन चलती है और तुरकिस्तान के कपास के

क्षेत्र के मध्य तक जाती है। इसकी एक शाख अफग़ानिस्तान की सीमा तक (मैरी Mery से कुश्क Kushk) गई है। क्रैस्नोवोडस्क ताशकंद के द्वारा मास्को से रेल द्वारा जुड़ गया है।

कनैडियन पैसिफिक रेलवे

यह रेलवे १८८६ में बन कर तैयार हुई। इसकी लम्बाई ३५०० मील है। यह लाइन कनाडा के अटलांटिक समुद्र तक प्रशान्त महासागर के तट से मिलती है। यह लाइन लीवरपूल (इङ्गलैंड) को जापान और चीन के समीप ला देती है। समुद्र से जाने से १२०० मील अधिक चलना पड़ता है। यह इतनी दूरी को कम कर देती है। यह लाइन हैलीफैक्स और



सेंट जोन्स से मान्ट्रियल को जाती है। वहाँ से यह लाइन कनाडा की सबसे बड़ी गेहूँ की मंडी विनीपेग को जाती है। विनीपेग से रेगिन होकर यह विस्तृत मैदानों को पार करती हुई राकी पर्वत माला में मैडिसन हैट (Medicine Hat) पहुँचती है। मैडिसन-से यह किकिंग हार्स पास (Kicking Horse Pass) होती हुई वैंकोवर पहुँचती है। इस रेलवे से कनाडा का विशाल भूभाग एक सूत्र में बंध गया है इस कारण इसका राजनैतिक महत्व भी है। आर्थिक महत्व तो इसका स्पष्ट ही है। एक प्रकार से कनाडा के व्यापार का यह प्राण है। यद्यपि कनाडा में जलमार्ग भी महत्वपूर्ण हैं परन्तु वे जाड़ों में बर्फ से जम जाने के कारण बेकार हो जाते हैं।

चिली-अरजैनटाइन (रेलवे Chile Argentine railway)

दक्षिण अमेरिका की चिली अरजैनटाइन रेलवे ब्यूनासायरस (Buenos Aires) को वालपरैजो (Valparaiso) से जोड़ती है। इसकी लम्बाई ६०० मील है। यह रेलवे लाइन १६१० में बनकर तैयार हुई किन्तु इसमें एक बड़ी कमी है कि अरजैनटाइन और चिली में रेल की पटरी की चौड़ाई भिन्न है इस कारण सीमाओं पर

सवारियों को गाड़ी बदलनी पड़ती है। अधिकांश इस रेल का उपयोग यात्रियों और डाक के लिए ही होता है। बात यह है कि व्यापार यहाँ बहुत कम है।

केप कैरो मार्ग (Cape Cairo route)

अफ्रीका में केप से कैरो तक ६०० मील का अन्तर है जो कि रेल, नदी, झील और सड़क से पार करना पड़ता है। सैसिल रोडस की यह योजना थी कि केप से कैरो तक ब्रिटिश रेलवे लाइन बन जावे किन्तु वह योजना पूर्ण न हो सकी। केप टाउन से एक रेलवे लाइन बैलजियन कांगो की सीमा तक जाती है। वहाँ से नदी तथा कारवाँ मार्ग के द्वारा विक्टोरिया झील तक जाता है। वहाँ से एक मोटर की सड़क नील नदी तक (नाइल गार्ज) जाती है। वहाँ से ख़रतुम तक स्टीमर चलते हैं। ख़रतुम से वादी हैफा तक रेल है। वहाँ से शैलाल तक फिर नदी से जाना होता है। शैलाल से कैरो तक रेलवे लाइन है। इस प्रकार यह कठिन मार्ग पूरा होता है।

भीतरी जलमार्ग नदियाँ और नहरें

प्राचीन समय में जब रेलों तथा मोटरों का आविष्कार नहीं हुआ था नदियाँ ही मुख्य व्यापारिक मार्ग थे। उस समय बड़े बड़े नगर नदियों के ही किनारे बसाये जाते थे। संसार के जितने भी प्राचीन बड़े बड़े नगर हैं वे सब नदियों के किनारे पर ही स्थित हैं। मनुष्य समाज की सभ्यता के विकास में नदियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। आधुनिक जहाज भी नदियों की नावों का उन्नत रूप हैं। यद्यपि रेलों और मोटरों के कारण नदियों का महत्व कम हो गया है परन्तु फिर भी उनका उपयोग बिलकुल नष्ट नहीं हो गया है।

योरोप में जर्मनी, फ्रांस, हालैंड तथा बैलजियम में नदियाँ और नहरें आज भी महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग हैं। अधिकांश नहरें औद्योगिक प्रदेशों में हैं जहाँ नहरों तथा नदियों के द्वारा कच्चा माल और कोयला ले जाने में सुविधा होती है। जर्मनी में नदियों और उनकी नहरों के द्वारा बहुत व्यापार होता है। यल्ब, बेसर, और ओडर नदियों में ५०० टन वाले स्टीमर चलते हैं। राइन तो पश्चिमी योरोप का मुख्य व्यापारिक जलमार्ग है। राइन में छोटे समुद्री जहाज आ जा सकते हैं। इसी कारण राइन नदी के दोनों किनारों पर बहुत से कारख़ाने स्थापित हैं। राइन नदी पर इतना अधिक माल आता जाता है जितना संसार में किसी नदी पर नहीं आता जाता। इसमें मेन (Main) मैनहीम और स्ट्रेसबर्ग तक स्टीमर जा सकते हैं। यल्ब नदी भी व्यापार का मुख्य

साधन है वह जैकोस्लोवेकिया तक नावों द्वारा जाई जा सकती है और उस पर ड्रैसडन मैगडेबर्ग, और हैम्बर्ग जैसे प्रसिद्ध नगर हैं। डैन्यूब जो कई देशों में से होकर जाती है योरोप का प्रमुख जलमार्ग है। आयरन गेट तक डैन्यूब में समुद्री जहाज़ आ जा सकते हैं। राइन और डैन्यूब को नहर के द्वारा जोड़ दिया गया है। ओडर भी जरमनी का प्रसिद्ध जलमार्ग है और वह जरमनी के औद्योगिक प्रदेश सिलीशिया में हो कर जाती है। ब्रेसला और फ्रैंकफर्ट उस पर मुख्य केन्द्र हैं। जरमनी की नदियाँ एक दूसरे से नहरों द्वारा जुड़ी हुई हैं। वैसर नदी यल्ब से मैगडेबर्ग और हैम्बर्ग जुड़ी है। हंसा नहर रूर की कोयले की खानों को हेम्बर्ग से जोड़ती है। लडविग नहर डैन्यूब को राइन की सहायक मेन से जोड़ती है।

उत्तरी अमेरिका की उन्नति बहुत कुछ, नदियाँ, झीलों और नहरों के कारण ही हुई है। आज भी वे उत्तरी अमेरिका में बहुत महत्वपूर्ण जलमार्ग हैं।

सेंट-लारेंस नदी और पाँचों झीलों का जलमार्ग व्यापार की दृष्टि से संसार में सबसे महत्वपूर्ण है। इस जलमार्ग के रास्ते जहाज़ २३०० मील की दूरी पोर्ट आर्थर तक जा सकते हैं। यद्यपि नदी तथा झीलों के जम जाने से वर्ष में यह मार्ग केवल ८ महीने ही उपयोगी है परन्तु फिर भी इसके द्वारा बहुत व्यापार होता है। सेन्ट लारेंस नदी इन झीलों को जोड़ती है किन्तु बीच बीच में ऊँचे से बहुत नीचे एक साथ गिरने के कारण जहाजों के लिए अनुपयुक्त है। अतएव इन झीलों को नहरों द्वारा जोड़ दिया गया है और इन जलप्रपातों को बचा दिया गया है। इन नहरों में सू नहर (Soo Canal) अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। कोहरा बहुत होने के कारण दुर्घटनाओं की सम्भावना रहती है इसके लिए तेज़ रोशनी फेंकी जाती है और हर्न बजा कर जहाज़ों को आगाह किया जाता है। जाड़ों में बरफ तोड़ने वाले जहाज़ इसको खुला रखते हैं। इसके अतिरिक्त कनाडा में रैड, अल्बैनी ससकैचु आन, मैकेंजी, और यूकान भी महत्वपूर्ण नदियाँ हैं जो व्यापार के लिए महत्वपूर्ण हैं। किन्तु उनपर स्थानीय व्यापार ही होता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका का भीतरी जलमार्ग भी बहुत ही महत्वपूर्ण है। वहाँ लगभग २०,००० मील जलमार्ग है। मिसिसिपी और मिसूरी नदियों के बेसिन में ही १६,००० मील जलमार्ग है। मिसिसीपी अपने मुहाने से सेंट पाल तक २००० मील तक स्टीमरों द्वारा जाई जा सकती है।

संयुक्तराज्य अमेरिका के जलमार्ग

ऊपरी मिसिसीपी में अत्यधिक माल ढोया जाता है। इस नदी का एक दोष

यह है कि इसमें बाढ़ बहुत आती है। ओहियो जो मिसिसीपी की सहायक नदी है पैंसेलवेनिया तक खेई जा सकती है और उससे कोयले का व्यापार बहुत होता है। मिसूरी जो मिसिसीपी से सेंट लुइस पर मिलती है राकी पहाड़ों तक खेई जा सकती है। क्योंकि मिसिसीपी और सेंट लारेंस समीप से ही निकलती हैं इस कारण दोनों को एक नहर से जोड़ दिया गया है।

फ्रांस के जलमार्ग

फ्रांस के जलमार्ग भी बहुत पूर्ण हैं। फ्रांस में सभी महत्वपूर्ण नदियों को एक दूसरे से जोड़ दिया गया है। फ्रांसकी अधिकांश नदियां खेने योग्य हैं और पहाड़ी प्रदेशों को छोड़कर जहाँ से वे निकलती हैं अधिकांश लम्बाई में खेई जा सकती हैं। रोन नदी अधिक महत्वपूर्ण जलमार्ग नहीं है। किंतु सेओन (Saone) नदी अत्यन्त महत्वपूर्ण जलमार्ग है। सीन नदी बरगंडी की पहाड़ियों से निकल कर पैरिस के प्रदेश में से होकर इंग्लिश चैनल में गिरती है। यह एक महत्वपूर्ण जलमार्ग है। लायर बिस्के की खाड़ी में गिरती है और एक महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग है। ड्रोन (Drodogne) और गैरोन (Garone) भी महत्व पूर्ण व्यापारिक मार्ग हैं।

रूस की नदियाँ

रूस में बहुत बड़ी बड़ी नदियां हैं किन्तु वे या तो उत्तरीय महासागर में गिरती हैं अथवा काला सागर, बाल्टिक समुद्र और कैस्पियन सागर में गिरती हैं यही इनका बड़ा दोष है। क्योंकि उत्तरीय महासागर बर्फ से जमा रहता है और कैस्पियन सागर बंद समुद्र है। बाल्टिक समुद्र और काला सागर भीतरी समुद्र हैं। यह दोष होते हुए भी रूस की नदियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग हैं। वोल्गा योरोप की दूसरी महत्वपूर्ण नदी है। इस नदी के द्वारा उत्तर और दक्षिण रूस का व्यापार होता है। यह रूस के उत्तरी भाग को दक्षिण से मिलाती है। क्योंकि यह कैस्पियन सागर में गिरती है जो बंद समुद्र है यह केवल रूस के व्यापार के ही लिए महत्वपूर्ण है।

दक्षिण अमेरिका के जलमार्ग

दक्षिण अमेरिका के जलमार्ग व्यापार के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। अमेजन नद इस महाद्वीप की सबसे बड़ी नदी है। वर्षा के मौसम में अपनी सहायक नदियों सहित वह ५०,००० मील का जलमार्ग प्रस्तुत करती है जिसमें नावें आ जा सकती हैं किन्तु सूखे मौसम में केवल २०,००० मील का जल मार्ग ही नावों के योग्य रहता है। यद्यपि अमेजन नद एक बड़ा जलमार्ग है किन्तु इस प्रदेश में जनसंख्या बहुत कम होने के कारण

तथा वन आच्छादित और पिछड़ा होने के कारण इसका अधिक उपयोग नहीं होता। ओरिनिको जो वैनजिला से होकर बहती है एक लम्बा मार्ग है। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण जलमार्ग पराना नदी का है जो अरजैनटाइन, परेग्वे, युरेग्वे होता हुआ दक्षिण ब्राज़ील तक पहुँचता है। दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी भाग में रायो नीग्रो पैटेगोनिया के भेड़ प्रदेश से होकर जाती है।

अफ्रीका के जल-मार्ग

यद्यपि नील अफ्रीका की सबसे बड़ी नदी है किन्तु वह ऊँचे स्थानों से गिरती है और भयंकर जल प्रपात हैं साथ ही मध्य में भी वह ऊबड़ खाबड़ प्रदेश से बहती है। इस कारण वह केवल डेल्टा में ही खेने योग्य है। जैम्बसी २५० मील तक खेई जा सकती है। अफ्रीका में कांगो सबसे महत्त्वपूर्ण जलमार्ग है उसकी मुख्य सहायक नदी उबांगी अपने मूल स्थान तक खेई जा सकती है। पश्चिमी अफ्रीका में नाइगर ५०० मील तक और गैम्बिया २०० मील तक खेई जा सकती है। क्योंकि अफ्रीका में रेलों का विस्तार नहीं हुआ है इस कारण नदियाँ ही यहाँ का मुख्य मार्ग हैं।

चीन के जलमार्ग

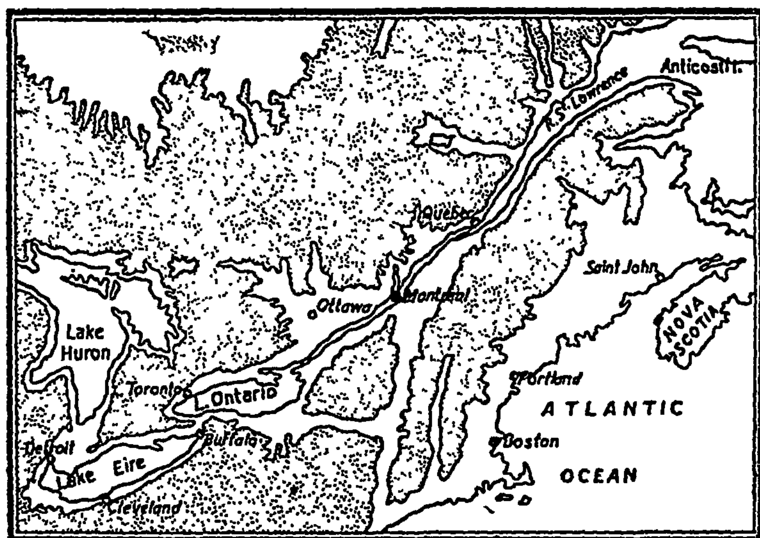
चीन की तीन प्रमुख नदिया ह्वांगहो, यांगटिसी क्यांग और सीकियांग मुख्य जलमार्ग हैं। यांगटिसी पर मूल स्थान से १००० मील तक स्टीमर जा सकते हैं और हुंकाऊ तक जो समुद्र से ६८० मील ऊपर है समुद्री जहाज़ पहुँच सकते हैं। ऊपरी हिस्से में यह नदी जैचुआन प्रान्त में होकर बहती है जो अफ़ीम, रेशम, कपास तथा खनिज सम्पत्ति का धनी है उस कारण इस भाग में बहुत व्यापार होता है। ह्वांगहो व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वह बहुत तेज़ और छिछली है। ह्वांगहो 'चीन का शोक' कही जाती है क्योंकि उसकी बाढ़ों से धन जन का बहुत नाश होता है। सीकियांग में बहुत दूर तक स्टीमर जा सकते हैं उस कारण वह एक महत्वपूर्ण मार्ग है। पी-हो भी एक महत्वपूर्ण मार्ग है और टिंटसिन तक खेई जा सकती है।

भारत के जलमार्ग

उत्तरी भारत के जलमार्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। गंगा कानपुर तक स्टीमरों द्वारा खेई जा सकती है। यह नदी भारत के अत्यन्त उपजाऊ प्रान्तों में से होकर बहती है उस कारण यह महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग है। रेलों के निकलने के पूर्व उत्तर भारत का यही मुख्य व्यापारिक मार्ग था। यद्यपि रेलों के निकल जाने से इसका महत्त्व घट गया है किन्तु नीचे के भाग में (बिहार और बंगाल में) अब भी वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग है। सिंध में डेरा इस्माइल खाँ (८२० मील) तक स्टीमर जा सकते हैं। कपास, ऊन और गेहूँ

इस मार्ग से आता है। ब्रह्मपुत्र डिब्रूगढ़ तक स्टीमरों द्वारा खेई जा सकती है। इसकी सहायक सुरमा के द्वारा सिलहट और कछार प्रदेश में मुख्य मार्ग है।

नदियों के सम्बंध में एक बात ध्यान में रखने की है। जहाँ अन्य सुविधा-जनकमार्ग नहीं हैं अथवा जहाँ उनकी प्राकृतिक स्थिति ऐसी है कि बिना उनका उपयोग किए काम नहीं चल सकता वहीं वे महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग हैं। अन्यथा रेल की तुलना में नदियाँ और नहरें सुविधाजनक व्यापारिक मार्ग नही हैं। नदियों और नहरों से माल ले जाने में कुछ असुविधायें हैं। नदियों



और नहरों के द्वारा माल अधिक देर में पहुँचता है, रेलवे साइडिंग पर माल को रखने और जब आवश्यकता हो तब भर कर ले जाने की सुविधा होती है जो कि नदियों और नहरों से माल ले जाने में नहीं होती। फिर भी भारी तथा दिनों तक खराब न होने वाला माल नहरों और नदियों से कम खर्चे से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है। यही भीतरी जलमार्ग का प्रधान गुण है।

समुद्री मार्ग

आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व समुद्र पृथ्वी के भिन्न भिन्न भू भागों के बीच में एक बड़ा रुकावट के रूप में था। जब तक कि समुद्र में चलने योग्य जहाज नहीं बन गए तथा जहाज़ खेने की कला में इतनी उन्नति नहीं हो गई कि नाविक अपने निर्धारित मार्ग पर जहाज को ले जा सकें तब तक समुद्र का व्यापार

के लिए उपयोग न हो सका। किन्तु आज तो समुद्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य साधन बन गया है और एक देश दूसरे देश के बहुत समीप आगया है।

समुद्रीय जलमार्ग के द्वारा माल बहुत सस्ते भाड़े में एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है। जहाज द्वारा मांट्रियल से लिवरपूल तक गेहूँ जाने में प्रति टन प्रति मील ·०६ पें० खर्च पड़ता है, किन्तु इङ्गलैंड में रेल से गेहूँ ले जाने में प्रति टन प्रति मील २०.१ पें० खर्च पड़ता है। यद्यपि जहाज द्वारा माल ले जाने में खर्च बहुत कम होता है परन्तु जहाज़ रेल की अपेक्षा धीरे चलता है। यही नहीं जहाज़ साधारणत: ८००० से १०,०००टन बोझा ले जा सकता है जबकि रेलवे ट्रेन ६०० टन बोझा ही ले जाती है।

जहाज़ द्वारा कम खर्च से माल ले जा सकने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं:—

समुद्र ने एक प्रकृतिदत्त जहाज मार्ग उपस्थित कर दिया है उसको बनाने में कुछ व्यय नहीं होता। यही नहीं समुद्री मार्ग सब दिशाओं में है अतएव जहाज़ जहाँ भी आवश्यकता हो जा सकता है। इसके विपरीत रेलवे लाइनें डालने में पचास हज़ार से लेकर एक लाख रुपया प्रति मील व्यय हो जाता है फिर भी सब स्थानों पर रेल नहीं पहुँच सकती। समुद्र सब देशों के लिए खुला है अतएव प्रत्येक देश के जहाज़ समुद्र का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं अतएव जहाज़ी कम्पनियों को व्यापार का एकाधिकार नहीं होता। जहाज़ों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है इस कारण जहाज़ों के चलाने की कला में उन्नति करने, मुसाफिरों तथा व्यापारियों को सुविधा देने, और कम किराया लेने की ओर जहाज़ी कम्पनियों का विशेष ध्यान रहता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक (१८२४) पालों से चलने वाले जहाजों का प्राधान्य था किन्तु पिछले १०० वर्षों में भाप से चलने वाले जहाज़ों का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि हवा से चलने वाले जहाज़ (Sailing Ships) महत्वहीन हो गए। आज भी अधिकांश हवा से चलने वाले जहाज़ तटीय व्यापार तथा कम दूरी की यात्रा करते हैं और भारी सामान को जो जल्दी नष्ट होने वाला न हो ले जाते हैं। परन्तु थोड़े से हवा द्वारा चलने वाले जहाज़ दूर की यात्रा भी करते हैं। स्टीमर हवा से चलने वाले जहाज़ों की अपेक्षा अधिक सामान ले जा सकता है, उसकी चाल तेज़ होती है तथा वायु का उस पर कोई असर नहीं होता। क्रमशः हवा से चलने वाले जहाज़ों का उपयोग समाप्त हो रहा है। किन्तु भाप से चलने वाले

जहाजों के लिए कोयला अथवा तेल की आवश्यकता होती है इस कारण तेल तथा कोयले के स्टेशनों को स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी।

जैसे जैसे जहाज़ों का आकार बढ़ाया जाने लगा और उनकी चाल को तेज़ किया गया वैसे ही वैसे अधिकाधिक कोयले की आवश्यकता पड़ने लगी। कोयला जहाज़ में बहुत सा स्थान घेरने लगा इसका परिणाम यह हुआ कि जहाज़ों में माल भरने के लिए कम स्थान रहता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए बहुत से प्रयत्न किए गए। ऐंजिनों में सुधार किया गया कि जिससे कम कोयला खर्च हो। १६२० के उपरान्त ऐसे जहाज़ भी बनने लगे जिनमें कोयले के स्थान पर तेल का उपयोग होता है। तेल का उपयोग करने में नीचे लिखे लाभ हैं। तेल को जहाज़ में भरने में खर्च कम होता है, जहाज अधिक साफ रहता है, तेल भरने में एक चौथाई समय लगता है अतएव जहाज़ का कार्यशील जीवन बढ़ जाता है। तेल को कोयले की अपेक्षा आधी जगह चाहिये अतएव माल भरने को अधिक जगह बच रहती है। तेल से चलने वाले जहाज़ के ऐंजिन रूम में कम आदमियों की आवश्यकता होती है इस कारण मज़दूरी भी कम देनी पड़ती है। किन्तु इन गुणों के साथ साथ तेल का मूल्य कोयले से अधिक है यह दोष भी है। कुछ वर्षों से मोटर शिप भी तैयार किए जाने लगे हैं जिनमें तेल का ही उपयोग होता है किन्तु खर्चा कम होता है। संसार में तेल की माँग बहुत है और वह सब जगहों पर नहीं मिल सकता साथ ही उसके भर कर रखने में कठिनाई बहुत है इस कारण इस बात की सम्भावना तो नहीं है कि कोयले का उपयोग बहुत कम हो जावेगा, परन्तु भविष्य में जहाज़ों में तेल का और भी अधिक उपयोग होगा इसमें संदेह नहीं।

जहाज़ दो प्रकार के होते हैं—ट्रैम्प (Tramp) और लाइनर (Liner) लाइनर जहाज़ एक निर्धारित मार्ग से होकर जाते हैं। जिन बंदरगाहों पर उनका जाना निश्चित है उन पर वे अवश्य ही जायेंगे। उनका समय भी निश्चित रहता है। ट्रैम्प जहाजों का न तो कोई निश्चित मार्ग ही होता है और न उसका समय ही निश्चित होता है। ट्रैम्प जहाँ के लिए उन्हें माल मिल जाता है वहीं के लिए प्रस्थान करते हैं। ट्रैम्प जहाज़ों के द्वारा खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल बहुत अधिक राशि में एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। संसार का आधे से अधिक व्यापार इन ट्रैम्प जहाज़ों के द्वारा ही होता है। किन्तु ट्रैम्प जहाज़ केवल उन्हीं व्यापारियों के काम के होते हैं जो पूरे जहाज़ के लायक माल भेजते हैं। लाइनर तैयार माल,

जल्दी खराब न होने वाले माल, तथा कीमती सामान को ले जाते हैं। जिन व्यापारियों के पास पूरे जहाज़ के लायक माल भेजने को नहीं होता वे लाइनर से ही अपना माल भेजते हैं। जब ट्रैम्प एक स्थान पर माल उतार देते हैं तब बेतार के तार से उन्हें सूचित कर दिया जाता है कि उन्हें कहाँ जाकर माल लादना चहिए। इस प्रकार ट्रैम्प जहाज़ों को माल मिलने में कठिनाई नहीं होती। ट्रैम्प जहाज़ एक बड़ी आवश्यकता को पूरा करते हैं। कारण यह है कि किन्हीं स्थानों पर जब फसल का समय होता है तब तो माल लादने को रहता है, नहीं तो वर्ष के शेष दिनों में वहाँ से माल नहीं भेजा जाता। ऐसे भारकस (ट्रैफिक) के लिए ट्रैम्प ही अधिक उपयुक्त हैं।

समुद्री मार्ग व्यापार पर निर्भर रहते हैं। जहाँ माल लादने को अधिक मिलता है, जहाज़ वहीं जाता है फिर चाहे उसको चक्कर खाकर ही क्यों न जाना हो। यद्यपि माल मिलने की सुविधा मुख्यतः जहाजों के मार्ग को निर्धारित करती है परन्तु अन्य बातें भी समुद्री मार्गों को निर्धारित करती हैं।

कोयले के मिलने की सुविधा

(१) यदि मार्ग में कोयले की स्टेशनें अधिक हैं तो जहाज़ों को थोड़ा कोयला ही भरना पड़ता है और माल लादने के लिए जगह मिल जाती है। यही कारण है बहुत से ऐसे स्थानों पर भी जहाज़ नियमित रूप से जाते हैं जहाँ माल लादने को नहीं मिलता किन्तु कोयला सस्ता मिलता है।

(२) जहाँ तक सम्भव होता है समुद्री मार्ग ग्रेट-सर्किल रुट (Great Circle Route) का अनुसरण करते हैं क्योंकि वही दो स्थानों के बीच में सबसे छोटा रास्ता होता है। पृथ्वी पर भूमध्य रेखा सबसे बड़ा वृत्त (Circle) है और ध्रुवों पर सबसे छोटे वृत्त होते हैं। अतएव किन्हीं दो स्थानों में सबसे कम अन्तर सीधा मार्ग नहीं होता, वरन् ग्रेट-सर्किल रुट होता है। यही कारण है कि समुद्रीय मार्ग उत्तर में उत्तरीय ध्रुव की ओर और दक्षिण में दक्षिण ध्रुव की ओर जाते हैं जिससे कि जहाज़ों को कम से कम दूरी पार करना पड़े। किन्तु अन्य कारणों से—माल मिलने की सम्भावना जलवायु तथा कोयले के मिलने की सुविधा के कारण जहाज़ों को ग्रेट-सर्किल-रुट छोड़ना भी पड़ता है।

कहीं कहीं नदियाँ तथा बन्दरगाह जाड़ों में जम जाते हैं तब जहाज़ों को सुविधाजनक मार्ग छोड़ कर दूसरा मार्ग ग्रहण करना पड़ता है। उदाहरण के लिए जब सेंट-लारेंस जम जाती है तब जहाज़ दक्षिणी बन्दरगाहों की

ओर जाते हैं। यद्यपि हुडसन-बे मार्ग इंगलैंड के लिए सबसे निकट का मार्ग है किन्तु उसके अधिकतर जमे रहने के कारण अधिकतर जहाज़ उस मार्ग का उपयोग नहीं करते।

यद्यपि स्टीमशिप हवा से अधिक प्रभावित नहीं होते किन्तु फिर भी हवा का थोड़ा बहुत असर रहता ही है। यही कारण है कि लिवरपूल से आस्ट्रेलिया जाने वाले जहाज़ केप-आव गुड होप के मार्ग से जाते हैं क्योंकि पश्चिमी हवायें (Westerlies) उनके अनुकूल पड़ती हैं जिससे उन्हें सुविधा होती है। किन्तु आस्ट्रेलिया से लौटते समय वे उस मार्ग से न आकर स्वेज नहर के मार्ग से आते हैं जिससे उन्हें पश्चिमी हवाओं का सामना न करना पड़े। यदि वे उसी मार्ग से आवें तो जहाज़ों को अधिक कोयला जलाना पड़े और उनकी चाल धीमी हो जाये।

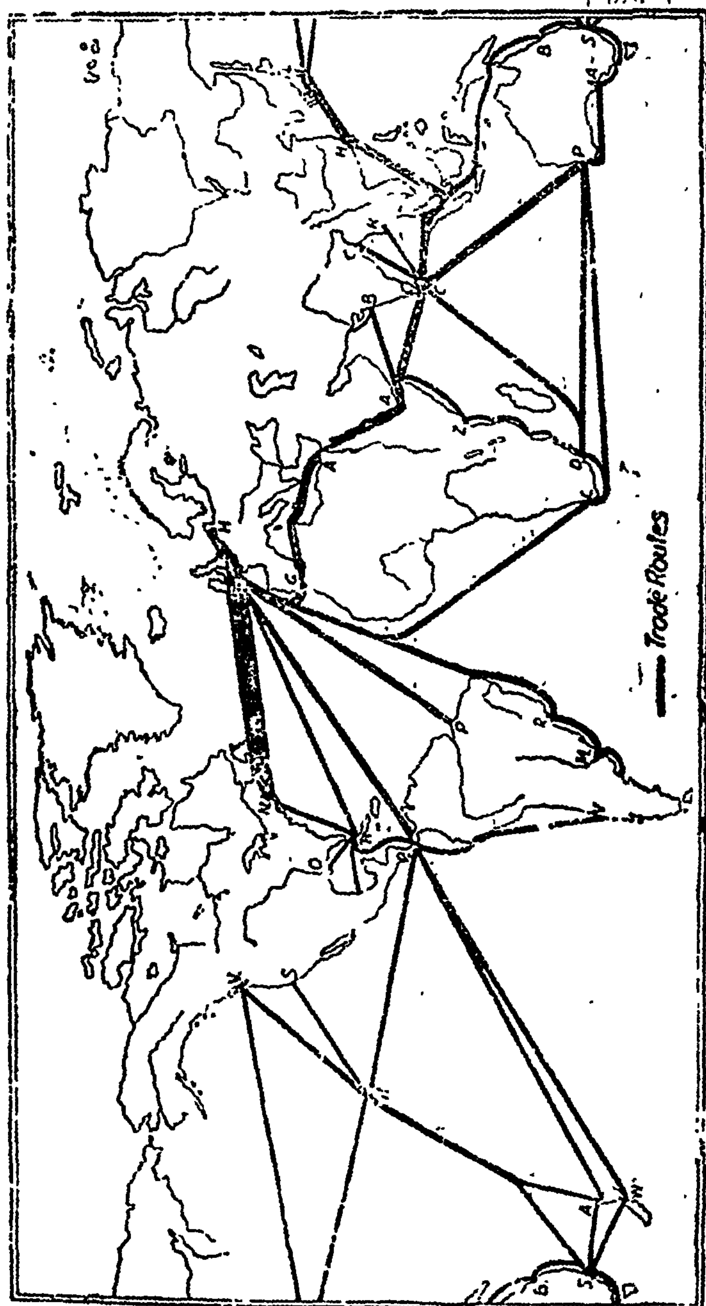
यदि समुद्रीय व्यापारिक मार्गों के मानचित्र (नकशे) को देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रमुख व्यापारिक मार्ग पश्चिमीय योरोप पर आकर समाप्त होते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि पश्चिमीय योरोप जगत का सबसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक भाग है। संसार में सबसे अधिक कच्चे माल की खपत इसी भाग में होती है और यह भाग सबसे अधिक तैयार माल अन्य भागों को भेजता है। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि व्यापारिक मार्ग पश्चिमीय योरोप पर केन्द्रित हों। पश्चिमीय योरोप में कोयले की बहुतायत होने के कारण ही वह उद्योग-प्रधान है। यही नहीं कोयले के मिलने की सुविधा के कारण भी जहाज़ इस ओर आकर्षित होते हैं। अतएव कोयला ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सामुद्रिक मार्गों का पश्चिमीय योरोप में केन्द्रित होने का मुख्य कारण है।

मुख्य सामुद्रिक व्यापारिक मार्ग निम्नलिखित हैं :—

उत्तरीय अटलांटिक मार्ग

(१) यह मार्ग उत्तरीय अमेरिका के पूर्वी तट को पश्चिमीय योरप के समुद्र तट से मिलता है। यह मार्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा जैसे उपजाऊ तथा पश्चिमीय योरोप के औद्योगिक भाग को जोड़ता है। दोनों किनारों पर कोयला यथेष्ट है परन्तु बीच में कोई कोलिंग स्टेशन नहीं है। बीच में कोई रुकावट नहीं है। जहाज़ों को केवल न्यू-फाऊंडलैंड के किनारे बर्फ तथा कोहरे के कारण ग्रेट-सर्किल-रुट को छोड़ना पड़ता है। दोनों किनारों पर महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह हैं। योरोपीय किनारे पर लिवरपूल, लंदन, ग्लासगो, ब्रिस्टल, हैम्बर्ग, ब्रेमन,

ऐम्सटर्डम, ऐंटवर्प और हैवर मुख्य हैं। अमेरिकन किनारे पर मांट्रियल और क्वीबक (केवल गर्मियों में) हैलीफैक्स, न्यू-यार्क, सेंट जान, बोस्टन,



फिलेडेल्फिया, पोर्टलैंड बाल्टिमोर, न्यूपोर्ट नारफाक, न्यू-आर्लियन्स, तथा चार्ल्सटन मुख्य हैं।

भूमध्य सागर का (एशियाई) जल मार्ग

अटलांटिक मार्ग को छोड़कर यह जलमार्ग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। योरोप से भूमध्य-सागर होता हुआ स्वेज नहर के द्वारा यह मार्ग भारतवर्ष, सुदूर पूर्व, तथा आस्ट्रेलिया को जाता है। यह मार्ग वास्तव में स्वेज़ नहर का मार्ग है। १८५६ में स्वेज़ नहर के खुल जाने से यह मार्ग बना और इसके कारण केप आव-गुड होप के मार्ग का बहुत कुछ महत्व जाता रहा। लंदन से कलकत्ता स्वेज़ नहर के द्वारा जाने से लगभग ३७०० मील की बचत होती है। स्वेज़ मार्ग के पश्चिमी किनारे दो हैं। एक पूर्वीय संयुक्तराज्य और दूसरा पश्चिमीय योरोप। जिब्राल्टर पर दोनों रास्ते मिलते हैं। वहाँ से माल्टा और पोर्ट-सेद होते हुए स्वेज़ नहर के द्वारा यह मार्ग हिन्द महासागर में पहुँचता है। लाल सागर से निकल कर मार्ग फिर विभाजित होता है। मुख्य मार्ग तो कोलम्बो की ओर जाता है किन्तु शाखायें बम्बई तथा अफ्रीकन बंदरगाहों की ओर जाती हैं। कोलम्बो से शाखायें कलकत्ता, बर्मा, तथा मंदरास की ओर जाती हैं। मुख्य मार्ग कोलम्बो से मलक्का जलसंयोजक से निकलकर सिंगापुर होता हुआ हांगकांग, शंघाई, कोब, तथा याकोहामा को चला जाता है। किन्तु सिंगापुर से एक शाखा आस्ट्रेलिया की ओर जाती है। लंदन से स्वेज़ नहर के रास्ते सिडनी १२,५०० मील, याकोहामा ११,६०० मील, तथा कलकत्ता ८००० मील है। यह मार्ग अन्य सब मार्गों की अपेक्षा अधिक जनसंख्या द्वारा काम में लाया जाता है। यह मार्ग बहुत घने आबाद देशों को छूता है और उनकी पैदावार को अन्य देशों में पहुँचाता है।

प्रशान्त महासागर का मार्ग

पनामा नहर के बन जाने से प्रशान्त महासागर भी व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन गया है। एक महत्त्वपूर्ण मार्ग तो वह है जो पूर्व एशिया के बंदरगाहों, याकोहामा, शंघाई, हांगकांग और मैनिला को पश्चिमी संयुक्तराज्य के बंदरगाहों पोर्टलैंड, सान् फ्रैंसिसको, वैंकोवर तथा प्रिंस-रुपर्ट को जोड़ता है। दूसरा मार्ग योरोपीय बंदरगाहों को आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड से जोड़ता है। यह मार्ग पनामा नहर से होकर जाता है। इस मार्ग में संयुक्तराज्य अमेरिका के पूर्वीय तट से आने वाले मार्ग भी मिलते हैं। इन दो मार्गों के अतिरिक्त संयुक्तराज्य अमेरिका के पश्चिमीय तट के बंदरगाहों को आस्ट्रेलिया और न्यू ज़ीलैंड से जोड़ने वाले मार्ग भी हैं।

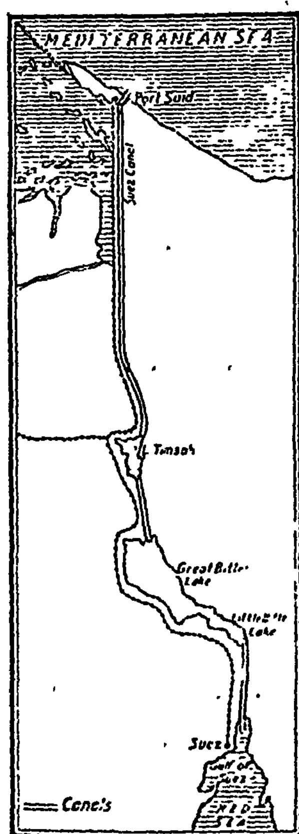
पश्चिमीय योरोप से एक मार्ग केप आव गुड होप से होता हुआ,

अफ्रीका के पूर्वी तट पर स्थित मोम्बासा तथा ज़ैंजीबार इत्यादि बंदरगाहों को जोड़ता है। यही नहीं संयुक्तराज्य

दक्षिण अफ्रीका का मार्ग

अमेरिका तथा योरोप से माल ले जाने वाले जहाज़ अधिकतर केप आव गुड होप के मार्ग से ही आस्ट्रेलिया को जाते हैं। यद्यपि योरोप से आस्ट्रेलिया जाने वाले जहाज़ों को इस मार्ग से जाने में १००० मील अधिक चलना पड़ता है परन्तु अधिकांश जहाज़ इस मार्ग का ही उपयोग करते हैं क्योंकि स्वेज नहर से निकलने की फीस इतनी अधिक है कि माल ले जाने वाले जहाज़ों को केप आव गुड होप का मार्ग सस्ता पड़ता है। संयुक्तराज्य से आट्रेलिया की दूरी दोनों मार्गों से बराबर है।

उन्नीसवीं शताब्दी में जहाज़ों के योग्य नहरें बन जाने से इन व्यापारिक मार्गों का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। इन नहरों के द्वारा या तो दूरी कम हो गई है अथवा जहाज़ों के लिए विशेष सुविधा हो गई है। संसार की मुख्य नहरें जिनका उपयोग जहाज़ करते हैं निम्नलिखित है (१) स्वेज़ नहर, (२) पनामा नहर, (३) साल्ट-सू-सेंट मेरी नहर, (४) मैंचेस्टर नहर, (५) कील नहर, (४) नार्थ सी नहर, अम-स्टर्डम और नार्थ सी के बीच में) (७) नार्थ सी तथा राटर्डम के बीच की नहर।



स्वेज नहर

स्वेज़ नहर ऊपर दी हुई सब नहरों से बड़ी है। यह नहर स्वेज जलडमरूमध्य (Isthmus) के बीच से काटकर निकाली गई है और भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) को लाल सागर (Red Sea) से जोड़ती है। इस नहर को एक फ्रेंच इंजिनियर (Ferdinand De Lesseps) ने बनाया और सन् १८६६ में यह व्यापार के लिए खोल दी गई। नहर की कुल लम्बाई ८७ मील है जिसमें दो झीलें हैं। नहर चौरस मैदान में से होकर गई है और उसमें एक भी द्वार (Lock) नहीं है। नहर की कम से कम गहराई ३६ फीट और कम से कम चौड़ाई १०० फीट है। नहर के अन्दर जहाज़ ६ मील प्रति घंटे की रफ़्तार से

अधिक नहीं चल सकते। नहर को पार करने में जहाज़ों को १५ घंटे लग जाते हैं। साधारणतः दो छोटे जहाज़ नहर में साथ साथ निकल सकते हैं, किन्तु बड़े जहाज़ एक साथ नहीं निकल सकते। इस कारण जब तक एक जहाज़ नहर से न निकल जाये तब तक दूसरे जहाज़ को एक किनारे पर रुकना पड़ता है।

स्वेज़ नहर के खुलने के पूर्व जहाज़ केप आव-गुड होप होकर आते थे। किन्तु स्वेज़ नहर के खुल जाने से योरोप तथा भारतवर्ष की दूरी में बहुत कमी हो गई। लंदन से बम्बई आने में केप मार्ग १०८०७ मील का फासला था किन्तु स्वेज़ नहर के रास्ते केवल ६२६० मील ही है। हांग कांग का अन्तर १२७३७ मील से घट कर ६६८८ मील, फ्रीमैंटल का अन्तर १०६०० मील से घट कर केवल ६३४० रह गया। स्वेज की नहर खुल जाने से ब्रिटेन का अपने पूर्वीय साम्राज्य से अन्तर कम हो गया और उसके व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला।

स्वेज़ नहर का उपयोग प्रतिवर्ष लगभग ६००० जहाज़ करते हैं। इनमें सबसे अधिक जहाज़ ब्रिटेन के होते हैं ५५ प्रतिशत के लगभग जहाज़ ब्रिटेन के, १० प्रतिशत जर्मनी के ६ प्रतिशत हालैंड के, ७ प्रतिशत फ्रांस के ५प्रतिशत इटली के, ४ प्रतिशत जापान के, तथा ३ प्रतिशत संयुक्तराज्य अमेरिका के जहाज़ होते हैं। पिछले वर्षों में ब्रिटेन के जहाज़ों का अनुपात घटता गया है और जापान, इटली तथा फ्रैंच जहाज़ों का अनुपात बढ़ता गया है।

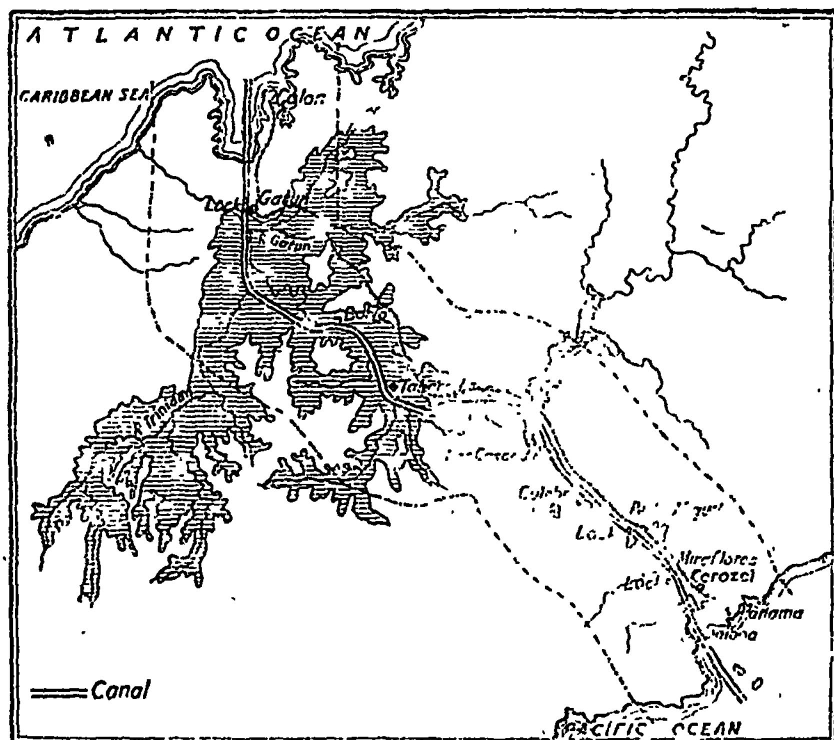
यद्यपि स्वेज नहर ईजिप्ट की सीमा में है और एक कम्पनी की सम्पत्ति है परन्तु १८८८ के समझौते के अनुसार इसकी घेराबन्दी (Blockade) नहीं की जा सकती और इसमें से होकर सब राष्ट्रों के जहाज़ चाहे वह माल से लदे हों अथवा युद्ध सामग्री से लदे हों किसी भी समय शान्ति अथवा युद्ध में जा सकते हैं।

स्वेज़ नहर से होकर जाने वाले जहाज़ों को नहर की फीस देनी होती है। पनामा नहर की तुलना में स्वेज़ नहर की फीस बहुत अधिक है। यही नहीं अब नए जहाज़ ऐसे बनने लगे हैं जो ४० फीट पानी के अन्दर रहते हैं ऐसे जहाज़ स्वेज नहर में से होकर नहीं जा सकते। अतएव नहर को अधिक गहरा करने का विचार किया जा रहा है।

पनामा नहर

पनामा नहर १६१४ में व्यापार के लिए खुली। यह नहर अटलांटिक समुद्र को प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) से जोड़ती है। इस नहर की लम्बाई ५० मील है। इसमें तीन द्वार (Lock) हैं। सब द्वार (Lock) दोहरे हैं इस कारण

जहाज़ एक ही समय आ जा सकते हैं और स्वेज़ की तरह उन्हें खड़ा नहीं रहना पड़ता। नहर की गहराई गातुन झील (Gatun Lake) में



अधिक से अधिक ८५ फीट अटलांटिक तट की ओर ४२ फीट, तथा प्रशान्त महासागर की ओर ४५ फीट है। नहर की कम से कम चौड़ाई ३०० फीट है। इसको पार करने में जहाज़ों को १० से १२ घंटे तक लगते हैं।

पनामा नहर के खुल जाने से संयुक्तराज्य अमेरिका के व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला है, इसी कारण संयुक्तराज्य के जहाज़ ही इसका सबसे अधिक उपयोग करते हैं। इस नहर के खुल जाने का एक परिणाम यह हुआ कि उत्तरी अमेरिका का पूर्वीय तथा पश्चिमी समुद्र तट निकट हो गया। प्रशान्त महासागर में पनामा नहर के ही कारण संयुक्तराज्य अमेरिका को योरोपीय देशों की अपेक्षा अधिक सुविधायें प्राप्त हैं। हांगकांग के उत्तर में, दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट पर, तथा आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर जो बन्दरगाह हैं वे पनामा नहर के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका के योरोपीय देशों की अपेक्षा अधिक पास हैं। न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया का पश्चिमीय तट योरोप के अब अधिक पास आगया है।

नीचे दी हुई तालिका से यह ज्ञात हो जायगा कि मुख्य मुख्य बन्दरगाहों का अन्तर पनामा नहर के बन जाने से पहले की अपेक्षा कितना कम हो गया है।

को	मार्ग	न्यूयार्क से	लिवरपूल से
सियेटल	हार्न (अन्तरीप	१३, ९१०	१४, ३२०
	पनामा	६, ०३९	८, ६५४
बचत		७, ८७१	५, ६६६
वालपरैजो	हार्न (अन्तरीप	८, ३८०	८, ७४७
	पनामा	४, ६३३	७, २०७
बचत		३, ७४७	१, ५४०
मैलबोर्न	केप ऑव गुड होप स्वेज़	१३, १६२	———
		———	११, ६५४
	पनामा	१०, ३९२	१२, ९६६
बचत	—	२, ७७०	१, ३१२ बढ़ गया
हांगकांग	स्वेज़	११, ६९१	९, ७८५
	पनामा	११, ६७३	१३, ९५७
बचत	—	१८	४, १७२ बढ़ गया

इसी प्रकार लिवरपूल तथा न्यूयार्क से सैन फ्रैंसिसको को आने में पनामा के मार्ग से क्रमशः ५६६६ मील तथा ७८७१ मील की बचत होती है।

पनामा नहर में से होकर जाने वालों में लगभग ५० प्रतिशत जहाज़ अमेरिका के तथा २५ प्रतिशत ब्रिटिश जहाज़ होते हैं। अधिकांश अमेरिकन जहाज़ जो इस नहर का उपयोग करते हैं वे अमेरिका के तटीय व्यापार में लगे रहते हैं।

स्वेज़ और पनामा नहर संसार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जहाज़ी नहरें हैं। स्वेज़ हिन्दी महासागर की तथा पनामा प्रशान्त महासागर की नहर है। स्वेज़ नहर के मार्ग की एक बहुत बड़ी सुविधा यह है कि मार्ग में कोलिंग स्टेशन बहुत हैं। छोटे छोटे द्वीपों और बन्दरगाहों की बहुतायत है। साथ

ही उस मार्ग के समीपवर्तीय देशों में कोयला उत्पन्न होता है। इस कारण इसमें कोयला मिलने में कठिनाई नहीं होती और कोयला सस्ता मिलता है। इसके विपरीत पनामा के मार्ग में कोलिंग स्टेशनों का अभाव है। बीच में टापू नहीं है और जिन प्रदेशों में से होकर पनामा का मार्ग जाता है। उनमें कोयला कम है किन्तु तेल बहुत मिलता है। स्वेज़ मार्ग अत्यन्त घने आबाद देशों को छूता हुआ जाता है इस कारण इस मार्ग पर व्यापार अधिक होता है। पनामा का मार्ग पहाड़ी रेगिस्तानी और निर्धन देशों को छूता हुआ जाता है इस कारण उस पर इतना अधिक व्यापार नहीं होता। स्वेज़ नहर मैदान में से होकर निकाली गई है इस कारण उसमें द्वार (Locks) नहीं है। उसके बनाने में व्यय कम हुआ है परन्तु पनामा ऊबड़ खाबड़ पहाड़ी भूमि में खोदी गई है, इस कारण उसके बनाने में व्यय भी अधिक हुआ है और उसमें द्वार (Locks) भी है। परन्तु पनामा नहर स्वेज़ से अधिक गहरी है और उसमें स्वेज़ की तरह जहाज़ों को खड़े रहकर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। इसके अतिरिक्त स्वेज़ में जहाज़ों से पनामा की अपेक्षा ड्योढ़ी चुंगी ली जाती है।

सू-नहर (Soo Canal)

सू-नहर संसार में सबसे बड़ी जहाज़ी नहर है। यह नहर सुपीरियर झील तथा ह्यूरन झील के मध्य में सेंट-मैरी नदी के प्रपात को बचाने के लिए बनाई गई है। यह नदी एक साथ २० फीट की ऊँचाई से गिरती है। इस कारण इसका उपयोग जहाज़ नहीं कर सकते थे। अतएव सू नहर के द्वारा इस जल-प्रपात को बचा दिया गया है। सू नहर उत्तरीय अमेरिका के व्यापर के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस नहर का महत्त्व तो इसी से ज्ञात होता है कि सू नहर से जाने वाला माल स्वेज़ और पनामा से निकलने वाले माल का लगभग ४ गुना होता है। सू-नहर के अतिरिक्त अन्य झीलों को भी जोड़ने वाली नहरें बनाई गई हैं जिनके द्वारा सेंट-लारेंस नदी के जल-प्रपातों को बचा दिया गया है।

कील नहर (Kiel Canal)

बाल्टिक समुद्र में जटलैंड (Jutland) का प्रायद्वीप बाहर को निकला हुआ है। यदि जटलैंड का चक्कर लगाकर बाल्टिक समुद्र में जाने से ६०० मील का अधिक फासला तय करना पड़ता है। फिर चट्टानों इत्यादि के कारण यह यात्रा अत्यन्त ख़तरनाक भी है इस कारण कील नहर

निकाली गई है। यह नहर बाल्टिक समुद्र को नार्थ-सी (North Sea) से यल्ब के पास मिलाती है और केवल ६१ मील लम्बी है। यह १८६५ में बनी। यह ३८ फीट गहरी है और तले में १४४ फीट चौड़ी है इस कारण बड़े जहाज़ आसानी से उसमें से जा सकते हैं। यह नहर विशेषकर जरमनी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

मैंचेस्टर शिप कैनाल

यह नहर १८९४ में बनी। मरसी नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित ईस्थाम से मैंचेस्टर तक यह ३५½ मील लम्बी है। इसकी कम से कम गहराई २८ फीट और कम से कम चौड़ाई १२० फीट है। यह व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्व पूर्ण है। इसके बनने के पूर्व मैंचेस्टर को कपास लिवरपूल बंदरगाह से रेल द्वारा आती थी किन्तु इस नहर में होकर अब जहाज़ सीधे मैंचेस्टर तक पहुँच जाते हैं।

ऐम्स्टर्डम कैनाल

ऐम्सटर्डम कैनाल-ऐम्सटर्डम का नार्थ-सी (North Sea) से सीधा सम्बंध स्थापित करती है।

स्टैलिन कैनाल

स्टैलिन नहर के द्वारा बाल्टिक समुद्र को आर्कटिक महासागर से मिला दिया गया है। यह नहर लेनिनग्राड को स्वेत सागर (White Sea) से जोड़ती है।

पुराने समय में समुद्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए बाधक था किन्तु आज तो समुद्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग बन गया है। जो देश समुद्र के किनारे स्थित हैं आज उन्हीं का व्यापार उन्नत अवस्था में है। आधुनिक समय में व्यापार के लिए बन्दरगाह आवश्यक हैं। यही कारण है कि जिन देशों के पास बन्दरगाह नहीं हैं वे दूसरे देशों के बन्दगाहों को छीन लेना चाहते हैं। बीसवीं शताब्दी में समुद्र के समीपवर्ती देशों का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। आजकल सामुद्रिक मार्ग का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया है कि देशों की शक्ति तथा व्यापारिक उन्नति का अनुमान जहाज़ों से किया जाता है। ब्रिटेन तथा संयुक्तराज्य अमेरिका की उन्नति का कारण उनकी बढ़ी हुई नाविक शक्ति ही है।

नीचे दिये हुए अंकों से संसार के मुख्य देशों के व्यापारिक जहाज़ों की शक्ति (Merchant Tonnage) का पता चलता है।

देश का नाम	हज़ार टन में १९२९ में	हज़ार टन में १९३८ में
ब्रिटेन और आयरलैंड	१७, ७८१	२०, १६६
संयुक्त राज्य अमेरिका	११, ९३९	१४, ३७७
जापान	५, ००७	४, १८७
जर्मनी	४, २४४	४, ०९३
फ्रांस	२, ९०३	३, १७९
इटली	३, २१०	३, २८५
हालैंड	४, ६१४	३, २८४
भारतवर्ष	२, ९३९	२, ८५५

हवाई मार्ग

हवाई जहाज़ों का अभी तक केवल डाक तथा यात्रियों के लाने और ले जाने में ही अधिक उपयोग हुआ है। हाँ बम्ब वर्षा तथा युद्ध में तो अब मुख्यतः हवाई शक्ति का ही उपयोग होता है। परन्तु व्यापार की दृष्टि से हवाई जहाज़ महत्त्वपूर्ण नहीं है। अभी तक मूल्यवान वस्तुओं के नमूने तथा पार्सल ही हवाई जहाज़ों के द्वारा भेजे जाते हैं। वह समय बहुत दूर है जब कि हवाई जहाज़ से माल एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकेगा। इसका कारण यह कि प्रति टन प्रति मील हवाई जहाज़ से माल ले जाने में व्यय बहुत होता है। ब्रिटिश हवाई जहाज़ प्रति टन प्रति मील १ शि० १० पें के हिसाब से किराया लेते हैं जबकि रेल से माल भेजने पर २½ पें प्रति टन प्रति मील देना होता है और समुद्र से भेजने से इससे भी कम व्यय होता है। हाँ शीघ्र यात्रा करने वालों के लिए हवाई जहाज़ सुविधा-जनक है। ३०० मील से अधिक की यात्रा करने पर हवाई जहाज़ से रेल की अपेक्षा दुगना किराया लगता है।

हवाई मार्ग जलवायु तथा धरातल की बनावट से कुछ बहुत प्रभावित होता है। यदि वर्षा तेज़ हो, बर्फ़ का तूफ़ान हो, आँधी हो तो हवाई जहाज़ को विवश होकर उतरना पड़ता है। कोहरा होने पर हवाई जहाज़ का सकुशल उतरना कठिन हो जाता है। हवा की तेज़ी और उसका रुख हवाई जहाज़ की

चाल को धीमा या तेज कर देती है। यही कारण है कि हवाई जहाजों के उड़ने का तो समय दिया जाता है परन्तु बहुधा किसी स्थान पहुँचने का समय नहीं दिया जाता। बहुत अधिक गरमी और तापक्रमों का जल्दी जल्दी बदलना भी हवाई मार्ग के लिए अनुकूल नहीं पड़ता। यही कारण है कि हवाई मार्ग रेगिस्तानों के ऊपर से होकर नहीं जाते।

धरातल की बनावट का भी हवाई मार्ग पर प्रभाव पड़ता है। जहाज़ के उतरने के लिए चौरस मैदान की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मशीन एक निश्चित ऊँचाई तक ही सकुशल उड़ सकती है। यदि मार्ग में बहुत ऊँचे पहाड़ हों तो कठिनाई हो सकती है। इसी कारण हवाई मार्ग नीचे मैदानों में से ही होकर जाते हैं। योरोप में आल्पस पर्वत तथा संयुक्तराज्य अमेरिका के राकी पर्वत पर उड़ते समय हवाई जहाज़ घाटियों और दर्रों में से होकर जाते हैं।

जो कुछ भी हो भविष्य में हवाई जहाज़ रेल और समुद्र के जहाज़ों से माल ले जाने में प्रतिस्पर्द्धा कर सकें इसकी सम्भावना नहीं है। हवाई जहाज़ों का उपयोग युद्ध में, यात्रियों को ले जाने में, तथा हल्का परन्तु मूल्यवान समान ले जाने में ही हो सकेगा।

१. योरोप और अमेरिका का मार्ग—इस मार्ग पर विशेष रूप से जरमन और फ्रैंच हवाई जहाज़ उड़ते हैं। यह मार्ग अफ्रीका के अटलांटिक तट पर डाकर तक जाता है वहाँ से वह अटलांटिक को पार करके पैराम्बुको (Perambuco) (ब्राज़ील में) पहुँचता है। पैराम्बुको और सैन्टियागो (चिली) एक हवाई मार्ग द्वारा जुड़े हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका का हवाई मार्ग पैराम्बुको पर आकर मिलता है।

२. योरोप, एशिया और आस्ट्रेलिया के हवाई मार्ग पर फ्रेंच, डच और ब्रिटिश जहाज़ अधिकतर उड़ते हैं। ब्रिटिश हवाई मार्ग लंदन से चल कर मार्सलीज़ ऐथिंस, अलक्जेंड्रिया, कैरो, गाज़ा, बग़दाद, बेहरिन, शारजा, करांची, जोधपूर, देहली, इलाहाबाद, कलकत्ता, रंगून, बैंगकाक, पिनांग, सिंगापूर, बटाविया, डारविन, ब्रिसबेन और सिडनी होता हुआ मैलबार्न पर समाप्त होता है। फ्रैंच और डच भी इसी मार्ग का उपयोग करते हैं।

अभी कुछ समय हुआ सोवियत रूस ने एक नई लाइन खोली है जो मास्को और व्लाडिवास्टक को जोड़ती है।

३. योरोप और अफ्रीका के हवाई मार्ग—योरोप और अफ्रीका के बीच अधिकतर ब्रिटिश, फ्रैंच और इटैलियन हवाई जहाज़ चलते हैं। ब्रिटिश

हवाई मार्ग साऊथैम्पटन (Southampton) से आरम्भ होता है और भूमध्यसागर को पार करके अलेक्ज़ेंद्रियां पहुँचता है वहाँ से वह खरतुम जाता है जहाँ से दो मार्ग हो जाते हैं एक मार्ग पश्चिम में लैगास (Lagos) तक जाता है और दूसरा दक्षिण में केप-टाऊन तक जाता है।

फ्रैंच—फ्रांसीसियों ने अफ्रीका में दो मार्ग स्थापित किये हैं। एक तो अफ्रीका के पश्चिमीय समुद्र तट पर जाता है और फ्रैंच अफ्रीका (भूमध्य रेखा प्रदेश) तक जाता है। यह मार्ग डाकर हो कर जाता है। दूसरा मार्ग सहारा और कांगो को पार करता हुआ मैडेगास्कर तक जाता है। इटैलियन लाइन ट्रिपोली से कैरो होती हुई अबसीनिया में अदिस अबाबा तक जाती है।

४. अमेरिका और एशिया का हवाई मार्ग—इस मार्ग पर अधिक तर संयुक्तराज्य अमेरिका के हवाई जहाज़ चलते हैं। यह मार्ग सैन फ्रांसिसको से आरम्भ होता है और प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) के पार करके कैन्टन, होनोलूलू, मिडवे द्वीप (Midway Islands) वेक द्वीप (Wake Island) होता हुआ मैनिला जाता है।

जरमनी के हवाई जहाज़ उत्तर में नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड से, पूर्व में पोलैंड से, दक्षिण में ज़ैकोस्लावाकिया, यूगोस्लाविया, और ग्रीस तथा इटली से और स्पेन तथा पुर्तगाल से सम्बन्ध जोड़ते हैं। फ्रैंच तथा डच लाइन योरोप में जरमनी के प्रतिद्वन्दी हैं।

हवाई मार्गों की उन्नति में संयुक्तराज्य अमेरिका सबसे उन्नत देश है। वहाँ कई अन्तर महादेशीय वायु मार्ग हैं। मुख्य हवाई अड्डे पूर्व में बोस्टन, न्यू-यार्क, और वाशिंगटन हैं तथा लास ऐंजिल्स पश्चिम में है।

स्थाई हवाई मार्गों की लम्बाई

संयुक्तराज्य अमेरिका	७१,२००
फ्रांस	४१,०००
जरमनी	३३,०००
ब्रिटेन	२५,०००
भारत	६,७००

व्यापारिक केन्द्रों को स्थापित करने में दो प्रकार के प्रभाव काम करते हैं।

व्यापारिक केन्द्र (Trade Centres) एक तो वह कारण अथवा प्रभाव जो केन्द्र के व्यापारिक क्षेत्र (Hinterland) का निर्माण करते हैं दूसरे वे कारण जो कि केन्द्र की स्थिति निर्धारित करते हैं।

किसी व्यापारिक केन्द्र का व्यापारिक क्षेत्र (Hinterland) कैसा होगा यह वहाँ की भूमि, जलवायु, खनिज पदार्थ के समीप होने या न होने तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। यदि ऊपर लिखी हुई बातें अनुकूल हुईं तो उस क्षेत्र की औद्योगिक उन्नति हो सकेगी, जनसंख्या घनी आबाद होगी, और उस क्षेत्र में व्यापार बहुत होगा। क्योंकि वह क्षेत्र बहुत सा माल बाहर भेजेगा और बहुत सा माल बाहर से मँगवायेगा। यह तो साधारण नियम हुआ किन्तु किसी प्रदेश के औद्योगिक विकास पर भी यह निर्भर रहता है। कृषि प्रधान देशों में जनसंख्या बिखरी होती है इस कारण वहाँ अपेक्षाकृति कम व्यापारिक केन्द्र होते हैं किन्तु उद्योग प्रधान देशों में जनसंख्या घनी होती है और वहाँ बहुत से बड़े बड़े व्यावसायिक तथा व्यापारिक केन्द्र होते हैं। कृषि प्रधान क्षेत्र में व्यापारिक केन्द्र बहुधा बड़े नहीं होते क्योंकि उनका व्यापार क्षेत्र (Hinterland) अधिक माल का विनिमय नहीं कर सकता। इसके विपरीत औद्योगिक क्षेत्र का केन्द्र बहुत बड़ा होता है।

व्यापारिक केन्द्र किस स्थान पर स्थापित होगा इसका विवेचन हम पहले परिच्छेद में "नगर बसने के कारण" में कर चुके हैं। संक्षेप में निम्नलिखित कारणों से किसी स्थान पर केन्द्र स्थापित होता है। पीने योग्य जल की सुविधा, रहने योग्य स्थान जो सुरक्षित हो, मार्गों के मिलन केन्द्र पर, राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान पर।

मार्गों का मिलन केन्द्र बहुत प्रकार का हो सकता है। जहाँ समुद्रीय तथा स्थल मार्ग मिलते हैं वहाँ बन्दरगाह बन जाते हैं। बन्दरगाह का महत्व उनके व्यापार क्षेत्र (Hinterland) पर निर्भर है। जितना ही व्यापार क्षेत्र घनी होगा उतना ही बन्दरगाह भी समृद्धिशाली होगा। प्रकृति ने समुद्र तट के समीप चाह कितना अच्छा प्राकृतिक बन्दरगाह बना दिया हो किन्तु जब तक कि उसका व्यापार क्षेत्र उन्नत और धनी न होगा तब तक वह उन्नति नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए माल्टा द्वीप में वलेट्टा और लंका में ट्रिंकोमाली बहुत ही अच्छे प्राकृतिक बन्दरगाह हैं किन्तु उनका कोई भी व्यापारिक महत्त्व नहीं है क्योंकि उनका व्यापार क्षेत्र धनी नहीं है और गमनागमन के साधनों की असुविधा है।

समृद्धिशाली व्यापार क्षेत्र के अतिरिक्त बन्दरगाहों में जहाज़ों के ठहरने, घूम सकने, तथा माल लादने तथा उतारने की भी सुविधा होनी चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में बहुत से छोटे छोटे बन्दरगाह व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वहीन हो गए। क्योंकि जहाज़ बड़े बड़े बनने लगें इस कारण वे प्रत्येक

बन्दरगाह में नहीं जा सकते। समुद्र तट का कटा हुआ किनारा जिसमें छोटे छोटे द्वीप हों, नदियों के मुहाने, गहरी और संकीर्ण खाड़ियाँ, अच्छे बन्दरगाह स्थापित करने के लिए अनुकूल स्थान होते हैं। जो बन्दरगाह नदियों के मुहाने पर विशेषकर ऐसी नदियों के मुहाने पर जिनमें कि जहाज़ जा सकते हों स्थित होते हैं, वे अत्यन्त सुविधा जनक होते हैं क्योंकि जहाज़ माल से लदें बहुत दूर अन्दर तक जा सकते हैं और माल को रेलवे स्टेशनों पर उतार देते हैं। ऐसे बन्दरगाह ही संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों में से हैं। लंदन, लिवरपूल, न्यू-यार्क तथा कलकत्ता स्टुयैरी बन्दरगाह हैं। कहीं कहीं आवश्यकता अनुभव होने पर बन्दरगाह बनाया भी जाता है। मदरास और डोवर ऐसे ही बने हुए बन्दरगाह हैं।

बन्दरगाहों के व्यापारिक महत्त्व पर ज्वार और भाटा का भी बहुत प्रभाव रहता है। ज्वार भाटा के द्वारा बन्दरगाहों का खुले हुए समुद्र से सम्बन्ध रहता है। यदि किसी स्थान पर ज्वार और भाटा का उतार चढ़ाव १५ फीट से अधिक है तो बन्द-डाक (Closed Dock) वाला बन्दरगाह बनाया जाता है जिससे कि पानी के ऊँचा उठने पर डाक के अन्दर खड़ा हुआ जहाज़ ऊंचा न उठ जाये नहीं तो यदि ज्वार भाटे के साथ जहाज़ अधिक उठे और नीचे चला जाय तो माल लादने और उतारने में कठिनाई हो। जहाँ १५ फीट से चढ़ाव उतार कम होता है और गहराई काफी होती है वहाँ खुला हुआ बन्दरगाह बनाया जाता है। ऐसे बन्दरगाह में जहाज़ हर समय आ जा सकते हैं किन्तु बन्द डाक वाले बन्दरगाह में जहाज़ों को ज्वार के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब पानी ऊँचा उठता है। तब वह उसके साथ बन्दरगाह में आता है। अमेरिका के बन्दरगाह दूसरी तरह के हैं और लंदन इत्यादि दूसरे बन्दरगाह पहली तरह के हैं।

कुछ बन्दरगाह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र बन जाते हैं। कारण यह है कि यदि कोई बन्दरगाह अनुकूल स्थिति होने के कारण दो या उससे अधिक व्यापार मार्गों का मिलन केन्द्र बन जाता है तो समीपवर्ती प्रदेशों से तटीय व्यापार करने वाले जहाज़ माल को उस केन्द्रीय बन्दरगाह (Entrepot) तक ले जाते हैं। वहाँ माल बहुत इकट्ठा हो जाता है और भिन्न भिन्न व्यापारिक मार्गों की ओर भेज दिया जाता है। अधिक सुविधायें होने पर दूर दूर के देशों से माल इन केन्द्रीय बन्दरगाहों (Entrepots) में आता है और वहाँ से अन्य देशों को जाता है। उदाहरण के लिए भारत की चाय लंदन को जाती है फिर वहाँ से अन्य देशों को जाती है। लंदन और राटर्डम (Rotterdam) ऐसे ही बन्दरगाह हैं। किन्तु अब भविष्य में

केन्द्रीय बन्दरगाहों (Entrepots) का महत्त्व कम होगा, क्योंकि जैसे जैसे भिन्न भिन्न देशों का वैदेशिक व्यापार बढ़ता जायेगा वैसे प्रत्येक देश किसी वस्तु विशेष को केन्द्रीय बन्दरगाह (Entrepot) से न मँगाकर उत्पत्ति स्थान से सीधे मँगा लेगा। उदाहरण के लिए आस्ट्रेलिया का ऊन इत्यादि अब संयुक्तराज्य को लंदन के द्वारा न भेजा जाकर सीधा भेजा जाता है।

बन्दरगाहों को बहुत अधिक सुविधायें होने के कारण क्रमशः वे प्रमुख व्यापारिक औद्योगिक केन्द्र बन जाते हैं और वहाँ बैंक बहुत स्थापित हो जाते हैं क्योंकि वैदेशिक व्यापार के कारण बैंकों की बहुत आवश्यकता होती है। व्यवसायी लोग क्रमशः अपने कारखानों को बन्दरगाहों में ही स्थापित करना चाहते हैं क्योंकि वहाँ से माल बाहर भेजने में व्यय कम होता है। यही कारण है कि लिवरपूल संसार की प्रमुख कपास की मंडी है। लंदन संसार की रबर और ऊन की सबसे बड़ी मंडी है। लंदन और न्यूयार्क संसार के मुख्य द्रव्य बाज़ार (Money Markets) है। वास्तव में बन्दरगाह बहुत जल्दी ही बड़ा नगर बन जाता है।

कुछ महत्वपूर्ण बंदरगाह

योरोप — योरोप के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह उत्तर-पूर्वीय तट पर हैं। हैम्बर्ग यल्ब नदी पर, राटरडम (Rotterdam) राइन नदी पर ऐन्टवर्प शेल्ड (Scheldt) नदी पर और हैवरे सीन नदी पर मुख्य हैं। इनका व्यापार क्षेत्र (Hinterland) बहुत विस्तृत और घनी है।

भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) के बन्दर स्वेज़ नहर के खुल जाने से महत्त्वपूर्ण बन गए हैं। जबसे स्वेज़ नहर बनी है तबसे भूमध्य सागर व्यापार का प्रमुख मार्ग बन गया है। इसके मुख्य बंदरगाह मार्सलीज़, नेपिल्स, जिनोआ और ट्रस्टि हैं। कालासागर और बाल्टिक समुद्र भीतरी सागर हैं इस कारण उसमें महत्त्वपूर्ण बंदरगाह नहीं है फिर भी कुस्तुनतुनिया (Constantinople) और कोपिन हेगिन (Copenhagen) अच्छे बन्दरगाह हैं।

लंदन — ब्रिटेन की राजधानी लंदन टेम्स नदी पर समुद्र से ६५ मील दूर है। यह ठीक राइन और शेल्ड (Scheldt) नदियों के सामने स्थिति है जो योरोप के प्रमुख व्यापारिक मार्ग हैं। टेम्स में ज्वार भाटा (Tides) आने पर समुद्र का पानी २० फीट तक ऊँचा चढ़ जाता है इस कारण नदी में रेता नहीं जम

पाता। यह संसार का सबसे बड़ा केन्द्रीय बंदरगाह (Entrepot Port) है। यहाँ संसार भर से माल आता है और फिर उसको भिन्न भिन्न देशों को भेज दिया जाता है। यद्यपि इसका महत्व कम होता जा रहा है। यहाँ ऊन, अनाज, लकड़ी, मांस, मक्खन, शराब तम्बाकू, रबर, फल, गलीचे इत्यादि वस्तुएँ विदेशों से आती हैं। लंदन ब्रिटेन का प्रमुख बंदरगाह है वह यहाँ का ३० से ४० प्रतिशत तक निर्यात करता और २५ प्रतिशत ब्रिटेन को आने वाला माल यहीं आता है। लंदन में कागज रसायनिक पदार्थ, नकली रेशम, कपड़ा सीने, फरनीचर, तथा जेवर बनाने के कारखाने हैं।

लिवरपूल

लिवरपूल ब्रिटेन का दूसरा प्रमुख बंदरगाह है किन्तु जहाँ तक माल के बाहर भेजने का प्रश्न है यह लंदन से भी अधिक माल बाहर भेजता है और इङ्गलैंड के औद्योगिक केन्द्रों को यहीं से कच्चा माल जाता है। यहाँ कपास, ऊन, आइरलैंड से मक्खन और दूध की वस्तुएँ तथा लकड़ी तथा अनाज बाहर से आती हैं तथा सूती वस्तु, ऊनी वस्तु, स्टील का सामान, चीनी मिट्टी के बर्तन, रसायनिक पदार्थ इत्यादि बाहर भेजे जाते हैं। लिवरपूल का व्यापार क्षेत्र लंकाशायर, यार्कशायर, स्टैफोर्डशायर, तथा चेशायर की कौंटियाँ हैं। यहाँ आटा बनाने, शक्कर तैयार करने, रसायनिक पदार्थ, तथा साबुन बनाने के कारखाने हैं।

कारडिफ (Cardiff)

ब्रिटेन में कारडिफ कोयला बाहर भेजने का प्रमुख बंदरगाह है। कोयले के अतिरिक्त लोहा, अनाज, और लकड़ी का भी व्यापार होता है। बंदरगाह के समीप ही लोहे के कारखाने हैं।

मैंचेस्टर

मैंचेस्टर को लिवरपूल से मैंचेस्टर नहर से जोड़ दिया गया है इस कारण इसका महत्व बढ़ गया है। यहाँ बाहर से कपास आती है और कपड़ा बाहर भेजा जाता है। लंकाशायर का धंधा मैंचेस्टर के समीप (२० मील के अन्दर) ही केन्द्रित है। यह लिवरपूल का प्रतिद्वन्दी बंदरगाह है।

हैम्बर्ग

हैम्बर्ग जरमनी का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। यह एल्ब नदी पर स्थिति है और समुद्र से ७० मील दूर है। यह अपने धनी व्यापारिक क्षेत्र से नदियों और रेलों द्वारा जुड़ा हुआ है। हैम्बर्ग जर्मनी के सब बंदरगाहों का मिलाकर जितना व्यापार होता है उससे अधिक व्यापार करता है। इस बंदरगाह पर बाहर से कहवा, कोकोआ, शक्कर, कोयला, कपास, ऊन, और

तैयार माल बाहर से आता है तथा तैयार माल, नमक शक्कर, तथा दूध और मक्खन बाहर भेजता है। अब ऐम्स वैसर और हुंसा नहर के बन जाने से रूर के औद्योगिक प्रदेश से सीधा सम्बंध जलमार्ग द्वारा हो गया है इस कारण राटर्डम और ऐन्टवर्प का बहुत सा व्यापार हैम्बर्ग ने खींच लिया है।

राटर्डम

राटर्डम राइन की सहायक नदी न्यू-मास (New mass) पर स्थित है और उसको समुद्र से एक गहरी नहर (New waterway) से जोड़ दिया गया है। यह जर्मनी के प्रसिद्ध औद्योगिक प्रदेश वैस्ट फैलिया तथा अन्य औद्योगिक केन्द्र तथा हालैंड और बैलजियम इसका व्यापार क्षेत्र हैं। हुंसा नहर के बन जाने से रूर प्रदेश का व्यापार हैम्बर्ग की ओर चला जाता है।

ऐंटवर्प

यह बैलजियम का बंदरगाह है और शेल्ड (*Scheldt*) के मुहाने पर स्थित है। यह संसार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बंदरगाह है। यह एक केन्द्रीय बन्दरगाह (Entrepot Port) है इसके व्यापार क्षेत्र में बैलजियम, पूर्वीय फ्रांस, राइन की घाटी तथा रुर का प्रदेश सम्मिलित है। यह राटर्डम और हैम्बर्ग का प्रतिद्वन्दी बंदरगाह है।

मार्सलीज (Masscilles)

फ्रांस का प्रमुख बंदरगाह है। यह बंदरगाह रोन के मुहाने से ३० मील दूर है। रोन के मुहाने पर होने के कारण यह अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। एक गहरी नदी द्वारा रोन से जोड़ दिया गया है। स्वेज नहर के बन जाने से यह पूर्व से अत्यधिक व्यापार करता है। इसके अतिरिक्त उत्तरी अफ्रीका तथा फ्रैंच अफ्रीका से भी यह बहुत व्यापार करता है। इस बंदरगाह पर गेहूँ, तिलहन, शक्कर, कहवा, खालें, रेशम तथा मसाला बाहर से आता है।

उत्तरीय अमेरिका

उत्तरीय अमेरिका के मुख्य बंदरगाह मांट्रियल, न्यू-यार्क, बोस्टन, हैलीफैक्स, न्यू अरलियन्स, मोबाइल, और ग्लैवेस्टन अटलांटिक महासागर पर और सैन फ्रैंसिसको, सियेटल, वैंकोवर, पोर्टलैंड और ओकलैंड प्रशान्त महासागर पर मुख्य बंदरगाह हैं। अटलांटिक महासागर के बंदरगाहों के व्यापार-प्रदेश बहुत उन्नत और धनी हैं किन्तु प्रशान्त महासागर के बन्दरगाहों का व्यापार क्षेत्र धनी नहीं हैं।

बालटीमोर — चेसापीक की खाड़ी पर बड़ा बन्दरगाह है। यह मध्य अपलेशियन प्रदेश से जलमार्गों द्वारा जुड़ा हुआ है। यहाँ लोहे और स्टील का सामान, तम्बाकू, तथा रसायनिक खाद, तथा फलों का धंधा बहुत होता है।

बोस्टन — यह न्यू इङ्गलैंड का व्यापार द्वार है। यह एक सुरक्षित खाड़ी पर स्थित है। अटलांटिक महासागर के सामुद्रिक मार्गों की दृष्टि से इसकी स्थिति बहुत अच्छी है। यह रेल द्वारा पोर्टलैंड, न्यूब्रंज़विक, मांट्रियल, और न्यूयार्क से जुड़ा है। यह योरोप के सबसे पास है। यह सारे वर्ष खुला रहता है। इस पर खालें, कपास, ऊन बाहर से आती हैं। यहाँ शक्कर, सूती कपड़ा, कागज, चमड़ा, लोहा और स्टील का धन्धा केन्द्रित है।

मांट्रियल — यह ओटावा और सेंट लारेंस नदियों के जंकशन पर स्थित है और वहाँ तक समुद्र से जहाज़ आजा सकते हैं। यह कनाडा का सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। यह लिवरपूल के न्यू-यार्क की अपेक्षा अधिक पास है। यह संसार का एक बहुत बढ़िया बंदरगाह है किन्तु इसमें एक दोष यह है कि यह जाड़ों में जम जाता है।

न्यू-आरलियन्स — यह मिसिसीपी नदी के मुहाने पर स्थित है। यह मैक्सिको की खाड़ी से १० मील है। इस व्यापार क्षेत्र (Hinterland) मिसिसीपी और मिसूरी का धनी प्रदेश है। यहाँ से कपास बाहर बहुत भेजी जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ से पैट्रोलियम और गेहूँ बाहर भेजा जाता है। यहाँ से पशु, लकड़ी और मक्का भी बाहर जाती है।

न्यू-यार्क — न्यू-यार्क संयुक्तराज्य अमेरिका का प्रमुख बन्दरगाह है। इसपर कोयले, लकड़ी, गेहूँ का बहुत व्यापार होता है। न्यू यार्क का बन्दरगाह बहुत अच्छा है और यह अपने धनी व्यापार प्रदेश से नहरों और रेलों से जुड़ा है।

प्रशान्त महासागर के बन्दरगाह महत्त्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि वे बड़े बन्दरगाह नहीं हैं और जहाज़ों के ठहरने के लिए पूरी सुविधायें नहीं हैं। उनके व्यापार क्षेत्र धनी और विस्तृत नहीं हैं। प्रशान्त महासागर के तट पर उद्योग-धंधों की उन्नति नहीं हुई है और भीतरी प्रदेश उनसे बहुत दूर हैं। इनमें सैनफ्रैंसिस्को महत्वपूर्ण है। उससे लकड़ी, गेहूँ और फल बाहर जाते हैं और चाय, रेशम, और शक्कर पूर्व से आते हैं।

दक्षिण अमेरिका के मुख्य बंदरगाह रायोडी जैनरो, ब्यूना सार्यस, बोल-परैज़ा, मांटविडियो ग्वेक्विल तथा बहिया बलंका हैं।

दक्षिण अमेरिका

ब्यूना सार्यस (Buenos Aires) अरजैनटाइन की राजधानी है और प्लेट नदी पर स्थित है। नदी छिछली है इस कारण उसको हमेशा खोदना पड़ता है। यहाँ से गेहूँ, मक्का, तथा तिल बाहर भेजा जाता है। वालपरैज़ो चाइल (Chile) के धनी खनिज प्रदेश का बन्दरगाह है। नाइट्रेट, ताँबा, चाँदी और सोना यहाँ से बाहर जाता है। यह रेल द्वारा ब्यूनासार्यस से जुड़ा हुआ है। मांटविडियो यूरेग्वे की राजधानी है। यह एक महत्वपूर्ण बंदरगाह है। यह छिछला है इस कारण बड़े जहाज़ों को दो मील दूर ठहरना पड़ता है। ग्वेक्विल एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ से आइवरी नट (Ivory nuts) और कहवा बाहर भेजा जाता है।

एशिया में करांची, मदरास, बम्बई, कलकत्ता, रंगून, सिंगापूर और हांग-कांग मुख्य बन्दरगाह हैं। सिंगापूर स्टेट सैटिलमेंट के दक्षिण में है। यहाँ से रबर, टिन, कोपरा, अन्नास, बाहर भेजा जाता है और लोहे और स्टील का सामान, यंत्र, तम्बाकू और पैट्रोलियम यहाँ आता है। हांगकांग कैंटन नदी पर है। कैन्टन नदी जो ६०० मील तक स्टीमरों द्वारा खेई जा सकती है चीन की पैदावार को यहाँ लाती है। यहाँ चावल, शक्कर, कपास, चाय, कोयला, अफीम, तेल, इत्यादि का व्यापार होता है।

सड़क, रेल, जहाज़ तथा हवाई जहाज़ों के अतिरिक्त डाक की सुविधा, तार तथा केबिल (समुद्रीय तार) बेतार का तार, टेलीफोन तथा रेडियो ने भी व्यापार को बहुत प्रोत्साहन दिया है और समस्त पृथ्वी को एक सूत्र में बाँध दिया है। आज जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इतना अधिक बढ़ सका है वह इन सुविधाओं के कारण ही।

नीचे दिए हुए विवरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि आधुनिक संदेश-वाहक साधनों की उन्नति अभी थोड़े समय से ही हुई है :—

सन् १८४० में ब्रिटेन में पैनी पोस्ट आरम्भ हुआ।
" १८४९ में रायटर की न्यूज एजेंसी स्थापित हुई।
" १८५० में बिजली के द्वारा तार का उपयोग प्रारम्भ हुआ।
" १८६६ में प्रथमबार अटलांटिक महासागर में केबिल (Cable) डाला गया।

" १८७४ में अन्तर्राष्ट्रीय पोस्टल यूनियन स्थापित हुई जिसका प्रत्येक देश सदस्य है।

" १८७६ में टेलीफोन का उपयोग आरम्भ हुआ।

" १९०१ में बेतार के तार का उपयोग आरम्भ हुआ।

" १९०२ में प्रथमबार प्रशान्त महासागर में समुद्रीय तार डाला गया।

" १००७ में अटलांटिक के पास बेतार के तार का प्रबन्ध हुआ।

"१९२७ में बेतार का टेलीफोन चलाया गया।

आज तो संदेश-वाहक साधनों में इतनी अधिक उन्नति हो गई है कि कुछ मिनटों में ही किसी समाचार को पृथ्वी के प्रत्येक देश में पहुँचा दिया जा सकता है। इससे व्यापार में बहुत सुविधा हो गई है। यदि डाक से पत्र इत्यादि भेजने का व्यय कम हो जाये तथा अन्य सुविधायें प्राप्त हो जायें तो व्यापार को और भी प्रोत्साहन मिल सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—पनामा नहर का क्या व्यापारिक महत्व है, उससे किस देश के व्यापार को अधिक प्रोत्साहन मिला विस्तार पूर्वक लिखिए।

२—स्वेज़ नहर के खुलने से योरोप और पूर्व के व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ा समझा कर लिखिए स्वेज़ नहर के व्यापारिक महत्व को बतलाइए।

३—जलमार्ग से माल भेजने में व्यय कम क्यों होता है ?

४—पनामा और स्वेज़ नहर की व्यापारिक मार्ग की दृष्टि से तुलना कीजिए।

५—सेंट सूमैरी कैनाल का जल मार्ग इतना अधिक महत्व पूर्ण क्यों है विस्तार पूर्वक लिखिए।

६—'कनाडा रेलवे लाइनों की देन है' इस मत की विवेचना कीजिए।

७—अटलांटिक महासागर के समुद्री मार्ग का विवरण दीजिए और उसके व्यापारिक महत्व को बतलाइए।

८—भारतवर्ष से उत्तरी अमेरिका के प्रशान्त महासागर तक जाने के लिए कौन सा मार्ग सुविधा जनक है उसका वर्णन कीजिए।

९—योरोप और एशिया के जलमार्ग का विवरण कीजिए।

१०—अच्छे बन्दरगाह के लिए किन बातों की आवश्यकता है विस्तार पूर्वक लिखिए।

११—केप आव गुड होप रूस तथा भूमध्यसागर के जल-मार्ग की तुलना कीजिए।

१२—उत्तरीय अमेरिका के जलमार्ग का वर्णन कीजिए।

१३—व्यापारिक केन्द्रों की उन्नति के लिए कौनसी व्यापारिक सुविधाओं की आवश्यकता है।

१४—नीचे लिखे बन्दरगाहों की उन्नति के कारण बतलाइए.—लिवरपूल, न्यू-यार्क, हैम्बर्ग, ऐन्टवर्प और सिंगापूर।

———

तेरहवाँ परिच्छेद

जनसंख्या और नगर

पृथ्वी पर जनसंख्या एक सी नहीं है। कहीं तो जनसंख्या घनी है तो कहीं बिखरी। जनसंख्या का यह वितरण अत्यन्त सामाजिक और आर्थिक महत्व की बात है। कुछ स्थानों में जनसंख्या इतनी घनी है कि यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि वहाँ मनुष्य कैसे आराम से रह सकता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे प्रदेश भी मिलेंगे जहाँ कि आबादी इतनी बिखरी हुई है कि मनुष्य का जीवन एकाकी और नीरस सा हो जाता है। कहीं कहीं गाँवों में सैड़कों मनुष्य प्रति वर्ग मील के हिसाब से निवास करते हैं तो कहीं आबादी प्रायः नहीं होती। चीन तथा भारत के मैदानों और योरोप के घनी औद्योगिक देशों में जहाँ आबादी बहुत घनी है वहाँ कनाडा के उत्तरीय भाग और अमेज़न के निचले प्रदेश में आबादी बहुत बिखरी है। यहाँ हम जनसंख्या के घनत्व के सम्बन्ध में विचार करेंगे कि जनसंख्या के घनत्व (Density) में यह अन्तर क्यों है।

जनसंख्या के घनी और बिखरी आबाद होने के कारण और उसके परिणाम

जनसंख्या के घनी और बिखरी होने के मुख्यतः भौगोलिक कारण हैं। कुछ दशाओं में आबादी के घने अथवा बिखरी होने का कारण स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए ग्रीनलैण्ड का अतिशीत और अरेबिया अथवा सहारा का अत्यन्त सूखा होना वहाँ की निर्जनता और बिखरी आबादी का मुख्य कारण है। किन्तु कुछ दशाओं में आबादी के घनत्व के कारण अधिक पेचीदा हैं—जैसे उत्तर-पश्चिमीय योरोप और पूर्वी संयुक्तराज्य अमेरिका। इन भूभागों की घनी आबादी के बहुत से सम्बन्धित कारण हैं। हमें इन सम्बन्धित कारणों और उसके परिणामों का अध्ययन करना है।

जो लोग कि घनी आबादी अर्थात् बड़े बड़े केन्द्रों में सटे हुए फ्लैटों और कमरों में चार पाँच मंजिल वाली इमारतों और बिखरे हुए झोपड़ों में रहते हैं उनका सामाजिक जीवन, दृष्टि कोण और कार्य एक से नहीं हो सकते। विस्तृत मैदानों में रहने वाला ग्रामीण नगरों के जीवन और उसकी समस्याओं को नहीं समझता।

घनी और बिखरी आबादी के गुण दोष

जो लोग कि घनी आबादी में रहते हैं उनमें सामूहिक भावना उदय होती है और बिखरी हुई आबादी में व्यक्ति की भावना जागृति होती है। घनी आबादी में रहने वाला व्यक्ति अधिक लोगों से परिचित हो सकता है और जो लोग भीड़ में रहते हैं यदि उनमें तनिक भी महत्त्वाकांक्षा, साहस और पुरुषार्थ होता है तो वह शीघ्र ही किसी दल या समूह का नेता बन जाता है। घनी आबादी की सब मिलाकर सम्पत्ति अधिक होने के कारण शिक्षा चिकित्सा और अन्य सामाजिक सुविधायें वहाँ सरलता से उपलब्ध हो सकती हैं। जहाँ आबादी बिखरी होती है वहाँ ये सुविधायें उपलब्ध नहीं हो पातीं और यदि होतीं भी हैं तो भी दूरी के कारण उनका पूरा उपयोग नहीं हो पाता। व्यक्तियों का नेतृत्व, सामूहिक जीवन और संगठित जीवन घनी आबादी की देन है। आज नगरों से ही हमें राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक नेतृत्व प्राप्त होता है। यह लोगों के समीप और घने आबादी वाले स्थानों में रहने से जो शिक्षा मिलती है उसका परिणाम है।

किन्तु घनी आबादी के सब गुण ही हों ऐसी बात नहीं है। अधिक घनी आबादी में छोटे छोटे कम हवादार मकानों, हवा के दूषित होने, गंदगी बढ़ने की समस्या खड़ी हो जाती है। स्वास्थ्य कर खेलों और मनोरंजन के लिए स्थान तक नहीं रहता। इससे बीमारियाँ फैलने, पतन की ओर ले जाने वाले मनोरंजन और अस्वस्थ कर आदतें फैलती हैं। घनी आबादी में व्यक्ति भीड़ में डूब जाता है उसके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता है और अधिकांश लोग नौकरी करते हैं इस कारण वे आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र न होकर दूसरों पर निर्भर रहते हैं। किसान अथवा पशु पालन करने वाला आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होता है और भीड़ से दूर रहता है। नगरों में मनोरंजन अधिकतर व्यापारिक होता है इस कारण मनुष्य अपना बहुत सा समय श्रम रहित कार्यों में व्यय करता है और अपने परिवार वालों के साथ बैठ कर बातचीत करने, पढ़ने, सोचने के लिए कम समय पाता है। विचारों की परिपक्विता एकान्त जीवन से ही आती है और भीड़ भाड़ में नहीं हो सकती। संसार को अधिकांश धार्मिक विचार और दर्शन उन्हीं लोगों से मिले हैं जो एकान्त में रहते थे। रात्रि को खेतों की रखवारी करते समय, दिन में जानवरों को चराते समय मनुष्य के मन में जो विचार उठते हैं उसकी जो सूझ होती है वह शोर गुल वाले नगरों में रहने वालों की नहीं हो सकती।

किन्तु बिखरी हुई आबादी में रहने वालों की कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। वे बहुधा सोचने विचारने वाले और चुप रहते हैं और अच्छे वक्ता नहीं बन पाते किन्तु जब अवसर आता है तो उनमें कार्य करने की आश्चर्यजनक फुर्ती और क्षमता होती है।

जहाँ तक स्वास्थ्य रक्षा का प्रश्न है बिखरी आबादी में रहने वालों को लाभ है। शुद्ध हवा, रोशनी और जगह की वहाँ कमी नहीं होती जैसी कि शहरों में होती है। किन्तु साथ ही वहाँ यह दोष भी है कि चिकित्सा की समुचित व्यवस्था नहीं हो पाती।

ऊपर के विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि साधारण घनी आबादी अधिक श्रेयस्कर है। अब हम उन कारणों का अध्ययन करेंगे जिनका प्रभाव जनसंख्या के घनत्व पर पड़ता है क्योंकि उनका व्यापार से भी सम्बन्ध है इस कारण आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को उन कारणों का अध्ययन कर लेना चाहिए।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि पृथ्वी पर घनी आबादी के कुछ ही प्रदेश हैं शेष में बिखरी हुई आबादी है। गाँवों की आबादी जो खेती की उत्पत्ति पर निर्भर है। जहाँ गहरी खेती होती है और प्रति एकड़ पैदावार अधिक होती है वहाँ ग्राम प्रदेशों में आबादी घनी होती है। यह तभी सम्भव है कि जब उपजाऊ भूमि हो, यथेष्ट वर्षा हो और लम्बा गरम मौसम हो जिसमें कि फसल उत्पन्न हो सके। चीन, आइरलैंड और पूर्वी भारत के घने आबाद प्रदेश इसके उदाहरण हैं। शक्ति के साधनों और कच्चा माल मिलने की सुविधा शहरों की घनी आबादी का कारण होता है पश्चिमीय योरोप तथा पूर्वीय संयुक्तराज्य अमेरिका के औद्योगिक प्रदेश इसके उदाहरण हैं। नीलनदी की घाटी में घनी आबादी का मुख्य कारण सिंचाई की सुविधा है। घनी आबादी वाले देश घने आबाद रहते हैं चाहे उससे अधिक उपजाऊ प्रदेश खाली ही क्यों न पड़े हों इसका मुख्य कारण है कि मनुष्य अपने निवास स्थान को छोड़ना पसन्द नहीं करता। जब वह विवश ही हो जाता है तब अवश्य ही वह अपना निवास स्थान छोड़ता है। यही कारण है कि घने आबाद प्रदेशों से कम आबादी वाले प्रदेशों को प्रवास बहुत धीरे होता है। यही नहीं घनी आबादी वाले प्रदेशों से कम आबादी वाले देशों में प्रवास को राजनैतिक कारण तथा जाति द्वेष भी रोकते हैं। उदाहरण के लिए अफ्रीका, आस्ट्रेलिया न्यूज़ीलैण्ड इत्यादि देशों में भारतीयों और चीनियों को बसने नहीं दिया जाता।

नगरों के बसने का कारण

नगर स्वयं ही उदय नहीं हो जाते। उनके बसने के कुछ कारण होते हैं। व्यापार नगरों के निर्माण में मुख्यतः सहायक होता है किन्तु बहुधा ऐसा भी होता है कि नगर के बसने का मूल कारण और कुछ होता है और जब नगर बस जाता है तो वहाँ व्यापार की वृद्धि होती है। हम संक्षेप में यहाँ नगर बसने के कारणों का उल्लेख करेंगे।

१. धार्मिक स्थान—धार्मिक स्थान महत्वपूर्ण नगर बन जाते हैं। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लाखों व्यक्ति वहाँ तीर्थ यात्रा करने आते हैं इस कारण फिर वहाँ व्यापार इत्यादि की भी वृद्धि हो जाती है। मक्का, मदीना रेगिस्तान में इसी कारण नगर बन सके, बनारस तथा हरिद्वार भी धार्मिक स्थान होने के कारण ही महत्वपूर्ण हैं।

२. स्वास्थप्रद स्थान—बहुत से स्थान इस कारण नगर बन गए हैं कि वे स्वास्थ्य प्रद हैं या मनोरंजन के स्थान हैं या उनका दृश्य अच्छा है। जहाँ लोग कलकारखानों के नगरों में काम करने के पश्चात् छुट्टी मनाते हैं और थकावट को दूर करते हैं। पहाड़ी स्थान तथा समुद्र के किनारे छोटे छोटे स्थान इसी कारण नगर बन जाते हैं। भारतवर्ष में नैनीताल, मसूरी इत्यादि इसी कारण महत्वपूर्ण बन गए हैं कि वे गरमियों में भी ठंडे रहते हैं। गरमी के दिनों में लाखों आदमी इन पहाड़ी स्थानों पर जाते हैं। योरोप में समुद्र के किनारे इसी प्रकार बहुत से स्थान हैं जहाँ लोग छुट्टियों में रहने जाते हैं।

३. खनिज केन्द्र—जहाँ खनिज पदार्थ निकलते हैं वहाँ भी नगर बस जाते हैं। पश्चिमी आस्ट्रेलिया में कालगूर्ली और कालगूर्डी सोने की खानों के केन्द्र हैं वे मरुभूमि में बसे हुए हैं यद्यपि उन नगरों के लिए ४०० मील दूरी से पानी पाइप लाइनों द्वारा ले जाना पड़ता है। बंगाल और बिहार की कोयले की खानों के प्रदेश में बहुत से नगर बस गए हैं।

४. जिस स्थान पर दो प्रदेशों का मिलन होता हो वहाँ भी नगर बस जाता है क्योंकि वहाँ उन दोनों देशों की पैदावार का विनिमय होता है। उदाहरण के लिए आल्पस के नीचे मिलन नगर बसा है। यहाँ इटली के मैदान तथा आल्पस प्रदेश की पैदावार का विनिमय होता है।

५. जहाँ जलविद्युत् तैयार की जाती है वहाँ भी नगर बस जाते हैं। उदाहरण के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका में सेंटपाल, बफैलो, मिनियापोलिस इत्यादि।

६. रेलवे जंकशन और बंदर गाह बहुधा बड़े नगर बन जाते हैं क्योंकि वे बड़ी व्यापारिक मंडी बन जाते हैं जहाँ माल आता और जाता है।

७. राजधानियाँ भी बड़े नगर बन जाते हैं। उदाहरण के लिए देहली, वाशिंगटन, पेरिस इत्यादि।

८. बहुत से नगर इस कारण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनका सैनिक दृष्टि से महत्व है और वहाँ फौजी छावनियाँ हैं उदाहरण के लिए एडिन, पेशावर इत्यादि।

९. पिछले दिनों में महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र भी बड़े नगर बन गए हैं। उदाहरण के लिए आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज।

१०. दो घाटियों का जंकशन जो बहुधा दो नदियों का जंकशन भी होता है महत्वपूर्ण नगर बन जाता है।

११. दो सड़कों का जंकशन भी शीघ्र नगर बन जाता है क्योंकि वह व्यापारिक मंडी बन जाता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—घनी तथा बिखरी आबादी के दोष गुण लिखिए?

२—घनी आबादी के होने के मुख्य कारण बतलाइए?

३—नगरों के बसने के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए?

४—मक्का, नैनीताल, देहली तथा कानपुर महत्वपूर्ण नगर क्यों बन गए?

चौदहवाँ परिच्छेद

मुख्य-व्यापारिक देश

यदि हम पृथ्वी के प्रत्येक भाग के आर्थिक भूगोल का अध्ययन करें तो हमको ज्ञात होगा कि दो प्रकार के देश हैं। एक तो वे देश कि जिनकी औद्योगिक उन्नति हो चुकी है और जो तैयार माल बाहर भेजते हैं, दूसरे वे देश कि जो कृषि प्रधान देश हैं और जो कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थ बाहर भेजते हैं। सर्व प्रथम औद्योगिक क्रान्ति योरोप में हुई इस कारण योरोपीय देशों में औद्योगिक उन्नति हो गई। औद्योगिक उन्नति के फल स्वरूप इन देशों में पूंजी इकट्ठी होने लगी और आबादी तेजी से बढ़ने लगी। इस क्रान्ति से योरोपीय देश शक्तिशाली हो गए, उन्होंने एशिया, अफ्रीका, तथा अमेरिका महाद्वीपों को ढूँढ निकाला और उन पर अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन औद्योगिक योरोपीय देशों को कच्चा माल प्राप्त करने तथा अपने तैयार माल को बेंचने के क्षेत्र अनायास ही मिल गए। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति सफल हुई और योरोपीय देश औद्योगिक उन्नति की दौड़ में बहुत आगे निकल गए। अन्य महाद्वीप राजनैतिक दासता के कारण अपने उद्योग-धंधों की उन्नति न कर सके वे पिछड़े रहे। किन्तु अब क्रमशः पिछड़े हुए देश भी औद्योगिक उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी अभी तक एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका मुख्यतः कृषि-प्रधान देश ही बने हुए हैं और औद्योगिक देशों को कच्चा माल देते हैं। हाँ संयुक्तराज्य अमेरिका तथा जापान अवश्य ही प्रथम श्रेणी के औद्योगिक देश बन गए हैं।

एशिया

एशिया का महाद्वीप संसार के सब महाद्वीपों से बड़ा है। इसका क्षेत्रफल लगभग १७२ लाख वर्ग मील है। पृथ्वी की लगभग एक तिहाई भूमि का यह भूभाग पृथ्वी की लगभग आधी जनसंख्या का निवास स्थान है। संसार की प्राचीन सभ्यताओं का जन्म इसी महाद्वीप के देशों में हुआ। एशिया देश किसी समय अत्यन्त समृद्धिशाली थे। संसार में महाराष्ट्र भारत और चीन की कारीगरी की धूम थी। किन्तु आज एशिया औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। परन्तु एशिया के कुछ देशों में औद्योगिक उन्नति के सभी साधन मौजूद

हैं और भविष्य में वह समय शीघ्र आने वाला है जब कि यह महाद्वीप भी औद्योगिक उन्नति करेगा।

एशिया की बनावट कुछ विचित्र है। इस महाद्वीप के मध्य में पामीर का ऊँचा पठार है। जिससे निकल कर दो पर्वत मालायें दोनों ओर (पूर्व पश्चिम) को फैलती हैं। पूर्वी पर्वतमाला एक सी चली गई है किन्तु पश्चिम में यद्यपि श्रेणियाँ बहुत हैं किन्तु ऊँची और एक सी नहीं हैं। इन टूटी फूटी पर्वत मालाओं की अनेक श्रेणियों ने पश्चिम में ईरान का पठार तथा अन्य कम ऊँचे प्रदेश बहुतायत से बना दिए हैं। यही कारण है कि अफगानिस्तान, फारस तथा एशिया मायनर अधिक उन्नति न कर सके पूर्व में पर्वत श्रेणी बहुत ऊँची तथा एक सी चली गई है। इस श्रेणी की दो शाखायें हैं। एक हिमालय तथा तिब्बत की श्रेणियाँ, दूसरी क्यूनलिन, स्टैनोवी तथा यांबलोनियाँ की श्रेणियाँ जो उत्तर की ओर जाती हैं। इन ऊँची पर्वत श्रेणियों के मध्य में तथा इनके दक्षिण में विस्तृत उपजाऊ मैदान हैं जिनमें घनी जनसंख्या निवास करती है। उत्तर में सायबेरिया का विशाल मैदान है जहाँ का जलवायु बहुत ही ठंडा है। परन्तु सोवियट रूस की सरकार के प्रयत्नों के फलस्वरूप यहाँ गमनागमन के साधनों की उन्नति हो रही है और खेती को तो तीव्रगति से उन्नति दी जा रही है। भविष्य में सायबेरिया अनन्त राशि में गेहूँ तथा अन्य अनाज उत्पन्न करेगा।

पश्चिम में ईरान का पठार है जो कि अधिकांश शुष्क और पथरीला है। पश्चिम में अरब का रेगिस्तान है। आर्थिक दृष्टि से पश्चिमीय भाग महत्त्वहीन है। अधिकांश जनसंख्या खेती बारी और विशेषकर पशुपालन से निर्वाह करती है। हाँ ईरान, इराक तथा पश्चिमीय मरुभूमि में तेल मिलता है। इसी तेल के कारण पैलेस्टाइन, इराक फारस, तथा अन्य प्रदेशों में काफी राजनैतिक उथल पुथल हुई है।

एशियाई देश पिछली शताब्दी में राजनैतिक दृष्टि से या तो योरोपीय जातियों की आधीनता में रहे हैं अथवा उनके प्रभाव क्षेत्र में हैं। इस कारण वे अपने उद्योग-धंधों की उन्नति ही न कर सके। परन्तु बीसवीं शताब्दी में एशियाई राष्ट्रों में नव जागरण हुआ है और वे अपने उद्योग-धंधों की उन्नति करने में विशेष रूप से सचेष्ट हैं। फल स्वरूप अफगानिस्तान, ईरान, तथा अन्य देशों में आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित किए जा रहे हैं।

सायबेरिया ही एक ऐसा विशाल किन्तु आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ भूभाग है जो भविष्य में खेती की दृष्टि से उन्नति करेगा। किन्तु पश्चिमी एशियाई देश पथरीले शुष्क एवं खनिज पदार्थों से हीन हैं। केवल ईरान

इराक़ के क्षेत्र में तेल निकलता है। अन्यथा इन प्रदेशों में खेती बारी स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होती है किन्तु यहाँ का मुख्य धंधा पशु पालन है।

जापान पाँच बड़े द्वीपों और ४००० छोटे द्वीपों का यह देश एक पर्वतमाला का बचा हुआ भाग है। इसका क्षेत्रफल १,५१,००० वर्गमील है। यह ब्रिटिश द्वीपसमूह से कुछ बड़ा है। सारा देश पहाड़ी है और अधिकांश पहाड़ ज्वालामुखी है। देश में ५० से अधिक प्रज्वलित ज्वालामुखी हैं। भूकम्पों के द्वारा जापान की बहुत हानि हो चुकी है। यह ज्वालामुखी पहाड़ जंगलों से भरे हुए हैं इस कारण देश के भीतरी भाग में न तो अधिक आबादी ही है और न उद्योग-धंधे और खेती-बारी के लिए सुविधायें हैं।

इस देश का धरातल एक सा नहीं है। भीतर की ओर पहाड़ फैले हुए हैं। पहाड़ों का ढाल बहुत अधिक है। इस कारण वर्षा के दिनों में नदियाँ बड़े वेग से बहकर पहाड़ों की मिट्टी को बहाकर समुद्र तट के समीप जमा देती हैं। यही कारण है कि तटीय मैदान बहुत उपजाऊ हैं और यहाँ आबादी घनी है। देश का धरातल ऊबड़-खाबड़ होने के कारण रेलों तथा मार्गों के बनाने में रुकावट डालता है। धरातल की बनावट ठीक न होने के कारण रेलें बहुत हेर-फेर से ले जाई गई हैं। जापान की नदियाँ सड़कों के निकालने में बाधक हैं। वर्षा के दिनों में इन नदियों में भयंकर बाढ़ आती है। बाढ़ आने से गाँवों को बहुत हानि पहुँचाती है और सड़कें व्यर्थ हो जाती हैं। तटीय मैदानों में समुद्रीय मार्ग की सुविधा तथा तटीय रेलों के कारण बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्र तथा व्यापापिक केन्द्र समुद्र तट के समीप ही हैं। भीतर की ओर गमनागमन के साधनों की असुविधा है।

जापान की जलवायु दक्षिण से उत्तर की ओर बदलता जाता है, तथा पूर्व और पश्चिम की जलवायु में भी बहुत भिन्नता है। इसका कारण यह है जापान के द्वीप दक्षिण अक्षांशों (S. Latitudes) से उत्तर अक्षांशों (N. Latitudes) तक फैले हुए हैं। उत्तर में उत्तर-एशिया की ठंडी हवायें बहती हैं जो इसको और भी अधिक ठंडा बना देती है। पूर्व में गरम समुद्र की धारा बहने के कारण पूर्वी भाग गरम रहता है। जापान का उत्तरी पश्चिमी भाग जाड़ों में बहुत ठंडा रहता है क्योंकि सायबेरिया की ठंडी हवायें वहाँ चलती हैं। परन्तु दक्षिणी पूर्वी भाग जाड़ों में कम ठंडा रहता है। पहाड़ों की श्रेणियाँ ठंडी हवा को रोक लेती हैं और पूर्व में गरम धारा बहती

है। गरमियों में मानसून दक्षिण से चलती है इस कारण दक्षिण पूर्व में सबसे अधिक वर्षा होती है।

जापान में जलवायु की भिन्नता के कारण बहुत तरह के वन पाये जाते हैं। उत्तरीय भाग में शीतोष्ण कटिबन्ध के वन (कानीफ़ेरस) पाये जाते हैं जिनमें पाइन फर (सनोबर), तथा सायप्रैस इत्यादि वृक्ष बहुत हैं। दक्षिण में कपूर, बलूत के वृक्ष अधिक मिलते हैं। फारमोसा में ऊष्ण कटिबन्ध के वृक्ष मिलते हैं। फारमोसा के वनों में बाँस, वटवृक्ष और कपूर के वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। जापान में काग़ज़ के काम का शहतूत वृक्ष बहुत पाया जाता है जिसकी लकड़ी के छातों तथा अन्य वस्तुओं के लिए काग़ज़ तैयार किया जाता है।

यद्यपि जापान की अधिकांश भूमि पथरीली है और वनों तथा एक प्रकार की बाँस जैसी घास से आच्छादित होने के कारण खेती के योग्य नहीं है परन्तु फिर भी खेती जापान का मुख्य धंधा है। देश के समस्त क्षेत्रफल का केवल १६ प्रतिशत खेती के योग्य है। खेती यहाँ बहुत गहरी होती है; छोटे छोटे खेतों पर किसान बहुत परिश्रम के साथ खेती करते हैं। खाद का बहुत अधिक उपयोग किया जाता है जिससे प्रति एकड़ अधिक से अधिक धान उत्पन्न किया जा सके। जापान की मुख्य पैदावार चावल और रेशम है। ज्वार, बाजरा, मक्का तथा जौ कम उपजाऊ भूमि पर उत्पन्न किया जाता है जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं होती। उत्तर के ठंडे प्रदेश में गेहूँ और सोयाबीन उत्पन्न की जाती है। पहाड़ के ढालों पर (विशेषकर प्रशान्त महासागर की ओर) चाय के बाग़ हैं। चाय के बाग़ टोकियो से नागोया तक फैले हुए हैं। जापान चाय उत्पन्न करने वाले देशों में पाँचवाँ स्थान रखता है किन्तु यहाँ भारत या सीलोन की भाँति चाय के बड़े बड़े बाग नहीं है केवल छोटे छोटे एक दो एकड़ के खेत हैं जहाँ चाय के पेड़ पैदा किये जाते हैं। जापान की आबादी बहुत घनी है। अतएव खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने में ही किसान सारी शक्ति लगाता है। कच्चा माल; जापान में, रेशम के अतिरिक्त उत्पन्न नहीं किया जाता है। परन्तु जापान संसार में सबसे अधिक कच्चा रेशम उत्पन्न करता और विदेशों को भेजता है। दक्षिण जापान की गरम तथा नम जलवायु रेशम के कीड़े पालने के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

शहतूत के वृक्ष को यहाँ बढ़ने नहीं देते वरन छाँट छाँट कर झाड़ी बना देते है जिससे कि वह अधिक से अधिक पत्तियाँ उत्पन्न कर सकें। भूमि की कमी के कारण किसान शहतूत की झाड़ियों के बीच में अपनी फसलें बोता है साधारणतः शहतूत के पेड़ की छाया से फसल की बढ़वार रुक जावे किन्तु

ऊँचे मैदानों पर जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं है गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का और आलू उत्पन्न होता है।

जापान संसार में चावल उत्पन्न करने वालों में तीसरा स्थान रखता है। फिर भी जापान प्रति वर्ष बहुत सा मँगाताचावल है।

चावल की खेती

करोड़ों जापानियों का भोजन केवल चावल और मछली है। जापानी प्रातः काल नाश्ते में दोपहर के भोजन में और रात्रि के भोजन में चावल ही खाते हैं। चावल ऊँचे प्रदेशों और नीचे मैदानों पर उत्पन्न होता है। जितनी भूमि पर खेती होती है उसके ५१ प्रतिशत भूमि पर चावल उत्पन्न होता है।

एप्रिल के महीने में धान को नर्सरी के पौधे में बो दिया जाता है और मई महीने में नर्सरियों में धान के पौधे लहलहाने लगते हैं। जब कि धान नर्सरियों में उगता है खेतों को जोतने में लगे रहते हैं। जून के महीने में चावल को नर्सरी से उखाड़ कर खेतों में लगाया जाता है। उस समय खेतों में बच्चे, स्त्री पुरुष सभी लगे रहते हैं और अक्टोबर और नवम्बर में धान को काटा जाता है। जाड़े में धान के खेतों पर गेहूँ और जौ उत्पन्न किया जाता है।

भोज्य पदार्थों को यदि छोड़ दें तो जापान की मुख्य पैदावार शहतूत है। शहतूत के पत्तों पर रेशम के कीड़े को पालना यहाँ के किसानों का मुख्य धन्धा है। शहतूत का वृक्ष हान्श्यू द्वीप के मध्य में बहुत अधिक होता है। जापान के उत्तरी भाग में अधिक ठंड पड़ने के कारण बसंत में शहतूत की पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस कारण उत्तर में यह धंधा महत्वपूर्ण नहीं है। रेशम के धंधे की इतनी अधिक उन्नति का कारण यहाँ सस्ते मज़दूरों का होना तथा राज्य का प्रोत्साहन है। इनके अतिरिक्त कुछ तम्बाखू, सन और लाई भी यहाँ उत्पन्न होती हैं।

जापान में मछली बहुत खाई जाती है। यहाँ के समुद्र में बहुत प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं। समुद्रतट के टूटे फूटे होने के कारण मछलियाँ पकड़ने में सुविधा होती है। समुद्रतट के लाखों मनुष्य इस धंधे में लगे हुए हैं। किसान भी इस धंधे को करते हैं। यहाँ हैरिंग (Herring), मैकेरेल (Mackerel), सारडीन (Sardine) तथा पीली पूँछ वाली मछली बहुत पाई जाती हैं। उत्तर प्रशान्त महासागर में ह्वेल (Whale) तथा सील (Seal) भी पकड़ी जाती हैं।

जापान में खनिज पदार्थों की बहुत कमी है। खनिज-पदार्थों की दृष्टि से जापान निर्धन देश है। कोयला जापान में कम पाया जाता है और जो कुछ भी कोयला है वह घटिया है। जो कुछ भी कोयला जापान में पाया जाता है वह

होकेडो (Hokkaido) तथा क्यूशू प्रदेशों में मिलता है। यद्यपि जापान में कोयला कम है परन्तु प्रकृति ने जल-शक्ति बहुत प्रदान की है। जापान ने अपनी जल-शक्ति का खूब ही उपयोग किया है। मध्य-हान्श्यू के पहाड़ों से निकलने वाली नदियों के जल से बहुत अधिक बिजली उत्पन्न की जाती है। इस बिजली का प्रशान्त महासागर के तट पर टोकियो तथा नोबी के मैदानों में स्थित औद्योगिक केन्द्रों का उपयोग होता है। प्रकृति ने कोयले की कमी को जल-शक्ति देकर पूरा कर दिया है।

जापान में अन्य औद्योगिक देशों की अपेक्षा लोहा भी कम है। केवल दो क्षेत्रों में लोहा मिलता है—(१) उत्तर पूर्वी हान्श्यू में कामेशी (Kamaishi) की खानें, तथा दूसरी पश्चिमी होकेडो में कूचान की खानें। जापान में ताँबा भी मिलता है। इनके अतिरिक्त इचिगो तथा यूगो (Echigo & Ugo) की खानों से थोड़ा मिट्टी का तेल भी निकलता है। जापान में जो थोड़ा लोहा निकलता है उससे देश की माँग पूरी नहीं हो सकती, इस कारण लोहा बाहर से मँगाना पड़ता है।

जापान में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना प्रारम्भ हुई और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उसने आश्चर्य-जनक औद्योगिक उन्नति कर ली। जापान में खनिज पदार्थों की कमी है तथा कच्चा माल भी जापान उत्पन्न नहीं करता फिर भी उसने इतनी शीघ्र औद्योगिक उन्नति कर ली यह वास्तव में आश्चर्य की बात मालूम पड़ती है। जापान की औद्योगिक उन्नति के मुख्य तीन कारण हैं जिनसे जापान के उद्योग-धन्धों की उन्नति सम्भव हो सकी—

(१) सस्ती जल-शक्ति की अधिकता (२) कुशल सस्ते मज़दूरों की बहुतायत जिन्हें काम की आवश्यकता है (३) तैयार माल की खपत के लिए चीन और भारतवर्ष जैसे विशाल देशों का समीप होना। यदि देखा जाये तो सस्ते और कुशल मज़दूरों की बहुतायत ही जापान की औद्योगिक उन्नति का मुख्य कारण है।

रेशम का धंधा

जापान में रेशम का धन्धा सब से अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें काम करने वाले किसान भी हैं और औद्योगिक मज़दूर भी हैं। रेशमी कीड़े का पालन करना तथा कुकून इकट्ठा करना किसान का धन्धा है और रेशमी कारखानों में मज़दूर काम करते हैं। चावल के उपरान्त रेशम के कीड़े पालना ही जापानी किसान का मुख्य कार्य है।

जापान यद्यपि चीन से कम रेशम उत्पन्न करता है किन्तु जापान का रेशमी धन्धा अधिक वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है और अधिक उन्नत है। सरकार ने रेशम के धंधे को उन्नत करने का विशेष प्रयत्न किया है। चीन में रीलिंग इत्यादि हाथ से होता है किन्तु जापान में भाफ द्वारा कारखानों में होता है।

रेशम के रीलिंग के लिए जापान में नीची लिखी विशेष सुविधायें हैं (१) शुद्ध जल की बहुतायत (रेशम के कारखानों को पानी की बहुत आवश्यकता होती है।) (२) धंधा रेशम उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में केन्द्रित है। दक्षिण और दक्षिणी पूर्व के तटीय नीचे मैदानों में अपेक्षाकृत ठंडी और सूखी वायु होती है।

जापान ने रेशम के उत्पन्न करने में विशेष उन्नति की है और रेशम की रीलिंग करने के लिए एक विशेष पद्धति निकाली है जिससे कि रेशम अधिक चमकदार और सुन्दर हो जाता है जिसकी संयुक्तराज्य अमेरिका में बहुत खपत है। जापान जितना रेशम बाहर भेजता है उसका ९५ प्रतिशत संयुक्त-राज्य अमेरिका को जाता है।

जापान में रेशमी कपड़े तैयार करने का धंधा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रेमशी कपड़ा आज भी बहुत कुछ हाथ कर्घों से बुना जाता है, परन्तु आधुनिक ढंग के कारखाने भी कपड़ा तैयार करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में नकली रेशम का धंधा भी जापान में बहुत उन्नति कर गया है। रेशमी कपड़ा तैयार करने वाले केन्द्रों में फूकी (Fukui) कानाज़ावा (Kanoziva) तथा कामाटा (Kwamata) मुख्य हैं। ऊनी कपड़े का धन्धा भी तीव्र गति से उन्नति कर रहा है और जापान आस्ट्रेलिया के ऊन का प्रमुख खरीदार बन गया है। इन धन्धों से भी अधिक महत्वपूर्ण धन्धा सूती कपड़े का धन्धा है। साधारण सूत कातने में हिन्दुस्तान की कपास का ही उपयोग होता है किन्तु बढ़िया सूत कातने के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका की रूई मँगाई जाती है। सूती कपड़े के धन्धे के मुख्य केन्द्र ओसाका (Osaka) कोब (Kobe) याकोहामा (Yakohama) और टोकिओ (Tokio) हैं जापान में सूती धन्धे की आश्चर्यजनक उन्नति के नीचे लिखे कारण हैं :—(१) यथेष्ट सस्ते मज़दूर, (२) चीन तथा भारत इत्यादि पूर्वी देशों के विस्तृत बाजारों का पास होना (३) घटिया और बढ़िया कपास को मिला कर बारीक सूत कातने की पद्धति का आविष्कार, (४) राज्य द्वारा धन्धे को आर्थिक सहायता, (५) सूती कपड़े की बिक्री का उत्तम संगठन। जापान में खिलौने बनाने का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है।

आज जापान खिलौने बनाने में संसार का प्रमुख देश बन गया है। यह खिलौने अन्य बड़े धन्धों के बचे हुए कच्चे माल तथा सैलूलौज से बनाये जाते हैं। पिछले वर्षों में जापान ने स्टील, लोहे के अन्य सामान, तथा मशीनें बनाने में भी यथेष्ट प्रगति की है। इनके अतिरिक्त नागासाकी, कोब तथा टोकिओ में जहाज़ बनाने का धन्धा भी तेज़ी से बढ़ रहा है। ऊपर वर्णित धन्धे तो उन्नत अवस्था में हैं ही, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से चमड़े तथा शक्कर का धन्धा भी उन्नति करता जा रहा है।

पिछले युद्ध के समय (१६१४) जापान में लोहे और स्टील का धंधा उन्नत कर गया क्योंकि बाहर से लोहा और मशीनें आ नहीं सकती थीं। किन्तु जापान में धंधे के लिए यथेष्ट लोहा नहीं है इस कारण लोहा मंचूरिया, चीन, स्टेटसैटिलमेंट से मँगाना पड़ता है। जापान में कुल लोहे का अनुमान ४०,०००,००० टन है थोड़ा लोहा चोजन में भी मिलता है। जापान की निर्धनता का तो इसी से पता चलता है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में जितना लोहा एक वर्ष में निकलता है वह इससे अधिक है। जापान में कुल अनुमानित कोयला ८,०००,०००,००० टन है किन्तु वह इतना घटिया है कि उसका कोक नहीं बनाया जा सकता। जापान कोयला भी चीन और मंचूरिया (मंचकाऊ) से मंगाता है। जहाँ तक लाइमस्टोन (चूने के पत्थर) का प्रश्न है जापान में यथेष्ट है।

कागज़ का धंधा

पिछले युद्ध (१६१४) के समय से कागज़ का धंधा भी जापान में उन्नति कर गया है। आज जापान संसार का प्रमुख कागज़ उत्पन्न करने वाला देश बन गया है। और चीन को कागज़ भेजता है। जापान में दो प्रकार का कागज़ का धंधा है। एक तो हाथ से कागज़ घरों में बनाया जाता है दूसरे कारखानों द्वारा कागज़ तैयार किया जाता है। जापान में पिछले एक हज़ार वर्षों से हाथ से कागज़ बनाने का धंधा होता आता है। हाथ के धंधे में कागज़ शहतूत के पेड़ की भीतरी छाल से तैयार किया जाता है। हाथ का बना कागज़ बहुत मोटा, सुन्दर, चिकना और टिकाऊ होता है।

आधुनिक ढंग से कागज़ बनाने के धंधे के लिए नीचे लिखी सुविधायें जापान में उपलब्ध हैं :—

(१) हांश्यू, होकैडो, करारफ में कानीफरस वनों की बहुतायत.
(२) जल-प्रपातों (Waterfal's) की बहुतायत

(३) आधुनिकतम बढ़िया यंत्रों तथा श्रम की बचत करने वाले यंत्रों का उपयोग

(४) बाहर से आने वाले कागज़ पर भारी कर

(५) देश में बढ़ती हुई कागज़ की माँग।

यही कारण है कि जापान में कागज बनाने के आधुनिक ढंग के बहुत से कारखाने स्थापित हो गए और यह धंधा पनप उठा।

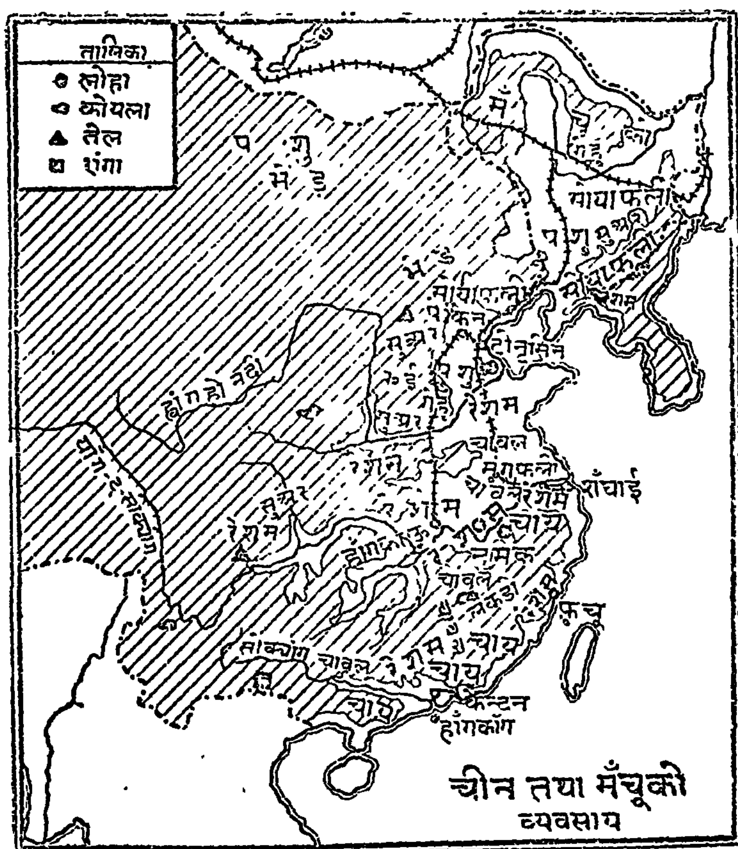
रसायनिक धंधा :—जापान में रसायनिक (Chemical) धंधा भी पिछले दिनों में बहुत उन्नति कर गया है। संसार में जितना प्राकृतिक कपूर तथा मैन्थल कपूर तैयार होता है वह सारा का सारा जापान में तैयार होता है। जापान का इस धंधे पर एकाधिपत्य है। इसके अतिरिक्त वहाँ कोलतार, गंधक का तेजाब, आइयोडीन (Iodine) पोटेशियम आयोडायड (Potassium Iodide) तथा रसायनिक खादें (Fertilisers) मुख्य हैं।

जापान का प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र टोकियो से नागासाकी तक फैला हुआ है। यह क्षेत्र बहुत अधिक घना आबाद है और मुख्य धंधे इसी क्षेत्र में केन्द्रित है। इस प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र के उत्तर में रेशम का धंधा विशेष रूप से केन्द्रित है। जापान का विदेशी व्यापार विशेषतः चीन, भारत तथा संयुक्तराज्य अमेरिका से होता है। जापान के मुख्य बंदरगाह याकोहामा, कोब, ओसाका, तथा नागासाकी है।

जापान पिछले ४० वर्षों में दो ओर विशेष प्रयत्नशील था। एक तो अपने उद्योग धंधों की तेज़ी से उन्नति करना दूसरे अपने साम्राज्य को बढ़ाना। जापानी राज्य शक्ति पिछले वर्षों में उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने तथा चीन महाराष्ट्र को हड़प जाने में प्रयत्नशील रही। इसका मुख्य कारण यह था जापान की जनसंख्या बढ़ रही थी उसको काम देने के लिए औद्योगिक उन्नति की आवश्यकता थी परन्तु खनिज पदार्थों तथा कच्चे माल की कमी के कारण तथा तैयार माल के लिए एशियाई बाजारों पर एकाधिपत्य जमा लेने के उद्देश्य से जापान ने पूर्वीय एशिया को अपने प्रभुत्व में लाने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। पिछले वर्षों में जापान का जो भयंकर साम्राज्यवादी स्वरूप हमारे सामने आया उसका कारण यही था। किन्तु दूसरे महायुद्ध (१६३६-४५) में पराजित हो जाने के फलस्वरूप तथा नगरों के बम्ब वर्षा से ध्वंस हो जाने के कारण जापान के धंधों को बहुत हानि पहुँची है।

चीन

चीन एक विशाल देश है। इसका अधिकांश भाग पहाड़ों से घिरा है। पूर्व में समुद्रतट के समीप तथा नदियों की घाटियों में मैदान हैं। चीन प्राकृतिक दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है। उत्तरी चीन, मध्य चीन, और दक्षिणी चीन। उत्तरी चीन के पूर्वी भाग में चौड़ा तटीय मैदान है। और अन्दर की तरफ ऊँचा प्रदेश है। इस भाग में हांगहो नदी बहती है। पर्वतीय भाग में नदियों की बेसिन पीली मिट्टी (Loe-s Soil) से ढकी हुई है। पीली मिट्टी बहुत उपजाऊ है। यह मिट्टी हवाओं द्वारा लाई गई हैं और हांग हो नदी के मैदानों पर बिछा दी गई है।



चीन तथा मँचूको
व्यवसाय

हांगहो नदी व्यापारिक मार्ग की दृष्टि से काम की नहीं है क्योंकि नदी में रेता अधिक बहकर आता है। नदी का धरातल ऊँचा हो जाता है. इस कारण नावें उसमें नहीं चल सकतीं।

मध्य चीन यांगटिसी-कियांग नदी का प्रदेश है। इस प्रदेश का आर्थिक महत्व बहुत कुछ यांगटिसी-कियांग नदी पर निर्भर है। यह प्रदेश पश्चिम में तिब्बत के ऊँचे पठार से क्रमशः नीचा होता गया है, और पूर्व में मैदान हैं। इस प्रदेश के प्रान्त भिन्न भिन्न ऊँचाई पर हैं। पश्चिम में जैचुआन का प्रान्त सबसे ऊँचा है, परन्तु उसके मध्य में लाल मिट्टी वाला (Red Basin) नीचा मैदान है। इसके पूर्व में हूपेह तथा हूनान कुछ कम ऊँचे हैं। इनके भी पूर्व में कियांगसी तथा आन्हवी के प्रान्त तथा पूर्व के मैदान नीचे हैं। यांगटिसी-कियांग का प्रदेश बहुत उपजाऊ है। लाल मिट्टी का मैदान संसार में अत्यन्त उर्वरा प्रदेशों में से है। इस प्रदेश में खेती के ही द्वारा २००० मनुष्य प्रति वर्ग मील निर्वाह करते हैं। पूर्व के मैदान भी बहुत उपजाऊ और घने आबाद हैं।

दक्षिण चीन अधिकांश पर्वतीय तथा ऊँचा है। इसमें सीकियांग नदी का बेसिन तथा कैन्टन का डेल्टा महत्वपूर्ण हैं। पश्चिम में ऊँचाई अधिक और पूर्व में कम है।

चीन एक विशाल देश है, इस कारण यहाँ जलवायु की भिन्नता विशेष रूप से पाई जाती है। गर्मियों में दक्षिण तथा मध्य में खूब गर्मी पड़ती है किन्तु उत्तर में गर्मी कम हो जाती है। जाड़ों में उत्तर चीन में शीत बहुत अधिक होता है किन्तु दक्षिण में ठंड कम होती है। चीन में वर्षा गर्मियों में ही होती है। किन्तु वर्षा उत्तर में कम होती है। यांगटिसीकियांग के प्रदेश में वर्षा गर्मी तथा जाड़े दोनों में ही होती है।

चीन में मानसून बहुत अनिश्चित है। किसी वर्ष वर्षा बहुत होती है तो किसी वर्ष बहुत कम। इस कारण खेती भी बहुत अनिश्चित होती है। जिस वर्ष वर्षा अधिक होती है बाढ़ से और जिस वर्ष सूखा पड़ जाता है पानी की कमी से अकाल पड़ जाता है खेती नष्ट हो जाती है। करोड़ों मनुष्यों की स्थिति दयनीय हो जाती है।

जलवायु की दृष्टि से चीन को कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) दक्षिण और दक्षिण पूर्व चीन में जिसमें

चीन का जलवायु

क्वांगसी क्वांगटन और फ़्यूकन का अधिकांश भाग सम्मिलित है। इस प्रदेश में गरमी खूब पड़ती है और वर्षा ६० इंच होती है। मध्य चीन जो कि यंगटिसी नदी का प्रदेश है। इसमें गरमी और वर्षा दक्षिण से कम है और जैसे जैसे उत्तर में बढ़ते जाइये वर्षा और गरमी कम होती जाती है। उत्तरी चीन का जलवायु गरमियों में गरम और जाड़ों में अधिक ठंडा है। वर्षा गरमियों में ही होती है और

उत्तर में कम होती जाती है। चीन में कुछ प्रान्तों (निंगशिया, सूयान, चहार और जिहोल) में वर्षा केवल १० से १६ इंच ही होती है उत्तर में कुछ प्रदेश मरुभूमि है। तिब्बत का पठार ठंडा और शुष्क है।

चीन का मुख्य धंधा खेती ही है। खेती के साथ ही किसान मुर्गी पालने तथा रेशम उत्पन्न करने का धंधा भी करता है। आज से कुछ वर्ष पूर्व तक चीन में अफीम उत्पन्न करने का धंधा बहुत महत्वपूर्ण था किन्तु जबसे चीन में राज्य ने अफीम खाने के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया तबसे अफीम की पैदावार लगभग समाप्त हो गई और उसके स्थान पर कपास तथा गन्ने की खेती की जाने लगी है। चीन कृषि प्रधान देश है फिर भी जनसंख्या बहुत ही घनी है। इस कारण मैदान ही नहीं पहाड़ों के ढालों पर भी वनों को साफ करके खेती करना आरम्भ कर दिया गया है। चीनी किसान इतनी गहरी खेती (Intensive) करता है कि उसका छोटा सा खेत एक बाग का रूप धारण कर लेता है। अपने घर का कूड़ा-करकट, मुर्गियों के द्वारा उत्पन्न की हुई खाद सभी वह अपने खेत में डाल देता है। खेती के अतिरिक्त वह मुर्गी पालकर तथा रेशम उत्पन्न करके अपनी आय को बढ़ाता है। इस प्रकार गहरी खेती करने के उपरान्त ही वह उस थोड़ी सी भूमि पर निर्वाह कर सकता है।

चीन के उत्तरी भाग में गेहूँ, सोया बीन, मूंगफली, तथा मक्का मुख्यतः पैदा होती है। मध्य तथा दक्षिण में चावल, कपास, रेशम, चाय तथा गन्ना मुख्य पैदावारें हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मध्य तथा दक्षिण में गेहूँ इत्यादि अनाज उत्पन्न ही नहीं होते, अथवा उत्तर में कपास तथा रेशम उत्पन्न नहीं होता। यांगटिसी-कियांग बेसिन में रेशम बहुत उत्पन्न होता है। उत्तर में भी कुछ रेशम उत्पन्न होता है किन्तु वहाँ शहतूत का वृक्ष नहीं होता इस कारण बलूत (oak) के वृक्ष की पत्तियों पर कीड़े पाले जाते हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सर्वत्र खेती के साथ चीन में मुर्गी पालने का धंधा होता है। चीन का रेशम बहुत अच्छा नहीं होता क्योंकि कीड़ों को वैज्ञानिक ढंग से नहीं पाला जाता। यदि रेशम को उत्पन्न करने में सावधानी की जाये तो चीन का रेशम अच्छी जाति का हो सकता है।

यद्यपि इस समय यह देश कृषि पर ही अवलम्बित है। परन्तु इसकी खानों में अनन्त सम्पत्ति भरी पड़ी है। चीन में संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर सब देशों से अधिक कोयला पाया जाता है। कोयले की खानें घनी आबादी वाले प्रदेशों में पाई जाती हैं। शान्सी, शान्टुंग, होप्ये (Hopei) तथा होनान में कोयले की बहुत खानें हैं। जिनमें अनन्त राशि में कोयला भरा

पड़ा है। शान्शी प्रान्त की खानों से बहुत कोयला निकाला जाता है। यही नहीं कि चीन में कोयला बहुत है वरन वहाँ उत्तम जाति का कोयला मिलता है। शान्शी में अधिकांश कोयला ऐंथ्रासाइट (Anthracite) है।

चीन में लोहा भी बहुत पाया जाता है। शान्शी, हूपेह (Hupeh) तथा कियांगसू (Kiangsu) प्रान्त में लोहे की बहुत खानें हैं। यहाँ अच्छी जाति का लोहा मिलता है।

कोयले और लोहे के अतिरिक्त चीन के ज़ैचुआन ह्यूनान, यूनान, तथा शान्शी, प्रान्त में तेल भी यथेष्ट मिलता है। दक्षिण चीन में टिन निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त चीन में ऐन्टिमनी (Antimony) तथा वोलफ्रम (Wolfram) भी बहुत पाया जाता है।

चीन में यद्यपि खनिज पदार्थ यथेष्ट हैं परन्तु अभी उनको निकाला नहीं गया है। खानों को खोदने में सबसे बड़ी असुविधा मार्गों का न होना है। चीन में रेलों का विस्तार नहीं हुआ। अधिकांश व्यापार नहरों तथा नदियों के द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त चीन में पूंजी की भी कमी है और अभी तक चीन सरकार युद्धों से ही छुट्टी नहीं पा सकी है जो राष्ट्र के औद्योगीकरण की ओर ध्यान देती।

चीन औद्योगिक दृष्टि से भी बहुत पिछड़ा हुआ है। आधुनिक ढंग के कारखानें अधिकतर सूती कपड़े के हैं। यह धंधा यांगटसी-कियांग के प्रदेश में केन्द्रित है। कियांगसू-शान्टुंग, हूपेह और होप्पे प्रान्तों में यह धंधा केन्द्रित है। शंघाई इसका प्रधान केन्द्र है।

चीन का वैदेशिक व्यापार अधिकतर जापान और संयुक्तराज्य अमेरिका से है। यद्यपि युद्ध के कारण जापान का व्यापार कम हो गया है।

मंचकाऊ

मंचकाऊ जापान का आश्रित स्वतंत्र राज्य है। मंचकाऊ (मंचूरिया) में अधिकतर खेती होती है। गेहूँ, सोयाबीन, मक्का और चुकंदर की खेती यहाँ अधिक होती है। मंचूरिया में कोयला और लोहा पाया जाता है। जापान के प्रभाव में होने पर जापानी पूँजीपति यहाँ के खनिज पदार्थों को खोदने का प्रयत्न कर रहे थे किन्तु अब वह जापान से अधिकार के निकल गया है।

मंगोलिया, पूर्वी तुर्किस्तान, तथा

मंगोलिया मुख्यतः मरुभूमि है, जनसंख्या बिखरी है, और मुख्य धंधा पशुओं को चराना है। पूर्वी तुर्किस्तान भी शुष्क प्रदेश है। यहाँ रूई चावल, जौ और फल की खेती है किन्तु मुख्यतः पशु पालन ही यहाँ का भी धंधा है।

तिब्बत तिब्बत एक पहाड़ी देश है आर्थिक दृष्टि से उसका कोई महत्व नहीं है। पशु-पालन तथा खेती यहाँ का मुख्य धंधा है।

चीन के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें

नाम	क्षेत्रफल वर्गमील	जनसंख्या	प्रतिवर्गमील जनसंख्या
चीन (मुख्य)	१,५३१,८००	४५१,७००,०००	२९६%
मंचकाऊ(मंचूरिया)	४४२,६२६	३३,६६७,६२०	७६.२%
मंगोलिया	१३६७,६५३	१,८००,०००	१.३%
सिनकियांग (चीनी तुर्किस्तान)	५५०,५७६	२,११६,५७६	४.५%
तिब्बत	७००.०००	३,०००,०००	४.२%

चीन की पैदावार चीन में चावल, गेहूँ, चाय, रेशम, कपास, तम्बाकू, मूंगफली, अंडी, लाख, कपूर, मोम, ज्वार, बाजरा, जौ, तिलहन, चमड़ा, खाल, ऊन, लकड़ी, मछली, गाय और बैल मुख्य पैदावार है।

चीन में १८ प्रतिशत केवल भूमि पर खेती होती है। इस कारण जनसंख्या अधिक होने के कारण चीनी किसान अत्यन्त गहरी खेती (Intensive Cultivation) करता है। उसके घर में तथा खेत पर जो भी कूड़ा करकट तथा घास-फूस होता है उसकी खाद बनाकर खेत में डालता है हड्डी की खाद का वहाँ बहुत अधिक उपयोग होता है इस कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है। चीनी किसान इतनी सावधानी से खेती करता है जिस प्रकार कोई बागीचा लगाता हो। उसके खेत में जाइये उसमें कई फसलें एक साथ भिन्न भिन्न कतारों में खड़ी पाइयेगा। जब कि एक फसल उग रही है तो दूसरी पकने वाली है। इस प्रकार वह अपना निर्वाह छोटे से खेत पर करता है।

चीन के खनिज पदार्थ यहाँ खनिज पदार्थ बहुत हैं। कोयला, लोहा, सोना, गंधक, चीनी मिट्टी, चूना, तांबा, चाँदी, टंगास्टन, मैगनीज, राँगा, सीसा, नमक तथा मिट्टी का तेल यहाँ के मुख्य खनिज पदार्थ हैं।

चीन के धन्धे सूत कातना, आटा पीसना, पिग आयरन तथा स्टील, रेशमी कपड़े, सूती कपड़े, ऊनी कपड़े, चीनी मिट्टी के बर्तन, मुख्य हैं। यहाँ आधुनिक ढंग के कारखाने तो कम हैं किन्तु गृह-उद्योग-धंधे महत्वपूर्ण हैं।

मंचूरिया (पैदावार) सोयाबीन, कपास, रेशम, चावल; चुकंदर; मक्का, बाजरा, गेहूँ, मछली, फर, गाय, बैल, पाइन स्प्रस, सनोवर, ओक (बलूत) तथा अन्य बहुमूल्य लकड़ी यहाँ की मुख्य पैदावार है।

खनिज पदार्थ लोहा, कोयला, सोना, सीसा, मैंगनीज़, तांबा, तथा ग्रैफाइट यहाँ के मुख्य खनिज पदार्थ हैं।

धंधे यहाँ रेशम, सूती ऊनी कपड़े का धंधा, केमिकल वर्क्स, सोयाबीन का तेल, चीनी मिट्टी के बर्तन, शीशा, कागज़, आटा, चुकंदर की चीनी का धंधा भी होता है जो कुछ थोड़े धंधे यहाँ बढ़े वे जापानी पूंजीपतियों के कारण बढ़ सके।

मंगोलिया यहाँ की मुख्य पैदावार गेहूँ, बाजरा, खाल, फर, ऊन, भेड़ बकरी और सुअर हैं। खनिज पदार्थों में केवल सोना निकलता है।

सिनकियांग यहाँ का मुख्य पैदावार, रेशम, कपास, खाल और ऊन है और सोना यहाँ का मुख्य खनिज पदार्थ है।

तिब्बत तिब्बत में जौ, दाल, अंगूर, नासपाती, भेड़, याक, भैंस, सुअर और ऊँट होता है। सोना और नमक तथा बौरैक्स यहाँ का मुख्य खनिज है।

समस्त चीन में २४८, २८०,०००,००० टन कोयला कूता जाता है जिसमें ३,११६,०००,००० टन मंचुकाउ में है और शेष चीन में है। इस देश में लगभग १,०००,०००,००० टन लोहा भरा पड़ा है। और ३,२७४०,०००,००० पीपे मिट्टी का तेल और पैट्रोलियम (१ पीपा ४२ गैलन) भरा है।

चीन प्राकृतिक देन का अत्यन्त धनी देश है किन्तु उसकी औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकी। औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से वह अत्यन्त पिछड़ा राष्ट्र है।

सायबेरिया सायबेरिया विशाल देश में जिसका क्षेत्रफल ५,२००,००० वर्ग मील है केवल १५,०००,००० मनुष्य निवास करते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सायबेरिया का एक चौथाई भाग १,३००.००० वर्ग मील ही बसने के योग्य है। पिछले दिनों जब सोवियत रूस ने अपने देश की औद्योगिक

योजनाओं के द्वारा आर्थिक उन्नति का प्रयत्न किया तब सायबेरिया के खनिज पदार्थों की ओर उसका ध्यान गया और यहाँ खनिज पदार्थों को निकालने का धंधा बढ़ा। इन पंच वर्षीय योजनाओं के फल स्वरूप सायबेरिया में कोयले का धंधा और कुजनेट्ज़ बेसिन (Kuznetzk) का लोहे और स्टील का धंधा बहुत उन्नति कर गया।

सायबेरिया का उत्तरी भाग टुंड्रा है जो अत्यन्त ठंडा है इस कारण यह खेती के अयोग्य है। टुंड्रा के दक्षिण में कानीफोरस वन हैं जिनको तेगा (Taiga) कहते हैं। पाइन, लार्च, सायबेरियन फर (सनोबर) स्प्रस तथा सिडार के मूल्यवान वन हैं। कानीफोरस वन का उत्तरी भाग खेती के अयोग्य है। दक्षिण में अवश्य खेती हो सकती है। यहाँ की मुख्य फसलें सन, ओट, राई, जौ, गेहूँ दक्षिण भाग में उत्पन्न होता है कुछ जिलों में दूध का धंधा भी बढ़ रहा है।

काली मिट्टी का प्रदेश सायबेरिया का खेती की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण प्रदेश है। यहाँ खेती की बहुत उन्नति हुई है। गेहूँ यहाँ बहुत पैदा होता है और उसके उपरान्त ओट और राई भी बहुत उत्पन्न होती है। सायबेरिया में जितनी भूमि पर खेती होती है उसकी ६० प्रतिशत भूमि पर येही तीन वस्तुएँ उत्पन्न की जाती हैं। सायबेरिया का दक्षिण-पश्चिम-भाग अत्यन्त सूखा है और दक्षिण पूर्वी भाग पहाड़ी है इस कारण यहाँ खेती की अधिक उन्नति नहीं हो सकती।

काली मिट्टी का प्रदेश (Black earth Belt)

सायबेरिया में वन बहुत विस्तृत और घनी हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ८०१,०००,००० से २७००,०००,००० एकड़ भूमि पर वन खड़े हैं। सायबेरिया के वन संयुक्तराज्य अमेरिका के बनों से अधिक विस्तृत और मूल्यवान हैं किन्तु अभी तक इन वनों का अधिक उपयोग नहीं हो सका है।

सायबेरिया के धंधे

इन वनों में लकड़ी के अतिरिक्त फर बहुत इकट्ठे किये जाते हैं और यहाँ से बहुत बड़ी राशि में फर बाहर भेजे जाते हैं।

सायबेरिया खनिज पदार्थों की दृष्टि से धनी है। यहाँ कोयला और लोहा बहुत पाया जाता है। कुज़नेटज़ बेसिन (Kuznetz Basin) इरक्यूटस्क बेसिन (Irkutusk Basin) किरगिज़ के सत्रप के मैदान (Kirgiz Steppe) उत्तरीय करातफ (सखालीन) में बहुत कोयले की खानें हैं। कुज़नेटज़ से ४० मील दूर दक्षिण में टेलबेस (Telbes) के

समीप बहुत घना लोहे का क्षेत्र है। सायबेरिया के अन्य महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों में सोना, सीसा, जिंक, चाँदी अल्टाई प्रदेश तथा ट्रांस बैकाल प्रदेश में बहुत पाया जाता है चाँदी और सीसा किरगिज स्त्रप के मैदानों में भी बहुत पाया जाता है।

उत्तरीय करात्फ (सखालीन) में पैट्रोलियम बहुत पाया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वहाँ १,२००,०००,००० से ३,६००,०००,००० पीपे पैट्रोल भरा पड़ा है। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना के अनुसार सोवियत रूस ने १९३७ तक २२,०००,००० टन पिग आयरन, २५०;०००,००० टन कोयला और १००,०००,०००,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न करने की योजना बनाई थी जो पूरी हो गई।

योरोप आस्ट्रेलिया को छोड़कर अन्य सब महाद्वीपों से छोटा है। परन्तु सबसे अधिक घना आबाद है। इसका मुख्य कारण यह है कि योरोप में उद्योग-धंधों की विशेष उन्नति होने के कारण वह अपेक्षाकृत धनी है। योरोप में उद्योग-धंधों की उन्नति के साथ ही गहरी खेती (Intensive agriculture) के कारण भी आबादी घनी है।

योरोप (Europe)

इस आर्थिक उन्नति का कारण योरोप की भौगोलिक स्थिति में छिपा है। योरोप का अधिकांश भाग शीतोष्ण कटिबन्ध में है। इस कारण जलवायु परिश्रम करने, खेती-बारी तथा उद्योग-धंधों के अनुकूल है। ठंडा जलवायु होने के कारण श्रमी कुशल और परिश्रमी हैं। वास्तव में यदि देखा जाये तो योरोप एशिया महाद्वीप का पश्चिमीय प्रायद्वीप है। इस कारण रूस को छोड़कर कोई ऐसा देश नहीं है जो समुद्र से दूर हो। समुद्र का तट अधिकतर टूटा फूटा है, इस कारण जलवायु का समुद्र पर और भी अधिक प्रभाव पड़ता है। योरोप में जलवृष्टि साधारणतया प्रत्येक भाग में होती है। केवल रूस में जलवृष्टि कम होती है। इसका कारण यह है कि रूस समुद्र से बहुत दूर पड़ता है। जल पैदावार के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, इस कारण योरोप के प्रत्येक भाग में पैदावार हो सकती है। एशिया की भाँति अरब, गोबी तथा राजपूताना के रेगिस्तान यहाँ नहीं हैं। योरोप के दक्षिण प्रायद्वीपों का जलवायु ऊष्ण है क्योंकि भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) इनके दक्षिण में है और उत्तर में आल्पस पर्वत श्रेणियाँ हैं जो ठंडी हवाओं को दक्षिण की ओर आने से रोकती हैं।

योरोप में ताप प्रदर्शक रेखायें (Isotherms) उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर दौड़ती हैं। दक्षिण प्रायद्वीपों, फ्रांस, बेलजियम, इङ्गलैंड

तथा हालैंड को छोड़कर अन्य सब देशों में जाड़े के महीनों में तापक्रम शून्य तक पहुँच जाता है।

येरोप में गर्मी और वर्षा पैदावार के लिए यथेष्ट होने के कारण लगभग सब भूमि जोती जा सकती है। केवल रूस के दक्षिण-पूर्वी भाग में तथा स्पेन के मध्य भाग में वर्षा न होने के कारण खेती नहीं हो सकती। उत्तर और पश्चिम में पतझड़ के महीनों में अधिक वर्षा होती है। गर्मियों में पूर्व के देशों में वर्षा अधिक होती है। भूमध्यसागर के प्रायद्वीपों में वर्षा जाड़ों में होती है, गर्मियों में वर्षा नहीं होती।

येरोप को भौगोलिक आधार के अनुसार चार भागों में बाँटा जा सकता है—(१) पश्चिमीय येरोप, (२) भूमध्यसागर का भाग, (३) मध्य येरोप तथा (४) पूर्वी योरोप।

पश्चिमीय येरोप आल्पस पर्वत के उत्तर पश्चिमी भाग को कहते हैं। इस भाग पर समुद्र का बहुत प्रभाव है। इस भाग में जाड़े के दिनों में (नार्वे को छोड़कर) अत्यधिक शीत नहीं पड़ता। और गर्मियों में कम गर्मी होती है। वर्षा यहाँ खूब होती है। इस भाग में खेती, फलों की पैदावार, तथा दूध-मक्खन का धंधा खूब होता है किन्तु यह भाग योरोप का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक प्रदेश है। इसकी औद्योगिक उन्नति के मुख्य दो कारण हैं (१)— कोयला और लोहे की बहुतायत (२) तथा समुद्र के समीप होने से व्यापारिक मार्ग की सुविधा। तट टूटा होने के कारण यहाँ बहुत अच्छे बन्दरगाह हैं। इस भाग के समुद्रतट पर मछली पकड़ने का धंधा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मध्य येरोप में जाड़ों में भयंकर शीत होता है। वर्षा वर्ष भर होती है। यद्यपि पश्चिमी येरोप से यहाँ वर्षा कम होती है परन्तु फिर भी खेती के लिए काफी होती है। पश्चिमी भाग में गर्मी अधिक होती है। इस कारण यह भाग खेती की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि कोयला और लोहा इस प्रदेश में अधिक नहीं पाया जाता परन्तु थोड़ा बहुत मिलता है। इस कारण उद्योग-धंधों की भी उन्नति (विशेष कर जर्मनी में) हो सकी है। हाँ समुद्र तक माल ले जाने का सुविधाजनक मार्ग न होने के कारण धंधे केवल रूर (Ruhr) प्रदेश में ही केन्द्रित हैं। राइन नदी के कारण समुद्र तक माल ले जाने की जो सुविधा है उसके कारण इस भाग में धंधे केन्द्रित हो गए हैं।

भूमध्यसागर के भाग में वर्षा कम होती है और जो कुछ भी वर्षा होती है वह केवल जाड़ों में। इस कारण खेती के लिए यहाँ सिंचाईकी आवश्यकता

पड़ती है । अधिकांश प्रदेश पहाड़ी है । और खनिज पदार्थ यहाँ नहीं पाये जाते । इस कारण औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से यह भाग अधिक उन्नति नहीं कर सका । हाँ जल विद्युत् उत्पन्न करने की इस भाग में अधिक सुविधा है । इस कारण कुछ उद्योग-धंधे यहाँ पनप गए हैं (विशेषकर इटली में) अनाज और फलों की खेती ही यहाँ का मुख्य धंधा है ।

पूर्वी भाग में बहुत उपजाऊ प्रदेश हैं जिनमें गेहूँ तथा अन्य अनाज बहुतायत से उत्पन्न होते हैं । उत्तर में बहुमूल्य वन हैं जिनसे कीमती लकड़ी मिलती है । यद्यपि तेल के अतिरिक्त अन्य खनिज पदार्थ इस भाग में नहीं है फिर भी कहीं कहीं उद्योग-धंधों की उन्नति हुई है ।

वास्तव में योरोप का व्यापारिक महत्त्व बहुत अधिक है । औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त योरोप ने बहुत तेज़ी से औद्योगिक उन्नति की । इन कारखानों की उत्पत्ति इतनी अधिक बढ़ी कि उसकी खपत के लिए उपनिवेश और आधीन देशों की आवश्यकता पड़ी । इसी प्रकार साम्राज्यवाद (Imperialism) का प्रादुर्भाव हुआ । उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक योरोप का हिस्सा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत अधिक था किन्तु अब क्रमशः उसका महत्त्व धीरे धीरे कम हो रहा है, क्योंकि योरोप के बाहर भी देश औद्योगिक उन्नति कर रहे हैं ।

ब्रिटिश द्वीप समूह

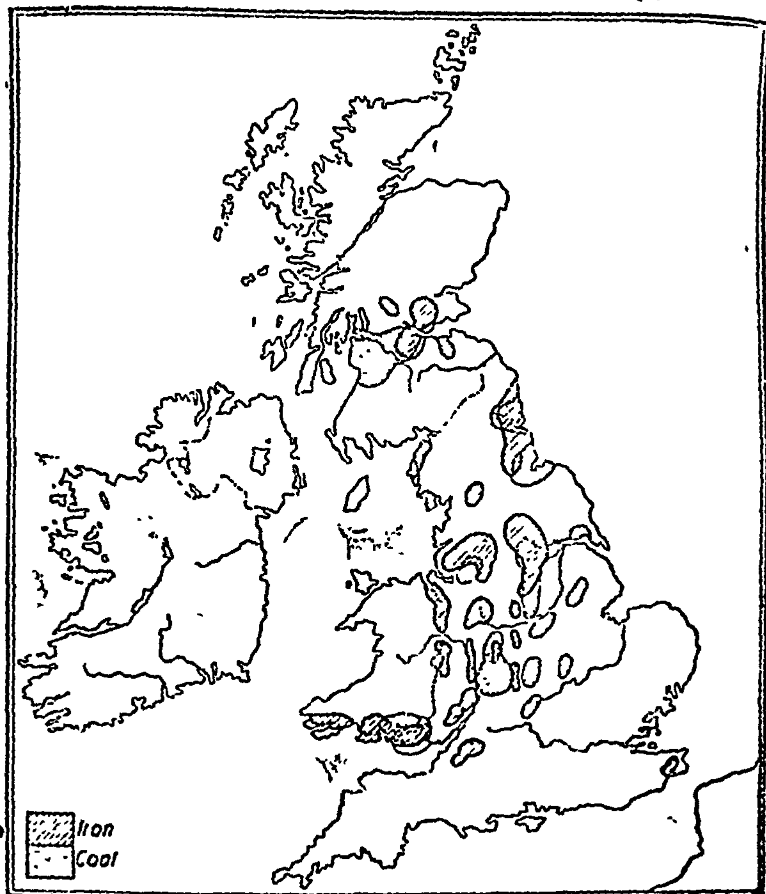
ब्रिटिश द्वीप समूह वास्तव में योरोप की पश्चिमीय सीमा है । इस छोटे से देश के धरातल की बनावट इतनी भिन्न है कि उसको देखकर आश्चर्य होता है । इस भिन्नता का कारण यह है कि यह द्वीप समूह किसी समय योरोप से जुड़ा होने के कारण भिन्न भिन्न प्रकार की धरातलों का सम्मिलित प्रदेश था । यही कारण है कि नार्वे की चट्टानें स्काटलैंड में तथा बैलजियम की चट्टानें डेवन (Devon) और कार्नवाल (Cornwall) में दिखलाई देती है । स्काटलैंड, इङ्गलैंड तथा वेल्स के अतिरिक्त लगभग ५००० छोटे छोटे द्वीप भी इस समूह में सम्मिलित हैं ।

ब्रिटेन के औद्योगिक और धनी राष्ट्र होने के कारण

१—ब्रिटेन का जलवायु न तो अत्याधिक ठंडा है और न यहाँ अधिक गरमी ही पड़ती है । अतएव खेती में कोई रुकावट नहीं होती और इतना बर्फ ही पड़ता है कि गमनागमन के साधनों में रुकावट हो । मनुष्यों में खूब स्फूर्ति रहती है और अधिक ठंड या अधिक गरमी न होने के कारण खेतों और कारखानों में खूब काम होता है ।

अंग्रेज मज़दूर जो इतना कुशल मज़दूर है वह बहुत कुछ यहाँ के जलवायु के कारण ही है।

२—ब्रिटेन का समुद्र तट इतना कटा पिटा है कि ब्रिटेन का कोई भी स्थान समुद्र से ७० मील से अधिक नहीं है समुद्र के समीप होने से औद्योगिक केन्द्रों के तैयार माल को विदेशों में आसानी से भेजा जा सकता है।



३—ब्रिटेन की स्थिति आदर्श है जिससे कि ब्रिटेन के व्यापार और धंधों की बहुत उन्नति हो सकी है। ब्रिटेन योरोप के महाद्वीप से सटा हुआ है। इंग्लिश चैनल उसे योरोप से पृथक् करती है इस कारण व्यापार के लिए उसे बहुत सुविधा है साथ ही समुद्र द्वारा पृथक होने के कारण उस पर किसी देश के आक्रमण का भय नहीं है। हाँ इस युद्ध में उस पर हवाई हमले अवश्य हुए हैं और उससे ब्रिटेन की क्षति भी बहुत हुई किन्तु फिर भी आक्रमणों से बचे

रहने के कारण उसकी औद्योगिक उन्नति बिना किसी रुकावट के हो सकी है। यही नहीं ब्रिटेन उन्नत संसार के मध्य में स्थित है इस कारण प्रत्येक उन्नत राष्ट्र से वह पास है। योरोप के प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र जरमनी, फ्रांस और बैलजियम उसके समीप ही दक्षिण पूर्व में है, संयुक्तराज्य अमेरिका अटलांटिक महासागर द्वारा सरलता से पहुँचा जा सकता है। यही नहीं ब्रिटेन योरोप के महाद्वीप के छिछले तटीय समुद्र में स्थित है इस कारण ज्वार ऊँचा उठता है जिससे कि बंदरगाह में जहाज अन्दर तक पहुँच सकते हैं।

४—ब्रिटेन में कोयला और लोहा यथेष्ट है साथ ही कोयले और लोहे की खानें पास पास हैं। इससे उद्योग धंधों की उन्नति में बड़ी सहायता मिली है।

५—यद्यपि ब्रिटेन की नदियाँ जलमार्ग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं किन्तु उनके मुहानों में जहाज़ भली भाँति आसकते हैं इस कारण वे महत्वपूर्ण हैं।

६—ब्रिटेन की समृद्धि मानवीय और आर्थिक कारणों से भी हुई हैं। यहाँ के श्रमजीवी बहुत निपुण हैं। यहाँ पूंजी की बहुतायत है और गमनागमन के साधन बहुत उन्नत हैं। इतना छोटा देश है किन्तु उसमें २५,००० मील रेलवे लाइन है, यहाँ सड़कें भी बहुत बढ़िया हैं जिसके कारण मोटर ट्रैफिक बहुत होती है। और औद्योगिक केन्द्रों में देश की अधिकांश जन.संख्या निवास करती है।

७—ब्रिटिश साम्राज्य संसार में सबसे बड़ा साम्राज्य है इस कारण ब्रिटेन के तैयार माल के लिए सहल में ही बाज़ार मिल जाता है।

८—ब्रिटेन का व्यापारिक नाविक शक्ति सबसे अधिक है ब्रिटेन के पास जितने अधिक व्यापारिक जहाज़ हैं उतने किसी भी देश के पास नहीं हैं इस कारण ब्रिटेन का विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा चढ़ा है।

९—आरम्भ में औद्योगिक क्रान्ति ब्रिटेन में ही हुई। यंत्रों का आविष्कार स्टीम के द्वारा उत्पादन कार्य तथा रेलों का प्रादुर्भाव सबसे पहले ब्रिटेन में ही हुआ था इस कारण ब्रिटेन आधुनिक ढंग के कारखानों को खड़ा करने का अवसर अन्य देशों की अपेक्षा सौ वर्ष पहले मिल गया। अस्तु वह पृथ्वी का औद्योगिक नेता बन गया जिसका प्रभाव अभी तक रहा।

किन्तु अब ब्रिटेन का उतना ऊँचा स्थान नहीं रह सकेगा। कारण यह है कि आबादी बहुत घनी होने कारण यहाँ भूमि का मूल्य बहुत बढ़ गया है, मज़दूरी बहुत ऊँची है, तथा ब्रिटेन जल शक्ति में अधिक धनी नहीं है। भविष्य में जल विद्युत् ही अधिकाधिक उपयोग में आवेगी। साथ ही अन्य

देशों ने बाहर से आने वाले माल पर अत्यधिक चुंगी बिठा दी है इस कारण ब्रिटेन के व्यापार को रुकावट होने लगी है। यही नहीं पिछले युद्ध (१९३९-४५) में बम्ब वर्षा के कारण ब्रिटेन के धंधों को हानि पहुँची है। ब्रिटेन की बहुत सी पूंजी नष्ट हो गई है वह अमेरिका का ऋणी हो गया है और अमेरिका एक प्रबल प्रतिद्वन्दी के रूप में सामने आया है। भारत का स्वतंत्र हो जाना भी उसके व्यापारिक पद को नीचा ही करेगा।

जन-संख्या

ब्रिटेन संसार का एक बहुत ही घना आबाद देश है। इङ्गलैंड, स्काटलैंड और वेल्स की जनसंख्या १९३१ में ४४,७९०,४८५ थी। यहाँ की जनसंख्या का प्रति वर्ग मील ६८५ औसत है। बैलजियम और जावा को छोड़कर संसार में इतना घना आबाद कोई राष्ट्र नहीं है। उत्तर इङ्गलैंड तथा दक्षिण वेल्स बहुत घने आबाद हैं क्योंकि वे औद्योगिक प्रदेश हैं। अभी कुछ वर्षों से दक्षिण पूर्व में विशेषकर लंदन के समीपवर्ती प्रदेश में आबादी बहुत घनी हो गई है। उत्तर के औद्योगिक प्रदेश में १००० मनुष्य प्रति वर्ग मील पीछे रहते हैं। खेती की दृष्टि से जो प्रदेश महत्वपूर्ण हैं वहाँ ५०० मनुष्य प्रति वर्ग मील आबादी है किन्तु पहाड़ी प्रदेश में आबादी कम है।

खनिज

ब्रिटेन में खनिज पदार्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ब्रिटेन के मुख्य खनिज पदार्थ नीचे लिखे हैं:—

(हजार टनों में)

कोयला	२२८,०००
लोहा	१४,२००
सीसा	३८
जिंक	१९
टिन	३
जिपसम (Gypsum)	१,०९२
रेत का पत्थर (Sand Stone)	४,३४६
चूने का पत्थर (Lime Stone)	१५,९२६
खड़िया	१०,१६७

ब्रिटेन में लोहा और कोयला समीप ही पाया जाता है। ब्रिटेन में कोयला बहुत राशि में पाया जाता है। वार्षिक उत्पत्ति में व जहाँ तक कोयले का प्रश्न है ब्रिटेन का संसार में तीसरा स्थान है। देश की लगभग चालीस लाख जनसंख्या इस पर निर्भर है। अधिकांश ब्रिटेन की कोयले की खानें

समुद्र के पास हैं इस कारण उनका महत्त्व अधिक है। ब्रिटेन में कोयले का तटीय व्यापार बहुत होता है और वह अच्छी जाति का है। ब्रिटेन के विदेशी व्यापार में कोयले का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है और कुल निर्यात (Export) का ५ प्रतिशत है।

ब्रिटेन की कोयले की खानें

१—पैनाइन पर्वत माला

(१) नार्थम्बरलैंड और डरहम, (२) यार्क डर्बी और नार्टिंगहम (३) दक्षिणी लंकाशायर, (४) उत्तरीय स्टैफर्डशायर

२—मिडलैंड का मैदान

(५) वारविक, (६) दक्षिण स्टैफर्डशायर, (७) लीसैस्टरशायर

३—वेल्स के पहाड़

(८) उत्तरी वेल्स, दक्षिणी वेल्स

(९) येअरशायर, क्लाइड

(१०) ब्रिस्टल, ऐडिनबरा, और आयरलैंड में किलकैनी (Kilkenny) छोटे खनिज केन्द्र हैं।

ब्रिटेन की कोयले की खानों में स्काटलैंड की खानें १४ प्रतिशत, यार्क नार्टिंगहम और डर्बी की खानें ३१ प्रतिशत, लंकाशायर की कोयले की खानें ६ प्रतिशत, मिडलैंड की ११ प्रतिशत और वेल्स की १६ प्रतिशत कोयला उत्पन्न करती हैं।

दक्षिण वेल्स की कोयले की खानें बहुत महत्वपूर्ण हैं। १९२० तक यह प्रदेश संसार को सबसे अधिक कोयला विदेशों को भेजता था। किन्तु पिछले वर्षों वेल्स से कोयले का निर्यात (Export) कम हो गया है क्योंकि ब्रिटेन का कोयला मंहगा पड़ता है और संयुक्तराज्य अमेरिका का कोयला संसार के बाज़ार में सस्ता बिकता है। फ्रांस स्वीडन इटली जो ब्रिटेन का कोयला मँगाते थे वहाँ जलविद्युत की उन्नति होने के कारण कोयले की माँग कम हो गई। यही नहीं आस्ट्रेलिया और अफ्रीका जो पहले ब्रिटेन से बहुत कोयला मँगाते थे वहाँ कोयले की खानें निकल आई हैं इस कारण उन्होंने कोयला मँगाना प्रायः बंद कर दिया है।

यार्क डरबी और नार्टिंगहम की कोयले की खानें लोहे की खानों के पास हैं साथ ही समुद्र के समीप होने से यहाँ से कोयला बाहर जाने में सुविधा है। स्कैन्डिनेविया, डैनमार्क और बाल्टिक प्रदेश को कोयला इन्हीं खानों से जाता है। शेफील्ड का स्टील का धंधा और ऊन का धंधा इन्हीं खानों पर निर्भर है

लंकाशायर की कोयले की खानों पर सूती वस्त्र का धंधा केन्द्रित है।

मिडलैंड की कोयले की खानों की उन्नति का कारण वहाँ का लोहे और स्टील का धंधा है। १६२६ के उपरान्त लोहे के धंधे की अवनति होने के कारण इन खानों की स्थिति भी खराब हो गई है।

स्काटलैंड की येअरशायर की खानों का कोयला मुख्यतः विदेशों को जाता है। क्लाइड के मुहाने के समीप जो जहाज़ बनाने का धँधा है वह लैनार्क-शायर की कोयले की खानों तथा लोहे की खानों पर निर्भर है।

ब्रिटेन में लोहे की खानें नीचे लिखे स्थानों पर स्थित हैं:—उत्तरी लैनार्कशायर, क्लाइड बेसिन (ClydeBasin) उत्तरी स्टैफ़ोर्डशायर और दक्षिण वेल्स।

लोहे के खानें

दक्षिण वेल्स की लोहे की खानें प्रायः समाप्त हो आई हैं और यहाँ का लोहे का धंधा स्पेन और फ्रांस के लोहे पर निर्भर है। ब्रिटेन का सबसे महत्व-पूर्ण लौह प्रदेश दक्षिण पूर्व इङ्गलैंड में है जहाँ से ब्रिटेन का ८५ प्रतिशत लोहा निकलता है। मुख्य लोहे के खनिज केन्द्र नीचे लिखे हैं:—(१) क्लीवलैंड की पहाड़ियाँ (२) लिंकलनशायर (३) नार्थैम्पटन शायर (४) उत्तरी आक्सफोर्ड शायर के बैनबरी स्थान में। देश की खानों से निकलने वाला लोहा यथेष्ट नहीं होता इस कारण लोहा बाहर से मँगाना पड़ता है।

लोहा और कोयले को छोड़ कर अन्य धातुओं की दृष्टि से ब्रिटेन धनी नहीं है परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर वे धातुयें मिल जाने की सुविधा है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में पैट्रोलियम, मैंगनीज़, टंगस्टन, ताँबा, एलूमीनियम निकल और क्रोम बिलकुल नहीं होता। इन धातुओं को बाहर से मंगाना पड़ता है।

ब्रिटेन मुख्यत: औद्योगिक देश है वहाँ की बहुत थोड़ी जनसंख्या खेती पर निर्भर है। स्काटलैंड की ३ प्रतिशत और इङ्गलैंड की २ प्रतिशत जनसंख्या खेती में लगी हुई है आयरलैंड की ५३ प्रतिशत जनसंख्या खेती पर निर्भर है। खेती के योग्य भूमि की कमी होने के कारण वहाँ बहुत गहरी खेती होती है। पिछले युद्ध में इस बात का प्रयत्न किया गया कि खेती की पैदावार को बढ़ाया जावे। इस आन्दोलन के फल स्वरूप लगभग ७० लाख एकड़ नई भूमि पर खेती की जाने लगी है। इसी बीच में खेती की पैदावार में भी कल्पनातीत बृद्धि हुई है।

ब्रिटेन में खेती का धंधा

गेहूँ में १०१ प्रतिशत, जौ ११५ प्रतिशत, ओट ५८ प्रतिशत, आलू

१•२ प्रतिशत, चुकंदर ३७ प्रतिशत, सब्ज़ी ३४ प्रतिशत, फल ५५ प्रतिशत की वृद्धि युद्ध के ६ वर्षों में हुई है।

ब्रिटेन में पशुपालन भी एक महत्वपूर्ण धंधा है। पशु दूध, मांस और खाल के लिए पाले जाते हैं। आयरलैंड मक्खन के धँधे के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

एक समय था जब कि ब्रिटेन में भेड़ पालने का धंधा बहुत उन्नत दशा में था। ब्रिटेन की आर्थिक समृद्धि भेड़ पर ही निर्भर थी। यद्यपि ऊन का ब्रिटेन के आर्थिक जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं है किन्तु फिर भी भेड़ पालने का धंधा महत्वपूर्ण है वहाँ दो करोड़ ६० लाख भेड़ें हैं। मुख्य भेड़ पालने वाले प्रदेश नीचे लिखे हैं :—(१) पैनाइन पर्वतमाला (२) वैल्श पहाड़ी प्रदेश, (३) स्काटलैंड का पर्वतीय प्रदेश, (४) आइरलैंड।

मछली का धंधा

मछली का धंधा ब्रिटेन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण धंधा है। देश की लगभग २० प्रतिशत जनसंख्या मछली के धंधे पर निर्भर है। पूर्वीय तट पर यह धंधा मुख्यतः केन्द्रित है। उत्तरी-सागर में मुख्यतः हैडाक, हैरिंग, काड, और मैकरेल अधिकतर मिलती हैं। विक (Wick) ऐबरडीन (Aberdeen) पीटरहैड, स्टोन-हेविन (Stone Heaven) हल (Hull) ग्रिम्सबी (Grmisby) और यारमाऊथ (Yarmouth) मुख्य बंदरगाह हैं जहाँ मछली के धँधे के केन्द्र हैं। इंग्लिश चैनल में पिलचर्ड मिलती है।

यद्यपि मछली का धंधा ब्रिटेन का बहुत उन्नत धंधा है किन्तु फिर भी ब्रिटेन को संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा और नार्वे से मछली मँगाना पड़ती है।

ब्रिटेन की नदियों में सालमन और ट्राऊट (Trout) जाति की मछलियाँ पाई जाती हैं।

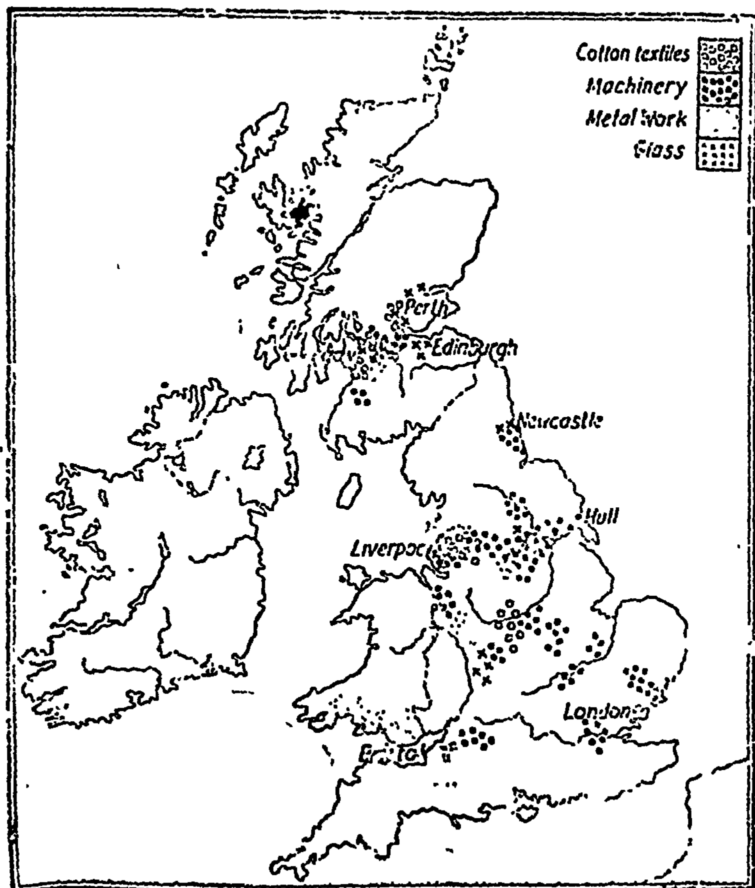
ब्रिटेन के धंधे

ब्रिटेन संसार का मुख्य औद्योगिक राष्ट्र है। यहाँ के मुख्य धंधे लोहा और स्टील, सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र तथा रसायनिक धंधे हैं। अधिकतर ब्रिटेन के धंधे कोयले की खानों पर केन्द्रित हैं। पिछले कुछ दिनों से वहाँ विद्युत् का भी उपयोग होने लगा है।

सूती वस्त्र का धंधा

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटेन में जो सूती वस्त्र व्यवसाय उन्नति कर गया उसके बहुत से कारण थे (१) ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति बढ़ी चढ़ी होने के कारण तथा विशाल साम्राज्य होने के कारण उसे कच्चा माल (कपास)

मिलने की सुविधा की और साम्राज्यांतर्गत देशों में उसका माल बिकता था। (२) जिन देशों में कपास उत्पन्न होती थी वे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े थे। (३) ब्रिटेन का जलवायु सूती वस्त्र व्यवसाय के लिए उपयुक्त था यहाँ की हवा में स्वाभाविक नमी रहती है। (४) ब्रिटेन में कोयले की अधिकता तथा रंगाई और धुलाई के लिए उपयुक्त मीठा जल भी अधिक राशि में



उपलब्ध है। (५) उस समय ब्रिटेन में पवरलूम तथा सूत कातने की मशीनों का आविष्कार हुआ था इस कारण वहाँ यंत्र इत्यादि के मिलने की सुविधा थी। (६) भारत तथा अन्य पुराने सूती वस्त्र उत्पन्न करने वाले देश राजनैतिक पराधीनता में पड़े थे यही नहीं योरोप में राजनैतिक अशान्ति थी।

ब्रिटेन में यह धंधा मुख्यतः लंकाशायर में केन्द्रित है। लंकाशायर में इस धंधे के केन्द्रित होने के भौगोलिक कारण है।

सूती वस्त्र व्यवसाय के लिए नम वायु की आवश्यकता होती है नहीं

तो तार टूट जाता है। लंकाशायर को पश्चिमी हवाओं से यथेष्ट नमी मिलती है। इसके अतिरिक्त लंकाशायर संयुक्तराज्य अमेरिका के बंदरगाहों के सामने पड़ता है इस कारण कपास के मँगाने में सुविधा है। इसके अतिरिक्त कोयला, चूने का पत्थर और पानी यथेष्ट है। लिवरपूल का बंदरगाह समीप ही है। पीढ़ियों का अनुभव, मज़दूरों की कुशलता, टैक्सटाइल शीनों का आविष्कार तथा मैंचेस्टशिप कैनाल के कारण भी यह धंधे का केन्द्र बन गया।

ब्रिटेन कपास उत्पन्न नहीं करता। वहाँ कपास संयुक्तराज्य अमेरिका, मिश्र, भारत, पीरु, सुदान, और ब्राज़ील से आती है।

लंकाशायर में भिन्न भिन्न केन्द्रों में धंधे का रूप भिन्न है। वहाँ येप्रत्क केन्द्र किसी वस्त्र विशेष को तैयार करता है। उदाहरण के लिये उत्तर के केन्द्र प्रैस्टन (Preston) ब्लैकबर्न (Black Burn) और बर्नले (Burnley) में सूती वस्त्र बुनने का धंधा केन्द्रित्त है और दक्षिणी केन्द्रों अर्थात् ओल्डहम (Oldham) बोल्टन (Bolton) और बरी (Bury) में सूत कातने का धंधा केन्द्रित है। यही नहीं वहाँ भिन्न भिन्न केन्द्रों में केवल विशेष कपड़े ही तैयार किये जाते हैं। कोई कोई केन्द्र किसी एक देश के लिए ही कपड़ा तैयार करता है। एक कारखाना केवल शर्टिंग ही तैयार करता है तो दूसरा केवल कोटिंग। इस प्रकार धंधा वहाँ वैज्ञानिक ढंग से संगठित है।

लंकाशायर के अतिरिक्त स्काटलैंड के ग्लासगो (Glasgow) और पैस्ले (Paisley) में भी यह धंधा केन्द्रित है। पैस्ले में डोरा बहुत तैयार किया जाता है और ग्लासगो के वे सभी सुविधायें हैं जो लंकाशायर को उपलब्ध हैं।

ब्रिटेन के सूती वस्त्र के मुख्य ग्राहक निम्नलिखित हैं:—भारत, चीन, मिश्र, जरमनी, हालैंड, टर्की, पश्चिमीय द्वीपसमूह दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका, मध्य अफ्रीका. आस्ट्रेलिया, जापान, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, स्पेन, इटली, फ़ांस और स्विटज़रलैंड। ब्रिटेन भी जापान, फ़ांस, और जरमनी से सूती वस्तु मंगाता है।

प्रथम महायुद्ध (१९१४) तक ब्रिटेन का संसार के वस्त्र बाज़ार पर एकछत्र राज्य था किन्तु इसके उपरान्त संयुक्तराज्य अमेरिका और मुख्यत: जापान ने उसके बहुत से पूर्वी बाजार उससे छीन लिए। लंकाशायर के धंधे के पतन का केवल यही कारण नहीं है एक दूसरा भी कारण है। वह यह है कि बहुत पूर्वी देश जो पहले ब्रिटेन से कपड़ा मँगाते थे अब स्वयं उत्पन्न

करने लगे हैं और बहुत से देशों में बाहर से आने वाले कपड़े पर भारी चुंगी बिठा दी गई है। इसके विपरीत जापान को बहुत सी सुविधायें हैं जैसे चीन का विस्तृत बाज़ार समीप होना, वहाँ मज़दूर बहुत सस्ते हैं और राज्य धंधे को प्रोत्साहन देता है।

१९१३ में ब्रिटेन ने कुल ७,०००,०००,००० गज़ कपड़ा बाहर भेजा था जिसमें से ३,०००,०००,००० गज़ भारत में आया किन्तु १९३७ में ब्रिटेन ने कुल १,९००,०००,००० गज़ कपड़ा बाहर भेजा और उसमें से कुल ४००,०००,००० गज़ कपड़ा भारत में आया। १९१३ में ब्रिटेन ने २,१००,०००,००० पौंड कपास बाहर से मंगवाई किन्तु १९३७ में केवल १२००,०००,००० पौंड कपास ही बाहर से आई।

ऊपर दिये हुए आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेन का धंधा अवनति की ओर है। यद्यपि वहाँ धंधे को पुन: संगठित करने के प्रयत्न हो रहे हैं किन्तु फिर भी वह पूर्व दशा में कभी नहीं पहुँच सकता।

लोहे और स्टील की उत्पत्ति की दृष्टि से संसार में ब्रिटेन का चौथा स्थान है। कोयला और लोहा समीप ही मिलने के कारण ही यह धंधा इतना उन्नत हो गया है। ब्रिटेन में मुख्य पाँच स्टील क्षेत्र हैं।

लोहे और स्टील का धंधा

(१) काला प्रदेश (Black country

यह ब्रिटेन का मुख्य लोहे और स्टील का प्रदेश है। लोहा, कोयला, और लाइमस्टोन समीप ही मिलने के कारण यह प्रदेश महत्वपूर्ण बन गया है। बरमिंगहम (Birmingham) कवेन्टरी (Coventry) डडले और रैडिच (Redditch) इस धंधे के मुख्य केन्द्र हैं। बरमिंगहम में मुख्यत: मोटरकार, साइकिल, रेलवे का सामान, मैशीन, टूल, बिजली के अपरेटस बनाये जाते हैं, कावेंट्री में मोटरकार और सायकिल बनती हैं। रैडिच में सुई का धंधा केन्द्रित है और डडले में ज़ंजीरों का धंधा केन्द्रित है।

(२) शैफील्ड (Sheffield)

आरम्भ में शेफील्ड में लोहे की खाने थीं और जंगल की लकड़ी तथा पानी था किन्तु अब यहाँ लोहा समाप्त हो चुका है। लिकलनशायर तथा स्वीडन से अधिकांश लोहा आता है। यहाँ कैंची, छुरी, चाकू, ब्लेड इत्यादि बहुत तैयार होते हैं। इसके अतिरिक्त मैंगनीज स्टील, क्रोमियमस्टील, और टंग्स्टन स्टील बहुत अधिक तैयार होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में राथरहैम (Ratherham) और चैस्टरफील्ड (Chesterfield) मुख्य केन्द्र हैं।

टाइन (Tyne) वियर (Wear) और टीस (Tees) प्रदेश में लोहा गलाया जाता है, हार्टिलपूल (Hartlepool) में जहाज़ों का धंधा केन्द्रित है, डार्लिंगटन में रेलवे ऐंजिन बनते हैं और मिडिल्सवरो (Middlesborough) एक प्रमुख ऐंजिनियरिंग केन्द्र है। टाइन प्रदेश में न्यूकैसिल (Newcastle) है जहाँ आधुनिक ढंग के जहाज़ बनते हैं। वियर में संडरलैण्ड (Sunderland) मुख्य केन्द्र है जहाँ माल ढोने की नावें तैयार होती हैं।

(३) उत्तर पूर्वीय तट

(४) फरनेस प्रदेश (Furness District)

यह उत्तर पश्चिमी तटीय प्रदेश स्टील और पिग आयरन उत्पन्न करता है। बरो (Barrow) में जहाज़ बनाने का धंधा है।

(५) दक्षिण वेल्स (South Wales)

दक्षिण वेल्ट में टिनप्लेट तैयार होते हैं। लोह। स्पेन और अलजीरिया से आता है और टिन मलाया, बोलीविया, तथा नाइगेरिया से आती है।

(६) स्काटलैंड की मध्य घाटी (Central Valley of Scotland)

इसका महत्व इंजिनियरिंग और जहाज बनाने के धंधे के कारण है ग्लासगो, ग्रीनाक, और डम्बर्टन इसके केन्द्र हैं।

जहाज बनाने का धंधा (Ship Building)

यह ब्रिटेन का एक मुख्य धंधा है इसकी उन्नति के मुख्य कारण नीचे लिखे हैं :—

१. गहरे नदियों के मुहाने,
२. कोयले और लोहे के धंधों का समीप ही केन्द्रित होना,
३. जहाजों की बढ़ती हुई माँग।

क्लाइड नदी पर स्थित ग्लासगो संसार में सामुद्रिक जहाज बनाने का सब से बड़ा केन्द्र है। टाइन, वियर, और टीस नदियों के मुहानों पर भी यह धंधा स्थापित है। बैल्फास्ट, बरों और ब्रिकेनहैड इस धंधे के अन्य मुख्य केन्द्र हैं।

ऊन का धंधा (Woollen Industry)

यह धंधा ब्रिटेन का अत्यन्त महत्वपूर्ण धंधा है किन्तु अब यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। यह धंधा मुख्यतः यार्कशायर में केन्द्रित है। यार्कशायर का जलवायु धंधे के लिए उपयुक्त है, पैनाइन पर्वतमाला से जो जल मिलता है वह ऊन साफ करने और रंगने के लिए बहुत अच्छा है। पैनाइन पर्वतमाला पर भेड़ चराई जाती हैं इस

कारण वहाँ ऊन भी उपलब्ध है। वहाँ जल शक्ति की भी सुविधा थी, किन्तु अब तो कोयला ही उपयोग में लाया जाता है। यह प्रदेश समुद्रतट के समीप है। इन्हीं कारणों से ऊनी धंधा यहाँ केन्द्रित हो गया।

वेस्ट राइडिंग आव यार्कशायर (West Riding of Yorkshire) जहाँ कोयला बहुतायत से मिलता है। इस धंधे का केन्द्र है। लीड्स, हडर्सफील्ड, हैलीफैक्स और ब्रैडफोर्ड मुख्य केन्द्र हैं। स्थानीय ऊन यथेष्ट नहीं होता इस कारण आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड, भारत, अरजैनटाइन और यूरुग्वे से ऊन मंगाया जाता है। ब्रिटेन का बना हुआ ऊनी कपड़ा मुख्यतः जरमनी, जापान, स्वीडन, नारवे, रूस, डैनमार्क, इटली, स्पेन, और संयुक्तराज्य अमेरिका को जाता है।

इनके अतिरिक्त रसायनिक धंधे, शीशे का सामान, नकली रेशम, जूट, चमड़ा का धंधा भी ब्रिटेन में महत्वपूर्ण है। रसायनिक धंधा तथा शीशे का धंधा लैनार्कशायर और चैशायर में केन्द्रित है। मिडलैण्ड के नगर चमड़े के धंधे के लिए महत्वपूर्ण हैं। जूट का धंधा डंडी (Dundee) में केन्द्रित था।

ब्रिटेन संसार में वैदेशिक व्यापार की दृष्टि से संयुक्तराज्य अमेरिका के उपरान्त दूसरे स्थान पर है। ब्रिटेन से बाहर जाने वाले माल का ८० प्रतिशत पक्का माल होता है। केवल कोयला ही ब्रिटेन का मुख्य पदार्थ है जो तैयार माल नहीं है और बाहर भेजा जाता है। ब्रिटेन का निर्यात मुख्यतः लोहे का सामान, ऊनी वस्त्र, सूती वस्त्र, रसायनिक पदार्थ, कागज, मशीनें, चमड़े का सामान, तम्बाकू, जूट, शस्त्र इत्यादि हैं।

ब्रिटेन का विदेशी व्यापार

बाहर से आने वाली वस्तुओं को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं:—

१. भोज्य पदार्थ — गेहूँ, गेहूँ का आटा, मक्का, ओट, दाल, चावल, जौ, रई, दूध की वस्तुएँ मक्खन इत्यादि, मछली मांस, फल, शक्कर, मसाले, चाय, कहवा, कोकोआ, शराब, तम्बाकू, तथा सब्जी। भोज्य पदार्थ ब्रिटेन के आयात व्यापार में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

२. कच्चा माल — कपास, ऊन, सन, जूट, रेशम, हैम्प, रबर, फर, लकड़ी, तिलहन, पैट्रोलियम, खालें, हाथीदांत, चमड़ा कमाने के पदार्थ, कच्चा लोहा, तांबा, सीसा, मैंगनीज जिंक, टिन, सोना चाँदी इत्यादि।

तैयार माल (Manufactured goods) सूत, सूती कपड़ा, चमड़े का सामान, लोहे का सामान, शीशे का सामान, बिजली का सामान, रेशमी कपड़ा, और चीनी मिट्टी के बर्तन।

दूसरे महायुद्ध (१६३६—४५) के उपरान्त ब्रिटेन का विदेशी व्यापार और भी कम हो गया। संयुक्तराज्य अमेरिका एक साथ उदय हुआ, ब्रिटेन की बहुत सी पूंजी नष्ट हो गई और उसकी औद्योगिक स्थिति कमजोर पड़ गई।

आयरलैंड आयरलैंड का उत्तरी भाग उपजाऊ है परन्तु कहीं कहीं भूमि खेती के योग्य नहीं है। यहाँ गेहूँ, जौ, सन और ओट की पैदावार बहुत अधिक होती है। खेती का धन्धा यहाँ का मुख्य धन्धा है। खेती के उपरान्त मक्खन तथा सुअर पालने के धन्धे महत्वपूर्ण हैं। बेलफास्ट यहाँ का मुख्य बंदरगाह है जहाँ जहाज़ बेड़े बनते हैं। इसके अतिरिक्त सन के कपड़े का धन्धा भी यहाँ केन्द्रित है।

आयरलैंड का मध्य प्रदेश बहुत उपजाऊ है, परन्तु पानी का बहाव अच्छा न होने के कारण यहाँ दलदल बहुत है। अधिकांश भूमि पर घास है खेती थोड़ी भूमि पर ही होती है। पूर्व में गेहूँ, जौ और ओट की पैदावार होती है। घास के मैदानों पर गायें बहुत चराई जाती हैं। डबलिन इस प्रदेश का मुख्य व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ शराब तथा पापलिन कपड़ा बनाने के कारखानें हैं।

दक्षिण आयरलैंड बहुत उपजाऊ है। जौ की पैदावार यहाँ बहुत अधिक होती है इस कारण जौ की शराब बनाई जाती है। किन्तु मक्खन का धन्धा यहाँ का सबसे महत्वपूर्ण धन्धा है। आयरलैंड प्रतिवर्ष बहुत सा मक्खन इंगलैंड को भेजता है। दक्षिण में ही यह मक्खन तैयार होता है क्योंकि यहाँ घास के मैदान बहुत हैं। मक्खन के साथ साथ सुअर पालने का धन्धा भी यहाँ महत्वपूर्ण है क्योंकि मक्खन निकले हुए दूध को पिलाकर सुअरों को मोटा किया जाता है।

ब्रिटिश द्वीप समूह में मछली पकड़ने का धन्धा भी बहुत महत्वपूर्ण है। लगभग दस लाख मनुष्य इस धन्धे में लगे हुए हैं। नार्थ-सी में मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं। मछली पकड़ने के मुख्य स्थान डोगर-बैंक के समीप है।

ब्रिटेन अत्यन्त समृद्धिशाली देश है। इस देश की औद्योगिक उन्नति के बहुत से कारण हैं। इस देश की भौगोलिक परिस्थिति ही इसकी उन्नति का मूल कारण है। देश का जलवायु शीतोष्ण होने के कारण औद्योगिक उन्नति

के लिए बहुत ही अनुकूल है। इसके अतिरिक्त कोयला यहाँ बहुत अधिक निकाला जाता है जिसके कारण यहाँ विशेष रूप से औद्योगिक उन्नति सम्भव हो सकी। लोहा भी यहाँ यथेष्ट मिलता है। इस कारण स्टील तथा यंत्रों को बनाने का धन्धा जो अन्य धन्धों का जनक है यहाँ स्थापित हो सका। यंत्रों का आविष्कार सर्वप्रथम यहीं हुआ। इस कारण आधुनिक ढंग के कारखाने सर्व प्रथम यहाँ ही स्थापित हुए और ब्रिटेन औद्योगिक उन्नति में अग्रणी बन गया। ब्रिटेन की औद्योगिक उन्नति का एक कारण यह भी है कि यहाँ के श्रमजीवी बहुत कुशल तथा परिश्रमी हैं।

औद्योगिक उन्नति के साथ ही साथ ब्रिटेन का व्यापार भी खूब ही चमका। व्यापारिक उन्नति में उसका टूटा फूटा समुद्रतट, जलमार्गों की सुविधा, अच्छे बन्दरगाह तथा नाविक शक्ति विशेष सहायक रहे हैं। ब्रिटेन का व्यापार मुख्यतः योरोप से है। परन्तु ब्रिटेन से बाहर जाने वाला तैयार माल अधिकतर साम्राज्य के अन्तर्गत देशों को जाता है और बाहर से आने वाली वस्तुओं में से अधिकांश योरोप तथा अमेरिका से आती है।

फ्रांस

धरातल

फ़ांस का अधिक भाग मैदान है। कहीं कहीं टूटी-फूटी पर्वत श्रेणियाँ भी हैं जो मार्गों के लिए बाधक नहीं होतीं। दक्षिण पूर्व में पैरीनीज़ तथा आल्पस पर्वत मालायें हैं जिन्हें काटकर रेलें निकाली गई हैं। माउन्ट सेनिस की सुरंग आल्पस पर्वत माला को पार करती है। फ्रांस के मध्य में भी ऊँचा प्रदेश है। पूर्व की ओर सेवीनीज़ पर्वत श्रेणी है जो रोन की घाटी के पास एक साथ नीची हो जाती है। फ्रांस में अधिकांश पठार है जिनके चारों ओर नीचे मैदान हैं। इन्हीं मैदानों में अधिकांश जनसंख्या निवास करती है।

जलवायु

फ्रांस का जलवायु अच्छा है। दक्षिण में होने के कारण यहाँ का तापक्रम ऊँचा रहता है जिसके कारण खेती बारी भली भाँति हो सकती है। गर्मियों में दक्षिण पश्चिमी हवायें चलती हैं जिनसे वर्षा होती है। नार्थ-सी के समीप पतझड़ में भी वर्षा होती है। भूमध्य-सागर के तट के समीप जाड़ों में वर्षा होती है। दक्षिण में गर्मी अधिक होती है और गर्मियों में वर्षा बिलकुल ही नहीं होती। जर्मन सीमा के पास के प्रदेश में गर्मियों में गर्मी और जाड़ों में भयंकर जाड़ा पड़ता है।

देश की भूमि का पाँचवाँ भाग पहाड़ों से घिरा है। एक चौथाई में पठार हैं तथा बाकी में उपजाऊ मैदान हैं। फ्रांस की भूमि उपजाऊ तथा जलवायु खेती के अनुकूल होने से फ्रांस कृषि प्रधान देश है। फ्रांस की लगभग आधी जनसंख्या गाँवों में रहती है। फ्रांस में गेहूँ बहुत उत्पन्न होता है। रूस को छोड़कर फ्रांस योरोप में सबसे अधिक गेहूँ उत्पन्न करता है। गेहूँ के अतिरिक्त रई (Rye) तथा जौ भी उत्पन्न होता है। अनाज के अतिरिक्त आलू भी यहाँ खूब उत्पन्न होता है।

पैदावार

परन्तु फ्रांस की मुख्य पैदावार अंगूर है। मध्य तथा दक्षिण फ्रांस की नदियों की घाटियों में अंगूर बहुत अधिक उत्पन्न होता है। सीन (Seine), राइन (Rhine) तथा गैरोन (Garonne) नदियों की घाटियों में तथा भूमध्य सागर के प्रदेश में अंगूर बहुत अधिक उत्पन्न होता है। प्रत्येक क्षेत्र में कोई विशेष ब्रैंड की शराब तैयार की जाती है। शैमपेन की शराब पेरिस के पूर्व ज़िले में बनाई जाती है। फ्रांस में खेती के साथ साथ पशु पालन भी होता है।

खनिज पदार्थ

फ्रांस में खनिज पदार्थों की कमी है। जो कुछ भी कोयला निकाला जाता है वह उत्तर के प्रान्त में जो कि जर्मनी और बैलजियम से जुड़ा हुआ है। इसी प्रदेश में फ्रांस का लगभग दो तिहाई कोयला खोदा जाता है। यद्यपि कोयला साधारणतः अच्छा होता है किन्तु अधिक गहराई पर मिलने के कारण उसको खोदने में व्यय अधिक होता है। इसके अतिरिक्त पूर्वी पहाड़ों के समीपवर्ती प्रदेश में रोन नदी के बेसिन में भी कोयले की खानें हैं।

कोयले की कमी को प्रकृति ने जल-शक्ति के द्वारा पूरा कर दिया है। भाग्यवश फ्रांस के उन प्रदेशों में जलशक्ति बहुत है जहाँ कि कोयले का अभाव है। फ्रेंच-आल्पस, पैरीनीज़ तथा मध्य के ऊँचे प्रदेश में जल-शक्ति बहुत है। पिछले योरोपीय युद्ध के समय फ्रांस में जल शक्ति का अत्यधिक उपयोग किया गया, क्योंकि उस समय फ्रांस की कोयले की खानें जर्मनी के अधिकार में पहुँच गई थीं। वर्तमान युद्ध १६४० के फल स्वरूप भी फ्रांस की सब कोयले की खानें जर्मनी के अधिकार में पहुँच गईं।

उद्योग-धंधे

फ्रांस में उद्योग-धन्धे कृषि की अपेक्षा कम महत्व-पूर्ण हैं। किन्तु फ्रांस में बनाया हुआ माल संसार में अपनी सुन्दरता तथा कारीगरी के लिए प्रसिद्ध है। फ्रांस के उद्योग-धन्धे बैलजियम तथा जर्मनी के सीमाप्रान्त से लगे हुए कोयले

की खानों के समीप केन्द्रित हैं। इनके अतिरिक्त फ़्रांस के दक्षिण पूर्व के ज़िलों में भी उद्योग धन्धे केन्द्रित हैं। उत्तर का औद्योगिक प्रदेश जर्मनी के द्वारा (१९४० के युद्ध में) अपने अधिकार में कर लिया गया।

सूती कपड़े का धन्धा फ्रांस का अत्यन्त महत्व पूर्ण धन्धा है। अलसेस तथा लोरन प्रान्त इस धन्धे के मुख्य प्रदेश हैं। वोसजेज़ (Vosges)की घाटियों में सूती कपड़ा करघों पर बहुत समय से तैयार किया जाता है। मुलहाऊस तथा कोलमर इस धन्धे के प्रधान केन्द्र हैं। सेंट-डी यपीनल (St. de Epinal) में भी सूती कपड़े का धन्धा केन्द्रित है। रेशम का धन्धा दक्षिण में केन्द्रित है। लियान (Lyons) तथा सेंट इटने (St. Etienne) इसके मुख्य केन्द्र हैं। लियान तथा इटने का जल रंगाई के लिए बहुत उपयोगी है। इनके अतिरिक्त रीम्स तथा पैरिस में भी यह धन्धा होता है।

उत्तर-पूर्व में नैन्सी तथा लांगवे के जिलों में लोहा मिलता है, इस कारण इस प्रदेश में लोहे का धन्धा पनप गया है। किन्तु लोहा गलाने के लिए कोयला जर्मनी तथा बैलजियम से मंगाना पड़ता है। क्रूज़ाट (Creusot) लोहे के धन्धे का प्रधान केन्द्र हैं। यहाँ मशीन, एंजिन, रेल के डिब्बे तथा अन्य भारी वस्तुएँ बनती हैं। ब्राई (Briey) के बेसिन में लोहे का धन्धा खूब उन्नत हुआ है और स्टील के कारखाने भी स्थापित किए गए हैं। लिली तथा पैरिस में लोहे के कारखाने हैं।

ऊनी कपड़े का धन्धा अधिकतर उत्तर में पाया जाता है। उत्तर में ऊन अधिक उत्पन्न होता है, कोयला समीप ही मिलता है। इस कारण यहाँ धन्धा उन्नति कर गया है। पैरिस ऊन की प्रधान मंडी है। ऊन का धन्धा फ्रांस का मुख्य धन्धा है। रोबेक्स (Roubaix), रीम्स (Reims) तथा अमीन्स (Amiens) इसके मुख्य केन्द्र हैं।

इनके अतिरिक्त चीनी मिट्टी के बर्तन, शीशे के बर्तन तथा घड़ियों का धन्धा भी फ्रांस के उत्तर में होता है।

जलमार्ग

फ़्रांस के जलमार्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ पृथ्वी समथल है। इस कारण नावों के आने जाने में कोई रुकावट नहीं होती। फ्रांस के पूर्व तथा पश्चिम की नदियों से जो नहरें निकाली गई हैं वे वहाँ के मुख्य मार्ग हैं। इनमें मारनी-राइन-नहर (Marne Rhinne canal) अधिक महात्वपूर्ण है जो राइन और सीन के जलमार्गों को जोड़ती है। बरगँडी की नहर सीन और रोन नदियों

को मिलाती है। मार्सलीज़-रोन-नहर (Marseilles and Rhone canal) मार्सलीज़ बंदरगाह को रोन की घाटी से मिलाती है। पैरिस जलमार्गों का प्रधान केन्द्र है और प्रत्येक भाग के जलमार्ग इससे आकर मिलते हैं। यद्यपि रेलों के कारण नहरों का महत्व घट गया है परन्तु फिर भी भारी वस्तुओं को ले जाने में इनका बहुत उपयोग होता है।

फ्रांस के मुख्य बंदरगाह निम्नलिखित हैं :—

मार्सलीज़ (Marseilles), हैवर (Havre), रोयन (Rouen), बोर्डियो (Bordeaux), डनकिर्क (Dunkirk) और नैनर्टीज़। फ्रांस के बंदरगाह नार्थ सी, अटलांटिक महासागर तथा भूमध्यसागर पर होने के कारण संसार के मुख्य व्यापारिक मार्गों पर हैं। इस कारण इनका व्यापारिक महत्व अधिक है। फ्रांस का व्यापार अधिकतर अपने साम्राज्य के देशों से होता है।

जर्मनी

यह देश तीन प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है। (१) उत्तर के मैदान (२) मध्य का पर्वतीय प्रदेश (३) आल्पस पर्वत श्रेणियों का दक्षिणी भाग। उत्तर का मैदान समथल है किन्तु भूमि उपजाऊ नहीं है और न वहाँ खानिज पदार्थ ही अधिक पाये जाते हैं। मध्य पर्वतीय प्रदेश उपजाऊ है और वहाँ लकड़ी और खनिज पदार्थ भी मिलते हैं। आल्पस का पर्वतीय प्रदेश पैदावार के लिए अधिक उपयोगी नहीं है, परन्तु जिन नदियों की घाटियों में जलवायु अनुकूल है वहाँ खेती बारी होती है। उत्तर के मैदान उपजाऊ न होने के कारण घने आबाद नहीं हैं। मध्य का पठार बहुत घना आबाद है क्योंकि वहाँ की भूमि उपजाऊ है और यहाँ उद्योग-धन्धे भी उन्नति कर गए हैं।

जलवायु

जर्मनी का जलवायु पश्चिम और पूर्व में भिन्न है। इसका कारण यह है कि पश्चिम में समुद्र का जलवायु पर अधिक प्रभाव है तथा पूर्व में समुद्र का प्रभाव नहीं है। उत्तर पश्चिम में न तो जाड़े में अत्यधिक शीत और न गर्मियों में अधिक गर्मी ही पड़ती है। राइन की घाटी में गर्मियों में तेज गर्मी पड़ती है। किन्तु जाड़ों में अधिक ठंड नहीं होती। वर्षा सब महीनों में होती है किन्तु अधिकतर पानी गर्मियों में ही बरसता है। उत्तर-सागर (North-sea) के समीप वर्षा तीनों मौसमों में एकसी होती है। परन्तु पूर्व में गर्मियों में ही अधिक वर्षा होती है। उत्तर के नीचे मैदानों में वर्षा २० से ३० इंच तक, तथा दक्षिण के पर्वतीय प्रदेश में इससे अधिक वर्षा होती है।

जर्मनी की भौगोलिक परिस्थिति इतनी अच्छी नहीं है जितनी की अन्य

देशों को, परन्तु फिर भी बीसवीं शताब्दी में जर्मनी ने आश्चर्य जनक औद्योगिक उन्नति की है। यद्यपि जर्मनी की भूमि उपजाऊ नहीं है, वर्षा भी यथेष्ट नहीं होती, किन्तु फिर भी सारे देश में खेती होती है। लगभग ४४ प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। जर्मनी में नमक और पोटाश बहुत निकाला जाता है। इस कारण खेती के लिए उत्तम और सस्ती खाद मिलने की सुविधा है। उत्तर तथा उत्तर पूर्व में बड़े बड़े फार्मों की अधिकता है। तथा दक्षिण और पश्चिम में छोटे छोटे खेतों की ही अधिकता है जिन पर गहरी खेती (Intensive Cultivation) होती है।

जर्मनी में कोयला और लोहा दोनों ही यथेष्ट राशि में मिलते हैं। लक्सम्बर्ग की खानों से बहुत लोहा निकाला जाता है। इसी कारण लोहे और स्टील का धन्धा यहाँ अधिक उन्नति कर गया है। जर्मनी में नमक और पोटाश की बहुतायत के कारण यहाँ रसायनिक पदार्थों को बनाने का धन्धा भी बहुत उन्नतशील है।

खनिज पदार्थों की विपुलता के अतिरिक्त जर्मनी की स्थिति ने भी उसे औद्योगिक देश बनाने में सहायता पहुँचाई है। योरोप के मध्य में होने के कारण इसका योरोप के सभी देशों से सम्बन्ध हो गया है। आल्पस पर्वत माला में टनल बन जाने के कारण जर्मनी का भूमध्यसागर के देशों से भी सम्बन्ध हो गया है। इसके अतिरिक्त राइन और यल्ब नदियाँ जर्मनी के मुख्य औद्योगिक केन्द्रों को उत्तर-सागर (North Sea) से जोड़ती हैं। मार्गों की सुविधा ही के कारण जर्मनी का व्यापार बहुत बढ़ गया है।

जर्मनी की औद्योगिक उन्नति का श्रेय बहुत कुछ जर्मन सरकार को भी है। १८७० के उपरान्त राज्य ने उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन तथा सहायता देने की नीति को अपनाया और तभी से जर्मनी ने औद्योगिक उन्नति की। किन्तु जर्मनी के उद्योग-धन्धों की उन्नति का मुख्य कारण वहाँ वैज्ञानिक खोज है। जर्मनी के विश्व-विद्यालयों तथा इंस्टिट्यूटों में जितनी अधिक वैज्ञानिक खोज हुई है उतनी कहीं नहीं हुई। यही नहीं खेती की उन्नति भी बहुत कुछ वैज्ञानिक खोज के ही कारण हुई है। यदि देखा जाये तो जर्मनी की औद्योगिक उन्नति में प्रकृति ने इतनी सहायता नहीं दी जितनी कि जर्मनी के वैज्ञानिकों ने। यह जर्मन जाति के परिश्रम का ही फल है कि जर्मनी एक उन्नत राष्ट्र बन सका।

१९१९ के उपरान्त जर्मनी के योरोपीय महायुद्ध में परास्त हो जाने के फल स्वरूप उसकी बहुत हानि हुई। जर्मनी के अफ्रीका के सारे उपनिवेश

उससे छीन लिए गए। यही नहीं जर्मनी का लारेन लोहे की खानों का प्रान्त तथा एलसेस सूती कपड़े के धन्धे का प्रान्त फ्रांस को दे दिया गया। सिलीशिया की कोयले की खानों का प्रदेश पोलैंड को दिया गया। पोसन का उपजाऊ प्रान्त भी जर्मनी के हाथ से निकल गया। किन्तु पिछले वर्षों में जर्मनी ने यह प्रान्त अपने पड़ोसियों से फिर वापस छीन लिए। यही नहीं उसने इन प्रान्तों के अतिरिक्त पोलैंड, आस्ट्रिया, चैकोस्लावाकिया को भी उदरस्थ कर लिया। पर १६३६—४५ के युद्ध के फलस्वरूप ये सब प्रदेश जर्मनी के अधिकार से निकल गये और उसका औद्योगिक महत्व घट गया। यही नहीं युद्ध के हर्जाने के फल स्वरूप उसके कारखानों को भी हटा कर विजेता देश अपने यहाँ ले गए। अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि जर्मनी केवल खेतिहर देश बना दिया जावेगा।

आल्पस का पर्वतीय प्रदेश

जर्मनी में जो आल्पस पर्वत की श्रेणियाँ हैं वे केवल उनकी बाहरी शाखायें हैं। इस पर्वत श्रेणी के उत्तर में डैन्यूब नदी तक भूमि है। वह ग्लेशियर द्वारा लाई हुई मिट्टी से बनी है। यद्यपि यह प्रदेश बहुत उपजाऊ नहीं है फिर भी घाटियों में खेती होती है। डैन्यूब की घाटी में भूमि उपजाऊ है इसलिए वहाँ पैदावार बहुत होती है। इस प्रदेश की ऊचाई अधिक होने के कारण गर्मी कम और वर्षा अधिक होती है, पहाड़ों के ढाल सघन वन से ढके हुए हैं इन ढालों पर घास बहुत होती है इस कारण दक्षिण पर्वतीय प्रदेश में पशु बहुत चराये जाते हैं। डैन्यूब की घाटी में पैदावार बहुत होती है, यहाँ की मुख्य पैदावार गेहूँ तथा हाप्स (Hops) है जिससे शराब बनाई जाती है। शराब और गेहूँ यहाँ की मुख्य पैदावार है। इस प्रदेश में खनिज पदार्थ अधिक नहीं हैं केवल थोड़ा सा लिगनाइट जाति का कोयला मिलता है। परन्तु यहाँ जल बहुत है इस कारण यहाँ नदियों के जल से बिजली खूब उत्पन्न की गई है।

जलशक्ति

दक्षिण जर्मनी और आल्पस में जल विद्युत बहुत उत्पन्न की जाती है नेकार (Neckar) से जो नहरें निकाली गई हैं उनके जल से विद्युत बनाई जाती है। मेन नदी, बवेरिया की झीलें, वालचेन्सी (Walchensee) तथा कोचेलसी (Kochelsee), से भी बिजली उत्पन्न की जाती है। बवेरिया में मुलडार्फ (Muhldorf) के समीप इनवर्क के पावर स्टेशन से एक लाख घोड़ों की शक्ति उत्पन्न की जाती है। अर्ज़ गैब्रिज (Erz Gebrige) तथा रूर (Ruhr) प्रदेश में नदयों के बाँध बनाकर पानी को रोक लिया गया है

और उससे जलशक्ति उत्पन्न की गई है। इनके अतिरिक्त ब्लैक फारेस्ट (Black forest) तथा वोसजेज़ (Vosges) प्रदेश की नदियों से भी विद्युत उत्पन्न की जाती है।

राइन का प्रदेश (Rhine)

राइन की घाटी अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश है, यही कारण है कि यहाँ खेती बारी अधिक होती है और जनसंख्या घनी आबाद है। यह घाटी दोनों ओर पहाड़ों से घिरी है इस कारण ठंडी हवायें इस प्रदेश तक नहीं पहुँच सकतीं और बसंत के मौसम में यहाँ गरमी रहती है। इस प्रान्त में खेती बारी ही मुख्य धन्धा है।

यहाँ अंगूर बहुत अधिक उत्पन्न होता है। पर्वतों के ढालों तथा मैदानों में अंगूर की खेती होती है। इसके अतिरिक्त हाप्स (Hops), तम्बाकू तथा चुकन्दर भी यहाँ बहुतायत से उत्पन्न होता है। इस कारण शराब, शक्कर, तथा सिगरेट बनाने का धन्धा यहाँ बहुत उन्नति कर गया है। राइन घाटी के समीप ही कुछ पर्वतीय प्रदेश हैं जिनमें ब्लैक फारेस्ट (Black forest) मुख्य है। इन वनों में पाइन के वृक्षों की भरमार है। लकड़ी का धन्धा यहाँ का मुख्य धन्धा है। लकड़ी के खिलौने, घड़ियाँ, वाद्य (बाजे) तथा दूसरी तरह का लकड़ी का सामान यहाँ बहुत बनता है। ओडेन-वाल्ड (Odenwald) में भी लकड़ी का धन्धा खूब पनप गया है। इसके पश्चिमी ढाल पर फलों के बाग लगाये गए हैं।

जूरा (Jura)

यह प्रदेश अधिक उपजाऊ नहीं है। घास के मैदान यहाँ अधिक हैं जिन पर गायें तथा अन्य पशु बहुत अधिक संख्या में चराये जाते हैं। उपजाऊ स्थानों में खेती बारी भी होती है। न्यूरम्बर्ग (Neuremberg) में लिथो का पत्थर मिलता है। संसार भर में यहाँ से ही लिथो का पत्थर भेजा जाता है। यहाँ लोहे की भी बहुत सी खानें हैं।

उत्तर के नीचे मैदान

उत्तर के नीचे मैदान यद्यपि बहुत उपजाऊ नहीं हैं इस कारण यहाँ बहुत अच्छी फसल उत्पन्न नहीं की जा सकती, फिर भी इस विशाल भू भाग में खेती बहुत होती है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग ८०,००० वर्ग मील है। परन्तु उसमें आधी भूमि खेती बारी के काम आती है। जई (Rye) यहाँ की मुख्य पैदावार है। समस्त जर्मनी की दो तिहाई जई (Rye) इस प्रदेश में उत्पन्न की जाती है।

इसके अतिरिक्त ओट और गेहूँ की पैदावार भी यहाँ बहुत होती है। सैक्सनी और सिलीशिया में गेहूँ की बहुत पैदावार होती है। उत्तर मैदानों में आलू भी बहुत उत्पन्न होता है। आलू यहाँ का मुख्य भोज्य पदार्थ है। इसकी शराब भी तैयार की जाती है। चुकन्दर की पैदावार मैजबर्ग (Mageburg) तथा सिलीशिया के प्रान्त में बहुत होती है। चुकन्दर की खेती में यहाँ बहुत से मनुष्य लगे हुए हैं। मैजबर्ग शक्कर के धन्धे का केन्द्र है। चुकन्दर का छिलका तथा गूदा पशुओं को खिलाया जाता है। इस कारण इस प्रदेश में पशुपालन भी होता है। इस प्रदेश में खनिज पदार्थ अधिक नहीं मिलते।

सैक्सनी

यह पथरीला प्रदेश है और खेती बारी के योग्य नहीं है। गेहूँ, जई, (Rye) और आलू की पैदावार अधिक होती है। नदियों की उपजाऊ घाटियों में फलों के बाग़ हैं। ढालों पर जंगल बहुत पाये जाते हैं तथा भेड़ें चराई जाती हैं। खनिज पदार्थ अवश्य यहाँ अधिक मिलते हैं। लोहा, टिन, रांगा और चाँदी यहाँ निकाला जाता है। इनमें लोहे की खानें विशेष महत्व की हैं। ज्वीकाऊ (Zwickau) तथा केमिट्ज़ (Chemnitz) में लोहा अधिक निकाला जाता है। ज्वीकाऊ की खानों में लोहे के समीप ही कोयला भी मिलता है। इस कारण इस प्रदेश में लोहे का धन्धा पनप गया है। वहाँ के पर्वतीय ढालों पर मैरिनों जाति की भेड़ बहुत पाली जाती है। इस कारण यहाँ ऊनी कपड़े का धन्धा भी होता है। इस प्रदेश में लकड़ी तथा पानी की बहुतायत होने के कारण यहाँ कागज़ और बड़ी घड़ियों का धन्धा केन्द्रित है।

जर्मनी के उद्योग-धन्धे

खेती की अपेक्षा जर्मनी में उद्योग-धन्धे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जर्मनी की औद्योगिक उन्नति में कोयले तथा जलशक्ति की बहुतायत विशेष सहायक हुई है। रुर (Ruhr), सैक्सनी (Saxony) तथा सिलीशिया (Silesia) मुख्य कोयले के प्रदेश हैं। रुर योरोप की सबसे बड़ी कोयले की खान है। लिगनाइट—प्रशा, थूरिंजिया और सैक्सनी में बहुत निकलता है।

लोहे का धन्धा विशेष रूप से कोयले पर निर्भर है। १९१९ के उपरान्त लारेन का प्रान्त छिन जाने से जर्मनी में लोहे की कमी हो गई थी इस कारण जर्मनी को लोहा बाहर से मँगाना पड़ता था किन्तु १९३९ के युद्ध में जर्मनी ने लारेन का प्रान्त फिर जर्मनी में मिला लिया। जहाँ जहाँ कोयले की खानें

हैं वहाँ वहाँ लोहे और स्टील का धन्धा केन्द्रित है। जर्मनी संसार में सबसे अधिक स्टील बाहर भेजता था। दूसरे युद्ध के उपरान्त उसकी स्थिति गिर गई।

जर्मनी में निम्नलिखित लोहे और स्टील के मुख्य केन्द्र हैं। राइनलैंड वैस्फेलिया (Rhineland Westphalia), सीज (Siege), लाहन (Lahn), डिल (Dill Dt.) तथा अपर हेयास (Heass), सिलीशिया (Silesia) उत्तर पूर्व तथा मध्य जर्मनी, दक्षिण जर्मनी तथा सैक्सनी। इनमें राइनलैंड वैस्टफेलिया मुख्य केन्द्र है, जहाँ देश का ८० प्रतिशत से अधिक पिंग-आयरन तथा स्टील तैयार किया जाता है। यसन (Essen), मुलहीम (Mulhiem), हैगेन (Hagen) रुर के प्रदेश में तथा ड्यूसे लडार्फ (Dusseldorf) डुयस्बर्ग (Duisburg) और रुराट (Kuhrot) राइन नदी के प्रदेश में लाहे और स्टील के धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं। सोलिंजन (Solingen) में चाकू छुरी और कैंची अच्छी बनती हैं। ड्यूसेल्डार्फ में युद्ध सामिग्री तैयार की जाती है।

सूती कपड़े का धन्धा जर्मनी के भिन्न भिन्न भागों में फैला हुआ है। यद्यपि सूती कपड़े के केन्द्र मुख्यतः कोयले की खानों के समीप स्थित है परन्तु वैसे हर एक भाग में कपड़े के कारखाने स्थापित हो गए हैं। रुर की कोयले की खानों पर सूती कपड़े का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। बर्मन (Barmen) यल्बरफील्ड (Elberfield) तथा क्रैफेल्ड (Crafeld) में ऊनी और रेशमी कपड़ा बहुत तैयार किया जाता है। क्रैफेल्ड रेशमी कपड़ा बनाने का मुख्य केन्द्र हैं। सैक्सनी का प्रान्त कपड़े के धन्धे की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ का मुख्य केन्द्र कैमिट्ज़ (Chemnitz) है। कैमिट्ज़ को जर्मनी का मैंचेस्टर कहते हैं। यहाँ सूती कपड़ा बहुत तैयार होता है और मशीनें भी बनती हैं। ज्वीकाऊ (Zwickau) भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। मोज़ें बनियायन इत्यादि वस्तुयें सैक्सनी तथा वुरटम्बर्ग के केन्द्रों में बहुत तैयार होते हैं। स्टटगार्ट (Stutigart) यहाँ का मुख्य केन्द्र है। इनके अतिरिक्त बवेरिया के पहाड़ी प्रान्त में सूत कातने का धन्धा चलता है क्योंकि वहाँ सस्ती जल शक्ति उपलब्ध है। बवेरिया में इसार (Isar) तथा इन (Inn) नामक नदियों से जलशक्ति उत्पन्न की जाती है जिससे यहाँ के धन्धे चलते हैं। अल्म (Ulm) तथा आग्सबर्ग (Augsburg) इस प्रदेश में सूती कपड़े के धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं।

सूती कपड़े के धन्धे के अतिरिक्त जर्मनी में रसायनिक धन्धों (Chemical

Industries) की बहुत उन्नति हुई है। इसका मुख्य कारण यह है कि जर्मनी में नमक और पोटाश बहुत पाया जाता है। उत्तर के मैदानों में नमक की चट्टानें बहुत मिलती हैं। इसके अतिरिक्त थूरिंजिया (Thuringia) की घाटियों में भी पोटाश बहुत मिलता है। पोटाश की अधिकता के कारण यहाँ रसायनिक खाद बनाने का धन्धा भी बहुत उन्नति कर गया है जिससे खेती को बहुत लाभ पहुँचा है। पोटाश तथा नमक के अतिरिक्त कोयले के कारण भी बहुत से रसायनिक धन्धे स्थापित हो गए हैं। जर्मनी ने कोलतार से रंग बनाने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। जल विद्युत के द्वारा भी इन धन्धों को बहुत सहायता मिली और अधिकतर यह धन्धे ऐसे स्थानों पर ही केन्द्रित हैं जहाँ जल विद्युत है। इन धन्धों के केन्द्र अधिकतर नदियों के किनारे पर हैं, क्योंकि इन धंधों के लिए भारी कच्चे माल की आवश्यकता होती है। लुडविगशेफन (Ludwigshafen) जो मैनहीम नदी पर स्थित है रंग बनाने का मुख्य केन्द्र है।

मिट्टी के बर्तन तथा शीशे के बर्तन बनाने का धंधा भी यहाँ महत्त्वपूर्ण है। मध्य के ऊँचे प्रदेश में यह धंधा स्थापित है। जेना (Jena) शीशे के धंधे का मुख्य केन्द्र है। इसके अतिरिक्त रुर (Ruhr) तथा उत्तर के मैदान में भी यह धंधा खूब चलता है। जहाँ जल तथा लकड़ी की लुग्दी मिलने की सुविधा है वहाँ कागज़ का धंधा केन्द्रित है। कागज़ बनाने के केन्द्र बाल्टिक प्रदेशों से भी लुग्दी मँगाते हैं। ऐसचैफेनबर्ग (Aschaffenburg) लिपज़िग (Leipzig) तथा स्टटगार्ट (Stuttgart) कागज़ बनाने के मुख्य केन्द्र हैं।

दूसरे महायुद्ध (१६३६) में पराजित होने के फल स्वरुप जरमनी के उद्योग-धंधों को भयंकर हानि पहुँची है। यही नहीं कि जैकोस्लावाकिया, पोलैंड, आस्ट्रिया, हंगरी इत्यादि देश जिन्हें हिटलर ने जरमन राष्ट्र में मिला लिया था वे उससे छीन लिए गए वरन उस पर मित्र राष्ट्रों का कब्जा हो गया और उसके बहुत से कारख़ाने रुस तथा मित्र राष्ट्रों में उठा कर लेजाये गए। जरमनी के आर्थिक ढाँचे पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार है। ऐसा प्रतीत होता है कि जरमन राष्ट्र को फिर अपने धंधों का पुनः संगठन करने में बहुत समय लगेगा। आज तो जरमनी ऐसा पंगु और निर्बल कर दिया गया है। उसके धंधों को इस प्रकार नष्ट कर दिया गया है कि वह बहुत समय के लिए औद्योगिक नहीं रहेगा।

रुस का धरातल बिलकुल चौरस मैदान है। पर्वतीय प्रदेश बहुत कम

रूस

है। किन्तु इस विशाल मैदान में दलदल बहुत हैं तथा कंकड़ पत्थर की कमी के कारण मार्गों को बनाने में कठिनाई होती है। इस देश में नदियाँ ही मुख्य मार्ग हैं। नदियों को नहरों से जोड़ दिया गया है जिससे आने जाने में सुविधा हो गई है। रूस में ११,८०० जलमार्ग है। बहुत सी नदियों में दूर तक स्टीमर जा सकते हैं। किन्तु उत्तर की नदियाँ जाड़े में जम जाती हैं इस कारण उन दिनों वे व्यापार के काम की नहीं रहतीं। रूस के मुख्य बंदरगाह वारसा, तथा आर्चेंगिल वर्ष में ६ महीने जमे रहते हैं। वाल्गा जो कि देश के अन्दर बहुत दूर तक बहती है एक बन्द समुद्र में गिरती है इस कारण व्यापार के लिए उपयोगी नहीं है। किन्तु सोवियट सरकार ने अपने तीन पंचवर्षीय योजनाओं (Five Years' Plan) के द्वारा देश में जो कृषि तथा औद्योगिक क्रान्ति कर डाली है उसके फल स्वरूप सड़कों तथा रेलों का भी खूब विस्तार हुआ है। अस्तु रूस में अब मार्गों की कठिनाई नहीं है।

रूस में ठंड अधिक होती है। गर्मियों में गर्मी भी यथेष्ट पड़ती है। जाड़े में तापक्रम हिमांक से भी नीचे उतर जाता है तथा जूलाई में तापक्रम ४६° फै० से ८०° फै० तक पहुँचता है। रूस में वर्षा कम होती है। पश्चिम में वर्षा कुछ अधिक होती है किन्तु पूर्व में २० इंच से भी कम वर्षा होती है।

जलवायु की दृष्टि से देश को तीन प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है। उत्तर में टुंड्रा का प्रदेश है जिसके दक्षिण में वन प्रदेश हैं। वनों के दक्षिण में सत्रप (Steppes) के मैदान हैं।

टुंड्रा का प्रदेश अत्यन्त ठंडा है इस कारण वह वीरान है और वहाँ कुछ उत्पन्न नहीं होता। टुंडरा के दक्षिण में सघन वन हैं। संसार में वन-सम्पत्ति की दृष्टि से रूस सबसे धनी देश है।

सायबेरिया एशिया के उत्तर में ६००० मील तक फैला है। इसका अधिकांश भाग ५०° उत्तर अक्षांश रेखा के उत्तर में है। अतएव जाड़ों में यहाँ बहुत ठंड और गर्मियों में गर्मी पड़ती है। वर्षा साधारण होती है। जाड़े में सब नदियाँ और समुद्र जम जाता है इस कारण उनका उपयोग नहीं हो सकता।

सायबेरिया के उत्तरी भाग में टुंड्रा है जिस पर अधिकांश शीतकाल में बर्फ जमी रहती है इस कारण आर्थिक दृष्टि से यह भाग महत्त्वपूर्ण नहीं है। टुंड्रा के दक्षिण में तेगा अर्थात् सघन कानीफेरस वन हैं जिनमें पाइन (Pine), स्प्रूस (Spruce), लार्च (Larch) और फर (Fir) अधिक पाये जाते हैं। वनों के दक्षिण में सत्रप के मैदान हैं जो उपजाऊ हैं।

रूस तथा सायबेरिया मुख्यत: कृषि प्रधान देश हैं। अनाज यहाँ अधिक राशि में उत्पन्न होते हैं। राई (Rye) यहाँ का मुख्य भोज्य पदार्थ है और उत्तर में टुंड्रा तथा दक्षिण पूर्व के सूखे प्रदेश को छोड़ कर सारे रूस में राई उत्पन्न होती हैं। उत्तर में जाड़े अधिक लम्बे होने के कारण तथा दक्षिण-पूर्व में वर्षा की कमी के कारण गेहूँ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। गेहूँ उत्पन्न करने वाला क्षेत्र यूक्रेन से उत्तर-पूर्व की दिशा में सायबेरिया से अल्टाई पहाड़ों तक फैला हुआ है। यूक्रेन का क्षेत्र गेहूँ उत्पन्न करने वाले अन्य क्षेत्रों से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि एक तो यहाँ वर्षा निश्चित है दूसरे यह काले सागर के समीप स्थित है इस कारण ओडेसा इत्यादि बंदरगाहों के द्वारा गेहूँ आसानी से बाहर भेजा जा सकता है। डान (Don) बेसिन का उपजाऊ क्षेत्र भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि रोसटाव (Rostov) से उस प्रदेश का अनाज बाहर भेजा जा सकता है। सायबेरिया के अनाज को रेल द्वारा बहुत दूर ले जाना पड़ता है। तब कहीं वह विदेशों को भेजा जा सकता है, इस कारण सायबेरिया की उत्पत्ति अभी बहुत अधिक बढ़ी नहीं है।

गेहूँ के क्षेत्र में चुकंदर भी उत्पन्न होता है किन्तु यूक्रेन में इसकी पैदावार विशेष रूप से अधिक होती है। ओट और जौ गेहूँ के क्षेत्र के अतिरिक्त मध्य और उत्तर रूस तथा सायबेरिया के वनों को साफ करके निकाली हुई भूमि पर भी पैदा किया जाता है। यूक्रेन में मकई भी खूब पैदा होती है। गेहूँ क्षेत्र के सूखे भाग में ज्वार बाजरा भी उत्पन्न होता है। गेहूँ क्षेत्र में तिलहन भी खूब उत्पन्न किया जाता है। मध्य तथा पश्चिमी रूस में पटसन (Flax) और फुलसन (Hemp) बहुत होता है। आलू सर्वत्र उत्पन्न होता है। यूक्रेन में तम्बाकू की भी अच्छी पैदावार होती है।

वन—रूस तथा सायबेरिया के वन दो अरब एकड़ भूमि पर फैले हुए हैं। इन वनों में लकड़ी का कोई ठिकाना नहीं है। मार्गों की असुविधा के कारण इन वनों का अभी तक पूरा उपयोग नहीं होता है। लकड़ी का तार (Wood Tar and Pitch) उत्तर के वनों में तैयार किया जाता है और आरचैंगिल से विदेशों को भेजा जाता है। कागज़ का धंधा भी अब तेज़ी से उन्नति कर रहा है।

मछलियाँ—सोवियट रूस में मछली का धंधा भी महत्त्वपूर्ण है। स्टर्जियन (Sturgeon) नामक मछली कैस्पियन सागर यथा वाल्गा में बहुत पकड़ी जाती है। यहाँ लगभग ११५,००० मछुआरे तथा उनके कुटुम्ब के लोग इस

धंधे में लगे हैं। मुरमान तथा श्वेत सागर (White Sea) के समुद्र तट पर काड (Cod) तथा हेरिंग (Herring) बहुत पकड़ी जाती हैं। उत्तरी महासागर (Arctic Ocean) से सील (Seal) पकड़ी जाती है जिसका तेल निकाला जाता है। पूर्व सायबेरिया के समुद्र में सालमन (Salmon) और काड (Cod) बहुत मिलती हैं। अभी तक जापानी ही इस क्षेत्र में मछली पकड़ते थे किन्तु अब सोवियट सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है और इस ओर भी मछली पकड़ने का धंधा बढ़ रहा है।

सोवियट रूस में खनिज पदार्थ भी यथेष्ट मिलते हैं। सायबेरिया के अतिरिक्त रूस में तीन मुख्य प्रदेश हैं जहाँ कोयला निकलता है—(१) मास्को के दक्षिण में, (२) यूराल के पर्वतीय प्रदेश में, (३) डानेटज़ बेसिन (Donetz Basin) यूक्रेन के प्रदेश में। तीनों कोयला उत्पन्न करने वाले प्रदेश औद्योगिक प्रदेशों के समीप हैं, इस कारण उनकी स्थिति बहुत ही अनुकूल है।

लोहे की खानें पश्चिमी यूराल और यूक्रेन में पाई जाती हैं। यूक्रेन की लोहे की खानें नीपर नदी (Dnieper) की निचली बेसिन में हैं जिनसे मिली हुई मैंगनीज़ की खानें हैं। संसार की उत्पत्ति का लगभग आधा प्लैटिनम रूस में निकलता है। यूराल और यूक्रेन में प्रतिवर्ष ५० टन लोहा निकाला जाता है। रूस में लगभग ३½ करोड़ टन कोयला, पचास लाख टन लोहा, प्रतिवर्ष निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त यूराल पर्वतीय प्रदेश में चाँदी और ताँबा भी निकलता है।

सायबेरिया में सोना बहुत से स्थानों पर पाया जाता है। विशेषकर ट्रांस-बेकालिया के प्रदेश में बहुत निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त Yeniseisk, Vitimsk और आमूर में भी सोना निकाला जाता है। ताँबा किरगिज़ में निकाला जाता है। किन्तु अल्टाई में भी यथेष्ट ताँबा पाया जाता है जिसका उपयोग नहीं किया गया है। ज़िंक और सीसा भी यहाँ बहुत मिलता है। कोयला और लोहा टोमस्क (Tomsk) के दक्षिण, किरगिज़ के स्टेप मैदानों, इरकुटस्क (Irkutsk) के पूर्व में, और ट्रांस बेकालिया में मिलता है।

मिट्टी का तेल तथा पैट्रोलियम ट्रांसकाकेशिया के प्रदेश में बहुत मिलता है। इसके अतिरिक्त कैस्पियन के पूर्वी किनारे, उत्तर काकेशिया, तथा ग्रोज़नी (Grozny) और मेंकांक में भी तेल की खानें हैं।

रूस अभी तक औद्योगिक दृष्टि से उन्नत नहीं था। किन्तु पंचवर्षीय

योजनाओं की सफलता के उपरान्त रूस ने बड़ी तेज़ी से औद्योगिक उन्नति की है। लोहे और स्टील का धंधा यूराल के पश्चिमी प्रदेश (पर्म) और यूक्रेन में बहुत उन्नति कर गया है। यूक्रेन में नीपरोपेट्रोवस्क (Dnepropetrovsk) लोहे और स्टील के धंधे का मुख्य केन्द्र है। मास्को, लैनिनग्रेड तथा मध्य रूस के अन्य केन्द्रों में लोहे तथा स्टील की वस्तुयें बनती हैं। इन औद्यागिक केन्द्रों में सूती कपड़े का धंधा भी केन्द्रित है। तुर्किस्तान, काकेशस तथा ईजिप्ट से कपास आती है। पेन्ज़ा (Penza) सिम्बर्सक (Simbirsk) मास्को तथा लैनिनग्रेड में ऊनी कपड़े का धंधा भी केन्द्रित है। मास्को, लैनिनग्रेड तथा व्लाडिमिर (Vladimir) में रबर की वस्तुयें तैयार की जाती हैं।

रूस का अधिकतर व्यापार एशियाई देशों से है। योरोपीय देशों को वह अनाज भेजता है और एशियाई देशों को तैयार माल भेजता है।

पिछले योरोपीय महायुद्ध के फल स्वरूप रूस ने आधा पोलैंड (पूर्वीभाग) पर फिर अपना अधिकार कर लिया। लिथूनिया, लैटविया और इस्थोनिया सोवियत संघ में सम्मिलित हो गए और फिनलैंड का कुछ हिस्सा भी रूस ने ले लिया। अभी थोड़ा ही समय हुआ रूस ने रुमानिया से अपने पुराने प्रदेश बैसेरेबिया और बुकेनिया छीन लिए थे।

पञ्चवर्षीय योजनाओं के फल स्वरूप रूस की संसार के प्रमुख औद्योगिक देशों में गणना होती है।

इटली

इटली का क्षेत्रफल ११९,७०० वर्गमील और जनसंख्या ४ करोड़ के लगभग है। उत्तरी प्रदेशों में आल्पस पर्वत माला की ऊँची दीवार के कारण पहले गमनागमन की असुविधा थी, किन्तु अब पर्वत मालाओं में टनल बना कर उन्हें सरलता से पार कर दिया गया है। आल्पस के अतिरिक्त एपेनाइन पर्वत श्रेणियां इस देश के मध्य में फैली हुई हैं। पूर्व में पो-नदी का उपजाऊ मैदान है क्योंकि नदी ने आल्पस पर्वत से उपजाऊ मिट्टी लाकर यहाँ जमा कर दी है। पो-नदी का मैदान वास्तव में ऐड्रियाटिक समुद्र का एक भाग था।

इटली का जलवायु धरातल के अनुसार भिन्न है। उत्तर के प्रदेश में ऊँचाई के कारण तापक्रम नीचा होना चाहिए, परन्तु आल्पस पर्वतमाला उत्तर से ठंडी हवा को आने नहीं देती इस कारण बहुत सी घाटियों में मैदानों से भी कम सरदी पड़ती है। यहाँ जनवरी का तापक्रम ७४ फै० रहता है। इटली के दक्षिण प्रायद्वीप में जहाँ कि समुद्र का प्रभाव जलवायु पर

अधिक पड़ता है जनवरी का तापक्रम ४०° फै० से ५०° फै० तक रहता है और गरमियों में तापक्रम ७५° फै० तक पहुँच जाता है। वर्षा अधिकतर जाड़े में होती है। दक्षिण भाग में वर्षा गरमियों में बिलकुल नहीं होती परन्तु उत्तर में जाड़े और गरमी दोनों में ही वर्षा होती है। आल्पस के पर्वतीय प्रदेश में वर्षा ४० इंच से ५० इंच तक होती है। सारे देश में ३० से ४० इंच का औसत है।

यद्यपि इटली पर्वतीय प्रदेश है परन्तु फिर भी यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। देश में ऐसी भूमि बहुत कम है जिस पर पैदावार नहीं हो सकती। इटली में अनाज बहुत उत्पन्न होता है फिर भी बहुत सा अनाज बाहर से मँगाना पड़ता है। यहाँ फलों की पैदावार बहुत होती है। इटली में कुछ उद्योग-धंधे उन्नत अवस्था में हैं किन्तु यह धंधे स्थानीय कच्चे माल पर ही निर्भर रहते हैं।

इटली में कोयला और लोहा न होने के कारण औद्योगिक उन्नति अभी तक नहीं हो सकी। यहाँ जलशक्ति बहुत है परन्तु अभी तक जलशक्ति की अधिक उन्नति नहीं हो सकी।

इटली में गेहूँ और अँगूर बहुत उत्पन्न होता है, येही यहाँ की मुख्य पैदावार हैं। ये दोनों फसलें इटली के एक तिहाई भूमि पर उत्पन्न की जाती हैं। इटली में टस्कैनी की चियांटी (Chianti)। पीडमांट की असती (Asti) और सिसली की मर्सिला नामक शराब प्रसिद्ध हैं। पो-नदी के प्रदेश में जहाँ सिंचाई की सुविधा है चावल उत्पन्न होता है। गेहूँ के अतिरिक्त मकई भी इटली में अधिक उत्पन्न होती है। दक्षिण प्रायद्वीप तथा आल्पस पर्वतीय प्रदेश की घाटियों में जैतून बहुत उत्पन्न होता है।

अनाज तथा खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त इटली में रेशम और चुकंदर भी बहुत उत्पन्न होता है। पीड-मांट, लामबार्डी तथा वैनेशिया के प्रदेशों में रेशम के कीड़े बहुत पाले जाते हैं। मिलन रेशम के धंधे का मुख्य केन्द्र है। मैदान में चुकंदर बहुत उत्पन्न होता है और देश की माँग को पूरा करने के लिए शक्कर तैयार की जाती है। सिसली में थोड़ी सी कपास उत्पन्न होती है।

इटली में फलों की पैदावार बहुत होती है। अंजीर, बादाम, आलू-बुखारा तथा पिश्ता बहुत अधिक बाहर भेजा जाता है। इनके अतिरिक्त संतरा, नीबू, टमाटर तथा ताज़े साग प्रतिदिन ऐक्सप्रेस ट्रेन से आस्ट्रिया और जर्मनी को भेजे जाते हैं। उत्तर के मैदानों में दूध और मक्खन का धंधा होता है। भेड़ें पालने का धंधा भी उत्तर में होता है।

इटली में खनिज पदार्थों की अधिकता नहीं है। थोड़ा निम्नश्रेणी का लिगनाइट कोयला टस्कैनी और अम्ब्रिया में निकलता है। यल्वा के द्वीप में लोहा यथेष्ट निकलता है। सार्डीनिया तथा आल्पस में भी थोड़ा लोहा निकलता है। इटली संसार में गंधक उत्पन्न करने वाले देशों में प्रमुख है। अधिकतर गंधक सिसली से निकलती है। इटली में संगमरमर तथा अन्य इमारती पत्थर बहुत निकलता है। टस्कैनी के मसा-करारा (Massa Carrara) से संसार प्रसिद्ध संगमरमर पत्थर निकलता है।

इटली में कोयले की बहुत कमी है किन्तु जल शक्ति की बहुतायत है। पिछले वर्षों में जलशक्ति को अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है। इस समय लगभग ४० लाख घोड़ों की शक्ति की बिजली उत्पन्न की जाती है। रेलों और कारखानों में बिजली का उपयोग किया जा रहा है। सूती कपड़े तथा रेशमी कपड़े के धंधे यहाँ महत्त्वपूर्ण हैं। सूती कपड़े का धंधा उत्तर के केन्द्रों और नेपिल्स में केन्द्रित है; और रेशमी कपड़े का धंधा पीडमांट, लम्बार्डी तथा वैनेशिया में केन्द्रित है। उत्तर के सूती कपड़े के केन्द्रों में नकली रेशम का धंधा बहुत उन्नति कर गया है।

इनके अतिरिक्त रसायनिक उद्योग-धंधे यहाँ विशेष उन्नति कर गए हैं। टयरिन में मोटरकार बनाने का धंधा केन्द्रित है। इटली योरोप तथा अमेरिका को रेशम, शराब, गंधक तथा भोज्य पदार्थ भेज कर तैयार माल मँगाता है।

उत्तरी अमेरिका ने थोड़े से समय में जो आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है उसके कतिपय कारण हैं। उत्तरी अमेरिका उन्नत राष्ट्रों के समीप है तथा यहाँ का जलवायु योरोप निवासियों के लिए सर्वथा अनुकूल है। इसके अतिरिक्त यहाँ की भूमि खेतीबारी के लिए बहुत उपयोगी है। यहाँ कोयला, लोहा तथा अन्य खनिज पदार्थ भी बहुत पाये जाते हैं। यही कारण है कि उत्तरी अमेरिका इतनी जल्दी उन्नति कर सका।

उत्तरी अमेरिका

उत्तरी अमेरिका के दोनों ओर अर्थात् पूर्वी तथा पश्चिमी किनारों पर दो पर्वत मालायें हैं जो दक्षिण से उत्तर की ओर फैली हुई हैं। इन दोनों पर्वत मालाओं के बीच का देश या तो मैदान है अथवा पठार है। ये पर्वत मालायें महाद्वीप की पूरी लम्बाई में फैली हुई हैं। इस कारण इनकी पश्चिम श्रेणियों में पठार बन गए हैं। पूर्व की ओर क्रमशः इस पर्वत माला के ढाल मैदान में परिणत हो गए हैं। इस महाद्वीप के दक्षिण में पठार है। इसका कारण यह है कि समुद्र ने नीची भूमि को डुबो दिया है और केवल ऊँची भूमि ही रह गई है। उत्तरी अमेरिका में पूर्वी भाग से

पश्चिमी भाग के लिए जो मार्ग हैं वे राकी पर्वत माला के दर्रों से होकर जाते हैं। इन दर्रों की ऊँचाई ८००० फीट तक है।

उत्तरी अमेरिका में झीलें बहुत हैं। विशेषकर वे झीलें जो सेन्ट-लारेन्स नदी से जुड़ी हैं व्यापार के लिए उपयोगी हैं। ये झीलें नदी और नहरों से इस प्रकार जुड़ी हैं कि इनमें जहाज़ आ जा सकते हैं। इन झीलों में जहाज़ सुपीरियर झील पर स्थित पोर्ट-आर्थर तक पहुँच जाते हैं। उत्तरी अमेरिका में अन्य नदियाँ भी व्यापारिक दृष्टि से महत्व पूर्ण हैं।

उत्तरी अमेरिका का जलवायु अक्षांश रेखाओं के अनुसार ही भिन्न भिन्न भागों में भिन्न है। परन्तु यहाँ के जलवायु पर बाहरी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। अमेरिका का पूर्वी किनारा एशिया के पूर्वी किनारे से गरम है परन्तु पश्चिमी किनारा योरोप के पश्चिमी किनारे से ठंडा है। पश्चिम की पर्वत श्रेणियाँ नम हवा को अन्दर जाने से रोकती हैं। इस कारण पश्चिमी प्रदेश अधिकतर शुष्क है और बिना सिंचाई के खेती बारी नहीं हो सकती। उत्तरी अमेरिका में कोई पर्वत माला पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई नहीं है। इस कारण उत्तरी अमेरिका के मैदानों पर उत्तर से तेज़ सर्द हवा बहती है। इन हवाओं का प्रभाव दक्षिण भाग में भी दृष्टि गोचर होता है। इसका फल यह होता है कि मिसिसीपी नदी का मुहाना जम जाता है। टैक्सास (Texas) के दक्षिण में १४° तक पाला पड़ता है जिससे नारंगी की फसल को हानि पहुँच जाती है।

पहाड़ों के अतिरिक्त उत्तर में हडसन की खाड़ी, दक्षिण में मैक्सिको की तथा मध्य में झील समूह का भी जलवायु पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इन झीलों से केवल गर्मी और सर्दी की अधिकता ही कम नहीं होती वरन ग्रीष्म काल में इनके कारण थोड़ी वर्षा भी होती है। उत्तर पूर्व में वर्षा कम होती है अतएव इस स्थानीय वर्षा का यहाँ बहुत महत्व है।

उत्तरी अमेरिका में गर्मियों के दिनों में समस्त महाद्वीप गरम हो जाता है। ठंडी और नम हवा अटलांटिक और प्रशान्त महासागर से पृथ्वी की ओर बहती है। हवा को पर्वतीय प्रदेश पार करने में पानी देना पड़ता है। पश्चिम में वैंकोवर (Vancouver) तक वर्षा अच्छी होती है परन्तु दक्षिण में, तथा अन्दर की तरफ़ वर्षा कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि प्रशान्त महासागर की हवाओं का रुख दाहिनी ओर हो जाता है और वे मैक्सिको की ओर बहती हैं। प्रशान्त महासागर के तट पर सैनफ्रैंसिसको तक दक्षिण में अच्छी वर्षा हो जाती है। वैंकोवर से सैनफ्रैंसिसको तक पतझड़ में वर्षा होती है। परन्तु इसके दक्षिण में वर्षा नहीं होती।

अटलांटिक समुद्रतट पर मैक्सिको की खाड़ी के समीप तथा उत्तर में ४०° अक्षांश रेखा (Latitude) तक तथा पश्चिम में ९५° पश्चिम देशांश (Longitude) तक, ४० इंच से ६० इंच तक पानी बरसता है। ९५° पश्चिम देशांश से १००° पश्चिम देशांश तक, २० इंच से ३० इंच तक वर्षा होती है। मैक्सिको के पठार पर भी इतनी ही वर्षा होती है। प्रशान्त महासागर तट पर ही वर्षा होती है अन्दर की तरफ वर्षा नहीं होती।

वनस्पति

अटलांटिक तथा प्रशान्त महासागर के पर्वतीय ढालों पर वन एक से नहीं हैं। परन्तु दोनों किनारों के वन प्रदेश एक उत्तरी वन-प्रदेश की पट्टी से जुड़े हुए हैं जो कि जंगलों से ढकी है। उत्तरी अमेरिका में बहुत तरह के वृक्ष पाये जाते हैं। काला तथा सफ़ेद स्प्रूस, देवदारू लार्च (Larch) और बीच (Beech), मुख्य हैं। परन्तु यहाँ की लकड़ी कागज़ बनाने के अतिरिक्त किसी भी धंधों में काम नहीं आ सकती क्योंकि ठंड अधिक पड़ने के कारण उत्तर प्रदेश में वृक्ष अधिक नहीं बढ़ते। उत्तरी प्रदेश में पाइन (Pine) का वन अधिक फैला हुआ है। यहाँ पाइन, स्प्रूस, हैमलाक (Hemlock) तथा चीड़ के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। मिसिसिपी के वन प्रदेश में बलूत (Oak) बहुत पाया जाता है। प्रशान्त महासागर के समीपवर्ती प्रदेश में चीड़, हैमलाक तथा स्प्रूस, मध्य में सनोबर (Fir) अन्दर की ओर पाइन, चीड़, तथा लाल सनोबर (Red fir) भी मिलता है। दक्षिण में राकी पहाड़ पर मैहागनी (Mahogany) पीला पाइन, स्प्रूस, तथा साल (Sal) के वृक्ष पाये जाते हैं।

उत्तरी अमेरिका के वनों से रहित भाग को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम उत्तरी टुंड्रा का प्रदेश, दूसरा घास का मैदान और तीसरे सूखा प्रदेश। टुंड्रा उत्तर का वह प्रदेश है जहाँ बर्फ़ जमी रहती है और पैदावार नहीं हो सकती। जब बर्फ़ पिघल जाती है तब कुछ घास और झाड़ियाँ दिखलाई देती हैं। घास के मैदान बहुत दूर तक फैले हुए हैं। यह विस्तृत मैदान बहुत उपजाऊ है और इन्हीं पर खेती बारी होती है। सूखा भाग पश्चिम में है जहाँ पैदावार बहुत कम होती है।

कनाडा

यद्यपि कनाडा क्षेत्रफल में योरोप के बराबर है, किन्तु अभी तक उसकी अधिक उन्नति नहीं हो सकी है। इसका मुख्य कारण यह है कि जलवायु को प्रतिकूलता के कारण देश का बहुत बड़ा भाग ऊजाड़ है और उसकी उन्नति नहीं हो सकती।

कनाडा का धरातल राकी पर्वतमाला के पूर्व में चौरस है। उत्तर में टुंड्रा है, पूर्व में टुंड्रा की सीमा ५८° उत्तर अक्षांश रेखा तक है। टुंड्रा के दक्षिण में वन प्रदेश हैं। पश्चिम वन प्रदेश के दक्षिण में उपजाऊ मैदान है जो संयुक्त राज्य अमेरिका की सीमा तक फैले हुए हैं। अब वन प्रदेशों को भी साफ किया गया है और उनमें खेती की जा रही है।

कनाडा में वर्षा गर्मियों में होती है और जाड़े में बर्फ गिरती है। पूर्व में बर्फ अधिक गिरती है और पश्चिम में बहुत कम। पूर्व में वर्षा अधिक होती है और पश्चिम में कम होती है। पश्चिम में बिना सिंचाई के खेती नहीं हो सकती। कनाड का जलवायु गेहूँ की पैदावार के लिए बहुत अनुकूल नहीं है क्योंकि फसल के पकते समय कभी कभी पाला पड़ जाता है जिससे फसल नष्ट हो जाती है किन्तु अब ऐसे बीज उत्पन्न किए जा रहे हैं जो शीघ्र पक जावे।

कानाडा के मुख्य धन्धे चार हैं :—(१) खेती—विशेषकर गेहूँ की खेती (२) वनों से लकड़ी तथा पदार्थ प्राप्त करना, (३) पशुपालन तथा खनिज पदार्थों को निकालना।

खेती की दृष्टि से प्रेरी (Prairie) प्रदेश के प्रान्त तथा पूर्व के प्रान्त महत्त्वपूर्ण हैं। मैनीटोबा, (Manitoba) सैस- कचुआन (Saskatchewan) और अल्वर्टा (Alberta) में गेहूँ बहुत अधिक उत्पन्न किया जाता है। पूर्वीय प्रान्तों में खेती के साथ साथ दूध मक्खन का धन्धा तथा पशु पालन भी होता है। गेहूँ को उत्पन्न करने की दृष्टि से कनाडा संसार के प्रमुख राष्ट्रों में से है। क्रमशः कनाडा में गेहूँ की उत्पत्ति को बढ़ाया जा रहा है। कनाडा में गर्मियों के दिन कम होते हैं इस कारण जल्दी पकने वाले बीज उत्पन्न किये जा रहे हैं। पश्चिम में वर्षा कम होती है। वहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध किए जा रहे हैं। जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं हैं वहाँ सूखी खेती (Dry farming) की जा रही है। जिन प्रदेशों में खेती नहीं हो सकती वहाँ दूध तथा मक्खन का धन्धा, भेड़ पालने का धन्धा तथा फलों को उत्पन्न करने का धन्धा होता है।

कनाडा के वनों में अत्यन्त बहुमूल्य लकड़ी तथा अनन्त राशि वन सम्पत्ति भरी पड़ी है। यहाँ नदियों के द्वारा वनों की लकड़ी को औद्योगिक केन्द्रों तक लाने की सुविधा है। अतएव यह धन्धा बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। (वनों के परिच्छेद में देखो)

कनाडा खनिज पदार्थों के लिए धनी है। कोयला यहाँ सब प्रान्तों में

मिलता है। परन्तु खानें उन्हीं स्थानों पर खोदी जाती हैं जहाँ से कोयला बाहर भेजा जा सकता है। अधिकतर बन्दरगाहों के समीप ही कोयले की खानें हैं। नावास्कोशिया (Nova-Scotia) वैंकोवर (Vancouver) द्वीप तथा ब्रिटिश कोलम्बिया में कोयला निकाला जाता है। अल्बर्टा के पश्चिमी भाग तथा क्राऊ-नेस्ट (Crows'Nest) दर्रे में भी कोयला पाया जाता है। कनाडा में लोहा अधिक नहीं निकलता परन्तु ज्यारजिया (Georgia) की खाड़ी के समीप तथा नवास्कोशिया (Nova-Scotia) में लोहा निकाला जाता है। कनाडा के यूकेन (Yukon) प्रान्त में सोना निकलता है। आन्टैरियो (Ontario) कनाडा का मुख्य खनिज प्रान्त है। कनाडा संसार में सबसे अधिक सीसा (Lead) उत्पन्न करता है। आन्टैरियो प्रान्त के सडबरी (Sudbury) ज़िले से संसार का ८१ प्रतिशत सीसा (Lead) निकलता है। कनाडा संसार का ८६ प्रतिशत अबेस्टस उत्पन्न करता है।

औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से कनाडा पिछड़ा हुआ है। इसका मुख्य कारण कुशल श्रमियों की कमी तथा घने आबाद प्रान्तों में कोयले का अभाव है। क्रमशः जलविद्युत् के अधिकाधिक उत्पन्न होने से यह कठिनाई कम होती जा रही है। जो कुछ भी उद्योग धन्धे हैं वे पूर्व के प्रान्तों में केन्द्रित हैं जहाँ कोयला तथा जल विद्युत् दोनों ही हैं। लोहा स्टील, कागज़, चमड़ा तथा सूती कपड़े के धन्धे इनमें मुख्य हैं।

कनाडा का जलमार्ग संसार में अद्वितीय है। इस जलमार्ग का उपयोग संयुक्तराज्य अमेरिका तथा कनाडा दोनों ही करते हैं। सेंट लारेंस नदी उन बड़ी बड़ी झीलों से जुड़ी हुई है जो स्वयं एक दूसरे से नहरों द्वारा सम्बंधित हैं। समुद्री जहाज़ इन झीलों के द्वारा कनाडा के मध्य भाग तक पहुँच सकते हैं। इनमें वेलैंड (Welland) नहर जो नायगरा से समान दूरी पर बहकर नायगरा जल प्रपात को बचती हुई झीलों को जोड़ती है महत्वपूर्ण है। इस नहर को २५ स्थानों पर फाटकों से रोक कर पानी को ऊँचा उठा दिया गया है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण सू-नहर है जो सुपीरियर और ह्यूरन झीलों को जोड़ती है। इस जलमार्ग के द्वारा जहाज़ अन्दर तक बहुत दूर तक जा सकते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका की ओर से जहाज़ डूलथ (Duluth) तक जा सकते हैं। इस मार्ग को और छोटा बनाने के ज्यार्जियन नहर को बनाया गया है। इस नहर को बना कर ओटावा नदी को निपसिंग झील से मिला दिया गया, और निपसिंग झील को ह्यूरन झील से मिला दिया गया है। सेंट-लारेंस का मार्ग एप्रिल से नवम्बर तक खुला रहता है। शेष महीनों में जम जाता है।

जलमार्ग तो कनाडा का अद्वितीय है ही परन्तु रेल मार्ग भी अच्छा है। जो कुछ उन्नति कनाडा में हो सकती है वह जल मार्ग तथा रेलों के ही कारण हो सकी है। कनाडा में तीन मुख्य रेल पथ हैं—(१) कनैडियन पैसिफिक रेलवे, (२) ग्रांड ट्रंक पैसिफिक रेलवे, (३) कनेडियन नार्दर्न रेलवे। ये तीनों ही रेलें पूर्व से पश्चिम को मिलती हैं। इन रेलों को पश्चिमके राकी पर्वत माला के प्रदेश में कहीं कहीं ५००० फीट से भी अधिक ऊँचाई को पार करना पड़ता है। कनाडा की रेलों को बनाने में बहुत परिश्रम और धन व्यय करना पड़ा है। सच तो यह है कि यदि ये रेलें पश्चिम को पूर्व से न जोड़ती तो पश्चिमी कनाडा एक जनशून्य भूभाग रहता।

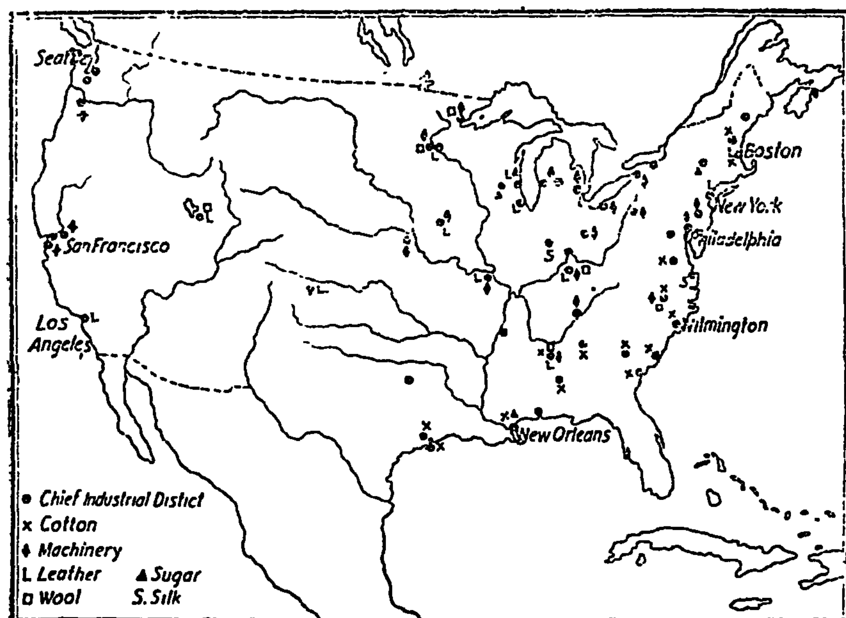
संयुक्तराज्य अमेरिका

धरातल के बनावट की दृष्टि से संयुक्तराज्य अमेरिका तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) पश्चिम में राकी पर्वत माला का पहाड़ी भाग, (२) पूर्व का अपलेशियन पर्वत माला का पहाड़ी प्रदेश, (३) मैदान। पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश में चौड़ी चौड़ी घाटियों, नदियों की बेसिन, तथा ऊँचे पहाड़ों की बहुतायत है। इनमें कैलीफोर्निया की घाटी बहुत उपजाऊ और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैदान पश्चिम में राकी पर्वत माला के समीप ऊँचे तथा पूर्व में नीचे हैं। मैदानों के मध्य में प्रेरी (Prairies) हैं। अपलेशियन पर्वत माला का पहाड़ी प्रदेश पश्चिम की भाँति अधिक ऊँचा नहीं है। यह प्रदेश ऊँचे नीचे पठारों और घाटियों से भरा हुआ है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि संयुक्तराज्य अमेरिका के पूर्वी भाग में वर्षा अधिक होती और जैसे जैसे पश्चिम की ओर बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे ही वर्षा कम होती जाती है। १००° देशांश रेखा इन दो भागों को विभक्त करती है। इसके पश्चिम में शुष्क भाग है और पूर्व में वर्षा अधिक है। पूर्व भाग में खेती बहुत होती है और घास भी बहुतायत से उत्पन्न होती है। पश्चिमी भाग में वर्षा कम होने से सिंचाई अथवा सूखी खेती (Dry farming) होती है और घास उत्पन्न होती है जिसके कारण पशुपालन खूब होता है।

उत्तरी अमेरिका में पश्चिमी भाग में सूखी खेती (Dry farming) की रीति खूब सफल हुई है। सूखी खेती का सिद्धांत यह है कि वर्षा के पूर्व खेतों को खूब जोता जाता है फिर नीचे की भूमि को दबा कर ठोस बना दिया जाता है जिससे वर्षा का जल अधिक गहराई तक न जा सके और पौधा उसका उपयोग कर सके। इसके ऊपर मिट्टी बिछा दी जाती है (लगभग ३ इंच)

जिससे नीचे का पानी सूख नहीं पाता। जिस भूमि पर इस रीति से खेती होती है उस पर प्रतिवर्ष खेती नहीं की जाती है वरन एक वर्ष भूमि को विश्राम देकर खेती की जाती है। इस रीति से फसल बहुत अच्छी होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका में खेती अन्य देशों की भाँति नहीं होती। खेती का वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है कि एक क्षेत्र में एक ही वस्तु उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए गेहूँ का क्षेत्र (Wheatbelt) कपास का क्षेत्र और मक्का का क्षेत्र पृथक् पृथक् हैं।



संयुक्तराज्य के उत्तरी मध्य भाग में गेहूँ बहुत उत्पन्न होता है। यहाँ गर्मियों में गर्मी और जाड़े में कड़ाके की सर्दी पड़ती है। पूर्व में वर्षा ४० इंच और पश्चिम में १५ इंच होती है। इस प्रदेश में संयुक्तराज्य का दो तिहाई गेहूँ उत्पन्न होता है। उत्तरी तथा दक्षिणी डकोटा (Dakota) और मिनीसोटा रियासतों में बसंत में फसल होती है, तथा नैब्रास्का, कैनसास, मिसूरी, इंडियाना, ओहियो तथा इलीनियास में जाड़ों में गेहूँ उत्पन्न होता है। गेहूँ अधिक उत्पन्न होने के कारण आटा तैयार करने का धन्धा यहाँ बहुत अधिक उन्नति कर गया है। इनके अतिरिक्त पश्चिम में कैलीफोर्निया तथा वाशिंगटन राज्यों में भी गेहूँ उत्पन्न होता है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में मक्का की पैदावार बहुत अधिक बढ़ गई है। संसार में सबसे अधिक मक्का संयुक्तराज्य अमेरिका में ही उत्पन्न होती है।

उत्तरी मध्य भाग की दक्षिणी रियासतों और विशेषकर मध्य मिसीसिपी बेसिन मक्का उत्पन्न करने वाला क्षेत्र है। मक्का की पैदावार के बढ़ने का कारण यहाँ का मांस का धन्धा है। पश्चिम में घास के मैदानों में चराये हुए पशुओं (गाय-बैल और सूअर) को मक्का के क्षेत्र में रखकर मोटा बनाया जाता है। इस प्रदेश में मांस का धन्धा उन्नति कर गया है। शिकागो, कैनसास, तथा ओमाहा इस धन्धे के मुख्य केन्द्र हैं।

अटलांटिक समुद्र के समीप तथा मैक्सिको की खाड़ी का प्रदेश कपास क्षेत्र है। संयुक्तराज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक कपास उत्पन्न करता है। फिर भी कपास की माँग इतनी अधिक है कि पूरी नहीं हो सकती। कपास उत्पन्न करने योग्य जितनी भी उपजाऊ भूमि थी सब जोती जा चुकी है और उत्तर-पश्चिम में जलवायु अनुकूल न होने के कारण कपास उत्पन्न नहीं की जा सकती। टैक्सास, आरकैनसास, पीडमांट का पठार तथा दक्षिण पूर्वी समुद्र तट मुख्यतः कपास उत्पन्न करते हैं। 'बौल-वीविल नामक कीड़े के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका की कपास की खेती को बहुत हानि पहुँची है।

कपास-क्षेत्र के दक्षिण भाग में चावल की बहुत पैदावार होती है, मिसिसिपी नदी के प्रदेश में गन्ना खूब उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त तम्बाकू, जौ और ओट के क्षेत्र भी हैं। संयुक्तराज्य के पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र तट के प्रदेश में फलों की पैदावार तथा दूध-मक्खन का धन्धा केन्द्रित है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि संयुक्तराज्य में घास तथा चारे की बहुतायत है। इस कारण यहाँ सुअर, गाय बैल और भेड़ बहुत अधिक पाली जाती हैं। पूर्व में सुअर अधिक पाले जाते हैं क्योंकि वहाँ मक्का बहुत उत्पन्न होती है। पश्चिम में गाय और बैल अधिक पाले जाते हैं क्योंकि वहाँ घास के मैदान अधिक हैं। पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश में भेड़ें अधिक पाली जाती हैं। पश्चिम में पाले गए पशु भी मक्का उत्पन्न करने वाले क्षेत्र में लाकर मोटे किए जाते हैं इस कारण वहाँ मांस का धन्धा अधिक उन्नति कर गया है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में केवल खेती की पैदावार ही बहुत अधिक नहीं है वरन खनिज पदार्थ भी इस देश में अनन्त राशि में भरे पड़े हैं। कोयला, लोहा, तेल तथा अन्य खनिज पदार्थ यहाँ की खानों में भरे हुए हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका खनिज पदार्थों की दृष्टि से अन्य सब देशों से धनी है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में खेती की उन्नति के फल स्वरूप कच्चा माल बहुतायत से उत्पन्न होता है। कोयला लोहा, तेल तथा जल-शक्ति की बहुतायत है, वनों में अत्याधिक वन-सम्पत्ति भरी पड़ी है, जलवायु औद्योगिक

उन्नति के लिए सर्वथा अनुकूल है, मार्गों की सुविधा है, तथा माल की खपत के लिए उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के बाज़ार समीप ही हैं। संक्षेप में संयुक्तराज्य अमेरिका को औद्योगिक उन्नति करने की सभी सुविधायें मौजूद हैं इसी कारण पिछले कुछ वर्षों में संयुक्तराज्य अमेरिका के उद्योग-धन्धों की उन्नति आश्चर्य जनक गति से हुई है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में पूर्व की रियासतों में ही सारे उद्योग-धन्धे केन्द्रित हैं। जितने भी धन्धे संयुक्तराज्य अमेरिका में स्थापित हैं वे लगभग सभी न्यू-इङ्गलैंड की रियासतों तथा अपलेशियन पर्वत प्रदेश की रियासतों में केन्द्रित हैं। कोयला, जलशक्ति की बहुतायत, तथा जलवायु की अनुकूलता इसका मुख्य कारण हैं। अधिकतर औद्योगिक केन्द्र कोयले की खानों के समीप अथवा समुद्र तट पर स्थित हैं। इस प्रदेश में लोहा, स्टील, कागज़, सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े का धंधा तथा चमड़े का धंधा मुख्य हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में संयुक्त राज्य अमेरिका औद्योगिक उन्नति में सब देशों को पीछे छोड़ देगा।

दक्षिण अमेरिका

दक्षिण अमेरिका के पश्चिम में ऐन्डीज़ पर्वत माला है। उत्तर में गायना का ऊँचा प्रदेश है तथा पूर्व में ब्रेज़ील का ऊँचा प्रदेश है। इन तीनों पहाड़ों के बीच में विशाल मैदान हैं। दक्षिण अमेरिका का अधिकांश भाग नीचे मैदान हैं। ऊँचा भाग तो देश में बहुत कम है।

दक्षिण अमेरिका का अधिकांश भाग ऊष्ण कटिबंध में है इस कारण अधिकांश देश योरोपियन जातियों के निवास योग्य नहीं है। यही कारण है कि दक्षिण अमेरिका पहाड़ी प्रदेशों पर ही अधिक आबाद है और उन्हीं प्रदेशों की अधिक उन्नति भी हुई है।

इस महाद्वीप में गर्मियाँ लम्बी और तेज़ होती हैं। अधिकतर वर्षा गर्मियों में ही होती है। अमेज़ननद के प्रदेश में वर्षा अधिक अर्थात् ८० इंच होती है। शेष उत्तर के भाग में वर्षा ४० से ८० इंच तक होती है, हाँ दक्षिण में वर्षा कम हो जाती है।

दक्षिण अमेरिका में ऐन्डीज़ पर्वत माला से निकल कर पूर्व में बहने वाली नदियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। ओरिनको (Orinoco) अमेज़न, तथा पराना मुख्य नदियाँ हैं। अमेज़न नदी ४००० मील लम्बी है किन्तु यह अधिकतर सघन वनों से आच्छादित प्रदेशों में बहती है इस कारण व्यापारिक

दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व नहीं है। पराना और अरगुये (Araguaya) नदियों का बेसिन अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मैदान शीतोष्ण कटिबन्ध में है। ये नदियाँ व्यापारिक दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ये ऊष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध को जोड़ती हैं।

यह महाद्वीप सघन वनों से भरा हुआ है। किन्तु रबर के अतिरिक्त वन सम्पत्ति का अधिक उपयोग नहीं हो पाता, क्योंकि यहाँ मार्गों की सुविधा नहीं है। अधिकांश वनों में कठोर लकड़ी है इस कारण यहाँ से लकड़ी भी बाहर नहीं भेजी जाती। केवल पराना में पाइन के वन हैं जहाँ से पाइन बाहर भेजा जाता है।

दक्षिण अमेरिका में कोयला नहीं है। इसी कारण यहाँ औद्योगिक उन्नति होना कठिन है। ब्राज़ील में लोहा यथेष्ट पाया जाता है किन्तु माल ले जाने की सुविधा न होने के कारण अधिक निकाला नहीं जाता। वैनेज्यूला तथा कोलम्बिया में पैट्रोलियम, पीरु चिली में नाइट्रेट, तथा बोलीविया में टिन मिलती है। कुछ सोना और चाँदी उत्तर ऐन्डीज़ में तथा ताँबा मध्य ऐन्डीज़ में मिलता है। संक्षेप में दक्षिण अमेरिका की यही खनिज सम्पत्ति है।

दक्षिण अमेरिका में खेती तथा पशुपालन ही मुख्य धंधे हैं। यद्यपि अधिकांश भूभाग जनशून्य और वीरान है, फिर भी जहाँ जहाँ जनसंख्या बस गई है वहाँ खेती और पशुपालन होता है। दक्षिण अमेरिका में केवल ४ प्रतिशत भूमि पर खेती होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ जनसंख्या कम है। मुख्यतः चाय, कहवा, यरबा मेट (Yarba mate) चाय की भाँति एक पत्ती, गेहूँ, मक्का और अल्फल्फा (Alfalfa) घास यहाँ की मुख्य पैदावार है। कहवा, यरबा मेट, मुख्यतः ब्राज़ील में उत्पन्न होता है। गेहूँ अधिकतर अरजैनटाइन में उत्पन्न होता है। अल्फल्फा घास केवल अरजैनटाइन में ही उत्पन्न होती है, इस कारण यहाँ पशु पालन का धंधा बहुत होता है। मक्का सभी भागों में होती है किन्तु अरजैनटाइन में सबसे अधिक मक्का उत्पन्न की जाती है। क्रमशः ब्राज़ील में कपास तथा गन्ने की खेती बढ़ती जा रही है।

दक्षिण अमेरिका में ब्राज़ील तथा अरजैनटाइन महत्त्वपूर्ण खेतिहर देश हैं। ब्राज़ील से कहवा बाहर भेजा जाता है और अरजैनटाइन से गेहूँ और मांस बाहर भेजा जाता है। संसार में अरजैनटाइन गेहूँ और मांस उत्पन्न करने वालों में प्रमुख है।

आस्ट्रेलिया

यह महाद्वीप क्षेत्रफल में संयुक्तराज्य अमेरिका के बराबर (३० लाख वर्ग मील) है। यह एक नीचा पठार है। पूर्व की ओर पूर्वी पर्वतमाला है। इस पर्वतमाला और समुद्र के बीच में चौड़ा मैदान है। आस्ट्रेलिया का धरातल इस प्रकार का बना हुआ है कि सब ओर ढाल है। उत्तर में कारपेन्टरी की खाड़ी की दक्षिण में रेम नदी की ओ तथा पश्चिम में ईरी (Eyre) झील की ढाल हैं।

आस्ट्रेलिया का लगभग एक तिहाई भाग ऊष्ण कटिबन्ध में स्थित है। अन्दर की ओर गर्मियों में बहुत गर्मी पड़ती है। जाड़े के दिनों में दक्षिण पूर्व में अधिक ठंड होती है। वर्षा आस्ट्रेलिया में बहुत कम होती है। उत्तरी भाग में वर्षा गर्मियों में होती है और दक्षिण-पूर्वी भाग में जाड़ों में वर्षा होती है। किन्तु अधिकांश भीतरी आस्ट्रेलिया में वर्षा बहुत कम (१० इंच) होती है। वह शुष्क देश है।

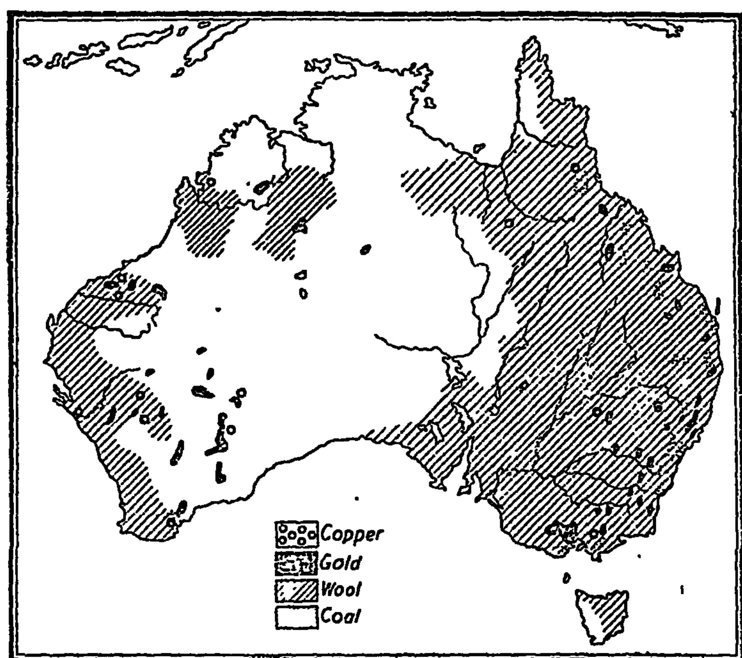
अधिकांश आस्ट्रेलिया शुष्क है। अन्दर की ओर जलवायु गोरी जातियों के लिए अनुकूल नहीं है। अतएव अधिकांश आस्ट्रेलिया गोरी जातियों के निवास के अयोग्य है। परन्तु गोरे लोग एशियाई देशों के निवासियों को आकर रहने देना नहीं चाहते। इस कारण यह प्रदेश जनशून्य है। केवल समुद्र तट के समीपवर्ती मैदानों में आबादी है। यद्यपि आस्ट्रेलिया का बहुत सा प्रदेश मरुभूमि है परन्तु मरुभूमि में भी जहाँ सोना मिलता है वहाँ खनिज केन्द्र स्थापित हो गए। मरुभूमि के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया में ऐसा भी प्रदेश है जो उपजाऊ बनाया जा सकता है परन्तु वे भाग भी जनसंख्या की कमी के कारण अभी तक वीरान पड़े हुए हैं।

पानी की कमी के कारण आस्ट्रेलिया में खेती बारी के लिए सिंचाई की आवश्यकता है। परन्तु इस देश में सिंचाई के साधन भी अधिक उपलब्ध नहीं हैं। अधिकांश नदियाँ गरमियों में सूख जाती हैं। केवल "मरे" और उसकी सहायक "मरमबिजी" अवश्य ही वर्ष भर बहती हैं। भीतर की ओर इन नदियों से सिंचाई की जाती है। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया में सिंचाई का एक दूसरा साधन भी है। पूर्वी पर्वत माला के पश्चिम में जो मैदान हैं उनमें पाताल फोड़ कुयें (Artesian wells) बनाने गए हैं। इन कुओं की विशेषता यह है कि पृथ्वी खोदने पर जल बड़े वेग से ऊपर उठता है, या तो पानी बाहर आ जाता है, अथवा वह इतना ऊपर उठ जाता है कि पाइप के द्वारा उपयोग में लाया जा सके। कुछ लोगों का विचार है कि भविष्य में पृथ्वी के गर्भ का जल कम हो सकता है। इस कारण उसे किफायत

से खर्च किया जाता है। किन्तु अधिकतर यह जल नमकीन होने के कारण खेती बारी के लिए उपयोगी नहीं है केवल भेड़ों को स्नान कराने तथा पिलाने के काम में आता है।

आस्ट्रेलिया के मुख्य तीन धंधे हैं। कृषि, पशुपालन विशेषकर भेड़ों का पालना और खनिज पदार्थों को निकालना। आर्थिक दृष्टि से आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्वी नीचे मैदान महत्त्वपूर्ण हैं। यह मैदान उत्तर में कारपैनट्रिया (Carpentaria) की खाड़ी से दक्षिण के समुद्र तट तक फैले हुए हैं।

खेती में गेहूँ आस्ट्रेलिया की मुख्य पैदावार है। आस्ट्रेलिया में जितनी भूमि पर खेती होती है उसकी लगभग दो तिहाई भूमि पर गेहूँ उत्पन्न किया जाता है। न्यू-साऊथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिण आस्ट्रेलिया और पश्चिमी आस्ट्रेलिया, (का वह भाग जिसमें भूमध्यसागर (Mediter ranean Sea) की सी जलवायु है) में गेहूँ बहुत उत्पन्न होता है। मरे-डार्लिंग-बेसिन (Murray Darling-Basin) में भी गेहूँ की बहुत अधिक पैदावार होती है।



गेहूँ के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया में फलों की पैदावार भी अधिकता से होती है। वैसे तो जहाँ भी वर्षा यथेष्ट है अथवा सिंचाई के साधन उपलब्ध

हैं वहाँ फलों की पैदावार होती है, परन्तु विक्टोरिया और दक्षिण आस्ट्रेलिया में फल बहुत उत्पन्न होते हैं। इन रियासतों में अंगूर भी बहुतायत से उत्पन्न होता है और पिछले वर्षों में अंगूर की शराब बनाने का धंधा यहाँ अधिक उन्नति कर गया है। उत्तर में कपास तथा गन्ने की पैदावार होती है इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया में मक्खन का भी धंधा होता है।

आस्ट्रेलिया में खनिज पदार्थों को निकालने का धंधा महत्वपूर्ण है। सोने के ही लालच में आरम्भ में बहुत से लोग आस्ट्रेलिया में आकर बसे थे। किन्तु अब सोने को निकालने का पहले जैसा महत्त्व नहीं है। कोयला और सोना आस्ट्रेलिया में बहुत पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ताँबा, चाँदी, सीसा (Lead) टिन, और ज़िंक भी निकाला जाता है।

क्वीन्सलैंड में माऊँट मारगन (Mount Morgan) चारटर्स-टावर (Charters Tower) और जिम्पी, विक्टोरिया में बैंडिगो, और पश्चिम आस्ट्रेलिया में कूलगार्डी (Coolgardie) माऊन्ट-मारगैरट (Mount Margaret), तथा मरचिसन (Marchison) मुख्य सोने की खानों के केन्द्र हैं। किन्तु अब खानों से सोना कम निकलने लगा है और सोने का धंधा अपना महत्त्व खोता जा रहा है।

न्यू-कैसिल और सिडनी कोयले की खानों के मुख्य केन्द्र हैं। जहाँ से बहुत अधिक राशि में कोयला निकाला जाता है। न्यू-साऊथ-वेल्स का ब्रोकिन-हिल(Broken Hill) खनिज केन्द्र प्रसिद्ध है। आस्ट्रेलिया का ६० प्रतिशत चाँदी, सीसा, रांगा तथा ताँबा इन्हीं खानों से निकलता है।

आस्ट्रेलिया के शुष्क भाग में खेती तो नहीं हो सकती किन्तु यह प्रदेश भेड़ पालने के लिए उपयुक्त है। यही कारण है यहाँ भेड़ पालने का धंधा बहुत होता है। आस्ट्रेलिया संसार में सबसे अधिक और सबसे बढ़िया ऊन उत्पन्न करता है। संसार प्रसिद्ध मोरिनो जाति की भेड़ यहीं पाली जाती हैं।

आस्ट्रेलिया में उद्योग धंधों की बहुलता नहीं है। फिर भी खेती के लिए यंत्र बनाने, ऊनी कपड़ा तैयार करने, तथा चमड़े की वस्तुयें बनाने का धंधा बहुत तेज़ी से उन्नति कर गया है। क्रमशः यह धंधे और भी अधिक उन्नति करेंगे इसमें संदेह नहीं है। आस्ट्रेलिया का विदेशी व्यापार मुख्यतः ब्रिटेन से है।

न्यूज़ीलैंड

न्यूज़ीलैंड आस्ट्रेलिया के पूर्व में तीन बड़े तथा अनेक छोटे टापुओं का एक उपनिवेश है जो १९०७ में पृथक् राज्य बना दिया गया। यह द्वीप एक पर्वत माला के बचे हुए भाग हैं,

इस कारण धरातल पथरीला है। यहाँ वर्षा खूब होती है। इस कारण यह देश वनों से आच्छादित है। पाइन (Pine) यहाँ बहुतायत से होता है।

दक्षिण द्वीप में कैन्टरबरी के मैदान बहुत उपजाऊ हैं जहाँ गेहूँ की खेती बहुत होती है। न्यूजीलैंड के निवासियों का मुख्य धन्धा खेती करना, गाय और भेड़ चराना है। पिछले कुछ वर्षों से फलों की खेती भी तेज़ी से बढ़ गई है। उत्तर में अंगूरों की पैदावार होती है। न्यूज़ीलैंड भेड़ का मांस, ऊन तथा मक्खन और गेहूँ अधिक उत्पन्न करता है। येही वस्तुयें विदेशों को भेजी जाती हैं। इस देश का व्यापार अधिकतर ब्रिटेन से होता है।

अफ्रीका

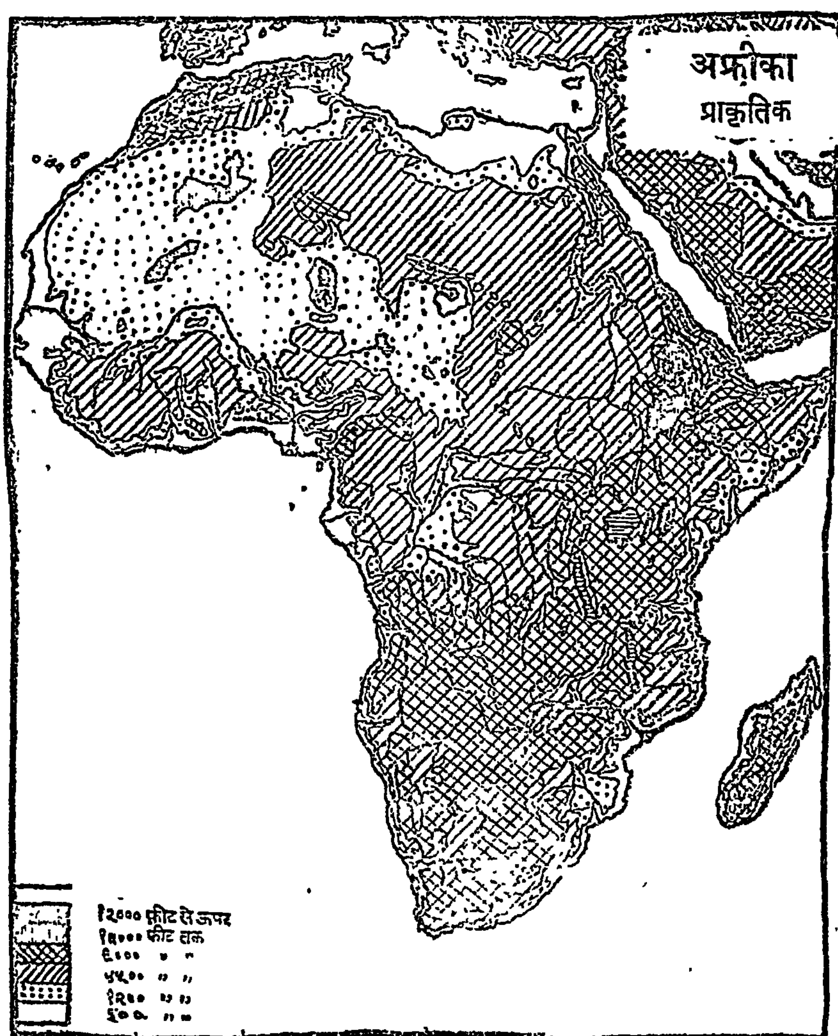
अफ्रीका का महाद्वीप यद्यपि पुरानी दुनिया का एक भाग है परन्तु वह पिछड़ी हुई दशा में है। इस महाद्वीप का अधिकतर भाग योरोपीय शक्तियों के आधीन है। यहाँ के मूल निवासी पश्चिमी देशों के पूँजी-पतियों द्वारा खोले हुए कारख़ानों तथा सोने की खानों में कुली बन कर कार्य करते हैं। वैसे अधिकांश भाग में मूल निवासियों का मुख्य पेशा खेती करना अथवा पशु पालन है। इस महाद्वीप में जो कुछ भी औद्योगिक उन्नति दृष्टिगोचर होती है वह योरोपियन पूँजी-पतियों के द्वारा ही हुई है। परन्तु श्रमजीवी समुदाय में या तो मूल निवासी हैं अथवा भारतीय।

इस महाद्वीप का क्षेत्रफल ११, ५०, ००० वर्ग मील है। यह महाद्वीप एक विशाल पठार के रूप में फैला हुआ है। उत्तरी भाग कुछ नीचा है किन्तु दक्षिणी भाग बहुत ऊँचा है। अफ्रीका के पठार में बहुत बड़ी घाटियाँ हैं। इन घाटियों में बहुत बड़ी झीलें बन गई हैं। जार्डन, मृत-सागर तथा लाल सागर इन्हीं घाटियों में हैं। दक्षिण में यद्यपि घाटियों में झीलें बहुत हैं परन्तु हैं बहुत छोटी।

अफ्रीका का महाद्वीप अधिकतर ऊष्ण कटिबन्ध में है इस कारण जलवायु सारे महाद्वीप में एकसा ही है। यदि पर्वतीय प्रदेश को छोड़ दें तो शेष सारा प्रदेश गरमियों में बहुत गरम और जाड़ों में कम ठंडा है। पर्वतीय प्रदेश में जाड़ों में ठंड बहुत पड़ती है।

इस महाद्वीप में वर्षा एकसी नहीं होती। उत्तरी भाग में गरमियों के दिनों में जब सहारा की मरुभूमि बहुत गरम होती है और हवा बहुत हल्की हो जाती है तब भूमध्य रेखा पर लगातार वर्षा होने की सीमा उत्तर में आ जाती है। जुलाई में इस वर्षा की सीमा टिम्बकटू की अक्षांश रेखा तक

होती है। दक्षिण में वर्षा सरदी और गरमी के आरम्भ में होती है। भूमध्य सागर के प्रदेश ऊष्ण कटिबन्ध की सीमा पर होने से सूखे हैं, क्योंकि कर्क



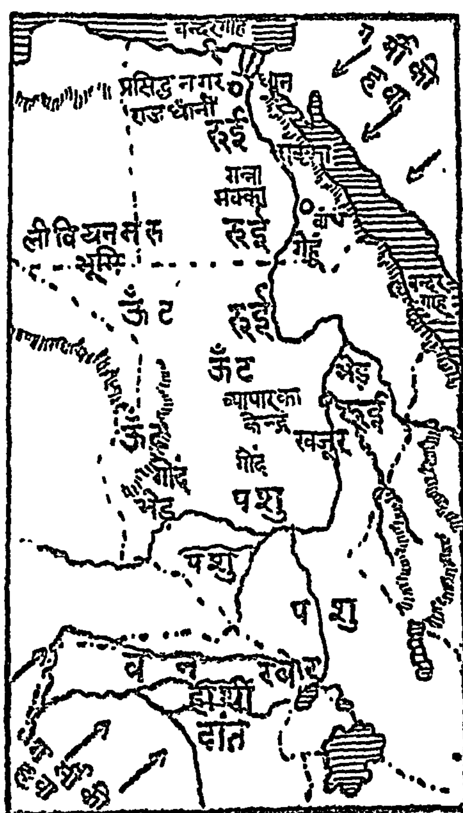
रेखा (Cancer) पर हवा भारी होती है। इस प्रदेश में दक्षिण से चलने वाली हवायें भी वर्षा नहीं करतीं क्योंकि वे सहारा से आती हैं। दक्षिण में भी मकर रेखा (Capricorn) के समीप हवा भारी होती है इस कारण वहाँ से हवा दूसरी ओर चलती है और वर्षा नहीं होती। केप अन्तरीप में पश्चिमी हवाओं से वर्षा खूब होती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भूमध्य रेखा के दोनों ओर वर्षा बहुत होती है किन्तु उत्तर में वर्षा होती ही नहीं।

जलवायु के अनुसार ही यहाँ की पैदावार भी भिन्न हैं। उत्तर तथा दक्षिण में भूमध्य सागर की जलवायु होने के कारण वहाँ जैसी ही पैदावार होती है। भूमध्य सागर तथा भूमध्य रेखा के बीच में रेगिस्तान हैं। भूमध्य रेखा के समीपवर्ती प्रदेश में सघन वन हैं, ये वन इतने सघन हैं कि इनमें मार्गों की सुविधा नहीं है। बाकी प्रदेश शुष्क है। जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ पैदावार होती है। दक्षिण में मरुभूमि कम है किन्तु उत्तर में सहारा का विशाल प्रान्त एक भयंकर मरुभूमि है जहाँ पैदावार बिलकुल ही नहीं होती।

इस महाद्वीप में बहुत सी जातियाँ निवास करती हैं। उत्तर में अरब, दक्षिण सहारा में सुडानी, तथा बन्टू निवास करते हैं और दक्षिण अफ्रीका में हब्शी तथा जुलू जातियाँ निवास करती हैं।

ईजिप्ट (मिस्र)

यह देश नील नदी के मुहाने से वादी हल्फा तक फैला हुआ है। पूर्व में इसके लाल सागर और पश्चिम में मरुभूमि है। अधिकांश जनसंख्या नील नदी से सींचे जाने वाले प्रदेश में ही निवास करती है। विस्तृत मरुभूमि में नील नदी एक विशाल जल-श्रोत के समान बहती है। इस देश में लगभग १०,००० वर्ग मील भूमि खेती के योग्य है और इस थोड़ी सी भूमि पर एक करोड़ चालीस लाख मनुष्य निवास करते हैं। खेती बारी ही इस जनसंख्या का आधार है। यहाँ उद्योग धंधे उन्नत नहीं हुए हैं। ग्रीष्मकाल की वर्षा के कारण नील नदी में जो बाढ़ आती है उसी से खेतों की सिंचाई



होती है। नील नदी में २६ जून के आस पास बाढ़ आना प्रारम्भ होती है, क्रमशः जल अधिक बढ़ने लगता है और जल का रंग लाल मिट्टी के मिल जाने से लाल हो जाता है। यह लाल मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। सितम्बर के महीने में नदी का पानी दोनों किनारों से ऊपर उठ जाता है और दोनों ओर पृथ्वी पर बहने लगता है। यदि पानी २७ फीट से भी अधिक ऊँचा उठ जावे तो बहुत हानि होने की सम्भावना रहती है। बाढ़ के दिनों में नील नदी के बाँधों पर दृष्टि जाती है क्योंकि बाँधों के टूट जाने से बहुत हानि हो सकती है।

मिस्र का जलवायु पैदावार के लिए बहुत ही अनुकूल है। यदि जल मिल सके तो प्रत्येक स्थान पर पैदावार हो सकती है। यहाँ कपास, मक्का, गन्ना, बाजरा, ज्वार, खजूर और चावल की पैदावार खूब होती है। मिस्र में पृथ्वी पर जमा हुआ शोरा बहुत मिलता है। इस कारण खाद देने की सुविधा है। शोरा तथा नील नदी ने मिस्र को उद्यान बना दिया है। यदि किसी वर्ष बाढ़ कम आती है अथवा अत्यधिक आती है तो अकाल पड़ जाता है। दोनों ही दशाओं में अकाल पड़ जाता है। मिस्र में कपास बहुत उत्पन्न होती है साथ ही यहाँ की कपास बढ़िया होता है। लंकाशायर, जापान तथा अन्य देशों को मिस्र से कपास जाता है।

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका में मुख्यतः पशु पालन, खेती और खनिज येही तीन धन्धे मुख्य हैं। दक्षिण अफ्रीका में लगभग ४ करोड़ भेड़ें तथा ८० लाख बकरे हैं और प्रतिवर्ष बहुत सा ऊन विदेशों को यहाँ से भेजा जाता है। गाय और बैलों की संख्या यहाँ एक करोड़ के लगभग है। दूध और मक्खन का धन्धा यहाँ उन्नत अवस्था में है और मक्खन तथा पनीर यहाँ से विदेशों को भेजा जाता है।

दक्षिण अफ्रीका में मक्का की खेती बहुत होती है किन्तु गेहूँ कम उत्पन्न होता है। केप कलोनी में फल बहुतायत से उत्पन्न होते हैं।

खनिज पदार्थों की दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका बहुत धना है। ट्रांसवाल की सोने की खानों में अत्यन्त राशि में सोना भरा पड़ा है। किम्बरले तथा जोन्सबर्ग की हीरे की खानों से संसार के अधिकांश हीरे निकलते हैं। दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल, आरेंज-फ्री स्टेट तथा जुलूलैंड में कोयला भी बहुत पाया जाता है। यहाँ से कोयला बाहर भेजा जाता है। इनके अतिरिक्त ताँबा टिन भी यहाँ निकाला जाता है। दक्षिण अफ्रीका का प्रदेश विशेष उन्नति कर गया है। यहाँ गमनागमन की सुविधायें उपलब्ध हैं और व्यवसाय भी खूब होता है।

तवर्ष—राजनैतिक

ब्

त

ब्रह्मपुत्र नदी

ई रा

होती है। [illegible] प्रारम्भ होती है. ...

दूसरा भाग

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

भारतवर्ष की प्रकृति

भारतवर्ष एक विशाल महादेश है इसका क्षेत्रफल (पाकिस्तान और हिन्दोस्तान मिलाकर) १५, ७५, १०७ वर्ग मील है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ३६ करोड़ है। सम्पूर्ण भारत की लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक २००० मील और चौड़ाई पश्चिम से पूर्व तक २५०० मील है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि रूस को छोड़कर वह समस्त योरोप के बराबर है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत अच्छी है। पूर्वीय गोलार्द्ध में उसकी स्थिति मध्य में है और वह हिन्द-महासागर के सर पर स्थित है इस कारण भिन्नभिन्न देशों से व्यापार सम्बन्ध स्थापित करने में उसे बहुत बड़ी प्राकृतिक सुविधा है। अफ्रीका, योरोप, आस्ट्रेलिया तथा पूर्वीय एशिया और अमेरिका को जो भी समुद्री मार्ग हैं वे भारत को उसकी स्थिति के कारण सुलभ हैं और वह उन मार्गों पर पड़ता है। यह भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए बहुत लाभदायक बात है। उत्तर में पहाड़ों तथा दक्षिण में समुद्र के कारण भारत की प्राकृतिक सीमायें निर्धारित हो गई हैं।

स्थिति

यद्यपि उत्तर के पहाड़ों ने भारत को एशिया के अन्य देशों से पृथक् कर दिया है और इस कारण उन देशों से स्थल द्वारा व्यापार करने में रुकावट होती है किन्तु फिर भी उत्तर पश्चिम में बहुत से दर्रे हैं जिनसे भारतवर्ष अपने पड़ोसी एशियाई देशों से व्यापार करता है। मुख्य दर्रे निम्नलिखित हैं :—

(१) बोलन का दर्रा —जिससे अफगानिस्तान को रास्ता जाता है।

(२) काराकोरम का दर्रा (काश्मीर में) जिससे तुर्किस्तान को रास्ता जाता है।

(३) जेलापला का दर्रा जो शिक्किम से तिब्बत को जाने का मुख्य मार्ग है।

यह सभी दर्रे १४,००० फीट से अधिक ऊँचे हैं।

भारत का समुद्र तट

भारत का समुद्र तट कटा हुआ नहीं है और न तट के पास बहुत से छोटे छोटे द्वीप ही हैं इस कारण भारत के समुद्र तट पर अधिक प्राकृतिक बंदरगाह नहीं हैं। समीप का तटवर्ती समुद्र छिछला चौरस और रेतीला है इस कारण उस पर अच्छे बंदरगाह अधिक नहीं हैं। कच की खाड़ी खम्भात की खाड़ी, पाकजलडमरूमध्य, मैनार की खाड़ी, और गंगा के डेल्टा पर ही समुद्र तट कटा हुआ है। यह सब छिछली हैं इस कारण उनकी बराबर मिट्टी निकालते रहने की आवश्यकता होती है तभी वह जहाज़ों के ए लिउपयोगी हो सकते हैं।

जहाँ तक क्षेत्रफल का प्रश्न है भारतवर्ष संसार के सबसे बड़े देशों में है। एशिया में तो वह निश्चय ही सबसे बड़ा देश है। हम यहाँ एशिया के कुछ बड़े देशों का क्षेत्रफल देते हैं :—

भारतवर्ष	१६ लाख	वर्ग	मील
सायबेरिया	१६ ,,	,,	,,
चीन (खास)	१५ ,,	,,	,,
मंगोलिया	१३ ,,	,,	,,

अन्य महाद्वीपों में

योरोपीय रूस	७५ लाख	वर्ग	मील
कनाडा	३५ ,,	,,	,,
ब्राज़ील	३२ ,,	,,	,,
संयुक्तराज्य अमेरिका	२६ ,,	,,	,,
आस्ट्रेलिया	२६ ,,	,,	,,

भारतवर्ष के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की है कि यहाँ अधिकांश भूमि मनुष्य के उपयोग में आती है किन्तु रूस और कनाडा का बहुत सा भाग मनुष्य के लिए व्यर्थ है। आस्ट्रेलिया का अधिकांश भाग मरुभूमि है और ब्राज़ील का अधिकांश भाग सघन वनों से आच्छादित है। संयुक्तराज्य अमेरिका में भी पश्चिमी रियासतों में लाखों एकड़ भूमि मरुभूमि हैं। इस दृष्टि से भारत का क्षेत्रफल यथेष्ट है और जहाँ तक भूमि का सम्बन्ध है भारत संसार के प्रमुख देशों में है।

जहाँ तक जनसंख्या का प्रश्न है चीन को छोड़कर भारत की जनसंख्या संसार में सबसे अधिक है। चीन की जनसंख्या के बारे में अभी तक निश्चय

पूर्वक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है वहाँ तो जनसंख्या को केवल कूता गया है कोई मनुष्य गणना नहीं हुई है।

भिन्न देशों की जनसंख्या १९३९ में इस प्रकार थी :—भारत ३८२० लाख, सायबेरिया ६०, लाख चीन ४५०० लाख (?) मंगोलिया ६० लाख, सोवियत रुस १६४० लाख, कनाडा ११० लाख, ब्राज़ील ४१० लाख, संयुक्तराज्य अमेरिका १३१० लाख आस्ट्रेलिया ७० लाख।

भारतवर्ष के इस विस्तृत क्षेत्रफल और बड़ी जनसंख्या के कारण कुछ विद्वान भारत को एक महाद्वीप कहते हैं। किन्तु वास्तविक बात तो यह है कि भारत एक बड़ा देश है। प्रकृति ने उसे एक भौगोलिक इकाई बनाया है, उसे भौगोलिक एकता प्रदान की है। यद्यपि आज एक राजनैतिक कुचक्र के कारण भारत का विभाजन हो गया है किन्तु यह दोनों राज्यों के लिए अहितकर है और भारत तभी समृद्धिशाली और उन्नत हो सकता है जबकि भारत के दो टुकड़े मिलकर एक हो जावें। वास्तव में प्रकृति ने भारत को एक देश बनाया है। मनुष्य का राजनैतिक पागलपन चाहे उसे कुछ समय के लिए विभाजित कर सके किन्तु बाद को उसे एक होना ही पड़ेगा।

यद्यपि पराधीन रहने के कारण भारत आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा राष्ट्र बना रहा किन्तु भारत में प्राकृतिक देन बहुत है। भारतवर्ष प्राकृतिक देन का धनी देश है। तभी कुछ लोगों ने कहा है भारत एक धनी देश है जिसमें निर्धन मनुष्य रहते हैं। कारण यह है कि हम पराधीनता तथा अन्य कारणों से उस प्राकृतिक देन का पूरा उपयोग नहीं कर सके, उद्योग-धधों की उन्नति नहीं कर सके। किन्तु अब जब भारत स्वतंत्र हुआ है तो भविष्य में उसके आर्थिक विकास की बहुत आशा है। भविष्य में वह संसार में प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र बनेगा इस में तनिक भी संदेह नहीं है।

भारत का आर्थिक भूगोल हमें बतलाता है कि भारत के भावी आर्थिक विकास के लिए उसके पास कौन से साधन हैं और उनका किस प्रकार पूरा पूरा उपयोग किया जा सकता है।

भारतवर्ष एक विशाल देश है। यहाँ समतल मैदान, गगनचुम्बी ऊँचे पर्वत, नदियों की घाटियाँ, विस्तृत मरुभूमि, सघन वन सभी प्रकार के प्रदेश देखने को मिलते हैं। किन्तु पृथ्वी की बनावट के अनुसार हम देश को चार भागों में बाँट सकते हैं।

(१) हिमालय का पहाड़ी प्रदेश जो उत्तर में स्थित है।

(२) गंगा और सिंध के मैदान जो गंगा के डेल्टा से सिंध के डेल्टा तक फैले हुए हैं।

(३) दक्षिण का पठार जो मैदानों के दक्षिण में है ।

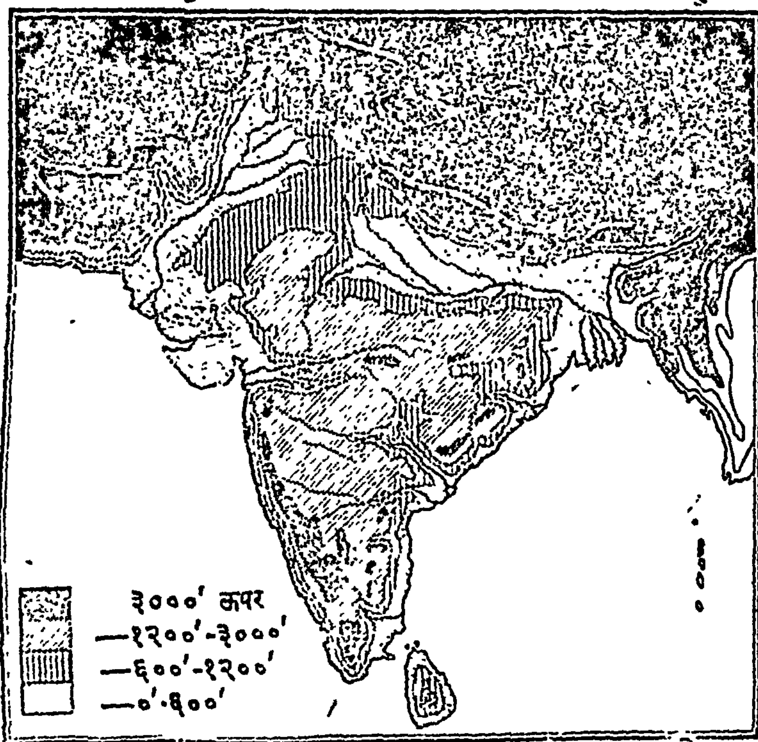
(४) तटीय मैदान जो दक्षिण पठार के पूर्व और पश्चिम में है ।

पर्वतीय प्रदेश

दक्षिण पठार के उत्तर पूर्व में जो प्रदेश है और जो आज पर्वतीय प्रदेश तथा गंगा के मैदान के नाम से प्रसिद्ध है किसी समय समुद्र में नीचे छिपा हुआ था । जिस समय दक्षिण पठार ज्वालामुखी विस्फोट के कारण लावा से ढक गया उसी समय पृथ्वी के धरातल में ऐसा भयंकर परिवर्तन हुआ कि जिससे उत्तर के छिछले समुद्र का धरातल ऊँचा उठकर संसार के सबसे ऊँचे पर्वत में परिणत हो गया । इस नवीन पर्वत श्रेणी से नदियों ने प्रति वर्ष अनन्त राशि में मिट्टी तथा रेता ला ला कर इस छिछले समुद्र को पाटना आरम्भ कर दिया और क्रमशः इस विस्तृत क्षेत्र को उन्होंने संसार के सबसे अधिक उपजाऊ मैदानों में परिणत कर दिया ।

उत्तर का विशाल हिमालय पर्वत संसार भर के पहाड़ों से अधिक ऊँचा है । इसकी पर्वत श्रेणियाँ पामीर से आरम्भ होती हैं । इस उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में हिमालय की केवल एक ही श्रेणी नहीं है । वास्तव में हिमालय पर्वत प्रायः तीन समानान्तर श्रेणियों से बने हैं । मैदान के किनारे वाली श्रेणी मैदान की तरह ही मिट्टी, बालू, और कंकड़ की बनी है । यह श्रेणी अधिक ऊँची नहीं है इसे शिवालिक के नाम से पुकारते हैं । इसके उत्तर में दूसरी श्रेणी है जो पचास साठ मील चौड़ी और ६००० से १२००० फुट तक ऊँची है । शिवालिक तथा इस श्रेणी के बीच में खुले हुए मैदान हैं । दूसरी श्रेणी के उत्तर में हिमालय की तीसरी श्रेणी है जो सबसे अधिक ऊँची है । इस श्रेणी की औसत ऊँचाई २०,००० फीट है । हिमालय की प्रसिद्ध चोटियाँ नगा पर्वत, नंदा देवी, गौरीशंकर (माउंट-एवरेस्ट) किंचिंगा और धौलागिरि इत्यादि श्रेणियाँ इसी में हैं । इस श्रेणी की कई चोटियाँ साल भर तक बरफ से ढकी रहती हैं । इस श्रेणी के दर्रे भी १६००० से १८००० फीट तक ऊँचे हैं । इस कारण इनको पार करके तिब्बत के पठार में जाना बहुत दुष्कर है । मार्ग अत्यन्त दुर्गम होते हैं । केवल पगडंडियाँ मात्र हीं होती हैं । मनुष्य अथवा पशु का तनिक भी पैर फिसलने पर हज़ारों फीट गहरे गड्ढों में गिरने की आशंका प्रत्येक क्षण बनी रहती है । नदियाँ भयंकर तथा अत्यन्त गहरी कंदराओं में होकर बहती हैं जिन्हें रस्से के पुल से पार करना पड़ता है । यही कारण है कि हिमालय उत्तर भारत तथा तिब्बत में एक अभेद्य दीवार की भाँति खड़ा है और किसी प्रकार का आवागमन तथा

व्यापार कठिन है। योरोप में आल्पस के दर्रे ४००० से ७००० फीट तक ऊँचे हैं। इन दर्रों में से होकर रेलवे लाइनें इटली को जर्मनी, आस्ट्रिया, तथा स्वीटज़रलैंड से जोड़ती हैं। इस कारण वहाँ का व्यापार बढ़ गया है। किन्तु हिमालय की अभेद्य दीवार ने भारतवर्ष को अपने पड़ोसी देशों से सर्वथा पृथक् कर दिया है।



हिमालय के पश्चिम में हिन्दूकुश है जो दक्षिण की ओर अफगानिस्तान में चला गया है। पश्चिम में सुलेमान पहाड़ उत्तर से दक्षिण की ओर गया है। सुलेमान के दक्षिण में और सिन्ध के पश्चिम में किरथर पहाड़ की श्रेणियाँ समुद्र तक चली गई हैं।

हिमालय की पश्चिमी पर्वत शाखायें नीची और उजाड़ हैं। नदियों ने इन पहाड़ियों को काट कर सुगम दर्रे बना लिए हैं। उनमें खैबर तथा बोलन के दर्रे महत्वपूर्ण हैं। शताब्दियों से भारतवर्ष का अपने पड़ोसी अफगानिस्तान से जो कारवाँ द्वारा व्यापार होता आ रहा है वह इन्हीं दर्रों का प्रसाद है। इन दर्रों में से केवल व्यापारी ही आते रहे हों यही बात नहीं है, भारतवर्ष पर

बाहर से जितने भी आक्रमणकारियों ने आक्रमण किया उनकी सेनाओं ने इन्हीं दर्रों में कूच किया था।

पूर्व में ब्रह्मपुत्र नद के मोड़ के आगे हिमालय की शाखायें दक्षिण की ओर चली गई हैं। पटकोई, नागा, तथा लुशाई पहाड़ियाँ आसाम को ब्रह्मा से पृथक् करती हैं। मनीपुर राज्य में होती हुई ये पहाड़ियाँ ब्रह्मा के अराकान योमा से मिल जाती हैं और इरावदी के मुहाने के पश्चिम की ओर नीग्रेस अन्तरीप में समाप्त हो गई हैं। इनके अतिरिक्त ज्यन्तिया, खासी और गारो आसाम की घाटी को सिलहट और कछार से अलग करती हैं। हिमालय की पूर्वीय श्रेणियाँ सघन वनों से आच्छादित हैं।

हिमालय की तीसरी श्रेणी जिसे महान हिमालय के नाम से पुकारा जाता है और दूसरी श्रेणी के बीच दो चौड़ी घाटिया हैं। काठमाँडू की घाटी और काश्मीर की घाटी। यह बहुत चौड़े मैदान हैं जो पाँच हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित हैं और चारो ओर ऊँचे पहाड़ों से घिरे हुए हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह पहले विशाल झीलें थीं जो मिट्टी से भर जाने के कारण मैदानों में परिणत हो गईं।

इसी प्रकार शिवालिक और हिमालय के बीच में चौड़ी घाटियाँ हैं जिन्हें दून कहते हैं। इसी लिए देहरादून नाम पड़ा है। हिमालय से जो मिट्टी और पत्थर तेज़ नदियाँ बहाकर लाती हैं उनके जमने से ये घाटियाँ बनी हैं। ये नदियों के बहाव में शिवालिक पहाड़ों से रुकावट पड़ती है इस कारण ये नदियाँ बहुत सी मिट्टी और पत्थर उन मैदानों में जमा कर देती हैं जो शिवालिक और हिमालय की प्रारम्भिक पहाड़ियों के बीच में हैं।

हिमालय के साथ साथ जहाँ वे मैदानों से मिलते हैं मैदान हैं जिन्हें भाभर कहते हैं जिनमें नदियों की लाई हुई मिट्टी, रेत और पत्थर जम जाता है। भाभर में वास्तव में चूने के पत्थर का बाहुल्य है इस कारण छोटी छोटी नदियाँ यहाँ सूख कर अन्दर बहती हैं और केवल बड़ी नदियाँ ही ऊपर रह जाती हैं। यह भाभर के मैदान उत्तर और उत्तर पश्चिम में अधिक विस्तृत है किन्तु पूर्व में कम विस्तृत हैं।

यह जल जो कि भाभर में सूख जाता है वहाँ फिर प्रगट होता है जहाँ कि मैदान आरम्भ होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हिमालय के समीपवर्ती मैदानों का बहुत सा भाग 'नम' और दलदल हो जाता है। इसे तराई कहते हैं। 'तराई' के मैदानों में बहुत नमी रहती है, घने जंगल खड़े हैं। यहाँ का जलवायु अधिक नमी होने के कारण मनुष्य निवास के उपयुक्त नहीं है।

तराई का विस्तार पूर्व में अधिक जलवृष्टि के कारण अधिक है पश्चिम में वह बहुत कम है।

भारत पर हिमालय का प्रभाव

हिमालय का हमारे देश के आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिमालय का भारत के जलवायु पर गहरा प्रभाव है। भारत के उत्तरी भाग में जो वर्षा होती है उसका मुख्य कारण हिमालय पर्वत ही हैं। मानसून इन पहाड़ों से टकराकर सारा पानी उत्तर के मैदानों में गिरा देती है। यदि उत्तर में हिमालय की श्रेणियाँ न होतीं तो मानसून हवायें उत्तर भारत को पार करके चली जातीं और वह सूखा रेगिस्तान बन जाता। केवल हिमालय से यही लाभ नहीं है वरन उसका ढाल और जल का बहाव इस प्रकार का है कि जो नदियाँ भारत की सीमा के बाहर उत्तर तिब्बत से निकलती हैं वे भी दक्षिण की ओर मुड़कर भारत के मैदानों में आजाती हैं। इस प्रकार जो वर्षा भारतवर्ष की ओर होती है और जो वर्षा भारत की सीमा के बाहर होती है उन सब का लाभ भारत को मिलता है। हिमालय से निकली हुई नदियों पर ही हमारे देश का मुख्य धंधा खेती निर्भर है। हिमालय पर बर्फ जमी रहने के कारण उससे निकली हुई नदियों में गरमियों में भी यथेष्ट जल रहता है जिससे सिंचाई होती है।

हिमालय उत्तर की अत्यन्त ठंडी हवाओं को उत्तर के मैदानों में आने से रोक लेता है। यदि उत्तर में हिमालय की ऊंची श्रेणियाँ न होतीं तो उन ठंडी हवाओं से उत्तर के मैदानों की खेती को बहुत हानि पहुँचती।

इसके अतिरिक्त उन पहाड़ों पर जो सघन वन है उनमें बहुमूल्य लकड़ी, घास, जड़ी बूटियाँ, छाल, फल, गोंद, इत्यादि पदार्थ अनन्त राशि में भरे पड़े हैं उनका बहुत से धंधों में कच्चे पदार्थ (Raw material) के रूप में उपयोग होता है (हिमालय की वन सम्पत्ति के विषय में आगे विस्तारपूर्वक लिखा गया है) जो कुछ भी हिमालय की वनसम्पत्ति के विषय में हमें ज्ञात है उससे यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रकृति ने इन वनों में अटूट सम्पत्ति भरदी है। देश के बहुत से धंधे जैसे कागज़, दियासलाई, तारपीन का तेल इत्यादि वनों की लकड़ी पर ही निर्भर हैं।

हिमालय ने भारत की प्राकृतिक सीमा बना दी है और विदेशी आक्रमण से भारत की रक्षा का प्रबंध कर दिया है। केवल उत्तर पश्चिम में जो बोलन और खैबर के दर्रे ही ऐसे खुले मार्ग हैं कि जिनसे भारत का अपने पड़ोसी राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित होगया है। शताब्दियों से भारत के अपने पड़ोसी

अफगानिस्तान से जो कारवां द्वारा व्यापार होता है आरहा है वह इन्हीं दर्रों का प्रसाद है। इन दर्रों से केवल व्यापारी ही आते रहे हों यही बात नहीं है भारत पर बाहर से जितने आक्रमण हुए हैं वह इन्हीं दर्रों के द्वारा हुए हैं।

यदि भविष्य में हिमालय के प्रदेश में जलविद्युत् की उन्नति हो जिसके लिए वहाँ बहुत सुविधा है तो हिमालय से वनों में मिलने वाले कच्चे माल से हिमालय प्रदेश में उद्योग-धंधों की स्थापना हो सकती है।

हिमालय से यह सब लाभ होते हुए भी यह तो कहना होगा कि वह उत्तर में एक महान् अभेद्य दीवार की भाँति खड़ा है और उसने भारत का चीन इत्यादि एशियाई राष्ट्रों से व्यापारी सम्बंध स्थापित होने में रुकावट डाली है।

गंगा और सिंध के मैदान

हिमालय के दक्षिण में सिंध और गंगा का उपजाऊ मैदान है। यह संसार के अत्यन्त उपजाऊ प्रदेशों में से है। इसकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। इस कारण यह बहुत घना आबाद है। यह वह प्रदेश है जहाँ भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता का जन्म हुआ था। इसमें सिंध का अधिकांश भाग, उत्तरी राजपूताना, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल, तथा आधा आसाम सम्मिलित है। यह मैदान पश्चिम में अधिक चौड़ा और पूर्व में कम चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल ५ लाख वर्ग मील है। इस विशाल मैदान में कहीं पत्थर का नाम तक नहीं है। इस मैदान में खोदने पर १००० फीट गहराई तक कहीं चट्टानों का चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुआ। राजपूताने का विस्तार ४०० मील लम्बा और १०० मील चौड़ा है। अरावली पहाड़ ने इसे दो भागों में बाँट दिया है। दक्षिणपूर्वी भाग गंगा का बेसिन है और उत्तर-पश्चिमी भाग सिंध का बेसिन है। वास्तव में यही भाग मरुभूमि है। यह मरुभूमि हवा द्वारा उड़ा कर लाई बालू से बना है। उत्तर में भाभर तथा तराई को छोड़ कर शेष मैदान में गंगा और सिंध की सहायक नदियों का जाल बिछा हुआ है और इनके द्वारा लाई हुई मिट्टी से ही यह मैदान बने हैं।

उत्तर में जहाँ हिमालय की श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं वहाँ पर असंख्य नदियों ने कंकड़ और पत्थर के ढेर इकट्ठा कर दिए हैं। यह पथरीले ढाल हिमालय पहाड़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पाये जाते हैं। इन्हें भाभर कहते हैं। इस "भाभर" प्रदेश में चूना अधिक होने के कारण छोटी छोटी नदियों और नालों का पानी इस प्रदेश में सूख जाता है। केवल बड़ी बड़ी नदियों का पानी ऊपर बहता है। अतएव इस प्रदेश में खेती नहीं हो

सकती। "भाभर" ५ मील से लेकर २० मील तक चौड़ा है। खेती न हो सकने के कारण इस प्रदेश में प्रायः आबादी नहीं है।

"भाभर" के आगे ज़मीन मैदान में मिल जाती है। यहाँ पर वह पानी जो भाभर में अन्दर चला जाता है पृथ्वी पर प्रगट होता है। इससे यहाँ दलदल और नमी बहुत है। इस नम प्रदेश में लम्बी घास और सघन वन हैं परन्तु नमी अधिक होने के कारण यहाँ मलेरिया का अधिक प्रकोप रहता है इस कारण आबादी बहुत कम है। इस मलेरिया के प्रदेश को तराई कहते हैं। पश्चिम में वर्षा कम होती है। इस कारण पश्चिम में मैदानों तथा भाभर के बीच में तराई नहीं है। पूर्व तथा मध्य में तराई का प्रदेश है जो कि भाभर से अधिक चौड़ा है।

गंगा और सिंध के मैदानों में दक्षिण में पठार हैं। यह पठार का प्रदेश भारतवर्ष का सबसे प्राचीन हिस्सा है। यह पठार का प्रदेश कई बड़े और छोटे पठारों में विभाजित है। यह पठार अरावली तथा पश्चिमी और पूर्वी घाटों द्वारा एक दूसरे से पृथक् कर दिए गए हैं।

पठार

दक्षिण का पठार असंख्य वर्षों से समुद्र के गर्भ में नहीं गया है। वास्तव में यह भाग खुली घाटियों का प्रदेश है यहाँ ढाल अधिक नहीं हैं और नदियाँ धीरे धीरे बहती हैं। कहीं कहीं पहाड़ियों का ढाल बहुत अधिक है परन्तु अधिकतर प्रायद्वीप में वास्तविक पर्वत श्रेणियाँ नहीं मिलतीं।

गंगा और सिंध के दक्षिण में मालवा और बुंदेलखंड की ज़मीन धीरे धीरे ऊँची होती गई है। मालवा पठार में विंध्याचल पर्वत ऊँचा और लम्बा है। यह बम्बई प्रान्त से आरम्भ होकर मध्यप्रान्त, बघेलखंड, संयुक्तप्रान्त में होते हुए बिहार उड़ीसा प्रान्त में सोन घाटी तक फैला हुआ है। यह पहाड़ गंगा के प्रदेश को नर्मदा, ताप्ती, और महानदी से मिलने वाले पानी से पृथक् करता है।

मालवा पठार के पश्चिम में अरावली की पहाड़ियाँ हैं। उत्तर पूर्व की ओर ये पहाड़ियाँ पतली होती गई हैं और देहली के समीप ये पहाड़ियाँ समाप्त हो गई हैं। अरावली की पहाड़ियों को बनास, माही, और लूनी नदियाँ पार करती हैं। ये नदियाँ अरब सागर में जाकर गिरती हैं। चम्बल नदी पूर्व की ओर बह कर जमुना में मिल जाती है। माऊँट आबू इस पर्वत माला का सबसे ऊँचा स्थान है।

नर्मदा के दक्षिण को दक्षिण का ऊँचा पठार कहते हैं। यह त्रिभुजाकार है और सब तरफ से पहाड़ों से घिरा हुआ है। उत्तर में सतपुड़ा की पर्वत

श्रेणी है। नर्मदा की घाटी विंध्याचल और सतपुड़ा को पृथक् करती है। सतपुड़ा की पर्वत श्रेणी में महादेव की पहाड़ियाँ सबसे ऊँची है जिस पर पंचमढ़ी स्थित है। सतपुरा की पहाड़ियाँ पूर्व में छोटा नागपूर तक फैली हुई हैं। सतपुड़ा में सब नदियाँ गहरी घाटियों में होकर बहती हैं। सतपुड़ा के दक्षिण में ताप्ती की घाटी है। नर्वदा और ताप्ती की चौड़ी घाटियों के मैदानों में लावा से उत्पन्न हुई मिट्टी पाई जाती है जो उपजाऊ है।

पठार के पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी घाट तथा पूर्वी किनारे पर पूर्वी घाट स्थित हैं। पश्चिमी घाट एक अभेद्य दीवार की भाँति पठार के पश्चिमी किनारे पर खड़ा है। इसमें से होकर आने जाने का मार्ग केवल कुछ दर्रों में से होकर जाता है। इनमें भोर घाट और थाल घाट मुख्य हैं। पश्चिमी घाट तथा समुद्र में अधिक अन्तर नहीं है। इस कारण पश्चिमी तट का मैदान बहुत पतली पट्टी की भाँति है। पश्चिमी घाट को पार करके अरबसागर में गिरने वाली नदियाँ बहुत कम हैं। परन्तु पश्चिमी घाट के पूर्व तथा पश्चिम में निकलने वाली बहुत सी नदियाँ हैं। पश्चिमी ढाल से निकल कर अरब सागर में गिरने वाली नदियों की संख्या बहुत अधिक है किन्तु वे बहुत छोटी हैं। जो नदियाँ पश्चिमी ढाल से निकलती हैं, वे लम्बी हैं। उनकी घाटियाँ चौड़ी हैं और उनके मुहाने बड़े हैं। भारतवर्ष का पश्चिमी किनारा किसी समय अफ्रीका से मिला हुआ था। बाद को बीच की भूमि समुद्र के गर्भ में चली गई। पृथ्वी के इस परिवर्तन के समय इस पर्वतश्रेणी का प्रादुर्भाव हुआ।

पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट की भाँति ऊँचा और एकसा नहीं है। बहुत से स्थानों पर नदियों ने इस पर्वत श्रेणी को काट कर अपने डेल्टे बना लिए हैं। इन पहाड़ों तथा समुद्र के बीच में एक नीचा मैदान है जो पश्चिमी समुद्र तट के मैदान के समान है। केवल अन्तर इतना ही है कि पूर्वी तटीय मैदान अधिक चौड़े और विस्तृत हैं। पूर्वी घाट नीचे और बहुत टूटे फूटे हैं। इस कारण यहाँ मार्ग आसानी से बनाये जा सकते हैं। पूर्वी घाट दक्षिण में नीलगिरि पहाड़ियों के द्वारा पश्चिमीघाट से जुड़े हुए हैं।

नर्वदा और ताप्ती की घाटियों में बड़े विस्तीर्ण तथा उपजाऊ मैदान हैं। नर्मदा के मैदान जबलपूर से हरदा तक २०० मील की लम्बाई में फैले हुए हैं। इस नदी की घाटी १२ मील से लेकर ३५ मील तक चौड़ी है। ताप्ती के मैदान की लम्बाई १५० मील तथा चौड़ाई ३० मील है। ताप्ती की सहायक अमरावती का मैदान भी १५० मील लंबा तथा ४० मील चौड़ा है। परन्तु जो नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं उनकी घाटियों में मैदान नहीं हैं। इन

नदियों के अतिरिक्त प्रायद्वीप में ऐसी भी नदियाँ हैं जो गंगा और यमुना में जाकर मिलती हैं।

भारतवर्ष के दक्षिणी पर्वतों में नीलगिरि का पहाड़ मुख्य है। इसी पर्वत पर उटकमंड स्थित है। पालघाट नदी के दक्षिण में नीलगिरि पर्वत के समान ही अनामलाई का पठार भी है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे पठार हैं जिनके किनारे के पास की भूमि बहुत नीची है। परन्तु पहाड़ों को बने अभी बहुत समय नहीं हुआ इस कारण नदियाँ अब भी अपनी घाटियाँ बना रही हैं।

तटीय मैदान

दक्षिण पठार चारों ओर मैदानों से घिरा है। उत्तर में गंगा और सिन्ध का मैदान, पूर्व में गंगा का मैदान, तथा पूर्व का तटीय मैदान है। दक्षिण में भी पूर्व का तटीय मैदान, तथा पश्चिम में पश्चिम का तटीय मैदान है।

पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी के बीच में कारोमंडल का चौड़ा विस्तृत उपजाऊ समतल तटीय मैदान है। पश्चिमी घाट और अरब सागर का तटीय मैदान तंग है और मालाबार के नाम से प्रसिद्ध है।

भूमि मिट्टी

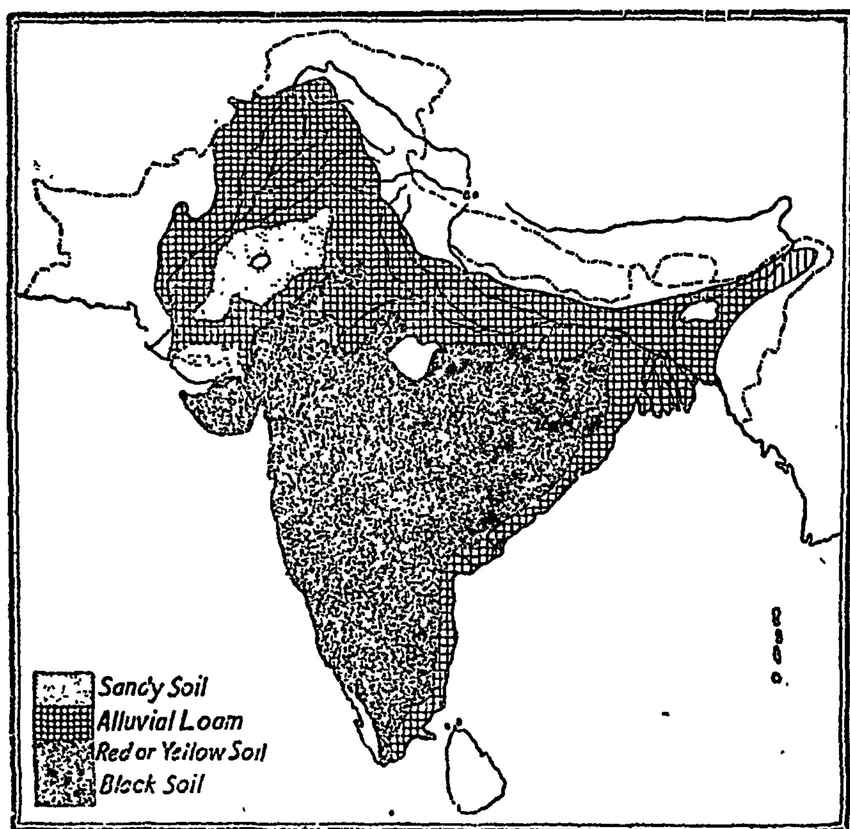
भारतवर्ष में मुख्य चार प्रकार की भूमि हैं—(१) लाल भूमि, (२) काली-कपास की भूमि जिसे रेगर भूमि भी कहते हैं (३) गंगवार भमि (Alluvial Soil) यह मिट्टी बहती हुई नदी की धार के साथ आकर जम जाती है। (४) लैटेराइट (Latorite) भूमि।

लाल ज़मीन (Crystalline Soil) विंध्या के नीचे सारे प्रायद्वीप में पाई जाती है। यह ज़मीन सारे मद्रास प्रांत में, मैसूर राज्य में और बम्बई के दक्षिणोत्तर में पाई जाती है। यह मिट्टी हैदराबाद के पूर्वी हिस्से में भी फैली है तथा मध्यप्रदेश से उड़ीसा प्रान्त, छोटा नागपूर और बंगाल के दक्षिण तक फैली हुई है। यह मिट्टी बुंदेलखंड और राजपूताने की कुछ रियासतों में भी पाई जाती है।

इस मिट्टी का रंग गाढ़ा लाल, भूरा या काला होता है। इस जमीन की गहराई और उपजाऊपन भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न है और इसका तत्व भी भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। साधारणतः ऊँची जगहों में यह कम उपजाऊ, कम गहरी, पथरीली और हलके लाल रंग की होती है। जहाँ इस ज़मीन की गहराई अधिक होती है वहाँ यदि पानी यथेष्ट परिमाण में मिल जाये तो खूब अच्छी फसल उत्पन्न हो सकती है। इस भमि

में नोषजन (Nitrogen) स्फुरिक अम्ल (Phosphoric Acid) और ह्यूमस (Humus) की कमी होती है। किन्तु पोटास और चूना यथेष्ट होता है।

काली कपास की भूमि या रेगर भूमि दक्षिण की सारी ऊँची भूमि (Table-land) में पाई जाती है। यह जमीन लगभग दो लाख वर्ग मील में फैली हुई है। बम्बई प्रान्त में, सारे बरार में, हैदराबाद रियासत



या मध्य प्रान्त के पश्चिमी हिस्से में, तथा मदरास प्रान्त के बिलारी, करनाल, कड़ापा, कोयमबटूर और टिनावेली ज़िलों में पाई जाती है। किन्तु प्रत्येक स्थान पर मिट्टी एक सी उपजाऊ नहीं है। पहाड़ियों के ऊपर यह भूमि कम गहरी और कम उपजाऊ है। जहाँ वर्षा अच्छी होती है वहाँ यह भूमि खूब उपजाऊ है। घाटियों में पाई जाने वाली काली मिट्टी बहुत अधिक उपजाऊ है। रेगर या काली भूमि बहुत बढ़िया दानेदार और काली होती है। यह बहुधा गीली और चिकनी होती है। एक अच्छी वर्षा के थोड़े दिनों ही बाद यह खेती के योग्य हो जाती है।

गीली भूमि सूखने पर सिकुड़ जाती है और उसमें बहुत सी दरारें पड़ जाती हैं। इसका काला रंग इसके कणों में लोहे के मिले रहने के कारण है। इस मिट्टी में चूना (Calcium) और मगनीसियम कर्बनेट (Magnesium Carbonate) यथेष्ट परिमाण में मिलते हैं। किन्तु नोषजन (Nitrogen) की इसमें भी कमी है।

पानी के बहाव से बह कर आई हुई मिट्टी (alluvial soil) भारत में सबसे अधिक पाई जाती है और यह अत्यधिक उपजाऊ है। सिंधु नदी से लेकर गंगा के कछार तक इस प्रकार की मिट्टी फैली हुई है। इसका क्षेत्रफल तीन लाख वर्ग मील है। प्रायद्वीप के दोनों किनारों पर यह ज़मीन कम या अधिक चौड़ाई में पाई जाती है। अधिकतर यह भूमि गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के मुहानों और उनके आसपास फैली है। इस मिट्टी में स्फुरिक अम्ल (Phosphoric acid), नोषजन (Nitrogen) व ह्यूमस (Humus) की कमी है किन्तु चूना और पोटाश काफी है।

सिंध गंगा के मैदान में सिंध का कुछ हिस्सा उत्तर राजपूताना, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल और आधा आसाम का भाग आ जाता है। इसकी पश्चिम में चौड़ाई ३०० मील और पूर्व में केवल ९० मील ही है। इस ज़मीन की गहराई १६०० फीट है और अधिकतर इसकी मिट्टी हिमालय से आती है।

गंगवार भूमि (Alluvial soil) बहुत उपजाऊ होती है और खेती के लिए विशेष उपयोगी होती है। साधारण पानी से ही उसकी उपजाऊ शक्ति बहुत बढ़ जाती है। इस भूमि में नोषजन (Nitrogen) तो कम होता है किन्तु स्फुरिक अम्ल (Phosphoric acid) तथा पोटाश काफी होता है। चूना इसमें बहुत होता है।

लेटराइट (Laterite) एक विशेष प्रकार की भूमि होती है। यह मिट्टी उपजाऊ नहीं होती। इस कारण इस पर खेती नहीं हो सकती। इसका रंग लाल होता है। यह मिट्टी मोटी होती है। इसमें पत्थर अधिक पाये जाते हैं। लेटराइट ज़मीन अधिकतर पहाड़ियों और पठारों के सिरे पर पाई जाती है। यह दक्षिण, मध्य भारत, मध्य प्रान्त, राजमहल, उड़ीसा, दक्षिण बम्बई, मालाबार तथा आसाम में पाई जाती है। इस ज़मीन में पोटाश, स्फुरिक अम्ल (Phosphoric acid) और चूना कम होता है किन्तु ह्यूमस अधिक होता है। इस ज़मीन में तेजाब अधिक होता है। इस ज़मीन में खेती करने के लिए खाद देने के अतिरिक्त इसमें तेज़ाब को कम करने की आवश्यकता होती है।

इन चारों प्रकार की भूमि से प्रत्येक में तीन प्रकार की मिट्टी होती है। (१) चिकनी, (२) मटियार, (३) बलुई। जिस ज़मीन के परमाणुओं का आकार बहुत छोटा होता है वे एक दूसरे से सटे हुए रहते हैं और इनमें से किसी भी दो परमाणुओं के बीच में बहुत कम स्थान होता है, तो उस ज़मीन को चिकनी मिट्टी कहते हैं। इस ज़मीन में पानी बहुत कठिनाई से प्रवेश करता है और अधिकतर उसके ऊपर ही रह जाता है। जो कुछ भी पानी इसके भीतर प्रवेश कर जाता है वह देर तक उसके अन्दर बना रहता है। इस प्रकार की चिकनी मिट्टी बिहार और बंगाल में पाई जाती है। इस पर धान और जूट की खेती खूब होती है।

जब मिट्टी के परमाणु काफी बड़े होते हैं और दो परमाणुओं के बीच की जगह काफी होती है तो उस मिट्टी को बलुई मिट्टी कहते हैं। रेतीली मिट्टी में पानी बहुत आसानी से मिट्टी को पार करके नीचे पहुँच जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस मिट्टी में पानी अधिक देर तक नहीं ठहर सकता और इस पर खेती करने के लिए अत्यधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसी ज़मीन में बहुत कम पैदावार होती है। इसमें बाजरा, ज्वार इत्यादि साधारण अनाज ही उत्पन्न किए जा सकते हैं।

दोमट या मटियार भूमि उसे कहते हैं जिसके परमाणु न तो चिकनी मिट्टी की तरह छोटे हों और न बलुई मिट्टी की तरह बड़े हों। यह मिट्टी खेती के लिए अन्य दोनों प्रकार की मिट्टियों से अच्छी होती है। इसमें सब प्रकार की फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं।

भारतवर्ष में प्रति किसान पीछे औसतन दो एकड़ से कुछ ही अधिक ज़मीन है। किन्तु अभी भी दो अरब से कुछ अधिक एकड़ भूमि जो कि खेती के योग्य है बिना जुती हुई पड़ी है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह ज़मीन ऐसी जगहों में है जो मनुष्यों की आबादी से दूर है। इस खेती के योग्य भूमि (जो बिना जुती पड़ी है) के अतिरिक्त ऐसी भी भूमि है जो कुछ कारणवश खेती के योग्य नहीं है। ऐसे ज़मीन पाँच प्रकार की है (१) जहाँ वर्षा बहुत कम होती है। (२) जो दलदल हैं, (३) बीहड़ ज़मीन, (४) रेहर ज़मीन (५) पथरीली ज़मीन, जिसमें लोहा और कोयला अधिक पाया जाता है।

भारतवर्ष में कुछ ऐसी ज़मीन हैं जहाँ पानी बिलकुल न मिलने से वहाँ खेती नहीं हो सकती। ऐसी भूमि पंजाब के दक्षिण-पश्चिम, सिंध, राजपूताना, मध्यभारत तथा दक्षिण की उच्च सम भूमि में पाई जाती है। पंजाब और

सिंध में नहरों के बन जाने से लाखों एकड़ भूमि पर खेती होने लगी है। परन्तु राजपूताना, दक्षिण तथा अन्य स्थानों की भूमि पानी की कमी के कारण खेती के योग्य नहीं है।

खेती के अयोग्य दूसरे प्रकार की ज़मीन वह है जिसमें ज़रूरत से ज्यादा पानी बना रहता है। हिमालय की तराई तथा दक्षिण बंगाल में इस प्रकार की भूमि पाई जाती है।

जब वर्षा खूब जोरों से होती है तब भारतवर्ष में पानी के बहाव का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। वर्षा का पानी खेतों पर से होकर उसके गुणकारी तत्वों को बहा ले जाता है। इसी को धरती का काटना (Soil Erosion) कहते हैं। कभी कभी तो वर्षा का जल इस वेग से बहता है कि भूमि में गहरे नाले बन जाते हैं और सारा प्रदेश ऊबड़ खाबड़ और खेती के अयोग्य बन जाता है। फिर वर्षा का पानी इस तेज़ी से मिट्टी को काटता हुआ बहता है कि भूमि पानी को सोख ही नहीं पाती और दूसरी सतह-वितल (Sub-soil) में यथेष्ट पानी नहीं पहुँचता। इसका फल यह होता है कि धीरे धीरे उस प्रदेश के कुयें बेकार हो जाते, हैं। पानी के साथ सदैव मिट्टी कटती जाती है अथवा उपजाऊ शक्ति घटती जाती है, क्रमशः वह प्रदेश खेती के अयोग्य बन जाता है।

पानी के बहाव पर अधिकार न होने से जो कटाव होता है उसके कई उदाहरण हैं। जमुना के दाहिने किनारे पर हज़ारों एकड़ बढ़िया ज़मीन बरबाद हो गई। क्योंकि पानी ने ज़मीन को काट कर बीहड़ बना दिया। यह खड्ड या बीहड़ ज़मीन (Ravines) पहले अच्छी और उपजाऊ जगह थी किन्तु पानी के मनमाने बहाव के कारण इसकी यह दशा हो गई है। प्रतिवर्ष इसका विस्तार बढ़ता जाता है। जहाँ पहले उपजाऊ खेत थे वहाँ अब खड्ड पाये जाते हैं।

ऐसी बीहड़ ज़मीन का अधिक विस्तार प्रायद्वीप, मध्यभारत, ग्वालियर, मध्यप्रान्त और बम्बई में पाया जाता है। ऐसी बीहड़ ज़मीन में बांध बना कर अथवा जंगल लगा कर कटाव को रोका जाता है।

चौथे प्रकार की खेती के अयोग्य भूमि ऊसर (रेहर) ज़मीन है। यह ऊसर भूमि अवध, आगरा, पंजाब, सिंध के हिस्सों, तथा पश्चिम सीमा प्रान्त में पाई जाती है। दक्षिण के नीरा नहर के प्रदेश तथा बम्बई के केरा ज़िले में भी ऊसर ज़मीन पाई जाती है। परन्तु अधिकतर ऐसी भूमि सिंध गंगा के मैदान और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में पाई जाती है।

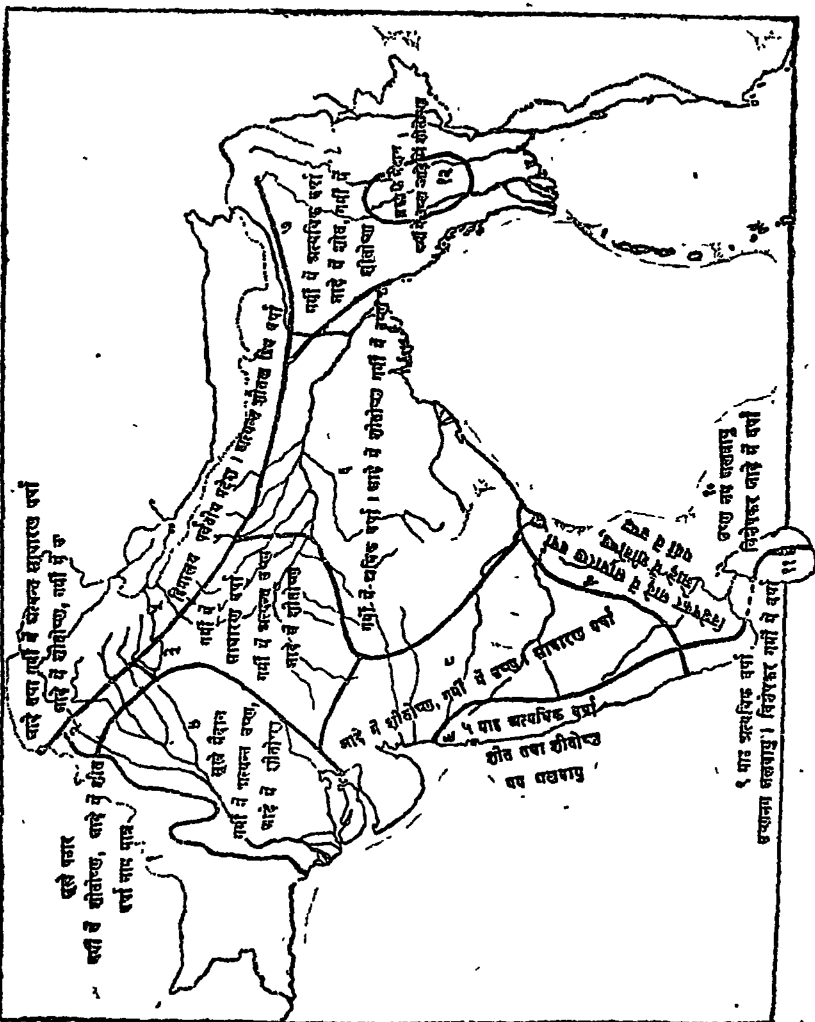
भारत में ऊसर ज़मीन की उत्पत्ति का सिंचाई से घनिष्ठ सम्बंध है। आवश्यकता से अधिक सिंचाई होने से उसमें रेह नमक (Alkaline Salt) रह जाते हैं। यदि यह रेह अधिक इकट्ठा हो गया तो फिर भूमि ऊसर बन जाती है और खेती के अयोग्य बन जाती है।

भारतवर्ष का जलवायु

भारतवर्ष एक विशाल देश है। इसकी लम्बाई चौड़ाई लगभग २००० मील है। ऐसे विशाल देश के भिन्न भिन्न भागों में यदि एकसा जलवायु न हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस देश में सूखे मैदानों से लेकर वर्षा के कारण लहलहाते हुए वन प्रदेश भी मिलते हैं। आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को किसी भी देश के जलवायु को जानना नितान्त आवश्यक है क्योंकि जलवायु पर ही किसी देश की खेती निर्भर रहती है। भारतवर्ष तो कृषि प्रधान देश है। इस कारण यहाँ जलवायु का प्रभाव मनुष्यों के आर्थिक जीवन पर अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है।

हिन्दुस्तान का दक्षिणी भाग कर्क रेखा और भूमध्य रेखा के मध्य में स्थित है। प्रायद्वीप का दक्षिणी भाग लंका भूमध्यरेखा के अधिक समीप है। इस कारण यह भाग प्रायः साल भर गरम रहता है। यही कारण है कि दक्षिण भारत में गरम कपड़े नहीं पहने जाते। यहाँ गरमियों और जाड़ों के तापक्रमों में अधिक अन्तर नहीं होता। यदि हम उत्तर में बम्बई तक बढ़ें तो तापक्रम का भेद भी बढ़ता जाता है। परन्तु प्रायद्वीप के सब भागों में तापक्रम में भेद एकसा नहीं होता। जो भाग समुद्र के समीप है, वहाँ तापक्रम का भेद कम है और जो समुद्र से दूर है वहाँ अधिक है। एकही अक्षांश वाले स्थानों में सूर्य की किरणें समान कोण से गिरती हैं। दिन और रात्रि की लम्बाई भी समान होती है। पर हवा की नमी और खुश्की के कारण इनके तापक्रम में भेद हो जाता है। हवा में जितनी ही नमी होगी उतना ही कम भेद शीतकाल तथा ग्रीष्म-काल में होगा। यही कारण है कि समुद्र के समीपवर्ती प्रदेश के तापक्रमों में कम अन्तर होता है। सिंध, राजपूताना, तथा पश्चिमी पंजाब में यह भेद और भी अधिक हो जाता है। डेराइस्माइल खाँ में किसी किसी साल सरदी में बर्फ पड़ जाता है, परन्तु गरमी का तापक्रम १२०० फै० रहता है। इसके विपरीत आसाम और पूर्वी बंगाल में गर्मी खुश्क नहीं होती। जिन दिनों उत्तर-पश्चिम भारत में गर्मी और खुश्की के कारण हरियाली का चिन्ह भी नहीं होता और धूल उड़ा करती है उन दिनों में आसाम, बंगाल और लंका में सब कहीं हरियाली रहती है। गुजरात, मध्यप्रनत, मध्य भारत, बिहार, संयुक्तप्रान्त न सिंध की तरह खुश्क हैं और न

आसाम की तरह नम हैं। यह कर्क रेखा से भी अधिक दूर नहीं। इसलिए यहाँ गर्मियों में खूब गर्मी और सरदी में ठंड पड़ती है।



तापक्रम पर ऊँचाई का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जैसे जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे तापक्रम कम होता जाता है। ३०० फीट की ऊँचाई पर एक अंश तापक्रम कम हो जाता है। इसी कारण हिमालय की ऊँची चोटियों पर जून में भी बरफ जमा रहता है जब हिन्दोस्तान के उत्तरी मैदानों में भीषण गर्मी पड़ती है।

हिन्दुस्तान का जो भाग भूमध्य रेखा के समीप है वह त्रिभुजाकार है। जिससे उस पर समुद्र का अधिक से अधिक प्रभाव पड़ता है। पठार की ऊँचाई भी गरमी को कुछ कम कर देती है। उत्तर के मैदानों की तिब्बत से चलने वाली ठंडी हवाओं से हिमालय की ऊँची दीवार रक्षा करती है। यदि उत्तर में हिमालय के ऊँचे पहाड़ न खड़े होते तो सर्दियों में उत्तर के मैदानों में भयंकर शीत पड़ता। उत्तर-पश्चिम के हिन्दूकुश, सफेद कोह, तथा सुलेमान पहाड़ भी हिन्दुस्तान की ईरान के तूफानों से रक्षा करते हैं। दर्रों के ज़रिये आने वाली हवाओं का प्रभाव बहुत अधिक नहीं होता।

भारतवर्ष में जलवृष्टि मानसून हवाओं के द्वारा होती है। भारतवर्ष का जलवायु बहुत कुछ मानसून हवाओं द्वारा प्रभावित होता है अतएव इनके विषय में हमें विस्तार पूर्वक जान लेना चाहिए।

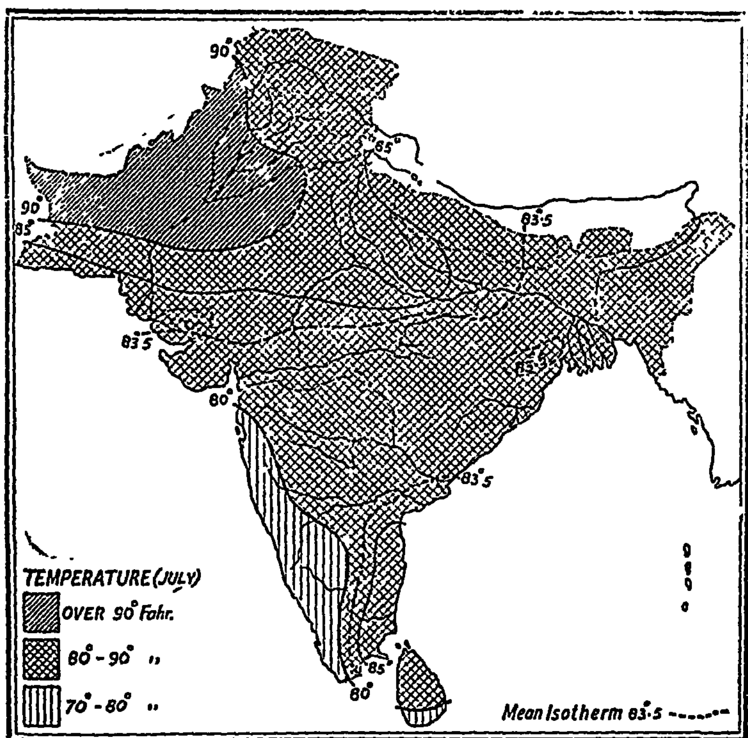
मानसून

इस देश में जलवृष्टि के विचार से वर्षा दो हिस्सों में बाँटी जा सकती है। पहला सूखे महीने, जिसमें वर्षा बिलकुल नहीं होती। दूसरे वर्षा के महीने। दिसम्बर से लेकर मई तक भारतवर्ष में सूखे दिन होते हैं और इन दिनों में पृथ्वी से समुद्र की ओर चलने वाली हवाओं की प्रधानता रहती है। इन सूखी हवाओं के चलने से तापक्रम बहुत घटता बढ़ता रहता है। जून से दिसम्बर तक यहाँ बरसात के दिन होते हैं। उन दिनों हवा समुद्र से पृथ्वी की ओर चलती है। इस कारण हवा में नमी अधिक होती है, और तापक्रम का उतार चढ़ाव अधिक नहीं होता।

गरमी के महीनों में भूमध्य रेखा के समीप हिन्द महासागर का औसत तापक्रम ७६० फै० होता है, परन्तु उन्हीं दिनों में भारतीय प्रायद्वीप का औसत तापक्रम ८२० फै० तथा सिंध बिलोचिस्तान का औसत तापक्रम ९५^{0}फै० से भी अधिक हो जाता है। अधिक गरमी के कारण स्थल की हवा हल्की होकर ऊपर उठ जाती है और भूमध्य रेखा की अधिक भारी हवा इसका स्थान लेने के लिए आती है। लगातार भाप के मिलते रहने से यह हवा नमी से लबालब भरी रहती है। पानी से भरी हुई मानसून दक्षिण-पश्चिम से भारतवर्ष की ओर चलती है और मालाबार तट से टकराती है।

गरमी में चलने वाली मानसून को दो शाखाओं में बाँटा जा सकता है (१) अरब सागर की मानसून (२) बंगाल खाड़ी की मानसून। बंगाल खाड़ी की मानसून पृथ्वी से बहुत दूर चल कर टकराती है और बहुत बड़े भाग पर वर्षा करती है। अरब सागर की मानसून में यद्यपि जल बहुत अधिक होता है, किन्तु उसका अधिकांश जल पश्चिमी घाट पर ही गिर जाता है। अरब

सागर की मानसून का कुछ अंश नर्बदा की घाटी में होकर अन्दर पहुँचता है और छोटा नागपुर में बंगाल खाड़ी की मानसून से मिलता है। बंगाल की खाड़ी की मानसून अराकान तट से टकराती है और उसके उपरान्त गारो



और खासी की पहाड़ियों के रास्ते अन्दर घुसती है। इन्हीं पहाड़ियों की घाटियों के सामने चेरा-पूंजी का पहाड़ी स्थान है, जहाँ की औसत वर्षा ४३० इंच है। इस तंग रास्ते से निकलकर मानसून पश्चिम की ओर हिमालय के साथ बहती है और पंजाब में अरब सागर मानसून की दूसरी शाखा से मिलती है। जैसे जैसे मानसून पश्चिम की ओर बढ़ती है वैसे ही वैसे वर्षा कम होती जाती है। हिमालय के समीप वर्षा कुछ अधिक होती है किन्तु अन्दर की तरफ कम हो जाती है।

जून के आरम्भ में मानसून पश्चिमी घाट के तट पर दिखलाई देती है और जून से जूलाई तक वर्षा अधिक बढ़ती जाती है। अगस्त में मानसून सारे देश पर छा जाती है और अगस्त तक वर्षा एक सी होती है। इसके उपरान्त मानसून निर्बल होने लगती है और वायु अन्दर तक नहीं पहुँचती और क्रमशः

मानसून लौटने लगती है। जिन भागों में सबसे आख़ीर में वर्षा पहुँचती है उन्हीं भागों में से सबसे पहले लौटती है। नीचे दी हुई तालिका से यह ज्ञात हो जायगा कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में मानसून कब पहुँचती और वापस लौटती है।

	प्रारम्भ—अन्त
बम्बई—	५ जून—१५ अक्टूबर
बंगाल—	१५ जून—३० अक्टूबर
संयुक्तप्रान्त—	२५ जून—३० सितम्बर
पंजाब—	१ जूलाई—१४-२१ सितम्बर

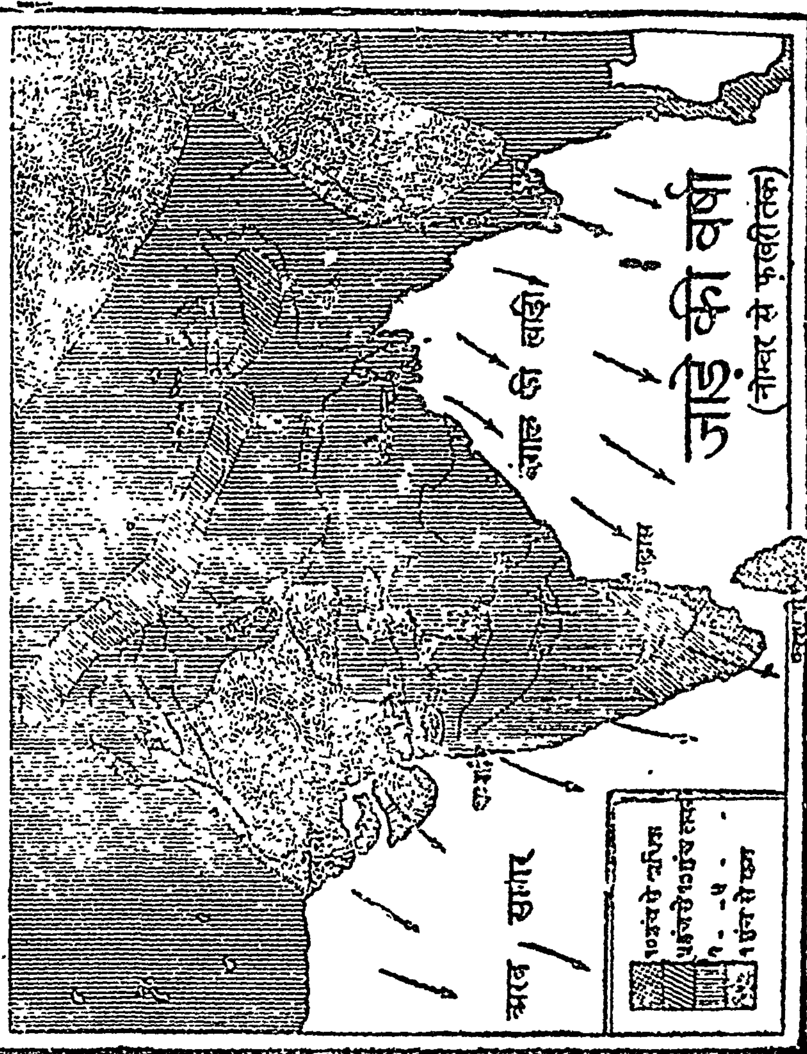
अरब सागरी मानसून दक्षिण की ओर राजपूताना, गुजरात और दक्षिण से लौटती है। इसी प्रकार बंगाल खाड़ी की मानसून गंगा के मैदानों से लौटती है।

गरमी के दिनों में चलने वाली मानसून से भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों को जल मिलता है। किन्तु वर्षा एक सी नहीं होती। कहीं अधिक कहीं कम। पश्चिमी घाट के पश्चिमीय ढाल पर वर्षा १०० इंच होती है किन्तु पूर्वीय ढाल पर केवल ४० इंच ही वर्षा होती है। बर्मा के तट पर भी वर्षा १०० इंच होती है किन्तु अन्दर की ओर केवल २० इंच से ४० इंच तक वर्षा होती है। दक्षिण प्रायद्वीप में तो वर्षा और भी कम अर्थात् १५″ से ३०″ तक ही होती है। मध्यप्रान्त, संयुक्तप्रान्त, तथा मध्यभारत में वर्षा २५″ से ५०″ तक होती है। पूर्वीय बंगाल तथा आसाम में ६५″ वर्षा होती है और शेष बंगाल में ५५″ वर्षा होती है। बिहार में वर्षा का औसत ४५″ है। उत्तर भारत में वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर कम होती जाती है। पंजाब में वर्षा कम होती है। पूर्वीय पंजाब में वर्षा २०″ होती है किन्तु पश्चिम में केवल ६″ ही वर्षा होती है।

जाड़ों की वर्षा

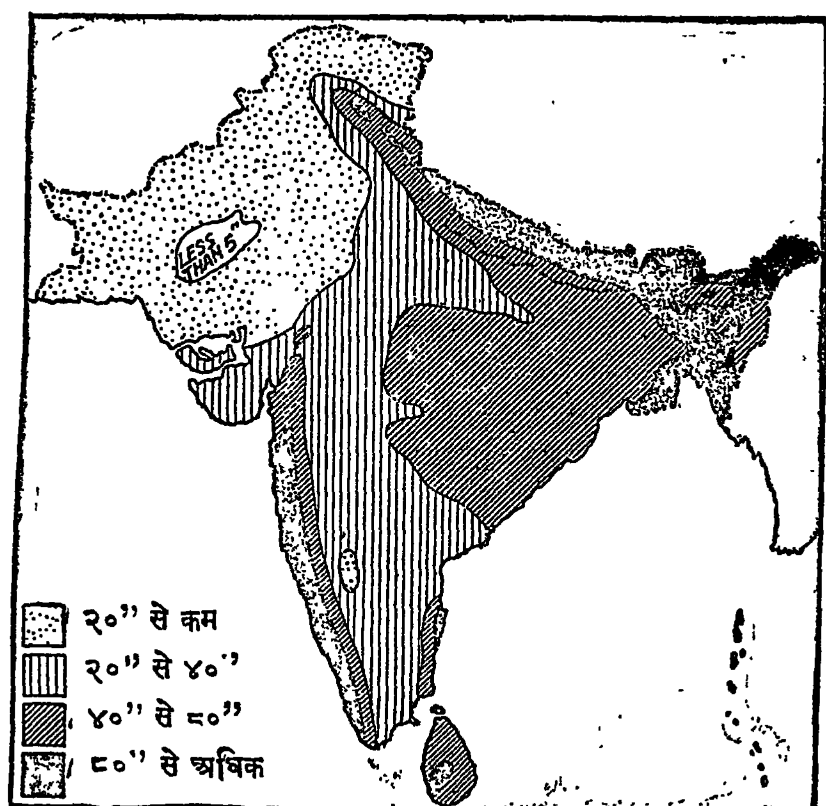
अक्टूबर से दिसम्बर तक मानसून उत्तर से दक्षिण की ओर लौटती है। दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में लौटती हुई मानसून समुद्र को पार करती है। पूर्व में यह लौटती हुई मानसून कारोमंडल तट, लोअर बर्मा, तथा बंगाल की खाड़ी के द्वीपों को जल देती है और पश्चिम तट पर इससे मालाबार तट पर वर्षा होती है। मदरास के समीपवर्ती ज़िलों में १५″ वर्षा होती है। इससे दक्षिण में ७″ के लगभग वर्षा होती है। हैदराबाद तथा बम्बई के दक्षिण में ४″ वर्षा होती है। बिहार, उड़ीसा तथा संयुक्त-प्रान्त में भी इन दिनों थोड़ी वर्षा होती है।

यद्यपि भारतवर्ष में वर्षा ऋतु निश्चित है, परन्तु वर्षा कितनी होगी .यह बहुत अनिश्चित है। किसी वर्ष विशेष वर्षा बहुत होती है किन्तु अन्य



वर्षों में वर्षा बहुत कम होती है। जिन भागों में वर्षा कम होती है वहाँ वर्षा अनिश्चित होती है किन्तु जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ निश्चित होती है। केवल इतना ही नहीं कभी कभी मानसून देर से आती है और जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इस अनिश्चित वर्षा के कारण फसलों को बहुत हानि पहुँचती है और अकाल पड़ जाता है। किसी किसी वर्ष वर्षा

आवश्यकता से भी अधिक होती है जिससे खेतों को हानि पहुँचती है। वास्तव में यदि देखा जाये तो भारतवर्ष में वर्षा बहुत ही अनिश्चित है और इस पर निर्भर होने के कारण खेती भी अनिश्चित है।



गरमियों की वर्षा की विशेषता यह है कि वह बहुत तेज़ी से और एक साथ बहुत होती है इस कारण बहुत सा जल नदियों द्वारा बह जाता है पृथ्वी उसको सोख नहीं पाती। इसका परिणाम यह होता है कि जल वृष्टि का अधिक वेग होने के कारण बहुत सी भूमि कट जाती है और मिट्टी बह जाती है। भूमि के इस कटाव (Soil erosion) से खेती को बहुत हानि पहुँचती है।

जलवायु का भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव

भारत की जलवायु की कुछ विशेषताएं हैं जिनका भारत के आर्थिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। हमें उनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए।

(१) जाड़ों में भी भारतवर्ष का तापक्रम (Temperature) बहुत नीचा नहीं होता। भारत के प्रत्येक भाग में जाड़ों में भी यथेष्ट गरमी रहती है। इस कारण खेती के लिए लम्बा समय मिलता है। पौधों को उगने के लिए जाड़ों में भी यथेष्ट गरमी मिल जाती है। विशेष कर जाड़ों में पाला और कुहरा प्रायः नहीं होता। इस कारण भारत जाड़ों में तो शीतोष्ण कटिबंध की फसलें उत्पन्न कर सकता है और गरमियों में उष्ण कटिबंध (Tropics) तथा अर्ध उष्ण कटिबंध (Sub-Tropics) की फसलें उत्पन्न कर सकता है। बंगाल और आसाम तथा दक्षिण प्रायद्वीप में जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं इन सूखे महीनों में भी फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं। इस कारण इन प्रदेशों में वर्ष में चावल की तीन फसलें तक उत्पन्न हो सकती हैं।

(२) अधिकांश वर्षा जून जूलाई और अगस्त में होती है इससे ज्वार बाजरा की फसलें शीघ्र तैयार हो जाती हैं और इन दिनों के गरम और नम जलवायु के कारण पौधों की खूब बढ़वार तथा उत्पत्ति होती है जिससे कि पशुओं को यथेष्ट चारा मिल जाता है।

(३) गरमियों में तापक्रम बहुत जल्दी ही ऊँचा हो जाता है इस कारण भारत में फसलें शीघ्र पक कर तैयार हो जाती हैं। शीघ्र पकने के कारण यहाँ की पैदावार उतनी बढ़िया नहीं होती जितनी कि अन्य देशों की। जाड़े और गरमियों दोनों की फसलों के लिए यह बात लागू होती है क्योंकि दोनों ही फसलें गरमी में पकती हैं।

(४) वर्षा क्योंकि वर्ष में तीन चार महीनों ही होती है इस कारण वर्ष का शेष भाग सूखा रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि यहाँ घास के मैदान नहीं हैं। जो कुछ भी घास वर्षा के दिनों में उगती है वह वर्षा के उपरान्त धूप की तेज़ी से जल जाती है इस कारण भारत में चारे की कमी रहती है और जो कुछ चारा होता है वह घटिया होता है।

(५) वर्षा पश्चिम में कम होती है (संयुक्तप्रान्त और पंजाब) और यही उपजाऊ मैदान ऐसे हैं जहाँ जाड़ों में यथेष्ट जाड़ा पड़ता है इस कारण ही यहाँ गेहूँ जो शीतोष्ण कटिबंध (Temperate Zone) की पैदावार है खूब उत्पन्न होता है।

(६) भीषण गरमी के उपरान्त वर्षा के आने से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कुछ भागों में मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ मलेरिया के कारण जनसंख्या की कार्य-क्षमता नष्ट हो जाती है।

(७) गरमी और नमी होने के कारण वर्षा के दिनों में बीमारियों की ही बढ़वार नहीं होती मनुष्य में आलस्य और पुरुषार्थहीनता भी उत्पन्न हो जाती है। इससे उत्पादन कार्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह बुरा प्रभाव केवल उन्हीं प्रदेशों में दिखलाई देता है जहाँ वर्षा अधिक होती है।

(८) भारत में वर्षा बहुत ही अनिश्चित है किसी वर्ष वर्षा बहुत कम होती है और सूखा पड़ जाता है फसलें नहीं होतीं दुर्भिक्ष पड़ जाता है दूसरी वर्ष वर्षा अधिक होने से नदियों में बाढ़ आ जाती है उससे भी फसलों को हानि पहुँचती है। इस कारण भारतीय ग्रामीण निराशावादी और भाग्यवादी बन गया है।

(९) क्योंकि वर्षा वर्ष के केवल तीन गरमियों के महीनों में होती है और वह भी अनिश्चित। इस कारण जाड़े में फसलें उत्पन्न करने के लिए सिंचाई की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भारतवर्ष की खेती सिंचाई पर बहुत कुछ निर्भर है और खेती के लिए सिंचाई का यहाँ इतना महत्व है।

अभ्यास के प्रश्न

(१) मानसूनी जलवायु से आपका क्या अभिप्राय है। उसकी क्या विशेषताएँ हैं?

(२) भारतवर्ष की वर्षा की क्या विशेषताएँ हैं और उनका भारत के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(३) भारत में वर्षा का वितरण एक सा क्यों नहीं है? भिन्न भिन्न भागों में वर्षा कम और अधिक क्यों है?

(४) हिमालय का आर्थिक महत्व क्या है विस्तार पूर्वक लिखिए।

(५) गंगा और सिंध के मैदान इतनें उपजाऊ क्यों हैं?

(६) भारत में पाई जाने वाली मिट्टियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए और उनके गुण दोष बतलाइए?

(७) भूमि का कटाव (Soil erosion) क्या है, उससे क्या हानियाँ हैं और उसको किस प्रकार रोका जा सकता है।

(८) रेगर मिट्टी और सिंध गंगा के मैदानों की मिट्टी का खेती के लिए क्या महत्व है समझा कर लिखिए।

———

सोलहवाँ परिच्छेद

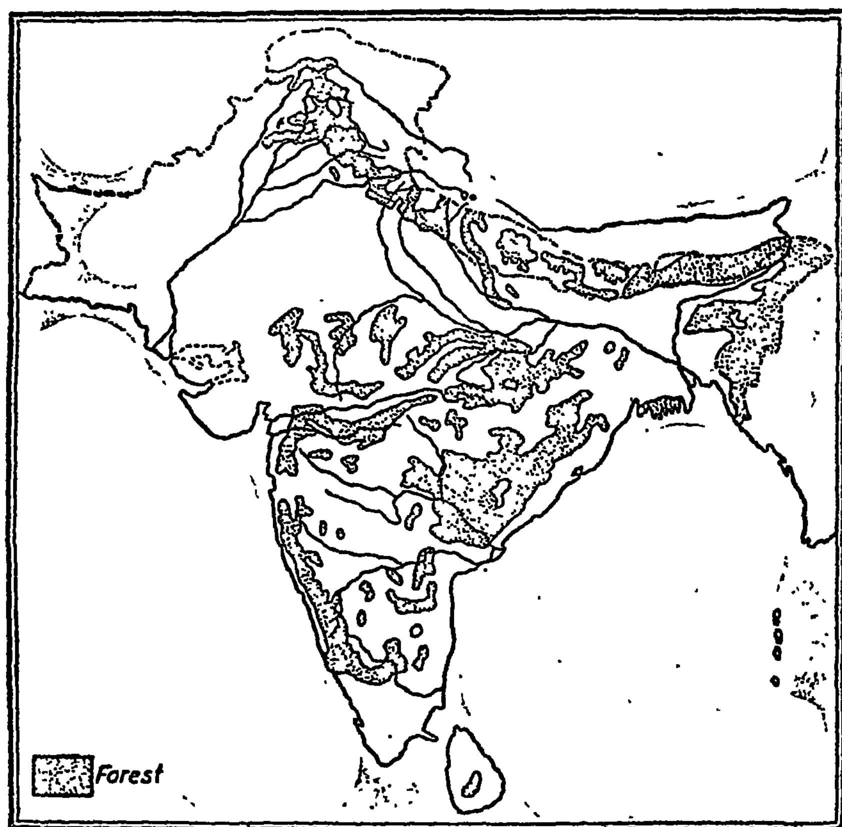
वन-सम्पत्ति

ब्रिटिश सत्ता के स्थापित होने के पूर्व भारतवर्ष में वन सम्पत्ति बहुत अधिक थी। इसके उपरान्त जनसंख्या की बढ़ती के कारण खेती के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता हुई। साथ ही रेल, इमारतों और जलाने के लिए अधिकाधिक लकड़ी की माँग बढ़ने लगी। लकड़ी की इस बढ़ती हुई माँग तथा खेती योग्य भूमि की अधिकाधिक माँग के कारण बहुत से जंगल काट कर साफ कर दिए गए। इस प्रकार बहुत से मूल्यवान वन नष्ट हो गए। उस समय तक सरकार ने वनों की रक्षा की ओर ध्यान ही नहीं दिया।

१८५७ की राज्यक्रान्ति के उपरान्त सरकार ने वनों की ओर ध्यान दिया और उनकी रक्षा तथा उन्नति के लिए प्रत्येक प्रान्त में वन-विभागों की स्थापना की गई। अब प्रान्तीय वन-विभाग प्रान्तों में वनों की देख-भाल तथा उनका प्रबंध करते हैं।

भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में किसान बहुत कुछ वनों पर निर्भर रहते हैं। पर्वतों पर खड़े हुए वनों को नष्ट कर देने से मैदानों में रहने वालों का जीवन संकटमय हो जाता है। वर्षा का पानी तथा नदियाँ स्वच्छंदतापूर्वक बहती हैं। इसका फल यह होता है कि उपजाऊ भूमि रेत से पट जाती है। भूमि का कटाव (Erosion of soil) होने लगता है और भीषण बाढ़ें आती हैं जिससे खेती और आबादी नष्ट हो जाती है। वनों का जलवायु पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। हरे वृक्ष बादलों को आकर्षित करते हैं। अतएव वन-आच्छादित प्रदेश में अधिक वर्षा होती है। वृक्ष प्रति दिन वायु को पत्तियों के द्वारा जल देते रहते हैं। इस कारण गरम देशों में वन प्रान्तों का तापक्रम कम रहता है। वनों के वृक्षों की जड़ें वनों की भूमि को जल सोखने वाली बना देती हैं। इस कारण वर्षा का जल व्यर्थ न बहकर पृथ्वी में सूख जाता है और नीचे पानी अधिक इकट्ठा हो जाता है जिससे सिंचाई में सुविधा होती है।

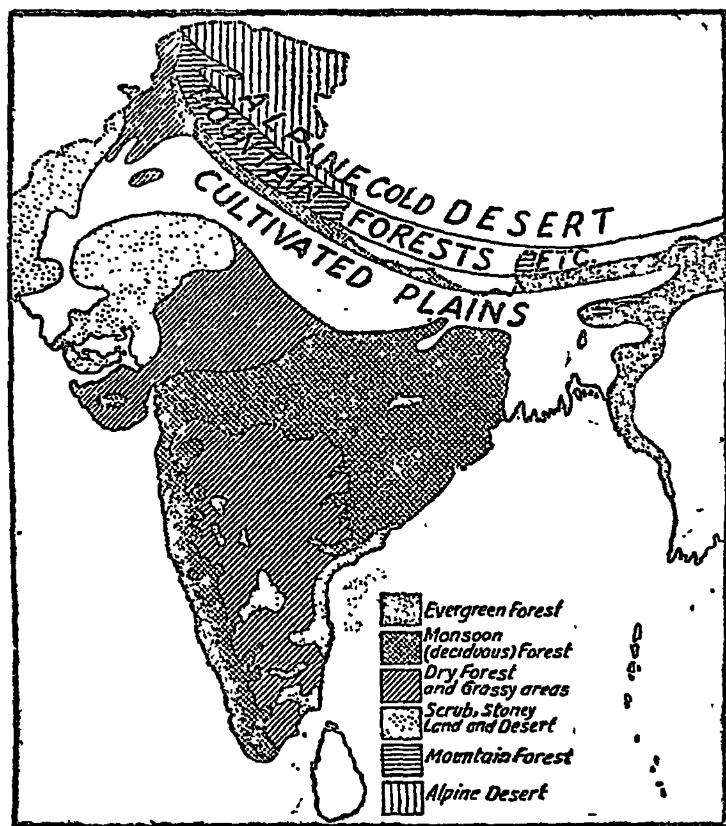
भारतवर्ष में जलाने की लकड़ी की कमी के कारण किसान गोबर को जला डालता है। इस नाशकारी प्रथा के कारण भूमि को यथेष्ट खाद नहीं मिलती और भूमि कमजोर होती जाती है। यदि ऊसर तथा बंजर भूमि पर वृक्ष लगाये जायें तो खाद की समस्या हल हो सकती है। भारतवर्ष के वनों



में अनन्त राशि में घास उत्पन्न होती है। इन वनों में लगभग एक करोड़ पशु प्रतिवर्ष चरते हैं। इसके अतिरिक्त घास दूर दूर भेजी जाती है। भारत के किसी न किसी भाग में प्रतिवर्ष दुर्भिक्ष पड़ता है। लाखों पशु बिना चारे मर जाते हैं। यदि वन विभाग चारे को इकट्ठा करे तथा पशुओं को चरने की अधिक सुविधा दे तो चारे की समस्या कुछ हद तक हल हो सकती है। वनों के समीपवर्ती गाँवों के किसान पशुओं को चराकर, तथा वनों की जड़ी, फल बूटियों तथा औषधियों को इकट्ठा करके अपना गुज़र करते हैं। इनके अतिरिक्त वनों से हमें बहुमूल्य लकड़ी तथा अन्य कच्चा माल मिलता है जिसके आधार पर बहुत उद्योग-धंधे पनप सकते हैं।

भारतवर्ष में बहुत तरह के वन हैं। भिन्न भिन्न भागो में जलवायु तथा भूमि की भिन्नता के कारण वनस्पति भी भिन्न है।

भारतवर्ष के वन अधिकांश देश में ऊष्ण कटिबन्ध की वनस्पति पाई जाती है। साधारणतः अन्य देशों में ऊष्ण कटिबन्ध की वनस्पति का विभाजन वर्षा के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से होता है :—



(१) सर्वदा हरे रहने वाले वन (२) पतझड़ वन, (३) सवाना, (४) कांटेदार वृक्षों के वन, (५) सत्रप के मैदान, (Steppe) किन्तु भारतवर्ष में सवाना तथा घास के विस्तृत मैदान नहीं मिलते। यहाँ तो सर्वदा हरे रहने वाले वन, पतझड़ के वन, तथा कांटेदार वन ही पाये जाते हैं।

अर्द्ध ऊष्ण (Sub-Tropical) शीतोष्ण कटिबन्ध तथा ठंडे वन (Alpine Vegetation) भारतवर्ष में केवल पहाड़ों पर पाये जाते हैं। अर्द्ध ऊष्ण वन वास्तव में ऊष्ण वनों और शीतोष्ण वनों के बीच में स्थित

हैं। जैसे जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे ऊष्ण कटिबन्ध की वनस्पति अर्द्ध ऊष्ण कटिबन्ध, और शीतोष्ण कटिबन्ध की वनस्पति में परिणत होती जाती है। कहीं कहीं तो अर्द्ध ऊष्ण कटिबन्ध की वनस्पति प्रकट ही नहीं होती है। पश्चिमी तथा मध्य हिमालय में चीड़ (पाइन) वनों के रूप में यह बिलकुल स्पष्ट है। पूर्व हिमालय में भी अर्द्ध ऊष्ण वनस्पति का प्रदेश स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, किन्तु दक्षिण भारत के पहाड़ी वनों में यह बिलकुल दृष्टिगोचर नहीं होता।

शीतोष्ण कटिबन्ध के वन भारतवर्ष में पहाड़ों पर पाये जाते हैं। चौड़ी पत्तियों वाले वृक्ष उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है। ऐसे वन दक्षिण की पहाड़ियों तथा उत्तर की पहाड़ियों (पूर्वी भाग में) मिलते हैं। अधिकांश हिमालय के उस भाग पर जहाँ वर्षा साधारण होती है अथवा कम होती है, सदा हरे रहने वाले नुकीली पत्ती (Coniferous) के वन मिलते हैं।

पहाड़ी वनस्पति (Alpine Vegetation) भारतवर्ष में केवल हिमालय पर पाई जाती है। अधिक ऊँचाई पर पहाड़ी वनों (Alpine forests) में बर्च (Birch) के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। अधिकतर इन वनों में सदा हरे रहने वाले नुकीली पत्तियों के (Coniferous) वन हैं, परन्तु कुछ चौड़ी पत्तियों के पतझड़ वाले (Deciduous) वृक्ष भी मिलते हैं। यह वन ६५०० फीट की ऊँचाई से ११, ५०० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इससे अधिक ऊँचाई पर वृक्ष उत्पन्न नहीं होते। हाँ, झाड़ियाँ तथा छोटे पौधे अवश्य उत्पन्न होते हैं।

भारतवर्ष के मैदानों में अधिकांश वन नष्ट हो गए हैं। वनों के नष्ट हो जाने के कई कारण हैं। एक तो खेती के लिए अधिक भूमि प्राप्त करने के लिए वनों को काट डाला गया। दूसरे मैदानों में जब नदियों में बाढ़ आती है तो चिकनी मिट्टी के वनों में बिछ जाने से वृक्षों की बढ़वार कम हो जाती है और बहुत से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। जो वृक्ष बच रहते हैं वे कीड़ों के आक्रमण के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। मैदानों में और विशेष कर पहाड़ों के समीप वनों के नष्ट हो जाने का यह भी एक मुख्य कारण है। वनों की अग्नि, तथा पशुओं के अधिक चराने से भी भारतवर्ष में वनों को हानि पहुँचती है। वस्तुतः मनुष्य सदैव वनों को नष्ट करने पर तुला रहा है। यद्यपि आधुनिक सभ्यता बहुत कुछ लकड़ी पर निर्भर है, परन्तु फिर भी मनुष्य ने वनों को नष्ट करने का कार्य बिलकुल छोड़ नहीं दिया है। आसाम के पहाड़ी प्रदेश में वनों को जलाकर जंगली जातियाँ खेती करती हैं और

जब वह भूमि कम उपजाऊ हो जाती है तो उसको छोड़ कर दूसरे स्थान के जंगल को जलाकर खेती की जाती है। इस प्रकार वनों को नष्ट करने का क्रम चलता रहता है।

भारतवर्ष में मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के वन पाये जाते हैं।

पर्वतीय (पहाड़ी) वन

इन वनों में वनस्पति ऊँचाई तथा जलवृष्टि के अनुसार भिन्न है। पूर्वीय हिमालय तथा आसाम में बलूत (Oak) मैनगोलिया (Mangolias) और लारेल (Laurel) पाये जाते हैं। मध्य तथा उत्तर पश्चिम हिमालय (पंजाब, संयुक्तप्रान्त, काश्मीर तथा सीमा-प्रान्त) में देवदारू, नीला पाइन (Blue pine) और बलूत (Oak) के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। देवदारू के ऊपर स्प्रूस (Spruce) तथा श्वेत सनोवर (Silver-fir) तथा नीचे चीर पाइन (Chir-pine) मिलता है जिससे रेज़िन (Resin) निकाला जाता है। इसी रेज़िन से तारपीन का तेल तथा बीरोज़ा तैयार किया जाता है। यदि देखा जाये तो मध्य तथा उत्तर-पश्चिम हिमालय के वन बहुत मूल्यवान हैं। इन वनों के मुख्य वृक्षों के सम्बंध में नीचे संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

श्वेत सनोवर (Silver-fir

यह वृक्ष अधिकतर हिमालय के उत्तर-पश्चिम में तथा कुछ पूर्व में भी पाया जाता है। यह ७५०० से १०,००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। यह सदा हरे रहने वाला नुकीली पत्ती (Conifer) का वृक्ष होता है। इसकी लम्बाई अधिक होती है. किन्तु लकड़ी नरम होती है। इसका उपयोग पैकिंग, तख्तों, कागज की लुग्दी, तथा दियासलाई बनाने में होता है। यद्यपि यह वृक्ष बहुत अधिक पाया जाता है, किन्तु अभी तक इसका उपयोग बहुत कम हो सका है। इसका मुख्य कारण है कि वहाँ तक पहुँचने की सुविधा नहीं है। चिनाब तथा झेलम के रास्ते से ही इसको मैदान में लाया जाता है। अतएव इसका थोड़ा बहुत उपयोग पंजाब में ही होता है।

देवदारु

भारतवर्ष में देवदारु की लकड़ी बहुत मूल्यवान है। देवदारु सदा हरा रहने वाला नुकीली पत्तियों का बहुत लम्बा वृक्ष होता है। इसकी ऊँचाई १०० फीट से ऊँची होती है। यह हिमालय में ५५०० से ८००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। संयुक्तप्रान्त, पंजाब, काश्मीर तथा सीमाप्रान्त में यह पाया जाता है। देवदारु की लकड़ी साधारण कठोर होती है। इसमें

एक प्रकार का सुगंधित तेल होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। उत्तर-पश्चिम हिमालय के वनों में २००० वर्ग मील पर देवदार के वन खड़े हैं।

नीला पाइन (Blue pine)

नीला पाइन भी एक महत्त्वपूर्ण सदा हरा रहने वाला नुकीली पत्ती का वृक्ष है। यह ६००० से १२,००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी लकड़ी साधारण कठोर और अच्छी होती है। इसका रंग हल्का लाल होता है। अधिकतर इसको पंजाब के वनों में ही काटा जाता है।

चीर

चीर का वृक्ष भी सदा हरा रहने वाला नुकीली पत्तियों का वृक्ष होता हैं। इसकी लम्बाई ६० फीट से १०० फीट तक होती है। यह ३००० से ६००० फ़ीट तक मिलता है। सीमाप्रान्त, काश्मीर, पंजाब, और संयुक्तप्रान्त तथा नैपाल में यह बहुत पाया जाता है। चीर की लकड़ी का उपयोग चाय के बाक्स बनाने में होता है। संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब में चीर के रस को निकालकर बीरोज़ा और तारपीन का तेल बनाया जाता है।

स्प्रूस (Spruce)

देवदारु के वनों के ऊपर स्प्रूस के वन बहुत पाये जाते हैं। स्प्रूस की लकड़ी बहुत नरम होती है। संयुक्त-राज्य अमेरिका में इसका उपयोग कागज़ बनाने में बहुत होता है, किन्तु यहाँ वनों के अधिक ऊँचाई पर होने के कारण तथा वनों में मार्गों की सुविधा न होने के कारण इस वृक्ष का उपयोग नहीं हो पाता।

आसाम और बर्मा में खासिया पाइन भी बहुतायत से मिलता है।

पतझड़ वाले वन (Deciduous forests)

इन वनों के वृक्ष पतझड़ के मौसम में पत्तियों से रहित हो जाते हैं। यह वन हिमालय के निचले प्रदेश (Sub-Himalyan Tract) दक्षिण प्रायद्वीप तथा बर्मा में मिलते हैं। इन वनों के मुख्य वृक्ष ये हैं।

साल (Sal)

साल भी एक महत्त्वपूर्ण वृक्ष है। रेलवे लाइन के लिए स्लीपर इसी लकड़ी के तैयार किए जाते हैं। साल के वन संयुक्त-प्रान्त बिहार, आसाम, छोटा नागपूर, उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त में बहुत पाये जाते हैं। केवल संयुक्तप्रान्त में ही ३००० वर्ग मील साल के वनों से लकड़ी निकाली जाती है। संयुक्तप्रान्त तथा छोटा नागपूर में साल बहुत अच्छा होता है। साल के

वन गंगा की घाटी के पास बहुत अधिक हैं और इन्हीं मैदानों में रेलवे लाइनों का जाल बिछा हुआ है इस कारण इसकी लकड़ी की माँग भी इस प्रदेश में बहुत होती है। शाल की लकड़ी बहुत मज़बूत तथा कठोर होती है।

सागवान (Teak) — अभी कुछ वर्षों पूर्व तक सागवान की लकड़ी भी भारतवर्ष की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा मूल्यवान लकड़ी थी! किन्तु बर्मा के भारत से पृथक् कर देने से अब सागवान का महत्त्व कम हो गया। क्योंकि बर्मा के जंगलों में ही सबसे अधिक सागवान पाया जाता है। संसार के अन्य देशों को बर्मा से ही सागवान की लकड़ी बाहर भेजी जाती है। भारतवर्ष में जो कुछ सागवान के वन मिलते हैं वे पश्चिमी घाट, नीलगिरी, मध्यभारत तथा मध्यप्रान्त में मिलते हैं। पश्चिमी घाट के वनों से कुछ सागवान बाहर भेजा जाता है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित पतझड़ वाले वृक्ष भी महत्त्वपूर्ण हैं:

शीशम — यह वृक्ष देश के उस भाग में सर्वत्र मिलता है जहाँ वर्षा कम होती है। इसकी लकड़ी इमारत तथा लकड़ी का सामान बनाने के काम आती है।

भारतवर्ष में वनों का विस्तार — भारतवर्ष वन सम्पत्ति की दृष्टि से धनी देश है। देश की लगभग २० प्रतिशत भूमि पर वन खड़े हुए हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों में वनों का विस्तार इस प्रकार है।

वन प्रदेशों का क्षेत्रफल

प्रान्त	वनों का क्षेत्रफल वर्ग मील में	प्रान्त के क्षेत्रफल का प्रतिशत
मदरास	१५, २४५	१२·२
बम्बई	१२, ६६८	१७·१
सिंध	१, १५७	२·५
बंगाल	१०, ८०२	१४·०
संयुक्तप्रान्त	५, २५१	४·६
पंजाब	४, ८४२	५·१
बिहार	१, ७८६	२·६
उड़ीसा	१, ६८५	६·२
मध्यप्रान्त	१६, ४१२	१६·७
आसाम	२१, ३६३	३८·६
सीमाप्रान्त	२८२	२·१
बिलोचिस्तान	८१३	१·७
अजमेर	१४२	५·१
कुर्ग	८३६	५२·७

भारत के अन्य उपयोगी वनोत्पन्न पदार्थ (Minor Products)

भारत के वनों में महत्वपूर्ण अन्य उपयोगी पदार्थ भरे पड़े हैं। अभी तक उनका पूरा पूरा उपयोग नहीं हुआ है किन्तु भविष्य में उनका उद्योग-धंधों के लिए विशेष रूप से उपयोग हो सकेगा। बांस, चमड़ा कमाने में काम आने वाले फल और छालें, घास और तेल महत्वपूर्ण धंधों को जन्म देगा। ये वस्तुएँ हमारे वनों में अनन्त राशि में भरी पड़ी हैं। यों तो भारतीय वनों में अनेक वस्तुएँ हैं किन्तु उनमें से नीचे लिखी मुख्य हैं जिनका व्यापारिक उपयोग हो सकता है :—

बांस, घास, पत्ते जिनका उपयोग बीड़ी बनाने में होता है, रेशेदार पौधे, तेल उत्पन्न करने वाले बीज, रंग तैयार करने वाले बीज, फूल, छाल इत्यादि, चमड़ा कमाने में काम आने वाले पदार्थ, गोंद, लाख, रबर, जड़ी-बूटियाँ जिनसे दवायें बनती हैं, मसाले इत्यादि। इनमें से अधिकांश वस्तुएँ प्रायद्वीप में मिलती हैं। बांस उन वनों में बहुत होता है जहाँ वर्षा बहुत होती है सूखे भागों में बांस नहीं होता। तेल वाले बीजों में महुआ महत्वपूर्ण है यह मध्यप्रान्त और बम्बई प्रान्त में बहुतायत से उत्पन्न होता है। लाख छोटा नागपूर के प्रदेश में बहुत उत्पन्न होती है। तेलों में चंदन का तेल बहुत महत्वपूर्ण है जो विशेष कर मैसूर में उत्पन्न होता है। चमड़ा कमाने के काम में आने वाले पदार्थों हड़ (Myrobalans) तथा बबूल की छाल महत्वपूर्ण है।

इनके अतिरिक्त भारतीय वनों से हमें जलाने की लकड़ी मिलती है और उनमें लाखों पशु चरते हैं। भारत में खाना पकाने में कोयला काम में नहीं आता इस कारण लकड़ी का ही उपयोग होता है अतएव वनों का भारत के लिए विशेष महत्व है। यही नहीं भारत में चरागाहों की भी बहुत कमी है इस कारण भी वनों का पशुओं के चरने के लिए विशेष महत्व है। लाखों पशु इन वनों में चरते हैं पशु पालन वहाँ मुख्य धंधा है जहाँ वन प्रदेश हैं।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया कि भारत में वन सम्पत्ति यथेष्ट है। लगभग १ लाख वर्ग मील पर यह वन खड़े हैं। बर्मा के पृथक् हो जाने से १½ लाख वर्ग मील का वन प्रदेश देश के अधिकार से जाता रहा। यद्यपि वन प्रदेश विस्तृत हैं किन्तु देश की जनसंख्या को देखते हुए अधिक नहीं कहे जा सकते। ऊपर से कठिनाई यह है कि बहुत से वन

इतनी ऊँचाई पर हैं और ऐसे स्थानों पर स्थित हैं कि उन तक पहुँचना सरल नहीं है। उदाहरण के लिए ऊँचे हिमालय के वनों तथा सुन्दर वन के वनों तक पहुँचने के मार्ग नहीं है। वनों से लकड़ी लाने के लिए जब तक सुविधाजनक मार्ग न हों तब तक उनका ठीक उपयोग नहीं हो सकता। योरोप तथा अमेरिका के वनों में जाड़े का बर्फ रस्ता और सरल मार्ग उपस्थित कर देता है। जब बर्फ जम जाता है तो लड़की के लट्ठों को बर्फ की ढालू और चिकनी सड़क पर ऐंजिनों द्वारा खींचा जाता है और नदियों तक ले जाया जाता है जो स्वयं जाड़े में जम जाती हैं और जब इन नदियों का बर्फ पिघलता है तो वह लकड़ी स्वतः बह कर मैदानों में पहुँच जाती है। प्रकृति ने हमारे वनों में ऐसा सुविधाजनक मार्ग उपस्थित नहीं किया है। इस कारण वहाँ मार्ग बनाना पड़ता है और लकड़ी को वनों से लाने में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है।

भारत में दो प्रकार के मार्गों से लकड़ी वनों से लाई जाती है। एक स्थल मार्ग से दूसरे जलमार्ग से। स्थल मार्ग से लाई जाने वाली लकड़ी नीचे लिखे प्रकार से लाई जाती है :—

(१) मनुष्यों द्वारा—जंगलों से जलाने की लकड़ी काट कर मनुष्य समीपवर्ती स्थानों में ले जाते हैं और बेचते हैं किन्तु यह थोड़े फासले के लिए ही उपयुक्त है। हिमालय के वन प्रदेश से स्लीपरों को नदियों तक मनुष्य ही लाते हैं जहाँ से उन्हें बहा दिया जाता है। इसी प्रकार बड़े बड़े लट्ठों को ढालू सड़कों पर लुढका दिया जाता है।

(२) पशुओं द्वारा :—जहाँ वनों में सड़कें ठीक होती हैं बैलगाड़ियों द्वारा, तथा पशुओं पर लाद कर लकड़ी लाई जाती है। मैसूर, अंडमन तथा बर्मा में हाथी बड़े बड़े लट्ठों को सूंड से उठा कर नदी तक ले जाते हैं और नदी में लकड़ी बहा दी जाती है। भैंसे पर भी लकड़ी लाद कर लाई जाती है।

(३) यंत्रों द्वारा :—वनों में ट्रामगाड़ी, रस्सों के द्वारा (Ropeway) लकड़ी वनों से लाई जाती है। आसाम के ग्वालपाड़ा, डिबोजन, पंजाब के छंगा मंगा वनों में ट्रामों का उपयोग लकड़ी लाने के लिए किया जाता है। हिमालय के वनों में रस्सों द्वारा लकड़ी लाने का प्रयोग बहुत से स्थानों पर होता है।

आसाम तथा सुन्दर वनों में लकड़ी को नदियों द्वारा वनों से लाया जाता है।

बबूल — बबूल सूखे प्रदेशों में मिलता है, और स्थानीय उपयोग के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसकी छाल को चमड़ा कमाने के काम में भी लाया जाता है।

हलदू — इसका उपयोग भी चमड़े को कमाने में होता है। खैर की लकड़ी से क़त्था और कच (रंग) बनाया जाता है।

सदा हरे रहने वाले वन (Ever Green forests) — यह वन उन प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है। इन वनों में बहुत प्रकार की लहलहाती हुई वनस्पति दृष्टिगोचर होती है। यह वन पूर्वी हिमालय के वनों तथा पश्चिमीय घाट पर पाये जाते हैं। इन वनों में मुख्य और महत्त्वपूर्ण वृक्ष बाँस तथा बेंत के हैं। इनके अतिरिक्त और भी उपयोगी बेलें यहाँ पाई जाती हैं।

सूखे प्रदेश के वन — यह वन सिंध, अधिकांश राजपूताना, बिलोचिस्तान के कुछ भाग में तथा दक्षिण पंजाब में पाये जाते हैं। जहाँ वर्षा २० इंच से कम होती है वहाँ ये वन पाये जाते हैं। इन वनों में वृक्ष बहुत प्रकार के नहीं पाये जाते। इनमें बबूल और कीकर मुख्य हैं।

समुद्र तट के वन — यह वन अधिकतर समुद्र से निकली हुई भूमि पर ही मिलते हैं। इनकी लकड़ी विशेष उपयोगी नहीं होती। वह केवल ईंधन के काम ही आती है, सुंदरवन के वन इसी श्रेणी के हैं। यह वन पूर्व में ही मिलते हैं।

भारतवर्ष के वनों में इन बहुमूल्य लकड़ियों के वृक्षों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ भी पाई जाती हैं जो कि विदेशों को भेजी जाती हैं। अभी इनका पूरा पूरा उपयोग नहीं होता है परन्तु भविष्य में इनके आधार पर बहुत से धंधे पनप सकेंगे। आज भी कतिपय धंधे वनों में पाई जाने वाली वस्तुओं का कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं। काग़ज़, दियासलाई, चमड़े को कमाना, लाख, क़त्था और कच, तेल, गोंद, रंग, औषधियाँ, मसाले के धंधे बहुत कुछ वनों में मिलने वाली उपयोगी वस्तुओं पर ही निर्भर है। हिमालय के वनों में अधिकतर बहुमूल्य लकड़ी मिलती हैं, किन्तु दक्षिण प्रायद्वीप के वनों में अन्य उपयोगी वनोत्पन्न पदार्थ (Minor products) अधिक मिलते हैं।

तारपीन का तेल तथा बीरोज़ा

चीर पाइन के रेज़िन (Resin) से तारपीन का तेल तथा बीरोज़ा तैयार किया जाता है। रेज़िन का उपयोग लाख, साबुन, कागज़, आयल क्लाथ, ग्रामोफोन रेकर्ड तथा छापे की रोशनाई बनाने के काम में आता है। तारपीन का तेल पेंट और वार्निश के लिए बहुत उपयोगी है। संसार का ६५ प्रतिशत तारपीन का तेल; और बीरोज़ा संयुक्तराज्य अमेरिका (८०%) तथा फ्रांस में बनाया जाता है। २० वीं शताब्दी के आरम्भ में वन विभाग ने तारपीन तथा बीरोज़े के धंधे की इस देश में स्थापना की। पंजाब और संयुक्तप्रान्त में तारपीन के कारखाने स्थापित किए गए और क्रमशः भारतवर्ष ने फ्रांस और संयुक्तराज्य अमेरिका से तारपीन का तेल तथा बीरोज़ा मँगाना बंद कर दिया। यही नहीं कि भारतीय कारखानों ने देश के बाजार को हथिया लिया वरन कुछ तारपीन का तेल विदेशों को भी भेजा जाता है। यदि प्रयत्न किया जाये तो भारतीय तारपीन का तेल विदेशों में अधिकाधिक बिक सकता है। क्योंकि भारत का बना हुआ तारपीन का तेल बहुत अच्छा होता है। पंजाब तथा संयुक्तप्रान्त की सरकारों ने इस धंधे को प्रोत्साहन दिया और कारखाने स्थापित किये। यदि भारतीय तारपीन के तेल की माँग विदेशों में बढ़ाई जा सके तो यह धंधा बहुत उन्नति कर सकता है क्योंकि भारतवर्ष के वनों में पाइन बहुत मिलता है। इस धंधे का भविष्य उज्ज्वल है।

लाख

लाख एक कीड़े की उपज है। यह कीड़े भारतवर्ष में पाये जाने वाले कुछ वृक्षों के रस को चूस कर रहते हैं और लाख उत्पन्न करते हैं। लाख की बहुत माँग है और इसका उपयोग बहुत से धंधों में होता है। अतएव यह एक महत्वपूर्ण औद्योगिक कच्चा माल है। संसार में भारतवर्ष सबसे अधिक लाख उत्पन्न करता है। वस्तुतः भारतवर्ष ही अन्य देशों को लाख भेजता है।

लाख का कीड़ा कुसुम, पलास, बेर, पीपल, बरगद, गूलर, फालसा बबूल और क्रोटन के वृक्षों पर अधिक रहता है। लाख के कीड़ों सहित वृक्षों की टहनियाँ काट ली जाती हैं और लाख के बीज वाली ये टहनियाँ ऊपर लिखे हुए वृक्षों में कलम की भाँति लगा दी जाती हैं। लाख के कीड़े सारे वृक्ष पर फैल जाते हैं। जून और नवम्बर में नये वृक्षों पर लाख का कीड़ा छोड़ा जाता है और ६ महीने के बाद लाख की फसल इकट्ठी करली जाती है। कहीं कहीं जंगली अवस्था में भी लाख का कीड़ा पाया जाता है और

लाख जंगल से इकट्ठी करली जाती है किन्तु अधिकतर लाख के कीड़े को वृक्षों पर छोड़कर उनसे लाख की फसल तैयार कराई जाती है।

लाख को वृक्षों से छुटा लेने के उपरान्त उसको पीसा जाता है और चलनियों से छान लिया जाता है। इस क्रिया के द्वारा लाख में जो अन्य पदार्थ मिले रहते हैं वे अलग कर दिये जाते हैं। इसके उपरान्त लाख को धोकर उसका रंग निकाल दिया जाता है और शुद्ध लाख रह जाती है।

लाख की सबसे अधिक उत्पत्ति बिलासपुर, संथाल परगना, सिंगभूमि, छोटा नागपूर के ज़िलों में मयूरभंज राज्य, उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त में होती है। भारतवर्ष से प्रतिवर्ष बहुत सी लाख विदेशों को भेजी जाती है।

कत्था और कच

भारतवर्ष में खैर का वृक्ष बहुत पाया जाता है। खैर का वृक्ष सूखी पहाड़ियों तथा तराई के वनों में बहुत मिलता है। खैर की लकड़ी से कत्था और कच (रंग) तैयार किया जाता है। भारतवर्ष में पान के साथ कत्था खाया जाता है, जितना भी कत्था तैयार होता है वह सब देश में ही खप जाता है। अनुमान किया जाता है कि देश में लगभग एक लाख मन कत्था प्रतिवर्ष खा लिया जाता है। कच (रंग) योरोप को भेजा जाता है, इसका रंग खाकी होता है और रंगने के काम आता है।

लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़ों को एक बड़े बर्तन में उबाला जाता है। फिर छान कर कत्था और कच अलहदा कर लिया जाता है। अधिकतर कत्था पुराने ढंग से ही तराई के पास के प्रदेश में तैयार किया जाता है किन्तु बरेला में कत्थे का आधुनिक ढंग का एक बड़ा कारख़ाना भी है।

चमड़ा कमाने के पदार्थ

भारतीय वनों में ऐसे बहुत से वृक्ष हैं जिनकी छाल या फल चमड़ा कमाने के उपयोग में आते हैं। मैरोबालनस (Myrobalans) नामक फल इसमें विशेष महत्त्वपूर्ण है। विदेशों में इस फल की बहुत मांग है और प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ रुपये के यह फल विदेशों को भेजे जाते हैं। मैरोबालनस के अतिरिक्त भारतवर्ष में बबूल और तुरवद वृक्ष की छाल चमड़ा कमाने के लिए विशेष उपयोगी है। बबूल भारतवर्ष के सूखे प्रदेशों और तुरवद दक्षिण पश्चिम भारत में पाया जाता है।

कागज़ लुब्दी (Pulp) से तैयार किया जाता है। लुब्दी भिन्न भिन्न नरम लकड़ियों, घासों, तथा अन्य वन पदार्थों से तैयार

कागज़ बनाने के लिए उपयोगी वन पदार्थ

की जाती है। लकड़ी के अतिरिक्त फटे कपड़ों, जूट, सन, रद्दी कागज़ तथा भूसे से भी कागज़ तैयार होता है किन्तु वह बहुत घटिया होता है। अच्छा कागज़ लकड़ी से ही तैयार किया जाता है।

भारतवर्ष में सबाई, बैब, तथा भाबर नामक घासों का कागज बनाने में बहुत उपयोग होता है। यह घास बंगाल, छोटा नागपूर, उड़ीसा, नैपाल और संयुक्तप्रान्त में मिलती हैं। इन घासों से भी बहुत बढ़िया कागज़ नहीं बनता। भारतवर्ष के वनों में स्प्रूस (Spruce) और स्वेत सनोबर (Silver fir) बहुत मिलता है जिससे बहुत बढ़िया कागज़ बनाया जा सकता है किन्तु यह वन अधिक ऊँचे पर हैं और भारतीय वनों में मार्गों की सुविधा न होने के कारण इस लकड़ी का उपयोग नहीं किया जाता।

अभी थोड़ा ही समय हुआ कि देहरादून के फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट में बाँस से कागज़ बनाने का सफल प्रयोग हुआ और कुछ कारखाने बाँस से कागज़ बनाने भी लगे हैं। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि बाँस से बना हुआ कागज़ बाज़ार में प्रतिद्वन्द्विता को सहन कर सकेगा क्योंकि यह कागज़ कुछ महँगा पड़ता है। यदि बाँस से कागज़ बनाने में व्यापारिक सफलता मिल गई तो भारतवर्ष में क़ागज़ का धंधा बहुत उन्नति कर जायगा। बाँस के अतिरिक्त ऐलीफैंट घास से भी कागज़ बनाने का सफल प्रयोग हुआ है। यह घास आसाम, बंगाल और संयुक्तप्रान्त में पाई जाती है।

दियासलाई की लकड़ी

दियासलाई बनाने के लिए अधिकांश कारखानों में सेमल वृक्ष की लकड़ी काम में लाई जाती है। सेमल का वृक्ष उत्तर भारत के वनों में बहुत पाया जाता है। बंगाल के कारख़ानों में सुंदर वन की लकड़ी का उपयोग होता है। सेमल वैसे तो दियासलाई बनाने के लिए उपयुक्त है किन्तु उसकी बत्तियाँ एक सी नहीं काटी जा सकतीं। यही इस लकड़ी में दोष है।

ऊपर दिये हुए विवरण से ज्ञात होगा कि भारतवर्ष के वनों में मूल्यवान लकड़ी और औद्योगिक कच्चा माल भरा पड़ा है। इनके अतिरिक्त भारतीय वनों में अन्य महत्त्वपूर्ण पदार्थ भी मिलते हैं। बीड़ी बनाने के लिए पत्ते (पलास) रस्सी बनाने के लिए रेशेदार पौधे, तेल उत्पन्न करने वाले बीज, तथा लकड़ा, गोंद, औषधियाँ तथा अन्य उपयोगी पदार्थ बहुतायत से मिलते हैं। तेल उत्पन्न करने वाले बीजों में महुआ महत्त्वपूर्ण है। महुआ मध्य-भारत, मध्यप्रान्त, और बम्बई प्रान्त में बहुत अधिक उत्पन्न होता है। तेल

के लिए चंदन की लकड़ी विशेष महत्त्वपूर्ण है यह अधिकतर मैसूर राज्य में उत्पन्न होती है।

भारतवर्ष में वन सम्पत्ति यथेष्ट है परन्तु उसका पूरा पूरा उपयोग अभी तक नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिमालय के वन बहुत ऊँचाई पर हैं और मार्गों की सुविधा के न होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो सकता। योरोप तथा अमेरिका के वनों में से लकड़ी लाने के लिए बर्फ सुविधाजनक मार्ग बना देता है, जाड़ों में बर्फ जम जाता है और लकड़ी को काट कर इकट्ठा कर लिया जाता है। यह लकड़ियों के लट्ठे चिकने बर्फीले मार्ग से खींच कर नदी पर लाये जाते हैं और नदी के पिघलने पर अनायास ही वे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाते हैं। प्रकृति ने यह सुविधा भारतवर्ष को प्रदान नहीं की है, इस कारण भारतवर्ष में मार्गों की असुविधा विशेष रूप से सामने आती है।

उत्तर भारतवर्ष में अधिकतर लकड़ी नदियों में बहाकर नीचे लाई जाती है। कहीं कहीं विशेषकर मैसूर और अंडमन में हाथी और भैंसे का भी लकड़ी उठाने में उपयोग होता है। भारतवर्ष में केवल आसाम के ग्वालपारा डिवीज़न तथा पंजाब के छंगा मंगा के वनों में ट्राम गाड़ी का लकड़ी लाने में उपयोग होता है। हिमालय के कतिपय भागों में रस्सा मार्ग (Rope ways) का भी उपयोग होता है।

वनों के बहुत ऊँचे पर होने, तथा मार्गों की सुविधा न होने के साथ साथ भारतवर्ष के जलवायु के कारण यहाँ न तो मकानों के लिए ही अधिक लकड़ी का उपयोग होता है और न फर्नीचर की ही अधिक माँग है, इस कारण यहाँ लकड़ी की माँग अन्य देशों की तुलना में कम है।

इसके अतिरिक्त अभी तक हम लोगों को भारतीय वनों में पाई जाने वाली लकड़ी का औद्योगिक उपयोग भी नहीं मालूम हो सका है, फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट इस ओर कार्य कर रही है। यह फारेस्टरिसर्च इंस्टिट्यूट की खोज का परिणाम है कि बाँस से कागज़ उत्पन्न किया जाने लगा है। ऊपर लिखे हुए कारणों से भारतीय वन-सम्पत्ति का पूरा पूरा उपयोग नहीं हो सका है।

भारत सरकार ने वनों की रक्षा तथा उनके प्रबंध की दृष्टि से भारतीय वनों को तीन श्रेणी में बाँट दिया है (१) रक्षित वन (Reserved forests) इन वनों में पशुओं को बिलकुल चरने नहीं दिया जाता। यह जलवायु तथा अन्य प्राकृतिक कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं। (२) संरक्षित वन (Protected forests) में पशुओं को चराने पर

प्रतिबंध रहता है जिससे कि वनों को हानि न पहुँचे। (२) साधारण वन (Unclassed forests) यह वन विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

जमुना और गंगा के मुहाना

जमुना और चम्बल इटावा ज़िले में भूमि को प्रतिवर्ष काट काट कर खेती के लिए बेकार कर रही थीं। वन विभाग ने इस कटाव को रोकने के लिए १५००० एकड़ भूमि में शीशम और बबूल के वन लगा दिये हैं। इनसे केवल यही लाभ नहीं हुआ कि खेती की भूमि नष्ट होने से बच गई वरन ईंधन के लिए लकड़ी भी मिलने लगी है।

पंजाब के छंगा मंगा के वन

जब पंजाब में नहर निकाली गई और नहरों के उपनिवेश स्थापित हुए तो लकड़ी की आवश्यकता हुई अतएव वन विभाग ने नहरों के जल से सींच कर वन लगाये और आज इन वनों से यथेष्ट लकड़ी प्राप्त होती है।

जहाँ जहाँ पानी के बहाव से भूमि का कटाव (Erosion of Soil) होता है वहाँ वहाँ वन लगाने से कटाव को रोका जा सकता है और खेती की भूमि को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में कितने प्रकार के वन मिलते हैं और वे कहाँ हैं विस्तार पूर्वक लिखो।

२—भारत में कौनसी मूल्यवान लकड़ियाँ मिलता हैं और वे किन वनों में पाई जाती हैं।

३—भारत में अन्य उपयोगी वनोत्पन्न पदार्थ (Minor Forest Produce) का क्या महत्व है। यह पदार्थ विशेष रूप से कहाँ मिलते हैं।

४—भारत की वन सम्पत्ति का पूरा पूरा उपयोग क्यों नहीं हो पाया कारण सहित लिखिए।

सत्रहवाँ परिच्छेद

खनिज सम्पत्ति (Mineral Wealth)

लोहा

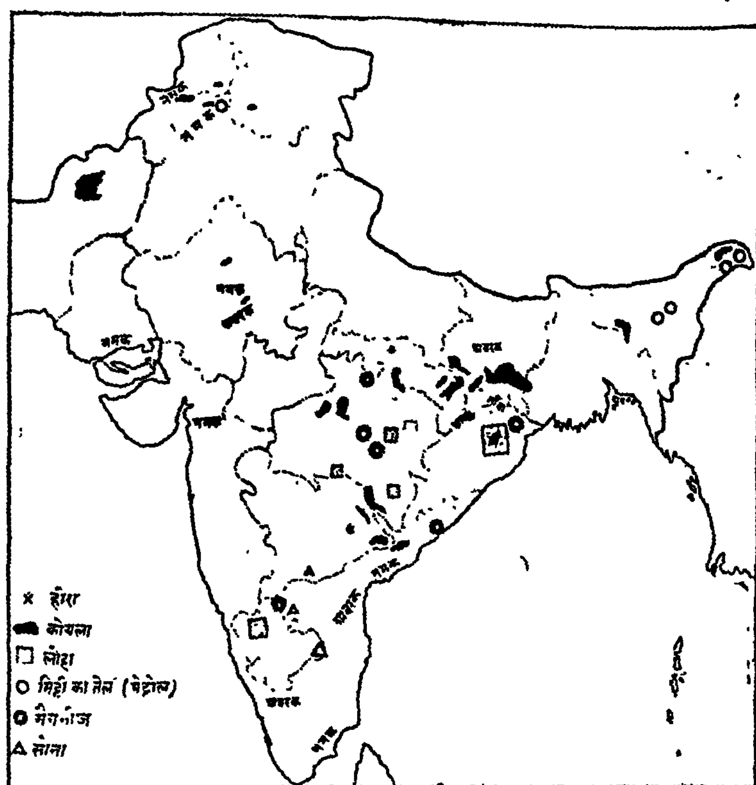
भारतवर्ष के बहुत से प्रान्तों में लोहा पाया जाता है किन्तु बिहार, उड़ीसा, तथा मैसूर में लोहा बहुत अधिक निकलता है। हैदराबाद और मध्यप्रान्त में भी थोड़ा लोहा निकलता है। वास्तव में भारतवर्ष का लौह प्रदेश बिहार और उड़ीसा में है। लोहे की खानें सिंगभूमि ज़िले और क्योंझर, बोनाई, तथा म्योरभंज रियासतों में हैं। इनके अतिरिक्त उड़ीसा की अन्य रियासतों में भी लोहे की खानें हैं। इन खानों में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। मिस्टर सेसिल-जोन्स का कथन है कि ये खानें संसार की अत्यन्त धनी खानों में से हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन खानों में २८३२० लाख टन लोहा मौजूद है। यही नहीं कि इन खानों में बहुत लोहा भरा हुआ है साथ ही इनमें बहुत अच्छी जाति का लोहा मिलता है। इन खानों में लोहा बहुधा ऊपर की सतह में ही मिल जाता है, इस कारण उसको खोद कर निकालने में कम खर्च होता है। कहीं कहीं तो मैदानों में ही लोहा निकलता है।

इन पहाड़ियों में 'बोनाई'' रियासत की 'कोमपिलाई'' पहाड़ी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस पहाड़ी की समान दूरी पर और भी पहाड़ियाँ हैं जिनमें लोहा निकलता है। इस कच्चे लोहे में लगभग ६० प्रतिशत शुद्ध लोहा निकलता है। इस प्रदेश में हैमेटाइट कच्चा लोहा (Hematite Ore) ही मिलता है। मैगनेटाइट (Magnetite) जाति का कच्चा लोहा नाम को भी नहीं मिलता।

बिहार, उड़ीसा के अतिरिक्त मध्यप्रान्त में भी लोहे की खानें हैं। चाँदा ज़िले में कम से कम दस पृथक् खानें हैं जिनमें कुछ तो बहुत बड़ी हैं। मध्यप्रान्त के द्रुग ज़िले में पहाड़ियों के रूप में कच्चा लोहा मिलता है और ये खानें बस्तर राज्य तक फैली हुई हैं।

मैसूर राज्य में कादूर जिले की खानें बहुत धनी हैं और उनमें अच्छी जाति का लोहा मिलता है।

भारतवर्ष में ताता आयरन स्टील कंपनी जिसका कारखाना जमशेदपुर में है, इंडियन आयरन एण्ड स्टील कंपनी जिसका कारखाना आसनसोल में है, और बंगाल आयरन कंपनी जिसका कारखाना कुल्टी में है, कच्चे लोहे



का अधिक उपयोग करते हैं। इंडियन आयरन स्टील कंपनी सिंगभूमि ज़िले की गुआ की खानों से लोहा लेती है। इन खानों का लोहा बी० यन० रेलवे आसनसोल लाती है। ताता कंपनी की लोहे की खानें सिंगभूमि ज़िले के "कोलहन" लौह प्रदेश तथा "क्योंझर" रियासत में हैं, परन्तु १९२६ तक ताता कम्पनी अपना सारा लोहा मयोरभंज राज्य की खानों से ही लाती थी। इसका मुख्य कारण यह है कि मयोरभंज की खानें कारखाने के बहुत समीप हैं और बी० यन० आर० इन खानों को कारखाने से जोड़ती है। किन्तु अब ताता कम्पनी "कोलहन" की खानों से भी लोहा निकालती है।

मयोरभंज राज्य में "गुरुमहिसानी", ओकामपद, तथा बादाम पहाड़ तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लोहे की खानें हैं। इन खानों का लोहा भी सिंगभूमि तथा उड़ीसा की ही तरह है। अब ताता कम्पनी सबसे अधिक लोहा सिंगभूमि जिले के कोलहन प्रदेश नौआमुंडी खानों से निकालती है। बंगाल आयरन कम्पनी भी कोलहान लौह प्रदेश (सिंगभूमि में) की 'पानसिरा बुरु' तथा '"बुदाबुरु"' खानों से लोहा निकालती है। ये खानें बी० यन० आर० के मनहर-पूर स्टेशन के समीप हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि "पानसिरा बुरु" की खानों में एक करोड़ टन लोहा है और "बुदाबुरु" में लगभग १५ करोड़ टन लोहा भरा हुआ है। लोहा हैमिटाइट जाति का है, और कच्चे लोहे में ६४% शुद्ध लोहा है।

मैसूर राज्य में भद्रावती के कारखाने में "केमानगुंदी" की खानों से निकला हुआ लोहा काम में लाया जाता है। यह खानें भद्रावती से २६

SINGBHUM



MAURBHANG



KEONJHAR



MYSORE



C.P.



मील दक्षिण में हैं। इन खानों के कच्चे लोहे में ६४% शुद्ध लोहा है। वैसे मैसूर राज्य में बाबाबुदाना की खानों में बहुत अच्छी जाति का लोह (हैमेटाइट) यथेष्ट भरा हुआ है, किन्तु अभी उसका उपयोग नहीं होता। मैसूर की खानों में लोहा तीन करोड़ टन से ६ करोड़ टन तक अनुमान किया जाता है।

मध्यप्रान्त में द्रुग ज़िले में राजहारा पहाड़ियों में लोहा यथेष्ट है और वह हैमेटाइट (Hematite) जाति का है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहाँ लगभग ७५ लाख टन लोहा है। सम्भव है कि इससे अधिक भी हो। चाँदा ज़िले में लोहारा पहाड़ियों में लोहा पाया जाता है। किन्तु मध्यप्रान्त की लोहे की खानें कोयले की खानों से बहुत दूर हैं इस कारण उनका उपयोग नहीं होता है।

मद्रास प्रान्त में सलेम और नेलोर ज़िलों में बहुत लोहा भरा पड़ा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहाँ की खानों में लोहा इतना अधिक भरा पड़ा है कि जिसका ठीक अनुमान ही नहीं किया जा सकता। यह लोहा मैगनेटाइट (Magnetite) जाति का है। किन्तु यहाँ भी कोयला न होने के कारण इस लोहे का उपयोग नहीं किया जा सकता।

ऊपर दिये हुये विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक लोहे का प्रश्न है भारतवर्ष बहुत धनी है। यहाँ का लोहा बहुत अच्छा है और कच्चे लोहे में शुद्ध लोहे का प्रतिशत ६०% प्रतिशत से भी अधिक है। अभी तक लोहे का धन्धा पूरी तरह से उन्नत नहीं हुआ है इस कारण उसका पूरा उपयोग नहीं हो सका है। जितना लोहा इस समय भारतवर्ष में निकाला जाता है उसका आधे के लगभग सिंगभूमि की खानों से निकाला जाता है; और अधिकांश कच्चा लोहा ताता कारखाने में काम आता है।

भिन्न भिन्न लौह केन्द्रों में जो कच्चे लोहे का कोष अनुमान किया जाता है वह नीचे लिखे अनुसार है :—

सिंगभूमि जिले की खानें	१०४७०	लाख टन
क्योंझर राज्य	६८८०	,, ,,
बोनाई	६४८०	,, ,,
मयोरभंज राज्य	१८००	,, ,,

मद्रास के नेलौर और सेलम जिले के लोहे के सम्बन्ध में विशेषज्ञों का कथन है कि वह समाप्त नहीं होने वाला है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह लोह क्षेत्र सब से धनी है। यहाँ मुख्य लौह केन्द्र जहाँ लोहा अधिक भरा है नीचे लिखे हैं। (१) गोदामलाई (२) थालामलाई (३) कोलीमलाई (४) थिरतामलाई (५) कोजामलाई (६) सिनगापट्टी। यहाँ कोयला न होने के कारण इनका उपयोग नहीं हो सकता।

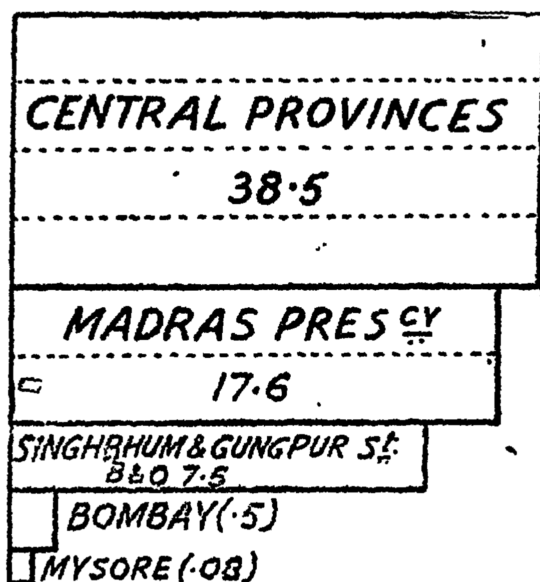
भारत में प्रतिवर्ष ३० लाख टन लोहा निकाला जाता है। इसका अधिकांश भाग सिंगभूमि जिले, क्योंझर राज्य और मयोरभंज राज्य से निकलता है। भविष्य में भारत विदेशों को लोहा भेज सकेगा।

कच्चे लोहे की वार्षिक उत्पत्ति

प्रान्त	लोहा टनों में
उड़ीसा।	
क्योंझर	३,०००,०००
मयूरभंज	३,०००,०००

सिंगभूमि	१२,०००,०००
मध्यप्रान्त	८००
मैसूर	२४,०००

मैंगनीज़ (Manganese) मैंगनीज़ भारतवर्ष में प्रायद्वीप के भाग में बहुत मिलता है। संसार में रूस को छोड़कर भारतवर्ष सब देशों से अधिक मैंगनीज़ उत्पन्न करता है। मैंगनीज़ का उपयोग स्टील बनाने में होता है। अतएव मैंगनीज़ निकालने का धन्धा स्टील के धन्धे पर निर्भर है। भारतवर्ष में स्टील अधिक नहीं बनाया जाता इस कारण अधिकांश मैंगनीज़ योरोप और अमेरिका को भेजा जाता है।



भारतवर्ष में निम्नलिखित प्रदेशों में मैंगनीज़ पाया जाता है।

मदरास :—गंजाम, बेलारी, सांडूर, तथा विजगापट्टम।

बम्बई :—नामकोट, पंचमहल, छोटा-उदयपूर, रत्नागिरी, और धारवार।

मध्य भारत :—झाबुआ राज्य।

मध्य प्रान्त :—बालाघाट, भांद्रा, छिंदवारा, नागपूर, सियोनी और जबलपूर।

बिहार :—सिंगभूमि

उड़ीसा :—गंगपूर और क्योंझर

मैसूर :—चीतलदुर्ग, कादूर, शिमोगा और तुमकुर

भारतवर्ष से बाहर जाने वाले मैंगनीज़ का अधिक भाग ब्रिटेन को जाता है। इसके अतिरिक्त फ्रांस, जर्मनी, जापान, बैलजियम, को भी यहाँ से मैंगनीज़ भेजा जाता है।

दूसरे महायुद्ध के पूर्व भारत में वार्षिक मैंगनीज़ की उत्पत्ति इस प्रकार थी :—

मध्य प्रान्त	३,८५,१७९	टन
मद्रास	१,७५,५७१	टन
उड़ीसा	७४,९९६	टन
बम्बई	४,८६६	टन
मैसूर	८७१	टन

युद्ध के पूर्व मैंगनीज़ की वार्षिक उत्पत्ति का मूल्य लगभग चार करोड़ तीस लाख रुपये था।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य प्रान्त सब से अधिक मैंगनीज़ उत्पन्न करता है। देश में जितना मैंगनीज़ उत्पन्न होता है उसका लगभग ६० प्रति शत मध्य प्रान्त में निकलता है। विजगापट्टम का बन्दरगाह बन जाने से धन्धे को और भी अधिक प्रोत्साहन मिला है क्योंकि विजिगापट्टम—रायपुर रेलवे बन जाने से मैंगनीज़ सरलता से विजिगापट्टम के बन्दरगाह पर पहुँच जाता है और वहाँ से विदेशों को चला जाता है। इस बन्दरगाह के बनने से पूर्व मध्य प्रान्त को बम्बई और कलकत्ता बन्दरगाहों पर निर्भर रहना पड़ता था इस कारण मैंगनीज़ को विदेशों को भेजने में बड़ी असुविधा होता थी।

मद्रास मध्य प्रान्त के आधे से कुछ अधिक मैंगनाज़ उत्पन्न करता है। मुख्य उत्पत्ति केन्द्र बैलारी, सांडूर राज्य, और विज़िगापट्टम जिले हैं। अधिकांश मैंगनीज़ विजिगापट्टम के बन्दरगाह से विदेशों को भेज दिया जाता है। उड़ीसा में केवल गंगपूर रियासत और सिंगभूमि से मैंगनीज़ निकलता है उसकी वार्षिक उत्पत्ति ८०,००० टन है। बम्बई और मैसूर में यद्यपि मैंगनीज़ की खानें बहुत से स्थानों पर पाया जाता है किन्तु उत्पादन अधिक नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों से यद्यपि भारत के स्टील के कारखानों में मैंगनीज़ की खपत बढ़ रही है फिर भी ७ लाख टन वार्षिक उत्पत्ति में से केवल ६०,००० टन हो काम में आता है शेष विदेशों को भेजा जाता है।

संसार में भारतवर्ष का स्थान अबरख उत्पन्न करने वालों में प्रथम है।

अबरख (Mica) भारतवर्ष में तीन प्रमुख अबरख क्षेत्र हैं। बिहार का क्षेत्र जो ७० मील लम्बा और १२ मील चौड़ा है मानभूमि, हज़ारी बाग, मुंगेर और गया ज़िलों में हैं। दूसरा क्षेत्र मदरास के नैलोर तथा नीलगिरी ज़िले में हैं। तीसरा क्षेत्र अजमेर मेरवाड़ा तथा जयपूर और मेवाड़ राज्य में है। भारतवर्ष में अधिकांश अबरख बिहार के क्षेत्र से निकाला जाता है। अबरख का अधिकतर उपयोग बिजली के काम में होता है। भारतवर्ष से बहुत सा अबरख ब्रिटेन और संयुक्तराज्य अमेरिका को जाता है।

भारतवर्ष में जितना अबरख उत्पन्न होता है उसका ८० प्रतिशत बिहार की खानों से निकलता है। सब से महत्वपूर्ण खानें कोदारमा के जंगल में तथा उसके आस पास स्थित हैं नैलोर जिले में जो अबरख का क्षेत्र है वह मदरास के तटीय मैदान में स्थित है यह क्षेत्र ६० मील लम्बा और १० मील चौड़ा है यहाँ का अबरख हरा होता है। नैलोर बिहार के उपरान्त सब से अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

अजमेर मेवाड़ तथा दक्षिण राजपूताना के राज्यों में भी अबरख बहुत है किन्तु अभी इसको निकाला नहीं गया था किन्तु पिछले दिनों यहाँ भी यह निकाला जाने लगा है।

कुछ दिनों से ट्रावंकोर के इरानिआल ताल्लुका और मैसूर के हसान जिले से भी अबरख निकाला जाने लगा है।

अबरख का बिजली के धन्धे में बहुत उपयोग होता है।

ताँबा (Copper) भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ताँबे का प्रचलन था और ताँबा निकाला जाता था। वर्तमान समय में बिहार के सिंगभूमि ज़िले में ताँबा बहुत निकाला जाता है। भारतवर्ष का यही मुख्य ताँबे का क्षेत्र है। १९१८ में ताँबे को निकालने और गलाने का काम आरम्भ हुआ। भारतवर्ष में सबसे महत्वपूर्ण ताँबे का कारख़ाना इंडियन कापर कारपोरेशन का है जो "मौभंदर" घाट सिला पर स्थित है। संसार के ताँबे की उत्पत्ति की तुलना में भारतवर्ष का स्थान नगण्य है।

ताँबा बिहार के हज़ारी बाग ज़िले, संयुक्तप्रान्त के कुमायूं कमिश्नरी, तथा सिक्किम राज्य में भी पाया जाता है, किन्तु अभी तक निकाला नहीं जाता।

वोलफ्रैम से टंगस्टन (Tungsten) बनाया जाता है। बढ़िया स्टील बनाने के लिए टंगस्टन का उपयोग होता है। जिस स्टील से औज़ार हथियार तथा यंत्र बनाये जाते हैं उसको तैयार करने के लिए टंगस्टन की आवश्यकता होती है। टंगस्टन एक अत्यन्त आवश्यक धातु है।

वोलफ्रैम (Wolfram)

वोलफ्रैम सब से अधिक बर्मा में निकलता है। किन्तु अब बर्मा भारतवर्ष का अंग नहीं है। भारतवर्ष में बिहार के सिंगभूमि ज़िले में, मध्यप्रान्त में अगरगाँव, तथा जोधपूर राज्य में दागाना में, वोलफ्रैम पाया जाता है। किन्तु सिंगभूमि के अतिरिक्त और कहीं निकाला नहीं जाता।

बाक्साइट (Bauxite)

बाक्साइट का उपयोग यल्मीनियम के बनाने में होता है। भारतवर्ष में बाक्साइट प्रायद्वीप में बहुत मिलता है।

मध्यप्रांत में कटनी, बालघाट, मांडला, तथा सारगूजा राज्य में बाक्साइट पाया जाता है। मध्यभारत के रीवा तथा भोपाल राज्यों में, तथा छोटा नागपूर, बिहार, और उड़ीसा में, बम्बई प्रान्त के सतारा तथा कैरा ज़िलों में, मैसूर तथा काश्मीर में बाक्साइट पाया जाता है किन्तु अभी तक अधिक निकाला नहीं जाता। यदि सस्ती बिजली मिलने की सुविधा हो तो यल्मीनियम का धन्धा भारतवर्ष में विशेष उन्नति कर सकता है। कुछ यल्मीनियम के कारखाने भारतवर्ष में स्थापित हो गए हैं किन्तु अभी तक यह धन्धा भारतवर्ष में अधिक उन्नति नहीं कर सका है। इसके दो कारण हैं। एक तो भारतवर्ष में यल्मीनियम के बर्तनों का चलन नहीं है और दूसरे यहाँ सस्ती बिजली मिलने की सुविधा नहीं है।

पत्थर

भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन समय से पत्थर का उपयोग इमारतों के बनाने में किया जाता रहा है। भारतवर्ष की ऐतिहासिक इमारतें ताज, क़िले, और राजपूताने के राज्यों के प्रसिद्ध महल, तथा प्रसिद्ध हिन्दू मंदिर पत्थर के बने हुए हैं। इमारतों का पत्थर अधिकतर विंध्या-पर्वत माला तथा अरावली की पहाड़ियों से प्राप्त होता है। राजपूताने के सभी राज्यों तथा मध्यप्रान्त के अधिकांश राज्यों में इमारत के लिए पत्थर निकाला जाता है। दक्षिण भारत में अग्निमय चट्टानें मदरास में, ग्रेनाइट पत्थर आरकट तथा मैसूर में तथा बम्बई और हैदराबाद में बेसल निकाला जाता है। मध्यप्रान्त में भी विंध्या का पत्थर काम में आता है।

संगमरमर पत्थरों में सर्व श्रेष्ठ है। यह मध्यप्रान्त के बैतूल, नागपूर, छिंदवारा, और जबलपूर में पाया जाता है। जोधपूर किशनगढ़ तथा अजमेर का सफ़ेद संगमरमर भारत प्रसिद्ध है। जोधपूर में मकराना की खानों से निकला हुआ संगमरमर सबसे अच्छा होता है। आगरे का ताजमहल और कलकत्ते का विक्टोरिया मैमोरियल इसी पत्थर के बने हैं। राजपूताने के जैसलमेर, उदयपूर और जयपूर राज्यों में पीला काला और सफ़ेद संगमरमर निकाला जाता है।

संगमरमर

स्लेट पंजाब, संयुक्तप्रान्त तथा बिहार के हिमालय प्रदेश से निकाला जाता है।

स्लेट

क्रोमियम का उपयोग स्टील बनाने में होता है। ज़ंग न लगने वाला स्टील बनाने में क्रोमियम की आवश्यकता होती है। क्रोमियम बलूचिस्तान, मैसूर, तथा बिहार के सिंगभूमि ज़िले में मिलता है। भारतवर्ष अधिकांश क्रोमियम विदेशों को भेज देता है।

क्रोमियम (Chromium)

भारतवर्ष में सोना तथा अन्य बहुमूल्य धातुएँ बहुत कम मिलती हैं। भारतवर्ष में चाँदी बिलकुल ही नहीं मिलती। थोड़ा सा सोना मिलता है। भारतवर्ष में जो भी सोना निकलता है उसका अधिकांश भाग मैसूर की कोलार सोने की खानों से ही मिलता है। कोलार सोने की खानों में बिजली से काम होता है। कावेरी नदी पर कृष्णराजासागर हाइड्रोइलैक्ट्रि प्लांट से उत्पन्न होने वाली बिजली का उपयोग होता है। कोलार की खानें बहुत ही गहरी (६५००० फीट) हैं और उनमें गरमी बहुत होती है। मैसूर के बाहर केवल हैदराबाद राज्य की हुट्टी की खानों से ही कुछ सोना निकाला जाता है।

सोना

इसके अतिरिक्त आसाम, उड़ीसा, छोटानागपूर, तथा मैसूर में नदियों के रेत को धोकर सोना निकाला जाता है। किन्तु यह महत्वपूर्ण नहीं है।

सीमेंट बनाने के लिए खड़िया, चूने का पत्थर, चीका मिट्टी तथा ऐसे ही दूसरे पदार्थों की आवश्यकता होती है। इन्हें फूँक कर सीमेंट बनाया जाता है। विंध्य पर्वतीय प्रदेश में ये पदार्थ यथेष्ट मिलते हैं। बिहार तथा कठियावाड़ में भी ये पदार्थ मिलते हैं। मदरास प्रान्त में भी ये पदार्थ पाये जाते हैं। किन्तु सीमेंट के धंधे के लिए सबसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण कोयला है। यह धंधा कोयले पर निर्भर है।

सीमेंट बनाने के पदार्थ

शीशा बनाने के पदार्थ

शीशा बनाने का धन्धा भारतवर्ष के पुराने धन्धों में से है। अत्यन्त प्राचीन काल से कुछ स्थानों में शीशे की चूड़ियाँ तथा शीशे की अन्य वस्तुएँ बनती है। किन्तु आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना अभी थोड़े ही दिनों से हुई है। प्रारम्भ में शीशे के कारखानों को स्थापित करने में सफलता नहीं मिली क्योंकि शीशे को तैयार करने के लिए उपयुक्त रेत नहीं मिला। किन्तु अब बंगाल में राजमहल की पहाड़ियों में संयुक्तप्रान्त में नैनी के पास लोघरा तथा बोरगढ़ में, तथा बड़ौदा और बीकानेर राज्यों में शीशा बनाने के लिए उपयुक्त अच्छा रेत मिल गया है। अधिकांश रेत पत्थर के रूप (Sand Stone) में मिलता है। इन पत्थरों को पीस कर रेत बनाया जाता है। रेत के अतिरिक्त सोडा, ऐश (ash) तथा चूना भी शीशा बनाने के लिए आवश्यक है। नैनी के समीप चूना भी मिलता है।

ईंट तथा मिट्टी के बर्तन

मध्यप्रान्त, मध्यभारत, राजपूताना, तथा पंजाब में अधिकांश मकान पत्थरों के बने होते हैं क्योंकि वहाँ पत्थर बहुतायत से मिलता है। किन्तु संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल, तथा आसाम में अधिकांश मकान ईंट, मिट्टी और खपरैल के बने होते हैं। इन प्रान्तों में पत्थर नहीं मिलते और मिट्टी ईंट तथा खपरैल बनाने के उपयुक्त है। यही कारण है कि इन प्रान्तों में ईंट बनाने का धन्धा विशेष उन्नति कर गया है। प्रत्येक शहर तथा कस्बे के समीप ईंटों के भट्टे मिलते हैं, क्योंकि उत्तर के गंगा तथा ब्रह्मपुत्र के मैदानों में मिट्टी ईंट बनाने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। इस धन्धे के लिए अच्छी मिट्टी तथा कोयले और लकड़ी की आवश्यकता होती है। बंगाल में ईंट के भट्टों में कोयले का उपयोग होता है। संयुक्तप्रान्त में अधिकतर लकड़ी का उपयोग होता है।

भारतवर्ष में अधिकतर छोटे छोटे भट्टों में हाथ से ईंट बनाई जाती हैं। ऐसे भट्टे शहरों के पास होते हैं जहाँ की मिट्टी बहुत अच्छी नहीं होती। दूसरे ईंट को शीघ्र ही सुखाया नहीं जा सकता इस कारण ईंट वायु से जल को सोख लेती है और पकने पर चटक जाती है। किन्तु मशीनों के द्वारा ईंट बनाने से यह कठिनाई उपस्थित नहीं होती। यंत्रों द्वारा ईंट बनाने के बड़े कारखानों को स्थापित करने में एक कठिनाई यह उपस्थित होती है कि वह उसी स्थान पर खड़े किए जा सकते हैं जहाँ कि अच्छी मिट्टी बहुतायत से मिल सके। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे स्थान शहरों के पास ही हों। यदि सड़कों का अधिक विस्तार हो तो मोटर लारियों के द्वारा सस्ते

किराये में ईंटों को ले जाने की सुविधा हो जाये तो बड़े बड़े कारखाने ऐसे स्थानों पर अधिक स्थापित किए जायेंगे जहाँ अच्छी मिट्टी मिलती है और कोयला मिलने की सुविधा है। अभी तक यंत्रों द्वारा ईंट बनाने के कारखाने कम ही हैं।

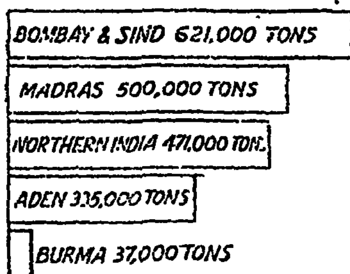
भारतवर्ष में मिट्टी के बर्तनों का उपयोग बहुत अधिक होता है, सुराही, चिलम, मटका प्रत्येक भारतीय के घर में दिखाई देते हैं। साथ ही शादी तथा अन्य अवसरों पर भी मिट्टी के बर्तनों की बेहद माँग होती है। प्रत्येक गाँव, कस्बे और शहर में लाखों की संख्या में कुम्हार इस धंधे में लगे हुए हैं। यह बर्तन शीघ्र ही टूट जाते हैं तथा एक बार काम में लाये जाने के उपरान्त इनको फेंक दिया जाता है। इस कारण इनकी माँग बराबर बनी रहती है। इन बर्तनों पर ग्लेज़ नहीं होता है।

कुछ दिनों से भारतवर्ष में चीनी मिट्टी के बर्तनों का भी प्रचार तेज़ी से बढ़ रहा है। इस धन्धे के लिए देश में विस्तृत क्षेत्र है। चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारखानों के लिए अच्छी मिट्टी, सस्ता कोयला और मार्ग की सुविधा आवश्यक है। भारतवर्ष के कई प्रान्तों में चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए उपयुक्त मिट्टी मिलती है और देश में बहुत से कारखाने स्थापित हो गए हैं। भारतवर्ष में चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारखानों के तीन प्रमुख केन्द्र हैं। कलकत्ता, रानीगंज झरिया, तथा ग्वालियर। कलकत्ता के समीपवर्ती क्षेत्र में स्थापित कारखाने संथाल परगना तथा भागलपूर ज़िले की मिट्टी उपयोग में लाते हैं। रानीगंज तथा बिहार के कुछ ज़िलों में भी अच्छी मिट्टी मिलती है। रानीगंज के क्षेत्र में कोयले की सुविधा के कारण बहुत से कारख़ाने स्थापित किये गये हैं। ग्वालियर के कारख़ानों में ग्वालियर राज्य में मिलने वाली मिट्टी काम में आती है। यहाँ के कारख़ाने जबलपूर से भी मिट्टी मँगाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारख़ाने हैं।

ईंट के अतिरिक्त चूने का भी मकान बनाने में बहुत उपयोग होता है। चूना चूने के पत्थर (Lime Stone) से तैयार किया जाता है। चूने का पत्थर रीवा राज्य के सतना जिले में जबलपूर के कटनी नामक स्थान पर, आसाम में सिलहट में, दक्षिण बिहार तथा मध्यभारत के बिसरा नामक स्थान पर बहुत मिलता है। कंकड़ से भी चूना तैयार किया जाता है। कंकड़ देश के बहुत बड़े भाग में पाया जाता है। कंकड़ को फूंक कर पीसा जाता है तब चूना तैयार होता है। उत्तर तथा दक्षिण भारत में कंकड़ का उपयोग सड़क बनाने में भी होता है।

नमक दैनिक उपयोग की वस्तु है। भारतवर्ष में जितना भी नमक तैयार किया जाता है उसके मिलने के तीन साधन हैं। (१) समुद्र का जल (२) नमक की झीलों से (३) नमक की पहाड़ियों से। जितना नमक भारतवर्ष में बनाया जाता है उसका दो तिहाई समुद्र के जल से, पाँचवाँ हिस्सा झीलों से तथा आठवाँ हिस्सा नमक की पहाड़ियों से निकलता है।

नमक



भारतवर्ष में खाने के काम में आने वाला साधारण नमक ही तैयार किया जाता है क्योंकि इन स्थानों से साधारण नमक ही निकलता है। देश में औद्योगिक नमक बहुत कम निकलता है। केवल संयुक्तप्रान्त तथा बिहार में कुछ नीलाथोथा (Saltpetre) निकलता है तथा सिंध और पंजाब में Gypsum पाया जाता है किन्तु उसकी माँग न होने के कारण निकाला नहीं जाता।

भारतवर्ष में खाने योग्य साधारण नमक का धंधा आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस धंधे पर सरकार का पूर्ण एकाधिपत्य (Monopoly) है और प्रति वर्ष इससे भारत सरकार को करोड़ों रुपये की आमदनी होती है। १९३१ में महात्मा गाँधी द्वारा नमक सत्याग्रह किये जाने के कारण यह धंधा राजनैतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गया है।

भारतवर्ष में समुद्र के जल से नमक अधिकतर बम्बई तथा मदरास के तट पर निकाला जाता है। पश्चिमी तट पर सबसे अधिक नमक तैयार किया जाता है। बम्बई प्रान्त सबसे अधिक नमक तैयार करता है। बम्बई में अधिकांश नमक जल को सूर्य की गरमी से सुखा कर बनाया जाता है। खम्भात की खाड़ी के समीप घरसना तथा चहारवादा में सरकारी नमक के कारखाने हैं। इनके अतिरिक्त नमक के अन्य कारखाने बम्बई नगर के चारों ओर स्थापित हैं। नमक के कारखाने ऐसे स्थान पर स्थापित किये जाते हैं जो कि समुद्र के ज्वार भाटे के तल से नीचा हो। ऐसे स्थान के

चारों ओर एक पक्का मजबूत बाँध बना दिया जाता है। इस घेरे में बाहरी तथा भीतरी जल भंडार होते हैं तथा नमक बनाने का बड़ा हौज़ होता है। जब पानी ऊँचा उठता है तो बाहरी जल भंडार भर जाता है। इस भंडार से पानी भीतरी भंडार में जाता है वहाँ से पानी नमक के हौज में भेजा जाता है। नमक के हौज़ में कुछ दिन रहने के उपरान्त ऊपरी सतह पर नमक के कण जम जाते हैं। जब यह कण एक इंच मोटे हो जाते हैं तब नमक हौज़ के किनारे पर इकट्ठा कर दिया जाता है और नमक को सुखा लिया जाता है। हौज़ का पानी निकाल कर उसमें नया पानी भर दिया जाता है। नमक बनाने का काम जनवरी से जून तक होता है।

बम्बई के नमक का एक बड़ा हिस्सा रान नमक के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि यह नमक रान-आव-कच (Rann of Cutch) के समीपवर्ती कुओं के जल से बनाया जाता है। रान के समीप सबसे बड़ा कारखाना खारागोदा नामक स्थान पर है। यहाँ बड़े बड़े कुओं के पानी से नमक तैयार किया जाता है। नवम्बर से एप्रिल तक नमक बनाने का सीज़न होता है।

सिंध में कराची के समीप मौरीपूर में समुद्र तट पर एक बड़ा नमक का कारखाना है। यहाँ भी पानी कुओं से लिया जाता है। कारखाने के चारों ओर गहरी खाई बना दी गई है जिसमें कि प्रति पंद्रह दिन में ज्वार भाटे के कारण पानी भर जाता है। यह पानी कुओं में जाता है। जहाँ से पानी नमक बनाने के हौज़ों में ले जाया जाता है। भारतवर्ष में कराँची नमक बनाने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त स्थान है। यहाँ वर्षा बहुत कम (७ इंच) होती है। अतएव वायु में नमी नहीं रहता और वह चलती रहती है। यहाँ गरमी भी खूब पड़ती है। इस कारण यहाँ वर्ष में ग्यारह महीने नमक बनाया जा सकता है।

पूर्व तट पर मदरास प्रान्त में ही सारे नमक के कारखाने स्थित हैं। नमक बनाने का ढंग वही है जो बम्बई में है। उत्तर के ज़िलों में जनवरी के अन्त से लेकर जूलाई के प्रारम्भ तक नमक बनाया जाता है। दक्षिण में मार्च या एप्रिल में काम शुरू होता है और अक्टूबर तथा नवम्बर तक चलता है। मदरास का नमक प्रान्त में बिकता है और सीलोन को भेजा जाता है।

कच्छ और सिंध के तट से पश्चिम राजपूताना तथा बहावलपुर राज्य में जो विस्तृत मरुभूमि फैली हुई है उसमें बहुत सी बड़ी और छोटी नमक की झीलें हैं। इनमें सांभर तथा डीडवाना झीलें बहुत बड़ी हैं। इन झीलों

से नमक निकाला जाता है। इन झीलों के अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थान भी हैं जहाँ पृथ्वी के नीचे बहनेवाला नमकीन पानी निकाल कर उससे नमक बनाया जाता है। उदाहरण के लिए पंचभद्रा का नमक का कारखाना। इस प्रदेश में जो नमक मिलता है उसका कारण यह है कि दक्षिण-पश्चिम से चलने वाली हवायें कच्छ की खाड़ी (Rann of Cutch) के प्रदेश से बहुत बारीक नमक के कणों को उड़ाकर लाती हैं और राजपूताने के मध्य में बिछा देती हैं। वर्षा ऋतु का पानी इस नमक को बहाकर इन झीलों में इकट्ठा कर देता है।

नमक की झीलों में साँभर सबसे बड़ी है। पूरी भरी होने पर इसका क्षेत्रफल ९० वर्ग मील होता है। जब झील का पानी सूख जाता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक जम जाता है। झील में एक किनारे पर एक बहुत बड़ा बाँध बनाया गया है और झील का पानी इस तालाब में पम्प के द्वारा पहुँचाया जाता है। इस बड़े जल भंडार से पानी छोटे भंडारों में पहुँचाया जाता है। अन्त में उन हौज़ों में ले जाया जाता है जहाँ पानी भाप बन कर उड़ जाता है और केवल नमक ही रह जाता है। सांभर का नमक संयुक्तप्रान्त तथा राजपूताना में बिकता है।

पत्थर का नमक पंजाब की नमक की पहाड़ियों (Salt Range) से ही निकलता है। नमक अधिकतर उन पहाड़ियों में खेरवा की खानों से निकलता है परन्तु कुछ नमक वार्चा और नुरपुर की खानों से भी निकाला जाता है। सैकड़ों वर्षों से खेरवा की खानों से नमक निकाला जाता रहा है किन्तु १८७० से आधुनिक ढंग से खानों को खोदा जाने लगा है।

नमक पर एकाधिपत्य स्थापित करके भारत सरकार ने नमक जैसी दैनिक आवश्यकता की वस्तु को निर्धन भारतीयों के लिए मँहगा बना दिया था। इसी कारण देश में नमक कर का इतना अधिक विरोध हुआ। हर्ष की बात है कि राष्ट्रीय सरकार ने नमक कर को उठा दिया।

नीलाथोथा (Saltpeter)

नीलाथोथा औद्योगिक खनिज है। इसकी बहुत बड़ी माँग है। यह मुख्यतः बिहार और संयुक्तप्रान्त में निकाला जाता है। इसके तैयार होने का मुख्य केन्द्र फरुखाबाद है। भारतवर्ष में जितना भी नीलाथोथा तैयार होता है उसका अधिकांश भाग विदेशों को चला जाता है थोड़ा सा आसाम के चाय के बागों में काम आता है।

सोडा (Soda)

सोडा बहुत से धन्धों में काम आता है। विशेषकर साबुन बनाने और शीशा बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। यह बिहार के चंपारन, मुज़फ्फरपुर जिलों और सारन राज्य में, संयुक्तप्रान्त के बनारस, आज़मगढ़ जौनपूर, गाज़ीपूर ज़िलों में, बरार, खैरपूर राज्य, सिंध, और राजपूताना के सांभर झील के प्रदेश में निकलता है। अधिकांश सोडा बाहर चला ज़ाता है। भारत में सोडा बनाने का धंधा शीघ्र ही स्थापित होना चाहिए क्योंकि इस धंधे पर बहुत से धंधे निर्भर हैं।

जिपसम (Gypsum)

यह खाद बनाने के काम में आता है और कुछ विशेष प्रकार के कागज़ बनाने में भी इसका उपयोग होता है। भारत में सीमेंट के धंधे में भी इसका बहुत उपयोग होता है। अभी तक इसको अधिक नहीं निकाला गया है किन्तु इसकी खानें ट्रावंकोर, गोदावरी, और विजगापट्टम (मद्रास के जिले) उड़ीसा, मध्यप्रान्त और अजमेर मेरवाड़ा में हैं।

ऐस्बस्टस (Asbestos)

अग्नि से बचाने के लिए जो वस्तुयें तैयार की जाती हैं उनके तैयार करने में यह काम आता है। भारत में बंगलौर, मैसूर, अजमेर मेरवाड़ा, और मद्रास के कुड़ापा जिले में निकलता है।

क्रोमाइट (Chromite)

यह फैरो क्रोम, क्रोमाइट स्टील, और क्रोमाइट ईटें बनाने के काम में आता है। इससे क्रोमियम लवण भी बनता है जो रंगने और चमड़ा कमाने के काम में आता है। भारत में जितना क्रोमाइट निकलता है उसका ६५% मैसूर में निकलता है। वहाँ शिमोगा और हसान मुख्य केन्द्र हैं। मैसूर के अतिरिक्त सिंगभूम में भी देश की उत्पत्ति का एक तिहाई क्रोमाइट निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त बलूचिस्तान, रांची (उड़ीसा) और भागलपूर (बिहार) में भी क्रोमाइट निकलता है। सारा का सारा क्रोमाइट विदेशों को भेज दिया जाता है।

ऐंटीमनी (Antimony)

नरम धातुओं से मिलाने के लिए यह एक उपयोगी धातु है। यद्यपि अभी भारत में ऐंटमनी निकाला नहीं जाता है किन्तु भविष्य में इसकी बहुत सम्भावना है और वह महत्व-पूर्ण खनिज होगा। लाहौल (पंजाब) में शिरगी ग्लेशियर में ऐंटीमनी बहुत है किन्तु अत्यन्त शीत के

कारण उसको निकाला नहीं जा सकता। मैसूर के चीतलदुर्ग में भी ऐंटीमनी की खानें हैं।

बहुमूल्य पत्थर

यद्यपि हीरा इत्यादि बहुमूल्य पत्थर निकालने का धन्धा देश में बहुत पुराना है किन्तु भारत में अब बहुमूल्य पत्थर बहुत कम निकलता है। अनन्तपूर बैलारी, क्रिश्ना, गंटूर, और गोदावरी ज़िलों में (मद्रास) उड़ीसा के सम्भलपूर ज़िले में, मध्यप्रान्त के चाँदा ज़िले, बुंदेल खंड तथा मध्य भारत के राज्यों में कुछ हीरा निकलता है।

औद्योगिक मिट्टियाँ (Clays)

बिहार, उड़ीसा, जबलपूर, मैसूर, देहली और मद्रास में चीनी मिट्टी मिलती है जिससे चीनी मिट्टी के बर्तन बनते हैं। राजपूताना, मैसूर, तथा मध्यप्रान्त में Fullersearth पाई जाती है।

कोबाल्ट (Cobalt)

कोबाल्ट खेतरी राज्य (जयपूर-राजपूताना) तथा नैपाल में बहुत मिलता है।

भारत की खनिज सम्पत्ति

प्रकृति ने भारत को खनिज पदार्थ भी अधिक राशि में दिए हैं। पिछले दिनों में खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में जो जाँच हुई है उससे पता चलता है कि भारत खनिज पदार्थों की दृष्टि से निर्धन नहीं है। बहुत से नवीन खनिज प्रदेशों का पता लगा है। प्रतिवर्ष ४० करोड़ रुपये का खनिज पदार्थ भारतीय खानों से निकाला जाता है।

जितनी भी धातुयें और खनिज भारत में निकलती है उनमें मुख्य नीचे लिखी हैं:—लोहा, कोयला, मैंगनीज, अबरख, नमक, पैट्रोलियम।

मुख्य खनिज पदार्थों की उत्पत्ति

	१९४० में			
लोहा	१७ करोड़ रुपये			
कोयला	१०.५ करोड़ रुपये			
मैंगनीज	४·३	,,	,,	(लड़ाई के पूर्व)
सोना	३·२	,,	,,	
पैट्रोलियम	१·८	,,	,,	
अबरख (mica)	१·६	,,	,,	
इमारती पत्थर	१·१	,,	,,	
नमक	०·९९	,,	,,	

ताँबा	०·७३ करोड़ रुपये
फैरो मैंगनीज	०·२८ ,, ,,
नीलाथोथा (Saltpetre)	०·१६ ,, ,,
क्रोमाइन (Chromine)	०·०८ ,, ,,

सीसा, ताँबा और जिंक यद्यपि थोड़ा मिलता है किन्तु यह नहीं के बराबर है। गंधक भी मिलता है।

देश का विस्तार तथा जनसंख्या को देखते हुए यह कहना कठिन है कि देश में खनिज अत्याधिक हैं। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि देश खनिज पदार्थों की दृष्टि से निर्धन नहीं है।

जहाँ तक खनिज पदार्थों का प्रश्न है ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ भारत में यथेष्ट राशि में है और भारत उन्हें विदेशों में भेज सकता है। कुछ ऐसे खनिज पदार्थ हैं जो कि भारत की आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं और कुछ ऐसे खनिज पदार्थ भी हैं जिनके लिए भारत को विदेशों पर निर्भर करना होगा।

१. वे खनिज पदार्थ जिनको भारत बाहर भेज सकता है। अर्थात् भारत के पास यथेष्ट हैं।

लोहा, मैंगनीज, अबरख (Mica), बाक्साइट (Bauxite) जिपसम (Gypsum) मैंगनेसाइट (Mangnesite).

२. वे खनिज पदार्थ जो भारत की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हैं :—

कोयला, सीमेंट के लिए आवश्यक पदार्थ. एलूमीनियम, सोना, ताँबा, क्रोम, इमारती पत्थर, संगमरमर, स्लेट, औद्योगिक मिट्टियाँ, सोडियम लवण और शोरा इत्यादि, लाइमस्टोन और डोलोमाइट, शीशे का रेत, बोरैक्स, नाइट्रेट, फासफेट्स, जिरकन (Zircon) आरसेनिक (Arsenic) ऐन्टीमनी (Antimony) बहुमूल्य पत्थर वैनेडियम (Vauadium)

३. वे खनिज पदार्थ जिनके लिए भारत को मुख्यतः विदेशों पर निर्भर रहना होगा।

चाँदी, निकल, पैट्रोलियम, गंधक, सीसा (Lead) ज़िंक, टिन, पारा, टंगस्टन, प्लैटिनम (Platinum) ग्रैफाइट (Graphite) अस्फाल्ट (Asphalt) पोटाश।

भारतवर्ष में कुछ खनिज पदार्थ जैसे मैंगनीज अबरख (Mica) एबोनाइट (Ebonite) क्रोमाईट (Chromite) केवल विदेशों को भेजने के लिए निकाले जाते हैं। यदि इसको शीघ्र रोका नहीं

गया तो यह खनिज पदार्थ समाप्त हो जावेंगे। बात यह है कि खनिज पदार्थ कोई खेती की फसल तो है नहीं जो प्रतिवर्ष उत्पन्न की जा सके और भूमि को खाद इत्यादि देकर पूर्ववत उपजाऊ बनाये रक्खा जा सके। खानों में प्रकृति ने कुछ खनिज पदार्थ भर दिये हैं। उनके समाप्त हो जाने पर फिर मनुष्य के वश के बाहर की बात है कि उनको उत्पन्न कर सके। इस कारण खनिज पदार्थों का उपयोग किफायत के साथ होना चाहिए। उनकी बचत करनी चाहिए। उनको व्यर्थ नष्ट होने से बचाना चाहिए। कच्चा खनिज पदार्थ विदेशों को भेजा-जाने से रोक देना चाहिए। अभी तक अंग्रेजी सरकार इस ओर ध्यान नहीं देती थी किन्तु राष्ट्रीय सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए। नहीं तो हमारे बहुत से मूल्यवान खनिज पदार्थ समाप्त हो जावेंगे और देश की भावी औद्योगिक उन्नति को उससे धक्का पहुँचेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत की खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में कैसी स्थिति है और भारत सरकार की खनिज नीति क्या होनी चाहिए समझा कर लिखिए।

२—भारत की लोहे के सम्बन्ध में क्या स्थिति है और लोहा कहाँ कहाँ मिलता है बतलाइए।

३—मैंगनीज कहाँ कहाँ निकाला जाता है और इस धन्धे का भविष्य कैसा है?

४—भारत में नमक की उत्पत्ति पर एक छोटा निबंध लिखिए।

५—सोना और अबरख (Mica) कहाँ निकलता है और भारत की इन धातुओं के सम्बन्ध में क्या स्थिति है स्पष्ट लिखिए।

अठारहवाँ परिच्छेद

शक्ति के श्रोत (Sources of Power)

भारतवर्ष औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है इस कारण यहाँ यांत्रिक शक्ति (Mechanical power) अन्य देशों की तुलना में कम उत्पन्न होती है। जैसे जैसे भारतवर्ष में आधुनिक ढंग के उद्योग-धन्धों की उन्नति होगी वैसे ही वैसे यांत्रिक शक्ति (Mechanical power) का अधिकाधिक उपयोग होगा। भारतवर्ष कृषिप्रधान है और यहाँ खेती में पशु-शक्ति का ही अधिक उपयोग होता है। खेत जोतने से लेकर फसल को मंडी में ले जाने तक सारी क्रियायें पशु-शक्ति के द्वारा ही होती हैं। भारतवर्ष में संसार में सब से अधिक गाय-बैल (२१ करोड़) हैं परन्तु आधुनिक यंत्रों को चलाने में इन पशुओं का उपयोग नहीं हो सकता। प्रकृति ने बहती हुई जल धारा तथा वायु में भी अनन्त शक्ति भर रक्खी है। किन्तु जैसा आठवें परिच्छेद में कहा जा चुका है वायु तथा जल धारा भी आधुनिक बड़े बड़े यंत्रों और कारखानों को चलाने के उपयुक्त नहीं है। भारतवर्ष में तो हवा बहुत धीरे बहती है इस कारण उसका उपयोग साधारण कार्यों (जैसे पानी को खींचने इत्यादि) में भी नहीं हो सकता। केवल दक्षिण प्रायद्वीप के समुद्र तट पर हवा तेज़ बहती है। वहाँ हवा का उपयोग साधारण कार्यों में किया जा सकता है। जल धारा का ही उपयोग यहाँ उद्योग-धन्धे में भी नहीं हो सकता है क्योंकि मैदानों में धार तेज़ नहीं होती और गर्मी में नदियाँ सूख जाती हैं। भारतवर्ष में जंगलों की कमी के कारण ईंधन की भी बहुत कमी है।

अतएव इसका उपयोग भी शक्ति उत्पन्न करने में नहीं हो सकता। घरों में ईंधन जलाने के लिए ही यथेष्ट लकड़ी प्राप्त नहीं होती फिर उद्योग-धन्धों के लिए लकड़ी जलाकर शक्ति उत्पन्न करने की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। भारतवर्ष में उद्योग-धन्धों के लिए मुख्य शक्ति के श्रोत कोयला और बिजली हैं। बर्मा के पृथक् कर दिये जाने से पैट्रोलियम की उत्पत्ति तो यहाँ नाम मात्र को रह गई है। अब हम इन शक्ति के साधनों का विवरण नीचे लिखेंगे—

कोयला

कोयला संसार में शक्ति उत्पन्न करने का मुख्य साधन है। यदि कोयला न हो तो आधुनिक उद्योग-धन्धे बिल्कुल चौपट हो जायें। भारतवर्ष में भी कोयला ही शक्ति उत्पन्न करने का मुख्य साधन है क्योंकि यहाँ अभी जल विद्युत् बहुत कम उत्पन्न की गई है। परन्तु प्रकृति ने भारतवर्ष को यथेष्ट कोयला नहीं दिया। कोयले की दृष्टि से भारतवर्ष बहुत धनी नहीं है। १९३८ में भारतवर्ष की कुल उत्पत्ति २५६ लाख टन के लगभग थी। जबकि संसार की कुल उत्पत्ति १२२५० लाख टन थी। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार की कुल उत्पत्ति का भारतवर्ष ने केवल २ प्रतिशत कोयला उत्पन्न किया। संयुक्तराज्य प्रति वर्ष जितना कोयला निकालता है उसका लगभग बीसवाँ हिस्सा भारतवर्ष में निकलता है और ब्रिटेन की तुलना में भारतवर्ष पाँचवाँ हिस्सा कोयला निकालता है। संसार में कोयला उत्पन्न करने की दृष्टि से भारतवर्ष का आठवाँ स्थान है। भारतवर्ष जैसा विशाल देश, वेलजियम, फ्रांस और पोलैंड से भी कम कोयला उत्पन्न करता है। इसी से उसकी निर्धनता का परिचय मिलता है। भारतवर्ष में केवल कोयले की कमी ही नहीं है। यहाँ अच्छी जाति का कोयला और भी कम है। भारतवर्ष का बढ़िया कोयला ब्रिटेन के साधारण कोयले से भी घटिया है। ऐसा कोयला जिसका कोक बनाया जा सके भारतवर्ष में कम ही मिलता है।

भारतवर्ष का लगभग ९७ प्रतिशत कोयला गोंडवाना चट्टानों से निकलता है। ये चट्टानें बहुत पुरानी हैं और अधिकतर रेत के पत्थर (Sandstone) तथा जमी हुई मिट्टी (Shale) की बनी हैं। इनमें रानीगंज, झरिया, बाकोरा, करनपूर तथा गिरडिह कोयले के क्षेत्र प्रमुख हैं। ये कोयले के क्षेत्र बंगाल और बिहार में हैं और देश का लगभग ९० प्रतिशत कोयला इन्हीं क्षेत्रों से निकलता है। ऊपर दिये हुये कोयले के क्षेत्रों के अतिरिक्त पालामऊ ज़िले में, डाल्टनगंज की खानों में, तथा गोदावरी की घाटी में शिगरनी, बल्लरपूर तथा बरोरा की खानें और मोहपानी तथा पंच घाटी की खानें जो सतपुरा के समीप है गोंडवाना चट्टानों के क्षेत्र में ही स्थित हैं। ये खानें मध्यप्रान्त में स्थित हैं।

गोंडवाना चट्टानों के क्षेत्र के बाहर कोयला आसाम और बिलोचिस्तान और पंजाब में भी पाया जाता है। इनके अतिरिक्त हैदराबाद, रीवा तथा बीकानेर राज्यों में भी कुछ कोयला पाया जाता है। आसाम में लखीमपूर जिले की खानें अधिक महत्वपूर्ण हैं। महानदी और गोदावरी की घाटियों

के उत्तर पश्चिमी सिरों पर कोयले की खानें दक्षिण ट्रैप की चट्टानों में दबी हुई हैं। इस कारण उनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं हैं।

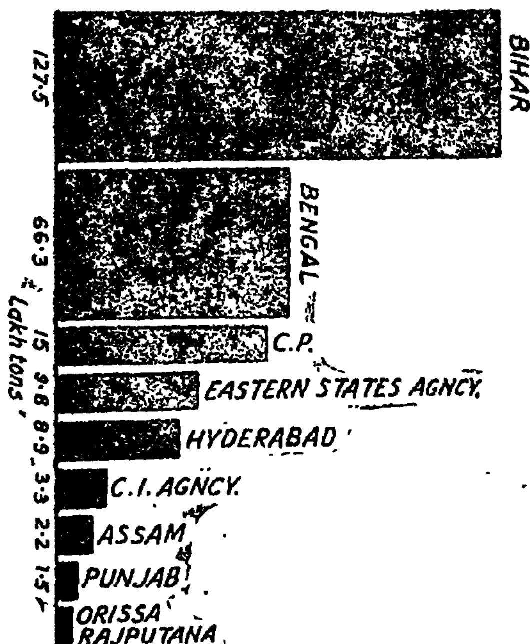
भारतवर्ष में झरिया की कोयले की खानें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। भारतवर्ष में जितना कोयला निकाला जाता है उसका लगभग आधा झरिया की कोयलों की खानों से निकलता है। यही नहीं कि झरिया की खानों से सबसे अधिक कोयला निकलता है वरन यहाँ का कोयला अच्छी जाति का होता है। झरिया के कोयले में अधिक भाग उस प्रकार के कोयले का होता है जिसका कोक बन सकता है। भारतवर्ष में कोक बनाने योग्य कोयला अधिक नहीं है और जो कुछ है वह झरिया की खानों से ही अधिकतर निकलता है। झरिया की खानों का क्षेत्रफल १५० वर्ग मील है। बारकर कोयले की खानें भी कोयला उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में विशेष महत्वपूर्ण हैं। यह गोंडवाना चट्टानों की निचली तहें हैं किन्तु अभी तक इस क्षेत्र की घटिया सीम (Seam) को जो ऊपरी सतह में हैं खोदने का प्रयत्न नहीं किया गया। रानीगंज भी कोयले उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में विशेष महत्वपूर्ण है। यहाँ की निचली चट्टानों में १८ सीम हैं और जिनकी मोटाई २०० फीट है। रानीगंज कोयले के क्षेत्र देश की कुल उत्पत्ति का एक तिहाई कोयला उत्पन्न होता है। इसका क्षेत्रफल ५०० वर्ग मील है जिसका अधिकांश भाग बर्दवान में है किन्तु कुछ भाग बाँकुरा, मानभूमि तथा संथाल परगने में भी हैं। रानीगंज की ऊपरी सतह में ६ सीम (Seam) हैं जो कि खोदी जा सकती हैं और जिन की मोटाई ५० फीट है।

गोंडवाना के उत्तरी पश्चिमी सिरे पर बरोरा का क्षेत्र है। निजाम राज्य में जो सिंगरनी की कोयले की खानें हैं वे भी गोंडवाना की चट्टानों का ही सिलसिला है। आसाम का कोयला गोंडवाना के कोयले से भिन्न होता है।

आसाम के कोयले में जल तथा तेल का अंश अधिक होता है। उसमें राख (ash) भी कम होता है। पंजाब के कोयले में राख (ash) अधिक होता है। आसाम का कोयला कोक बनाने के उपयुक्त नहीं है क्योंकि उसमें गंधक अधिक होती है। आसाम में माकुम की कोयले का खानें महत्वपूर्ण हैं। ये खानें एक रेल द्वारा ब्रह्मपुत्र नद पर स्थित डिब्रूगढ़ से जुड़ी हुई हैं। पंजाब में कोयला झेलम ज़िले में डंडौत के पठार पर निकाला जाता है।

भारत सरकार ने १९३७ में कोयले के धन्धे की जाँच कराने के लिए

एक कमेटी बैठाई थी। कमेटी ने अनुमान लगाया है कि भारतवर्ष में अच्छा कोयला जो कि खानों में भरा हुआ है कुल १,४२६,०००,००० टन है। इस समय ११,५००,००० टन अच्छा कोयला प्रति वर्ष निकाला जाता है। इस प्रकार भारतवर्ष का अच्छा कोयला जिससे कोक तैयार किया जा सकता है लगभग ६२ वर्षों में समाप्त हो जायगा। इस समय जिस प्रकार कोयला खानों से निकाला जाता है वह अत्यन्त दोष पूर्ण है और लगभग ५० प्रतिशत कोयला खानों में ही नष्ट हो जाता है। यदि खानों को खोदने के ढंग में सुधार हो और ५० प्रतिशत से अधिक कोयला निकाला जा सके तो कोक बनाने योग्य कोयला कुछ अधिक समय चल सकता है। परन्तु किसी भी दशा में अच्छा कोयला ६६ वर्षों से अधिक नहीं चल सकता।



भारतवर्ष में सब प्रकार का कोयला (अच्छा और घटिया) ५४,०००,०००,००० टन है। इसमें से केवल पाँच प्रतिशत कोयला कोक बनाने योग्य है। झरिया के क्षेत्र में २०,०००,०००,००० टन रानीगंज के क्षेत्र में २१,०००,०००,००० टन और उत्तरी करनपुरा में ८,६००,०००,००० टन कोयला भरा पड़ा है।

भारतवर्ष में कोक बनाने योग्य कोयला अधिकतर झरिया की खानों

से निकलता है। झरिया की खानों से प्रतिवर्ष एक करोड़ टन से कुछ अधिक कोयला निकलता है। डाक्टर फारमर के मत से झरिया की खानों का जीवन ४१ वर्ष है। उनका मत है कि यदि खानों को खोदने के ढंग में उन्नति हो, बहुत सा कोयला खानों में ही नष्ट न हो जाय, और खानों में आग लगना रोका जा सके तो अच्छा कोयला १०० वर्ष तक चल सकता है।

विशेषज्ञों का मत है कि साधारण कोयला भारतवर्ष में ३५० वर्ष तक चलेगा यद्यपि कोक बनाने योग्य कोयला भारतवर्ष में कम ही है परन्तु फिर भी उसका उपयोग किफायत से नहीं हो रहा है। होना तो यह चाहिये था कि वह कोयला जिसका हार्ड कोक (Hard coke) बन सके वह केवल लोहे और स्टील के धन्धे में ही काम में लाया जाये। क्योंकि स्टील के धंधे के लिए हार्ड कोक (Hard coke) आवश्यक है। परन्तु भारतवर्ष में यह अच्छा कोयला रेलवे तथा अन्य धन्धों में भी काम में लाया जाता है जिनका काम घटिया कोयले से भी चल सकता है।

भारतवर्ष का अधिकांश कोयला तो देश के अन्दर ही खप जाता है। थोड़ा सा कोयला सीलोन तथा पूर्व के देशों को जाता है। कोयले की समस्त उत्पत्ति का ३२ प्रतिशत रेलों में, २४.५ प्रतिशत लोहे के कारखानों में, १६ प्रतिशत उद्योग धन्धों में तथा १६ प्रतिशत घरों और छोटे छोटे धंधों में खर्च होता है। कुछ दिनों से भारतवर्ष में घरों में जलाने के लिए साफ़्ट कोक (Soft coke) का प्रचार बढ़ रहा है। (Soft coke) घटिया कोयले से तैयार होता है। भारतवर्ष में लकड़ी की कमी है। इस कारण गोबर जला दिया जाता है और खेतों को यथेष्ट खाद नहीं मिलती। यदि साफ्ट कोक का अधिक उपयोग बढ़ जाये तो खाद के लिए गोबर बच सकता है।

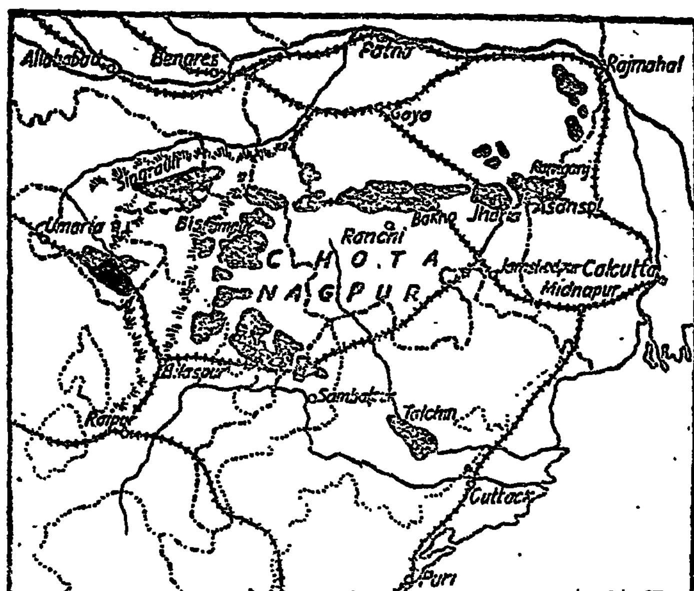
ब्रिटिश भारत में १९३८ में २५६ लाख टन कोयला निकाला गया। देशी राज्यों में बहुत कम कोयला निकलता है। १९३७ में देशी राज्यों में २७ लाख टन कोयला निकला गया। इसी वर्ष अर्थात् १९३८ में पृथ्वी के सब देशों में १२,२५० लाख टन कोयला उत्पन्न हुआ।

घटिया कोयले से कोयले की गौण वस्तुयें (By Products) तैयार नहीं हो सकतीं। भारतवर्ष में अभी जो कुछ गौण वस्तुयें तैयार की जा रही हैं वे उसी कोयले से निकलती हैं जो कि हार्ड कोक (Hard coke) बनाने के उपयुक्त होता है। यह गौण वस्तुयें कोलतार और अमोनिया सलफ़ेट हैं। अमोनिया सलफ़ेट अधिकतर जावा को भेजा जाता है।

भारतवर्ष की कोयले की खानें देश के एक कोने में स्थित हैं। अन्य देशों

की तरह कोयले की खानों को नदियों अथवा नहरों के द्वारा कोयला भेजने की सुविधा प्राप्त नहीं है। रेलों से कोयला देश के सुदूर प्रान्तों तक ले जाने में अधिक व्यय होता है। पिछले कुछ वर्षों से कोयले की खानों में आग अधिक लगने के कारण खानों को हानि पहुँची है।

देश के कोयले के भण्डार के विषय में ऊपर लिखी हुई जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि कोयले की दृष्टि से भारतवर्ष की स्थित संतोषजनक नहीं है।



पैट्रोलियम

ब्रह्मा के भारतवर्ष से पृथक कर दिये जाने से भारतवर्ष में पैट्रोल की उत्पत्ति बहुत कम रह गई है। जहाँ भारतवर्ष में पैट्रोल की उत्पत्ति नाम मात्र की रह गई है वहाँ मिट्टी के तेल तथा पैट्रोल की खपत बढ़ती जा रही है। मोटर द्वारा आवागमन का प्रचार बढ़ने से पैट्रोल की माँग अधिकाधिक बढ़ रही है। भारतवर्ष में पैट्रोलियम आसाम और पंजाब में निकलता है।

भारतवर्ष में पैट्रोलियम के दो क्षेत्र हैं। एक क्षेत्र हिमालय के पश्चिमी सिरे पर है और दूसरा पूर्वी सिरे पर है। पश्चिमी क्षेत्र पंजाब और बिलोचिस्तान से प्रारम्भ होकर ईरान तक चला गया है। पूर्वी क्षेत्र आसाम से प्रारम्भ होकर ब्रह्मा, सुमात्रा, जावा और बोर्नियो तक फैला हुआ है।

पंजाब में रावलपिंडी तथा दक्षिण-पश्चिमी भाग में तेल की खानें हैं

किन्तु इन खानों से बहुत थोड़ा पैट्रोलियम निकलता है। इन खानों की औसत वार्षिक उत्पत्ति ३० लाख गैलन है। कुछ वर्षों से इन खानों की उत्पत्ति कम हो गई है। इनमें अटक की खानें महत्वपूर्ण हैं। आसाम में खासी, जयन्तिया पहाड़ियों के दक्षिण तथा उत्तर पूर्व आसाम में तेल की खानें हैं। इनमें लखीमपुर ज़िले की डिगबोई की खानें विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त बदरपुरा तथा मसीमपूर की खानों से भी पैट्रोल निकाला जाता है। आसाम में लगभग ७ करोड़ गैलन पैट्रोल की वार्षिक उत्पत्ति होती है। आसाम की खानों की उत्पत्ति क्रमशः बढ़ रही है। आसाम की खानों में पैट्रोल के अतिरिक्त चिकना करने वाला तेल (Lubricating) मोम (Batching oil) तथा मिट्टी का तेल (Kerosene) निकलता है। आसाम की तेल की खानों का तेल बहुत घटिया होता है। यहाँ का मोम बहुत बढ़िया होता है। इस मोम की मोम बत्तियाँ बनाई जाती हैं और इङ्गलैंड भेजा जाता है।

भारतवर्ष में मिट्टी के तेल तथा पैट्रोलियम की बहुत कमी होने के कारण तेल तथा पैट्रोलियम अधिकतर बाहर से ही आता है।

जल-विद्युत् (Hydro Electricity)

जहाँ प्रकृति ने भारतवर्ष को कोयले तथा पैट्रोल की दृष्टि से निर्धन बनाया है वहाँ उसने भारतवर्ष में जल-विद्युत् को उत्पन्न करने के साधन उपलब्ध करके इस कमी को पूरा कर दिया है। भारतवर्ष जल-विद्युत् की दृष्टि से अत्यन्त धनी है किन्तु अभी तक यहाँ जल-विद्युत् अधिक उत्पन्न नहीं की गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि देश औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

जल विद्युत् को उत्पन्न करने के लिये तीन बातों की आवश्यकता है। (१) अधिक वर्षा (२) जल-प्रपात (३) सब मौसमों में एक सी धार का होना। जल-विद्युत् के उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि बहुत ऊँचे से ही पानी गिरता हो। पानी का वज़न तथा वह जिस ऊँचाई से गिरता है उस पर ही बिजली निर्भर होती है। यदि १००० पौंड पानी १०० फ़ीट की ऊँचाई से गिरता है तो वह उतनी ही बिजली उत्पन्न करेगा जितना १०० पौंड पानी १००० फ़ीट की ऊँचाई से अथवा १०,००० पौंड दस फिट की ऊँचाई से गिर कर उत्पन्न करता है। पानी तेज़ी से बहता है अथवा धीरे बहता है। इसका बिजली की उत्पत्ति पर कोई असर नहीं पड़ता।

भारतवर्ष के बहुत से भागों में वर्षा यथेष्ट होती है। आसाम, हिमालय,

तथा पश्चिमी घाट पर वर्षा यथेष्ट होती है। साथ ही धरातल ऊबड़-खाबड़ होने के कारण नदियाँ बहुत से स्थानों पर ऊँचे से नीचे तल पर गिरती हैं। अतएव जहाँ तक पहली दो आवश्यकताओं का संबन्ध है वे पूरी हो जाती हैं। परन्तु भारतवर्ष में वर्षा प्रत्येक मौसम में नहीं होती। इस कारण नदियों में किन्हीं महीनों में तो अत्याधिक पानी होता है और उनमें बाढ़ आ जाती है और गरमी तथा जाड़े के महीनों में नदियों में पानी बहुत कम रह जाता है। इस कारण यहाँ बिजली उत्पन्न करने के लिए बड़े बड़े बाँधों को बनाकर जल इकट्ठा करना पड़ता है। वर्षा का जल इकट्ठा करके इन बाँधों में रोक लिया जाता है और उसको ऊँचाई से गिरा कर विद्युत् उत्पन्न की जाती है। यदि बाँध बनाकर पानी को इकट्ठा न किया जाये और जहाँ नदियाँ ऊँचाई से मैदान पर आती हैं वहाँ प्लांट (Plant) लगाया जाये तो विद्युत् उत्पन्न करना कठिन हो जाये। क्योंकि यदि प्लांट इतना बड़ा खड़ा किया जाय कि वह बाढ़ के समय जो अत्यधिक जल नदी में आयेगा उसका उपयोग कर सके तो तीन महीने के उपरान्त जब पानी बहुत कम रह जायगा तो प्लांट बेकार हो जायेगा और यदि छोटा प्लांट लगाया जाये तो वह बाढ़ के समय बेकार हो जायेगा। अतएव भारतवर्ष में बाँध बनाकर पानी को रोकना आवश्यक हो जाता है। इन बाँधों के बनाने में करोड़ों रुपये व्यय होते हैं। इस कारण बिजली उत्पन्न करने में अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ व्यय अधिक पड़ता है। भारतवर्ष में कोयला बहुत सस्ता है। इस कारण उत्तर भारत के नगरों में कोयले से ही बिजली उत्पन्न की जाती है। जो स्थान कि कोयले की खानों के समीप हैं वहाँ कोयले से बिजली उत्पन्न करने में कम व्यय होता है।

पहाड़ी प्रदेशों और दक्षिण प्रायद्वीप के उन भागों में जो कोयले के क्षेत्र से बहुत दूर हैं कोयले को ले जाने में व्यय अधिक होता है। अतएव उन भागों में जहाँ बिजली की माँग है जल-विद्युत् उत्पन्न की जा रही है। भारतवर्ष में जल विद्युत् उत्पन्न करने के बड़े बड़े कारखाने उसी समय स्थापित किये गये जब कि कोयले का मूल्य बहुत बढ़ गया था।

भारतवर्ष में तीन प्रकार के जल-विद्युत् उत्पन्न करने के कारखाने हैं, (१) वे कारखाने जो बड़े बड़े औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रों को बिजली देते हैं (२) वे कारखाने जो नहरों के जल से विद्युत् उत्पन्न करते हैं। (३) वे कारखाने जो पहाड़ी स्थानों को रोशनी देने के लिए बिजली उत्पन्न करते हैं।

पहले प्रकार के कारखानों में निम्नलिखित मुख्य हैं :—

(१) पश्चिमी घाट के कारखाने

भारतवर्ष में सबसे महत्त्वपूर्ण जल-विद्युत् उत्पन्न करने के कारखाने पश्चिमी घाट के समीप स्थित हैं। पश्चिमी घाट पर घोर वर्षा होती है। उस जल से विद्युत् उत्पन्न करने का विचार भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी ताता के मस्तिष्क की उपज थी। ताता ने देखा कि बम्बई की मिलों को बंगाल से कोयला मंगाने में अधिक व्यय करना पड़ता है अतएव उन्होंने ताता हाइड्रो पावर कंपनी स्थापित की। इस योजना के अनुसार लोनावला, वलब्हान, तथा शिवरता नामक तीन बड़ी झीलें बाँध बनाकर तैयार की गई। वर्षा का पानी इन झीलों में इकट्ठा किया जाता है और नहरों के द्वारा लोनावला की झील तक लाया जाता है। यहाँ से पानी पाइप लाइनों द्वारा १७७५ फीट की ऊँचाई से खापोली के शक्ति गृह (Poweahouse) के पास गिराया जाता है। खापोली के कारखाने में बिजली तैयार होती है। बाद को बिजली की अधिक माँग होने पर कुंडले के समीप एक झील और बनाई गई। अब इस कारखाने में लगभग ५०,००० घोड़ों की शक्ति के बराबर

बिजली तैयार होती है और बम्बई शहर में रोशनी करने तथा कपड़े की मिलों में काम आती है।

पहली योजना में ताता एण्ड संस को आशातीत सफलता मिली। बिजली की माँग इतनी थी कि वे उसे पूरा न कर सकते थे। अतएव उन्होंने आंध्रा वैली पावर सप्लाई कंपनी (Andhra-Valley Power Supply Co.) नामक एक दूसरी कंपनी स्थापित की। इस योजना के अनुसार तोकेरवादी के समीप पश्चिम घाट में एक बहुत बड़ा बाँध (½ मील लंबा और १९१ फीट ऊँचा) बना कर आंध्रा नदी को रोक दिया गया है। इस बाँध के बन जाने से लगभग १२ मील लम्बा झील बन जाती है। इस झील का पानी पाइप लाइनों द्वारा १७५० फीट की ऊँचाई से भिवपुरी के पावर स्टेशन पर गिराया जाता है। यह पावर स्टेशन १ लाख घोड़ों की शक्ति के बराबर विद्युत् उत्पन्न कर सकता है। इस कारखाने से उत्पन्न हुई बिजली का उपयोग कतिपय मिलें, ट्राम कंपनी तथा जी० आई० पी रेलवे करती है। वास्तव में आन्ध्रा वैली योजना पहली योजना का विस्तार मात्र है।

ताता ने एक तीसरी कंपनी ताता पावर कंपनी स्थापित करके निलामुला-योजना को भी पूरा कर दिया। मुलशी नामक स्थान पर एक बहुत बड़ा बांध बनाकर निलामुला नदियों को रोक दिया गया है। इस झील से पानी १७५० फीट की ऊंचाई से भिरा नामक स्थान पर गिराया जाता है जहाँ कि शक्ति गृह (Power-house) बनाया गया है। इस कारखाने से उत्पन्न हुई बिजली का उपयोग कुछ मिलें, बी० बी० एण्ड० सी० आई रेलवे तथा जी० आई० पी रेलवे करती हैं।

निलामुला के १०० मील दक्षिण कोनया नदी के जल से विद्युत् उत्पन्न करने का भी विचार है। ताता एण्ड सस ने इसकी भी योजना बनाई है। जब कभी यह योजना कार्य रूप में परिणत हुई तो इससे २५०००० घोड़ों की शक्ति के बराबर बिजली उत्पन्न होगी। ताता कंपनी ने बड़ौदा राज्य में बोला शक्ति गृह (Power Station) स्थापित किया है जिससे १२,००० किलोवाट जल-विद्युत् उत्पन्न हो रहा है और २०,००० किलोवाट तक उत्पन्न की जा सकती है।

दक्षिण के जल-विद्युत् उत्पन्न

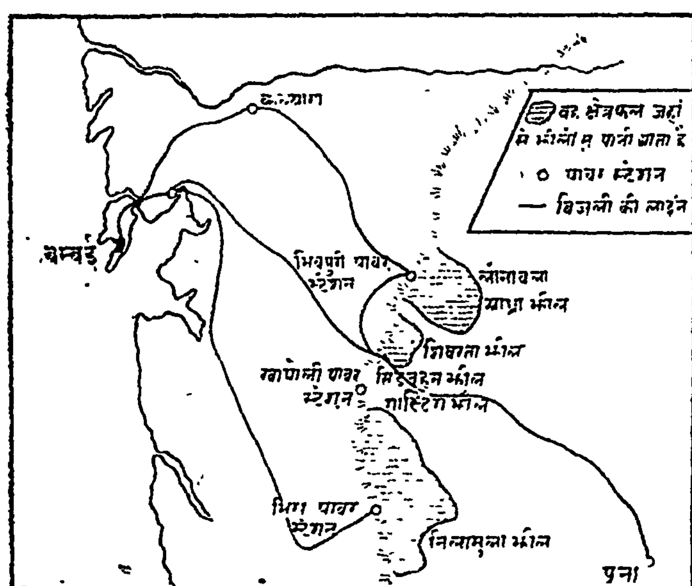
मद्रास प्रान्त का दक्षिणी भाग तथा मैसूर राज्य कोयले के क्षेत्र से बहुत दूर हैं। यहाँ के अधिकांश बड़े नगर समुद्र से भी दूर हैं। इस कारण कोयले को मंगाने में बहुत व्यय पड़ता था। शक्ति उत्पन्न करने में अधिक व्यय होने के

करने वाले कारखाने

कारण यहाँ उद्योग-धंधों की उन्नति नहीं हो सकती थी। जब से इस दक्षिणी भाग में जल-विद्युत् उत्पन्न होने लगी है तब से मदरास प्रान्त के दक्षिणी भाग तथा मैसूर के दक्षिणी प्रदेश में तेजी से उद्योग-धंधे उन्नति कर रहे हैं।

दक्षिण मद्रास प्रान्त के पावर स्टेशन :—

मद्रास के दक्षिण भाग में जल-विद्युत् उत्पन्न करने के लिए बहुत से उपयुक्त स्थान हैं उनमें से कुछ स्थानों को चुन कर वहाँ पावर स्टेशन स्थापित किये गए हैं। इनमें नीलगिरी की पहाड़ियों में स्थित पायकारा विशेष महत्व पूर्ण है। पायकारा नदी को रोककर जल-विद्युत् उत्पन्न की जाती है। जब कि यह योजना पूरी तरह से विकसित हो जायेगी तो इस शक्ति गृह से १००,००० घोड़ों की शक्ति के बराबर बिजली उत्पन्न की जा सकेगी। इस समय यहाँ ६५,००० घोड़ों की शक्ति के बराबर बिजली उत्पन्न होती है। पायकारा से उत्पन्न हुई बिजली के कारण तामिल प्रदेश में उद्योग-धंधों में जैसे जीवन आ गया है। अनेक छोटे बड़े गाँवों, कस्बों और नगरों को बिजली इसी पावर स्टेशन से दी जाती



है। पायकारा की बिजली के कारण इस प्रदेश की आशाजनक आर्थिक उन्नति हुई है। सस्ती बिजली के फल स्वरूप दक्षिण प्रदेश में आश्चर्य-

जनक गति से मिलें और कारखाने स्थापित होते जा रहे हैं। कोयम्बटूर में कपड़े की बहुत सी मिलें स्थापित हो गई हैं। थोड़े ही समय में कोयम्बटूर भी कपड़े की मिलों का एक मुख्य केन्द्र बन जायेगा।

पायकरा के अतिरिक्त मैटूर (Mettur) पापनासम्, पालिनी पहाड़ियाँ, तथा पैरियर शक्ति गृहों (Power-houses) से भी बिजली उत्पन्न की जाती है। इन सभी स्थानों पर बाँध बनाकर जल को रोक दिया गया है और उसका उपयोग बिजली उत्पन्न करने में किया जाता है। मैटूर के समीप कपड़े तथा अन्य कारखाने इस शीघ्रता से स्थापित हो गए कि मैटूर से उत्पन्न होने वाली बिजली यथेष्ट नहीं थी अतएव मदरास सरकार ने पायकारा को बढ़ा कर उसकी बिजली को मैटूर के काम में लाने का निश्चय किया। मदरास सरकार का विचार है कि पायकारा, मैटूर तथा पापनासम की लाइनों को जोड़ दिया जाय जिससे कि बिजली की बड़ी लाइन (Electric Grid) बन जाये। दक्षिण मदरास में इन शक्ति-गृहों की बिजली ले जाने वाली लाइनों का एक जाल सा बिछा है। मदरास, चिंगलपेट, पाँडीचेरी, विलुपुरम, वैलोर रानीपेट, सेलम, त्रिपुर, डिंडीगुल, मदूरा, साटूर, तूतीकोरन, तिनेवली, कोचीन, त्रिचूर, कोयम्बटूर, कालीकट तथा अन्य बहुत से नगरों और कस्बों में इन शक्ति-गृहों में उत्पन्न हुई बिजली पहुँचती है। इन शक्ति-गृहों के कारण थोड़े समय में ही दक्षिण भारत में उद्योग धंधों की आशातीत उन्नति हुई है।

मैसूर में जल-विद्युत :— भारतवर्ष में सबसे पहले जल-विद्युत् उत्पन्न करने का श्रेय मैसूर राज्य को है। सन १९०२ में कावेरी नदी पर शिवसामुंदरम् जल-प्रपात के समीप शक्ति-गृह (Power-house) स्थापित किया गया। शिवसामुंदरम् की बिजली ९२ मील दूर कोलार सोने की खानों में काम आती है। यहाँ की बिजली मैसूर तथा बंगलौर में भी कारखानों तथा रोशनी के उपयोग में आती है। शिवसामुंदरम् शक्ति-गृह से केवल २५००० घोड़ों की शक्ति उत्पन्न की जा सकती थी। किन्तु बिजली की माँग अधिक होने के कारण कृष्ण राजा सागर नामक बाँध बना कर कावेरी के जल को रोक लिया गया है और इस प्रकार शिवसामुंदरम् शक्ति-गृह से अधिक शक्ति उत्पन्न की जा रही है। मैसूर में दो योजनायें बन कर तैयार हुई हैं। पहली योजना के अनुसार कावेरी की सहायक शिम्सा नदी के जल से विद्युत् उत्पन्न की जारही है। दूसरी योजना मेकाडाटू के नाम से प्रसिद्ध है। शिवसामुंदरम् के दक्षिण

में २५ मील पर कावेरी के जल से विद्युत् उत्पन्न की गई है। इन योजनाओं के पूरी हो जाने से मैसूर राज्य में यथेष्ट शक्ति उत्पन्न हो जायेगी और मैसूर में तेज़ी से औद्योगिक उन्नति हो सकेगी। इस समय भी बिजली के कारण ही मैसूर में बहुत से धंधे खड़े हैं। शिम्सा शक्ति-गृह से १६,००० किलोवाट और जोग जल-प्रपात से ४८,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न हो रही है आगे चलकर १ लाख २० हजार तक उत्पन्न हो सकेगी।

काश्मीर में जल-विद्युत् :— काश्मीर में झेलम नदी के जल से बड़ामुल्ला नामक स्थान पर विद्युत् उत्पन्न की जाती है। बड़ामुल्ला से राजधानी श्री नगर ५५ मील है जहाँ बिजली का उपयोग होता है। यह शक्तिगृह २०,००० घोड़ों की शक्ति उत्पन्न कर सकता है।

उत्तर भारत में मंडी का जल-विद्युत् का कारखाना अधिक महत्त्वपूर्ण है। शिमला की पहाड़ियों के समीप जोगेंद्रनगर के समीप विद्युत् उत्पन्न की जाती है। मंडी योजना बहुत बड़ी योजना है। इसके तीन भाग हैं। अभी केवल पहला ही पूरा हुआ है। इसके द्वारा उत्पन्न होने वाली बिजली पंजाब के लगभग २० कस्बों को दी जा रही है। फीरोज़पुर, लायलपुर शिमला, गुरदासपुर, पटियाला, गुजरानवाला, और अम्बाला को यही बिजली मिलती है। जब कभी यह योजना पूरी होगी तो इससे उत्पन्न की जाने वाली बिजली देहली, मेरठ, सहारनपुर तथा करनाल ज़िलों को भी दी जायेगी। अभी तो योजना का एक भाग ही पूरा हुआ है। मंडी योजना से जितनी आशा थी वह उतनी सफल नहीं हुई। यही कारण है कि शेष दो भाग अभी पूरे नहीं किये गये। सीमा प्रान्त में मालकंद योजना तैयार हो गई उससे २०,००० किलोवाट शक्ति उत्पन्न की जा सकती है।

सिंचाई की नहरों से सम्बंधित जल-विद्युत् के कारखानों में गंगा की नहर बिजली उत्पन्न करने की योजना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। गंगा की नहर के बहुत से जल-प्रपातों (आसफनगर, चितौरा सुमेरा) से बिजली उत्पन्न की जाती है। आसफनगर के समीप ही बहादुराबाद मुख्य शक्ति-गृह है जहाँ से बिजली उत्पन्न करके भिन्न स्थानों को भेजी जाती है। बहादुराबाद के अतिरिक्त गाजियाबाद के समीप "भोला" तथा बुलंदशहर के दक्षिण में "पालरा" पावर स्टेशन है जिनमें बिजली उत्पन्न की जाती हैं। इन

सभी जल-प्रपातों तथा शक्ति-गृहों में उत्पन्न होने वाली बिजली एक बिजली की बड़ी लाइन (Electric Grid) से संबंधित कर दी गई है जिसके द्वारा संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी ज़िलों को बिजली दी जाती है। सहारनपुर, मुज़फ्फर नगर, मेरठ, बुलंदशहर, एटा, अलीगढ़, आगरा, बिजनौर तथा मुरादाबाद ज़िलों को गंगा-ग्रिड-योजना की बिजली मिलती है। गंगा-ग्रिड-योजना का महत्व इसलिए है कि इसके द्वारा उन ज़िलों में भी सिंचाई हो रही है जिनमें नहरें नहीं थीं। गङ्गा नहर की अनूपशहर शाखा में पानी बहुत कम रहता था। इस कारण उससे ठीक तरह से सिंचाई नहीं होती थी। अब बिजली के द्वारा कालिंद्री नदी का जल इस नदी में डाल दिया जाता है। इस प्रकार नहर में यथेष्ट जल हो जाने से सिंचाई अच्छी तरह से अधिक क्षेत्र में हो सकती है। इसके अतिरिक्त गंगा-ग्रिड-योजना से उत्पन्न होने वाली बिजली के द्वारा ही ट्यूब वैल से सिंचाई होती है।

इसके अतिरिक्त कावेरी के मैटूर बाँध से निकलने वाली नहरों के जल से तथा कावेरी के मुहाने में नहरों के जल से भी बिजली उत्पन्न की जाती है।

भारतवर्ष के अधिकांश पहाड़ी स्थानों पर जल-विद्युत् उत्पन्न की जाती है क्योंकि वहाँ जल-प्रपात होते हैं और वहाँ कोयला आसानी से नहीं पहुँच सकता। अतएव जल-विद्युत् उत्पन्न करना वहाँ आवश्यक तथा सुविधा-जनक होता है।

ऊपर के विवरण से ज्ञात होगा कि भारतवर्ष में अभी बहुत कम जल-विद्युत् उत्पन्न हुई है। जब तक भारतवर्ष में औद्योगिक उन्नति नहीं होती तब तक यहाँ जल-विद्युत् भी अधिक उत्पन्न नहीं की जा सकती। अनुमानतः भारतवर्ष में जितनी जल-विद्युत् उत्पन्न की जा सकती है। उसकी चार प्रतिशत से भी कम उत्पन्न की गई है। भविष्य में भारतवर्ष में औद्योगिक उन्नति के साथ साथ शक्ति की माँग बहुत बढ़ जायेगी। कोयले-पैट्रोलियम की दृष्टि से देश निर्धन है। अतएव देश की भावी औद्योगिक उन्नति बहुत कुछ जल-विद्युत् पर ही निर्भर रहेगी।

भारतवर्ष में इस समय ३५ लाख किलोवाट से अधिक बिजली नहीं उत्पन्न हो रही है जबकि संयुक्तराज्य अमेरिका में एक खरब १५ अरब २ किलो-वाट, जर्मनी में ५५ अरब किलोवाट, बृटिन में ३१ अरब किलोवाट, कनाडा में २६ अरब किलोवाट, और फ्रांस में २० अरब किलोवाट बिजली उत्पन्न होती है। इन देशों की तुलना में हमारे देश में बिजली की शक्ति बहुत

कम उत्पन्न होती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि देश में औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है।

भारतवर्ष की भावी औद्योगिक उन्नति के लिए जल विद्युत् की उन्नति आवश्यक है। इसका कारण यह है कि एक तो भारत कोयले की दृष्टि से धनी नहीं है और जो कुछ भी कोयला है वह देश के पूर्व में है इस कारण बहुत से प्रान्त कोयले के क्षेत्र से बहुत दूर हैं और वहाँ औद्योगिक उन्नति तभी हो सकती है जब कि शक्ति के साधन उपलब्ध किये जावें। अस्तु देश की भावी औद्योगिक उन्नति के लिए जल-विद्युत् का महत्व स्पष्ट है। इसी कारण युद्ध के उपरान्त जो आर्थिक योजनायें बनाई गई हैं उनमें जल विद्युत् की योजनाओं को पहला स्थान दिया गया है। कुछ योजनायें तो हाथ में ले ली गई हैं उन पर कार्य आरम्भ हो गया और कुछ योजनायें भविष्य में पूरी की जावेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब ये योजनायें तैयार हो जावेंगी तब देश के प्रत्येक भाग में यथेष्ट शक्ति उत्पन्न होगी और खेती तथा धन्धों की आश्चर्यजनक रीति से उन्नति होगी। अब हम यहाँ नवीन योजनाओं का संक्षिप्त विवरण देंगे। यह बात ध्यान में रखने की है कि भावी जल-विद्युत् योजनाओं के साथ सिंचाई की योजनायें भी सम्बद्ध हैं।

दामोदर घाटी योजना

नवीन योजनाओं में दामोदर घाटी योजना सब से अधिक महत्वपूर्ण है। यह एक बहुमुखी योजना है। इस योजना के पूरी हो जाने पर दामोदर नद में जो भीषण बाढ़ें आती हैं उनको सात बड़े बाँध बना कर रोका जावेगा और इस प्रकार अपार जन धन की जो आज हानि होती है उससे रक्षा की जा सकेगी। नदी के जल से सिंचाई होगी, उसमें नावों द्वारा माल लाने और ले जाने की सुविधा हो जावेगी और बहुत अधिक जल-विद्युत् उत्पन्न की जावेगी जिससे कि बिहार और बंगाल में उद्योग धन्धों की उन्नति हो सकेगी।

दामोदर नदी और उसकी सहायक बाराकर नदी पर बाँध बनाकर बाढ़ों को बिलकुल रोक दिया जावेगा। नीचे लिखे स्थानों पर बाँध निर्मित किये जावेंगे।

१. बाराकर नदी के मलथान स्थान पर
२. दामोदर नदी के ऊपर सानोलापूर स्थान पर जो बाराकर एवं दामोदरी नदी के संगम से ५ मील दूर है।
३. देवलबारी—बाराकर नदी पर

४. तिलैया—बाराकर नदी पर
५. अय्यर—दामोदर नदी पर
६. बोकारो—बोकारो नदी पर
७. मध्य केनार

इन बाँधों में आज तक आई हुई बाढ़ से दुगनी बाढ़ नियंत्रण करने की क्षमता रहेगी। इस प्रकार अब तक बाढ़ों से जो जन-धन की हानि होती रही है वह सर्वथा रोकी जा सकेगी।

यह सात बाँध केवल बाढ़ नियंत्रण में ही सहायक नहीं होंगे वरन् समस्त दामोदर घाटी को विद्युतमय बना देंगे। सात बाँधों के अतिरिक्त एक और बाँध केवल बिजली उत्पन्न करने के लिए बनाया जावेगा। इन आठ बाँधों के निर्माण के फल स्वरूप दामोदर घाटी में लगभग ३००,००० किलोवाट विद्युत-शक्ति उत्पन्न होगी। यह विद्युत-शक्ति सोनाघाटी, दक्षिणी बिहार, पटना, डालमियानगर, जमशेदपूर तथा कलकत्ता तक पहुँचाई जा सकेगी।

इससे केवल बिजली ही उत्पन्न होगी यही बात नहीं है बिहार और बंगाल में ७६०,००० एकड़ भूमि पर सिंचाई हो सकेगी जिससे वहाँ की ग्रामीण जनता को ६ या ७ करोड़ रुपए का वार्षिक लाभ होगा और खेती की पैदावार बहुत बढ़ जावेगी।

दामोदर घाटी योजना के तैयार हो जाने पर इसमें नौका संचालन भी हो सकेगा। प्रस्तावित बाँध और जल कुंड बन जाने पर नदी का तेज बरसाती बहाव रोककर जल कुंडों में जल एकत्रित किया जावेगा और शीतकाल में यह जल नदी में छोड़ दिया जावेगा। जिससे नदी में नौका सचालन के लिए काफी जल हो जावेगा। इस प्रकार दामोदर नदी वर्ष भर नौका संचालन के योग्य हो जावेगी और इस क्षेत्र के उद्योग धन्धों और खेती को यतायात के सस्ते साधन उपलब्ध हो जावेंगे और मुहाने से आसंसोल तक दामोदर नदी नौका संचालन के योग्य बन जायगी इसके द्वारा कोयला भी सस्ते दामों में इधर से उधर कलकत्ता तक भेजा जावेगा।

पूर्वीय पंजाब की सरकार ने भाकरा बाँध की योजना की स्वीकृति दे दी है यह शीघ्र ही कार्य रूप में परिणत की जावेगी।

भाकरा बाँध (Bhakra Dam) सतलज नदी पर एक बड़ा बाँध बनाकर जल को बिजली उत्पन्न करने और सिंचाई के काम में लाया जावेगा। इस योजना के पूरा करने में ४२ करोड़

क्षेत्र	योजना या मालिक का नाम	शक्ति-गृह	किस प्रकार की बिजली है	बिजली जो उत्पन्न हो रही है	बिजली जो उत्पन्न की जा सकती है
बम्बई	ताता पावर कम्पनी	भिरा	हायड्रो इलेक्ट्रिक	८७,५०० कि०वा०	१०५,००० कि०वा०
,,	आन्ध्रा वैली पावर सप्लाई कम्पनी	भिवपुरी	,,	४८,००० ,, ,,	६४,००० ,, ,,
,,	ताता हायड्रो इलैक्ट्रिक पावर सप्लाई कंपनी	खापोली	,,	४८,००० ,, ,,	४८,००० ,, ,,
,,	जी आई पी रेलवे	चोला	थरमल (कोयले से)	४७,००० ,, ,,	५०,००० ,, ,,
,,	अहमदाबाद इलैक्ट्रिक सप्लाई	अहमदाबाद	,,	३७,५०० ,, ,,	८०,००० ,, ,,
बड़ौदा	ताता केमिकल वर्क्स	ओरवा	,,	१२,००० ,, ,,	२०,००० ,, ,,
मदरास	मदरास सरकार	पायकारा	हायड्रो इलैक्ट्रिक	३६,६५० ,, ,,	५०,००० ,, ,,
,,	,, ,, ,,	मैटूर	,, ,,	४२,००० ,, ,,	४२,००० ,, ,,
,,	,, ,, ,,	पापनासम	,, ,,	१७,५०० ,, ,,	२४,००० ,, ,,
,,	,, ,, ,,	मोयार	,, ,,	———	२०,००० ,, ,,
हैदराबाद	हैदराबाद राज्य	हैदराबाद	थरमल (कोयले से)	२०,००० ,, ,,	२०,००० ,, ,,
ट्रावंकोर	ट्रावंकोर राज्य	पल्लिवासल	हायड्रो इलैक्ट्रिक	२१,००० ,, ,,	३६,००० ,, ,,
मैसूर	मैसूर राज्य	शिवसमुंदरम्	,, ,,	४५,००० ,, ,,	४५,००० ,, ,,
,,	,, ,,	शिमसा	,, ,,	१६,००० ,, ,,	१६,००० ,, ,,
,,	,, ,,	जोग जल-प्रपात	,, ,,	४८,००० ,, ,,	१२०,००० ,, ,,

मध्यप्रान्त	नागपूर इलैक्ट्रिक सप्लाई	नागपूर	थरमल (कोयले से)	५,७०० ,, ,,	१५,००० ,, ,,
बंगाल	इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी	बरनपूर	,, ,,	२५,००० ,, ,,	४०,००० ,, ,,
,,	कलकत्ता इलैक्ट्रिक सप्लाई	कलकत्ता	,, ,,	२६५ ००० ,, ,,	४००,००० ,, ,,
,,	दिशेरागढ़	दिशेरागढ़	,, ,,	१६,००० ,, ,,	१६,००० ,, ,,
,,	गौरीपूर इलैक्ट्रिक सप्लाई	गौरीपूर	,, ,,	२८,००० ,, ,,	२८,००० ,, ,,
,,	ऐसोशियेटेड इलैक्ट्रिक सप्लाई	शिवपूर	,, ,,	७,५०० ,, ,,	७५,००० ,, ,,
बिहार	पटना इ० स०	पटना	,, ,,	६,००० ,, ,,	१२,००० ,, ,,
,,	ताता आयरन एण्ड स्टील कम्पनी	जमशेदपूर	,, ,,	१०७,२०० ,, ,,	१३५,००० ,, ,,
संयुक्तप्रान्त	संयुक्तप्रान्त सरकार	गंगा की नहर	हायड्रो इलैक्ट्रिक	१८.६०० ,, ,,	२३,००० ,, ,,
,,	,, ,, ,,	कानपूर	थरमल (कोयले से)	६४५०० ,, ,,	७५,००० ,, ,,
देहली	देहली सी० इ० पी ए०	देहली	,, ,,	१६,००० ,, ,,	१६,००० ,, ,,
पंजाब	पंजाब सरकार	जोगेंद्रनगर	हायड्रो इलैक्ट्रिक	४८,००० ,, ,,	७२,००० ,, ,,
,,	लाहौर इ० स०	लाहौर	थरमल (कोयले से)	१७,४५० ,, ,,	२५,००० ,, ,,
सीमाप्रान्त	सीमाप्रान्त सरकार	मालकंद	हायड्रो इलैक्ट्रिक	६ ६०० ,, ,,	२०,००० ,, ,,
सिंध	कराची इ० स०	कराची	थरमल (कोयले से)	६,३०० ,, ,,	१०,००० ,, ,,
काश्मीर	काश्मीर राज्य	बड़ामुल्ला	हायड्रो इलैक्ट्रिक	२०,००० ,, ,,	२०,००० ,, ,,
				१७,३४,६००	१६,८०,८००

रुपया व्यय होगा और पूरी हो जाने पर पूर्वी पंजाब में ४५ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी और २ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न की जावेगी।

पंजाब और संयुक्तप्रान्त की सरकार ने जमुना की दो सहायक नदियों टौंस और गिरी की योजना सम्मिलित रूप से हाथ में ली है। नाहन राज्य में इन नदियों के जल से ७५,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जावेगी। इस योजना में हरबर्टपूर से बीस मील दूर देहरादून चकराता और सहारनपूर चकराता सड़कों के जकशन के समीप शक्ति-गृह स्थापित किया जावेगा जहाँ बिजली उत्पन्न होगी।

संयुक्त प्रान्त में कुछ महत्वपूर्ण योजनायें प्रान्तीय सरकार ने स्वीकार कर ली हैं जिन पर काम आरम्भ हो गया है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण रिहांड योजना है। यह सोन नदी की सहायक नदी है। मिरज़ापूर ज़िले में पिपरिया गाँव के पास शक्ति-गृह स्थापित किया जावेगा। रिहांड योजना के बन जाने से लगभग २ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी और कानपूर को भी इसकी बिजली दी जा सकेगी।

दूसरी महत्वपूर्ण योजना जिसे संयुक्तप्रान्त की सरकार ने स्वीकार कर लिया है वह नायर बांध (Nayar Dam) की है। लैंसडौन (गढ़वाल) के पास नायर नदी के जल को (गंगा की सहायक) ६०० फीट ऊँचा बांध बनाकर रोका जावेगा और उससे ३०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी।

इनके अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त की अन्य योजनायें इस प्रकार हैं। (१) शारदा नहर से बनबसा के पास बिजली उत्पन्न करना। (२) बेतवा और केन नदियों के जल से बिजली उत्पन्न करना।

दक्षिण में भी कुछ महत्वपूर्ण योजनायें हैं जिन पर शीघ्र ही कार्य आरम्भ हो जावेगा। इनमें गोदावरी की योजना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस योजना के बन जाने पर २५ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी और १५,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। दूसरी महत्वपूर्ण योजना 'तुंगभद्रा' की है जिसके बन जाने से पाँच लाख एकड़ पर सिंचाई होगी और सात हज़ार किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी।

इनके अतिरिक्त महानदी और नर्मदा की भी योजनायें विचाराधीन हैं। भारत सरकार ने एक केन्द्रीय शक्ति बोर्ड बना दिया है जो प्रान्तों को बिजली उत्पन्न करने के सम्बन्ध में परामर्श देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में भारतवर्ष में यथेष्ट शक्ति उत्पन्न होगी और खेती तथा धन्धों की कायापलट हो जावेगी—जलविद्युत् की उन्नति से गृह उद्योग-धन्धों की भी आश्चर्यजनक उन्नति हो सकेगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत की भावी औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से क्या भारत कोयले का धनी कहा जा सकता है। कोयले के क्षेत्र तथा भारत के औद्योगिक केन्द्रों की दूरी को ध्यान में रखकर बतलाइए कि हमारे शक्ति के साधन कैसे हैं।

२—भारत में कोयला कहाँ पाया जाता है और किस प्रकार का कोयला यहाँ निकलता है विस्तार पूर्वक लिखिए।

३—भारत में जल विद्युत् के उत्पन्न करने में क्या कठिनाइयाँ हैं और भारत जल शक्ति की दृष्टि से धनी है अथवा निर्धन।

४—भारत की मुख्य जलविद्युत् की योजनाओं का वर्णन कीजिए।

५—दामोदर घाटी योजना का वर्णन कीजिए और बतलाइये कि वह जब बनकर तैयार हो जावेगी तो विशेष महत्वपूर्ण क्यों होगी ?

६—जो नवीन योजनायें इस समय देश में जलविद्युत् की तैयार हो रही हैं उनका संक्षिप्त विवरण दीजिए।

७—यदि देश में बिजली बहुत अधिक उत्पन्न होने लगे तो उसका खेती और गृह-उद्योग धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

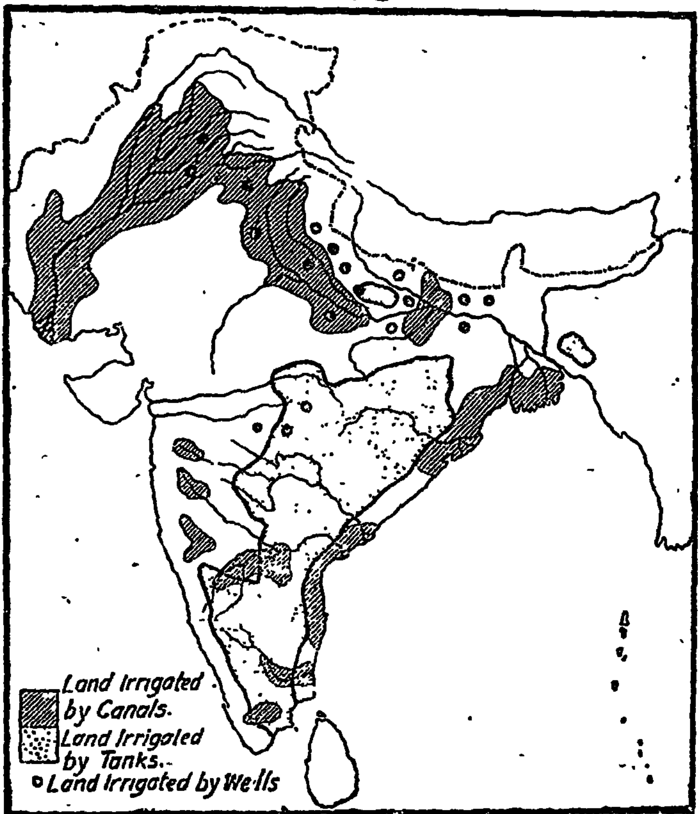
सिंचाई (Irrigation)

भारतवर्ष में जल-वृष्टि

जलवायु के परिच्छेद में हम यह कह आये हैं कि मदरास समुद्र तट को छोड़ कर सारे देश में वर्षा गरमियों के दिनों में होती है। जून के अन्तिम सप्ताह से लेकर सितम्बर तक यहाँ वर्षा होती है। वर्ष का शेष भाग अधिकतर सूखा रहता है। अतएव आसाम, बंगाल के कुछ भाग, तराई तथा पश्चिमी समुद्र तट के मैदानों को छोड़ कर जहाँ वर्षा बहुत होती है सारे देश में रबी की फसल उत्पन्न करने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है। वर्षा केवल मौसमी ही नहीं है वरन अनिश्चित भी है। किसी वर्ष किसी भाग में वर्षा बहुत देर से आरम्भ होती है और शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। कभी वर्षा बहुत जल्दी आरम्भ हो जाती है। वर्षा का केवल समय ही अनिश्चित नहीं है, कितनी जल वृष्टि होगी यह भी अनिश्चित है। यदि किसी स्थान की औसत जल वृष्टि ५० इंच है तो वहाँ किसी वर्ष २५ इंच भी वर्षा हो सकती है और किसी वर्ष ६० या ७० इंच भी पानी बरस सकता है। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, खेती के लिए निश्चित और समय पर जल-वृष्टि होना आवश्यक है। अस्तु भारतवर्ष में जहाँ वर्षा ५० इंच से अधिक होती है उन भागों को छोड़ कर शेष भागों में सिंचाई की आवश्यकता है। यही कारण है कि भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से नहरें, तालाब, बावड़ी तथा कुयें बनाने की परिपाटी चली आ रही है। सिन्ध, सीमा प्रान्त, पंजाब, राजपूताना, मध्य भारत, युक्त प्रान्त, दक्षिण प्रायद्वीप तथा बिहार खेती के लिए सिंचाई पर निर्भर हैं। यदि किसी वर्ष यहाँ वर्षा नहीं होता या कम होती है तो अकाल पड़ जाता है। देश को दुर्भिक्ष से बचाने के लिए सिंचाई के साधनों की बहुत आवश्यकता है। उत्तर-पश्चिम के प्रान्त तो साधारणतः सिंचाई पर ही निर्भर हैं वहाँ तो बिना सिंचाई के खेती सम्भव ही नहीं है।

सिंचाई के साधनों की दृष्टि से भारतवर्ष संसार में प्रथम स्थान रखता है। संसार में जितनी खेती की भूमि सींची जाती है उसकी आधी के लगभग भारतवर्ष में है। भारतवर्ष की स्थायी नहरों (Perennial

canals) तथा उनकी शाखाओं की लम्बाई ही केवल ७५,००० मील है। संसार के अन्य किसी भी देश में इतनी बड़ी और इतनी अधिक नहरें नहीं हैं। स्थायी नहरों के अतिरिक्त यहाँ अस्थायी नहरें (Inundation



canals) भी बहुत हैं। नहरों के अतिरिक्त लाखों की संख्या में कुएँ और तालाब हैं। फिर भी भारतवर्ष की खेती के लिए सिंचाई पूरी नहीं हो पाती।

भारतवर्ष में रबी की फसल के लिए अधिकांश प्रान्तों में सिंचाई की आवश्यकता होती है। पंजाब, सिन्ध तथा सीमान्त प्रान्त में बिना सिंचाई के खेती सम्भव ही नहीं है। कुछ भाग ऐसे हैं जहाँ वर्षा बहुत अनिश्चित है और अकाल की अधिक सम्भावना रहती है। अतएव वहाँ सिंचाई का प्रबंध करना आवश्यक हो गया है।

भारतवर्ष में सिचाई के मुख्य साधन हैं—(१) नहरें, (२) कुवें

(३) तालाब । उत्तर पश्चिम में नहरों की अधिकता है । उत्तर के मैदानों में कुओं से सिंचाई अधिक होती है । तथा दक्षिण प्रायद्वीप और मदरास प्रान्त में तालाब और बाँधों से सिंचाई अधिक होती है । वैसे कुयें प्रत्येक भाग में पाये जाते हैं और उनसे सिंचाई की जाती है । किस भाग में कौन सा सिंचाई का साधन अधिक महत्वपूर्ण है यह वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति पर निर्भर है ।

नहरें

नहरें दो प्रकार की होती हैं (१) स्थायी नहर (Perennial canal) जो कि वर्ष भर सिंचाई के उपयोग में आती हैं । इन नहरों के सिरे पर फाटकों इत्यादि से नदियों के पानी का नियंत्रण किया जाता है जिससे वर्ष भर पानी नहर को मिल सकता है । अस्थायी अथवा बाढ़ वाली (Inundation canal) नहरें उसी समय सिंचाई के उपयोग में आती हैं जब कि नदी में बाढ़ आती है और नदी में पानी ऊँचा उठ जाता है । जब नदी में पानी नीचा हो जाता है तो ये नहरें व्यर्थ हो जाती हैं ।

नहरें उसी प्रदेश में बनाई जा सकती हैं जहाँ की नदियाँ बारहो मास बहने वाली हों । उत्तर भारत की सभी नदियाँ हिम आच्छादित हिमालय से निकलती हैं । इस कारण वे दक्षिण-भारत की नदियों की भाँति गरमी में सूखती नहीं । हिम के पिघलने से उनमें पानी बना रहता है । यदि धरातल पथरीला हो तो भी नहरें नहीं निकाली जा सकतीं क्योंकि नहर खोदने में बहुत कठिनाई और कल्पनातीत व्यय होता है । उत्तर भारत में भूमि नरम है । कहीं पत्थर का नाम ही नहीं है । अतएव कम खर्चे से नहर खुद सकती है । उत्तर भारत में नदियों का एक जाल सा बिछा हुआ है । इस कारण नहरें आसानी से निकाली जा सकीं । इसके अतिरिक्त उत्तर भारत में भूमि उपजाऊ है । ऊबड़ खाबड़ वीरान प्रदेश नहीं हैं । इस कारण नहर का पानी प्रत्येक पग पर काम में आता है, व्यर्थ में नहीं बहता । उत्तर-पश्चिम में वर्षा कम होने के कारण वहाँ खेती बिना सिंचाई के सम्भव ही नहीं है । यही कारण है भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम भाग में नहरों के द्वारा ही सिंचाई होती है ।

पंजाब की नहरें

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पंजाब के पश्चिमी ज़िले आधे रेगिस्तान थे । लायलपुर, शाहपुर, झंग तथा मांटगोमरी के ज़िलों में वर्षा बहुत कम होती है । अतएव नहरों के निकलने के पूर्व सारा प्रदेश सूखा नज़र आता था ; किन्तु पंजाब सरकार ने नहरें निकाल कर इस सूखे प्रदेश को हरा भरा बना

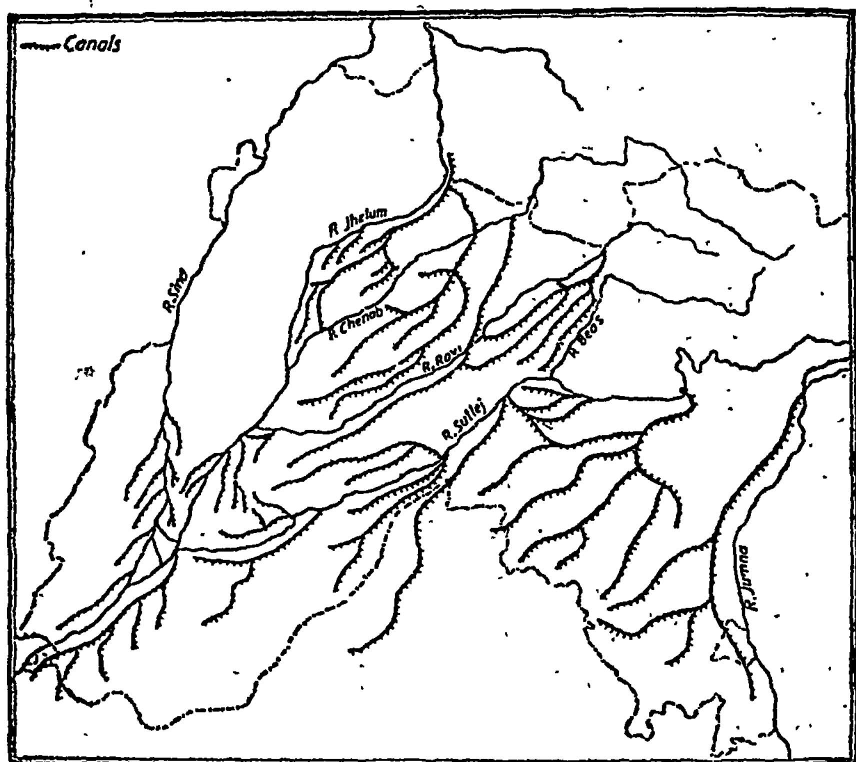
दिया। १—पंजाब में सबसे पहली "बारी दो-आब नहर" (१८६० में) रावी नदी से निकाली गई। यह नहर लाहौर और अमृतसर ज़िलों को सींचती है। दस वर्ष बाद जमुना से एक नहर निकाल कर दक्षिण पंजाब को पानी दिया गया। किन्तु इन नहरों से नई भूमि खेती के योग्य नहीं बनाई गई। नहरों के निकलने के पूर्व इन ज़िलों में कुओं से सिंचाई होती थी। नहरें निकल जाने से सिचाई की सुविधा अवश्य हो गई।

सबसे पहले (१८८८) मुलतान ज़िले को पानी देने के लिए सतलज नदी से एक नहर निकाली गई जिससे १,७७,००० एकड़ मरुभूमि पर खेती होने लगी और पास के राज्यों और ज़िलों से किसान आकर बस गए। इसके उपरान्त (१८९२ में) लोअर चिनाब नहर निकाली गई जो कि पचीस लाख एकड़ भूमि से अधिक को सींचती है। इसके उपरान्त पंजाब में बड़ी शीघ्रता से नहरें निकाली जाने लगीं। सन् १९०० में "लोअर झेलम नहर" निकाली गई और उसके पानी से शाहपुर ज़िले के रेतीले मैदानों पर लहलहाते हुए खेत दिखाई देने लगे।

इसके उपरान्त प्रसिद्ध ट्रिपिल प्रोजेक्ट (Triple project) बनाई गई। लाहौर के दक्षिण-पश्चिम में मांटगोमरी की मरुभूमि पड़ी हुई थी; किन्तु उसके निकट रावी नदी में उसे सीचने के लिए जल नहीं था। पंजाब में केवल झेलम नदी ही ऐसी थी जिसमें आवश्यकता से अधिक पानी था; किन्तु झेलम नदी सौ मील उत्तर में थी और बीच में चिनाब और रावी नदियाँ पड़ती थीं। अतएव समस्या यह थी कि झेलम का पानी चिनाब और रावी नदियों को पार करके मांटगोमरी में किस तरह लाया जाये। इसको हल करने के लिए तीन नहरें निकाली गईं (१) "अपर झेलम नहर" जो झेलम का फिजूल पानी चिनाब में डाल देती है और रास्ते में ३५०,००० एकड़ भूमि सींचती है। झेलम के पानी से चिनाब में आवश्यकता से अधिक पानी हो जाता है। अतएव दूसरी नहर "अपर चिनाब नहर" निकाली गई जो रास्ते में गुजरान वाला, तथा शेखूपुर ज़िलों में साढ़े ६ लाख एकड़ भूमि को सींचती है। अन्त में यह नहर रावी पर एक पुल बनाकर उसके ऊपर से निकाली गई है। एक तीसरी नहर "बारी दो-आब नहर" इस नहर के पानी को ले जाकर मांटगोमरी को सींचती है। इस नहर के द्वारा सींची हुई मरुभूमि पर अब "लोअर बारी दो आब नहर" बस गई है।

इन नहरों के द्वारा सींची हुई भूमि पर तीन बड़ी (लायलपुर, शाहपुर, और मांटगोमरी) कालोनी जिनका क्षेत्रफल ४५ लाख एकड़ है बसाई

गईं। इनके अतिरिक्त ६ छोटी कालोनियाँ जिनका क्षेत्रफल पचास हज़ार एकड़ है और बसाई गई। सरकार ने इन नहरों के निकालने में जितना रुपया व्यय किया है उस पर २५ प्रतिशत प्रतिवर्ष सरकार को लाभ होता है।



इन नहरों के निकालने से पंजाब के पश्चिमी ज़िले, जो कि पहले वीरान थे, अब बहुत उपजाऊ हो गए हैं। किसानों की हालत पहले से बहुत अच्छी है। पूर्व के घने आबाद ज़िलों से आकर किसान यहाँ बस गए हैं। इन नहरों के कारण ही पंजाब में इतनी अधिक गेहूँ की खेती होती है।

सतलज की नहरें

पंजाब के दक्षिण में सतलज नदी बहती है। उसके दोनों ओर बृटिश राज्य तथा बहावलपुर राज्य में बरसाती नहरों (Inundation canals) से सिंचाई होती थी। बरसाती नहरों से केवल उन्हीं दिनों सिंचाई होती थी जबकि नदी में बाढ़ आती थी किन्तु शेष महीनों में नहरें सूखी रहती थीं। इस समस्या को हल करने के लिए सतलज से स्थायी नहरें निकाली गईं। इन नहरों के निकल जाने से मरुभूमि उपजाऊ भूमि बन गई है। वीरान तथा शुष्क प्रदेश में लहलहाती खेती दिखाई देती है।

सतलज नदी पर चार स्थानों (फीरोजपुर, सुलेमानकी, इसलाम, और पञ्चनद) पर बाँध बनाकर पानी को रोक दिया गया है और इन बाँधों से नदी के दोनों ओर ग्यारह नहरें निकाली गईं। इन नहरों से पचास लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। इसमें बीस लाख एकड़ भूमि पंजाब में, २७ लाख एकड़ से अधिक बहावलपुर राज्य में, तथा शेष बीकानेर राज्य में सींची जाती है। इन नहरों से एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ है कि लगभग सैंतालीस लाख एकड़ मरुभूमि जिस पर पहले तनिक भी पैदावार नहीं होती थी अब उपजाऊ भूमि बन गई है। इन नहरों के बनाने में २४ करोड़ रुपये से अधिक व्यय हुआ है।

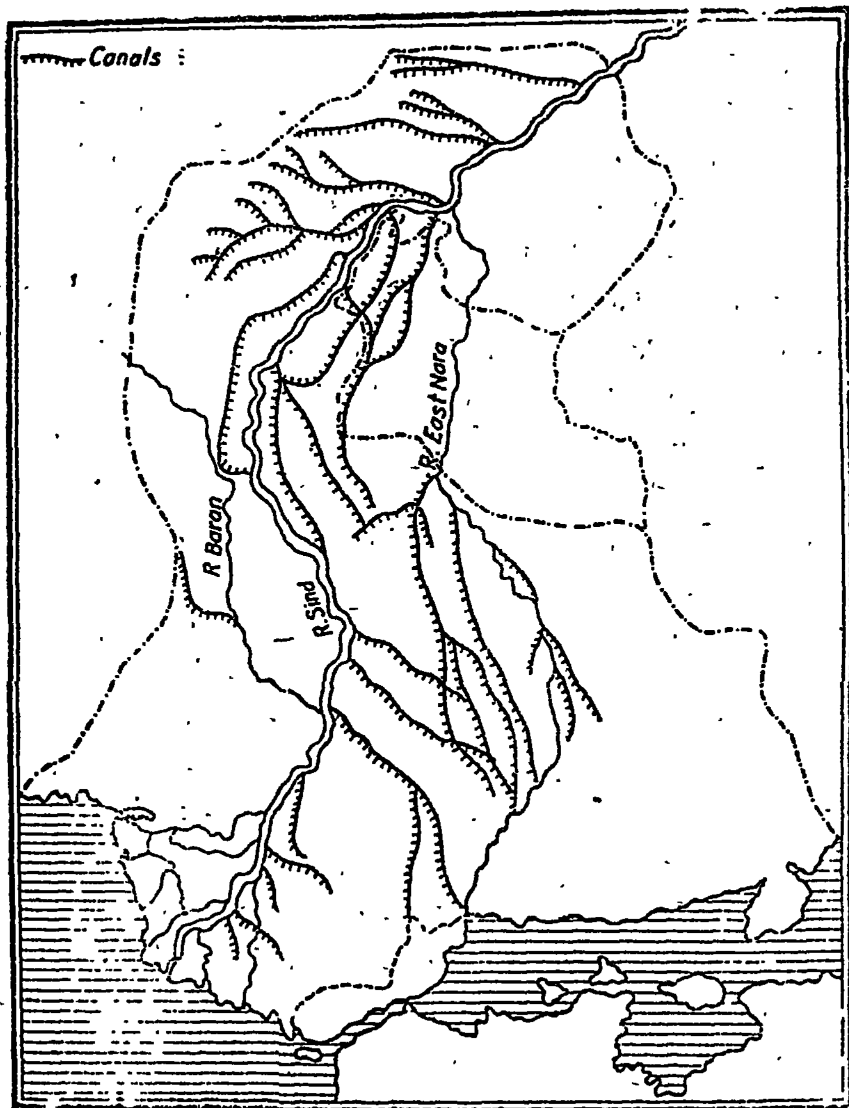
पंजाब में जितनी भूमि पर खेती होती है उसकी एक तिहाई भूमि नहरों के द्वारा सींची जाती है। सतलज की नहरें पंजाब में सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण हैं। पंजाब में नहरों द्वारा सींची जाने वाली भूमि की एक चौथियाई भूमि सतलज की नहरों से सींची जाती है। सींची हुई भूमि पर गेहूँ और कपास की पैदावार अधिक होती है। कुछ चावल भी होता है। यद्यपि पंजाब में खेती नहरों पर ही निर्भर है किन्तु वहाँ कुओं से भी सिंचाई होती है, हाँ, पश्चिमी ज़िलों में कुयें कम हैं।

सिन्ध हिन्दोस्तान का सबसे अधिक सूखा प्रान्त है। सिन्ध नदी से बाढ़ वाली नहरें आस पास की भूमि को सींचती थीं। बहुत

सिंध की नहरें:— से वर्षों से सिन्ध नदी के पानी को सिन्ध प्रान्त को सींचने के काम में लाने की बात सोची जा रही थी। परन्तु सिन्ध नदी को रोकने के लिए बाँध बनाने के लिए कहीं चट्टान वाली जमीन नहीं मिलती थी। अन्त में इंजिनियरों ने रेतीली भूमि पर ही सक्खर के पास एक विशाल बाँध बना कर नदी को रोक दिया। इस विशाल बाँध के बन जाने से सिंध नदी एक विशाल झील के रूप में परिणत हो गई है। इस बाँध में ६६ दरवाजे हैं जिनमें स्टील के मज़बूत फाटक लगाये गये हैं। इन फाटकों से नदी का पानी रोका जाता है और जब पानी जरूरत से ज्यादा होता है तब पानी नदी में जाने दिया जाता है।

सक्खर के बाँध से ७ नहरें निकाली गई हैं। तीन दाहिने किनारे से और चार बायें किनारे से। इन सातों नहरों तथा उनकी शाखों की लम्बाई ७००० मील है। इन नहरों में "रोहरी" नहर सबसे बड़ी है, इसकी लम्बाई २०० मील है और इसकी शाखाओं की लम्बाई १३०० बायें किनारे से रोहरी नहर तथा अन्य दो नहरें खैरपूर राज्य को सींचती हैं। "नीरा" नहर जो रोहरी नहर से पानी लेती है सुदूर ज़िलों को सींचती है। दाहिने

किनारे पर उत्तर पश्चिमी नहर १०० मील लम्बी है इसकी शाखाओं की लम्बाई ५०० मील है। यह उत्तर पश्चिमी सिंध को सींचती है। मध्य चावल की नहर (Central Rice Canal) ८७ मील लम्बी है। यह



केवल वर्ष में पाँच महीने बहती है; किन्तु अपनी शाखों सहित ४६६००० एकड़ चावल की फ़सल को सींचेगी। जब इस प्रदेश में खेती का विस्तार होगा तो यह बहुत चावल उत्पन्न करेगी। दक्षिण-पूर्वी नहर चावल के क्षेत्र दक्षिण-पूर्व में पाँच लाख एकड़ भूमि सींचेगी। जब सक्खर बाँध की नहरों के पानी का पूरा पूरा उपयोग होने लगेगा तो इन नहरों के द्वारा ६०

लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी। इस दशा में ८२३००० एकड़ पर चावल, १७३६००० एकड़ पर कपास तथा ज्वार, और ३३८००० एकड़ भूमि पर गेहूँ और तिलहन उत्पन्न होगा। सक्खर बाँध की नहरों का महत्व तो इसी से प्रकट होता है कि नील नदी के द्वारा ईजीप्ट में केवल ५४ लाख एकड़ भूमि ही सींची जाती है।

सक्खर बाँध की नहरों का अभी पूरा विस्तार नहीं हो पाया है। इस कारण अपेक्षाकृत बहुत कम भूमि पर खेती होती है। अभी तक सिंध में बाढ़ वाली नहरों के आस पास ही खेती होती थी। जैसे जैसे नहरों का विस्तार होता जायगा वैसे ही वैसे खेती भी बढ़ती जायेगी।

इन नहरों की एक विशेषता यह है कि इनकी शाखायें और बम्बे कम हैं। इसके दो कारण हैं—एक तो खेती यहाँ फैली हुई नहीं है, दूसरे सिंध की भयंकर गरमी तथा रेतीली भूमि पानी को बहुत दूर तक बहने नहीं देती।

सक्खर बाँध की नहरों के बन जाने से जहाँ सिंचाई की कुछ समस्यायें

हल हुई हैं वहाँ दूसरी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। पंजाब सरकार द्वारा सिंध नदी पर बाँध बनाये जाने तथा सक्खर बाँध के बन जाने के कारण नीचे पानी की बहुत कमी हो गई है। पंजाब में कुछ नई नहरों को निकालने की बात सोची जा रही है। यदि ऐसा हुआ तो सिंध के उस भाग में जहाँ सक्खर के बँध की नहरों से सिंचाई नहीं होती पानी की और भी कमी हो जायेगी। यही कारण है कि सिंध सरकार और नई योजनाओं पर विचार कर रही है।

संयुक्त प्रान्त में साधारणतः वर्षा अच्छी होती है और कुयें बहुत हैं इस कारण नहरों के बिना भी खेती हो सकती है। पंजाब और सिंध की भाँति संयुक्त प्रान्त नहरों पर नितान्त निर्भर नहीं है। यहाँ की नहरें वस्तुतः दुर्भिक्ष से प्रान्त की रक्षा करने के लिए बनाई गई हैं। एक बार जब नहरें बन गईं तो फिर वे अधिक सुविधाजनक होने के कारण उपयोग में तो आती ही हैं। संयुक्त प्रान्त में सबसे बड़ी नहरें गङ्गा की दोनों नहरें हैं—अपर गंग नहर तथा लोअर गंग नहर। संयुक्त प्रान्त की तराई में वर्षा अधिक होने के कारण बहुत सी छोटी छोटी नदियाँ तराई से निकल कर गङ्गा के मध्य में मिलती हैं। इससे यह लाभ होता है कि गंगा के ऊपरी भाग में नहर निकल जाने से पानी की जो कमी हो जाती है वह पूरी हो जाती है और बीच में से लोअर गंग नहर निकाली जा सकी जो गंगा की घाटी के मध्य भाग को सींचती है। संयुक्त प्रान्त की सभी बड़ी नदियों के साथ यही बात है। पूर्वी जमुना नहर तथा आगरा नहर जमुना से निकाली गई हैं। ये नहरें जमुना के दाहिने और बायें किनारे के भाग को सींचती हैं। कुछ वर्ष हुए संयुक्त प्रान्त की सरकार ने अवध के जिलों में सिंचाई के लिए शारदा नहर निकाली है। शारदा नदी हिमालय से निकलती है। इसमें पानी बहुत है। अतएव इसी नदी से नहर निकाली गई है। यह नहर १५० मील लम्बी है। इसकी शाखों और बम्बों की लम्बाई ३६०० मील है। शारदा नहर ११ लाख एकड़ भूमि को सींचती है। आगे चल कर लोअर शारदा नहर के बनाने का भी विचार है।

संयुक्त प्रान्त की नहरें

संयुक्त प्रान्त में अधिकतर सिंचाई कुओं से होती है। नहरें केवल ३५ लाख एकड़ भूमि को सींचती हैं। अतएव नहरों की अपेक्षा कुयें अधिक महत्वपूर्ण हैं। हाँ, पश्चिमी जिलों में नहरें महत्वपूर्ण हैं। संयुक्त प्रान्त में कुल जोती जाने वाली भूमि की ८३ प्रतिशत भूमि सींची जाती है। और नहरें इसकी एक तिहाई भूमि को सींचती हैं। संयुक्त प्रान्त

में नहरों से एक यह भी लाभ है कि इनके कारण नदियों में अधिक बाढ़ नहीं आती। गेहूँ, कपास, गन्ना सींची जाने वाली फसलों में मुख्य हैं।

मदरास की नहरें

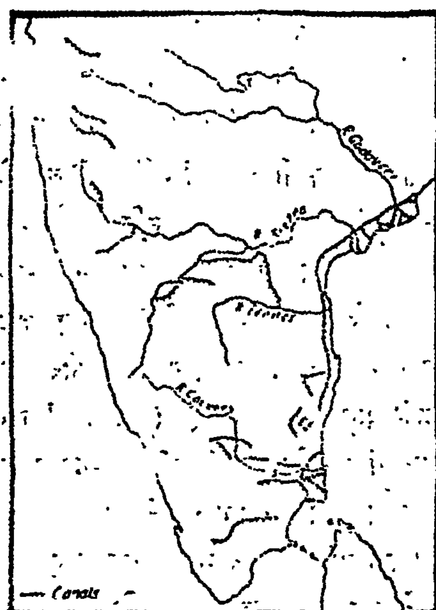
मदरास प्रान्त में भी नहरें महत्वपूर्ण सिंचाई के साधन हैं। मदरास में जितनी भूमि सींची जाती है उसकी एक तिहाई नहरों से सींची जाती है। ये नहरें महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के डेल्टों में हैं। इन नदियों के डेल्टों में इतनी नमी नहीं है कि सिंचाई की आवश्यकता ही न पड़े। पूर्वी तट पर वर्षा अधिकतर जाड़ों में होती है। इस कारण गर्मियों की फसलों को सिंचाई की आवश्यकता होती है। बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ उन प्रदेशों से निकली हैं जहाँ गर्मियों में वर्षा होती है। अतएव गर्मियों (जुलाई, अगस्त, सितम्बर) में इन नदियों और नहरों में खूब पानी रहता है। इन नहरों का उपयोग माल लाने और ले जाने में भी होता है। क्योंकि डेल्टा प्रदेश में रेलों का अधिक विस्तार नहीं हुआ है। नहरों से सींची जाने वाली फसलों में चावल, ज्वार, बाजरा और कपास मुख्य हैं। कावेरी के डेल्टा में पहले बाढ़ वाली नहरें (Inundation Canals) थीं। इस कारण सिंचाई में असुविधा होती थी। मदरास सरकार ने कावेरी पर मैटूर में एक बहुत बड़ा बाँध बनवाया है जो कि १०,००० क्यूबिक फीट पानी को रोक सकेगा। इस बाँध से ८८ मील लम्बी नहर निकाली गई है। इस बाँध के बन जाने से यह लाभ हुआ है कि १० लाख एकड़ भूमि जिसकी पहले सिंचाई ठीक नहीं होती थी अब भली प्रकार सींची जाती है और तीन लाख एकड़ भूमि और भी अधिक सींची जाती है जिस पर अब चावल की खेती होती है।

दक्षिण की अन्य नहरें

इनके अतिरिक्त दक्षिण में निम्नलिखित मुख्य नहरें हैं—(१) भंदरदरा बाँध की नहरें—पश्चिमी घाट के समीप ऊँचे बाँधों को बना कर गहरी घाटियों में पानी को रोक कर सिंचाई की जाती है। इनमें भंदरदरा विशेष उल्लेखनीय है। यह संसार के अत्यन्त ऊँचे बाँधों में से है। बम्बई प्रान्त के अहमदनगर जिले में भंदरदरा में प्रवरा नदी पर २७० फीट ऊँचा एक विशाल बाँध बनाया गया है। पश्चिमी घाट का वर्षा का पानी इसमें इकट्ठा होता है और इससे नहरें निकाल कर सिंचाई की गई है। भंदरदरा के बाँध से प्रवरा की नहरों को पानी मिलता है जिससे उस भाग में गन्ने की खेती बहुत होती है। दूसरा बाँध भाटगर में है जो लायड (Lloyd) बाँध के नाम से प्रसिद्ध है। इससे निरा की नहरों को पानी

मिलता है। निरा की नहरों से ६७,००० एकड़ भूमि सींची जाती है। इन नहरों के फल स्वरूप इन घाटियों में गन्ने की खेती बहुत बढ़ गई है।

इन नहरों के अतिरिक्त दक्षिण में पैरियर की नहर (Periyar Project) विशेष महत्वपूर्ण हैं। पैरियर नदी कारडैमन की पहाड़ियों से निकल कर पश्चिम की ओर अरब सागर में बहती थी। इन पहाड़ियों



के पूर्व में मदरास के मदयूरा तथा तिनेवली जिले थे। जिन्हें पानी की बहुत आवश्यकता थी। अतएव पश्चिम की तरफ एक बड़ा बाँध (१७५ फीट ऊँचा) बना कर नदी को एक झील में परिणात कर दिया गया। इस झील से १५० मील लम्बी एक नहर निकाली गई है जो कि पहाड़ में १½ मील लम्बी सुरंग (Tunnel) बनाकर पूर्व की तरफ लाई गई है और पूर्व के शुष्क जिलों को सींचती है।

बिहार और बंगाल में भी कुछ नहरें हैं किन्तु उनमें से कुछ ही का उपयोग चावल की फसल को सींचने में होता है। सिंचाई की दृष्टि से ये नहरें महत्वपूर्ण नहीं हैं। बंगाल में नहरें सोन, रूपनारायन, त्रेमका, तथा अन्य नदियों से निकाली गई हैं किन्तु उनका उपयोग अधिकतर माल ढोने, पीने के लिए पानी देने तथा नीचे मैदानों के व्यर्थ पानी को बहा ले जाने के लिए होता है।

भारतवर्ष में लगभग ५ करोड़ एकड़ भूमि सींची जाती है। इस सींची हुई भूमि की आधी नहरों के द्वारा सींची जाती है, शेष कुओं और तालाबों

से सींची जाती है। भारतवर्ष में सिंचाई के लिए इतने साधन इकट्ठे करने पर भी केवल २० प्रतिशत खेती की भूमि सींची जाती है। शेष ८० प्रतिशत वर्षा के जल पर ही अवलम्बित है।

जहाँ नहरों के बन जाने से सिंचाई की सुविधा हो गई है वहाँ कुछ कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो गई हैं। नहरों के पानी से खेत-सींचने पर किसान को जितना पानी उसने लिया है उसके अनुसार आबपाशी नहीं देनी होती वरन उसने कितने बीघा जमीन सींची है उसके अनुसार देनी होती है। भिन्न भिन्न फसलों के लिए प्रति बीघा आबपाशी की दर भिन्न है। किसान चाहे कम पानी ले अथवा ज्यादा ले उसे निर्धारित आबपाशी देनी होगी। इसका परिणाम यह होता है कि किसान खेत में आवश्यकता से अधिक पानी दे देता है जिससे खेत को हानि पहुँचती है। संयुक्त प्रान्त में तो इसी कारण बहुत सी भूमि पर रेह (alkali) जम गया। साधारणतः विश्वास किया जाता है कि नहर के पानी से सींची हुई फसल कुयें के पानी से सींची हुई फसल से कम होती है। किसान को नहर पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी कभी जब उसकी फसल को पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती है तब नहर में पानी नहीं आता और किसान को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। फिर भी नहरों से देश को कल्पनातीत लाभ हुआ है और खेती का विस्तार हुआ है।

कुयें — भारतवर्ष में कुयें अत्यन्त प्राचीन काल से सिंचाई के काम में आते रहे हैं। निर्धन किसान के लिए कुयें ही अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि वह अपने खेतों पर स्वयं कुयें बना सकता है। उत्तर भारत में जिन स्थानों पर पानी बहुत गहरा नहीं है कच्चा कुआँ १०) में तैयार हो जाता है और पक्का कुआँ १५०) में तैयार हो जाता है। यही कारण है कि भारतीय किसान कुओं का बहुत उपयोग करता है। हाँ दक्षिण प्रायद्वीप तथा मध्य भारत में कुओं में अधिक व्यय होता है क्योंकि वहाँ का धरातल पथरीला है। केवल किसान की आर्थिक दृष्टि से ही कुयें उपयुक्त नहीं हैं वरन भौगोलिक दृष्टि से भी भारत के अधिकांश भाग में कुयें सिंचाई के लिए उपयुक्त हैं। भारतवर्ष के अधिकांश भाग में मटियार मिट्टी है जिसके नीचे चिकनी मिट्टी की तह मिलती है। जो वर्षा का जल मिट्टी से छन छन कर अन्दर पहुँचता है उसको चिकनी मिट्टी अधिक अन्दर नहीं जाने देती। जब कुयें खोदे जाते हैं तो चिकनी मिट्टी तह के समीप जल श्रोत मिल जाता है। साधारणतः भारतवर्ष में इसी प्रकार के सोते वाले कुयें (Spring wells) हैं। जहाँ चिकनी मिट्टी की

तह अधिक मोटी है वहाँ ट्यूब-वैल (Tube well) बनाने से बहुत पानी मिल सकता है। किन्तु ट्यूबवैल के बनाने में व्यय अधिक होता है तथा उसके पानी को निकालने के लिए यांत्रिक शक्ति (Machine Power) की आवश्यकता पड़ती है।

कुयें की उपयोगिता पृथ्वी के अन्दर बहने वाले जल पर निर्भर रहती हैं। पृथ्वी के अन्दर बहने वाला जल, वर्षा का जल, तराई में जो जल पृथ्वी द्वारा सोख लिया जाता है, और नहरों तथा नदियों के जल का वह भाग जिसे पृथ्वी सोख लेती है निर्भर रहता है। यदि वर्षा अधिक हो तो अन्दर पानी अधिक होगा। किन्तु पृथ्वी उसी समय जल अधिक सोखती है जबकि जल धीरे धीरे बहता हो। यदि पृथ्वी में जल बहुत गहराई पर मिलता है तो कुओं की सिंचाई के लिए उपयोगिता कम होती है क्योंकि सिंचाई में व्यय अधिक होता है। भारतवर्ष में बहुत से भागों में पानी बहुत गहराई पर मिलता है। कुछ स्थानों पर कुओं का जल खारी होता है। खारी जल भी सिंचाई के काम में नहीं आ सकता। कहीं कहीं वर्षा न होने से अथवा कम होने से कुयें सूख जाते हैं। ऐसे प्रदेशों में जब पानी की बहुत आवश्यकता होती है तभी कुओं में पानी नहीं होता।

निम्नलिखित प्रदेश मुख्यतः कुओं पर सिंचाई के लिए निर्भर हैं:— संयुक्तप्रान्त विशेषकर पूर्वी भाग, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल। काली कपास वाली मिट्टी का प्रदेश, तथा मदरास और बम्बई प्रान्तों के दक्षिणी ज़िले। इससे यह न समझना चाहिए कि अन्य भागों में कुओं से सिंचाई नहीं होती। राजपूताना के दक्षिणी भाग, पंजाब, मध्य भारत तथा मध्यप्रान्त भी बहुत कुछ कुओं पर निर्भर है। कुओं के द्वारा भारतवर्ष में कुल सींची जाने वाली भूमि की एक चौथाई भूमि पर सिंचाई होती है। हिमालय की तराई, आसाम तथा पश्चिमीय समुद्रतट में कुयें बहुत कम हैं। प्रायः सिंचाई के लिए उनका उपयोग नहीं होता। भारतवर्ष में सबसे अधिक कुयें संयुक्तप्रान्त में हैं।

प्रान्तों में कुओं की संख्या

प्रान्त	क्षेत्रफल (एकड़ों में)	कुओं की संख्या
मदरास	१,३८८,०००	६४५,०००
बम्बई	७६८,०००	२६०,०००
संयुक्तप्रान्त	५,५५४,०००	१,१३५,०००
पंजाब	४,७४६,०००	३४०,०००

मध्यप्रान्त	१३४,०००	१२६,०००
सीमाप्रान्त	८१,०००	१४,०००
सिन्ध	४०,०००	११,०००

भारत में कुओं के द्वारा लगभग ३ करोड़ एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है। कुओं में से पानी निकालने के लिए मनुष्य पशु और आयल-ऐंजिन तथा बिजली सभी का उपयोग होता है।

ऐसा कोई प्रान्त देश में नहीं है जहाँ कुओं की संख्या को बढ़ाया नहीं जा सकता। किन्तु सरकार का ध्यान अभी इस ओर नहीं गया है। यदि सरकार किसानों को आर्थिक सहायता दे तो कुओं की संख्या में विशेष वृद्धि हो सकती है।

संयुक्तप्रान्त के ट्यूब-वैल

कुछ वर्षों से संयुक्तप्रान्त के कतिपय ज़िलों में सरकार ने ट्यूब-वैल खुदवाये हैं जो गंगा नहर के पानी से उत्पन्न हुई बिजली से चलते हैं। अभी बदायूँ, मुज़फ़्फ़रनगर, बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़ और मुरादाबाद ज़िलों में ही ट्यूब-वैल खोदे गए हैं। एक ट्यूब-वैल के तैयार करने में लगभग दस हज़ार रुपया व्यय होता है और वह एक हज़ार एकड़ को सींच सकता है। संयुक्तप्रान्त में लगभग डेढ़ करोड़ रुपये व्यय करके लगभग १५०० ट्यूब-वेल खोदे गए हैं और उनसे इन ज़िलों में सिंचाई होती है। जैसे जैसे अन्य ज़िलों में बिजली पहुँचती जायेगी वैसे ही वैसे वहाँ भी ट्यूब-वैल खोदे जायेंगे। भविष्य में संयुक्तप्रान्त में ट्यूब-वैल सिंचाई का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जायेगा।

ट्यूब-वैल की सिंचाई के कुछ लाभ हैं जो कि नहरों द्वारा सिंचाई करने से प्राप्त नहीं होते। (१) ट्यूब वैल को एक बार बना देने के उपरान्त उसकी देख-भाल तथा प्रबंध में बहुत कम व्यय होता है। इस कारण पानी सस्ते मूल्य पर दिया जा सकता है। (२) कुओं का पानी नहरों के पानी की अपेक्षा फसलों के लिए अधिक लाभदायक है। (३) प्रत्येक ट्यूब-वैल पर एक आपरेटर (कर्मचारी) रहता है जो किसान के माँगने पर कुयें को चलाकर पानी किसान को दे देता है। अर्थात् किसान को पानी की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जब उसे आवश्यकता होती है तभी उसे ट्यूब-वैल से पानी मिल जाता है। नहरों के जल के लिए कभी कभी बहुत लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ट्यूब-वैल पर मीटर लगा हुआ रहता है अतएव किसान जितना पानी लेता है उतना नाप लिया जाता है और उसी के अनुसार

किसान को आबपाशी देनी होती है। इसका फल यह होता है कि किसान पानी की किफायत करता है।

ट्यूब-वैल से एक लाभ और हुआ है। जो नहरें पश्चिम ज़िलों की ओर बहती हैं वे जब अधिक पश्चिम में पहुँचती हैं तब उनमें पानी बहुत कम रह जाता है जिससे सिंचाई पूरी नहीं हो पाती। अब उन नहरों के दोनों ओर उन ज़िलों में जहाँ कि पानी अधिक बरसता है और नहरों के पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती ट्यूब-वैल बनाये गए हैं जो पृथ्वी के नीचे बहने वाले पानी को नहर में डालते रहते हैं जिससे कि नहरों में पानी अधिक रहे और पश्चिमी ज़िलों में ठीक प्रकार से सिंचाई हो सके।

आरम्भ में यह भय था कि इन ट्यूब वैलों के बनने से कहीं पृथ्वी के नीचे का पानी अधिक गहराई पर न चला जाये। यदि पृथ्वी के अन्दर बहने वाला पानी अधिक गहराई पर चला जाये तो सोत के कुयें सब सूख जायें और प्रान्त में खेती को भयंकर हानि होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाये। संयुक्तप्रान्त की सरकार ने इस बात की जाँच के लिए तीन विशेषज्ञों की कमेटियाँ बिठाईं। उन सबों का यही मत है कि ट्यूब-वैल जितना पानी पृथ्वी से प्रतिवर्ष निकालेंगे उससे अधिक पानी प्रतिवर्ष पृथ्वी के अन्दर पहुँचता रहेगा। इस कारण अन्दर का पानी अधिक गहराई पर नहीं जा सकता।

अहमदाबाद मिलों के लिए २१ ट्यूब-वैल बनाये गए हैं जो चार लाख गैलन पानी प्रति घंटे देते हैं।

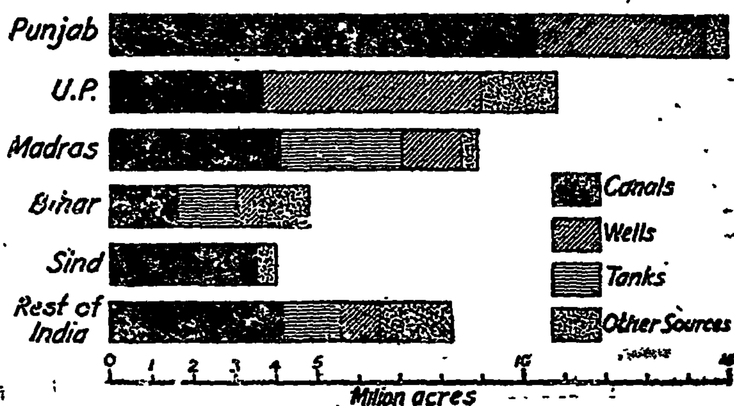
भारतवर्ष में पाताल फोड़ (Artesian) कुयें नहीं हैं। पाताल फोड़ कुओं को बनाने के लिए ६००० से १०००० फ़ीट तक गहरा खोदना पड़ता है। अहमदाबाद के समीप छालोदा में एक पाताल फोड़ कुआँ है जो प्रति दिन ६१०,००० गैलन पानी देता है। रात दिन कुयें से पानी अन्दर के दबाव के कारण स्वयं निकल कर बहता रहता है। सरकार गुजरात के कुछ गाँवों में पाताल फोड़ ट्यूब-वैल बनाने का विचार कर रही है।

तालाब

तालाब भी सिंचाई के महत्वपूर्ण साधन हैं। दक्षिण प्रायद्वीप में तालाबों से सिंचाई होती है। राजपूताना, मध्यभारत, हैदराबाद तथा मैसूर राज्यों में बड़े बड़े बाँध बनाकर झीलें बनाई गई हैं जिनसे सिंचाई होती है। राजपूताने में उदयपूर, अलवर, भरतपूर, मध्य-भारत में इंदौर, भूपाल और ग्वालियर राज्यों में बड़े बड़े तालाब बनाये गए हैं। उदयपूर की ढ़ेबर झील (जय समुद्र) भारतवर्ष की सबसे बड़ी नकली झीलों में से है। इसका क्षेत्रफल ५४ वर्ग मील है।

हैदराबाद का निजाम सागर तथा मैसूर का कृष्ण राजा सागर नामक तालाबों से बहुत सिंचाई होती है। मैसूर के कृष्ण राजा सागर के पानी से बिजली उत्पन्न होने के अतिरिक्त १२०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। दक्षिण भारत, मध्य भारत, दक्षिण राजपूताना तथा उत्तरी बिहार में तालाबों से सिंचाई अधिक होती है।

ब्रिटिश भारत में मदरास तथा उत्तर बिहार में तालाबों के द्वारा सिंचाई बहुत होती है। केवल मदरास प्रान्त में ३५,००० छोटे बड़े तालाब हैं जिनसे लगभग तीस लाख एकड़ भूमि सींची जाती है। बुंदेलखंड तथा मध्यप्रान्त में भी तालाब हैं।



दक्षिण प्रायद्वीप में ही अधिकतर तालाब पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि दक्षिण की नदियाँ गरमी में सूख जाती हैं। अस्तु उनसे नहरें नहीं निकाली जा सकतीं। पृथ्वी भी पथरीली है। इस कारण नहरें नहीं खोदी जा सकतीं। हाँ कुओं का सिंचाई के लिए अवश्य उपयोग होता है परन्तु कुओं के खुदवाने में भी व्यय बहुत होता है (१००० रु० के लगभग)। दक्षिण के पहाड़ी प्रदेश में बरसात के दिनों में सैकड़ों छोटे छोटे नदी नाले बरसात के पानी को बहा ले जाते हैं। गाँव के लोग बाँध बनाकर उन नालों को रोक देते हैं। भूमि पथरीली होने के कारण पानी को नहीं सोखती। गाँव की पंचायत इन तालाबों की देखभाल करती है और बाँध की मरम्मत करवाती है। दक्षिण में इन तालाबों को पटबँधा कहते हैं।

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भारतवर्ष में २० प्रतिशत खेती की भूमि सींची जाती है। कतिपय प्रान्तों में सिंचाई के साधनों के सम्बन्ध में नीचे दिये हुए आंकड़ों से प्रकाश पड़ेगा।

नाम	नहर	कुआँ	तालाब	अन्य
मद्रास	४१%	१८%	३६%	५%
बम्बई	७६%	१४%	—	७%
यू० पी०	२३%	५१%	—	२१%
पंजाब	७४%	२५%	—	१%
बिहार-उड़ीसा	३५%	१२%	३२%	२२%

पंजाब में अभी दो नहरें और तैयार हो रही हैं जो शीघ्र ही सिंचाई करने लगेंगी। पहली थाल-प्रोजेक्ट जो सिन्ध सागर दोआब की मरुभूमि को सींचेगी, दूसरी हवेली प्रोजेक्ट जो झंग और मुज़फ़्फ़रगढ़ ज़िलों को सींचेगी। कुछ नई योजनायें भी सरकार ने हाथ में ली हैं जिनके सम्बन्ध में जलविद्युत् के परिच्छेद में हम लिख चुके हैं। उनमें दामोदर घाटी योजना मुख्य है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में खेती के धन्धे के लिए सिंचाई की इतनी अधिक आवश्यकता क्यों है ?

२—किस प्रदेश में कौनसा सिंचाई का साधन उपयुक्त होगा यह कहाँ तक भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर है भारत को ध्यान में रखकर इसका विवेचन कीजिए।

३—पंजाब के नहरों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और उनका पंजाब पर कैसा प्रभाव पड़ा यह बतलाइए।

४—बिजली से चलने वाले ट्यूबवैल और नहरों की तुलना कीजिए और उनके गुण दोषों को बतलाइए।

५—कौन सी भौगोलिक और आर्थिक परिस्थितियों में कुओं द्वारा सिंचाई अधिक सुविधाजनक होती है ?

६—दक्षिण में कुयें क्यों कम हैं ?

७—मैटूर बाँध, पैरियर प्रोजैक्ट तथा शक्कर बाँध पर नोट लिखो।

८—दक्षिण में तालाब महत्वपूर्ण सिंचाई के साधन क्यों बन गये हैं।

बीसवाँ परिच्छेद

खेती (Agriculture)

भारतवर्ष में खेती का महत्त्व

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। लगभग ७३ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। इसी से कृषि का महत्त्व स्पष्ट है। गाँवों में किसानों के अतिरिक्त खेत मजदूर बढ़ई, लुहार इत्यादि जो कारीगर हैं वे भी खेती पर ही निर्भर हैं। संसार में चीन के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश में इतने अधिक मनुष्य खेती पर निर्भर नहीं हैं। यदि किसी वर्ष वर्षा की कमी से अथवा अन्य प्राकृतिक कारण से फसलें नष्ट हो जाती हैं तो भारतवर्ष का आर्थिक ढाँचा हिल उठता है। फसलों के नष्ट हो जाने से विदेशों को भेजे जानी वाली वस्तुएँ कम हो जाती हैं। किसान के पास रुपया नहीं होता। इस कारण वह विदेशों से आने वाले माल तथा भारतीय मिलों में तैयार माल को खरीद नहीं सकता। दूसरे शब्दों में भारतवर्ष का व्यापार कम हो जाता है और उद्योग-धन्धे शिथिल पड़ जाते हैं। सरकार को पूरी मालगुजारी नहीं मिलती। रेलों को माल ढोने के लिए कम मिलता है, किसान मेले और यात्राओं को कम जाते हैं। अतएव उन्हें घाटा होता है। कहने का तात्पर्य यह कि देश का सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा खेती पर अवलम्बित है।

खेती की दशा

जिस धन्धे पर देश की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या निर्भर है उसकी दशा अत्यन्त गिरी हुई है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ भिन्न भिन्न फसलों की पैदावार अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। जहाँ प्रति एकड़ भारतवर्ष में ८५ पौंड कपास उत्पन्न होती है वहाँ संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रति एकड़ २५० पौंड और ईजिप्ट में ४०० पौंड कपास प्रति एकड़ उत्पन्न होती है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ इङ्गलैंड की तुलना में चौथा हिस्सा गेहूँ और जौ उत्पन्न होता है। क्यूबा और जावा की तुलना में यहाँ प्रति एकड़ चौथे हिस्से से भी कम गन्ना उत्पन्न होता है। संक्षेप में भारतवर्ष में प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं

होती। बिना वैज्ञानिक ढंग से गहरी खेती (Intensive cultivation) किये पैदावार बढ़ाई नहीं जा सकती और यही कारण है कि भारतीय किसान इतना निर्धन हैं। भारतवर्ष की भूमि बहुत उपजाऊ है और जलवायु भी खेती के लिए अनुकूल है फिर भी जो यहाँ खेती की दशा अच्छी नहीं है उसके निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

(१) भारतवर्ष में जनसंख्या की बढ़वार के कारण अधिकाधिक जनसंख्या खेती बारी पर निर्भर होती गई क्योंकि यहाँ उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक किसान के पास भूमि बँटते बँटते बहुत कम रह गई। और वह थोड़ी सी भूमि भी एक चक में न होकर छोटे छोटे टुकड़ों में इधर उधर बिखरी होती है। यदि किसी किसान के पास कुल बीस बीघा ज़मीन है तो पाँच बीघा एक जगह, दो बीघा दूसरी जगह, १० बीघा तीसरी जगह और शेष चौथी जगह होती है। खेती के बिखरे होने के कारण किसान का बहुत सा समय नष्ट होता है, वह कुआँ बनाकर सिंचाई नहीं कर सकता, फसल की रखवाली नहीं हो पाती। संक्षेप में खेती अच्छी तरह से नहीं हो सकती और खर्चा अधिक होता है।

(२) भूमि और मिट्टी के परिच्छेद में लिखा जा चुका है कि भारतवर्ष की मिट्टी में नत्रजन (Nitrogen) की कमी है। मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने तथा उसको अधिक उपजाऊ बनाने के लिए खाद की आवश्यकता होती है। भारतीय किसान अपने खेतों को बहुत कम खाद देता है। भारतीय किसान के पास सबसे सस्ती और सबसे अच्छी खाद गोबर है किन्तु वह उसके कंडे बनाकर जला डालता है और बहुत कम खाद बनाता है। इस कारण खेतों को खाद बहुत कम मिलता है।

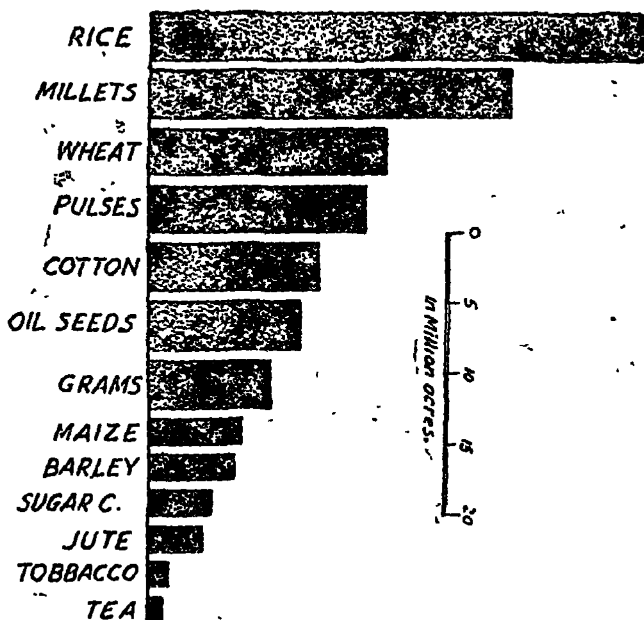
(३) अधिकतर किसान बीज सवाये या ड्योढ़े पर महाजनों से उधार लेता है। यह बीज बहुत घटिया होता है। इस कारण फसल अच्छी नहीं होती। कुछ वर्षों से सरकारी कृषि विभाग ने अच्छे बीज उत्पन्न करके उनका बीज गोदामों के द्वारा किसानों को उधार देने का प्रबंध किया है।

(४) भारतवर्ष में खेतों का काम बैलों से लिया जाता है। यद्यपि भारतवर्ष में संसार के प्रत्येक देश से अधिक गाय और बैल (इक्कीस करोड़) हैं किन्तु यहाँ के बैल बहुत कमज़ोर और छोटे होते हैं। इस कारण वे अच्छी तरह से खेती का काम नहीं कर सकते। पशुओं की नस्ल बिगड़ जाने का कारण यह है कि भारतवर्ष में चारे की बहुत कमी है। पशुओं को भर पेट चारा नहीं मिलता और यहाँ अच्छे साँड़ भी नहीं है। इस कारण भारतीय पशुओं की नस्ल खराब हो गई। वे बहुत कमज़ोर होते हैं।

(५) भारतवर्ष में खेती के औज़ारों में भी कोई सुधार नहीं हुआ है। यद्यपि भारतवर्ष में पश्चिमीय देशों की भाँति खेती के यन्त्रों का उपयोग नहीं हो सकता। यहाँ छोटे हल्के और सस्ते औज़ार ही काम दे सकते हैं परन्तु फिर भी हल इत्यादि में सुधार की आवश्यकता है।

(६) भारत में वर्षा मौसमी और अनिश्चित है इस कारण सिंचाई की आवश्यकता होती है। परन्तु सिंचाई के साधन कम हैं। केवल २० प्रतिशत भूमि ही सींची जाती है।

(७) खेती का ढंग भी यहाँ वैज्ञानिक नहीं है। कृषिविभाग वैज्ञानिक ढंग की खेती का प्रचार करने का प्रयत्न कर रहा है।

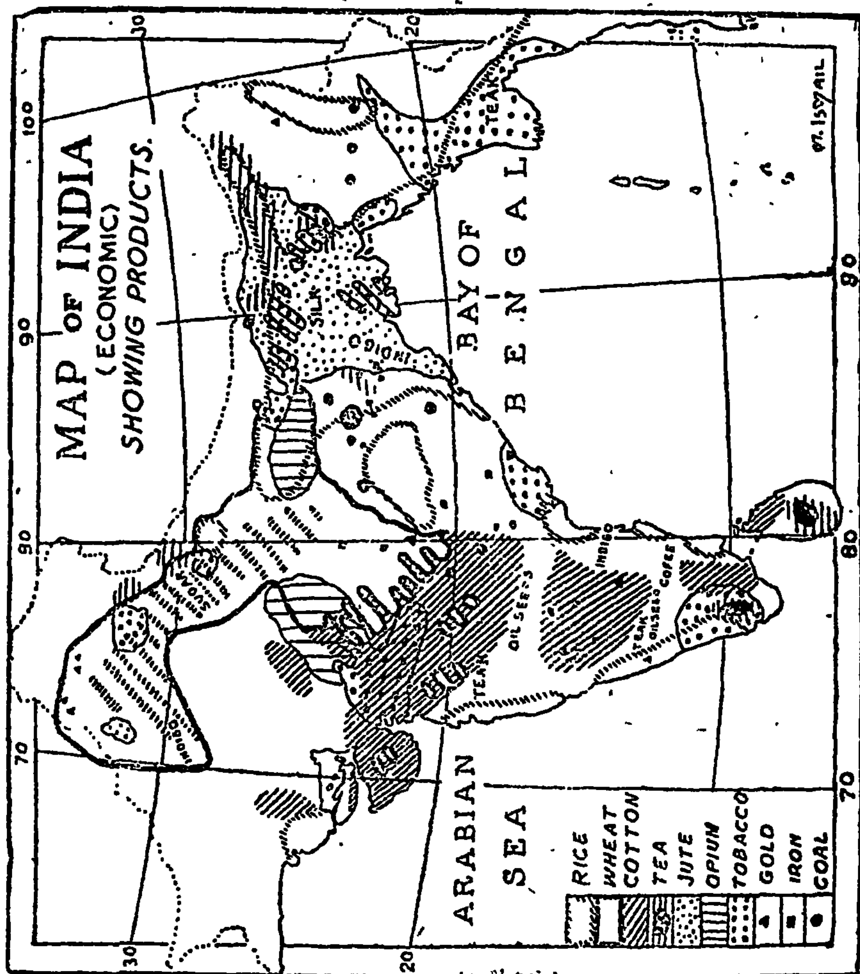


ऊपर लिखे हुये कारणों से खेतों की पैदावार प्रति एकड़ कम होती है। किसान निर्धन है। वह महाजन के कर्ज़ के बोझ से इतना दबा हुआ है कि ऋणमुक्त होने की सम्भावना नहीं है तिस पर लगान बहुत अधिक है। इन्हीं सब कारणों से भारतवर्ष में खेती की दशा गिरी हुई है।

भारत में कुल भूमि का क्षेत्रफल ६६८,०४१,००० एकड़ है। वह इस प्रकार बंटा हुआ है—४४ प्रति शत भूमि पर खेती है ६ प्रतिशत परती छोड़ दी जाती और १८ प्रतिशत ऐसी बंजर भूमि है जिस पर खेती हो सकती है

किन्तु खेती की नहीं जाती और २६ प्रतिशत भूमि ऐसी है जो कभी भी खेती के काम में नहीं आ सकती।

अस्तु लगभग ५३ प्रतिशत भूमि पर खेती होती है। जितनी भूमि पर खेती होती है उसका भिन्न भिन्न फसलों में बंटवारा इस प्रकार है :—



तिलहन	७%
गेहूँ	१०%
चावल	२५%
कपास	६%
चना	६%
बाजरा	६%
जुआर	११%
गन्ना	१%

भोजन उत्पन्न करने वाली फसलें ८०% प्रतिशत भूमि घेर लेती हैं और

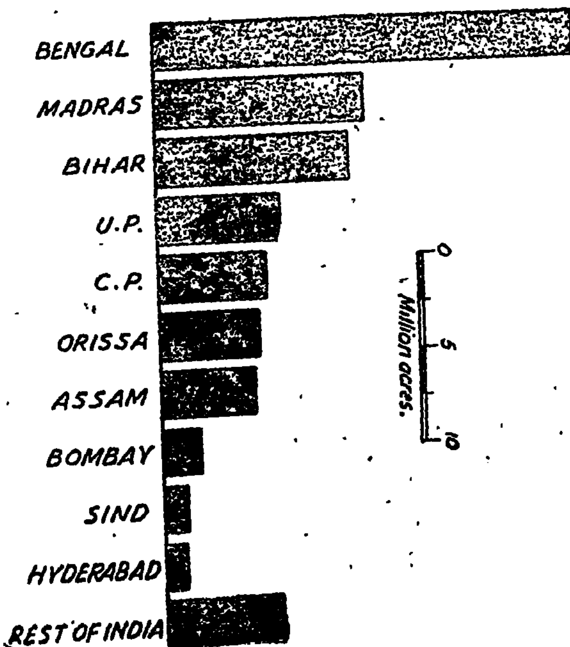
२० प्रतिशत भूमि पर औद्यागिक कचा माल तथा अन्य फसलें उत्पन्न होती हैं। नीचे हम मुख्य फसलों की पैदावार और उनका क्षेत्रफल देते हैं :—

फसल	लाख एकड़ों में	लाखों में
चावल	८०७	२७१ टन
गेहूँ	३५७	१०४ ,,
तिलहन	२४४	५६ ,,
कपास	१४८	३५ गाँठ
गन्ना	४१	५४ टन
जूट	२१	६२ गाँठ
(१ गाँठ में ४०० पौंड होता है)		
चाय	८.३३	४६४० पौंड
कहवा	१.८१	३४३ पौंड

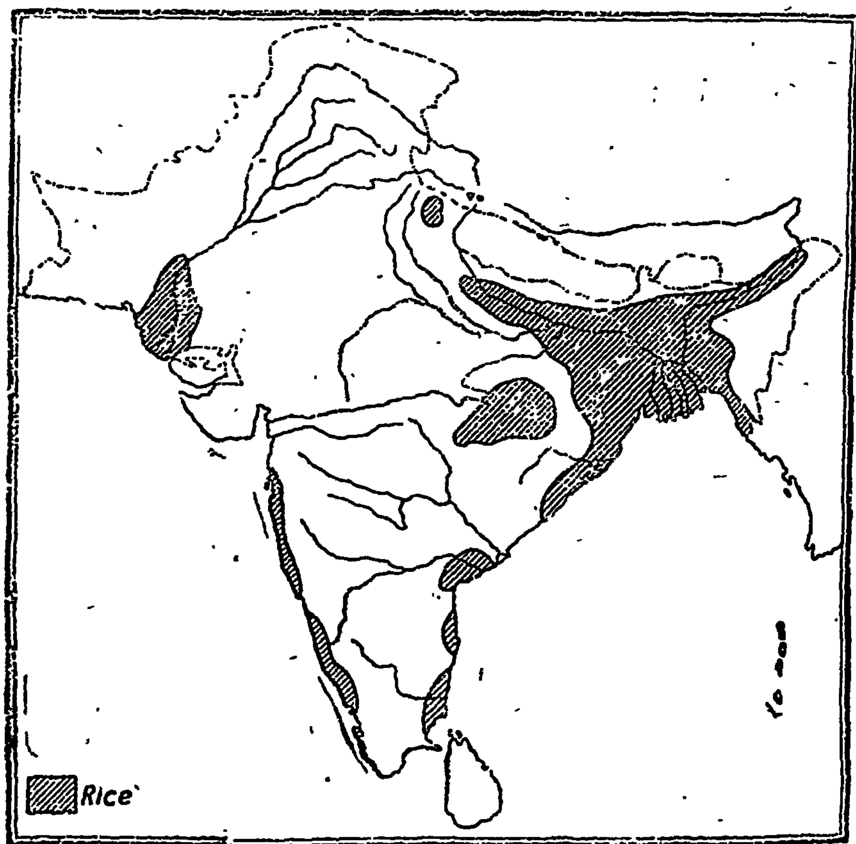
मुख्य फसलें (खाद्य पदार्थ)

चावल

चावल भारतवर्ष की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। देश में चावल उत्पन्न करने वाली भूमि सबसे अधिक है और सबसे अधिक जनसंख्या का यह भोजन है। चावल के लिए अधिक



गरमी, अधिक वर्षा तथा उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में बंगाल, आसाम, बिहार-उड़ीसा तथा मदरास चावल उत्पन्न करने वाले प्रान्तों में मुख्य हैं। देश का तीन चौथाई चावल इन्हीं प्रान्तों में उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त, पंजाब, मध्यप्रान्त, बरार, सिन्ध तथा बम्बई में भी कुछ चावल होता है। बंगाल में खेती की लगभग तीन चौथाई भूमि पर चावल उत्पन्न होता है। यदि भारतवर्ष की वर्षा का अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि जिन प्रदेशों में वर्षा



अधिक होती है उन्हीं प्रदेशों में चावल की पैदावार भी अधिक होती है। भीतर की तरफ़ जैसे जैसे वर्षा कम होती जाती है वैसे ही वैसे चावल की खेती भी कम होती जाती है। बंगाल और आसाम में चावल की खेती बिना सिंचाई के होती है किन्तु अन्य सब प्रान्तों में चावल की खेती उन्हीं इलाकों में होती है जहाँ सिंचाई की सुविधा है। पंजाब की नहरों के प्रदेश में, मदरास की नदियों के डेल्टों में, तथा सक्खर बाँध की नहरों के इलाके में चावल उत्पन्न होता है। संयुक्तप्रान्त के पूर्वी ज़िलों तथा तराइ

में चावल उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में आठ करोड़ एकड़ से कुछ ही कम भूमि पर चावल की खेती होती है। संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब को छोड़ कर अन्य प्रान्तों में वर्ष में दो या तीन फसलें होती हैं। बंगाल में तीन फसलें उत्पन्न की जाती हैं। चावल की खेती बीज छिटक कर और पौधे लगाकर दोनों ही तरह से होती है।

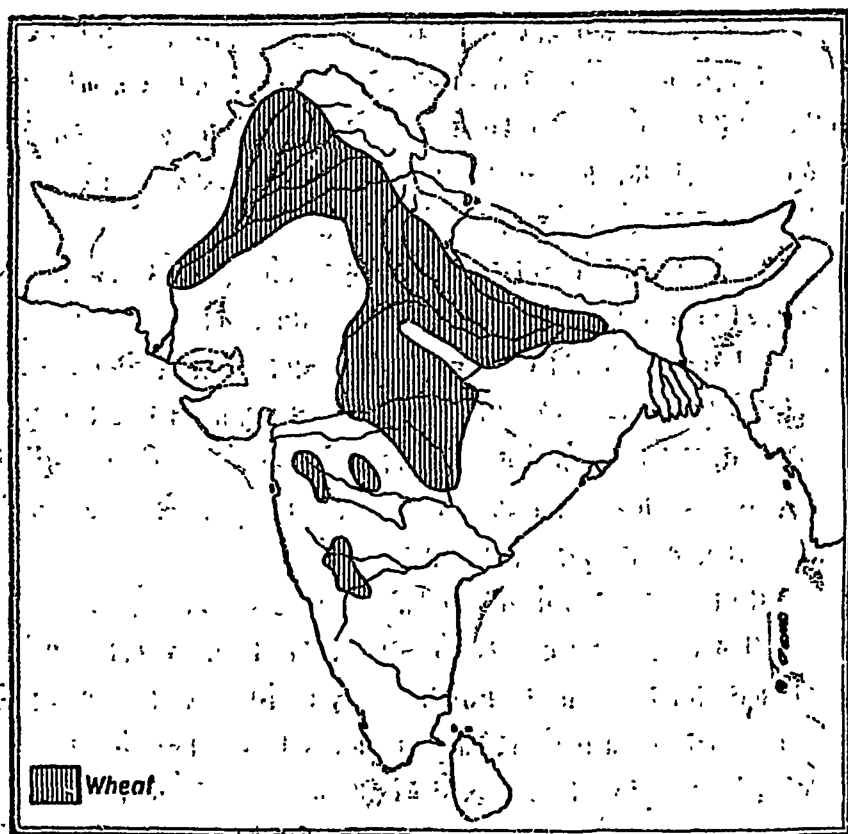
चावल की फसल को पानी की इतनी अधिक आवश्यकता होती है कि यदि अधिक दिनों फसल को वर्षा अथवा पानी न मिले तो फसल नष्ट हो जाती है। इसी कारण जहाँ वर्षा कम अथवा अनिश्चित होती है वहाँ सिंचाई की आवश्यकता होती है। बंगाल में कृषि विभाग ने ऐसा चावल उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है जो शुष्कता को सहन कर सके और प्रति एकड़ पैदावार अधिक हो। बंगाल का "घेराल" ऐसा ही चावल है। प्रति एकड़ ३२ मन तक उसकी पैदावार होती है। इसके अतिरिक्त अन्य दूसरे चावल भी हैं जो कि अच्छी किस्म के हैं।

यद्यपि भारतवर्ष में चावल की खेती बहुत होती है और यह इस देश का मुख्य खाद्य पदार्थ है फिर भी चावल की पैदावार प्रति एकड़ यहाँ बहुत कम है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ ८३६ पौंड चावल उत्पन्न होता है जबकि जापान में प्रति एकड़ २३५० पौंड चावल उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ के बीज अच्छी किस्म के नहीं हैं और किसान भूमि में खाद नहीं डालता। चावल की प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने के लिए अच्छे बीज और खाद की बहुत आवश्यकता है।

भारतवर्ष के उन भागों में जहाँ कि चावल उत्पन्न होता है बहुत घनी आबादी है। इस कारण देश में ही अधिकांश चावल खप जाता है। अधिकतर चावल का व्यापार अन्तर प्रान्तीय है। बंगाल तथा मध्यप्रान्त से चावल संयुक्तप्रान्त तथा बिहार को भेजा जाता है। मध्यप्रान्त में जनसंख्या कम है। इस कारण चावल बाहर भेज दिया जाता है और बंगाल में चावल बहुत अधिक होता है। इस कारण कुछ बाहर भेजा जाता है। पहले भारतवर्ष से चावल विदेशों को बहुत भेजा जाता था किन्तु बर्मा के भारतवर्ष से पृथक् कर दिये जाने के कारण अब चावल का निर्यात (Export) बहुत गिर गया है।

धान को कूट और साफ करके बेंचा जाता है। बहुत से किसान ढेंकली के द्वारा घर पर ही अपने धान को कूट और साफ कर लेते हैं। किन्तु क्रमशः चावल को साफ करने वाली मिलों की संख्या बढ़ रही है। बंगाल में चावल कूटने की बहुत अधिक मिलें स्थापित हो गई हैं। हावड़ा तो

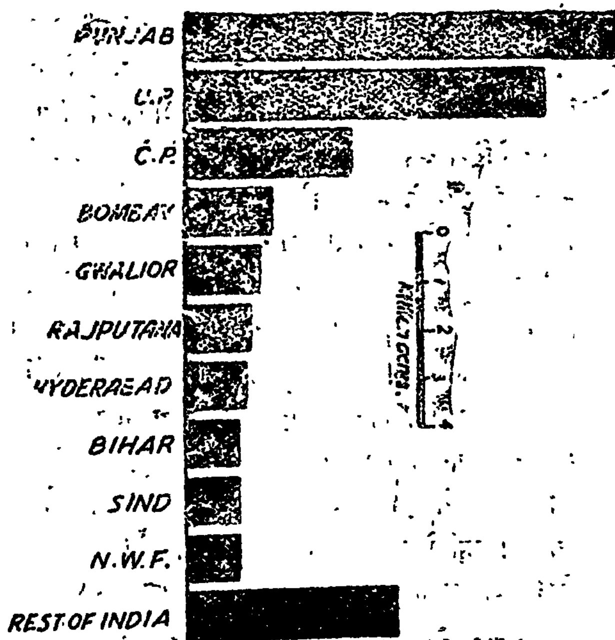
इनका केन्द्र ही बन गया है। बंगाल के अतिरिक्त बम्बई, और मदरास में भी चावल कूटने के कारखाने हैं। धीरे धीरे किसान स्वयं धान को कूटना और साफ करना छोड़ रहा है। वह अधिकतर अपने धान को मिलों को बेंच देता है। मिलें ही उसे कूट और साफ करके बेंचती हैं। कुछ मिलों में चावल की भूसी को ही जलाकर शक्ति उत्पन्न कर लेते हैं। चावल का भूसा बहुत कड़ा होता है इस कारण उसको पशु नहीं खाते। जलाने, छप्पर छाने तथा चटाई बनाने में उसका उपयोग होता है।



भारतवर्ष में कुल ७८,०००,००० एकड़ भूमि पर चावल उत्पन्न होता है जिसमें ७० लाख एकड़ केवल बंगाल में है। समस्त देश में लगभग २९,०००,००० टन चावल उत्पन्न होता है। इससे यह स्पष्ट है कि भारत में सबसे अधिक चावल बंगाल में उत्पन्न होता है किन्तु वहाँ की आबादी बहुत अधिक होने के कारण चावल की कमी पड़ती है और चावल बाहर से मँगाना पड़ता है।

चावल के उपरान्त गेहूँ सबसे महत्वपूर्ण अनाज है। जिन प्रदेशों में चावल उत्पन्न होता है वहाँ गेहूँ नहीं उत्पन्न होता और जहाँ चावल उत्पन्न नहीं होता वहाँ गेहूँ अधिक उत्पन्न होता है। इसका कारण यह है कि दोनों फसलों की जलवायु की आवश्यकतायें भिन्न हैं। भारतवर्ष में गेहूँ की पैदावार सिंध और गंगा की घाटी के पश्चिमीय भाग में बहुत अधिक होती है। सम्पूर्ण देश में लगभग २ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि पर गेहूँ की खेती होती है जिसमें एक करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि गंगा और सिंध के पश्चिमीय मैदानों में है। गेहूँ मुख्यतः पंजाब, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, मध्य-भारत, बिहार तथा बम्बई प्रान्त का नासिक तथा खानदेश के इलाके में उत्पन्न होता है।

गेहूँ



भारतवर्ष में गेहूँ जाड़े में पैदा होता है क्योंकि उन्हीं दिनों यहाँ का जलवायु गेहूँ की पैदावार के अनुकूल होता है। अक्टूबर मास में जब कि ठंड शुरू हो जाती है और रात्रि को ओस पड़ने लगती है तब गेहूँ बोया जाता है। गेहूँ मूल्यवान फसल है। इस कारण किसान भूमि को खूब जोतता है और खाद देता है। अधिकतर गेहूँ के खेतों पर गर्मियों में कुछ भी नहीं

बोया जाता। जाड़ों में वर्षा हो जाने से गेहूँ का पौधा खूब बढ़ता है। किन्तु भारत में जाड़ों में वर्षा कम होती है इस कारण गेहूँ की पैदावार वहीं अधिक होती है जहाँ कि सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं। फरवरी के अन्त में गर्मी पड़ना आरम्भ हो जाती है जिससे फसल पकने में सुविधा होती है। किन्तु भारतवर्ष में जलवायु की दृष्टि से एक कमी है जिस कारण यहाँ का गेहूँ बहुत बढ़िया नहीं होता। कारण यह है कि फ़रवरी के अन्त में गर्मी पड़ना प्रारम्भ होती है और एक साथ गरमी अधिक बढ़ जाती है। तापक्रम धीरे धीरे न बढ़ कर एक साथ बढ़ जाता है। इस कारण गेहूँ ठीक तरह से न पक कर झुलस जाता है। यही नहीं मार्च और एप्रिल में उत्तर भारत में गर्म शुष्क तेज़ हवा चलती है जिससे गेहूँ के पौधे को हानि पहुँचती और कभी कभी ओले और तूफान भी आते हैं जिससे फसल को बहुत हानि पहुँच जाती है।

भारतवर्ष में प्रति एकड़ उपज बहुत कम होती है। प्रति एकड़ यहाँ ६६० पौंड गेहूँ उत्पन्न होता है। ब्रिटेन, बैलजियम, तथा डैनमार्क में एक एकड़ में यहाँ से तीन गुना गेहूँ उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ उपज संयुक्तराज्य अमेरिका कनाडा तथा अन्य नये देशों से भी कम है। संसार में गेहूँ की उत्पत्ति की दृष्टि से भारतवर्ष का चौथा स्थान है। किन्तु भारतवर्ष का अधिकांश गेहूँ यहीं खप जाता है। विदेशों को बहुत कम गेहूँ भेजा जाता है। हाँ अन्तर् प्रान्तीय व्यापार अवश्य होता है। पंजाब, सिंध, संयुक्तप्रान्त तथा मध्यप्रान्त में गेहूँ बंगाल, राजपूताना तथा बम्बई को जाता है। बम्बई और राजपूताने में वहाँ की आवश्यकता को दृष्टि से गेहूँ कम उत्पन्न होता है। बंगाल में कलकत्ते में गेहूँ की बहुत माँग रहती है क्योंकि वहाँ उत्तर भारत राजपूताने के गेहूँ खाने वाले लोग बहुत रहते हैं। विदेशों को जो थोड़ा बहुत गेहूँ भेजा जाता है वह करांची से जाता है और विशेषतः ब्रिटेन को जाता है। यहाँ से थोड़ा सा गेहूँ का आटा अरेबिया, पूर्वी अफ्रीका तथा स्टेट सैटिलमेंट को जाता है।

भारत के प्रान्तों में गेहूँ की उत्पत्ति

(१६३१ में)

प्रान्त	क्षेत्रफल (१००० एकड़ों में)	उत्पत्ति (१००० टनों में)
पंजाब	११,४७१	४२००
संयुक्त प्रान्त	७,८००	२७७७

मध्यप्रान्त	३,३१८	६७३
बम्बई	१,८२७	३०१
बिहार	१,०१८	४३३
सीमाप्रान्त	१०२८	२६८
सिंध	११५५	३६८
मध्यभारत	११७६	३८४
राजपूताना	१४११	४१५
ग्वालियर	१६६२	३८१
हैदराबाद	१३५५	२००
कुल भारत	३५,६३५	१०,७८०

चना (Gram)

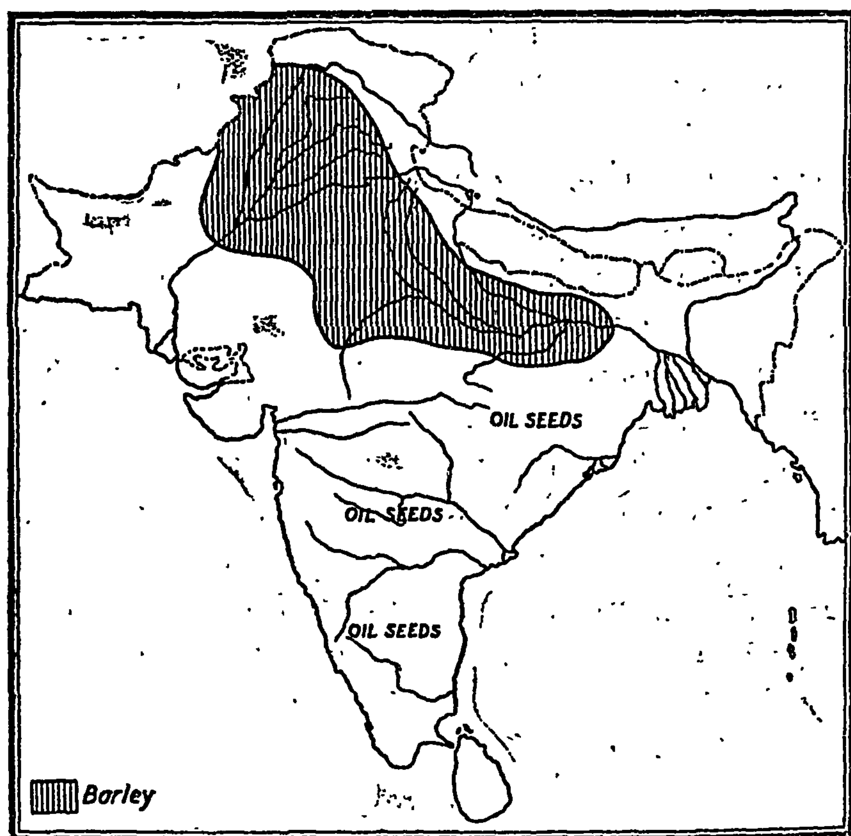
चना भारतवर्ष का महत्वपूर्ण अनाज है। यह लगभग एक करोड़ पचास लाख एकड़ पर उत्पन्न किया जाता है। यह भी रबी की फसल है। गेहूँ, जौ तथा सरसों के साथ मिलाकर अधिकतर बोया जाता है। चने को अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती। अतएव जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं है अथवा मिट्टी बहुत अच्छी नहीं है उस पर यह जौ के साथ उत्पन्न किया जाता है। चना और जौ गेहूँ उत्पन्न करने वाले प्रदेश में निर्धनों का मुख्य भोजन है। संयुक्तप्रान्त में सबसे अधिक चना उत्पन्न होता है। देश का आधा चना संयुक्तप्रान्त में ही पैदा किया जाता है। चना उत्पन्न करने के लिए किसान को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता और न अधिक खाद या सिंचाई का ही प्रबंध करना पड़ता है परन्तु चना बहुत सस्ता बिकता है अतएव किसान चना या जौ उसी दशा में बोता है जबकि वह यह देख लेता है कि उसके खेत पर गेहूँ उत्पन्न नहीं हो सकता। संयुक्तप्रान्त के अतिरिक्त पंजाब, बिहार, मध्यप्रान्त तथा दक्षिण प्रायद्वीप में भी चना उत्पन्न होता है। अधिकांश चना देश में ही खप जाता है। बहुत थोड़ा बाहर भेजा जाता है।

जौ (Barley)

जौ भी निर्धनों का भोजन है और चने के साथ अधिकतर उत्पन्न किया जाता है। जौ को भी अच्छी भूमि और पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती। भारतवर्ष में लगभग पैंसठ लाख एकड़ भूमि पर जौ उत्पन्न होता है। देश का दो तिहाई जौ संयुक्तप्रान्त में उत्पन्न होता है। थोड़ा सा जौ वैसे उन सभी प्रान्तों में उत्पन्न होता है जहाँ गेहूँ उत्पन्न होता है।

यह अनाज वास्तव में देश की अधिकांश जनसंख्या का मुख्य खाद्य पदार्थ है। ज्वार लगभग दो करोड़ पंद्रह लाख एकड़ में उत्पन्न होता है। बाजरा एक करोड़ तीस लाख एकड़ भूमि पर तथा रागी पैंतीस लाख एकड़ पर उत्पन्न होती है। यह अनाज देश के अनाजों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका महत्व केवल इसलिए ही नहीं है कि देश की अधिकांश जनसंख्या इन पर निर्वाह करती है वरन इनका महत्व चारे की दृष्टि से भी बहुत अधिक है। यह मोटे अनाज अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि पर जो कि रेतीली या पथरीली हो अधिकतर उत्पन्न होते हैं। प्रायद्वीप में यह अनाज बहुत अधिक उत्पन्न होते हैं। पूर्व में यह अनाज कम उत्पन्न होते हैं।

ज्वार-बाजरा-रागी (Millets)

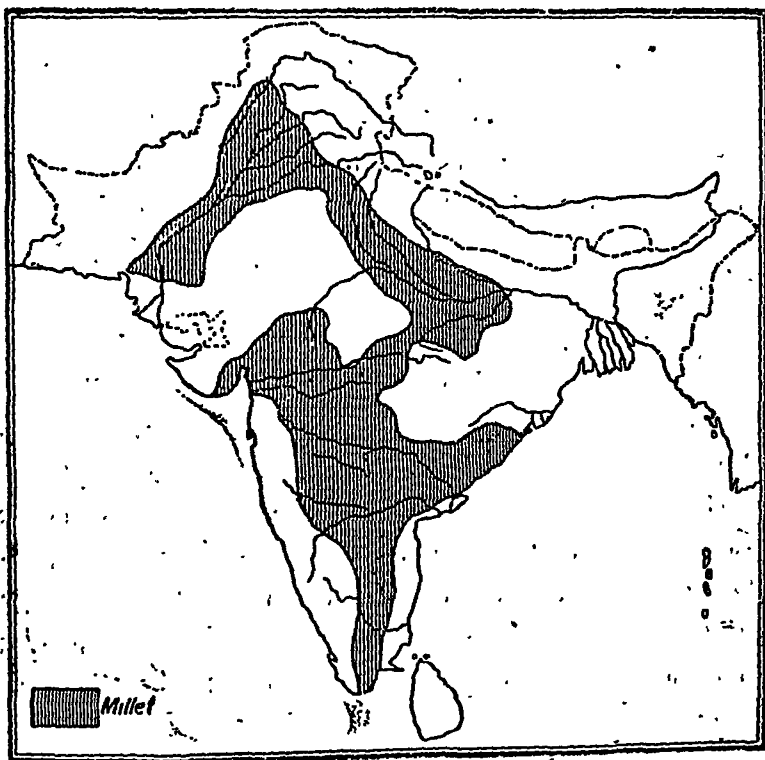


ज्वार बाजरा की अपेक्षा अधिक नमी और अधिक चिकनी मिट्टी चाहती है। बाजरा तो रेतीली मिट्टी में खूब होता है। जहाँ वर्षा खरीफ में चावल उत्पन्न नहीं होता वहाँ ज्वार-बाजरा अवश्य उत्पन्न किया जाता है। बाजरा,

पंजाब, राजपूताना तथा मध्य भारत में बहुत उत्पन्न होता है। इन अनाजों को बाहर नहीं भेजा जाता और न अधिक अन्तर प्रान्तीय व्यापार ही होता है क्योंकि वह स्थानीय उपभोग के लिए ही उत्पन्न किये जाते हैं।

मक्का (Maize)

मक्का भी भारतवर्ष में मोटा अनाज समझा जाता है। मक्का लगभग साठ लाख एकड़ भूमि पर उत्पन्न की जाती है। मक्का के लिए उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है। इस कारण इसकी अधिकतर पैदावार संयुक्तप्रान्त, पंजाब, दक्षिण राजपूताना में होती है। कुछ वर्षा हो जाने के उपरान्त यह बोई जाती है और वर्षा समाप्त होते ही काट ली जाती है। यदि वर्षा देर से हो अथवा बीच में बहुत दिनों तक वर्षा न हो तो फसल



को हानि पहुँचती है। भारतवर्ष में मक्का खाने के उपयोग में ही लाई जाती है। मक्का का भूसा इतना कड़ा होता है कि वह चारे के उपयोग का नहीं होता।

भारतवर्ष में ज्वार, बाजरा, रागी, मक्का मिलाकर बोई जाती है। उनके साथ ही उर्द, मूंग, अरहर इत्यादि दालें भी उत्पन्न की जाती हैं। यह दालें खाद्य पदार्थ तो हैं ही इनसे एक लाभ यह भी है कि यह भूमि को उपजाऊ बनाती हैं। अरहर, उर्द, मूंग, खरीफ में उत्पन्न की जाती और चना, मटर, तथा मसूर रबी में उत्पन्न की जाती है। अरहर पकने में अधिक समय लेती है। भारतवर्ष में दालों का विशेष महत्व है क्योंकि भारतीयों के भोजन का दालें एक आवश्यक अंग है। इनमें प्रोटीन अधिक होती है। चना को भी मिलाकर भारतवर्ष में लगभग चार करोड़ अस्सी लाख एकड़ भूमि पर दालें उत्पन्न होती हैं। भारतवर्ष में ही अधिकांश दाल खप जाती है इस कारण बहुत कम बाहर भेजी जाती है।

दालें (Pulses)

भारतवासी अधिकांश शाकाहारी हैं। वे मांस नहीं खाते। इस दृष्टि से भारतवर्ष में भोजन की दृष्टि से सब्ज़ी तथा फलों का यथेष्ट महत्व है। फिर भी भारतवासी अन्य देशों की तुलना में कम सब्ज़ी और फल खाते हैं। क्रमशः देश में सब्ज़ी और फलों की अधिकाधिक माँग बढ़ रही है। जैसे जैसे लोग सब्ज़ी और फलों के स्वास्थ्य-वर्धक गुणों को समझते जायेंगे वैसे ही वैसे उनकी मांग बढ़ती जायेगी। सब्ज़ी और फलों की पैदावार के लिए उपजाऊ भूमि, यथेष्ट खाद, और जल की आवश्यकता होती है। सब्ज़ी अधिकतर बड़े बड़े शहरों और कस्बों के समीप ही उत्पन्न की जाती है और स्थानीय माँग को पूरा करती है। किसी स्थान पर आवश्यकता से अधिक सब्ज़ी उत्पन्न होती है तो रेलों और मोटरों द्वारा अन्य ज़िलों को भेज दी जाती है। किन्तु शीघ्र ही माल भेजने की कठिनाइयाँ, सब्ज़ी और फलों के शीघ्र नष्ट हो जाने की सम्भावना, शीत भंडार (Cold Storage) की सुविधा का न होना, तथा मार्ग की कमी यह कुछ ऐसे कारण हैं जिनके फलस्वरूप अभी भारतवर्ष में फलों की खेती उन्नति नहीं कर सकी है। परन्तु धीरे धीरे फलों की खेती बढ़ती जा रही है इसमें तनिक भी संदेह नहीं। फल तथा सब्ज़ी भारतवर्ष में लगभग पचास लाख एकड़ भूमि पर उत्पन्न होते हैं।

सब्ज़ी-फल (Fruits)

भारतवर्ष के प्रमुख फल आम, केला, नारियल, नारंगी, नीबू, सेब, नासपाती और अंगूर हैं। आम अधिकतर बंगाल, बिहार और संयुक्तप्रान्त में उत्पन्न होता है। सिंचाई की सहायता से पंजाब में भी आम के बाग लगाये गये हैं। गंगा की घाटी के बाहर बम्बई प्रान्त में आम अधिक होता है।

कोनकन में आम बहुतायत से उत्पन्न होता है जहाँ से आम बाहर भेजा जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य प्रान्तों में आम होता ही नहीं। दक्षिण राजपूताना, मध्यप्रान्त तथा मध्य भारत में बहुत थोड़ा आम होता है। आम की फसल गंगा की घाटी में एक महत्वपूर्ण फसल है। आम के दिनों में गाँव के लोगों के भोजन का आम एक महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है। आम रेलों तथा मोटरों द्वारा अन्य प्रान्तों को भेजा जाता है। कुछ वर्षों से थोड़ा सा आम ब्रिटेन को भी जाने लगा है। दक्षिण भारत में केला और नारियल बहुत उत्पन्न होता है। मालाबार तथा कारोमंडल तट के प्रदेश में नारियल और केला बहुत अधिक होता है। बंगाल में भी केला और नारियल उत्पन्न होता है।

नारंगी भारतवर्ष में प्रत्येक प्रान्त में उत्पन्न होती है परन्तु कुछ स्थानों में विशेष रूप से उत्पन्न की जाती है। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:— नागपूर के आस पास की भूमि, सिलहट, सिक्किम और बुतवाल (हिमालय के निचले भाग में)। कुछ वर्षों से पंजाब तथा संयुक्तप्रान्त के हिमालय के निचले भागों में फलों की खेती तेज़ी से बढ़ रही है और नारंगी भी उत्पन्न की जा रही है।

सेव काश्मीर, कांगडा और कुलू (पंजाब में) तथा कुमायूं की ठंडी तथा सूखी घाटियों में बहुत उत्पन्न होता है। क्रमशः सेव की पैदावार इन घाटियों में बहुत तेज़ी से बढ़ रही है। भारतवर्ष भर को यहीं से सेव जाता है। अंगूर पेशावर के समीपवर्ती प्रदेश से आता है।

आलू उत्तरी भारत में बहुत अधिक खाया जाता है। यह आसाम, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, पंजाब तथा दक्षिण में बहुत उत्पन्न होता है। इसको सिंचाई की बहुत आवश्यकता है। योरोप के कतिपय देशों में यह महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है। इसका आटा तैयार किया जाता है; किन्तु यहाँ तो उसका साग के रूप में ही उपयोग होता है।

गन्ने

गन्ने के लिए गंगवार उपजाऊ भूमि अधिक गर्मी और अधिक जल की आवश्यकता है। भारतवर्ष में गन्ना मार्च या एप्रिल में बोया जाता है और दिसम्बर, जनवरी, फरवरी और मार्च में फसल काटी जाती है। शक्कर के व्यवसाय को संरक्षण (Protection) दे देने का परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में बहुत से शक्कर के कारखाने स्थापित हो गए और गन्ने की खेती बहुत तेज़ी से बढ़ गई। जहाँ सन् १९२९-३० में केवल २९ लाख एकड़ पर गन्ना उत्पन्न किया गया वहाँ अब ४० लाख एकड़ पर गन्ना उत्पन्न किया जाता

है। गन्ने की खेती मध्य गंगा की घाटी में सबसे अधिक होती है। भारतवर्ष में सबसे अधिक गन्ना संयुक्तप्रान्त में (५४%) उत्पन्न होता है। पंजाब (१५%) और बिहार (१०%), संयुक्तप्रान्त के उपरान्त सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करते हैं। ये तीनों प्रान्त देश का तीन चौथाई गन्ने से भी अधिक उत्पन्न करते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ नदियों द्वारा लाई हुई उपजाऊ मिट्टी प्रति वर्ष बिछती रहती हैं, वर्षा अच्छी होती है और सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं।

भारतवर्ष में प्रति एकड़ गन्ने की पैदावार जावा और क्यूबा की तुलना में बहुत कम होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ भूमि को यथेष्ट खाद नहीं मिलती। यही नहीं जावा इत्यादि ऊष्ण कटिबंध के द्वीपों का गन्ना मोटा होता है। उसमें रस बहुत होता है। क्योंकि वहाँ वर्षा लगातार होती है। इस कारण रस अधिक होता है। भारतवर्ष का गन्ना पतला होता है और उसमें रस भी कम होता है क्योंकि यहाँ वर्षा लगातार नहीं होती। अब लगभग सभी प्रान्तों में कोयम्बटूर का गन्ना पाया जाता है। यह देशी गन्ने से बहुत अच्छा होता है।

संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार के अतिरिक्त बंगाल (७%) मदरास (४%) तथा बम्बई (२%) में भी गन्ना उत्पन्न होता है। बंगाल में क्रमशः जूट की पैदावार कम की जा रही है और उसके स्थान में गन्ने की खेती बढ़ाई जा रही है। इस समय शक्कर के धंधे के सामने भी भयंकर समस्या उपस्थित हो गई है। आवश्यकता से अधिक शक्कर मिलें तैयार करती हैं। सरकार शक्कर की उत्पत्ति को घटाने का प्रयत्न कर रही है। इसका प्रभाव गन्ने की खेती पर भी पड़ेगा।

गन्ने का क्षेत्रफल

संयुक्तप्रान्त	१,६१०,०००	एकड़
बिहार	३७५,०००	,,
पंजाब	२५४,०००	,,
बंगाल	२१६,०००	,,
मदरास	६८,०००	,,
बम्बई	७१,०००	,,
कुल भारत	२,११३,०००	,,

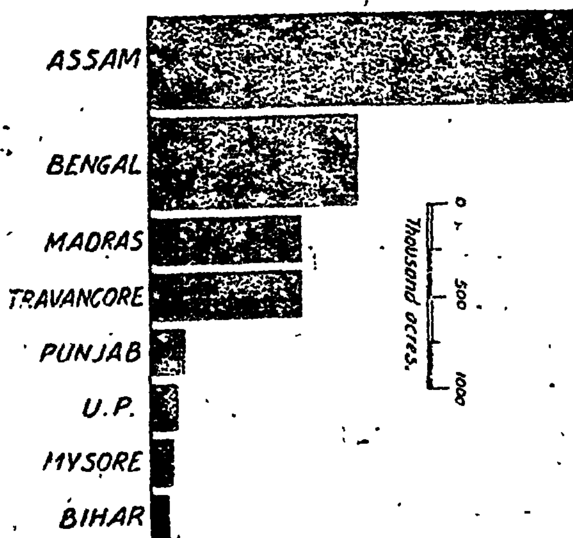
खजूर का वृक्ष बंगाल, मध्यप्रान्तमध्य भारत तथा मदरास में पाया जाता है। इसके रस से भी शक्कर तैयार की जाती है। एक खजूर (Date) वृक्ष से प्रतिवर्ष एक मन गुड़ प्राप्त होता है। गुड़ से

शक्कर तैयार की जाती है। जशौर में गुड़ से शक्कर बनाने का आधुनिक ढंग का एक कारखाना है। वैसे खजूर के गुड़ से शक्कर बनाने का धंधा अधिकतर पुराने ढंग से ही होता है। फसल के दिनों में खजूर के वृक्ष में खाँचे बनाकर उसमें मटके बाँध दिये जाते हैं। रात्रि में रस इकट्ठा हो जाता है। जिसे कड़ाहों में औट कर गुड़ बनाया जाता है।

उत्तेजक पेय पदार्थ (Stimulants)

चाय (Tea)

भारतवर्ष संसार में सबसे अधिक चाय उत्पन्न करता है। किन्तु चाय के बाग कुछ पहाड़ी स्थानों पर ही पाये जाते हैं। आसाम की ब्रह्मपुत्र तथा सुर्मा घाटी तो चाय की खान ही हैं। भारतवर्ष की ६० प्रतिशत से अधिक चाय इन्हीं दो घाटियों में उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त बंगाल के दार्जलिंग और जलपायगुरी ज़िलों में भी चाय बहुत उत्पन्न होती है। उत्तर भारत में थोड़ी सी चाय पंजाब, संयुक्तप्रान्त तथा बिहार के पहाड़ी ढालों पर भी होती है। दक्षिण भारत में ट्रावंकोर तथा कोचीन राज्य तथा नीलगिरी, मालाबार तथा कोयम्बटूर में भी चाय बहुतायत से उत्पन्न होती है। दक्षिण के इन चाय के



बागों में देश की १९% चाय उत्पन्न की जाती है। आसाम और बंगाल के पहाड़ी ढालों पर देश की समस्त उत्पत्ति की तीन चौथाई चाय उत्पन्न होती है।

भारत में अधिकांश चाय के बाग २००० से ५००० फ़ीट की ऊँचाई पर हैं। सुर्मा की घाटी में चौरस ज़मीन पर भी चाय के बाग लगाये गए



हैं। वहाँ पानी इकट्ठा नहीं होता। किन्तु चौरस मैदान पर उत्पन्न की गई चाय बहुत बढ़िया नहीं होती। चाय के वृक्ष को सलफेट-आव अमोनिया (Sulphate of ammonia) की खाद की बहुत आवश्यकता होती है। चाय का वृक्ष प्रति वर्ष छाँट दिया जाता है और उसकी कटी हुई डालों को गड़हे में दाब कर उसकी खाद बनाई जाती है। इस प्रकार बनी हुई खाद का भी चाय के बागों में बहुत उपयोग होता है। क्रमशः भारतवर्ष में छायेदार वृक्षों को चाय के बागों में लगाना आरम्भ कर दिया गया है क्योंकि साये में चाय का वृक्ष अधिक पत्ती उत्पन्न करता है। भारतवर्ष में केवल पंजाब में कांगड़ा की घाटी में हरी चाय (Green tea) तैयार होती है और अन्य स्थानों पर काली चाय (Black tea) तैयार की जाती है। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि चाय की पत्ती को तैयार

करने की विधि में भिन्नता होने से ही हरी और काली चाय तैयार होती हैं। प्रकृति से पत्ती हरी ही होती है।

पिछले वर्षों में भारतवर्ष में चाय की उत्पत्ति बहुत अधिक बढ़ गई। भारतीय चाय का मुख्य बाज़ार ब्रिटेन है किन्तु वहाँ चाय पर बहुत अधिक चुंगी लगा दी गई है। अन्य देशों में भारतीय चाय को प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है। अतएव १९३३ से भारतवर्ष में चाय की उत्पत्ति को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है और देश में चाय की खपत बढ़ाने के लिए अनवरत प्रचार किया जा रहा है। चाय की उत्पत्ति को कम करने की नीति अपनाने का परिणाम यह हुआ है कि घटिया बाग छोड़ दिये गये हैं और अन्य बागों में अधिक पत्ती उत्पन्न करने वाले वृक्ष लगाये जा रहे हैं। इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य में कम क्षेत्रफल में अधिक चाय उत्पन्न हो सकेगी। इस समय चाय के बागों के मालिक इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि कम भूमि पर अधिक चाय उत्पन्न करके उत्पादन व्यय को कम किया जाय साथ ही बढ़िया चाय तैयार की जाय।

भारतवर्ष में चाय की पैदावार ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रयत्नों से आरम्भ हुई। आरम्भ से ही अंग्रेज़ी पूंजीपतियों ने सारे चाय के बागों को अपने हाथ में ले लिया। आज भी चाय का धंधा सोलह आने अंग्रेज़ पूंजीपतियों के हाथ में है। कुछ वर्षों से चाय के धंधे की हालत बहुत अच्छी नहीं है।

कहवा (Coffee)

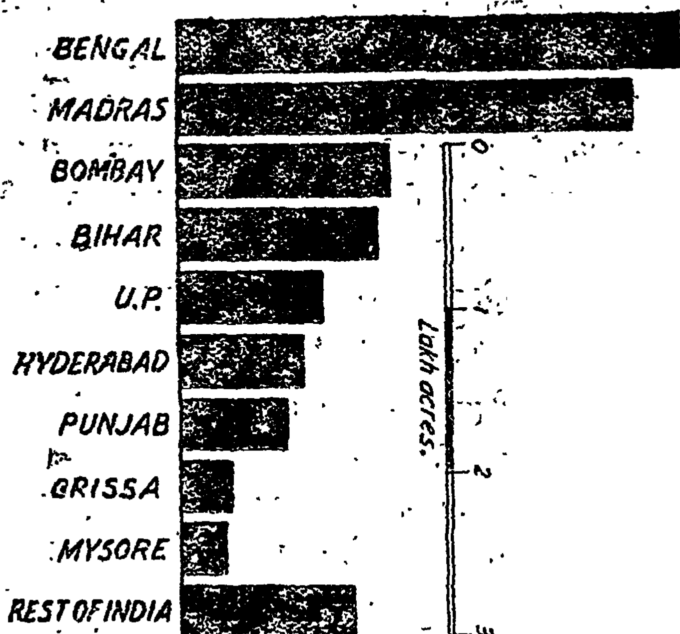
कहवा उत्पन्न करने वाले देशों में भारतवर्ष का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। यहाँ कहवा विशेष कर दक्षिण में ही उत्पन्न होता है। मैसूर, ट्रावंकोर, कोचीन राज्यों और मदरास और कुर्ग में कहवा उत्पन्न होता है। देश की आधी से अधिक कहवा उत्पन्न करने वाली भूमि केवल मैसूर राज्य में है और २२% भूमि मदरास तथा कुर्ग में है। प्रति एकड़ सबसे अधिक कहवा कोचीन में उत्पन्न होता है और सबसे कम मैसूर में। भारतीय कहवा ब्रिटेन और फ्रांस को भेजा जाता है।

तम्बाकू (Tobacco)

तम्बाकू भारतवर्ष की एक महत्वपूर्ण फसल है। संसार के तम्बाकू उत्पन्न करने वाले देशों में भी भारत का स्थान ऊँचा है। पृथ्वी की सम्पूर्ण तम्बाकू की उत्पत्ति का पाँचवाँ भाग भारतवर्ष उत्पन्न करता है। भारतवर्ष में तम्बाकू का सर्वत्र प्रचार है। इसका उपयोग पीने, खाने और सूँघने में बहुत होता है इस कारण अधिकांश तम्बाकू देश में ही खप जाती

है। फिर भी भारतवर्ष से प्रतिवर्ष काफी तम्बाकू की पत्ती विदेशों में भेज दी जाती है।

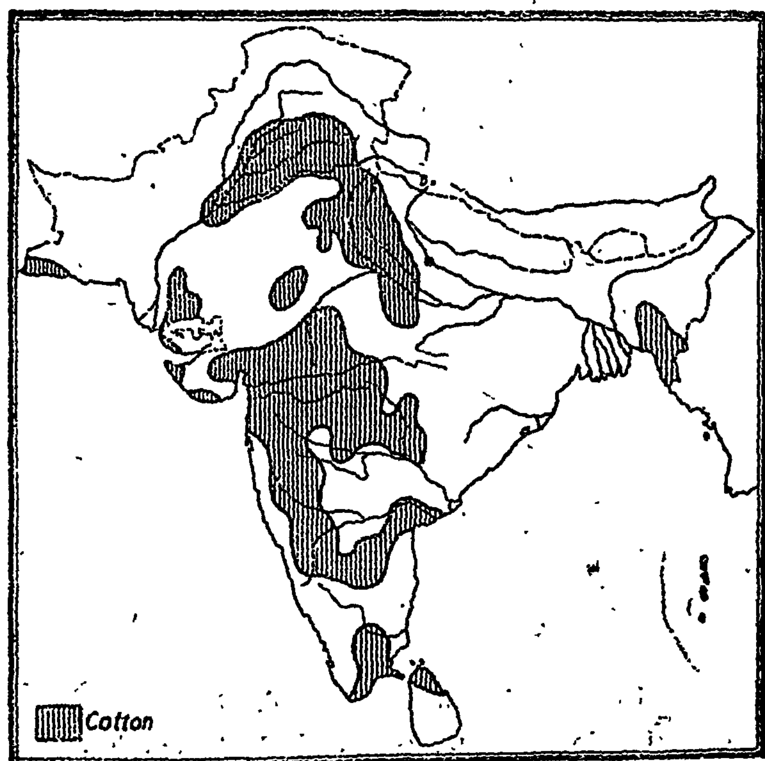
भारतवर्ष में बंगाल और मदरास में तम्बाकू बहुत होती है परन्तु संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, मध्यभारत, तथा गुजरात में भी इसकी अच्छी पैदावार होती है। फसल तैयार होने पर पत्तियों को काट लिया जाता है और फिर छाया में सुखा कर पत्तियों को बाज़ार में बेचा जाता है।



तम्बाकू को कूट कर उसमें शीरा मिलाकर हुक्के के लिए तम्बाकू तैयार की जाती है। यहाँ बीड़ियों का भी बहुत प्रचार है। मध्यप्रान्त, मध्य भारत, तथा मदरास में, बीड़ी बनाने का धंधा बहुत पनप गया है। मध्यप्रान्त तथा मदरास में बीड़ी बनाने के बड़े बड़े कारखाने हैं किन्तु जहाँ भी पलास मिलता है वहाँ ही वह धंधा छोटे रूप में चलता है। कुछ वर्षों से यहाँ सिगरेट और सिगार बनाने के आधुनिक ढंग के कारखाने भी स्थापित हो गए हैं। अधिकतर यह धंधा मदरास प्रान्त में केन्द्रित है। डिंडीगुल, मदरास, त्रिचनापोली, कोकोनडा, कालीकट तथा पांडे-चेरी में सिगार और सिगरेट के कारखाने स्थापित हो गए हैं। इन कारखानों के स्थापित हो जाने से विदेशों से बहुत कम सिगरेट और सिगार आते हैं। परन्तु भारत की तम्बाकू बढ़िया न होने के कारण सिगरेट और सिगार भी बहुत बढ़िया नहीं बनते इस कारण विदेशों से अब भी सिगरेट और सिगार आते हैं।

अफीम अफीम की खेती के लिए उपजाऊ भूमि तथा अधिक जल की आवश्यकता है। अफीम अक्टूबर में बोई जाती है और मार्च में इकट्ठी की जाती है। शुरू से आखीर तक फसल को सींचना होता है। किसानों को सारी अफीम सरकार को बेंचनी पड़ती है। चीन को अफीम भेजना जब से बंद कर दिया गया तब से भारतवर्ष में अफीम की खेती बहुत कम रह गई। अब तो थोड़ी सी अफीम संयुक्तप्रान्त, विहार, बंगाल, मध्यभारत के देशी राज्यों में उत्पन्न की जाती है। अधिकांश अफीम दवाई के लिए विदेशों को भेज दी जाती है।

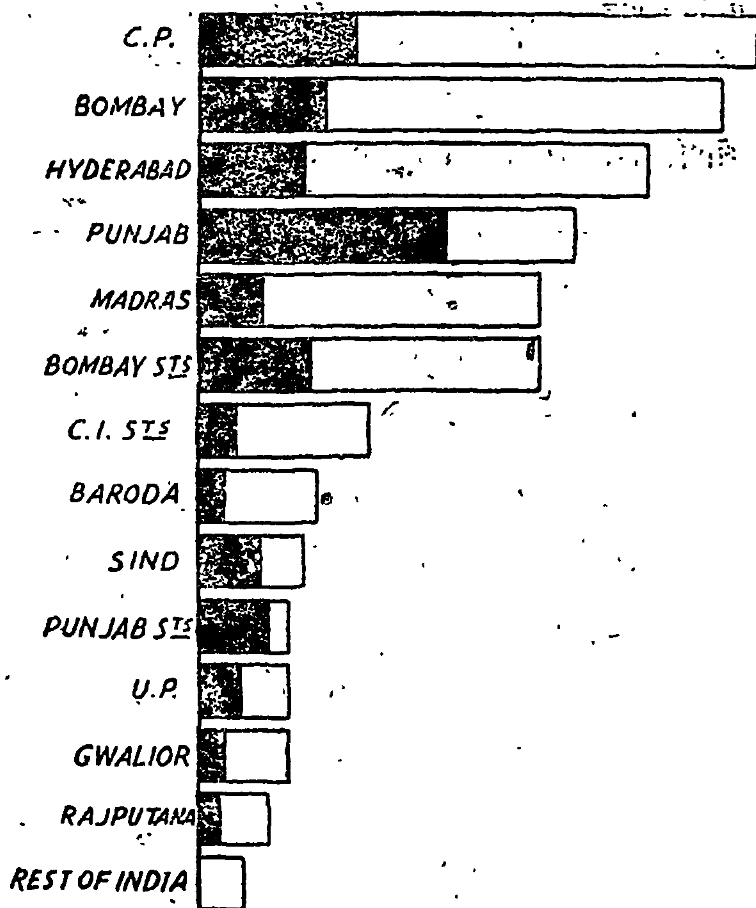
औद्योगिक कच्चा माल (Industrial Raw Materials)



कपास (Cottn) भारतवर्ष की फसलों में कपास सबसे महत्वपूर्ण है। यही नहीं कि यहाँ की मिलों में कपास की खपत होती है और उससे कपास के किसान को रुपया मिलता है वरन प्रतिवर्ष ३० करोड़ रुपए से ऊपर की कपास भारतवर्ष से

विदेशों में मुख्यतः जापान को भेजी जाती है। किसान के लिए कपास की खेती रुपया प्राप्त करने का एक मुख्य साधन है।

भारतवर्ष में लगभग दो करोड़ दस लाख एकड़ भूमि पर कपास की खेती होती है। यदि कपास को उत्पन्न करने वाले प्रदेशों पर नजर डाली जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि देश की अधिकांश कपास उन प्रदेशों में



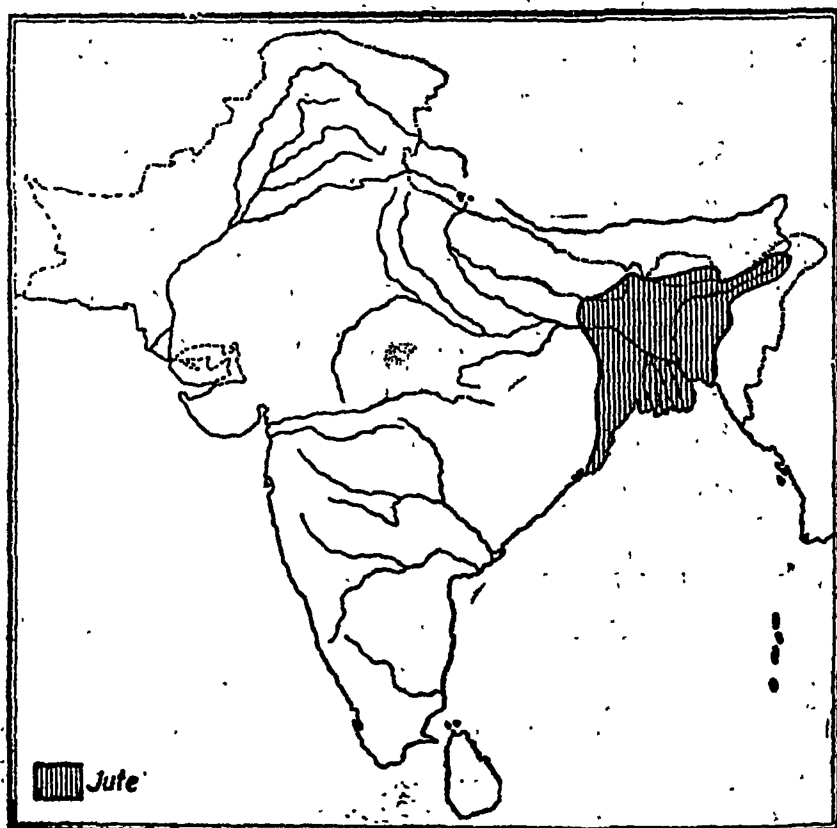
उत्पन्न होती है जहाँ कि काली कपास वाली मिट्टी मिलती है। देश की दो तिहाई से अधिक कपास बम्बई, मध्यप्रान्त और मदरास प्रान्तों में उत्पन्न होती है। बम्बई में भड़ौच और खानदेश, मध्यप्रान्त में बरार, और मदरास में तिनेवली कपास उत्पन्न करने के प्रमुख क्षेत्र हैं। उत्तर में पंजाब, सिंध और संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी भाग में भी कपास अच्छी उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त मालवा तथा दक्षिण राजपूताने में भी कपास की खेती होती है। काली कपास वाली मिट्टी कपास की खेती के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

काली मिट्टी की विशेषता यह है कि वह उपजाऊ होने के साथ ही साथ गहरी है और जल को सुरक्षित रखने का उसमें प्रधान गुण है। कपास के लिए अधिक जल की आवश्यकता नहीं होती और काली मिट्टी के प्रदेशों में साधारण वर्षा ही होती है। यही नहीं इन प्रदेशों में अधिक गरमी भी नहीं होती और यहाँ पाला कभी नहीं पड़ता। इस कारण यह प्रदेश कपास की खेती के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं।

देश में भिन्न भिन्न जातियों की कपास उत्पन्न होती है। किन्तु भारतीय कपास साधारणतया छोटे फूल वाली और घटिया होती है। देशी कपास में भड़ौच की कपास सबसे अच्छी है। भड़ौच की कपास सबसे अच्छी और लम्बी होती है। इसके अतिरिक्त कपास ओमरास बरार में, धोलेरास गुजरात में, धारवार बम्बई प्रान्त के दक्षिण में तथा बंगाल-उत्तर भारत में उत्पन्न होती हैं। इन सबों में बंगाल जाति की कपास सबसे घटिया है। वैसे देशी कपास सभी घटिया और छोटे फूल वाली होती है। कृषि विभागों ने विदेशों की बढ़िया कपास तथा देशी कपास के संसर्ग से अच्छी बढ़िया कपास उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। इनमें मदरास के दक्षिण पूर्व में उत्पन्न होने वाली कम्बोडिया कपास तथा पंजाब-अमेरिकन पजाब की मुख्य हैं। देश में वस्त्र व्यवसाय की उन्नति के साथ साथ बढ़िया कपास की माँग बढ़ती जा रही है। इस कारण प्रत्येक प्रान्त में इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि बढ़िया कपास उत्पन्न की जाये। क्योंकि बहुत बढ़िया कपड़ा घटिया कपास के सूत से उत्पन्न नहीं किया जा सकता। घटिया कपास से मोटा सूत ही काता जा सकता है। पिछले वर्षों में भारतीय वस्त्र मिलों ने बढ़िया साड़ियाँ तथा अन्य बारीक कपड़ों को अधिकाधिक बनाना शुरू कर दिया है। इस कारण बढ़िया कपास की विशेष माँग हो गई है। भारतीय मिलों को कपास मिश्र से मंगानी पड़ती है। भविष्य में भारतीय वस्त्र व्यवसाय की उन्नति बहुत कुछ इस बात पर निर्भर रहेगी कि भारतवर्ष बढ़िया कपास यथेष्ट उत्पन्न कर सकेगा या नहीं।

सिंध में सक्खर के बाँध के बन जाने से भविष्य में लम्बे फूल वाली कपास उत्पन्न होने की सम्भावना है। कृषि विभाग ने यह योजना बनाई है कि तीन लाख एकड़ का एक चक केवल बढ़िया कपास उत्पन्न करने के लिए छोड़ दिया जाय। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में कृषि विभाग अच्छी कपास उत्पन्न कराने के लिए अच्छे बीज किसानों को देता है। यही नहीं सरकार ने Cotton Transport Act बना कर घटिया कपास को उन प्रदेशों में आने से रोक दिया है जहाँ की कपास अच्छी है।

भारतवर्ष में प्रति एकड़ कपास की पैदावार बहुत कम अर्थात् ९० पौंड के लगभग है। जिन प्रदेशों में सिंचाई की सुविधा है वहाँ प्रति एकड़ कपास अधिक उत्पन्न होती है और जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं है वहाँ कपास बहुत कम उत्पन्न होती है। परन्तु भारतवर्ष में अधिकांश कपास की फसल सींची नहीं जाती क्योंकि जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ कपास अधिक नहीं होती। काली कपास वाली मिट्टी के प्रदेश में कपास की फ़सल सींची नहीं जाती। पंजाब, संयुक्तप्रान्त, सिंध तथा दक्षिण पूर्वी मदरास में अधिकतर



कपास की फसल सींची जाती है। किन्तु उत्तर का जलवायु कपास के लिए उतना उपयुक्त नहीं है जितना कि प्रायद्वीप का। भारतवर्ष की अधिकांश कपास बाहर भेजी जाती है। किसी किसी वर्ष तो ६० प्रतिशत कपास बाहर भेज दी जाती है। भारतीय मिलें सब कपास को नहीं खपा सकतीं। जापान भारतीय कपास का प्रमुख ग्राहक है। जापान के अतिरिक्त जर्मनी, बैलजियम और फ्रांस भी भारतीय कपास को मंगाते हैं।

संसार में भारतवर्ष ही ऐसा देश है जो जूट उत्पन्न करता है। यह

जूट (jute) भी अधिकांश जूट बंगाल की ही देन है। देश भर में लगभग उन्नीस लाख एकड़ पर जूट उत्पन्न होता है जिसमें से १६ लाख एकड़ भूमि केवल बंगाल में है। शेष बिहार, आसाम और उड़ीसा में है। बंगाल और आसाम में जूट की पैदावार अधिकतर ब्रह्मपुत्र की घाटी में होती है। बात यह है कि जब ब्रह्मपुत्र में बाढ़ आती है तो उसके द्वारा लाई हुई उपजाऊ मिट्टी खेतों पर बिछ जाती है. जिससे प्रतिवर्ष उनकी उत्पादन शक्ति बढ़ती रहती है। जूट की फसल भूमि को शीघ्र ही कमज़ोर कर देती है। ब्रह्मपुत्र नद प्रतिवर्ष भूमि को उर्वरा बनाता रहता है। इसी कारण जूट की पैदावार मैमनसिंह, ढ़ाका, पाबना, रंगपूर. तथा बोगरा ज़िलों में जो ब्रह्मपुत्र के समीप हैं अधिक होती है। ब्रह्मपुत्र केवल भूमि को उर्वरा ही नहीं बनाती वरन जूट को सड़ाने के लिए भी उसका पानी उपयुक्त है जो कि अत्यन्त आवश्यक है। उत्तर बंगाल में प्रति एकड़ सबसे अधिक जूट (४०० पौंड) उत्पन्न होता है।

जूट केवल भारतवर्ष में ही उत्पन्न होता है। इसीसे कनवैस, टाट, बोरा तथा अन्य वस्तुयें बनती हैं। यही कारण है कि कपास की तरह यह भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यापारिक फसल है और बंगाल के किसान को इसी के द्वारा रुपया प्राप्त होता है। परन्तु कुछ वर्षों से जूट की माँग में कमी हो गई इस कारण जूट के कारखानों तथा जूट के किसानों को कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। जूट की माँग के कम हो जाने के तीन मुख्य कारण हैं। (१) ऐसे विशेष प्रकार के जहाज़ बन गए हैं जो केवल खेती की पैदावार को ही ले जाते हैं। इस कारण जूट के बोरों की आवश्यकता नहीं पड़ती (२) १६२६ से १६३६ तक संसार व्यापी मंदी रही, तिजारत बहुत कम हो गई, इस कारण भी जूट की माँग बहुत कम हो गई। हाँ लड़ाई के कारण जूट की माँग कुछ बढ़ी है किन्तु यह अस्थायी है। जूट की माँग कम हो जाने से जूट का भाव बहुत गिर गया। कृषि विभाग पिछले वर्षों से लगातार यह प्रयत्न कर रहा है कि बंगाली किसान जूट की खेती कम करके कपास और गन्ने की अधिक खेती करे। अतएव भविष्य में जूट के खेतों पर गन्ना और कपास उत्पन्न की जायेगी। इस प्रकार जूट की उत्पत्ति में कमी हो जायेगी।

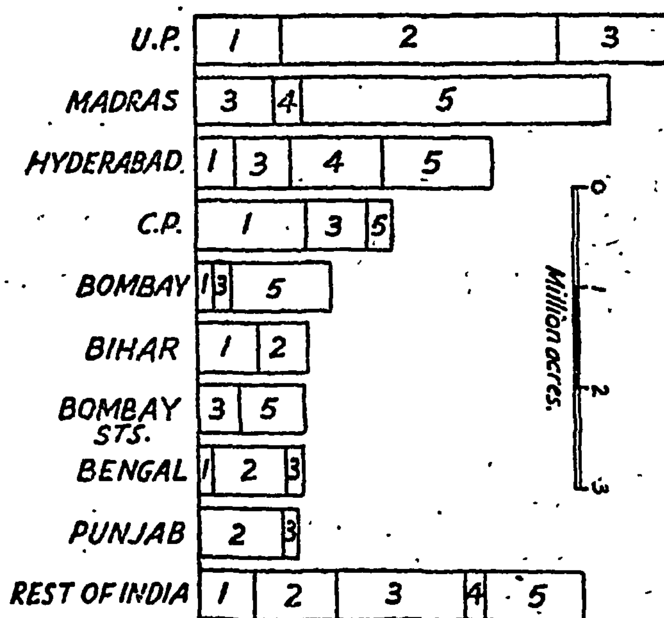
भारतवर्ष आधे से अधिक जूट विदेशों को भेज देता है। आधे से कम भारतीय मिलों में खप जाता है। ब्रिटेन (डंडी) जर्मनी, फ्रांस, इटली और संयुक्तराज्य अमेरिका भारतीय जूट के मुख्य ग्राहक हैं।

जूट उत्पन्न करने वाला क्षेत्र

बंगाल	२,५०४,०००	एकड़
बिहार	२६५,०००	,,
उड़ीसा	२३,०००	,,
आसाम	२८१,०००	,,

सन

जहाँ जूट उत्पन्न नहीं हो सकता वहाँ सन उत्पन्न होता है। बम्बई, मदरास और मध्यप्रान्त में सन बहुतायत से उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त, पंजाब और बंगाल में भी इसकी पैदावार होती है। सन का उपयोग रस्सी, जाल और कागज़ बनाने में होता है। भारतवर्ष में सन भी बहुत अच्छी जाति का नहीं होता है, क्योंकि यहाँ सन के बीज की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है। सन की विशेषता यह है कि बीज और छिलके की अच्छी पैदावार एक ही पौधे से नहीं हो सकती। जो बीज छिलका



अधिक और अच्छा उत्पन्न करेगा वह बीज अधिक उत्पन्न नहीं कर सकता और जो बीज अधिक उत्पन्न करेगा वह छिलका अधिक और अच्छा उत्पन्न नहीं कर सकता।

तिलहन

भारतवर्ष तिलहन उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य है। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का तिलहन यहाँ से विदेशों को मुख्यतः फ्रांस को जाता है। सरसों, लाही, सन का बीज, बिनौला, तिल, अंडी और मूंगफली यहाँ के मुख्य तिलहन हैं। इनके अतिरिक्त नारियल और महुआ के फलों से भी तेल निकाला जाता है।

सरसों बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और संयुक्तप्रान्त में बहुतायत से उत्पन्न होती है। अधिकतर यह गेहूँ और जौ के साथ उत्पन्न होती है। यह सबसे महत्वपूर्ण तिलहन है।

सन का बीज (देखो सन)

तिल की खेती कम उपजाऊ भूमि पर होती है। तिल की पैदावार लगभग प्रत्येक प्रान्त में होती है।

अंडी की पत्ती पर अंडी (रेशम) के कीड़े पाले जाते हैं। इसके तेल से साबुन तथा मशीनों को चिकना करने वाले तेल तैयार किये जाते हैं। इसका तेल औषधि के रूप में भी उपयोगी है। इसकी पैदावार उत्तर भारत में अधिक होती है।

मूंगफली के लिए रेतीली भूमि और सूखा जलवायु चाहिए। इसकी पैदावार दक्षिण में बहुत होती है। पश्चिमीय भारत में भी मूंगफली की खेती बढ़ती जा रही है। यह अधिकतर फ्रांस को भेजी जाती है। मूंगफली को न तो सिंचाई की आवश्यकता है और न इसकी खेती में अधिक परिश्रम ही करना पड़ता है।

बिनौला कपास का बीज होता है (देखो कपास)

नारियल की पैदावार दक्षिण में बहुत होती है। भारतवर्ष से प्रतिवर्ष बीस लाख गैलन नारियल का तेल विदेशों मुख्यतः इङ्गलैंड को भेजा जाता है। नारियल की जटाओं के रस्से बनते हैं जो विदेशों को भेजे जाते हैं। नारियल भी बहुत बड़ी संख्या में विदेशों को भेजे जाते हैं।

महुआ का वृक्ष तराई के प्रदेश, मध्य भारत और बंगाल के उस भाग में उत्पन्न होता है जहाँ वर्षा कम होती है। इसकी शराब भी बनाई जाती है। गुठली का तेल निकाला जाता है।

भारतवर्ष अधिकतर तिलहन ही बाहर भेजता है, तेल नहीं भेजता क्योंकि तेल का धंधा यहाँ अभी उन्नत नहीं हुआ है।

रबर (Rubber)

भारतवर्ष में संसार की समस्त उत्पत्ति की केवल २ प्रतिशत रबर उत्पन्न होती है। रबर मुख्यता दक्षिण में उत्पन्न होती है। मद्रास, कुर्ग, मैसूर, ट्रावंकोर, और कोचीन मुख्यतः रबर उत्पन्न करते हैं।

रबर की उत्पत्ति

ट्रावंकोर में	६०	प्रतिशत
मद्रास	१०	,,
कोचीन	८	,,
कुर्ग	२	,,

भारतीय रबर के बागों में ३०,००० मजदूर काम करते हैं। भारतीय रबर मुख्यतः विदेशों को भेजी जाती है। भारत की रबर विशेष कर ब्रिटेन, सीलौन, हालैंड, स्ट्रेटसैटिलमेंट और जर्मनी को जाती है। कोचीन के बंदरगाह से ही सारी रबर बाहर जाती है।

पशु-पक्षी मछलियाँ तथा रेशम

मनुष्य का पशु-पक्षी तथा अन्य जन्तुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुत सी वस्तुओं के लिए तो हम पशु-पक्षियों पर नितान्त निर्भर हैं। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने कुछ पशु पक्षियों को पालतू बनाया जिनका उपयोग हम आज भी करते हैं। हमारे पूर्वजों ने बहुत पहले ही इस बात को समझ लिया था कि केवल शिकार पर भोजन के लिए निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं है। अतएव उन्होंने घास खाने वाले पशुओं को पाल कर उनकी नस्ल को उत्पन्न करना शुरू किया क्योंकि घास खाने वाले पशु कैद में रहकर भी फलते फूलते हैं और स्वभाव से हिंसक नहीं होते। बाद को मनुष्य ने पशुओं का उपयोग अन्य उत्पादक कार्यों में भी करना शुरू कर दिया। अब हम यहाँ भारतवर्ष के उन पशुओं के विषय में लिखेंगे जिनका आर्थिक महत्व है।

गाय और बैल

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है जहाँ का किसान छोटे छोटे खेतों पर खेती करता है। अस्तु यहाँ कृषि यंत्रों का अधिक उपयोग नहीं हो सकता। और न बिजली और स्टीम का ही अधिक उपयोग हो सकता है। यही कारण है कि यहाँ खेती के लिए बैल अत्यन्त आवश्यक पशु है। खेत जोतने से लेकर फसल को मंडी ले जाने तक सारी क्रियायें बैल की सहायता से ही होती हैं। भारतवर्ष में २१ करोड़ के लगभग गाय-बैल हैं। संसार में इतने अधिक

गाय-बैल किसी भी देश में नहीं हैं। पृथ्वी के एक तिहाई गाय-बैल इस देश में हैं (सब देशों के गाय बैलों की संख्या ६६ करोड़ है)।

यद्यपि भारतवर्ष में गाय को पूज्य मानते हैं और गाय तथा बैल दूध और खेती के लिए आवश्यक हैं फिर भी इनकी नस्ल इतनी बिगड़ गई है जिसका कुछ ठिकाना नहीं। कुछ नस्लों को छोड़कर शेष गाय और बैल इतने निर्बल और खराब हैं कि वे अधिक उपयोगी नहीं रहे हैं।

साधारण भारतीय गाय दिन में सेर भर दूध देती है जबकि डेनमार्क में साधारण गाय १८ सेर से कम दूध नहीं देती। १६ सेर प्रति दिन से कम दूध देने वाली गाय को डेनमार्क में पालना लाभदायक नहीं समझा जाता और वह मांस के कारखानों को बेंच दी जाती है। साधारण भारतीय बैल भी इतना छोटा और निर्बल होता है कि वह भारी हल तथा अच्छे यन्त्रों को खींच ही नहीं सकते। यद्यपि देश में गौवंश का अत्यधिक ह्रास हो गया है किन्तु फिर भी कुछ नस्लें अब भी बची हुई हैं जो अच्छी हैं। मैसूर का अमृतमाल, धन्नी-पंजाब और सीमाप्रान्त में, गिर काठियावाड़ तथा पश्चिमी राजपूताने में, हरियाना और शाहीवाल-पंजाब में, काकरेज-सिंध का, और आंगलो मदरास का देश की अच्छी नस्ले हैं।

हिन्दोस्तान में पशुओं की नस्ल के बिगड़ने के मुख्य तीन कारण हैं (१) चारे की कमी, (२) अच्छे साड़ों की कमी और रद्दी साड़ों से नस्ल पैदा कराना (३) पशुओं की चिकित्सा का ठीक प्रबंध न होना, देश में पशुओं की महामारी का प्रकोप।

भैंस

हिन्दोस्तान में गाय की नस्ल इतनी बिगड़ गई है कि वह दूध देने योग्य नहीं रही। भैंस ने उसका स्थान ले लिया है। गाय खेती के लिए बैल उत्पन्न करने के लिए ही पाली जाती है। भैंस के दूध में घी अधिक होता है किन्तु भैंसे का खेती में उपयोग नहीं होता। इस कारण उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता और न कोई उसे अच्छी तरह खिलाता ही है। हाँ भैंसे का उपयोग बोझा ढोने में अवश्य होता है। भारतवर्ष में ६ करोड़ के लगभग भैंस और भैंसे हैं।

बकरी

बकरी गरीबों की गाय है। वह हर एक चीज़ खा लेती है इस कारण उसको पालने में खर्च बहुत कम होता है। जितनी चरागाह की भूमि पर एक गाय रह सकती है उस पर बारह बकरियाँ निर्वाह कर सकती हैं। बकरों का मांस

के अतिरिक्त और कोई उपयोग नहीं होता। हाँ पहाड़ी जाति के बकरे रेशम के समान मुलायम ऊन उत्पन्न करते हैं।

घी-दूध का धंधा (Dairy Industry)

भारतवर्ष जैसे देश में जहाँ बहुत सी जन संख्या माँस नहीं खाती दूध सब उम्र के स्त्री-पुरुषों और बच्चों के लिए सबसे अधिक पौष्टिक भोजन है। देश के लिए दूध का इतना अधिक महत्त्व होते हुए भी देश में दूध का अकाल है। गाँवों में साधारण किसान को अपने कुटुम्ब के लिए दूध नहीं मिलता। शहरों में भी ठीक दामों में अच्छा दूध नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण यह है कि गाय तो बहुत कम दूध देती है, दूध देने वाला जानवर भैंस है किन्तु गाय को पालना इसलिए आवश्यक है क्योंकि वह बैल उत्पन्न करती है। साधारण किसान गाय बैल दोनों को ही नहीं पाल सकता इस कारण वह बिना दूध के रहता है। जिन किसानों की दशा अच्छी होती है वह भैंस पालते हैं और घी बेंचते हैं। इसका फल यह होता है कि गाँवों में दूध का अभाव रहता है और घी महत्वपूर्ण धंधा बन गया है।

भारतवर्ष में दूध की उत्पत्ति ८० करोड़ मन वार्षिक है। ८० करोड़ मन दूध का मूल्य लगभग ३ अरब रुपये होता है। संसार में संयुक्तराज्य अमेरिका को छोड़ कर अन्य किसी भी देश में इतना दूध उत्पन्न नहीं होता। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यहाँ दूध खूब होता है। संसार में प्रति मनुष्य पीछे यहाँ प्रति दिन सबसे कम दूध उत्पन्न होता है। भिन्न भिन्न देशों में प्रति मनुष्य पीछे प्रति दिन दूध की उत्पत्ति इस प्रकार है:—न्यूजीलैंड २४४ औंस, डेनमार्क १४८ औंस, कनाडा ६६ औंस, संयुक्तराज्य अमेरिका ३७ औंस, जर्मनी ३४ औंस, ब्रिटेन १४ औंस, फ्रांस ३३ औंस और भारतवर्ष में ८ औंस। ध्यान रहे कि ब्रिटेन इत्यादि देशों में मक्खन इत्यादि दूध की वस्तुयें बहुत बड़ी राशि में बाहर से आती हैं। इस कारण वहाँ प्रति दिन प्रति मनुष्य पीछे दूध का उपभोग उत्पत्ति से अधिक होता है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में प्रति दिन प्रति मनुष्य पीछे १४ औंस दूध उत्पन्न होता और ३९ औंस का उपभोग होता है। भारतवर्ष में प्रति दिन प्रति मनुष्य पीछे केवल ७ औंस का उपभोग होता है।

डाक्टर नार्मन राइट ने हिसाब लगाया है कि इस ८० करोड़ मन में से लगभग ५२ प्रतिशत दूध का घी बनता है। १५ प्रतिशत का खोया, दही इत्यादि बनता है और शेष पीने के काम में आता है। भारतवर्ष में

मक्खन का बड़े बड़े शहरों के अतिरिक्त कहीं माँग नहीं है। साथ ही यहाँ मक्खन के धंधे की उन्नति करने में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। जहाँ छावनियाँ हैं वहीं बड़ी बड़ी डेयरी हैं नहीं तो अधिकतर नगरों में या तो पास वाले गाँवों से दूध आता है या शहर में रहने वाले ग्वाले अपनी गाय-भैंसों का दूध बेंचते हैं। मक्खन का धंधा तो देश में नाम मात्र को ही होता है। कुछ मक्खन विदेशों से आता है। घी बनाना देश का महत्वपूर्ण धंधा है किन्तु घी में मिलावट इतनी अधिक होने लगी है कि यदि किसी प्रकार इसको न रोका गया तो घी के धंधे को भयंकर धक्का लगेगा।

भारतीय किसान वर्ष में ४ से ६ महीने बेकार रहता है। यदि दूध, घी और मक्खन के धंधे को सहकारी समितियों के द्वारा सगठित किया जाय तो गाँवों में यह धंधा चमक उठे और किसान की आय बढ़ जाये।

मांस का धंधा

हिन्दोस्तान में एक बहुत बड़ी जनसंख्या धार्मिक भावना के कारण मांस नहीं खाती। जो जातियाँ मांस खाने से परहेज नहीं करतीं उन्हें भी मांस खाने को बहुत कम मिलता है। बात यह है कि कोई भी घनी आबादी वाला देश अधिक मांस उत्पन्न नहीं कर सकता। योरोप के घने आबाद देश नई दुनिया से मांस मँगा कर खाते हैं। निर्धन भारतीय विदेशों से मांस मँगा कर नहीं खा सकता। यही कारण है कि यहाँ मांस का धंधा महत्वपूर्ण नहीं है। बड़े बड़े शहरों और छावनियों के केन्द्रों में मांस का धंधा अवश्य होता है।

भेंड़ (ऊन का धंधा)

भेंड़ शीतोष्ण कटिबन्ध का जानवर है वहाँ यह खूब फलती फूलती है। बहुत गरम प्रदेशों में ऊन खराब हो जाता है। वास्तव में भेड़ पहाड़ी प्रदेश का जानवर है। वह पहाड़ों पर ही अपना भोजन प्राप्त कर लेती है। इस दृष्टि से भेंड पालने का धंधा बहुत सस्ता है क्योंकि इसके लिए वह भूमि खराब नहीं करनी पड़ती जो कि खेती के काम की हो।

भारतीय भेड़ें खराब नस्ल की हैं। भारतवर्ष में मदरास, काश्मीर तथा हिमालय के अन्य भाग, और पंजाब में ऊन उत्पन्न होता है। भारतीय भेंड बहुत कम और घटिया ऊन उत्पन्न करती हैं। एक भेंड यहाँ वर्ष भर में दो पौंड से अधिक ऊन उत्पन्न नहीं करती। हिमालय प्रदेश में एक बकरा मिलता है जिसका बाल ऊन के समान होता है। राजपूताना, सिंध, और बलूचिस्तान में भी ऐसे बकरे मिलते हैं जो कि ऊन के समान बाल उत्पन्न करते हैं।

भारतवर्ष में फारस, अफगानिस्तान, तिब्बत, नैपाल और आस्ट्रेलिया

से ऊन आता है। आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त और सब देशों से खुश्की के रास्ते ऊन आता है, क्वेटा, शिकारपूर, अमृतसर, और मुलतान ऊन की मुख्य मंडियाँ हैं। आस्ट्रेलिया का ऊन बहुत अच्छा होता है। उसकी खपत ऊनी कपड़े के कारखानों में ही होती है।

भारत में ऊनी कपड़ों की मिलों का वितरण

बम्बई	३
थाना	१
बड़ौदा	१
राजपूताना	३
बंगलौर	१
बैलारी (मदरास)	१
श्रीनगर	१
धारीवाल	१
अमृतसर	१
कानपूर	१
मिर्ज़ापूर	१
भागलपूर	१
ढाका	१
	१७

युद्धकाल में दो ऊनी मिलों की स्थापना संयुक्तप्रान्त में और हुई है किन्तु अभी वे खड़ी नहीं हो सकी हैं।

रेशम के कीड़े पालने का धंधा

भारतवर्ष में चार तरह के रेशम के कीड़े पाये जाते हैं। रेशम (जो शहतूत की पत्ती पर रहता है) टसर, अंडी और मूंगा।

रेशम के कीड़ों को दो तरह से पाला जाता है। एक बाहर पेड़ों पर दूसरे मकानों के अन्दर कमरों में। जब रेशम का कीड़ा रेशम उगल कर ककून (cocoon) बना लेता है तो यह ककून इकट्ठे कर लिए जाते हैं। और किसान इन्हें बेच देते हैं।

रेशम के कीड़े के लिए शहतूत की पत्ती अत्यन्त आवश्यक है। काश्मीर से लेकर आसाम तक हिमालय के साथ साथ शहतूत का वृक्ष जङ्गली अवस्था में पैदा होता है और उस पर जङ्गली रेशम का कीड़ा मिलता है। बंगाल, मैसूर और काशमीर में शहतूत के बड़े बड़े बाग लगाये गए हैं। हिन्दोस्तान

में शहतूत की पत्तियों की फसल बहुत अच्छी होती है। एक बार पेड़ लगा देने के उपरान्त फिर उसकी अधिक देख भाल करने की ज़रूरत नहीं रहती। वर्ष में दो बार पत्तियों की फसल होती है—फरवरी-मार्च और अक्टूबर नवम्बर में। हर तीसरे साल वृक्ष को कलम कर दिया जाता है जिससे और भी अधिक पत्तियाँ निकलें।

ककून इकट्ठा कर लेने पर उन्हें भाप दी जाती है फिर रीलिंग (Reeling) अर्थात् रेशम के तार को निकालने की क्रिया की जाती है। भारतवर्ष में कीड़े की नस्ल खराब हो गई है। इसके अतिरिक्त भाप देने तथा रीलिंग की क्रिया भी आधुनिक ढंग से नहीं की जाती। इस कारण भारतवर्ष का रेशम घटिया होता है। मैसूर तथा काशमीर राज्य विदेशों से अच्छे रेशम के कीड़े मंगवा कर रेशम के धंधे की उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

विदेशों में भारतीय रेशम की बहुत कम पूँछ होती है। विदेशी व्यापारी भारत से रेशम मँगाने के बजाय ककून मँगाना अधिक पसंद करते हैं। क्योंकि यहाँ रीलिंग खराब होता है। यहाँ तक कि हिन्दोस्तान के रेशम बुनने वाले भी चीन, जापान और इटली के रेशम को काम में लाते हैं। इन देशों से प्रति वर्ष बहुत सा रेशम भारतवर्ष में आता है।

आसाम और बंगाल सरकारों ने भी अपने अपने प्रान्तों में इस धंधे की उन्नति करने का प्रयत्न किया है। दो स्कूल इस धंधे की शिक्षा देने के लिए खोले गए हैं। मैसूर राज्य ने जापान से और काशमीर ने फ्राँस से रेशम के कीड़े पालने के विशेषज्ञ बुलाये हैं जो उक्त राज्यों में इस धंधे की उन्नति का प्रयत्न कर रहे हैं। काश्मीर में श्रीनगर में एक बहुत बड़ी सिल्क फैक्ट्री है। मुर्शिदाबाद, ढाका, बनारस, तथा शान्तीपूर में हाथ के कर्घों पर रेशम तैयार होता है। परन्तु इस धंधे की दशा बहुत गिरी हुई है। नकली रेशम की प्रतिद्वन्द्विता के कारण इसकी दशा और भी खराब हो रही है।

मछली

भारतवर्ष की नदियों और समुद्र में अच्छी जाति की मछलियाँ पाई जाती हैं। परन्तु इस धंधे की दशा अच्छी नहीं है। इसका कारण यह है कि हिन्दुओं में ऊँची जाति के लोग इस धंधे से घृणा करते हैं। केवल नीची जातियों के लोग ही यह धन्धा करते हैं। उनमें न तो शिक्षा ही होती है और न पूँजी ही होती है। इस कारण वे पुराने ढंग को नहीं छोड़ते। मछलियों को पकड़ने का आधुनिक वैज्ञानिक ढंग उन्हें मालूम ही नहीं है। सरकारी मछली विभाग इस ओर प्रयत्नशील है।

हिन्दोस्तान के पूर्वी प्रान्तों में मछली बहुत खाई जाती है। इन प्रान्तों में मछली की माँग इतनी अधिक है कि वह पूरी नहीं होती। बंगाल में नदियों, तालाबों और झीलों में बहुत मछली उत्पन्न होती है। बंगाल में लगभग ८ लाख आदमी इस धन्धे में लगे हुये हैं। कुछ वर्षों से बंगाल में धीरे धीरे मछलियों की कमी होती जा रही है। बंगाल में समुद्री मछलियाँ बहुत कम पकड़ी जाती हैं। इस समय जो मछलियों की उत्पत्ति कम हो रही है उसका मुख्य कारण यह है कि भागीरथी, जलांगी, मधुमती, मात्रभंगा, तथा गंगा की धारायें रेती से पटती जा रही हैं, इसका प्रभाव झीलों पर भी पड़ता है। तालाबों में मछली पैदा करने का ढंग पुराना और खराब है। मछुआरे छोटी नवजात मछलियों को भी पकड़ लेते हैं इस कारण मछलियाँ कम होती जा रही हैं। बंगाल में हिलसा, रोहू, कटला, भिंग्रेल, प्रान, शम्पस, नदियों में तथा बेकती, और मुलेत, नदियों के मुहाने में मिलने वाली मुख्य मछलियाँ हैं।

समुद्र की मछलियाँ अधिकतर मदरास के समुद्रतट पर पकड़ी जाती हैं। मदरास का १७५० मील लम्बा तट छिछले समुद्र के समीप होने के कारण मछलियों का भण्डार है। मदरास के समुद्रतट पर एक लाख से अधिक मनुष्य इस धंधे में लगे हुये हैं। सारडिन (Sardines) मैकेरेल (Mackarel) ज्यू (Jew) प्रामफ्रेट (Promfret) कैटफिश (Cat-fish) रिबनफिश (Ribbon-fish) गागिल्स (Goggles) और सफ़ेद पेट वाली मछलियाँ (Silver bellies) वहाँ की मुख्य मछलियाँ हैं। सार्डिन तो वहाँ इतनी अधिक पकड़ी जाती है कि उसका उपयोग तेल बनाने और खाद के लिए भी होता है। मदरास मछली विभाग मछली पकड़ने वालों को मछली पकड़ने का आधुनिक ढंग, तेल निकालना, तथा उनको सुरक्षित रखना इत्यादि आवश्यक बातें सिखाता है। इसके लिए मछली विभाग ने स्कूल खोले हैं।

बम्बई के समुद्र तट पर भी बहुत से मछुआरे मछली पकड़ने का धन्धा करते हैं। बम्बई का समुद्र तट अच्छा है और वहाँ मौसम भी अच्छा रहता है, इस कारण वहाँ मछली पकड़ने की अधिक सुविधा है। प्रामफ्रेट (Promfret) सोल (So'es) सी पर्च (Sea Perches) यहाँ की मुख्य मछलियाँ हैं। बम्बई के मछुये अपनी नावों पर एक सप्ताह का खाने का सामान लेकर समुद्र में मछली पकड़ने चले जाते हैं। कभी कभी वे हफ्तों समुद्र पर ही मछली पकड़ते रहते हैं। सिंध में मछलियाँ नदियों में पाई जाती हैं, किन्तु करांची के समुद्र तट पर मछलियाँ अधिक नहीं मिलतीं।

भारतवर्ष की जनसंख्या तेजी से बढ़ती जा रही है किन्तु खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करने में कोई उन्नति नहीं हो रही है। खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली भूमि का क्षेत्रफल कुछ घट ही रहा है बढ़ नहीं रहा है इसका मुख्य कारण यह है किसान महत्त्वपूर्ण व्यापारिक फसलें अधिक उत्पन्न करने लगा है क्योंकि उसको उनके उत्पन्न करने से पैसा अधिक मिलता है। इस कारण भारत में खाद्य पदार्थों का टोटा पड़ गया है और पिछले महायुद्ध ने तो भारत में खाद्य पदार्थों की समस्या को और भी कठिन कर दिया है।

भारत में खाद्य पदार्थों की समस्या (Food Problem of India)

भारत में गेहूँ और चावल दो मुख्य खाद्य पदार्थ हैं। भारत में चावल की औसत वार्षिक उत्पत्ति २५५ लाख टन है किन्तु भारत में २७८ लाख टन चावल की आवश्यकता है। इस प्रकार भारत में प्रतिवर्ष २४ लाख टन चावल की कमी है। पहले यह कमी बर्मा से मंगाकर पूरी की जाती थी किन्तु युद्ध काल में बर्मा से चावल आना बंद हो गया।

जहाँ तक गेहूँ का प्रश्न है भारत की स्थिति बहुत बुरी नहीं है। यदि फसल अच्छी हो तो साधारण वर्षों में भारत में १०० लाख टन की आवश्यकता होती है और लगभग १०१ लाख टन गेहूँ उत्पन्न होता है, किन्तु युद्ध के कारण स्थिति में बहुत अन्तर हो गया है। किसान आज पहले से अधिक गेहूँ खाने लगा है क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति सुधर गई है, साथ ही जो असंख्य फौजें रक्खी गईं उनको भी गेहूँ पर ही रक्खा गया इस कारण गेहूँ की कमी पड़ गई।

सरकार ने इस सम्बन्ध में विज्ञप्ति निकाली है उसके अनुसार चावल और गेहूँ की उत्पत्ति और उसकी आवश्यकता इस प्रकार है :—

चावल (लाख टनों में)

प्रान्त	उत्पत्ति	आवश्यकता	कमी या बचत — या +
बंगाल	१०२·१	८८·७	+ १३·४
सिंध	३·८	३·२	+ ०·६
उड़ीसा	१३·८	१३·४	+ ०·४
मध्यप्रान्त	१२·१	२०·३	— ८·२
संयुक्तप्रान्त	१५·८	२३·१	— ७·३
बम्बई	७·९	१५·१	— ७·२

बिहार	२७.५	३२.४	— ४.९
हैदराबाद	१.०	४.५	— ३.५
आसाम	१४.६	१७.६	— ३.२
मदरास	५०.८	५३.६	— २.८
पंजाब	३.०	३.२	— ०.२
अन्य	३.२	४.०	— ०.८

गेहूँ (लाख टनों में)

प्रान्त	उत्पत्ति	आवश्यकता	कमी या बचत — या +
पंजाब	३९.२	३२.५	+ ६.७
मध्यभारत	७.५	६.६	+ ०.९
संयुक्तप्रान्त	२६.८	२६.०	+ ०.८
सिंध	३.८	३.३	+ ०.५
मध्यप्रान्त	६.६	६.४	+ ०.२
बंगाल	०.५	२.९	— २.४
बम्बई	४.६	७.०	— २.४
राजपूताना	३.८	४.६	— ०.८
बिहार	४.२	४.६	— ०.४
अन्य	२.०	३.१	— १.१
सीमाप्रान्त	२.६	२.६	— •
जोड़	१०१.६	९९.६	+ २.०

भारत में जनसंख्या के बढ़ जाने से जो खाद्य पदार्थों का टोटा हो गया उसको नीचे लिखे उपायों से पूरा किया जा सकता है।

(१) भूमि पर गहरी खेती कराने का प्रयत्न करना। इसके लिए अधिकाधिक खाद का उपयोग करना होगा। गहरी खेती के लिए सिंचाई के साधनों में वृद्धि होने की आवश्यकता है।

(२) खेती की उन्नति वैज्ञानिक ढंग से की जावे जिससे कि प्रति एकड़ भूमि की उपज अधिकाधिक बढ़ाई जा सके। ध्यान रहे इस समय प्रति एकड़ भारत में खेती की पैदावार संसार में सबसे कम है।

(३) नई बंजर भूमि को तोड़ कर उस पर खेती की जावे।

(४) कपास जूट तिलहन इत्यादि फसलों के क्षेत्रफल को सीमित

कर दिया जावे क्योंकि यह अधिकतर विदेशों को भेजी जाती हैं जहाँ प्रतिस्पर्द्धा अधिक है और लाभ कम होता है।

(५) बागों, बंगलों और मकानों में गृह वाटिका लगाने का आन्दोलन आरम्भ किया जाय जिससे लोग घरों में ही सब्ज़ी उत्पन्न कर सकें।

(६) मछलियों की ओर अभी तक इस देश में तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। केवल मदरास में समुद्री मछली के धंधे को वैज्ञानिक ढंग पर संगठित करने का प्रयत्न किया गया है। बंगाल में नदियों और तालाबों में भी बहुत मछली उत्पन्न की जाती है किन्तु बंगाल और बम्बई तट पर समुद्री मछली के धंधे को तनिक भी प्रोत्साहन नहीं दिया गया। यदि मछली के धन्धे का वैज्ञानिक ढंग से संगठन किया जा सके तो मछली की उत्पत्ति को बहुत बढ़ाया जा सकता है।

(७) चारे की पैदावार को बढ़ाने का प्रयत्न किया जावे। चारा उत्पन्न करने वाली फसलें अधिकाधिक उत्पन्न की जावें और घास का अधिक मितव्ययितापूर्वक उपयोग हो तो अधिक दूध उत्पन्न किया जा सकता है।

भोजन की समस्या तभी हल हो सकती है जब सरकार और जनता दोनों पूरा प्रयत्न करें नहीं तो यह समस्या कभी भी सफल नहीं हो सकती।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में खेती की दशा गिरी हुई क्यों है। कारण सहित लिखिए।

२—भारत में गेहूँ और चावल की खेती कहाँ होती है उस पर प्रकाश डालिए।

३—भारत में दूध और घी के धन्धे की क्या दशा है विस्तारपूर्वक लिखिए।

४—नीचे लिखी फसलों के सम्बंध में नोट लिखिए :—चाय, कहवा, रबर।

५—भारत में जूट और कपास की खेती का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

६—एक मानचित्र बनाइये और उसमें चाय, जूट, गेहूँ और कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों को दिखलाइए।

७—भारत में खाद्य पदार्थों की कमी के क्या कारण हैं और खाद्य पदार्थों की कमी को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

८—भारत में गन्ने की खेती का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए और बतलाइए कि गन्ना कहाँ मिलता है।

९—भारत में ऊन और रेशम उत्पन्न करने के धन्धे का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

१०—नीचे लिखी फसलों के सम्बन्ध में एक छोटा लेख लिखिये :—
चाय, कपास, या गन्ना

इक्कीसवाँ परिच्छेद

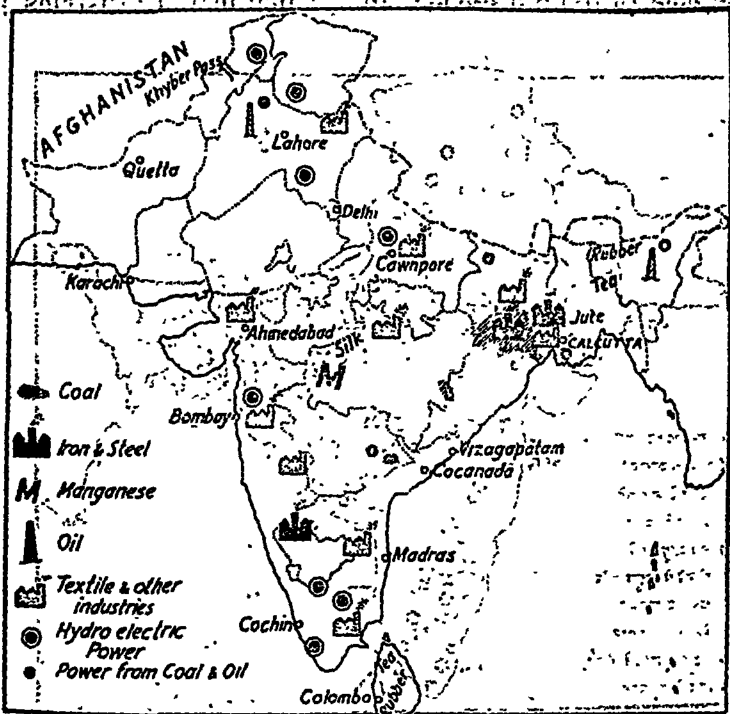
उद्योग-धंधे (Industries)

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। देश की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने के पूर्व भारतवर्ष के धन्धे बहुत अच्छी दशा में थे। भारतवर्ष में वस्त्र व्यवसाय, लोहे का धन्धा, जहाज़ बनाने का धन्धा, लकड़ी का समान इत्यादि धन्धे बहुत उन्नत अवस्था में थे। देश के राजनैतिक पतन के साथ यहाँ ईस्ट इंडिया का प्रभुत्व स्थापित हो गया। ईस्ट-इंडिया कंपनी ने भारतवर्ष के धन्धों को नष्ट करने का जैसा घृणित प्रयत्न किया वह किसी से छिपा नहीं है। इधर ईस्ट-इंडिया कंपनी ने देश के धन्धों को नष्ट करने का प्रयत्न किया उधर इङ्गलैंड की सरकार ने भारतीय वस्त्र पर १५०% चुंगी लगाकर तथा भारतीय जहाजों को टेम्स में न आने देने का नियम बनाकर भारतीय व्यवसाय को गहरा धक्का लगाया। उसी समय इङ्गलैंड में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) हुई और वहाँ बड़े बड़े पुतलीघर और कारखाने स्थापित हुये। अब क्या था भारत सरकार ने मुक्तद्वार (Free Trade) नीति को अपना कर भारतवर्ष को इङ्गलैंड के पुतली घरों में बने हुए तैयार माल का बाज़ार बना डाला। रहे सहे धन्धे भी नष्ट हो गये। भारतवर्ष पूर्णतः कृषिप्रधान देश बन गया।

आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना भारतवर्ष में वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुई। आरम्भ में ईस्ट-इंडिया कंपनी के रिटायर्ड कर्मचारियों तथा ब्रिटिश व्यवसायियों ने ही वस्त्र तथा जूट के कारखाने स्थापित किये। बाद को क्रमशः भारतीय व्यवसायियों ने भी कारखाने स्थापित करना आरम्भ कर दिये। फिर भी आज तक अधिकांश भारतीय धन्धों पर विदेशी पूँजी-पतियों का ही प्रभुत्व है।

आरम्भ में कलकत्ता और बम्बई में कारखाने खोले गये। यही कारण

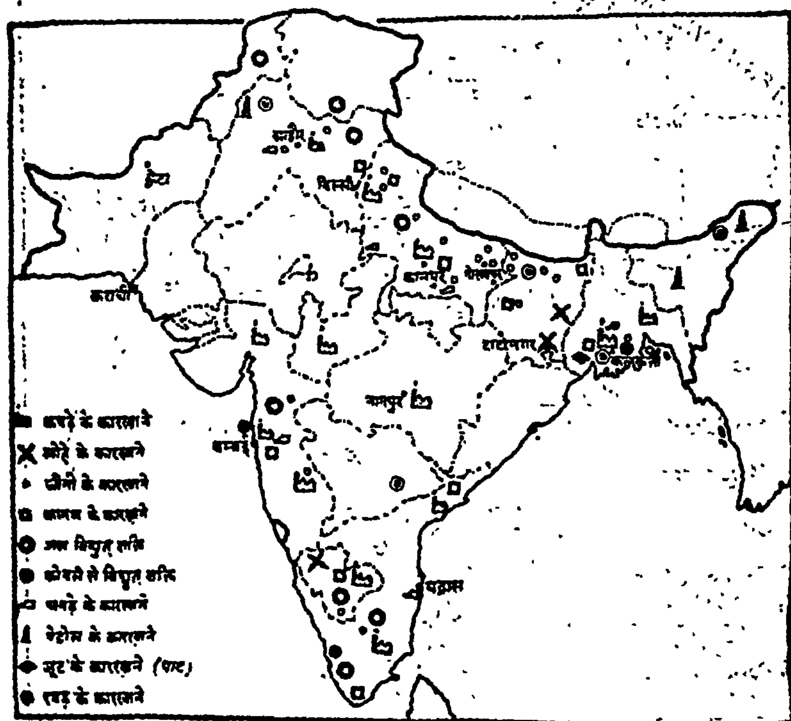
है कि आज भी वे देश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं। बम्बई और कलकत्ता बन्दरगाह थे। इन्हीं व्यापारिक केन्द्रों का पश्चिम से अधिक सम्बन्ध था। देश का कच्चा माल विदेशों को जाने के लिए यहाँ इकट्ठा होता था। रेलवे लाइनों के द्वारा यह व्यापारिक केन्द्र भीतरी भाग से जुड़े हुये थे। रेलवे कम्पनियों ने अत्यन्त दोषपूर्ण किराये की नीति (Rate policy) को अपना रक्खा था। अर्थात् जो माल देश के भीतरी भाग से बन्दरगाह की ओर तथा बन्दरगाह से भीतर की ओर जाता था उस पर कम किराया लिया जाता था। इस नीति का उद्देश्य यह था कि इङ्गलैंड का तैयार माल कम खर्च में आ जाये और भारत का कच्चा माल बाहर चला जाये। इस दोषपूर्ण नीति के कारण सभी कारखाने आरम्भ में बन्दरगाहों में स्थापित हुये।



यद्यपि भारतवर्ष में आधुनिक ढंग के बड़े कारखानों का भी गणेश सन् १८५० के बाद होने लगा था, फिर भी बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक उद्योग-धन्धों की प्रारम्भिक अवस्था थी। १९१४ के योरोपीय युद्ध के आरम्भ होने के समय भारतवर्ष में सूती वस्त्र के कारखानों और जूट के कारखानों के अतिरिक्त अन्य कारखाने स्थापित नहीं हुये थे। सूती वस्त्र के

कारखाने भी बहुत मोटा कपड़ा बनाते थे। अधिकांश वस्त्र बाहर से आता था। योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त लोहा स्टील, सीमेंट, कागज़, दियासलाई, शक्कर, शीशा तथा वस्त्र व्यवसाय की उन्नति शीघ्रता से हुई। किन्तु फिर भी औद्योगिक दृष्टि से भारतवर्ष आज भी बहुत पिछड़ा हुआ है। आज भी भारतवर्ष विदेशों से अधिकतर पक्का माल मँगाता है और कच्चा माल बाहर भेजता है। भारतवर्ष के औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े रहने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

(१) देश का एक विदेशी सरकार के आधीन होना जो कि भारतवर्ष की औद्योगिक उन्नति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि कोण नहीं रखती और न उन्हें प्रोत्साहन देना ही पसंद करती है। (२) भारतवर्ष में यन्त्र बनाने का धंधा तथा रसायनिक धंधे (Chemical Industries)



का न होना। बिना यंत्र बनाने के धंधे तथा रसायनिक धंधों की उन्नति हुये कोई देश औद्योगिक उन्नति नहीं कर सकता क्योंकि अन्य धंधे इन पर निर्भर रहते हैं। यह आधारभूत धंधे (Key Industries) हैं। (३) भारतवर्ष में यथेष्ट उत्तम कोयले की कमी और उसका देश के सुदूर पूर्व में केन्द्रित होना। देश के अधिकांश भाग में कोयला मिलता ही नहीं और

बंगाल तथा बिहार की कोयले की खानों से मँगाने में व्यय बहुत होता है। यही नहीं भारतवर्ष में कोक बनाने योग्य कोयले की बहुत कमी है। इसी कारण भारत में अधिकतर वह धंधे स्थापित किये गये हैं जिनमें कोयले की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए वस्त्र व्यवसाय, जूट, शक्कर, कागज, इत्यादि। (४) भारतवर्ष में औद्योगिक अनुसंधान (Industrial Research) का अभाव। बहुत सा कच्चा माल हमारे यहाँ ऐसा है जिसका औद्योगिक उपयोग क्या हो सकता है हम यह जानते ही नहीं। उदाहरण के लिए कुछ समय पूर्व किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि बाँस से कागज बनाया जा सकता है। (५) भारतवर्ष में कुछ पूंजीपति मैनेजिंग एजेंट हैं जो कि नये कारखाने स्थापित करते हैं। जब वे कोई कंपनी स्थापित करते हैं तो साधारण जनता उनके नाम से प्रभावित होकर हिस्से खरीद लेती है परन्तु एक साधारण व्यक्ति फिर वह चाहे कितनी ही व्यवसायिक योग्यता क्यों न रखता हो यदि कोई कारखाना स्थापित करना चाहे तो उसे पूंजी नहीं मिल सकती। अधिकांश मैनेजिंग एजेंसी फर्में अंग्रेजों की हैं। कुछ भारतीय व्यवसायियों की हैं। जब तक औद्योगिक बैंकों के द्वारा प्रतिभावान व्यवसायिक योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिलता और पूंजी प्राप्त होने में सुविधा नहीं होती तब तक औद्योगिक उन्नति शीघ्रता पूर्वक नहीं हो सकती।

(६) भारतवर्ष में कुशल मजदूरों की कमी भी देश की औद्योगिक उन्नति में एक रुकावट है।

अब हम देश के मुख्य धंधों का संक्षिप्त विवरण लिखेंगे।

सूतीवस्त्र व्यवसाय (Cotton Textile)

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन काल से सूती वस्त्र बनाने के लिए प्रसिद्ध था। ढाका, मुर्शिदाबाद के बने हुये कपड़े योरोपीय राजधानियों में ऊँची कीमत पर बिकते थे। किन्तु ऊपर लिखे हुये कारणों से देश का यह प्रमुख धंधा नष्टप्राय हो गया और भारतवर्ष लंकाशायर और मैंचेस्टर शायर से सूती कपड़ा मँगाने लगा। क्रमशः भारतवर्ष में भी आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित हुये और यह धंधा उन्नति करता गया। सर्व प्रथम १८५१ में श्री कवासजी मनाभाई डावर महोदय ने बम्बई में स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल के नाम से एक सूती कपड़े का कारखाना खोला। लगभग उसी समय एक कारखाना भड़ौच में स्थापित हुआ। इन कारखानों को दो बड़ी सुविधायें थीं एक तो कपास समीप ही थी और बाजार भी समीप ही था जहाँ कपड़े की खपत थी। इस कारण यह सफल हुए। फलस्वरूप

अन्य व्यवसायियों ने भी कारखाने स्थापित करना आरम्भ कर दिये। कुछ वर्षों के ही उपरान्त अहमदाबाद में पहली मिल खुली और धीरे धीरे वहाँ भी मिलों की संख्या बढ़ने लगी। सन् १९१४ में जब प्रथम योरोपीय युद्ध आरम्भ हुआ उस समय देश में २३६ वस्त्र तैयार करने के कारखाने चल रहे थे जिनमें २४०,००० मज़दूर काम करते थे। योरोपीय युद्ध के समय मैंचेस्टर शायर का कपड़ा नहीं आ रहा था। इस कारण भारतीय धंधा खूब चमका। यहाँ तक कि भारतवर्ष समीपवर्ती एशियाई देशों को कपड़ा भेजने लगा किन्तु युद्ध के समाप्त होने पर धंधे को भयंकर परिस्थित का सामना करना पड़ा। जापान और मैंचेस्टर की प्रतिस्पर्द्धा के कारण भारतीय व्यवसाय को घाटा होने लगा। बहुत आन्दोलन के पश्चात् भारत सरकार को विवश होकर धंधे को संरक्षण (Protection) प्रदान करना पड़ा। साथ ही देश में विदेशी वस्त्र बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन के फल स्वरूप भारतीय वस्त्र व्यवसाय को बहुत सहायता और प्रोत्साहन मिला जिससे व्यवसाय खूब चमक उठा।

सूती वस्त्र व्यवसाय देश का सबसे महत्वपूर्ण धंधा है। सूती कपड़े के कारखानों में ५ लाख मज़दूरों से अधिक काम करते हैं। देश के सब कारखानों में जितने मज़दूर काम करते हैं उनके एक चौथाई से अधिक केवल वस्त्र व्यवसाय में लगे हुये हैं। इसी से इस धंधे की महत्ता प्रतीत होती है।

भारतवर्ष के वस्त्र व्यवसाय को दो बड़ी सुविधायें प्राप्त हैं। एक तो कपास भारत में ही उत्पन्न होती है दूसरे भारतवर्ष कपड़े की खपत का बहुत बड़ा बाज़ार है। भारतवर्ष कपड़े की खपत का इतना बड़ा बाजार है कि जिसका ठीक ठीक अनुमान करना भी कठिन है। भारतवर्ष के बाज़ार की विशालता तो इसी से ज्ञात होती है कि यद्यपि जापान और ब्रिटेन से जितना कपड़ा आता वह देश की उत्पत्ति की तुलना में नगण्य है फिर भी ब्रिटिश तथा जापानी कपड़े का भारतवर्ष सबसे बड़ा ग्राहक है।

भारतवर्ष में वस्त्र व्यवसाय के केन्द्र कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में स्थापित हैं। बम्बई सबसे बड़ा वस्त्र व्यवसाय का केन्द्र है। बम्बई कपास की सबसे बड़ी मंडी है। यहाँ से कपास विदेशों को जाती है। अतएव बम्बई की मिलों को कपास मिलने में बहुत सुविधा रहती है। यही नहीं बम्बई को मशीनरी विदेशों से मँगाने की भी सुविधा है, रेल का किराया नहीं देना पड़ता। आरम्भ में यह सुविधायें बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। किन्तु अब बम्बई को कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है। बम्बई में कारपोरेशन टैक्स इत्यादि अधिक हैं। मज़दूरों की मज़दूरी कुछ अधिक है, ज़मीन की बहुत

कमी है और कपड़े के खपत के क्षेत्रों से बम्बई दूर पड़ता है। इसके विपरीत अहमदाबाद, नागपूर इत्यादि केन्द्रों में व्यय कम है। मजदूरी सस्ती है तथा वे कपड़े की खपत के क्षेत्र के बीच में हैं। ऊपर दिये हुए कारणों से बम्बई तथा अन्य केन्द्रों में प्रतिस्पर्द्धा उठ खड़ी हुई है और बम्बई की अपेक्षा अन्य केन्द्रों को सुविधायें अधिक हैं। यही कारण है कि बम्बई की मिलें बढ़िया कपड़े बनाने का विशेष प्रयत्न कर रही हैं।

बम्बई और अहमदाबाद सूती कपड़े के प्रमुख केन्द्र हैं। भारतवर्ष में सूती कपड़े की जितनी मिलें हैं उनकी लगभग आधी इन दो औद्योगिक केन्द्रों में हैं बम्बई और अहमदाबाद की मिलें देश का लगभग आधा सूत और दो तिहाई कपड़ा उत्पन्न करती हैं। इन दो केन्द्रों के अतिरिक्त शोलापूर, नागपूर, कलकत्ता, कानपूर, कोयमंबूटर मदरास भी सूती कपड़े के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त इंदौर ब्यावर, हाथरस, तथा अन्य स्थानों पर जहाँ कपास उत्पन्न होती है सूती कपड़े के केन्द्र स्थापित हो गये हैं।



भारतवर्ष में मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा होता है। भारत का अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ४० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत थोड़ा उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष में अच्छी और लम्बे फूल वाली कपास उत्पन्न नहीं होती। जो बढ़िया लम्बे फूल वाली कपास भारतवर्ष में उत्पन्न होती है उससे ३० से ४० नम्बर तक का सूत तैयार हो सकता है इससे अधिक का नहीं। पंजाब

अमेरिकन कपास का फूस अधिक-लम्बा होता है किन्तु किसान इसमें भी देशी कपास मिला देता है। ४० नम्बर से अधिक बारीक सूत कातने के लिए भारतवर्ष में कपास उत्पन्न ही नहीं होती। अहमदाबाद और बम्बई में जो ४० नम्बर से भी अधिक बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्तराज्य अमेरिका तथा ईजिप्ट की कपास से तैयार किया जाता है। पिछले वर्षों में भारतीय मिलों ने अपनी उत्पत्ति को बेहद बढ़ा लिया है और जितना कपड़ा तथा सूत भारतीय मिलें देश में तैयार करती हैं उसकी तुलना में विदेशों से आया हुआ कपड़ा तथा सूत नहीं के बराबर है। फिर भारतवर्ष में केवल मिलें ही कपड़ा तैयार नहीं करतीं हाथ कर्घे से भी देश की खपत का एक चौथाई कपड़ा तैयार होता है। यदि देश की मिलों तथा हाथ कर्घों से तैयार होने वाले कपड़े को लें तो विदेशों से आने वाला कपड़ा उनकी तुलना में १५% से अधिक नहीं हैं। १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के फलस्वरूप भारतीय व्यवसाय को और भी प्रोत्साहन मिलेगा और भविष्य में भारतवर्ष वस्त्र की दृष्टि से यदि स्वावलम्बी हो जाये तो आश्चर्य न होगा। किन्तु हमारे वस्त्र-व्यवसाय की भावी उन्नति इस बात पर निर्भर रहेगी कि भारतवर्ष में बढ़िया कपास उत्पन्न की जा सकेगी या नहीं। वस्त्र-व्यवसाय के लिये इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि यहाँ बढ़िया कपास उत्पन्न की जाय। इंडियन काटन कमेटी इस दिशा में प्रयत्नशील है।

भारतवर्ष से थोड़ा सा कपड़ा प्रतिवर्ष दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, इराक़, ईरान, और लंका को जाता है। जो कुछ भी कपड़ा विदेशों को जाता है वह बम्बई से ही जाता है। बात यह है कि बम्बई की मिलों को अहमदाबाद, नागपूर, कोयमबटूर तथा कानपूर इत्यादि भीतरी केन्द्रों से प्रतिद्वन्दिता करने में कठिनाई होती हैं। भीतरी केन्द्रों को बहुत सी सुविधायें प्राप्त हैं जो कि बम्बई को प्राप्त नहीं है। अतएव बम्बई की मिलों ने दो बातों की तरफ ध्यान देना शुरू किया है। एक तो बढ़िया और बारीक कपड़ा बनाने दूसरे समीपवर्ती एशियाई देशों में कपड़े को बेंचने का प्रयत्न किया जा रहा है।

भारतीय सूती वस्त्र-व्यवसाय की विशेषता यह है कि इस धंधे पर देशी पूंजीपतियों का प्रभुत्व है। इस धंधे में अधिकांश पूंजी भारतीयों की है और प्रबंध भी भारतीयों के हाथ में है।

भारत में सूती मिलों का वितरण

बम्बई	७८
अहमदाबाद	६०
शोलापूर	११

शेष बम्बई प्रान्त	२६
बम्बई प्रान्त पश्चिम भारत के राज्य	१४
बड़ौदा	१६
सिंध	१
अजमेर	४
राजपूताना के राज्य	११
मध्यभारत के राज्य	१४
नागपूर	७
मध्यप्रान्त के अन्य केन्द्र	१२
हैदराबाद	६
कोयमबटूर	२६
मदूरा	६
मदरास	२
मदरास के अन्य केन्द्र	१२
मदरास प्रान्त के राज्य	२
मैसूर राज्य	२३
फ्रैंच भारत	३
पंजाब	१०
देहली	५
कानपूर	१३
शेष संयुक्त प्रान्त	१०
बिहार	१
बंगाल	२६
	४१६

जूट (Jute) जूट की फसल काट लेने के उपरान्त वह खेत पर ही दो या तीन दिन के लिये छोड़ दी जाती है। फिर उसके बोझ बाँध कर पोखरे और तालाब में सड़ने के लिये पानी में डुबो दिये जाते हैं। भाग्यवश वर्षा के दिनों में बंगाल में साफ और मीठे पानी के तालाबों और पोखरों की कमी नहीं रहती। सड़ाने की क्रिया जुलाई में होती है और लगभग १५ दिन लग जाते हैं। जब पौधा सड़ जाता है तब जूट का रेशा डंठल से छुटा लिया जाता है। उसे धोकर फिर सुखा लेते हैं फिर गांठ बांध कर उसे बेंच देते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जूट को स्थान क्रीमियन-युद्ध के उपरान्त मिला। इस

युद्ध के फलस्वरूप डंडी (स्काटलैंड) के लिनन के धंधे को रूस से सन मिलना बंद हो गया था। उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी ने यहाँ से जूट को भेजना शुरू कर दिया। तभी से भारतीय जूट की माँग बढ़ गई।

भारतवर्ष में सर्व प्रथम सन् १८५५ में श्री आकलैंड महोदय ने सिरामपुर के निकट रिशरा में एक जूट का कारखाना खोला जिसमें जूट की कताई होती थी। १८५९ ई० में कलकत्ते में जूट के कपड़े को तैयार करने के लिये एक कारखाना खोला गया। इसके उपरान्त जूट के कारखाने बहुत तेज़ी से स्थापित होने लगे। किन्तु भारतवर्ष के अधिकांश कारखाने बंगाल में वह



भी कलकत्ते के उत्तर और दक्षिण में हुगली के दोनों ओर केन्द्रित हैं। बंगाल में ९१ मिलें हैं जबकि मदरास में ४, उड़ीसा में ३ और संयुक्तप्रान्त में केवल एक कारखाना है। जूट के कारखानों का बंगाल में केन्द्रित होने का मुख्य कारण यह है कि उत्तर और पूर्व बंगाल में जूट की पैदावार होती है। मिलें हुगली के दोनों किनारों पर स्थित हैं। जूट नदियों अथवा सड़कों के द्वारा इन मिलों में लाया जाता है। साथ ही तैयार जूट का सामान नावों द्वारा कलकत्ते को आसानी से भेज दिया जाता है। यही नहीं इस जूट क्षेत्र के समीप ही कोयला मिलने में कम व्यय होता है।

सन् १९१४ में योरोपीय-महायुद्ध के दिनों में तो जूट के धंधे को आशातीत लाभ हुआ। उस समय जूट के कारखानों में मानों चाँदी बरस रही थी। किन्तु उसके बाद जूट के बुरे दिन आरम्भ हुये। विशेषकर १९२९ से १९३१ तक जो विश्वव्यापी आर्थिक मंदी (Economic Depression) प्रगट हुई उससे तो जूट के धंधे को और भी धक्का लगा, साथ ही खेती की पैदावार को ले जाने के लिये विशेष-प्रकार के जहाज़ भी बन गये। इस कारण बोरों इत्यादि की माँग बहुत कम हो गई। इसका फल यह हुआ कि जूट के कारखानों ने सप्ताह में पाँच दिन काम करके तथा काम के घंटे घटा कर जूट की पूर्ति (Supply) को कम करने का प्रयत्न किया। सन् १९३९ के योरोपीय युद्ध के फलस्वरूप जूट के बोरों तथा कनवैस की माँग फिर बढ़ी है किन्तु यह स्थायी नहीं है।

भारत के जूट के कारखाने अधिकतर जूट का सामान विदेशों को भेजने के लिये तैयार करते हैं। भारतवर्ष में जूट के सामान की खपत कम है। अतएव अधिकांश जूट का सामान विदेशों को विशेषकर संयुक्त-राज्य अमेरिका को भेजा जाता है। भारतीय मिलें बोरों, हैसेन जूट का कपड़ा, कैनवस, सुतरी तथा रस्सी तैयार करके विदेशों को भेजते हैं। सबसे अधिक बोरे तथा जूट का कपड़ा तैयार किया जाता है। कैनवस तथा सुतली बहुत कम तैयार होती है।

सूती कपड़े के धंधे के विपरीत भारतीय जूट के धंधे पर विदेशी पूंजी-पतियों का प्रभुत्व है। भारतीय पूंजी तथा प्रबंध अपेक्षाकृत कम ही है।

लोहा और स्टील (Iron and Steel)

लोहे का धंधा भारतवर्ष में प्राचीन काल में भी उन्नत अवस्था में था। देहली की प्रसिद्ध कीली इस बात का प्रमाण है। आज भी संसार के इने गिने ही कारख़ाने उतने बड़े लोहे के लट्ठे को बना सकते हैं फिर वह लट्ठा हज़ारों वर्ष पुराना है। जिस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का इस देश पर प्रभुत्व हुआ उस समय भी लोहे का धंधा यहाँ गृह-उद्योग-धंधे (Cottage Industry) के रूप में विद्यमान था। सर्व प्रथम १८३० में ईस्ट-इंडिया कम्पनी के एक कर्मचारी कर्नल हीथ ने दक्षिण आर्काट के समीप एक आधुनिक ढंग का लोहे का कारखाना स्थापित किया। किन्तु मदरास प्रान्त लोहे के धंधे के लिए उपयुक्त क्षेत्र नहीं था। इस कारण यह प्रयत्न असफल रहा।

प्रारम्भिक प्रयासों के असफल हो जाने के उपरान्त प्रथम सफल प्रयत्न बंगाल में झरिया के कोयले की खानों के समीप हुआ। यह कारखाना

बारकर-आयरन वर्क्स के नाम से प्रसिद्ध था। इस कारखाने में केवल पिग आयरन तैयार होता था। स्टील बनाने के प्रयत्न असफल रहे क्योंकि विदेशों से आने वाला स्टील बहुत सस्ता था। १९२० में कंपनी ने सिंगभूमि के "पनसिरा बुरा" और "बुदा बुरा" क्षेत्रों से लोहा लेकर अधिक पिग आयरन बनाना प्रारम्भ किया। इसी वर्ष बंगाल आयरन और स्टील कंपनी ने कारखाने को ले लिया और कुल्टी में नया कारखाना स्थापित किया। यह कारखाना अब पहले से दुगना पिग आयरन तैयार करता है।

कुल्टी आयरन वर्क्स कोयले और लोहे के क्षेत्र के समीप ही स्थापित किया गया है। यह दामोदर नदी की शाखा बाराकर नदी पर है। लोहा कोलहन राज्य की खानों से मिलता है और कोयला कुल्टी से दो मील पर स्थित रामनगर की खानों से मिल जाता है। इसके अतिरिक्त झरिया क्षेत्र की जितपूर तथा नूनोदिह खानों से भी कोयला मिलता है। चूने का पत्थर (Lime Stone) गंगपूर के बिसरा नामक स्थान तथा बी० यन० आर पर स्थित पाराघाट और बाराद्वार से आता है। कुल्टी का कारखाना भारतवर्ष का सबसे पुराना कारखाना है।

पिग आयरन तैयार करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण कारखाना बर्नपुर वर्क्स है जो आसनसोल में स्थापित है। इस कारखाने को ई० आई० आर० तथा बी० यन० आर० दोनों ही कलकत्ते से जोड़ती हैं। कलकत्ते से यह केवल १३२ मील है। इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा कोलहन रियासत के गुआ नामक स्थान से आता है। बी० यन० आर की एक शाखा गुआ को जोड़ती है। कोयला तो स्थानीय खानों से ही प्राप्त हो जाता है। कारखाने के लिए पानी दामोदर नदी से लिया जाता है जो कारखाने से लगभग ढाई मील पर है। दामोदर के पानी को पंप करके एक बड़े बाँध में इकट्ठा कर लिया जाता है।

पिग आयरन को तैयार करने में अपेक्षाकृत अधिक कोयला आवश्यक है। इस कारण पिग आयरन के कारखाने कोयले की खानों के समीप हैं। कुल्टी और बर्नपुर (आसंसोल) एक ऐसे प्रदेश में स्थापित है जो घना आबाद है और यह कारखाने कलकत्ता के समीप हैं जो कि भारतवर्ष में लोहे की सबसे बड़ी मंडी है। इन केन्द्रों में बने हुये पिग आयरन को विदेशों में कलकत्ते के बन्दरगाह से ही भेजा जाता है।

भारतवर्ष में सबसे बड़ा लोहे और स्टील का कारखाना जमशेदपूर में स्थापित है। क्योंकि जमशेदपूर का टाटा आयरन वर्क्स अधिकतर स्टील बनाता है। इस कारण कोयले की अपेक्षा लोहे के क्षेत्र से अधिक समीप

है। वास्तव में टाटा आयरन वर्क्स के स्थापित होने के उपरान्त ही लोहे और स्टील का धंधा इस देश में महत्वपूर्ण धंधा बन सका। टाटा आयरन वर्क्स के स्थापित होने से देश के औद्योगिक विकास के इतिहास में एक नया परिच्छेद खुल गया। स्वर्गीय जे० यन० टाटा प्रथम श्रेणी के जन्म-जात व्यवसायी थे। उन्होंने अनुभव किया कि बिना स्टील के धंधे की उन्नति हुये देश की औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। जब उन्होंने स्टील तैयार करने के लिए कारखाना स्थापित करने की बात चलाई तो विशेषज्ञों ने उनको हतोत्साह किया। उनका कहना था कि भारतवर्ष में स्टील तैयार ही नहीं किया जा सकता। किन्तु श्री टाटा महोदय इस प्रकार निराश होने वाले व्यक्तियों में से नहीं थे। वे अमेरिका गये और वहाँ से श्री सी० यम० वेल्ड के नेतृत्व में एक स्टील विशेषज्ञों के दल को लाये। खोज करने के उपरान्त श्री वेल्ड महोदय ने राजारा पहाड़ियों में, जो मध्यप्रान्त में हैं, संसार की अत्यन्त घनी लोहे की खानों को ढूँढ निकाला। किन्तु आरम्भ में राजारा पहाड़ियों के कच्चे लोहे को निकालना कठिन था। इस कारण गुरुमेशानी खानों के लोहे को झरिया के कोयले से गलाना निश्चय किया।

टाटा आयरन स्टील कम्पनी ने अपने कारखाने को स्थापित करने के लिए साकची नामक संथाली गाँव चुना जो कि बाद को जमशेदपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जमशेदपुर बिहार के सिंगभूमि में है। इसके उत्तर में सुब्रनरेखा, तथा खोरकाई नदी पश्चिम में बहती हैं। वास्तव में जमशेदपुर इन दोनों नदियों द्वारा बनाई हुई एक घाटी में स्थित है। यह घाटी केवल तीन मील चौड़ी है, इसके उत्तर और दक्षिण में पहाड़ियाँ हैं जिनमें लोहे की खानें हैं। जिन खानों से टाटा के कारखाने के लिए लोहा आता है वह इन्हीं पहाड़ियों में ६० मील की दूरी पर हैं और कोयला झरिया की खानों से आता है, जो कि यहाँ से १०० मील की दूरी पर है। सुब्रनरेखा तथा खोराकी नदियों से पानी मिलता है। लोहे और स्टील के धंधे के लिए मीठे और साफ पानी की बहुत आवश्यकता होती है। ये नदियाँ छोटी होने के कारण गरमी में सूख जाती हैं। इस कारण नदियों का पानी सूखने के पूर्व ही एक बड़े तालाब में पम्प करके इकट्ठा कर लिया जाता है। टाटा के कारखाने को बी० यन० आर० कलकत्ता तथा बम्बई से जोड़ती है। अतएव टाटा का सामान बड़ी सुविधा से कलकत्ता और बम्बई की मंडियों में पहुँच सकता है।

टाटा के कारखाने को केवल लाइमस्टोन या डोलोमाइट दूर से मँगाना पड़ता है। अच्छा लाइमस्टोन जमशेदपुर से २०० मील की दूरी पर मिलता

है। जो लाइमस्टोन पास मिलता है वह घटिया है। अब ताता का कारखाना गंगपूर में पानपोश की खानों से लाइमस्टोन निकालता है परन्तु वह शुद्ध लाइमस्टोन से घटिया होता है। इसके अतिरिक्त मैंगनीज और जिन रसायनिक पदार्थों (Chemicals) की आवश्यकता होती है वे पास ही मिल जाते हैं।

जमशेदपूर जिस प्रदेश में स्थित है वहाँ आबादी कम है तथा जो कुछ भी है वह संथाली लोगों की है जो कारखाने में काम करना पसंद नहीं करते। इस कारण यहाँ अधिकांश मज़दूर बिहार तथा संयुक्तप्रान्त के हैं। आरम्भ में इस कारखाने में अधिकतर कुशल मज़दूर विदेशों से बुलाये गये थे। किन्तु अब अधिकतर कुशल मज़दूर भारतीय ही हैं। हाँ थोड़े से विदेशी मुख्यतः अमेरिकन कुशल मज़दूर अवश्य हैं।

१९१३ में सर्व प्रथम टाटा के कारखाने ने इस देश में स्टील बनाया। उसी समय प्रथम योरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। विदेशों से भारतवर्ष ही नहीं एशिया के अन्य देशों में भी स्टील आना बन्द हो गया। उस समय टाटा के कारख़ाने को अभूतपूर्व अवसर मिला। टाटा को आशातीत सफलता मिली। परन्तु युद्ध के समाप्त हो जाने के उपरान्त विदेशी स्टील बनाने वाले कारखाने ने बहुत सस्ते दामों पर स्टील बेंचना आरम्भ कर दिया जिससे टाटा के कारखानों को घाटा होने लगा। स्थिति भयंकर हो गई। यह भय होने लगा कि टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी दिवालिया हो जायेगी। टाटा कंपनी ने भारत सरकार से संरक्षण (Protection) की माँग की। लोकमत तथा एसेम्बली ने भी इस माँग का समर्थन किया। अन्त में टैरिफ बोर्ड की शिफारिस के अनुसार भारत सरकार ने स्टील के धंधे को संरक्षण प्रदान किया और टाटा कंपनी बच गई। क्रमशः टाटा कंपनी ने व्यय में कमी करना आरम्भ की और उसकी आर्थिक स्थिति सुधर गई। १९३९ के पूर्व टाटा कंपनी की स्थिति बहुत अच्छी थी और वह विदेशी स्टील से बहुत आसानी से मुकाबला कर सकती थी। १९३९ के युद्ध के फलस्वरूप इस कारखाने की आर्थिक स्थिति और भी दृढ़ हो जायेगी। टाटा का कारखाना बहुत बड़ा है। संसार के बारह सबसे बड़े लोहे के कारखानों में से वह एक है। टाटा के कारखाने में रेल गर्डर तथा अन्य स्टील की वस्तुयें तो बनती ही हैं। परन्तु अभी थोड़ा समय हुआ कि टाटा कंपनी ने एक टिनप्लेट बनाने का कारखाना तथा खेती के औज़ारों के बनाने का कारख़ाना खड़ा किया है। यही नहीं टाटा का कारख़ाना भविष्य में जूट और चाय की मशीनें, तार तथा अन्य स्टील का सामान बनाने का विचार कर रहा है।

इन कारखानों के अतिरिक्त कलकत्ता की बर्न कम्पनी ने इंडियन आयरन

स्टील कम्पनी के नाम से हीरापुर में एक कारखाना खोला। कलकत्ते की बर्ड एण्ड कम्पनी ने भी मनोहरपुर में यूनायटेड-स्टील कारपोरेशन आव इंडिया लिमिटेड नामक एक कारखाना स्थापित किया है।

बंगाल और बिहार के बाहर केवल एक ही लोहे का कारखाना है जो कि मैसूर राज्य में है। यह कारखाना भद्रावती नामक स्थान पर है और मैसूर राज्य की रेलवे लाइन की बिरुर-शिमोगा शाखा इसको जोड़ती है। कारखाना भद्रा नदी के पश्चिम किनारे पर है। कारखाने के समीप ही बहुत बड़े जंगल हैं जिनकी लकड़ी के कोयले से कारखाने में लोहा गलाया जाता है। मैसूर राज्य में कोयला नहीं है और बंगाल बिहार से कोयला मँगा कर लोहा गलाना बहुत ही खर्चीला है। अतएव भद्रावती के कारखाने में लकड़ी के कोयले का ही उपयोग किया जाता है। भारतवर्ष में केवल भद्रावती का ही कारखाना ऐसा है जहाँ लकड़ी का कोयला काम में आता है। कच्चा लोहा केमानगुन्दी की खानों से आता है। यह खानें बाबा बुदान की पहाड़ियों में स्थित हैं और भद्रावती से केवल २६ मील दक्षिण में हैं। लाइमस्टोन भद्रावती से केवल १३ मील पूर्व में भांदिगुड्डा नामक खानों से आता है। कच्चे लोहे तथा लाइमस्टोन की दृष्टि से भद्रावती की स्थिति अन्य कारखानों से अच्छी है। हाँ यहाँ का कच्चा लोहा बहुत अच्छा नहीं है।

लोहा और स्टील के अतिरिक्त इन कारखानों में बहुत सी रसायनिक वस्तुयें कोक से तैयार होती है। इनमें सलफ़ेट आफ अमोनिया और कोलतार मुख्य हैं। टाटानगर में कुल्टी तथा अन्य स्थानों पर जहाँ लोहा गलाने के लिये कोक काम में लाया जाता है कोलतार तथा अमोनिया सलफ़ेट तैयार किया जाता है और भद्रावती में जहाँ लकड़ी का कोयला काम में लाया जाता है लकड़ी का एलकाहल (Wood Alcohol) तथा लकड़ी का तार (Wood Tar) तैयार किया जाता है। भद्रावती में लोहे के कारखाने की गौण वस्तुओं विशेषकर स्लैग (Slag) का उपयोग करने के लिए सीमेंट का कारखाना अभी थोड़े दिन हुए स्थापित किया गया है।

भारतवर्ष में १९३८ में १८०५ लाख टन कचा लोहा निकाला गया। जब कच्चे लोहे के संसार की उत्पत्ति ७ करोड़ ५० लाख टन थी। इसी वर्ष भारतवर्ष के कारखानों ने १५७६००० टन पिग आयरन तैयार किया जब कि पृथ्वी के सब देशों की उत्पत्ति ८ करोड़ ३० लाख टन थी। इसी वर्ष भारतवर्ष के कारखानों ने ९८२,००० टन स्टील तैयार किया जबकि पृथ्वी के सब देशों की स्टील की उत्पत्ति १० करोड़ के लगभग थी। कच्चे लोहे से पिग आयरन तथा स्टील का अधिक होने का कारण यह है कि पुराना रद्दी लोहा भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है।

भारतवर्ष में जितना पिग आयरन तैयार होता है उतने की देश में खपत नहीं होती। प्रतिवर्ष ३१ प्रतिशत के लगभग पिग आयरन विदेशों को भेजा जाता है।

शक्कर का धंधा (Sugar Industry)

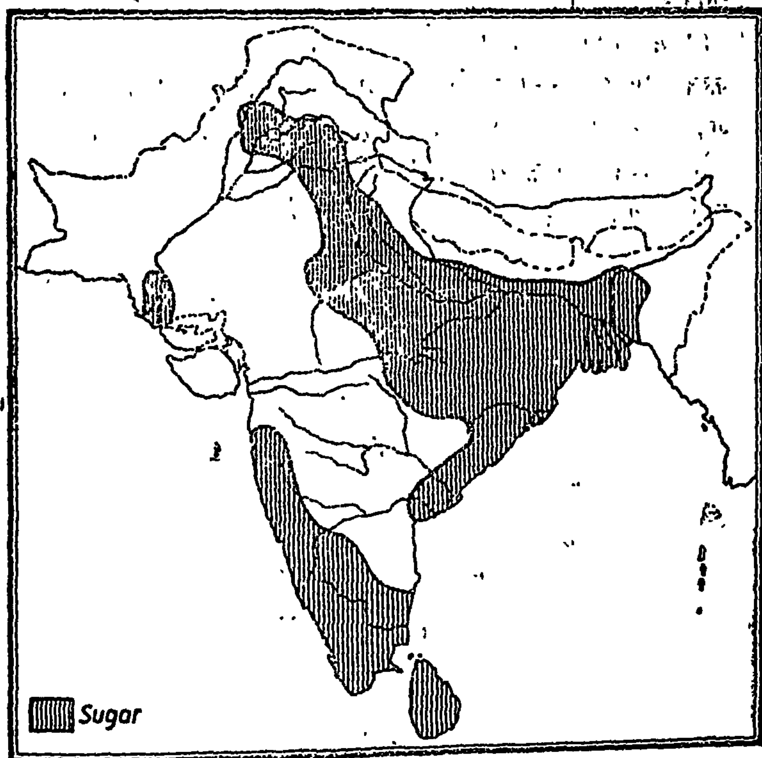
सन् १९३१ के पूर्व भारतवर्ष प्रतिवर्ष लगभग २० करोड़ रुपये की शक्कर विशेष कर जावा से मँगाता था। देश में गृह-उद्योग-धंधे के रूप में हाथ से शक्कर बनाने का धंधा प्रचलित था और कुछ कारखाने भी थे किन्तु देश की माँग को पूरा करने के लिए बाहर से शक्कर मँगानी पड़ती। टैरिफ बोर्ड की शिफारिस पर भारत सरकार ने शक्कर के धंधे को संरक्षण प्रदान किया जिसके फलस्वरूप आश्चर्यजनक गति से शक्कर के कारखाने स्थापित होने लगे और भारतवर्ष शीघ्र ही शक्कर की दृष्टि से स्वावलम्बी बन गया। शक्कर का धंधा इस बात का प्रमाण है कि यदि सरकार धंधों को संरक्षण और प्रोत्साहन दे तो देश में आश्चर्य जनक तेज़ी से औद्योगिक उन्नति हो सकती है। यदि जनता को यह विश्वास हो कि सरकार धन्धों को प्रोत्साहन देगी तो पूंजी की कमी भी नहीं रहेगी। शक्कर के व्यवसाय में जो चालीस करोड़ रुपये की पूंजी लगी है वह इस बात का प्रमाण है।

सूती वस्त्र की तरह शक्कर के धन्धे को भी यह सुविधा है कि देश में ही उसकी खपत के लिए विशाल क्षेत्र है। टैरिफ बोर्ड ने १९३१ में अनुमान किया था कि भारतवर्ष में ६० करोड़ रुपये की शक्कर की खपत होती है। क्रमशः देश में शक्कर की माँग चाय पीने की आदत के साथ साथ बढ़ती जा रही है। इस माँग पर शक्कर का धन्धा निर्भर है।

शक्कर के धन्धे के लिए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि कारखाने के समीप ही गन्ने की खेती हो जिससे गन्ना मिलने में कठिनाई न हो। उत्तर भारत विशेषकर संयुक्तप्रान्त के उत्तरी भाग तथा बिहार में गन्ने की खेती कुछ क्षेत्रों में केन्द्रित है जिससे वहाँ शक्कर के कारखाने खड़े करने में विशेष सुविधा होती है। शक्कर के धन्धे को एक सुविधा यह भी है कि उसके लिए बाहरी ईंधन की बहुत कम आवश्यकता होती है। गन्ने को पेरने के बाद जो खोई बचती है उस को बायलर में जलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है। किन्तु केवल खोई से ही काम नहीं चलता कुछ ईंधन कोयला या लकड़ी भी जलाना पड़ता है। उत्तर भारत में गाँवों में यथेष्ट ईंधन मिलता है। इसके अतिरिक्त बहुत से कारखाने तराई के पास हैं जहाँ ईंधन बहुत आसानी से मिल सकता है। यही कारण है शक्कर के

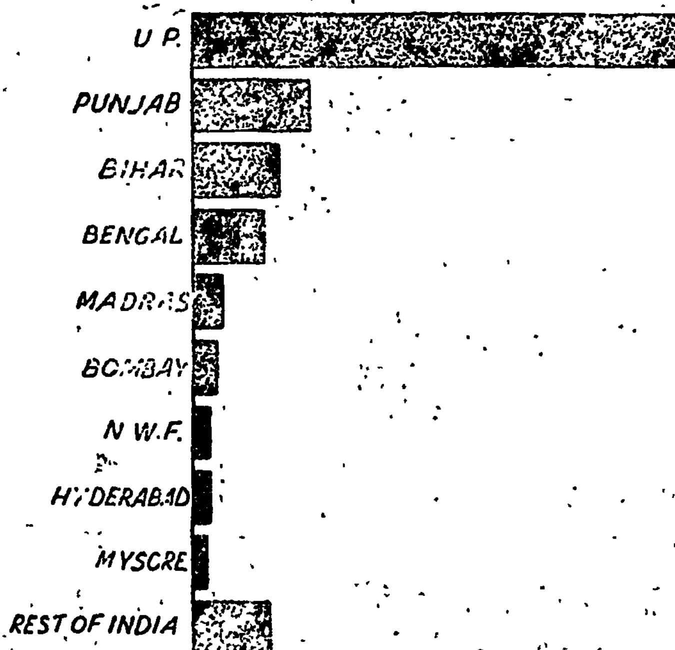
बहुत से कारखाने लकड़ी जलाते हैं और कुछ कोयला भी जलाते हैं। शक्कर के कारखानों में पानी की भी आवश्यकता होती है परन्तु बहुत पानी की आवश्यकता नहीं होती। पानी या तो ट्यूब वैल खोदकर तैयार किया जाता है अथवा नहरों से ले लिया जाता है। शक्कर के धंधे में कुशल मज़दूरों की आवश्यकता बहुत कम होती है। अकुशल मज़दूर गाँवों में सस्ती मज़दूरी पर सब कहीं यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं। अतएव शक्कर के धंधे का स्थानीय करण गन्ने की पैदावार पर निर्भर है।

भारतवर्ष में लगभग १५० शक्कर के कारखाने हैं। इनमें अधिकांश गंगा की घाटी में हैं। लगभग ७५ प्रतिशत कारखाने संयुक्तप्रान्त तथा बिहार में हैं। भारतवर्ष में जितनी शक्कर उत्पन्न की जाती है उसका ८०% केवल संयुक्तप्रान्त और बिहार में ही उत्पन्न होती है। पिछले वर्षों में भारतीय



शक्कर के कारखानों तथा खड़सारों से इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी है कि वह भारतवर्ष की माँग से अधिक होती है। संयुक्तप्रान्त तथा बिहार की सरकार ने १९४१ में शक्कर की उत्पत्ति को कम करने का प्रयत्न किया

क्योंकि यदि कारखानों को जितनी शक्कर वे बना सकते थे बनाने दी जाती तो इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होती कि उसकी खपत देश में हो ही नहीं सकती। पिछले वर्ष की बची हुई बहुत सी शक्कर कारखानों के गोदामों में भरी पड़ी थी। अतएव शक्कर की उत्पत्ति को कम करने की आवश्यकता हुई। भविष्य में शक्कर की उत्पत्ति को और भी कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारतीय शक्कर का धंधा इस समय ऐसी अवस्था में पहुँच गया है कि यदि भारतीय कारखानों को विदेशों में शक्कर भेजने दी जाय तो भारतीय शक्कर संसार के बाज़ार में अन्य देशों की शक्कर से प्रतिस्पर्द्धा में टिक सकती है। परन्तु भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर समझौते (International Sugar Agreement) को स्वीकार कर लिया है जिसके अनुसार सरकार ने शक्कर का बाहर भेजा जाना बंद कर दिया है। इस समय शक्कर के धंधे की दशा दयनीय हो रही है। यदि भारत सरकार ने विदेशों को शक्कर भेजने की आज्ञा न दी तो भविष्य में शक्कर की उत्पत्ति को कम करना होगा और गन्ने की खेती को भी कम करना होगा। भारत सरकार ने शक्कर के धंधे पर आबकारी कर (Excise-Tax) भी लगा दिया है और प्रतिवर्ष गन्ने का भाव भी निर्धारित करती है। धंधे को गिरने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि शक्कर को बाहर भेजने दिया जाय।



बड़े बड़े कारखानों के अतिरिक्त गन्ना उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में

खंडसारी धंधा भी चलता है। हाथ से बनी हुई शक्कर का मूल्य बाजार में कुछ ऊँचा रहता है क्योंकि साधारण भारतीयों का विश्वास है कि हाथ कि बनी शक्कर अच्छी होती है।

भारत में शक्कर की मिलें

संयुक्तप्रान्त	७२
बिहार	३३
मद्रास	१०
बम्बई	१०
बंगाल	६
उड़ीसा	२
पंजाब	३
देशीराज्य	११
	१५०

भारत में शक्कर की उत्पत्ति

(हज़ार टनों में)

	मिल	खंडसारी
पंजाब (काश्मीर और देहली सहित)	१८	१
संयुक्त-प्रान्त	५३०	१२६
बिहार	२४२	४
बंगाल	२०	२
सिन्ध	२	—
मध्यभारत	५	१
राजपूताना	१	—
मद्रास	३०	—
बम्बई	५३	—
मैसूर	२५	—
हैदराबाद	१	—
उड़ीसा	१	—
	६२८	१३७

१६३७ के शक्कर सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार भारतवर्ष बर्मा को छोड़कर कहीं अन्य किसी देश को शक्कर नहीं भेज सकता था।

किन्तु १९३९ में युद्ध छिड़ जाने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय समझौता नहीं चल सका। उसी समय भारत का शक्कर का धंधा ऐसी तेज़ी से बढ़ा कि भारत में आवश्यकता से अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी। अतएव भारत को ब्रिटेन को शक्कर भेजने की अनुमति मिल गई। जब जापान से भी युद्ध छिड़ गया और जावा और फिलीपाइन्स से शक्कर मिलना बंद हो गई तो ब्रिटिश साम्राज्य में केवल भारत ही शक्कर उत्पन्न करने वाला रह गया। अस्तु भारत को ब्रिटिश साम्राज्य तथा ईरान और इराक़ को भी शक्कर भेजनी पड़ी। भारतवर्ष में शक्कर का बाज़ार बहुत परिवर्तनशील है। यदि शक्कर का मूल्य बढ़ जाता है तो माँग कम हो जाती, निर्धन व्यक्ति उसका खाना छोड़ देते हैं और यदि मूल्य गिर जाता है तो माँग बेहद बढ़ जाती है।

दियासलाई का धंधा (Match-Industry)

दियासलाई एक अत्यन्त दैनिक आवश्यकता की वस्तु है। दियासलाई के लिए लकड़ी सस्ते मज़दूर और रसायनिक पदार्थ तथा बाज़ार की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में मज़दूरी बहुत सस्ती है और देश में ही विस्तृत खपत का क्षेत्र है। किन्तु दियासलाई बनाने के लिए उपयुक्त लकड़ी का यहाँ अभाव है। यद्यपि भारतवर्ष में वे वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी लकड़ी दियासलाई बनाने के लिए उपयुक्त है किन्तु यह वन बिखरे हुये हैं तथा लकड़ी यथेष्ट मात्रा में नहीं मिलती। टैरिफ बोर्ड ने एक ग्रोस दियासलाई की लागत व्यय का जो अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है। मज़दूर ५ आना, लकड़ी ३ आना, रसायनिक पदार्थ १ आना, अन्य व्यय ५ आना। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लागत व्यय मज़दूरी का अंश सबसे महत्वपूर्ण है। मज़दूरी के उपरान्त लकड़ी पर ही सबसे अधिक व्यय होता है।

कलकत्ता और बम्बई दियासलाई के कारख़ानों के दो मुख्य केन्द्र हैं। कलकत्ते के कारखानों में अधिकतर भारतीय लकड़ी काम में लाई जाती है। दियासलाई के उपयुक्त भारतीय लकड़ी अधिकतर सुन्दरबन तथा अंडमन द्वीप से आती है। कलकत्ते के कारखानों में जेनवा नामक लकड़ी का बहुत उपयोग होता है। सुन्दरबन में जेनवा के बहुत से बड़े जंगल हैं। ज़ेनवा के अतिरिक्त पपिता, धूपु दिदू, और बकोता की लकड़ी का उपयोग भी होता है। यह अंडमन द्वीप से आती है।

बम्बई के अधिकतर कारख़ानों में ऐसपेन (Aspen) लकड़ी का उपयोग होता है। यह लकड़ी फिनलैंड तथा रूस से मँगाई जाती है। किन्तु कुछ दियासलाई के कारखाने गुजरात बम्बई के अन्य भागों तथा संयुक्तप्रान्त

में हैं जो कि सेमल, आम तथा सलाई इत्यादि भारतीय लकड़ियों को काम में लाते हैं। दियासलाई की बत्ती के लिए आम की लकड़ी बहुत अच्छी होती है। सेमल बाक्स बनाने के लिए तो बहुत अच्छी होती है किन्तु बत्ती बनाने के लिए अच्छी नहीं होती। कुछ कारखानों ने सेमल के जंगल लगाये हैं जहाँ से वे अपने लिए लकड़ी प्राप्त करते हैं।

१९२० में भारतवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ रुपये से अधिक की दियासलाई विदेशों से विशेषकर स्वीडन से मँगाता था किन्तु भारत सरकार ने दियासलाई के धंधे को भी संरक्षण प्रदान किया तो स्वीडन के पूँजीपतियों और दियासलाई के व्यवसायियों ने भारतवर्ष में ही अपने कारखाने स्थापित कर दिये। स्वीडिश दियासलाई के कारखानों ने लगभग सारे दियासलाई के व्यवसाय को हथिया लिया है। इसका फल यह हुआ है कि भारतवर्ष दियासलाई नाममात्र को ही विदेशों से मँगाता है। दियासलाई की दृष्टि से भी भारतवर्ष स्वावलम्बी बन गया है। प्रतिवर्ष भारतवर्ष के कारखाने ढाई करोड़ ग्रोस बाक्स दियासलाई तैयार करते हैं। भारत सरकार ने दियासलाई पर आबकारी कर लगा दिया है। दियासलाई वस्तुतः एक विदेशी व्यवसाय है। इस पर विदेशी (स्वीडिश) पूँजीपतियों का एकाधिपत्य है। भारतीय-पूँजी तथा प्रबंध इस व्यवसाय में बिलकुल नहीं है। इस समय भारत में ३० दियासलाई के कारखाने चल रहे हैं जिनमें प्रतिदिन ५०० ग्रोस दियासलाई तैयार होती हैं।

चमड़े का धंधा (Leather Industry)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में पशुओं की संख्या बहुत है। साथ ही प्रतिवर्ष पशुओं की महामारी के कारण लाखों की संख्या में पशु मरते हैं। साथ ही माँस के लिए भी पशु मारे जाते हैं। अस्तु भारतवर्ष में खाल बहुत होती है। यहाँ से प्रतिवर्ष लगभग आठ करोड़ रुपये की खाल विदेशों को विशेष कर ब्रिटेन को जाती है। वन-सम्पत्ति के परिच्छेद में यह बतलाया जा चुका है कि चमड़ा कमाने के लिए जिन वृक्षों की छालें तथा फलों (मैरीबौलन) की आवश्यकता होती है वह भारतवर्ष के वनों में बहुत पाये जाते हैं। भारतवर्ष में पुराने ढंग से चमड़ा कमाने की रीति बहुत समय से प्रचलित थी। आज भी चमार पुरानी रीति से ही चमड़ा कमाते हैं। किन्तु सबसे पहले आधुनिक ढंग से चमड़ा तैयार करने तथा चमड़े का सामान बनाने के लिए सरकार ने कारखाने खोले। बात यह थी कि सेना की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए बढ़िया चमड़े की आवश्यकता थी। अतएव सरकार ने कानपूर में गवर्नमेंट हारनेस सैडिलरी फैक्टरी स्थापित की। कुछ समय उपरान्त अन्य पूँजीपतियों

ने भी चमड़े के कारखाने खोले। क्रमशः कानपूर चमड़े के धंधे का केन्द्र बन गया। कानपूर में खाल की मंडी है, पानी मिलने की सुविधा है और बबूल की छाल भी मिल जाती है। मद्रास और बम्बई में भी चमड़े के कारखाने खोले गए। दक्षिण भारत में चमड़ा कमाने के काम में आने वाली छाल बहुत मिलती है। इस कारण चमड़े का धंधा दक्षिण में केन्द्रित हो गया। मद्रास में चमड़े के सबसे अधिक कारखाने हैं। इनके अतिरिक्त आगरा, सहारनपूर तथा अन्य स्थानों पर भी चमड़े का धंधा होता है। पिछले महायुद्ध के उपरान्त भारतवर्ष में क्रोम पद्धति द्वारा क्रोम चमड़ा तैयार होने लगा है। भारत सरकार ने धंधे को विदेशी चमड़े की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए उसे संरक्षण प्रदान कर दिया है। १६३६ के योरोपीय महायुद्ध के फल स्वरूप चमड़े के धंधे की विशेष उन्नति हुई है।

चमड़ा कमाने के धंधे का विस्तार

भारत प्रति वर्ष २ करोड़ गाय और बैलों की तथा ३५ लाख भैंसों की खालें उत्पन्न करता है। २ करोड़ बीस लाख बकरे तथा ३० लाख भेड़ों की खालें भी उत्पन्न होती हैं।

इसमें से लगभग ६० प्रतिशत गाय-बैल और भैंसों की खालें तथा ४० प्रतिशत भेड़-बकरियों की खालों को भारत में कमाया जाता है और उनका चमड़ा बनाया जाता है शेष विदेशों को भेज दी जाती हैं।

चमड़ा कमाने के केन्द्र मद्रास, कानपूर, बाटानगर (कलकत्ता), देहली, आगरा और सहारनपूर में केन्द्रित हैं। बाटानगर, कानपूर तथा आगरा और कलकत्ते में जूते बनाने का धंधा बहुत उन्नति कर गया है। महायुद्ध के समय पशुओं को सेना के लिए मारने के कारण खालों की उत्पत्ति बढ़ गई और सेना के उपयोग के लिए चमड़े की उत्पत्ति भी बहुत बढ़ाई गई। लगभग ४० चमड़ा कमाने के छोटे कारखाने स्थापित हुए और कानपूर की नार्थवैस्ट टैनरी ने अपनी उत्पत्ति को कई गुना कर दिया। युद्ध के पूर्व यह कारखाना २००० जोड़े प्रतिदिन तैयार करता था अब वह ६००० जोड़े प्रतिदिन तैयार करता है इसी प्रकार बाटानगर के कारखाने ने अपनी उत्पत्ति को दुगना कर दिया है।

शीशे का धंधा (Glass Industry)

भारतवर्ष में शीशे का धंधा बहुत पुराना है किन्तु आधुनिक ढंग के कारखाने पिछले २० या २५ वर्षों में ही स्थापित हुये हैं।

शीशे के धंधे के लिए अच्छा रेत और कोयला अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष में शीशा बनाने योग्य रेत की कमी नहीं है। बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में, नैनी (इलाहाबाद) के पास लोघरा और बोरगढ़ में, विंध्या के रेतीले पत्थरों को पीस कर, सानखेदा (बड़ोदा) के रेतीली पत्थरों तथा साबरमती नदी से, बीकानेर, जयपूर में सवाई माधोपूर, तथा पंजाब में होशियार पूर ज़िलों से शीशा बनाने योग्य रेत मिलता है। नैनी के पास पाया जाने वाला रेत अधिकांश कारखानों में काम आता है। सोडा तथा ऐश (Soda Ash) बाहर से मँगाया जाता है।

भारतवर्ष में अधिकांश कारखाने सिंध गंगा के मैदान में स्थित हैं। बात यह है कि यद्यपि भारतवर्ष में मुख्य कच्चा माल (Raw material) मिलता है किन्तु कठिनाई इस बात की है कि कारखाने कहाँ खड़े किये जायें। क्योंकि सब वस्तुयें एक स्थान में नहीं मिलतीं। अतएव सिंध गंगा में देश के ५५ कारखानों में से ४५ कारखाने स्थित हैं। इन मैदानों में रेलों का एक जाल सा बिछा हुआ है जिससे सब सामान को इकट्ठा करने में सुविधा होती है। अधिकांश शीशे के कारखाने संयुक्तप्रान्त में हैं। फीरोज़ाबाद इस धंधे का सबसे बड़ा केन्द्र है। इसके अतिरिक्त बम्बई, जबलपूर, लाहौर, अम्बाला, नैनी, इलाहाबाद, बहजोई कलकत्ता में भी बड़े बड़े कारखाने हैं।

यद्यपि देश में आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित हो गये हैं फिर भी विदेशों से मुख्यतः योरोप और जापान से भारत में सवा करोड़ रुपये के लगभग का सामान आता है। यहाँ के कारखाने अधिकतर चिमनी, बोतल, ग्लास, छोटे छोटे जार, दवातें, तशतरियाँ और प्यालियाँ बनाते हैं। अभी तक शीट ग्लास (Sheet glass) और प्लेट ग्लास बहुत कम तैयार होता है।

बड़े बड़े कारखानों के अतिरिक्त भारतवर्ष में पुराने ढंग से भी शीशे का सामान तैयार किया जाता है। अधिकतर यह घटिया चीज़ें होती हैं। नदियों के रेत तथा रेह से यह तैयार किया जाता है। इस कारण अच्छा और साफ नहीं होता। संयुक्तप्रान्त में फीरोज़ाबाद तथा दक्षिण में बेलगाँव इसके मुख्य केन्द्र हैं। फीरोज़ाबाद में चूड़ियाँ बहुत बनती हैं।

सीमेंट का धंधा भी कुछ ही वर्षों में यहाँ उन्नति कर गया है। १९१४-१८ के प्रथम योरोपीय महायुद्ध के समय भारतवर्ष में बहुत कम सीमेंट बनाया जाता था। अधिकांश सीमेंट विदेशों से आता था। किन्तु अब बहुत थोड़ा सीमेंट विदेशों से आता है। सम्भावना इसी बात की है कि शीघ्र ही भारतवर्ष सीमेंट की दृष्टि से भी स्वावलम्बी हो जावेगा। ८०

सीमेंट (Cement Industry)

प्रतिशत से अधिक सीमेंट तो इस समय भी भारतीय कारखाने ही तैयार करते हैं।

सीमेंट के लिए लाइम-स्टोन (Lime Stone) चिकनी मिट्टी (Clay) तथा कोयले की आवश्यकता होती है। थोड़ा जिपसम (Gypsum) भी आवश्यक है। भारतवर्ष में लाइमस्टोन बहुत अच्छा और ढेरों मिलता है। मिट्टी भी मिलती है। देश में जिपसम निकाला जाता है किन्तु बहुत दूर से लाना पड़ता है। कोयले की भी यही दशा है। अधिकांश सीमेंट के कारखाने उन स्थानों पर स्थापित किये गये हैं जहाँ कि अच्छा लाइमस्टोन मिलता है। किन्तु जहाँ भारतीय सीमेंट के कारखानों को लाइम-स्टोन और चिकनी मिट्टी मिलने की सुविधा है वहाँ सबसे बड़ी कमी यह है कि कोयले की खानें बहुत दूर है। इस कारण कोयले के लिए बहुत व्यय करना पड़ता है।

लाइमस्टोन और चिकनी मिट्टी के मिक्सचर को तेज़ आँच देकर सीमेंट तैयार किया जाता है। मिक्सचर में तीन चौथियाई कैलसियम कारबोनेट (Calcium Carbonate) तथा एक चौथियाई चिकनी मिट्टी रहती है। मिक्सचर में थोड़ा सा जिपसम भी रहता है। कहीं कहीं लाइमस्टोन ऐसा पाया जाता है कि जिसमें सभी आवश्यक चीज़ें ठीक मात्रा में मिलती हैं और अन्य वस्तुयें मिलानी नहीं पड़तीं।

मद्रास, सिंध और काठियावाड़ के सीमेंट के कारखानों को छोड़ कर और सभी कारखाने देश के भीतरी भागों में स्थित हैं। इस कारण वे सीमेंट को अपने क्षेत्र में आसानी से बेंच सकते हैं। हाँ मद्रास, सिंध और काठियावाड़ के सीमेंट के कारखानों को जो कि बंदरगाहों में हैं विदेशी सीमेंट की प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ता है। भारत-सरकार ने बाहर से आने वाले सीमेंट पर ९% की ड्यूटी लगा दी है। सीमेंट के कारखाने ग्वालियर, कटनी, बूंदी, बिहार, बंगाल, काठियावाड़, सिंध तथा मद्रास में हैं। अब तो सीमेंट के कारखानों का एक संघ बन गया है। इस कारण धंधा और भी संगठित रूप से उन्नति कर रहा है। भारतवर्ष के कारखानों में लगभग १२ लाख टन सीमेंट तैयार होता है। सन् १९३७ में भारतवर्ष के कारखानों में ११·४ लाख टन सीमेंट तैयार हुआ। जब कि संसार भर के सब देशों ने ८० लाख टन से कुछ कम सीमेंट तैयार किया। १९३८ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने १८३ लाख टन, जर्मनी ने १५६ लाख टन, ब्रिटेन ने ७९ लाख टन और भारतवर्ष ने १२ लाख टन सीमेंट उत्पन्न किया। १९३८ में संसार के सब देशों ने ८२५ लाख टन सीमेंट तैयार किया था।

भारतवर्ष में कागज़ बनाने के लिए यथेष्ट कच्चा माल है। अधिकतर कागज़ सबाई घास, और भाभर घास से तैयार होता है। यह घास इङ्गलैंड की स्पार्टो घास के समान ही है। किन्तु इन घासों में खराबी यह है कि वे दूसरी घासों से मिली रहती हैं। इस कारण उसे शुद्ध रूप में प्राप्त कर सकना कठिन है। साथ ही यह घास यथेष्ट नहीं है। इन घासों के अतिरिक्त बेब घास का भी उपयोग कागज़ की लुन्दी बनाने में होता है। इसके विपरीत बाँस तथा अन्य कच्चा माल अनन्त राशि में मिलता है। अन्य देशों में कागज़ लकड़ी की लुन्दी से तैयार किये जाते हैं किन्तु भारतवर्ष में कागज़ बनाने योग्य वन इतने ऊँचे पर हैं कि उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। बाँस भारतवर्ष में बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। साथ ही बाँस का वन बहुत जल्दी ही फिर उग आता है। जहाँ लकड़ी के वनों को फिर से उगने में पचासों वर्ष लगते हैं वहाँ बाँस का वन दो वर्ष में ही तैयार हो जाता है। अतएव जहाँ तक बाँस का सम्बंध है भारतवर्ष के वनों में बाँस अनन्त राशि में भरा पड़ा है। किन्तु बाँस से बना हुआ कागज़ घास के बने हुये कागज़ की अपेक्षा कम टिकाऊ होता है। बाँस की लुन्दी में बिना लकड़ी की लुन्दी मिलाये कागज बनाया जा सकता है। किन्तु घास की लुन्दी में थोड़ी लकड़ी की लुन्दी मिलानी पड़ती है। बाँस का बना कागज चिकना और सुंदर होता है। यद्यपि बाँस से बना कागज बढ़िया नहीं होता किन्तु सस्ता होता है। भारत में सस्ते कागज की अधिक माँग है इस कारण भविष्य में बाँस से ही अधिकाधिक कागज तैयार किया जावेगा। बाँस बम्बई, मदरास; आसाम और पूर्वीय बंगाल में बहुत उत्पन्न होता है।

कागज़ का धंधा (Paper Industry)

भारतवर्ष की अधिकांश कागज की मिलें कलकत्ते के समीप हैं। इसका कारण यह है कि कलकत्ते में कागज की बहुत माँग है, कोयला समीप ही मिलता है और गंगा के पानी का उपयोग हो सकता है। हाँ कच्चा माल अवश्य यहाँ से दूर है। पिछले कुछ वर्षों में कागज की मिलें उन प्रदेशों में भी स्थापित की गई हैं जहाँ कि घास या बाँस मिलता है। परन्तु उन क्षेत्रों से कागज का बाजार तथा कोयला दूर पड़ता है। संयुक्त प्रान्त में सहारनपुर और लखनऊ, पंजाब में जगाधरी, बिहार में डालमियानगर, बम्बई, आसाम और दक्षिण में फुटकर बिखरे हुये कारखाने स्थापित किये गये हैं। किन्तु कागज के धंधे का प्रधान केन्द्र कलकत्ता का समीपवर्ती प्रदेश है। जहाँ टीटागढ़, इन्डिया पेपर पल्प और बंगाल पेपर मिल्स के कारखाने हैं।

भारतवर्ष में सधारण छापे के कागज को बनाने के लिये घास की लुन्दी

में लकड़ी की लुग्दी मिलाई जाती है। बढ़िया कागज़ बनाने के लिये कारखाने विदेशों से लकड़ी की लुग्दी मँगाते हैं और उससे कागज़ तैयार करते हैं। भारतवर्ष में पट्टा तो बहुत कम उत्पन्न होता है। इस समय देश में १४ पेपर मिल कागज़ तैयार कर रही हैं परंतु फिर भी भारतवर्ष में जितना कागज़ तैयार होता है उसका दुगने से अधिक कागज़ विदेशों से मँगाना पड़ता है। अधिकांश विदेशों से आने वाला कागज़ समाचारपत्रों तथा पुस्तकों की छपाई के काम आता है। भारतवर्ष में साधरणतया एक करोड़ का कागज़ विदेशों से आता है। १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के कारण बाहर से कागज़ का आना प्रायः बंद हो गया। इस कारण देश की मिलों को अपनी उत्पत्ति को बढ़ाने का अपूर्व अवसर मिला।

सन् १९३८ में भारतवर्ष के कारखानों ने ६० हज़ार टन कागज़ तैयार किया। १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने से कागज का विदेशों से आयात कम हो गया है और भारतीय कारखानों ने अपनी उत्पत्ति को बढ़ा दिया है। १९३७ में संसार भर में दो करोड़ टन के लगभग कागज़ और ९० लाख टन बोर्ड तैयार हुआ था। अब मध्य प्रान्त में एक नई कागज की मिल बन रही है। इसमें अखबारी कागज (newsprint) बनेगा। अभी तक भारतवर्ष में (newsprint) नहीं बनता है।

कुटीर उद्योग-धंधे (Cottage Industry)

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से कुटीर उद्योग-धंधे महत्वपूर्ण रहे हैं और आज भी कुटीर उद्योग-धन्धे नष्ट नहीं हो गये हैं। गाँवो में कुटीर उद्योग-धन्धे आज भी जीवित दशा में हैं। भारतवर्ष में बड़े बड़े कारखाने केवल बड़े बड़े औद्यौगिक केन्द्रों और नगरों में ही दृष्टिगोचर होते हैं गाँवों में आज भी कुटीर उद्योग-धन्धे प्रचलित हैं। कुटीर उद्योग-धंधे किसी-स्थान विशेष पर केन्द्रित नहीं हैं वे देश भर में बिखरे हुये हैं। कुछ जातियाँ विशेष उन धंधों को करती हैं। बेटा बाप से काम सीख लेता है, वही पुराने ढंग से काम होता है, औज़ार बहुत साधारण होते हैं और अधिकतर गाँवों में ही तैयार हो जाते हैं। कच्चा माल भी गाँवों में ही उत्पन्न होता है और तैयार माल की भी खपत गाँवों में ही होती है। कुटीर उद्योग-धंधे के साथ साथ कारीगर खेती भी करते हैं। जब खेती से अवकाश मिलता है तो धंधे के द्वारा कुछ कमा लेते हैं। इन धंधों में कोई सुधार नहीं हुआ है। वही पुराने ढंग की डिज़ाइन यह लोग तैयार करते हैं और वही पुराने औज़ारों को काम में लाते हैं।

वैसे तो देश भर में कुटीर उद्योग-धंधे फैले हुए हैं परन्तु कोई कोई स्थान वहाँ के कारीगरों की कुशलता के कारण विशेष प्रसिद्ध हो गया है। ऐसे स्थानों में कोई धन्धा विशेष केन्द्रित हो जाता है। उदाहरणों के लिए बनारस का रेशम का धन्धा, पीतल के बर्तन इत्यादि।

कुटीर उद्योग-धंधों में हाथ कर्घे से कपड़ा तैयार करने का धंधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह अनुभव किया जाता है कि देश में लगभग पचास लाख बुनकर इस धन्धे में लगे हुये हैं। हाथ कर्घों से देश की कुल कपड़े की माँग का २१% कपड़ा उत्पन्न होता है और देश में जितना कपड़ा तैयार होता है उसका लगभग ४० प्रतिशत कपड़ा हाथ कर्घों से तैयार होता है। देश में लगभग २५ लाख कर्घे चलते हैं। वैसे तो देश के प्रत्येक भाग में हाथ कर्घे से कपड़ा तैयार होता है किन्तु जिन प्रदेशों में रेलवे लाइन तथा गमनागमन की सुविधा कम है वहाँ यह धंधा अधिक महत्वपूर्ण है। आसाम, बंगाल, मदरास तथा राजपूताने में यह धन्धा विशेष महत्वपूर्ण है। आसाम में लगभग ४५०,००० कर्घे हैं। हाथ कर्घे के बुनकर अब मिलों का सूत काम में लाते हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक हाथ कर्घों के बुनकर अधिकतर विदेशी सूत को काम में लाते थे किन्तु कुछ वर्ष हुये कि भारत सरकार ने विदेशों से आने वाले सूत पर ड्यूटी लगा दी जिससे कि हाथ कर्घे के बुनकर अब देशी मिलों का सूत ही काम में लाते हैं। भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के द्वारा हाथ कर्घे के धंधे को सहायता दी थी। आज प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सरकारें इस धंधे को सहायता और प्रोत्साहन दे रही हैं।

हाथ कर्घे के धन्धे को देशी मिलों की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है। हाथ कर्घे के बुनकरों के सामने कुछ कठिनाइयाँ हैं। वे आधुनिक डिजाइनें तैयार नहीं कर सकते, बाज़ार में कौन सी डिज़ाइन अधिक पसंद की जाती है यह मालूम करने का उनके पास कोई साधन नहीं होता और न वे अपने माल को अच्छी तरह से बाज़ार में बेंच ही सकते हैं।

प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सरकार ने हैंड-लूम यमपोरियम स्थापित किये हैं अथवा सहकारी यूनियन को सहायता दी है। जो हाथ कर्घे के द्वारा तैयार कपड़े बेंचती है। हाथ कर्घे का धंधा देश का एक महत्व पूर्ण धंधा है। यदि सहकारी बुनकर समितियों के द्वारा इस धंधे का संगठन किया जाय और एक प्रान्तीय सहकारी बुनकर यूनियन सम्बंधित समितियों के कपड़े को बेंचने का प्रबंध करे, बुनकर समितियों को सूत देने का प्रबंध करे, नये डिज़ाइनों का आविष्कार करवा कर समिति के सदस्यों को बतलाये, लोगों की रुचि का

अध्ययन करे तथा कर्घे इत्यादि की उन्नति का प्रयत्न करे तो यह धंधा विशेष उन्नति कर सकता है।

हाथ कर्घे के धंधे के अतिरिक्त पंजाब, काश्मीर तथा संयुक्तप्रान्त में गलीचे और कम्बल का धंधा महत्वपूर्ण है। काश्मीर के गलीचे विदेशों को भेजे जाते हैं। किन्तु अब धंधे की दशा अच्छी नहीं है क्योंकि इस धंधे को मिलों द्वारा बने हुए गलीचों का मुकाबला करना पड़ता है। हाथ से बने हुये गलीचे अधिक मूल्य के होते हैं इस कारण उनकी माँग कम हो रही है। कम्बल का धन्धा संयुक्तप्रान्त में मिरजापुर, राजपूताना, तथा पंजाब में बहुत प्रचलित है।

इन धन्धों के अतिरिक्त पीतल के बर्तन, चमड़े की चीजें, लकड़ी, तेल पेरना, कुम्हारी, लुहारी, रस्सी बनाना इत्यादि मुख्य कुटीर धंधे हैं। भारतवर्ष में कुटीर धन्धों का विशेष महत्व है। ग्राम उद्योग संघ इस ओर विशेष प्रयत्न कर रहा है। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारें भी कुटीर धन्धों को प्रोत्साहन दे रही हैं।

भारत में कुछ नवीन धंधे

भारत में युद्ध काल में कुछ नवीन धधों का प्रारम्भ हुआ है। जिनमें नीचे लिखे मुख्य हैं:—

समुद्री जहाज बनाने का धंधा

भारत का समुद्रीय और तटीय व्यापार बहुत अधिक है। भारत का समुद्रीय व्यापार २½ करोड़ टन और यात्रियों की संख्या २ लाख पचास हज़ार के लगभग है। तटीय व्यापार ७० लाख टन है और यात्रियों की संख्या २० लाख है। इसका मूल्य ४ अरब रुपये के लगभग है। अतएव इस बड़े व्यापार के लिए देश की नाविक शक्ति को बढ़ाना आवश्यक है। अभीतक विदेशी समुद्री जहाज़ ही भारत के व्यापार को करते हैं। अभी तक भारतीय जहाज़ केवल २ प्रतिशत समुद्रीय व्यापार और २१ प्रतिशत तटीय व्यापार को करते हैं और देश में केवल ६३ जहाज़ हैं।

अभी तक कलकत्ता और विजगापट्टम में केवल नावें बनाई जाती थीं और जहाज़ों की मरम्मत होती थी किन्तु अभी हाल में सिंधिया स्टीम नैवीगेशन कंपनी ने विजगापट्टम में जहाज़ बनाने का धंधा आरम्भ किया है और पहला जहाज़ बन कर तैयार हो गया है। विजगापट्टम बंदरगाह में पानी गहरा है इस कारण वहाँ बड़े जहाज़ बनाये जा सकते हैं। तातानगर ५५० मील है और बी० यन आर से विजगापट्टम जुड़ा है अस्तु स्टील मिलने की सुविधा है छोटा नागपूर से आवश्यक लकड़ी मिल सकती है और गोंडवाना

कोयले की खानें समीप ही हैं। अतएव विजगापट्टम बंदरगाह को वे सभी सुविधायें उपलब्ध हैं जो कि जहाज बनाने के लिए आवश्यक हैं।

हवाई जहाज़ का धंधा

लड़ाई के दिनों में बंगलौर में हवाई जहाज़ बनाने तथा उनकी मरम्मत करने का कारखाना स्थापित किया गया है। बंगलौर में हवाई जहाज़ बनाने के लिए सभी सुविधायें हैं। भद्रावती का लोहे का कारखाना समीप ही है, दक्षिण मैसूर में हाइड्रोइलैक्ट्रिक की उन्नति होने के कारण जलविद्युत् का खूब विस्तार हुआ है, बंगलौर का जलवायु भी उपयुक्त है, समुद्र से हटकर बंगलौर अन्दर की ओर है तथा वहाँ वैज्ञानिक इंस्टिट्यूट भी है।

मोटरकार का धंधा

युद्ध के समय भारत में दो प्रसिद्ध व्यवसायियों (श्री वालचंद हीराचंद और श्री बिरला) ने दो बड़ी कंपनियाँ मोटर कार तैयार करने के लिए स्थापित की हैं। बिरला द्वारा स्थापित हिन्दुस्तान मोटर कंपनी ने मोटरकार बनाना आरम्भ कर दिया है। भविष्य में यह धंधा उन्नति करेगा इसमें संदेह नहीं।

युद्ध के समय भारत की औद्योगिक दीनता का देशभर को अनुभव हुआ और बम्बई के प्रसिद्ध व्यवसायियों ने एक आर्थिक योजना तैयार की। यही नहीं भारत सरकार ने भी देश में उद्योग धंधों की उन्नति के लिए योजनायें तैयार की हैं। देश में राष्ट्रीय सरकार के स्थापित हो जाने से अब यह आशा होती है कि शीघ्र ही देश के उद्योग धंधे उन्नति करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के वस्त्र व्यवसाय और जापान के वस्त्र व्यवसाय की तुलना कीजिये

२—भारत की औद्योगिक उन्नति के लिए क्या देश में आवश्यक साधन उपलब्ध हैं? विस्तारपूर्वक लिखिए।

३—तातानगर के स्टील के धंधे को क्या सुविधायें प्राप्त हैं। भारत में लोहे और स्टील के धंधे के सम्बंध में जो जानते हों उसका वर्णन कीजिए।

४—नीचे लिखे धंधों के लिए देश में कौनसी भौगोलिक सुविधायें हैं? कागज, दियासलाई, सीमेंट, और शीशा।

५—भारत में गृह उद्योग-धंधों की पिछड़ी हुई दशा का क्या कारण है उनकी उन्नति के लिए क्या प्रयत्न किये जा सकते हैं।

बाईसवां परिच्छेद

गमनागमन के साधन

(Means of Transportation)

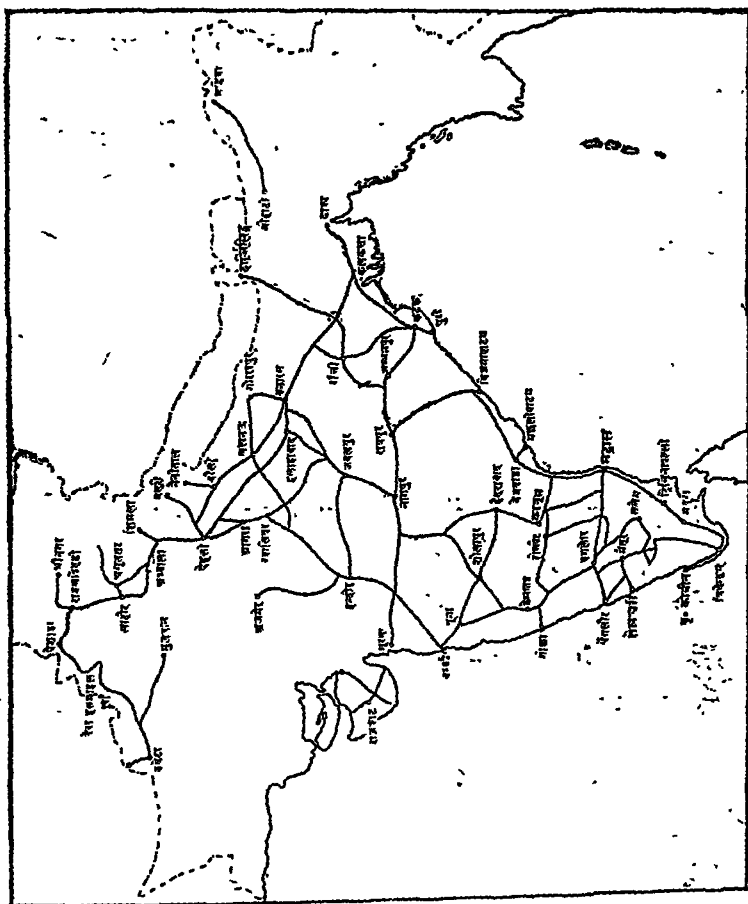
आधुनिक उद्योग-धन्धे और व्यापार गमनागमन के साधनों पर अवलम्बित हैं। जिन धन्धों में कच्चा माल भारी है अथवा कोयले की अत्यन्त आवश्यकता होती है वे तो रेलवे लाइनों की सुविधा होते हुये भी कोयले की खानों से अथवा कच्चे माल से दूर स्थापित नहीं किये जा सकते। जिस प्रकार शक्ति आधुनिक उद्योग-धन्धों के लिये अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार धन्धों के लिए तथा व्यापार के लिये माल ढोने की सुविधाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस देश में माल ढोने तथा गमनागमन के साधनों की कमी है वह कभी औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति नहीं कर सकता।

भारतवर्ष एक विशाल देश है किन्तु यहाँ माल ढोने तथा गमनागमन के साधनों की सुविधायें बहुत कम हैं। अन्य देशों की तुलना में यहाँ सड़कों रेलों और नदी-नहरों के द्वारा माल ढोने की सुविधा कम है।

सड़कें

सड़कें भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से बनाई जाती रही हैं। यह गमनागमन का पुराना साधन है। मोहनजोदरो की खुदाई से यह सिद्ध हो गया है कि ईसा से कई हज़ार वर्ष पहले भी भारतीय पक्की सड़कें बनाना जानते थे। सड़कें दो प्रकार की होती हैं कच्ची (unmetalled) और पक्की (metalled)। कच्ची सड़क वर्षा के दिनों में व्यर्थ हो जाती हैं। गाड़ियाँ उन पर नहीं चल सकतीं। कच्ची सड़कें बनाने में कुछ व्यय नहीं होता। परन्तु व्यापार की दृष्टि से उनका विशेष महत्व नहीं है। पक्की सड़कें अवश्य भारतवर्ष में व्यापार तथा गमनागमन का मुख्य एवं महत्वपूर्ण साधन है। यद्यपि पक्की सड़कों पर भी पुल न होने से तथा वर्षा के दिनों में नदियों में बाढ़ आ जाने से उनका उतना महत्व नहीं है जितना कि रेलों का, किन्तु भारत जैसे विशाल देश में जहाँ रेल अपेक्षाकृत कम हैं सड़कें महत्वपूर्ण मार्ग हैं। यदि भारतवर्ष में पक्की सड़कों पर सब स्थानों पर पुल बना दिये जायें तो

उनकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाये। इस समय बहुत सी सड़कों पर पुल नहीं हैं इसका फल यह होता है कि वर्षा के दिनों में उन सड़कों का अधिक उपयोग नहीं हो सकता। नवम्बर से जून तक जो अस्थायी पुल नदियों पर बना दिये जाते हैं उन पर प्रत्येक गाड़ी तथा जाने वाले व्यक्ति को उतराई देनी होती है। इससे असुविधा तो होती ही है खर्च भी होता है।



भारतवर्ष में लगभग ३ लाख मील सड़कें हैं। इनमें लगभग एक चौथाई पक्की और शेष तीन चौथाई कच्ची सड़कें हैं। पक्की सड़कों में आधी से अधिक प्रायद्वीप में हैं जहाँ कि पथरीली भूमि पर पक्की सड़कें बनाने में सुविधा होती है। कच्ची सड़कें अधिकतर उत्तर भारत विशेष कर सिंध गङ्गा के मैदान में हैं। क्योंकि सिंध गङ्गा के मैदान में भूमि नरम मिट्टी की बनी है और सड़क बनाने के लिए कंकड़ और पत्थर बहुत दूर से लाना

पड़ता है जो वहाँ नहीं मिलता। देश की तीन चौथाई सड़कें सिंध गङ्गा के मैदान में ही हैं। यही नहीं उत्तर भारत में नदियों में बाढ़ आने की संभावना रहती है। बाढ़ों से पक्की सड़कों को भी बहुत हानि पहुँचती है कच्ची सड़कों के बनाने में अधिक व्यय नहीं होता और वर्षा के उपरान्त उसको फिर बना दिया जाता है। इस कारण भी उत्तर भारत में कच्ची सड़कें अधिक है।

भारतवर्ष जैसे विशाल देश की आवश्यकता को देखते हुये तथा अन्य देशों की तुलना में यहाँ सड़के बहुत कम हैं।

प्रतिवर्ग मील क्षेत्रफल पीछे भिन्न भिन्न देशों में सड़कों का माइलेज

जापान—३·००

ब्रिटेन—२·००

फ्रांस—१·८६

जरमनी—१·१६

संयुक्तराज्य अमेरिका—१·००

ब्रिटिश भारत—·१८

प्रति १ लाख मनुष्यों पीछे सड़कों का माइलेज

आस्ट्रेलिया—८२१३

कनाडा—५८१४

संयुक्तराज्य अमेरिका—२८५३

फ्रांस—१३६२

जापान—६८४

जरमनी—५६५

रूस—५४७

ब्रिटेन—२७७

ब्रिटिश भारत—१४७

१६१४—१८ के प्रथम योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त भारतवर्ष में भी मोटर ट्रैफिक बहुत बढ़ी जिसके कारण भारतवर्ष में सड़कों को बनाने की ओर सरकार का विशेष रूप से ध्यान गया। १६३६ के उपरान्त प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सरकारों ने अधिक सड़कें बनवाने के लिए योजनायें बनाईं और इसके लिए बहुत बड़ी रकमें अलहदा रख दी गईं। कारण यह था कि नये शासन विधान में गाँव वालों के हाथ में मताधिकार पहुँच गया। गाँव वालों

के लिए लगान कानून में सुधार और सड़कों को बनवाना, यही दो काम हैं जो कि उन्हें अधिक आकर्षित कर सकते हैं।

भारतवर्ष में कुछ ट्रंक सड़कें हैं जो देश के भिन्न भिन्न भागों को जोड़ती हैं। इन ट्रंक से अन्न सडकें सम्बंधित हैं। वस्तुतः इन ट्रंक सड़कों से देश की अन्य सड़कें मिलती हैं। इस कारण इनका व्यापारिक महत्व अधिक है। इनमें ग्रांड ट्रंक सडक सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण है। यह सड़क पेशावर से कलकत्ते तक जाती है। इसके अतिरिक्त कलकत्ता से मदरास जाने वाली, मदरास से बम्बई जाने वाली, और बम्बई से देहली जाने वाली ट्रंक सड़कें भी महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि ये सड़कें अच्छी अवस्था में रहती हैं और इन पर मोटर ट्रैफिक बहुत बढ़ गया है फिर भी इनमें सुधार की बहुत आवश्यकता है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि दक्षिण में सड़कें अच्छी हैं। परन्तु राजपूताना, सिंध, उड़ीसा और पंजाब में सड़कें बहुत कम हैं। बंगाल में भी अधिकांश कच्ची सडकें हैं। पश्चिमी प्रान्तों में पानी की कमी तथा बिखरी हुई जनसंख्या के कारण तथा पूर्व में वर्षा तथा नदियों की अधिकता के कारण सड़कें नहीं बन सकतीं। पहाड़ी भागों में विशेष कर दक्षिण राजपूताना, मालवा, तथा हिमालय में पहाड़ी प्रदेश होने के कारण सड़कें बनाने में कठिनाई होती है।

१९२० के उपरान्त भारतवर्ष में मोटर ट्रैफिक इतनी अधिक बढ़ गई है कि रेलों से भीषण प्रतिस्पर्द्धा होने लगी है। बात यह है कि मोटर बस थोड़े से फासले में चलती हैं इस कारण मुसाफिरों को अधिक सुविधा प्रदान कर सकती हैं। उदाहरण के लिए यदि इलाहाबाद ज़िले का कोई किसान अपने मुकदमें के लिए गाँव से प्रयाग आना चाहता है तो उसे मोटर कचहरी के समय पर पहुँचा सकता है और रात होते वह मोटर द्वारा घर तक पहुँचा सकता है। परन्तु रेलों के आने जाने के समय एक बहुत बड़े क्षेत्र की सुविधाओं को ध्यान में रख कर निश्चित किया जाता है। इसी प्रकार माल ले जाने में भी मोटर अधिकतर कीमती माल को ही ले जाते हैं और व्यापारी के गोदाम में सामान उतार देते हैं। यही नहीं व्यापारी भी अपने माल के साथ चला आता है। रेलवे लाइनें यह सब सुविधायें प्रदान नहीं कर सकतीं। यहीं नहीं सड़कें राज्य बनवाता है और मोटर उसका उपयोग करते हैं। यही कारण है कि सरकार ने पिछले दिनों पैट्रोल कर बढ़ा कर मोटरों से सड़कों के बनाने और उनकी मरम्मत करने में जो व्यय होता है उसका अधिकांश भाग वसूल करना शुरू कर दिया है। आवश्यकता इस बात

की है कि रेलों और सड़कों की प्रतिस्पर्द्धा को कम किया जाय। बात यह है कि मोटरों द्वारा ७० या ८० मील से अधिक माल किफायत से नहीं भेजा जा सकता। अधिक दूरी तक माल ले जाने के लिए रेलों की आवश्यकता फिर भी रहेगी। साथ ही मोटर से भी लाभ है। इस कारण दोनों प्रकार के साधनों की प्रतिस्पर्द्धा को कम करके उनमें सामंजस्य स्थापित करना चाहिए।

भारतवर्ष में इस बात की आवश्यकता है कि गाँवों में अधिकाधिक सड़कें बनाई जावें। इस समय गाँवों में मार्गों की बहुत असुविधा है। खेती की पैदावार का मंडियों तक लाने में बहुत असुविधा होती है। यदि गाँवों में सड़कें बन जावें तो मोटर द्वारा उनको मंडियों और रेलवे लाइनों से जोड़ा जा सकता है। इससे जहाँ गाँवों की उन्नति होगी वहाँ रेलों को अधिक माल ढोने को मिलेगा। यदि गाँवों में मार्गों की सुविधा हो जाये तो वहाँ धन्धे भी पनप सकते हैं। बिना ग्रामीण मार्गों की उन्नति किये गाँवों की उन्नति नहीं हो सकती।

ब्रिटिश भारत बर्मा तथा देशी राज्यों में कार, लारी तथा मोटर साइकिल सब मिला कर लगभग दो लाख से कुछ कम हैं। इनमें १४% बम्बई में, १३·५% बंगाल में, ११% मदरास में, १०.२५% बर्मा में, ८.५% संयुक्त प्रान्त में, ६% पंजाब में, ३·४% बिहार में, ०·६% उड़ीसा में, ३.४% मध्यप्रान्त में, २·४% आसाम में, १·८% सिंध में, २% सीमा प्रान्त में, १·% देहली में हैं। इसके अतिरिक्त लगभग १५% देशी राज्यों में हैं।

पक्की सड़कों की दृष्टि से बंगाल और मदरास प्रान्त का स्थान प्रथम है। इनके उपरान्त क्रमशः बम्बई, संयुक्त प्रान्त, पंजाब और बिहार का नम्बर है। कच्ची और पक्की सड़कें मिलाकर सबसे अधिक सड़कें बंगाल में हैं।

जलमार्ग (Water Transport)

यद्यपि भारतवर्ष में बहुत सी नदियाँ हैं फिर भी आन्तरिक गमनागमन के लिये उनका उपयोग नहीं होता। अन्य देशों में नदियों के द्वारा बहुत माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाता है। परन्तु भारतवर्ष में नदियों का व्यापार की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं है।

भारतवर्ष में जल मार्गों की उन्नति न होने के दो कारण हैं। (१) यहाँ जल मार्गों की उन्नति में कुछ भौगोलिक कठिनाइयाँ हैं (२) भारत सरकार ने रेलवे कंपनियों के स्वार्थ की ओर अधिक ध्यान दिया और देश के जल मार्गों को उन्नत नहीं किया। ब्रिटिश पूंजी-पतियों का रुपया रेलों में लगा था वे नहीं चाहते थे कि जल मार्गों की उन्नति हो।

भारतवर्ष में वर्षा के दिनों में नदियों में बाढ़ आती है, उस समय नदी

की धारा बहुत तेज़ होती है। इस कारण उसमें नाव खेना कठिन होता है। गरमी के दिनों में अधिकांश नदियाँ सूख जाती हैं केवल बड़ी नदियों में ही पानी रहता है अस्तु उन दिनों नदियों का उपयोग नहीं किया जा सकता। गरमियों में बड़ी नदियों में भी पानी बहुत कम हो जाता है। अधिकतर नदियों के किनारे पर बहुत दूर तक रेती होती है इस कारण नदी के किनारे तक लदी हुई गाड़ियों का आना कठिन होता है। यही नहीं नदियाँ जल्दी जल्दी धार बदलती हैं इस कारण भी उनका अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता।

फिर भी यदि थोड़ी पूँजी लगाई जाती और नदियों के जलमार्ग को उन्नत करने का प्रयत्न किया जाता तो बहुत कम व्यय से देश में जलमार्गों का एक जाल बिछ जाता। गङ्गा और यमुना में बहुत दूर तक नावें आ जा सकती हैं। ब्रह्म पुत्र नद में डिब्रूगढ़ तक स्टीमर आते जाते हैं। पूर्वी बंगाल तथा आसाम में जलमार्गों का बहुत उपयोग होता है क्योंकि इस प्रदेश में बहुत सी छोटी छोटी सहायक तथा नदियों की शाखें बड़ी नदियों को जोड़ती हैं। इस प्रकार यहाँ जलमार्गों का एक जाल सा बिछ गया है। इस प्रदेश में वर्षा के दिनों में नदियों में बहुत बाढ़ आती है इस कारण रेलवे लाइनें कम हैं और सड़कें भी नहीं हैं। अतएव माल अधिकतर नदियों के द्वारा ही नावों से भेजा जाता है। जूट और चावल अधिकतर नदियों से ही ले जाया जाता है। यद्यपि दक्षिण की नदियाँ इतनी सुविधा-जनक नहीं है परन्तु यदि रेलवे लाइनों की दस प्रतिशत पूंजी भी इन नदियों को खेने योग्य बनाने में लगाई जाये तो गोदावरी कृष्णा, भीमा और नीरा व्यापारिक जलमार्ग बन सकती हैं। (के० टी० शाह)

सर० ए० काटन जो कि जलमार्गों के विशेषज्ञ थे, उन्होंने एक पार्लियामेंट की कमेटी के सामने कहा था 'मेरा कहना है कि भारतवर्ष के लिए जलमार्ग अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। रेलवे लाइनों पर जितना व्यय हुआ है उससे आठवें हिस्से में नहरें बनाई जा सकती हैं जो कि माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत कम खर्चे में ले जा सकती हैं। इन नहरों से सिंचाई भी होगी और वे व्यापारिक जलमार्ग का भी काम देंगी। राज्य को इन नहरों से घाटा नहीं होगा।'' सर ए० काटन ने पूरी योजना बनाई थी। उनका कथन था कि ३ करोड़ पौंड में वे भारतवर्ष के सब जल-मार्ग बना सकते हैं। उनकी योजना के अनुसार कलकत्ते से गङ्गा के मार्ग से और कराँची तक सिंध के मार्ग से एक मार्ग बन सकता है। दूसरा मार्ग कोकोनाडा से सूरत तक गोदावरी और ताप्ती को जोड़ देने से बन सकता

है। इसी प्रकार उन्होंने भारतवर्ष में जलमार्गों की एक पूरी योजना तैयार की थी। किन्तु ब्रिटिश पूँजीपतियों ने इसका विरोध किया क्योंकि उनकी पूँजी रेलों में लगी हुई थी। अस्तु भारत सरकार ने इस ओर ध्यान भी नहीं दिया।

बीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में सिंचाई के लिए नहरों को बनाने का कार्य बड़े उत्साह से किया गया। इन नहरों में देश की बहुत पूँजी फंसी हुई है परन्तु भारत सरकार ने नहरों को जलमार्ग बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया। भारत सरकार की उदासीनता का यह परिणाम हुआ कि देश में जल-मार्गों की उन्नति न हो सकी।

भारतवर्ष में थोड़ी सी ही नहरें हैं जिनके द्वारा माल आता जाता है। पंजाब की सरहिंद नहर में हिमालय से लकड़ी लाई जाती है। गंगा तथा जमुना की नहरों में भी थोड़ी खेती की पैदावार एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाई जाती है। बंगाल के पश्चिमी भाग की नहरें इस दृष्टि से अधिक महत्व पूर्ण हैं। हिजली और मिदनापूर नहरें पश्चिम ज़िलों की पैदावार को ले जाती हैं। दक्षिण में बकिंगहम नहर एक महत्वपूर्ण जलमार्ग है। यह नहर कृष्णा को मदरास से जोड़ती है और तट से समान दूरी पर बहती है। बकिंगहम नहर से चावल तथा कपास मदरास को भेजा जाता है। गोदावरी और कृष्णा की नहरों में भी नावें चलती हैं। पूर्व तट की नदियों के डेल्टों में जो नहरें हैं वे सभी माल ले जाने के उपयोग में आती हैं। बिहार में सोन की नहर में भी बहुत माल आता है। अधिकतर इस नहर में कैमूर की पहाड़ी से पत्थर लाया जाता है।

जलमार्गों की दृष्टि से बंगाल, आसाम, मदरास और बिहार महत्वपूर्ण हैं। देश में कुल मिला कर केवल ३८०० मील खेई जाने वाली नहरें हैं इनमें से दो तिहाई केवल मदरास और बंगाल में हैं। बकिंगहम नहर और उड़ीसा नहर समुद्र के पानी को लेती हैं जिससे उनमें यथेष्ट पानी रहता है और बड़ी बड़ी नावें आ जा सकती हैं। देश में येही दोनों नहरें सबसे बड़ी हैं।

गंगा नदी पर बिहार और बंगाल में, तथा ब्रह्मपुत्र नदी पर आसाम और बंगाल में स्टीमर चलते हैं। जितना अधिक जल नदी की धारा में होता है उतना ही बड़ा स्टीमर चल सकता है। हुगली नदी में बड़े बड़े जहाज़ कलकत्ते तक आ जा सकते हैं। किन्तु हुगली में भी बराबर खुदाई होती रहती है, नहीं तो रेत के कारण नदी की गहराई कम हो जाय और जहाज़ों का आना जाना असम्भव हो जाय।

इन जलमार्गों के अतिरिक्त बहुत सा माल समुद्र द्वारा एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाह को जाता है। रेलवे कंपनियां बहुत अधिक किराया लेती हैं इस कारण बहुत सा माल करांची से पश्चिमीय बंदरगाहों को जाता है।

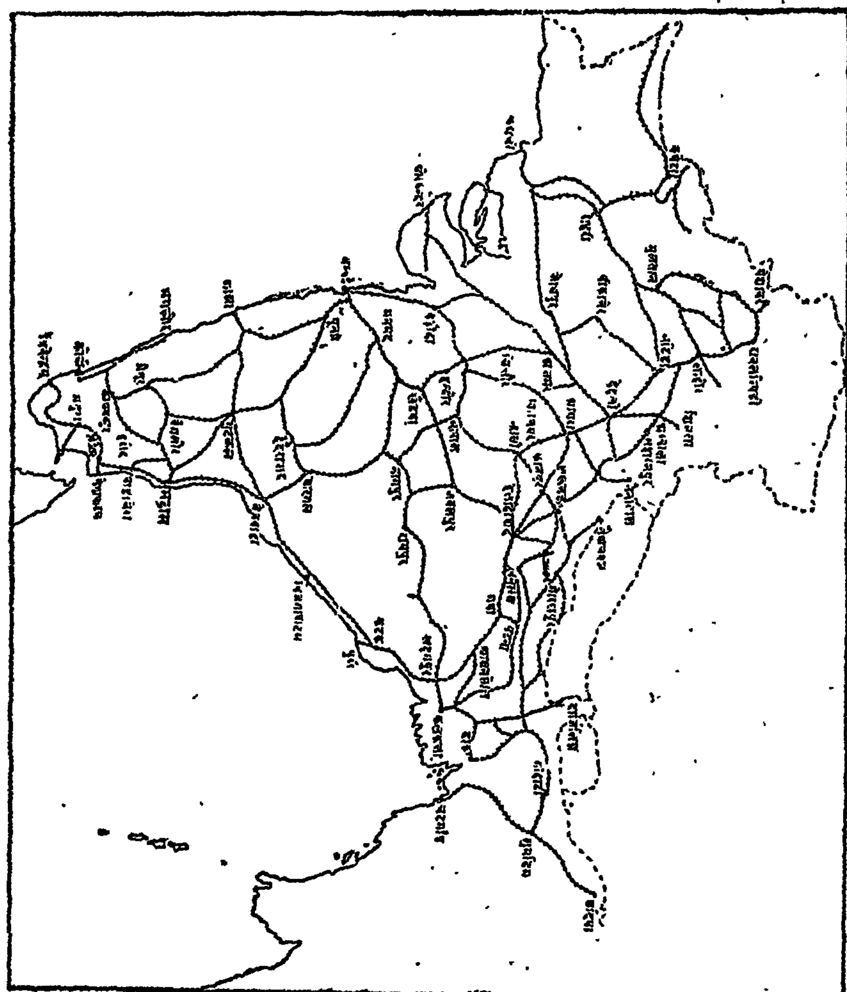
रेलवे लाइन Railway

भारतवर्ष में १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के आरम्भ होने के समय लगभग ४२००० मील रेलवे लाइन थी। किन्तु युद्ध के समय कुछ रेलवे लाइनें उखाड़ दी गई हैं। भारत जैसे विशाल देश में अन्य देशों की तुलना में यह रेलवे माइलेज कम है। भिन्न भिन्न देशों में रेलवे माइलेज इस प्रकार है।

ब्रिटिश द्वीप समूह—२३७०० मील
कनाडा—४२२०० „
आस्ट्रेलिया—२७४०० „
न्यूज़ीलैंड—३७०० „
भारतवर्ष—४२००० „
ब्रि० अफ्रीका—१३६०० „
संयुक्तराज्य अमेरिका—२५०००० „
मैक्सिको—१३५०० „
अरजैनटाइन—२३५०० „
ब्राज़ील—१९९०० „
फ्रांस—२६८०० „
जर्मनी—३६००० „
इटली—१६००० „
पोलैंड—१२४०० „
स्वीडन—१०६०० „
शेष योरोप ७२१०० „
शेष ब्रिटिश साम्राज्य—५००० „
शेष दक्षिण अमेरिका—१५३०० „
सोवियट रूस—४८५०० „
शेष एशिया—३८५०० „
शेष अफ्रीका—१७४०० „
शेष पृथ्वी—१६०० „

भारतवर्ष में गमनागमन तथा माल ले जाने का रेलवे लाइन सबसे महत्वपूर्ण साधन है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि देश में कुल ४२०००

मील रेलवे लाइन है के जो कि क्षेत्रफल की दृष्टि से २५ मील प्रति एक हज़ार वर्ग मील क्षेत्रफल के अनुपात में है । जबकि बैलजियम में प्रति एक हज़ार वर्ग मील पीछे २५० मील, ब्रिटेन में २२० मील; जर्मनी में १७० मील, फ्रांस में १२५ मील, के लगभग है। इस दृष्टि से देश पिछड़ा हुआ है। जिन देशों में औद्योगिक उन्नति हो चुकी है वहाँ प्रति एक हज़ार मील रेलवे माइलेज अधिक हैं।



भारतवर्ष में सबसे अधिक रेलवे लाइनें सिंध और गंगा के मैदान में हैं। देश का लगभग आधे से कुछ ही कम रेलवे माइलेज सिंध और गंगा के मैदान में है। इसका कारण यह है कि यहाँ का धरातल चौरस है, कहीं भी पहाड़ियाँ नहीं हैं और भारतवर्ष के अत्यन्त घने आबाद प्रान्त इन्हीं मैदानों में हैं। उत्तर के मैदान बहुत उपजाऊ हैं और बड़ी बड़ी व्यापारिक

मंडियाँ तथा शहर इन मैदानों में हैं। परन्तु उत्तर के मैदानों में एक कठिनाई भी है। पूर्व में वर्षा अधिक होती है इस कारण नदियों में बाढ़ आती है और रेलवे लाइनों को हानि पहुँचती है। साथ ही उत्तर के मैदानों में नदियाँ भी बहुत हैं इस कारण पुल बनाने में बहुत व्यय होता है। उत्तर की रेलवे लाइनें दो बंदरगाहों पर समाप्त होती हैं। पूर्व में कलकत्ते पर और पश्चिम में करांची पर।

उत्तर के मैदानों में मेन लाइनों के अतिरिक्त शाखायें भी बहुत हैं। वस्तुतः इन मैदानों में रेलवे लाइनों का एक जाल सा बिछा हुआ है। देश के अन्य किसी भी भाग में इतनी अधिक रेलवे लाइनें नहीं हैं। उत्तर के मैदानों की सबसे महत्वपूर्ण रेलवे लाइन ई० आई० आर० है। यह कलकत्ते को पश्चिम बंगाल, बिहार और संयुक्तप्रान्त से जोड़ती हैं। इसकी बहुत सी शाखायें हैं। यह रेलवे लाइन ईस्टर्न बंगाल रेलवे लाइन से नेहाटी पर, B. N. W. R. से मोकमेह, पटना और भागलपूर पर, G. I. P. से कानपूर और जबलपूर पर और N. W. R. से गाज़ियाबाद पर मिलती है। सबसे अधिक माल ई. आई. और से ही आता जाता है। कानपूर पर E. I. R., B. B. & C. I. R. भी से मिलती है। ई० आई० आर० वास्तव में देश की सबसे महत्वपूर्ण रेलवे लाइन है। यह कलकत्ते के बंदरगाह को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के खनिज क्षेत्र तथा गंगा की उपजाऊ घाटी से जोड़ती है। १६२१ में भारत सरकार ने अपने हाथ में ले लिया।

उत्तर भारत की दूसरी महत्वपूर्ण रेलवे लाइन N. W. R. है। यह देश की सबसे लम्बी रेलवे लाइन है (६६०० मील) यह करांची के बंदरगाह को सिंध और पंजाब से मिलाती है। पंजाब के गेहूँ को यही रेलवे करांची के बंदरगाह तक ले जाती है। किन्तु यह रेलवे लाइन विशेष-कर सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

E. B. R. पूर्वी बंगाल की मुख्य रेलवे है। यह प्रदेश जूट चावल और तम्बाकू बहुत उत्पन्न करता है। यहाँ का पैदावार E. B. R. तथा नदियों के द्वारा कलकत्ते को पहुँचती है। E. B. R. कटिहार पर B. N. W. R. से मिलती है और तिलहन तथा अनाज को कलकत्ते लाती है।

बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे (B.N.W.R.) बंगाल के पश्चिमी भाग तथा उत्तरी बिहार में फैली हुई है। R. K. R. को B. N W. R. का संयुक्तप्रान्त में विस्तार ही समझना चाहिए, जो रुहेलखंड और कुमायूं प्रदेश में फैली हुई है। B. N. W. R. पर पैसेंजर ट्रैफिक के अतिरिक्त चावल, अनाज, शक्कर, तिलहन और खाल की ट्रैफिक बहुत है। इसके

अतिरिक्त R. K. R पर शक्कर, हिमालय की लकड़ी तथा अनाज की ट्रैफिक बहुत है।

B. N. R. कलकत्ते को नागपूर तथा मद्रास से जोड़ती है। नागपूर पर यह G. I. P. से मिली हुई है। इस प्रकार इसके द्वारा कलकत्ता और बम्बई के बंदरगाह एक दूसरे से सम्बंधित हैं। वाल्टेर पर यह M. & M. S. R. से मिलती है। B. N. R. झरिया की खानों को तथा टाटा कंपनी की लोहे की खानों को जोड़ती है। यह रेलवे पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में से होकर जाती है जहाँ आबादी घनी नहीं है।

प्रायद्वीप में रेलवे लाइनें कम हैं। इस भाग में धरातल पथरीला और ऊबड़-खाबड़ है। कहीं कहीं पहाड़ियाँ मार्ग में आ गई हैं जिन्हें सुरंगें बना कर पार किया गया है। साथ ही इस भाग में आबादी उतनी घनी नहीं है जितनी कि गंगा की घाटी में है। यहाँ उतनी पैदावार भी नहीं है। धरातल इतना अधिक ऊँचा-नीचा है कि G I. P. में बहुत से स्थानों पर दो ऐंजिन लगाने पड़ते हैं। इन कारणों से प्रायद्वीप में रेलवे बनाना उत्तर की अपेक्षा अधिक व्यय साध्य है। कहीं कहीं रेलवे लाइनों को किसी पहाड़ को अथवा गार को बचाने के लिए बहुत चक्कर काट कर जाना पड़ता है। और कहीं कहीं पुल बनाकर इन खाइयों को पार करना पड़ता है।

प्रायद्वीप में G. I. P. सबसे महत्त्वपूर्ण रेलवे लाइन है। यह प्रायद्वीप में फैली हुई है। मध्यप्रान्त, मध्य भारत, दक्षिण पश्चिम राजपूताना और प्रायद्वीप का अधिकांश भाग इन लाइन पर ही निर्भर है। यह बम्बई और मद्रास, बम्बई और देहली, को जोड़ती है। यद्यपि यह रेल कम घने आबाद वाले प्रदेश में से होकर जाती है फिर भी अकेली लाइन होने के कारण इसका बहुत महत्व है। यह उत्तर भारत को बम्बई के बन्दरगाह से जोड़ती है और भारत के कपास उत्पन्न करने वाले भाग की मुख्य रेल है। कपास के अतिरिक्त यह तिलहन, अनाज, सन, खनिज पदार्थ, शक्कर, तम्बाकू, और लकड़ी बम्बई की ओर ले जाती है। यह भी राज्य की रेलवे है।

B. B. & C. I. R. भी बहुत लम्बी रेल है। राजपूताना, मालवा और गुजरात में फैली हुई है। यह राजपूताना, मालवा और गुजरात को बम्बई से जोड़ती है। इसके अतिरिक्त यह देहली संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों को भी जोड़ती है। नमक, कपास, अनाज, लकड़ी, अफीम, ऊन और लकड़ी की ट्रैफिक इसके द्वारा होती है।

M. & S. M. R. प्रायद्वीप के दक्षिण भाग में फैली हुई है। यह G. I. P. से रायचूर पर और B. N. R. से वाल्टेर पर मिलती है। यह

एक ओर मदरास और कलकत्ता तथा दूसरी ओर मद्रास और बम्बई को मिलाती है। यह जिस प्रदेश में है वह घना आबाद और उपजाऊ है। इस पर अनाज, कपास, तिलहन, नमक, शक्कर, तम्बाकू, लकड़ी और खाल की ट्रैफिक बहुत होती है।

भारतवर्ष में थार और राजपूताना की मरुभूमि, तथा छोटानागपूर और उड़ीसा के पथरीले एवं ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में रेलवे लाइनों का विस्तार नहीं हुआ है। इन प्रदेशों में आबादी बहुत कम है अतएव रेलवे लाइनों की अधिक आवश्यकता भी नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार ने रेलवे लाइनों को अपने अधिकार में लेने की नीति बना ली है। आकवर्थ रेलवे कमेटी की सिफारिश के अनुसार इस नीति को अपनाया गया है। देश की औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति बहुत कुछ रेलों पर निर्भर है। इस कारण यह आवश्यक है कि रेलों की नीति भारतीय धंधों के प्रति सहानुभूति पूर्ण हो। रेलवे कंपनियों के प्रति भारतीयों को यही शिकायत रही है कि उन्होंने भारतीय धंधों को प्रोत्साहन नहीं दिया। सब भारतीय रेलों का राज्य के अधिकार में आ जाने से यह शिकायत दूर हो जायगी।

रेलों के विस्तार से देश को बहुत से लाभ हुये हैं। भारत जैसा विशाल देश एक सूत्र में बँध गया। वह रेलों के ही कारण हो सका। आज रेलों के द्वारा देश के सब भाग एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। रेलों के द्वारा आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार भी बहुत बढ़ गया है। रेलवे लाइनों के समीप बड़ी बड़ी व्यापारिक मंडियाँ तथा औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये हैं। रेलवे लाइनों को बनाने तथा उनके लिए आवश्यक वस्तुओं को बनाने तथा डिब्बों की मरम्मत करने के लिए बहुत सी वर्कशाप खोली गई हैं जिनसे देश में कुशल मजदूरों की संख्या बढ़ी है। बहुत से धंधे देश में केवल इसलिए स्थापित हुये क्योंकि रेलवे लाइनों के खुलने से देश में उन वस्तुओं की मांग उत्पन्न हो गई। रेलवे लाइनों के खुल जाने से हमारे गाँवों की दूरी भी नष्ट हो गई। रेलों के बनने से पूर्व भारतीय गाँव आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी थे। प्रत्येक गाँव में स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही फसलें उत्पन्न की जाती थीं। रेलों के बन जाने से व्यापारिक खेती सम्भव हो सकी। आज जो भिन्न भिन्न प्रदेशों में कपास जूट इत्यादि की बहुत खेती होती है उसका आज केवल यही कारण है कि रेलों द्वारा यह माल बाहर भेजा जा सकता है। संक्षेप में रेलों के बन जाने से सारा भारतवर्ष एक हो गया। इस दृष्टि से उनका सामाजिक तथा राजनैतिक महत्व भी कम नहीं है।

जहाँ रेलों से बहुत से लाभ हुये हैं वहाँ रेलों के बनने से यहाँ के कुटीर उद्योग-धंधों को बहुत हानि पहुँची। बहुत से धंधे तो नष्ट हो गये। क्योंकि रेलों के बन जाने से विदेशों का तैयार माल गाँवों तक पहुँच जाता है। परन्तु रेलों के द्वारा ही भारतीय उद्योग-धंधों की स्थापना हो सकी है यह न भूल जाना चाहिए।

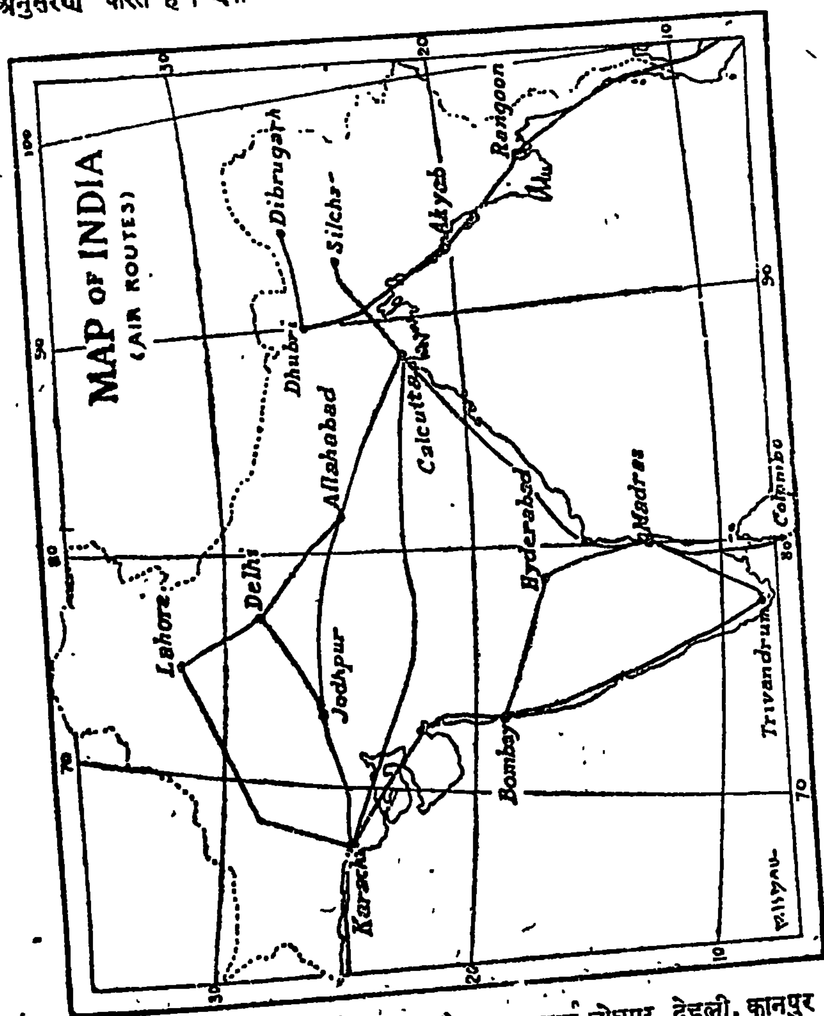
भारतवर्ष में रेलवे लाइनों का निर्माण १८५० के बाद होना शुरू हुआ। आरम्भ में सरकार ने विदेशी कम्पनियों को एक निश्चित मुनाफे की गरंटी दी थी। जिस साल रेलों को घाटा होता तो सरकार उसे पूरा कर देती। ऐसा होने से विदेशी कंपनियाँ मनमाना खर्च करने लगीं और सरकार को बहुत घाटा भरना पड़ा। अब सरकार ने रेलवे कंपनियों से रेलों को मोल लेने की नीति अपनाई। भारतीय रेलों का प्रबंध अब भी दोषपूर्ण है। तीसरे दर्जे के यात्रियों की कैसी दुर्दशा होती है यह किसी से छिपा नहीं है। माल भी हफ्तों पड़ा रहता है और व्यापारियों को डिब्बे नसीब नहीं होते। रेलों के किराये की नीति भी ऐसी है कि जिससे धंधों की उन्नति में रुकावट होती है। इसके अतिरिक्त रेलों में जो सामान काम आता है वह विदेशों से मँगाया जाता है। देश में उसे बनाने का प्रबंध नहीं किया जाता। आवश्यकता इस बात की है कि रेलों का प्रबंध राष्ट्र के हित को दृष्टि में रख कर किया जाय।

हवाई जहाज़ (Air Transport)

भारतवर्ष में अभी हवाई जहाज़ द्वारा आने जाने की अधिक सुविधा नहीं है। किन्तु भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय वायु मार्ग के रास्ते में है इस कारण इसका महत्व है। जिन जहाज़ों को योरोप से आस्ट्रेलिया अथवा सुदूर पूर्व को जाना होता है उन्हें भारतवर्ष में से गुज़रना पड़ता है। योरोप तथा सुदूर पूर्व और आस्ट्रेलिया को आने जाने वाले जहाज़ तीन राष्ट्रों के हैं। ब्रिटेन का हवाई लाइन इम्पीरियल येअरवेज़ के नाम से प्रसिद्ध है, फ्रांस का येअरफ्रांस और हालैंड का K. L. M. के नामों से प्रसिद्ध हैं।

इन सब लाइनों के जहाज़ कराँची और कलकत्त के मार्ग से जाते हैं। Imperial Airways और Indian Transcontinental Airways Ltd. का सप्ताह में पाँच बार जहाज इङ्गलैंड और भारत आता-जाता है। योरोप से जो वायुमार्ग आस्ट्रेलिया को जाता है वह समुद्र तट के साथ साथ जाता है, अस्तु कराँची और कलकत्ता को वह छूता हुआ जाता है। डच लाइन (K. L. M) तथा फ्रैंच लाइन जो क्रमशः एम्सटर्डम से बैंडियांग तथा पेरिस से हनोई तक जाती हैं कराँची और कलकत्ते के मार्ग से ही जाती है। बीच में यह जहाज़ जोधपुर और इलाहाबाद के मार्ग से जाते

हैं। इंपीरियल येअरवेज़ तथा Indian Transcontinental Airways Ltd. के जहाज़ करांची और कलकत्ता के बीच में दो मार्गों का अनुसरण करते हैं। एक मार्ग तो राजसमंद (उदयपूर) ग्वालियर, और



इलाहाबाद होता हुआ कलकत्ता जाता है। दूसरा मार्ग जोधपुर, देहली, कानपुर और इलाहाबाद होता हुआ लखनऊ जाता है। इन तीनों विदेशी कंपनियों के जहाजों को करांची और कलकत्ते पर उतरना ही पड़ता है इसलिए यह दो प्रधान हवाई अड्डे बन गये हैं।

भारतवर्ष में भी तीन कंपनियों के जहाज़ चलते हैं। (१) ताता संस कंपनी के जहाज मदरास और करांची के बीच में उड़ते हैं। इसी कंपनी के जहाज कोलम्बो को भी जाते हैं। इन जहाज़ों का मार्ग करांची से भुज,

अहमदाबाद, बम्बई, हैदराबाद, मदरास, त्रिचनापोली होते हुये कोलम्बो जाते हैं। इसी कंपनी ने एक सर्विस बम्बई से इंदौर, भूपाल, ग्वालियर होते हुये देहली को चलाई है।

इंडियन नेशनल येअरवेज़ नामक दूसरी कंपनी करांची और लाहौर के बीच में जहाज उड़ाती है। तीसरी कंपनी येअर सर्विस आव इंडिया बम्बई से काठियावाड़ राज्यों और बम्बई से पूना और कोल्हापूर को हवाई जहाज़ उड़ाती है। क्रमश: हवाई जहजों का महत्व बढ़ता जा रहा है। भविष्य में डाक ले जाने तथा मुसाफिरों को ले जाने में इनका अधिकाधिक उपयोग होगा।

पिछले दिनों भारत में हवाई जहाजों का यात्रा के लिये उपयोग बढ़ गया है और लगभग १०,००० मील का हवाई मार्ग देश में प्रस्तुत हो गया है।

इस समय देश में नीचे लिखी कंपनियाँ अपने हवाई जहाज़ उड़ाती हैं।

इंडियन नेशनल येअरवेज़ लिमिटेड

देहली-कलकत्ता
देहली-करांची
देहली पेशावर
देहली-लखनऊ
देहली-मदरास
देहली-लाहौर
देहली-अहमदाबाद

ताता येअर लाइन्स (Tata Air Lines)

देहली-बम्बई
करांची-बम्बई
बम्बई-कोलम्बो
बम्बई-कलकत्ता

येअर सर्विसेज़ आव इंडिया लिमिटेड

बम्बई-भुज
भुज-कराची
बम्बई-लखनऊ

दक्षिण येअरवेज़ लिमिटेड (Deccan Airways Ltd.)

देहली-मदरास
हैदराबाद-बंगलोर

इनके अतिरिक्त डालमिया जैन येअरवेज़ तथा बिरला ब्रदर्स का भारत येअरवेज़ नामक कंपनियां और स्थापित हो गई हैं। आशा है कि भविष्य में भारत में हवाई जहाज़ों का अधिकाधिक उपयोग होगा।

समुद्र और जहाज़

प्राचीन काल में भारतवर्ष में जहाज़ बनाने का धंधा उन्नत अवस्था में था। भारतवर्ष के बने हुये जहाज़ समुद्र में दूर दूर जाया करते थे। यहाँ के नाविक जहाज-रानी के लिये प्रसिद्ध थे। पर विदेशियों के शासन में यहाँ का यह धंधा भी नष्ट हो गया। अंग्रेजी सरकार ने अपने यहां के जहाज़ी कारबार को प्रोत्साहन देने के लिये यहाँ के जहाज़ी कारबार को प्रोत्साहन नहीं दिया। भारत का



हिमालय के दर्रों का मान चित्र

१—मकरान का दर्रा
२—बोलन का दर्रा
३—गोमल का दर्रा
४—खैबर का दर्रा
५—कराकोरम का दर्रा
६—शिपकी का दर्रा
७—चुंबी घाटी का दर्रा
८—मनीपुर का दर्रा
९—तैजू गैप का दर्रा
१०—ऐन का दर्रा
११—तौं गूप का दर्रा

सारा समुद्री व्यापार विदेशी-जहाज़ों द्वारा ही होता है। भारत के व्यापारियों ने इस बात का आन्दोलन किया और हाजी में इस आशय का बिल एसैम्बली में उपस्थित भी किया कि भारत का तटीय व्यापार भारतीय जहाज़ों

के लिये ही सुरक्षित कर दिया जाय। यदि भारत का तटीय व्यापार भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित कर दिया जाय और उन्हें विदेशी जहाज़ी कंपनियों की प्रतिद्वन्दता का सामना न करना पड़े तो थोड़े ही समय में भारत का जहाज़ी कारबार फिर चमक उठे और देश का वैदेशिक व्यापार भी भारतीय जहाज़ों के द्वारा होने लगे। ऐसा होने से बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों को रोज़गार मिल सकता है। इस समय भारतीय जहाज़ तटीय व्यापार का केवल २१ प्रतिशत और समुद्री व्यापार का केवल २ प्रतिशत व्यापार पाते हैं। विदेशी कंपनियाँ सारे व्यापार को हथियाये हुये हैं। भविष्य में देशी कंपनियों को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

कारवाँ के मार्ग (Caravan Routes)

यद्यपि भारत की स्थल सीमा बहुत विस्तृत है (६००० मील) किन्तु व्यापार बहुत कम होता है। सीमा पर सघन बन और ऊँचे पहाड़ों के कारण मार्गों की सुविधा नहीं हो सकी इस कारण व्यापार बहुत कम होता है। उत्तरी सीमा पर कोई रेलवे लाइन नहीं है। जो कुछ व्यापार होता है वह याकों, खच्चरों, ऊँटों, घोड़ों के द्वारा होता है। यह कारवाँ मार्ग भारत को ईरान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तिब्बत और नैपाल से मिलाता है।

इन देशों से भारत को मिलाने वाले पाँच मुख्य मार्ग हैं :—

(१) चमन (बलूचिस्तान में) से खोजाक दर्रे में होकर कंदहार और हिरात को।

(२) क्वेटा से जाहिदान तक (जो ईरान और बलूचिस्तान सीमा पर है) रेल द्वारा (एन डब्लू आर) और वहाँ से कारवाँ द्वारा ईरान को। युद्धकाल में युद्ध सामिग्री को शीघ्र ही पहुँचाने के उद्देश्य से जाहिदान से तेहरान तक मोटर के लायक पक्की सड़क बन गई है।

(३) पेशावर से खैबर के दर्रे में से होकर जलालाबाद तक।

(४) पंजाब में 'अटक' से चित्राल और हिन्दूकुश होकर काशगर (सिनकियांग में) तक।

(५) डेरा इस्माइल खाँ से गोमल से दर्रे (७५०० फिट) में से होकर कलात और कंदहार तक।

एक दूसरा भी रास्ता है जो 'लेह' (काश्मीर में) से काश्मीर और तिब्बत तक जाता है। यह अत्यन्त कठिन मार्ग है और इस मार्ग में कराकोरम का दर्रा (१८००० फीट) भी पड़ता है।

तिब्बत के लिए उत्तर भारत में दार्जलिंग, नैनीताल और बेतिया से मार्ग जाते हैं।

उत्तर पूर्वी आसाम में 'लाडो' से बर्मा होकर जो मार्ग चीन को जाता है वह पिछले युद्ध में बहुत महत्वपूर्ण बन गया। पहले इस मार्ग का नाम लाडो बर्मा रोड था किन्तु अब स्टिवैल-रोड के नाम से पुकारते हैं। लाडो से यह मार्ग भामो जाता है। लाशो से एक स्वतंत्र मार्ग भी भामो तक जाता है। भामो से यह मार्ग पूर्व की ओर जाता है और ऊँचे पहाड़ों को पार करता हुआ 'कुनमिंग' पहुँचता है। 'लाडो' से कुनमिंग तक १०४४ मील की दूरी है। यही मार्ग एक हज़ार मील चलकर 'चुंगकिंग' पहुँचता है। युद्ध के समय इस मार्ग को बहुत अधिक सुधार दिया गया जिससे कि चीन को युद्ध सामिग्री भेजी जाती थी। भविष्य में इस मार्ग के कारण भारत और चीन का व्यापार बढ़ेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में रेलों से क्या लाभ हुए हैं उनका वर्णन कीजिए।

२—उत्तर भारत के मैदानों में रेलों का विस्तार इतना अधिक क्यों हुआ है विस्तार पूर्वक बतलाइए।

३—भारत के जलमार्गों का विवरण दीजिए।

४—रेल और सड़कों की प्रतिस्पर्द्धा से देश को क्या हानि है और उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

तेईसवां परिच्छेद

भारत का व्यापार (Trade)

व्यापार (Trade)

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। इस कारण उसके व्यापार में कृषि जन्य पदार्थों की अधिकता होना स्वाभाविक ही है। भारत का निर्यात व्यापार अधिकतर खेती की पैदावार कपास, जूट तथा तिलहन इत्यादि तक ही सीमित है। व्यापार के खेती से सम्बंधित होने के कारण जब कभी खेती को हानि पहुँच जाती है तो व्यापार को बहुत हानि पहुँचती है और निर्यात बहुत कम होता है। जो देश कि कृषि प्रधान देश हो उसके व्यापार में भारी पदार्थों का रहना स्वाभाविक ही है और भारतवर्ष में माल ढोने के साधनों की बहुत कमी है। यह कमी देश के व्यापार की उन्नति में बाधक होती है। जब से देश में रेलों और सड़कों का विस्तार हुआ है तथा स्वेज़-नहर खुली है तब से भारतवर्ष का विदेशी व्यापार बढ़ गया है। इन सुविधाओं के फल स्वरूप ही भारतवर्ष की पैदावार अन्य देशों को पहुँच पाती है और भारतवर्ष अन्य देशों से तैयार माल मँगाता है।

भारतवर्ष एक निर्धन देश है। इस कारण अन्य देशों की तुलना में उसका विदेशी व्यापार बहुत कम है। १९३८ में भारतवर्ष से १६२३०००,००० रु० का सामान बाहर भेजा गया और १,५०,१०,००,००० रु० का सामान देश में बाहर से आया। भारतवर्ष में लगभग ४० करोड़ मनुष्य निवास करते हैं परन्तु इसका विदेशी व्यापार जापान जैसे छोटे देश की तुलना में कम है। ब्रिटेन का विदेशी व्यापार भारतवर्ष से कई गुना अधिक है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष में सम्पत्ति की उत्पत्ति कम है। इस कारण विदेशी व्यापार भी बहुत कम है। भारतवर्ष की खेती तथा उद्योग-धन्धे सभी हीन दशा में हैं। इस कारण उत्पत्ति कम है और जब तक हम अपनी उत्पत्ति को नहीं बढ़ा सकते तब तक हम बाहर से भी अधिक माल कैसे मँगा सकते हैं। व्यापार तो केवल वस्तुओं का परिवर्तन मात्र है। यद्यपि भारत का आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार से दस गुना है फिर भी अन्य देशों की तुलना में वह भी कम है। क्योंकि अधिकांश वस्तुयें गाँव वाले अपनें उपयोग के लिए स्वयं उत्पन्न कर लेते हैं।

भारतीय वैदेशिक व्यापार के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

(१) अधिकांश भारतीय व्यापार समुद्र के द्वारा होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के पड़ोसी देश अफ़गानिस्तान, तिब्बत तथा मध्य एशिया के प्रदेश बहुत पिछड़े हुये और निर्धन देश हैं। इन देशों का व्यापार नाम मात्र को है न वे भारत से अधिक खरीदते ही हैं और न अधिक बेंचते ही हैं। ऊपर से इन देशों का धरातल ऊबड़ खाबड़ है और हिमालय के ऊँचे पहाड़ों के कारण मार्गों की सुविधा भी नहीं है। अस्तु यहाँ का वैदेशिक व्यापार मुख्यतः समुद्र के द्वारा होता है। कलकत्ता, बम्बई, कराँची, और मदरास मुख्य व्यापारिक केन्द्र हैं इनके अतिरिक्त पूर्वी तथा पश्चिमी तट पर और भी छोटे छोटे बन्दरगाह हैं जो तटीय व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(२) भारतवर्ष का वैदेशिक व्यापार प्रति मनुष्य पीछे अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। क्योंकि देश निर्धन है और यहाँ सम्पत्ति की उत्पत्ति कम है।

(३) बाहर से आने जाने वाले पदार्थों में ७५% प्रतिशत तैयार माल होता है। क्योंकि देश में औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है और अधिकांश निर्यात किये जाने वाले पदार्थ खेती की पैदावार होते हैं क्योंकि देश में खेती का ही धन्धा मुख्य है।

(४) भारतवर्ष का निर्यात (Export) आयात (Imports) से सदैव अधिक होता है। भारतवर्ष के व्यापार की यही विशेषता है कि यहाँ का निर्यात आयात से सदैव अधिक रहता है। साधारणतः व्यापार का अन्तर भारत के पक्ष में रहता है।

(५) भारतवर्ष में आने वाले माल का लगभग आधा केवल ब्रिटेन से आता है और शेष अन्य देशों से।

(६) हमारे निर्यात में कपास कच्ची अथवा वस्त्र के रूप में, जूट कच्चा, अथवा जूट का सामान, चाय, तिलहन चावल, लाख और चमड़ा यह ६ पदार्थ कुल निर्यात का लगभग ८० प्रतिशत है।

(७) कपास हमारे देश की सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक वस्तु है। निर्यात होने वाले पदार्थों में कपास का सबसे अधिक मूल्य है और आयात पदार्थों में वस्त्रों (सूती) का मूल्य सबसे अधिक है।

भारत में विदेशों से आने वाले मुख्य वस्तुओं का स्थान

सूती वस्त्र और कपास

दूसरे महायुद्ध के आरम्भ होने से पूर्व अर्थात १९३८-३९ में भारत में केवल १४ करोड़ रुपये से कुछ अधिक का सूती वस्त्र आया। सूती वस्त्र भेजने वालों में क्रमशः मुख्य देश नीचे लिखे थे:—ब्रिटेन, जापान, चीन, स्विटज़रलैंड, हालैंड, फ्रांस, इटली, जरमनी। मुख्य देश ब्रिटेन और जापान थे जो सूती वस्त्र भारत को भेजते थे। ब्रिटेन ५० प्रतिशत और जापान ४३ प्रतिशत कपड़ा युद्ध के पूर्व भेजता था। पिछले दिनों भारत विशेषतः मिश्र से कपास मंगवाने लगा है। युद्ध काल में विदेशों से आने वाला सूती कपड़ा बहुत कम हो गया और जापान का युद्ध आरम्भ हो जाने पर तो विदेशों से सूती वस्त्र आना प्रायः बंद हो गया।

लोहा और स्टील का सामान तथा मशीनें

युद्ध के पूर्व १९३९ में लोहा स्टील तथा यंत्र १९ करोड़ रुपये से अधिक के आये। पिछले दिनों भारत में मशीनों का आयात (Import) बढ़ रहा है। यह इस बात का चिन्ह है कि भारत में उद्योग-धंधों की उन्नति हो रही है। किन्तु युद्ध काल में मशीनों का आना बहुत कम हो गया। इस देश में मशीनों की बहुत माँग है क्योंकि देश में नये नये धंधों के स्थापित करने की आवश्यकता है। अभी तो मशीनें बाहर से नहीं आ रही हैं क्योंकि मशीन बनाने के कारखाने अपने ही देशों को मशीनें नहीं दे पा रहे हैं। किन्तु भविष्य में मशीनों का आयात (Import) बहुत बढ़ जावेगा इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। युद्ध के पूर्व स्टील और मशीनें मुख्यतः ब्रिटेन, जरमनी, संयुक्तराज्य अमेरिका, बेलजियम, फ्रांस और जापान से आती थीं।

मोटरकार इत्यादि

मुख्यतः ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका, कनाडा, जरमनी, और इटैली से आते हैं। प्रतिवर्ष ५ करोड़ रुपये के मोटरकार यहाँ आते हैं।

कागज़

भारत में कागज़ ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका, जरमनी, स्वीडन, और नारवे से आता है।

रेशम तथा रेशमी कपड़ा

जापान, चीन, इटली, और ब्रिटेन से आता है। जापान ७० प्रतिशत से अधिक रेशम भारत को भेजता था।

ब्रिटेन जरमनी, जापान, तथा संयुक्तराज्य अमेरिका से आते हैं १९३८

रसायनिक पदार्थ (Chemicals) में भारत ने ६ करोड़ रुपये के रसायनिक पदार्थ विदेशों से मंगवाये।

पैट्रोलियम तथा मिट्टी का तेल भारत में पैट्रोलियम तथा मिट्टी का तेल बर्मा, ईरान, चीन, बोरनियो, सुमात्रा, तथा संयुक्तराज्य अमेरिका से आता है।

निर्यात (Export)

कपास भारत युद्ध के पूर्व कपास मुख्यतः ब्रिटेन, जापान, जरमनी, फ्रांस, इटली बैलजियम, निदरलैंड और चीन को भेजता था। युद्ध के पूर्व सबसे अधिक कपास जापान लेता था (५५%)।

किन्तु युद्ध काल में जापान से आने वाले सूती कपड़े के बन्द हो जाने के कारण एशिया और अफ्रीका में कपड़े का अकाल पड़ गया अतएव भारत प्रति वर्ष बहुत बड़ी राशि में कपड़ा ईराक़, ईरान, स्टेट सैटिलमैंट, मिश्र, दक्षिण अफ्रीका, अरेबिया इत्यादि देशों को भेजने लगा। भविष्य में भारत अपने इन बाजारों को कहाँ तक रख सकेगा यह कहना कठिन है।

चाय

तिलहन

कच्ची रुई

कच्चा जूट

मूंगफली

गेहूं

चावल

जूट (कच्चा) भारतवर्ष १७ करोड़ रुपये से अधिक का कच्चा जूट विदेशों को भेजता है। ब्रिटेन, जरमनी, संयुक्तराज्य अमेरिका, फ्रांस, इटली, बैलजियम और स्पेन जूट मँगाने वालों में मुख्य हैं। युद्ध के पूर्व ब्रिटेन २५ प्रतिशत और जरमनी १६ प्रतिशत जूट खरीदता था।

जूट का सामान

जूट का सामान मोल लेने में संयुक्तराज्य अमेरिका, अरजैनटाइन, बेलजियम, कनाडा, और जापान मुख्य हैं। सबसे अधिक जूट का सामान (३२ प्रतिशत) संयुक्तराज्य अमेरिका, लेता है। साधारणतः भारत २४ करोड़ रुपये का जूट का सामान बाहर भेजता है। किन्तु युद्ध में जूट के बोरों इत्यादि की माँग बहुत बढ़ गई। १९४२ में तो भारत ने ५४ करोड़ रुपये का जूट का सामान बाहर भेजा।

चाय (Tea)

भारत की चाय मुख्यतः ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, संयुक्तराज्य अमेरिका, ईरान, अरेबिया, तथा लंका को जाती है। ८९ प्रतिशत चाय केवल ब्रिटेन ही मोल लेता है।

खालें (चमड़ा)

ब्रिटेन, संयुक्तराज्य, अमेरिका, जरमनी, जापान, फ्रांस, इटैली, और हालैंड मुख्यतः भारत से खालें खरीदते हैं। ब्रिटेन (६७ प्रतिशत) और संयुक्तराज्य अमेरिका (१५ प्रतिशत) सबसे अधिक खालें खरीदते हैं।

तिलहन (Oil-seeds)

तिलहन मुख्यतः ब्रिटेन, फ्रांस, जरमनी, हालैंड, इटैली, बेलजियम और सीलौन को जाता है। युद्ध के पूर्व ब्रिटेन २८ प्रतिशत और इटली १६ प्रतिशत तिलहन भारत से लेता था।

धातुयें (कच्ची)

ब्रिटेन, जापान, जरमनी, बेलजियम, फ्रांस और संयुक्तराज्य अमेरिका को जाती है।

दूसरे युद्ध के फल स्वरूप भारत के विदेशी व्यापार में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि लड़ाई समाप्त हो गई किन्तु

पूर्ववत व्यापार स्थापित होने में अभी कुछ वर्ष लगेंगे। युद्ध काल में भारत ने विदेशों को अधिकाधिक तैयार माल (manufactured goods) भेजा और विदेशों से कच्चे माल (Raw materials) का आयात कम हो गया। एक और भी परिवर्तन हुआ। योरोपीय देशों से भारत का व्यापार कम हो गया और ब्रिटेन तथा संयुक्तराज्य अमेरिका से व्यापार बढ़ गया। जापान से भी भारत का व्यापार कम होगा। किन्तु क्रमशः जापान से हमारा व्यापार फिर बढ़ेगा।

भारत का आयात व्यापार (Imports)

	कुल आयात का प्रतिशत
कपास और सूती कपड़े	११·९२%
तेल	१०·७६%
मशीन	६·८७%
खनिज पदार्थ	७·७१%
अनाज, दाल, आटा	७·००%
मोटर इत्यादि	५·१३%
वैज्ञानिक औज़ार, अपरेटस, तथा यंत्र	३·५३%
नकली रेशम	२·८०%
लकड़ी का सामान	२·३८%
कागज़ तथा बोर्ड	२·३८%
रंग इत्यादि	२·२७%
रसायनिक पदार्थ	१·९२%
हार्ड वेयर	१·९१%
लकड़ी	१·७२%
कच्चा रेशम और रेशम का कपड़ा	१·६४%
खाद्य पदार्थ	१·५०%
औषधियाँ	१·३५%
शराब	१·३३%
रबर का सामान	१·०६%
मसाला	१·०५%
फल	०·९१%
शीशे का समान	०·८६%
अस्त्र-शस्त्र	०·७४%

	कुल आयात का प्रतिशत
हीरा जवाहरात तथा मोती	०·७२%
पेंट	०·५८%
तम्बाकू	०·४६%
स्टेशनरी	०·४७%
खाद	०·४६%
शेष	११·५१%
	१००%

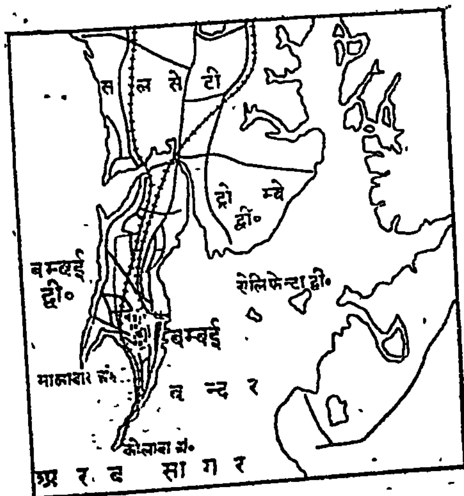
भारत का निर्यात व्यापार

	कुल निर्यात का प्रतिशत
जूट (कच्चा)	८·१४%
जूट (तैयार)	१६·०७%
कपास (कच्ची)	२६·४६%
सूती वस्त्र	५·२४%
चाय	१३·४८%
तिलहन	७·८४%
अनाज दाल आटा	५·२४%
चमड़ा	४·०१%
खनिज पदार्थ	३·३६%
खाल	२·७६%
ऊन और ऊनी कपड़ा	२·०६%
खली	१·३४%
फल	१·१५%
तम्बाकू	१·११%
लाख	१%
अबरख	०·८२%
नारियल की जटायें	०·५८%
तेल	०·५६%
कोयला	०·५५
मसाला	०·५२%
शेष	७·८७%
	१००%

भारतवर्ष के बन्दरगाह

भारतवर्ष का समुद्र तट अधिक टूटा फूटा नहीं है। इस कारण यहाँ प्राकृतिक अच्छे बन्दरगाह कम ही हैं। पश्चिमी तट पर कैम्बे के उत्तर में नदियों की लाई हुई रेती से खाड़ियाँ पटती रहती हैं। इस कारण यहाँ कोई अच्छे बन्दरगाह नहीं हैं। केवल कराँची का एक बन्दरगाह है जो कि सिंध के डेल्टा पर है। पश्चिम तट के बन्दरगाहों के लिये एक कठिनाई यह है कि ज्वार भाटा का वेग बहुत होता है। बम्बई एक द्वीप होने के कारण जहाज़ों के लिए अत्यन्त सुविधाजनक है। पूर्व में कलकत्ते का बन्दरगाह महत्वपूर्ण है किन्तु वह नदी के मुहाने पर स्थित है। इस कारण जहाज़ों को घंटों तक ज्वारभाटे की प्रतीक्षा में ठहरे रहना पड़ता है। जब पानी उठता है तब वे बन्दरगाह में आते हैं।

भारतवर्ष के निम्नलिखित बन्दरगाह हैं—



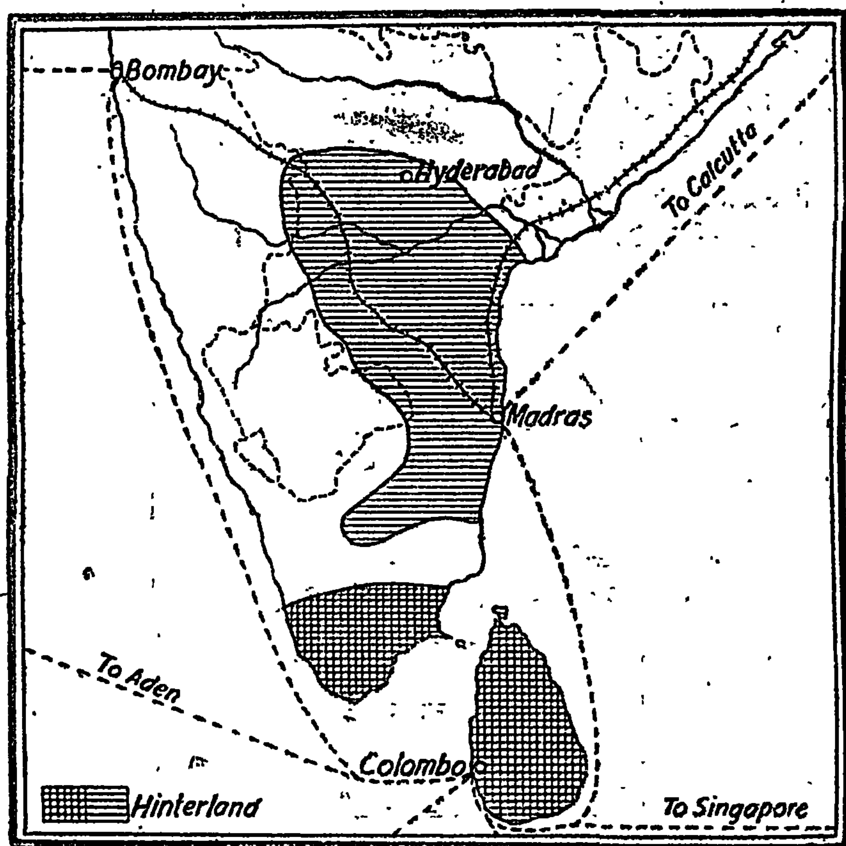
कराँची, बेदी, ओखा, पोरबन्दर, भावनगर, सूरत, बम्बई, मंगलोर, तेलीचेरी, कालीकट, कोचीन, अलैपे, क्वीलन, तूती कोरन, धनुष कोडी, नेगापाटम, कारीकल, कुड्डालोर, मदरास, मसलीपट्टम, कोकोनाडा, विज़गापट्टम, बिमली पट्टम, गोपालपूर, बालासोर, चंदबाली, कटक, पुरी, कलकत्ता, चिटागाँव।

बम्बई

बम्बई भारतवर्ष का सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। आज से २५ वर्ष पूर्व कलकत्ते का व्यापार बम्बई से अधिक था किन्तु प्रथम योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त बम्बई का व्यापार कलकत्ते से बढ़ गया। १६३८ में बम्बई के बन्दरगाह

में लाख टन के जहाज आये और गये और कलकत्ता में केवल ४२ लाख टन के जहाज आये और गये।

बम्बई को एक बड़ी सुविधा यह है कि पश्चिम तट को पश्चिमी घाट की ऊँची दीवार भीतरी प्रदेश से पृथक् किये हुये है किन्तु बम्बई के ठीक पीछे थाल घाट और भोर घाट के दर्रे हैं जिनके कारण सभी रेलवे लाइनों को

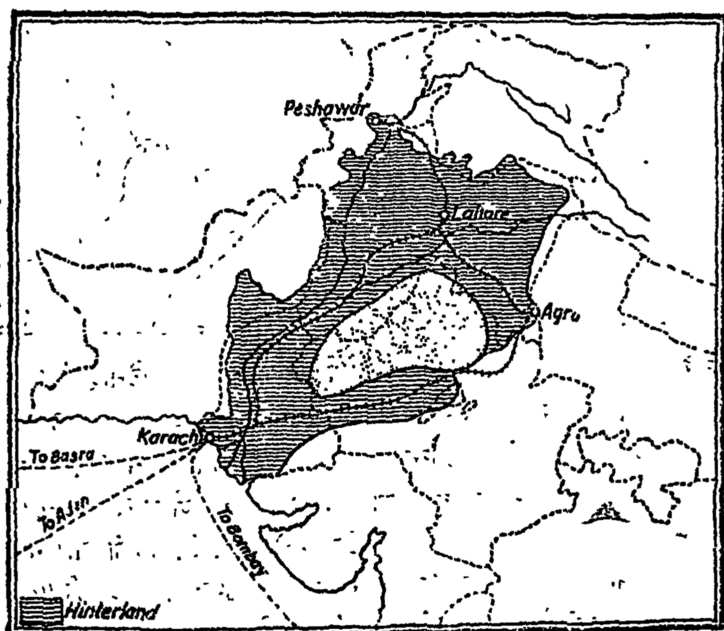


बम्बई के बंदरगाह पर ही आना पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि दक्षिण का उपजाऊ प्रदेश बम्बई का व्यापार क्षेत्र (Hinterland) बन गया है जहाँ से खेती की पैदावार बम्बई के द्वारा विदेशों को भेजी जाती है। बम्बई ही भारतवर्ष में एक ऐसा बन्दरगाह है जो कि बहुत बड़े जहाजों के लिये उपयुक्त है। अन्यथा दूसरे बन्दरगाह रेत से पटने के कारण बहुत बड़े जहाजों के उपयुक्त नहीं हैं। बम्बई को योरोप से जो जहाज आते हैं उनका सामान लेकर छोटे छोटे जहाज तट के अन्य बंदरगाहों को जाते हैं। इस प्रकार बम्बई का तटीय व्यापार बहुत है। कुल व्यापार का लगभग एक तिहाई व्यापार

तटीय व्यापार है। कुछ वर्षों से काठियावाड़ के बंदरगाहों ने बम्बई से भीषण प्रतिद्वन्दता करना आरम्भ कर दी है। इनमें बेदी बंदर, ओखा, पोरबंदर तथा भावनगर मुख्य हैं। बम्बई का यथेष्ट व्यापार इन बंदरगाहों की ओर चला गया है। किन्तु मुसाफिरों को लाने वाले जो जहाज हैं वे बम्बई ही आते हैं क्योंकि मुसाफिरों को लाने वाले जहाज बड़े होते हैं जो कि केवल बम्बई में ही स्थान पा सकते हैं।

करांची

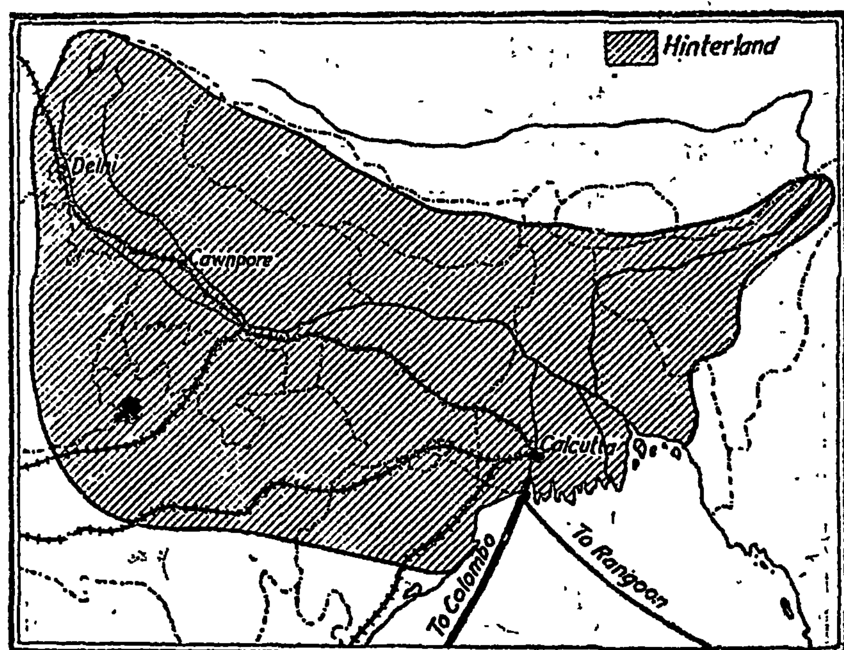
करांची मुख्यतः पंजाब और सिंध का बंदरगाह है। यह सिंध के डेल्टा से कुछ हटकर है। इस कारण नदी का रेत इसको नहीं पाटता। बम्बई और कलकत्ता के बाद करांची ही देश का सबसे महत्वपूर्ण बंदरगाह है। सिंध और समीपवर्ती प्रदेश आर्थिक दृष्टि से उन्नत नहीं हैं और न घना आबाद ही है। केवल एक



रेलवे लाइन करांची को अपने व्यापार क्षेत्र (Hinterland) से जोड़ती है। इसके विपरीत बम्बई और कलकत्ते आकर बहुत सी रेलें मिलती हैं। इसका एक यह भी कारण है कि करांची औद्योगिक केन्द्र नहीं है। करांची का आयात निर्यात २१ लाख टन के लगभग है। इसका एक तिहाई तटीय व्यापार है।

कलकत्ता

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि कलकत्ते के बन्दरगाह में जहांज ज्वार भाटे के साथ ही आ सकते हैं। पानी के बढ़ने की प्रतीक्षा में जहांजों को घंटों खड़ा रहना पड़ता है। जहाज बन्दरगाह में निश्चित घंटों में ही आते और निश्चित घंटों में ही बंदरगाह को खाली कर देते हैं। हुगली में रेत का जमाव बहुत होता है।



इन रेत की बाढ़ों (Sand Bars) के कारण जहाज़ों को कठिनाई होती है। जब ज्वार भाटे के कारण पानी बढ़ता है तभी बड़े जहाज बन्दरगाह में आ सकते हैं और ज्वार भाटे के उतरने के साथ ही बन्दरगाह से निकलते हैं।

कलकत्ता सिंध गंगा की घाटी का बन्दरगाह है जो कि भारतवर्ष का सबसे घना आबाद भाग है। कलकत्ते से सम्बंधित रेलवे लाइनों, सड़कों और नदियों का जाल सा बिछा है। इन मार्गों से गंगा की उपजाऊ घाटी की पैदावार कलकत्ते को आती है। विदेशों से कलकत्ते पर जो माल आता है वह इस घने व्यापार क्षेत्र में इन रेलों द्वारा आसानी से पहुँचा दिया जाता है। कलकत्ता स्वयं एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र है। जूट का धंधा यहीं केन्द्रित है। जूट का सामान अधिकांश में विदेशों को जाता है यही नहीं जूट, चाय, कोयला लोहा; अबरख, मैंगनीज़ भी इस बन्दरगाह के व्यापार क्षेत्र (Hinterland) में ही है और इसी के द्वारा अन्य देशों को यह वस्तुयें भेजी जाती हैं। कलकत्ते के समीप ही लोहे और स्टील का धंधा केन्द्रित है। अतएव जो पिग आयरन विदेशों को जाता है वह कलकत्ते के द्वारा ही जाता है। इन्हीं कारणों से कलकत्ता भारतवर्ष का प्रमुख बन्दरगाह बन गया है। हाँ कलकत्ते में मुसाफिरी जहाज कम आते जाते हैं क्योंकि नदी की यात्रा

असुविधाजनक है। जो कुछ मुसाफिरी ट्रैफिक है वह केवल बर्मा से है। छोटे छोटे जहाज कलकत्ता से बर्मा तक जाते हैं। नदी की यात्रा असुविधा के कारण बड़े मुसाफिर जहाज कलकत्ते में नहीं आते।

इनके अतिरिक्त कुछ वर्ष हुये भारत सरकार ने विज़गापट्टम का बन्दरगाह बनवाया है। यह बन्दरगाह मैंगनीज़ को बाहर भेजने के उदेश्य से बनवाया है। मैंगनीज़ उत्पन्न करने वाला प्रदेश इस बन्दरगाह से लगा हुआ है। मदरास, कोचीन, तूर्तीकोरन तथा चिटागाँव भी महत्वपूर्ण बन्दरगाह हैं किन्तु इन सबका व्यापार ६० करोड़ रूपये से अधिक नहीं है। अन्य बन्दरगाह केवल तटीय व्यापार के लिए ही उपयोगी हैं। उनका वैदेशिक व्यापार के लिये अधिक महत्व नहीं है।

विजगापट्टम बंदरगाह

पिछले कुछ वर्षों में विज़गापट्टम भारत का महत्वपूर्ण बंदरगाह बन गया है। यह कारोमंडल तट पर स्थित है और कलकत्ता तथा मदरास के बीच में है कलकत्ते से यह ५०० मील दक्षिण में है और मदरास से यह ३२५ मील उत्तर में है। यहाँ से मैंगनीज़, मूंगफली, मैरीबोलन्स (हर बहेड़ा), खालें अधिकतर विदेशों को भेजी जाती हैं और बाहर से आने वाले पदार्थों में शक्कर, कपास, सूती वस्त्र, लोहा, लकड़ी, और मशीनें मुख्य हैं। विज़गापट्टम बंदरगाह पर सभी समुद्री जहाज़ तथा तटीय व्यापार में लगे हुए स्टीमर रुकते हैं।

विज़गापट्टम उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त के पूर्वीय भाग के व्यापार के लिए कलकत्ते से प्रतिस्पर्द्धा करता है। कलकत्ता की अपेक्षा विज़गापट्टम इन प्रदेशों के अधिक पास है और बंदरगाह की फ़ीस इत्यादि भी कम है। विज़गापट्टम बंदरगाह के बन जाने से कलकत्ते के महत्व में कुछ कमी हो गई है। बी० यन० आर० की एक लाइन बन्दरगाह को मध्य प्रान्त के रायपूर से जोड़ती है इस कारण बन्दरगाह मध्यप्रान्त की मंडियों के समीप पड़ता है।

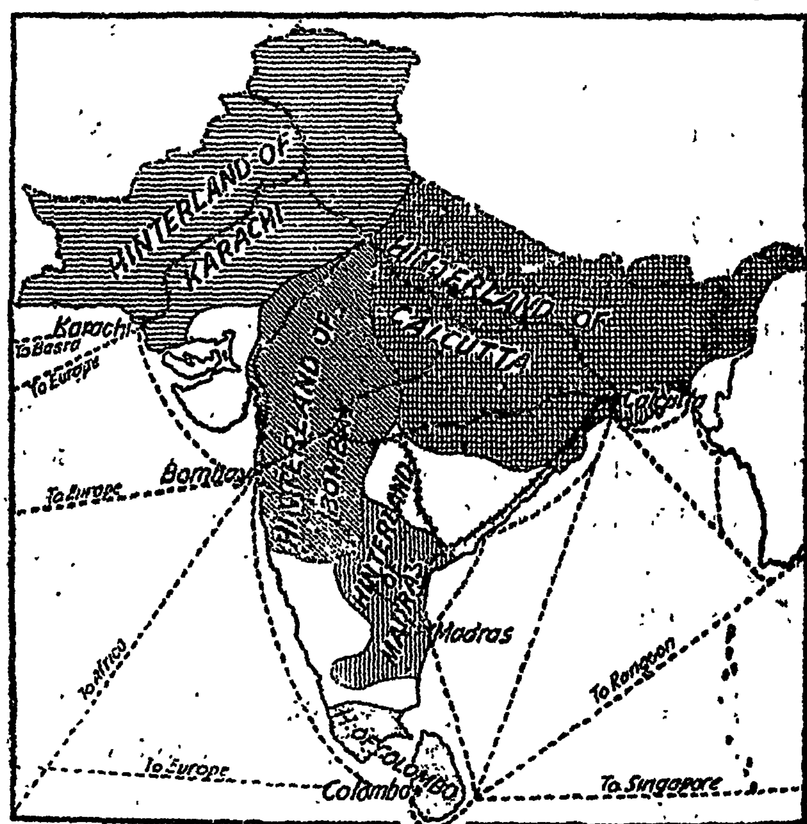
काठियावाड़ के बंदरगाह

पिछले दिनों में काठियावाड़ के बंदरगाह महत्वपूर्ण हो गए हैं। काठियावाड़ की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है कि वह राजपूताना और समीपवर्ती प्रदेश के व्यापार को अच्छी तरह से कर सकते हैं। काठियावाड़ के बंदरगाहों को एक लाभ यह है कि बंदरगाह का खर्चा फीस इत्यादि बहुत कम है। मज़दूरी भी यहाँ बहुत सस्ती है और देशी राज्यों में स्थित होने के कारण यहाँ आय कर (Income Tax) तथा अन्य कर नहीं लगाये जाते। काठियावाड़ और राजपूताना में व्यापार बिना

माल को बीच में उतारे चढ़ाये किया जा सकता है क्योंकि वहाँ रेलवे लाइनों की चौड़ाई एक सी है। किन्तु बम्बई के साथ ऐसा नहीं है। इन्हीं कारणों से काठियावाड़ के बन्दरगाह पिछले दिनों में अधिक महत्वपूर्ण बन गए हैं और वे बम्बई से प्रतिस्पर्द्धा करते हैं।

काठियावाड़ के मुख्य बंदरगाह नीचे लिखे हैं:—(१) भावनगर, (२) बेदी बंदर, (३) ओखा बंदर, (४) नवलाखी, (५) वीरावल, (६) पोरबंदर।

(१) भावनगर यह भावनगर राज्य की राजधानी है। यह खम्भात की खाड़ी के ऊपर पश्चिम की ओर स्थित है। बंदरगाह में माल को सुरक्षित रखने के लिए सभी सुविधायें हैं और बंदरगाह रेलवे लाइन द्वारा भिन्न भिन्न बंदरगाहों से सम्बंधित



है। जहाज़ बंदरगाह से लगभग आठ मील दूर ठहरते हैं और माल नावों द्वारा बंदरगाह पर लाया जाता है। बंदरगाह में रेत जमने के कारण १९१७ में नया गहरा बंदरगाह बनवाया गया है जिसमें दो जहाज़ एक साथ रह सकते हैं। भावनगर का व्यापार तेज़ी से बढ़ रहा है। इसका महत्व तो इसी से

स्पष्ट है कि १९२६ में बंदरगाह से राज्य को जो आय हुई आज उससे दस गुनी से भी अधिक आमदनी होती है।

(२) बेदी बंदर — बेदी बंदर नवानगर राज्य का बंदरगाह है। काठियावाड़ में सबसे पहले इसी बंदरगाह ने उन्नति की। यह कच्छ की खाड़ी में स्थित है। इस बंदरगाह का समुद्रतट जहाज़ों के लिए बहुत उपयुक्त है और वर्ष के सब मौसमों में यह खुला रहता है।

(३) ओखा — बड़ौदा राज्य का यह मुख्य बंदरगाह है यह काठियावाड़ प्रायद्वीप (Peninsula) की उत्तर-पश्चिम सीमा पर स्थित है इस कारण जितने भी जहाज़ समुद्र तट पर चलते हैं उनकी पहुँच के अन्दर है। इस बंदरगाह में केवल एक दोष है। इसका मार्ग टेढ़ा मेढ़ा और चक्करदार है और उसमें खतरा है। साथ ही यह जनसंख्या-बहुल प्रदेशों से बहुत दूर है।

(४) नवलाखी — मीरवी राज्य का यह प्रसिद्ध बन्दरगाह है और कच्छ की छोटी खाड़ी में स्थित है। बड़े जहाज़ बंदरगाह से एक मील पर ठहरते हैं। फिर भी यह बंदरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

(५) वैरावल — इस बंदरगाह में छोटे जहाज़ भी आसकते हैं।

(६) पोरबंदर — यह एक महत्वपूर्ण बंदरगाह है और पूर्वी अफ्रीका से इसका अधिक व्यापार होता है किन्तु वर्षा के दिनों में बन्दरगाह बन्द रहता है क्योंकि यह बिलकुल खुला है।

काठियावाड़ के बंदरगाहों पर विदेशों से शक्कर, धातुओं का सामान, सूती कपड़ा, और कपास आती है। जो भी विदेशों से माल आता है उसका दो तिहाई से अधिक उन राज्यों के अतिरिक्त शेष भारत में खपता है। यहाँ से बाहर जाने वाली वस्तुओं में कपास, ऊन, और तिलहन मुख्य हैं। युद्ध के पूर्व आयात व्यापार का प्रतिशत इस प्रकार था। ब्रिटेन ३५% जरमनी १०% जापान ६% अन्य २७% और निर्यात का व्योरा इस प्रकार था। ब्रिटेन ३६% जरमनी १६% बेलजियम १०% जापान ५% अन्य देश ३३%

मोर मुगाओ — यह कोयाकण तट पर स्थित है। यह पोर्तुगीज़ भारत में है। इसका व्यापार क्षेत्र बम्बई, हैदराबाद और मैसूर तक फैला हुआ है। यहाँ से मैंगनीज़, मूंगफली, कपास, नारियल मुख्यतः विदेशों को भेजी जाती है।

कालीकट यह कोचीन से ६० मील उत्तर में है। मौनसून के आरम्भ में यह बन्द रहता है। यहाँ समुद्र छिछला है इस कारण जहाजों को बन्दरगाह से तीन मील दूर समुद्र में खड़ा होना पड़ता है। यहाँ से क्वायर (नारियल का छिलका) कोपरा, कहवा, चाय जिंजर, मूंगफली, तथा मछली की खाद बाहर भेजी जाती है।

कोचीन कोचीन मदरास प्रान्त में एक बहुत महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। बम्बई और कोलम्बो के बीच में यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ से क्वायर, क्वायर की चटाइयाँ, कोपरा, नारियल का तेल, चाय, और रबर मुख्यतः विदेशों को भेजी जाती है।

तूती कोरन यह मदरास का एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह है, और दक्षिण प्रायद्वीप के दक्षिण में अन्तिम सीमा पर स्थित है। किन्तु बन्दरगाह छिछला है इस कारण उसको बराबर खोदते रहने की आवश्यकता पड़ती है। कपास, चाय, सैना की पत्तियाँ और प्याज मुख्यतः यहाँ से विदेशों को जाता है। इस बन्दरगाह का लंका से बहुत व्यापार होता है।

चिटागाँव चिटागांव पूर्वी बंगाल और आसाम का बंदरगाह है। यहाँ से चाय बाहर बहुत जाती है। चाय के अतिरिक्त जूट, मिट्टी का तेल, चावल और कपास भी यहाँ से जाती है। अब यह पूर्वी पाकिस्तान का मुख्य बन्दरगाह है।

भारतवर्ष के मुख्य व्यापारिक केन्द्र

बंदरगाहों के अतिरिक्त भारतवर्ष के मुख्य व्यापारिक केन्द्र निम्न-लिखित हैं :—

कानपूर, देहली, अहमदाबाद, अमृतसर, आगरा, आसंसोल, अमरौती, जयपूर, इंदौर, बंगलौर, लाहौर, सियालकोट, बनारस, लखनऊ, नागपुर, हैदराबाद, बड़ौदा, ग्वालियर, जबलपूर, मदूरा, विज़गापट्टम, ढाका, शोलापुर, इलाहाबाद, मैसूर।

भारतवर्ष में जितने भी बन्दरगाह हैं वे सभी व्यापारिक केन्द्र हैं। बन्दरगाहों को व्यापारिक केन्द्र बन जाना स्वाभाविक है। अपने व्यापार क्षेत्र की पैदावार को वे आकर्षित करते हैं और बाहर से आये हुये माल को वे देश के भिन्न भिन्न भागों में भेजते हैं। भारतवर्ष में कलकत्ता, बम्बई सबसे बड़े

औद्योगिक केन्द्र भी हैं अतएव उनका प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन जाना स्वाभाविक भी था। फिर बंदरगाहों से देश के व्यापार-मार्ग विशेषकर रेलवे लाइनें जुड़ी हैं। भीतरी प्रदेश के व्यापारिक केन्द्र भिन्न भिन्न कारणों से उन्नति कर गये हैं। कानपूर, अहमदाबाद, देहली, शोलापूर रेलवे जंकशन होने के अतिरिक्त ऐसे उपजाऊ और घने प्रदेशों के बीच में हैं कि उनका व्यापारिक केन्द्र बन जाना स्वाभाविक ही था। इन केन्द्रों में उद्योग धंधों के साथ ही बड़ी बड़ी मंडियाँ स्थापित हो गई हैं और तैयार माल को समीपवर्ती केन्द्रों में भेजने की यहाँ से विशेष सुविधा है। उदाहरण के लिए उत्तर भारत में देहली कपड़ा, बिसातखाने तथा अन्य वस्तुओं का वितरण केन्द्र (Distributing centre) बन गया है। कुछ केन्द्रों का महत्त्व राजनैतिक भी है। देहली, हैदराबाद, लखनऊ, जयपूर, ग्वालियर राजधानी होने के कारण भी महत्वपूर्ण हैं। फिर जहाँ गमनागमन की सुविधा हो और जनसंख्या अधिक हो वह स्थान व्यापारिक केन्द्र तो बन ही जाता है।

इन प्रमुख केन्द्रों के अतिरिक्त भारतवर्ष में छोटी बड़ी मंडियाँ बहुत हैं जिनमें खेती की पैदावार गाँवों से आती है। गमनागमन के साधनों का अभाव, छोटे छोटे खेतों पर खेती का चलन, खेती की पैदावार की बिक्री का कोई समुचित प्रबन्ध न होने के कारण ये मंडियाँ और पैंठें महत्वपूर्ण हैं। किसान अपनी फसल को इन्हीं मंडियों में लाता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

२—करांची से कलकत्ता और बम्बई बन्दरगाहों का व्यापार क्यों अधिक है।

३—भारत के निर्यात (Export) व्यापार की मुख्य वस्तुएँ कौन सी हैं और वे कहाँ जाती हैं।

४—भारत के आयात व्यापार (Imports) की मुख्य वस्तुएँ क्या हैं और वे कहाँ से आती हैं।

५—कलकत्ता, बम्बई और विज़गापट्टम बन्दरगाह की स्थिति और उनके व्यापार का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

चौबीसवाँ परिच्छेद

भारत की जनसंख्या

संसार में चीन को छोड़कर भारतवर्ष की जनसंख्या सबसे अधिक है। वस्तुतः भारत संसार के अत्यन्त घने आबाद देशों में है। १९४१ की जनसंख्या की गणना के अनुसार भारत में प्रति वर्ग मील में २४६ मनुष्यों का औसत था। खेती पर निर्भर रहने वाले भारत देश के लिए जनसंख्या का घनत्व (deneity) वास्तव में अधिक है। अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष बहुत अधिक घना आबाद है। यह नीचे लिखे आंकड़ों से स्पष्ट है।

संसार के मुख्य देशों की प्रति वर्ग मील आबादी

बैलजियम	६५४	प्रति वर्ग	मील
ब्रिटेन (इङ्गलैंड और वेल्स)	६८५	,,	,,
फ्रांस	१८४	,,	,,
जरमनी	३३२	,,	,,
निदरलैंड	५४४	,,	,,
आस्ट्रिया	१९९	,,	,,
स्पेन	१०७	,,	,,
जापान	२१५	,,	,,
संयुक्तराज्य अमेरिका	४१	,,	,,
न्यूज़ीलैंड	११८	,,	,,
मिश्र	३४	,,	,,
चीन	२००	,,	,,

ऊपर लिखे आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन देशों में औद्योगिक उन्नति बहुत हुई है केवल वहीं भारत से आबादी घनी है। किन्तु कोई भी खेतिहर राष्ट्र इतना घना आबाद नहीं है। यही कारण है कि भारतवर्ष निर्धन राष्ट्र है। अब हम यहाँ भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों की प्रति वर्ग मील पीछे जनसंख्या का विवरण देंगे।

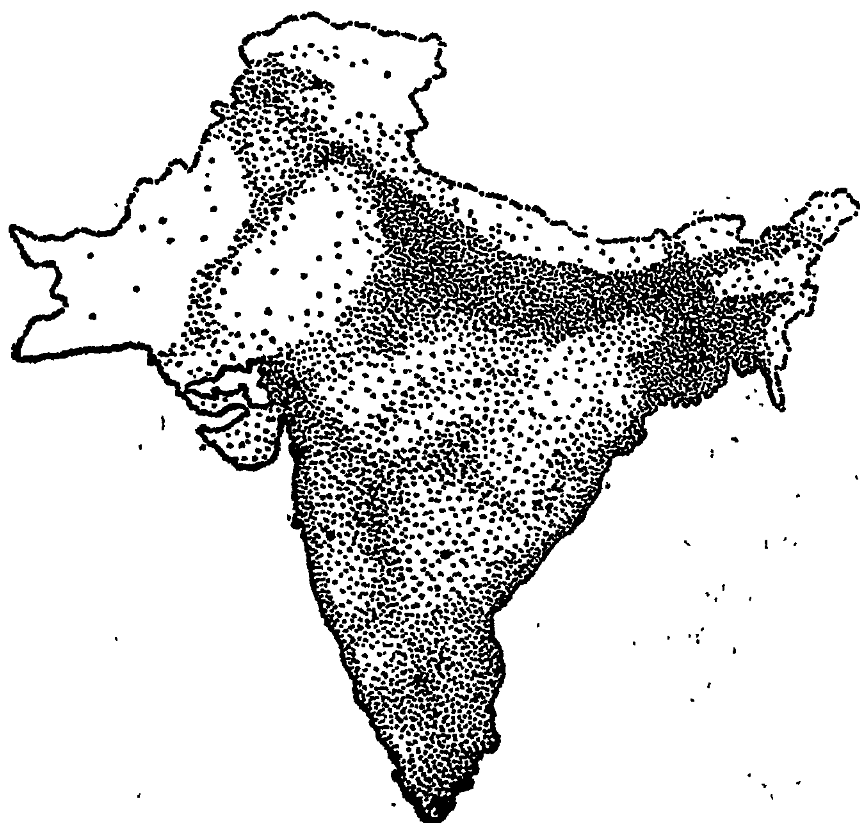
प्रति वर्ग मील पीछे जनसंख्या

	१९३१	१९४१
समस्त भारत	२१३	२४६
प्रान्त		
मद्रास	३५०	१९१
बम्बई	२३५	२७२
बंगाल	६२७	७७६
संयुक्त प्रान्त	४१५	५१८
पंजाब	२३८	२८७
बिहार	४६४	५२१
मध्यप्रान्त बरार	१५६	१७०
आसाम	१५७	१८६
सीमाप्रान्त	१७९	२१३
उड़ीसा	२४६	२७१
सिंध	८४	६४
अजमेर मेरवाड़ा	२११	२४३
अंडमन निकोबार	६	११
बलूचिस्तान	६	९
कुर्ग	१०३	१०६
देहली	१०११	१५६६
देशी राज्य	११४	१३०

ऊपर के आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि केवल समस्त भारत की ही आबादी नहीं बढ़ी है वरन् सारे प्रान्तों की आबादी बढ़ गई है।

जन संख्या का घना होना यह बिखरा होना बहुत सी बातों पर निर्भर होता है। उनमें जलवायु, जीवन और धन की सुरक्षा, तथा जीवन निर्वाह के साधन मुख्य हैं। जहाँ तक जलवायु का प्रश्न है भारत के किसी भाग का जलवायु ऐसा नहीं है कि जो मनुष्य निवास के अयोग्य हो। जहाँ तक सुरक्षा का प्रश्न है १५ अगस्त १९४७ के बाद जो बर्बरता का नग्न दृश्य इस देश में उपस्थित हुआ है उसके कारण पंजाब, सिंध तथा सीमा प्रान्त में जीवन और धन की रक्षा न हो सकी और लाखों व्यक्तियों को अपने पैतृक गृहों को छोड़ना पड़ा। परन्तु वह अस्थायी था और अब देश में सुरक्षा है। अस्तु केवल एक कारण रह जाता है जिस पर भारतवर्ष में जनसंख्या का

घनी अथवा बिखरी होना निर्भर है और वह है "जीवन निर्वाह के साधन"। संसार के प्रत्येक देश में जनसंख्या का घनत्व मुख्यतः जीवन निर्वाह के साधनों पर ही निर्भर रहता है।



भारतवर्ष क्योंकि कृषि प्रधान देश है और भारत की अधिकांश जन संख्या के निर्वाह का साधन कृषि है इस कारण भारतवर्ष में जनसंख्या उन प्रदेशों में बहुत घनी है जहाँ खेती के लिए अच्छी सुविधायें हैं और उन प्रदेशों में बिखरी है जहाँ खेती के लिए सुविधायें कम हैं।

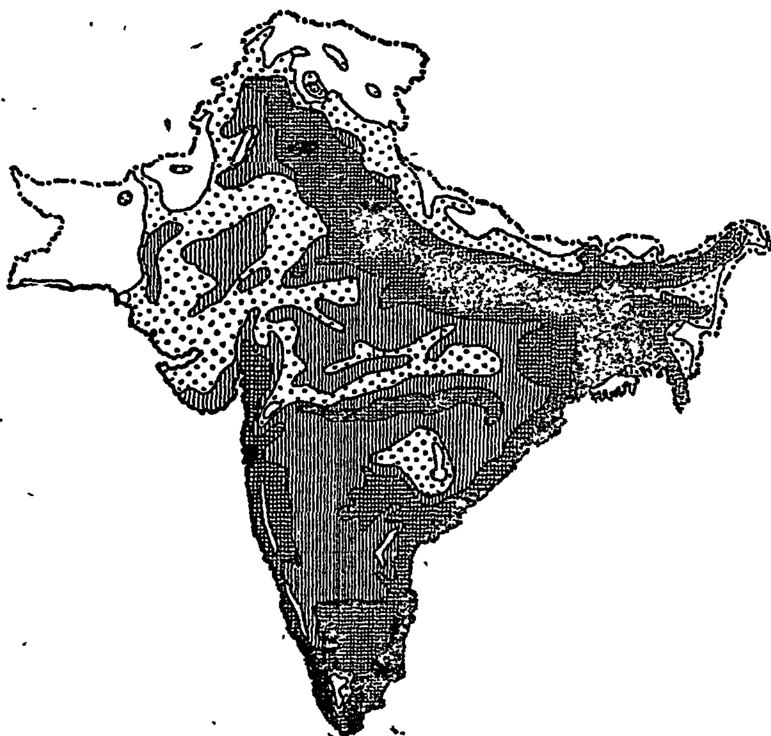
यदि भारत की जनसंख्या के चित्र को देखा जावे तो स्पष्ट ज्ञात हो जावेगा कि भारत में घनी आबादी वाले प्रदेश नीचे लिखे हैं:—

(१) गंगा की घाटी प्रदेश (२) दक्षिण में नदियों के डेल्टा प्रदेश (३) दक्षिणी पश्चिमीय तटीय प्रदेश जिसमें ट्रावनकोर और कोचीन सम्मिलित हैं। ट्रावनकोर, कोचीन, तथा बंगाल और आसाम के कुछ ज़िलों में बहुत घनी आबादी (१००० मनुष्य प्रति वर्ग मील से ऊपर) है।

हिमालय के पहाड़ी प्रदेश, राजपूताना और सिंध की मरुभूमि, तथा

छोटानागपूर, बस्तर और उड़ीसा के सूखे प्रदेशों में आबादी बहुत ही बिखरी हुई है।

गंगा की घाटी में जनसंख्या जैसे जैसे उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़िये घटती जाती है क्योंकि वर्षा की मात्रा उत्तर-पश्चिम की ओर घटती जाती है। किन्तु उत्तर-पश्चिम में भी जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं जनसंख्या घनी है। गंगा की घाटी के डेल्टा प्रदेश में जनसंख्या बिखरी है क्योंकि वह दलदल और नम है।



सिंध नद की घाटी में जनसंख्या डेल्टा से उत्तर की ओर अधिक घनी होती जाती है क्योंकि उत्तर की ओर वर्षा अधिक है। पंजाब में हिमालय के निकटवर्ती प्रदेश में जहाँ वर्षा अधिक है और सिंचाई के साधन भी प्रचुर मात्रा में हैं जनसंख्या घनी है। पश्चिमीय पंजाब में जहाँ पहले जनसंख्या प्रायः नहीं के बराबर थी नहरों की कृपा से अब साधारणतः घना आबाद है।

प्रायद्वीप में तटीय मैदानों को छोड़कर जनसंख्या प्रायः बिखरी है। इसका कारण यह है कि वहाँ का धरातल ऊबड़-खाबड़ है और अधिकांश भाग वनों से घिरा है।

जनसंख्या का पेशों के अनुसार बटवारा

भारतवर्ष की जनसंख्या की एक मुख्य विशेषता यह है कि देश की अधिकांश जनसंख्या खेती पर निर्भर है। पेशों के अनुसार जनसंख्या का बंटवारा इस प्रकार है:—

व्यवसाय या पेशा			जनसंख्या का प्रतिशत
१ कच्चे माल की उत्पत्ति			
खेती और शिकार आदि			
मछली पकड़ना		६७.१%	
खान-खोदना		·२%	६७·३
		६७·३%	
२. व्यापार-उद्योग आदि			
उद्योग	१·%		
यतायात	१·५%		
व्यापार	५·१%		१६·६
	१६·६%		
३. शासन, सरकारी नौकरी आदि			
सरकारी नौकर		०·६%	
शासन विभाग में			
कार्यकर्ता		०·६%	
डाक्टर वकील आदि		१·५%	२·०
४. अन्य पेशे			
		२·७%	
अपनी आय पर निर्भर		० १%	
घरेलू नौकर		७·१%	
जिनके पेशे के विषय में			
ज्ञान नहीं है।		५·१%	
अनुत्पादक पेशे		१·१%	१३·४
		१३·४%	
			१००%

ऊपर के आंकड़ों में खेती पर अवलम्बित जनसंख्या वास्तव में कम दिखाई गई है क्योंकि बहुत से मज़दूर—मुख्यतः स्त्रियाँ जो खेती निर्भर हैं—घरेलू नौकरों में सम्मिलित कर लिए गए हैं और कुछ मज़दूर जो अवकाश के समय

धंधों में काम पा जाते हैं वे उद्योग पर निर्भर मान लिए गए हैं। विद्वानों का अनुमान है कि भारत में निर्भर रहने वालों की संख्या ७३% के लगभग है। हर्ष की बात है कि राष्ट्रीय सरकार का ध्यान उद्योग-धंधों की ओर गया है। देश में इस बात की आवश्यकता है कि जनसंख्या को कृषि पर इतना अधिक निर्भर न रहने दिया जावे।

गांव और नगर

भारतवर्ष मुख्यतः गाँवों का देश है १०३१ में देश की कुल जनसंख्या का ११ प्रतिशत नगरों में रहता था और शेष गाँवों में रहता था। १९४१ की गणना के अनुसार १२·८ प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है। यद्यपि शहरों की ओर प्रवास बढ़ रहा है फिर भी भारत मुख्यतः गाँवों का ही देश है। किन्तु बड़े शहर तेज़ी से बढ़ रहे हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं। बड़े नगरों में उद्योग-धंधे केन्द्रित हैं और मध्यम श्रेणी के व्यक्ति नगरों में ही रहना पसंद करते हैं। इतना सब कुछ होने पर भी १९३१ में भारतवर्ष में केवल ३५ नगर ऐसे थे जिनकी जनसंख्या एक लाख से ऊपर थी और १९४१ की गणना के अनुसार ऐसे नगरों की संख्या ५८ है। संयुक्तप्रान्त में सबसे अधिक नगर हैं। इन ५८ नगरों के अतिरिक्त देश में ६९६,८३१ गाँव और २,५७५ क़स्बे हैं। उनका बंटवारा इस प्रकार है।

गाँव की जनसंख्या	गाँवों की संख्या	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
५०० मनुष्यों से कम	५१०,०००	३७.५%
५०० से १००० मनुष्य	११३,०००	२२%
१००० से २०००,,	५४,०००	२०.५%
२००० से ५०००,,	१६,०००	११%
क़स्बे		
५००० से १०,०००,,	२,०००	४%
१०,००० से २०,०००,,		२%
२०,००० से ५०,०००,,		२%
५०,००० से ऊपर		७%
		१००%

ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत गाँवों का देश है। नगर यहाँ बहुत कम हैं।

भारत में प्रान्तों की जनसंख्या

प्रान्त या राज्य	१९४१ की जनसंख्या	१९३१ की जनसंख्या
बंगाल	६०,३१४,०००	५०,११६,०००
संयुक्त प्रान्त	५५,०२१,०००	४८,४०६,०००
बिहार	३६,३४०,०००	३२,३७१,०००
पंजाब	२८,४१९,०००	२३,५८१,०००
बम्बई	२०,८५८,०००	१७,९९२,०००
मध्यप्रान्त बरार	१९,८२२,०००	१५,३२९,०००
आसाम	१०,२०५,०००	८,६२२,०००
सीमाप्रान्त	३,०३८,०००	२,४२५,०००
उड़ीसा	८,७२९,०००	८,०२६,०००
सिंध	४,५३,७०००	३,८८७,०००
अजमेर मेरवाड़ा	५८४,०००	५०७,०००
अंडमन निकोबार	३४,०००	२९,०००
बलूचिस्तान	५०२,०००	४६४,०००
कुर्ग	१६९ २००	१६३,०००
देहली	९१७,०००	६३७,०००

देशी राज्य

आसाम के राज्य	७२५,०००	६२६,०००
बलूचिस्तान के राज्य	३५६,०००	४०५,०००
बड़ौदा	२,८८५.०००	२४४८,०००
बंगाल के राज्य	२,१४२,०००	१८९३,०००
मध्यप्रान्त के राज्य	७,५०२,०००	६,६४८,०००
छत्तीसगढ़ के राज्य	४,०५४,०००	३,५४८,०००
कोचीन	१,४२३,०००	१,२०५,०००
दक्षिण के राज्य	२,७८६,०००	२,४५८,०००
गुजरात के राज्य	१,४५७,०००	१,२६५,०००
ग्वालियर	३,९९९,०००	३,५२३,०००
हैदराबाद	१६,१८४,०००	१४.४३७,०००
काश्मीर	४,०२१,०००	३,६४६,०००
मदरास के राज्य	४९९.०००	४५३,०००

राज्य	१९४१ की जनसंख्या	१९११ की जनसंख्या
मैसूर	७,३२९,०००	६,५५७,०००
सीमाप्रान्त के राज्य	२,३,७८०००	२·२५९,०००
उड़ीसा के राज्य	३,०२५,०००	२ ६८३,०००
पंजाब के राज्य	५,४५९,०००	४,४९७,०००
पंजाब के पहाड़ी राज्य	१,०९४,०००	९९०,०००
राजपूताना	१३,६७०,०००	११,५७१,०००
शिक्किम	१२२ ०००	११०,०००
ट्रावंकोर	६,०७०,०००	५,०९६,०००
संयुक्तप्रान्त के राज्य	९२८,०००	८५६ ०००
पश्चिमी भारत के राज्य	४,९०१,०००	४,२२२,०००

जनसंख्या की भविष्य में बढ़वार

जबसे भारत में जनसंख्या की गणना हुई है तब से प्रत्येक दशाब्द में जनसंख्या बढ़ जाती है। इससे यह तो स्पष्ट है कि भारत की जनसंख्या बढ़ रही है। भारत में जन्मसंख्या ३३ से ३६ प्रति हज़ार है जो कि अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक है। यही दशा मृत्यु संख्या की है। प्रति हज़ार व्यक्तियों के पीछे २२ या २३ मर जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भारत की जनसंख्या की दशा बुरी है। अधिक बच्चों का उत्पन्न होना और अधिक व्यक्तियों का मरना अधिक रोगों और नीचे रहन सहन के दर्जे का प्रमाण है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि १५९० में भारत में दस करोड़ मनुष्य निवास करते थे (आइने अकबरी के अनुसार) और अब इस देश की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ है।

जनसंख्या के तेज़ी से बढ़ने के कारण परन्तु धनोत्पत्ति उसी अनुपात में अधिक न होने के कारण प्रति व्यक्ति पीछे वार्षिक आय बहुत कम है। नेशनल प्लैनिंग कमेटी ने प्रति व्यक्ति की आय ३० रु० वार्षिक कूती थी और सर्वश्री शिराज़ महोदय ने ६३ रु० कूती है। जो भी हो यह तो इससे सिद्ध होता ही है कि भारत संसार का अत्यन्त निर्धन देश है। यद्यपि प्रकृति ने उसे धनी बनाया है। बात यह है कि हमने प्रकृति की देन का पूरा पूरा उपयोग नहीं किया है। यदि वैज्ञानिक ढंग से गहरी खेती (Intensive cultivatlion) की जावे और उद्योग-धंधों की तेज़ी से स्थापना हो तो भारतवर्ष शीघ्र ही एक महान समृद्धिशाली राष्ट्र बन सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में जनसंख्या के घनत्व (Density) पर भौगोलिक परिस्थितियों का कहाँ तक प्रभाव है ?

२—गंगा की घाटी में आबादी घनी क्यों है ?

३—भारतवर्ष में जनसंख्या और वर्षा का सम्बंध बतलाइए।

४—भारत में गाँवों की इतनी अधिकता क्यों है ?

पच्चीसवाँ परिच्छेद

पाकिस्तान का आर्थिक भूगोल

विस्तार

१५ अगस्त १६४७ को भारतवर्ष स्वाधीन हो गया किन्तु साथ ही साथ भारतवर्ष की एकता नष्ट हो गई और उसको दो स्वतंत्र राष्ट्रों में विभाजित कर दिया गया। पश्चिमीय पंजाब, सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिंध और पूर्वीय बंगाल तथा आसाम का सिलहट का अधिकांश ज़िला पकिस्तान में सम्मिलित कर दिए गए। शेष सारा देश हिन्दोस्तान के अन्तर्गत रहा। भौगोलिकि दृष्टि से पाकिस्तान दो भागों में बंट गया है। पश्चिमीय पाकिस्तान और पूर्वीय पाकिस्तान पश्चिमीय पाकिस्तान और पूर्वीय पाकिस्तान में १ हज़ार मील से अधिक का अन्तर है। पश्चिमीय पाकिस्तान में पश्चिमीय पंजाब, सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान तथा सिंध सम्मिलित हैं। पूर्वीय पाकिस्तान में पूर्वीय बंगाल तथा आसाम का सिलहट का जिला सम्मिलित है

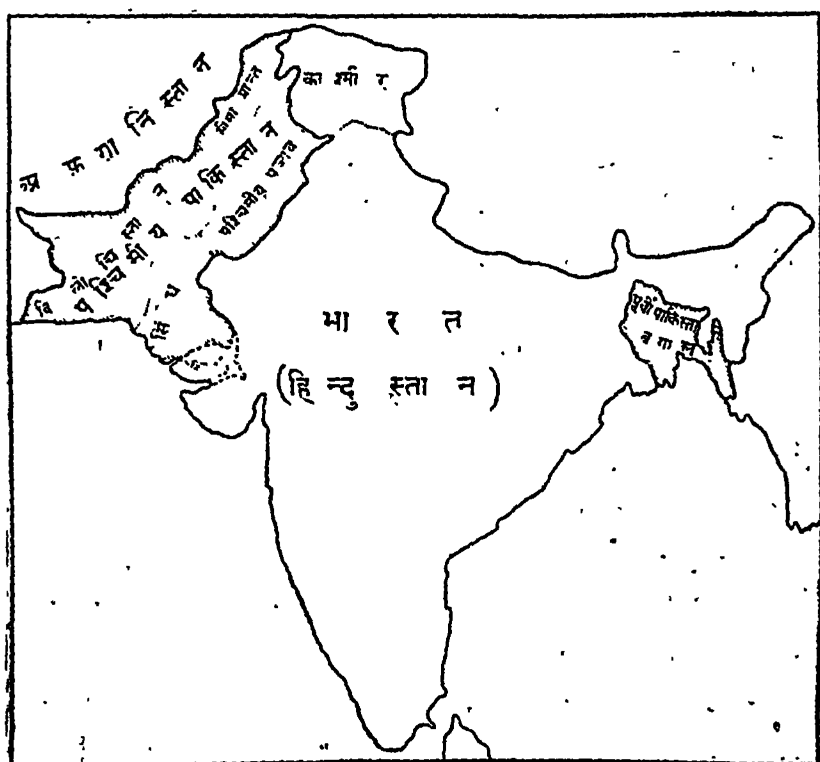
पंजाब के नीचे लिखे ज़िले पश्चिमीय पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिए गए हैं:—गुजरानवाला, लाहौर, शेखूपूर, सियालकोट, अटक, गुजरात झेलम, मियावली, रावलपिंडी, शाहपुरा, डेरागाज़ीखां, झंग, लायलपूर, मांटगोमरी, मुलतान, मुज़फ़्फरगढ़; गुरदासपूर का भाग।

पूर्वीय-बंगाल के नीचे लिखे जिले पूर्वीय पाकिस्तान में चले गए हैं:—चटगाँव, नोआखाली, टिप्परा, बाकरगंज, ढाका, मेमनसिंह, जैसोर, मुर्शिदाबाद, नदिया, फरीदपूर बोगरा, दीनाजपूर, माल्दा, पबना, राजशाही, रंगपूर, और आसाम का सिलहट का भाग।

बंगाल का कुल क्षेत्रफल (७७ हज़ार वर्ग मील) में से ५१ हज़ार वर्ग मील क्षेत्रफल पूर्वीय बंगाल के रूप में पाकिस्तान में चला गया। शेष २६ हज़ार वर्ग माल पश्चिमीय बंगाल के रूप में हिन्दुस्तान में रह गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि लगभग ६६ प्रतिशत बंगाल पाकिस्तान में चला गया।

पंजाब का कुल क्षेत्रफल ६६ हज़ार वर्ग मील था जिसमें ६२ हज़ार वर्गमील भूमि पश्चिमीय पंजाब के रूप में पाकिस्तान में चली गई। इसका अर्थ यह हुआ कि लगभग ६२ प्रतिशत से कुछ अधिक पंजाब का प्रदेश

पश्चिमीय पंजाब में चला गया। ऊपर लिखे उन सभी प्रदेशों और प्रान्तों, अर्थात सम्पूर्ण सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमीय पंजाब, पूर्वीय बंगाल और सिलहट के ज़िले को मिलाकर पाकिस्तान का कुलक्षेत्र फल २,३३००० वर्गमील है, विभाजन के पूर्व कुल भारत का क्षेत्रफल १६ लाखवर्ग मील था। इस प्रकार पाकिस्तान को निकालकर वर्तमान हिन्दोस्तान का क्षेत्रफल १३ लाख ६७ हज़ार वर्ग मील है। अस्तु पाकिस्तान में सम्पूर्ण भारत की केवल १४·७



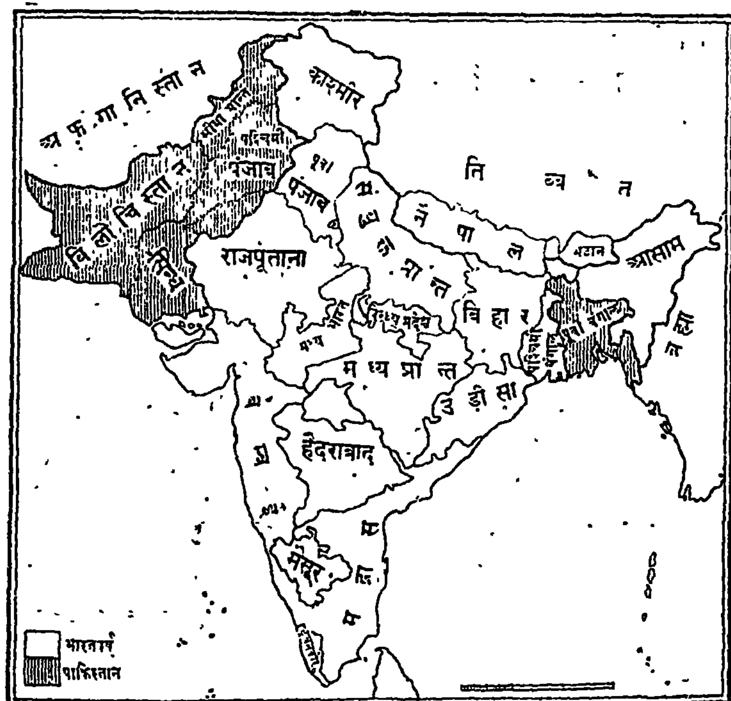
प्रतिशत और वर्तमान हिन्दुस्तान में सम्पूर्ण भारत को ८५·३ प्रतिशतभूमि है। अर्थात् वर्तमान हिन्दोस्तान का कुल पाकिस्तान क्षेत्रफल की दृष्टि से लगभग सातवाँ भाग है। अस्तु हिन्दोस्तान की तुलना में वह एक बहुत छोटा देश है।

पश्चिमीय पाकिस्तान का क्षेत्रफल १७९,००० वर्ग मील है और पूर्वीय पाकिस्तान का क्षेत्रफल ५४,००० वर्ग मील है।

जनसंख्या

बंगाल की जनसंख्या १९४१ की मनुष्य गणना के अनुसार ६ करोड़ थी। इस बंटवारे के अनुसार पाकिस्तान में जाने वाले पूर्वीय बंगाल के भाग में ३ करोड़ ९७ लाख जनसंख्या चली गई। शेष २ करोड़ ३ लाख पश्चिमीय बंगाल

अर्थात हिन्दोस्तान में रह गई। अस्तु कुल बंगाल की ६५.६ प्रतिशत जनसंख्या पाकिस्तान में चली गई। पूर्वीय बंगाल की जनसंख्या में यदि सिलहट के ज़िले की जनसंख्या भी जोड़ दी जावे जो पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया है तो कुल पूर्वीय पाकिस्तान की जनसंख्या ४ करोड़ १८ लाख है



१९४१ में पंजाब की कुल जनसंख्या २ करोड़ ८४ लाख थी। विभाजन के कारण ५६ प्रतिशत जनसंख्या अर्थात १ करोड़ ५९ लाख जनसंख्या पाकिस्तान में चली गई शेष १ करोड़ २५ लाख पूर्वीय पंजाब अर्थात हिन्दोस्तान में रह गई। किन्तु १५ अगस्त १९४७ के उपरान्त पश्चिमीय जाब में मनुष्यता को लज्जित करने वाला पाशविक हत्याकांड हुआ उसके फल स्वरूप जो ५.६ लाख हिन्दू सिक्ख पश्चिमीय पाकिस्तान में थे उनमें से अधिकांश हिन्दोस्तान चले आये यद्यपि पूर्वीय पंजाब से भी कई लाख मुसलमान भाग कर पाकिस्तान चले गए हैं। पूर्वीय पाकिस्तान में जो एक करोड़ २२ लाख हिन्दू हैं उनमें से बहुत कम संख्या में पश्चिमीय बंगाल में आये हैं।

१९४१ के अनुसार कुल पाकिस्तान की जनसंख्या ६ करोड़ २६ लाख है

और वर्तमान हिन्दोस्तान की जनसंख्या ३२ करोड़ ४० लाख से ऊपर है। १९४१ में कुल भारतवर्ष की जनसंख्या ३८,८९,९७,९५५ थी। इस प्रकार पाकिस्तान की जनसंख्या वर्तमान हिन्दोस्तान की पाँचवां भाग है और सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या की १७ प्रतिशत है।

पकिस्तान के भिन्न भिन्न प्रान्तों की जनसंख्या १९४१ के आधार पर

पश्चिमीय पाकिस्तान २ करोड़ ३८ लाख

पश्चिमीय पंजाब	१ करोड़ ५९ लाख
सिंध	४५ लाख ३५ हज़ार
सीमाप्रान्त	३० लाख ३८ हज़ार
बलूचिस्तान	५ लाख से कम

यह तो हम ऊपर ही कह आये हैं कि पश्चिमीय पाकिस्तान में ५६ लाख हिन्दू और सिक्ख रहते थे उनमें से अधिकांश हिन्दोस्तान चले आये हैं।

पूर्वीय पाकिस्तान ४ करोड़ १८ लाख।

वन-सम्पत्ति (Forest wealth)

वन-सम्पत्ति की दृष्टि से पाकिस्तान अत्यन्त निर्धन देश है। भारत के वन प्रदेश जिनमें बहुमूल्य लकड़ी तथा अन्य वन-सम्पत्ति मिलती है या तो हिमालय प्रदेश में है अथवा दक्षिण भारत में है। पाकिस्तान में जो भाग हैं उनमें वन-प्रदेश हैं ही नहीं। सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिंध और पश्चिमीय पंजाब अत्यन्त सूखे प्रदेश हैं वहाँ नाम मात्र को भी वन नहीं हैं। पूर्वीय बंगाल में भी हिमालय का कोई भाग नहीं आता अस्तु जहाँ तक वन-सम्पत्ति का प्रश्न है पाकिस्तान अत्यन्त निर्धन है अस्तु वह धंधे जो वन-सम्पत्ति पर निर्भर हैं पाकिस्तान में खड़े नहीं किए जा सकते। केवल पूर्वीय पाकिस्तान में बाँस इत्यादि के वन हैं।

खनिज पदार्थ (Minerals)

खनिज-पदार्थों की दृष्टि से भी पाकिस्तान संसार के अत्यन्त निर्धन राष्ट्रों में है। पाकिस्तान के किसी भी भाग में लोहा तनिक भी नहीं पाया जाता। यही नहीं कि पाकिस्तान में लोहा इस समय निकाला नहीं जाता वरन लोहा पाकिस्तान में कहीं पाया ही नहीं जाता। मैंगनीज़ (maugnese) मैंगनेसाइट (magnesite) अबरख (Mica) ताँबा, बाक्साइट (Bauxite) सीसा (Lead) सोना इत्यादि मुख्य धातुएँ तो नाम मात्र को भी नहीं पाई जातीं।

समस्त भारतवर्ष में जितना कोयला पाया जाता है उसका ६८·१३ प्रतिशत कोयला पश्चिमीय बंगाल, बिहार, तथा गोंडवाना, में पाया जाता है जो कि हिन्दुस्तान में है। केवल एक प्रतिशत कोयला पश्चिमीय पंजाब और बलूचिस्तान में पाया जाता है। यह थोड़ा सा जो नाम मात्र को कोयला पाकिस्तान में पाया जाता है वह इतना घटिया है कि वह अधिक उपयोगी नहीं है।

पेट्रोलियम

भारतवर्ष पेट्रोलियम की दृष्टि से निर्धन है। परन्तु जो कुछ पेट्रोलियम निकलता है वह मुख्यतः आसाम के लखीमपुर ज़िले की डिगबोई के कुओं से निकलता है जो हिन्दोस्तान में है। पाकिस्तान में केवल नाम मात्र को पेट्रोलियम अटक के क्षेत्र से निकलता है। पाकिस्तान के तैल क्षेत्र क्रमशः सूख रहे हैं।

क्रोमाइट (chromite)

पाकिस्तान में केवल क्रोमाइट ही एक ऐसा खनिज पदार्थ है जो यथेष्ट है। क्रोमाइट बलूचिस्तान में पाया जाता है। बलूचिस्तान में कुछ गंधक भी पाई जाती है। किन्तु क्रोमाइट और गंधक कोई ऐसे महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ नहीं हैं जिन पर कोई धंधा निर्भर हो। इनके अतिरिक्त पश्चिमीय पंजाब में नमक की पहाड़ियाँ (Salt Ranges) हैं जहाँ से सेंधा नमक या लाहौरी नकम निकाला जाता है। यही पाकिस्तान की कुल खनिज सम्पत्ति है। ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि पाकिस्तान खनिज पदार्थों की दृष्टि से अत्यन्त निर्धन राष्ट्र है।

भूमि और जलवायु

जहाँ तक भूमि का प्रश्न है पश्चिमीय पाकिस्तान में सीमा प्रान्त तथा बलूचिस्तान को छोड़कर समथल मैदान हैं। हाँ सीमाप्रान्त तथा बलूचिस्तान में पहाड़ी प्रदेश हैं। बलूचिस्तान और सीमा प्रान्त में घाटियों से घिरे हुए मैदान हैं। जहाँ तक मिट्टी का प्रश्न है मिट्टी यहाँ की उर्वरा है परन्तु जलवायु की दृष्टि से यह भाग बहुत शुष्क है। यही कारण है कि अधिकांश पश्चिमीय पाकिस्तान में मरूभूमि जैसी जलवायु है। बलूचिस्तान और सीमाप्रान्त तो मानसून के रुख के बाहर हैं इस कारण वहाँ मानसून हवायें बिलकुल वर्षा नहीं करतीं। हाँ भूमध्यसागर से उड़ने वाली तूफानी हवाएँ जाड़ों में अवश्य वर्षा करती हैं। सीमाप्रान्त तथा बलूचिस्तान में ८ इंच से अधिक वर्षा नहीं होती सिंध में तो और भी कम वर्षा होती है। वहाँ वर्षा का औसत ५ इंच है। मानसून हवायें इस प्रान्त में पहुँचते पहुँचते इतनी कमज़ोर हो जाती हैं कि उनमें पानी नहीं रहता और इस प्रान्त में पहाड़ियाँ न होने के कारण

उन हवाओं को कोई रुकावट नहीं मिलती इस कारण सिंध में वर्षा नहीं होती। पश्चिमीय पंजाब भी अत्यन्त शुष्क है । पंजाब के दक्षिण पश्चिम में बहावलपूर का राज्य भी अत्यन्त सूखा प्रदेश है । यह भी पाकिस्तान में सम्मिलित हो गया है ।। पश्चिमीय पंजाब में वर्षा का औसद १०-१५ इंच तक है। अस्तु पश्चिमीय पाकिस्तान का जलवायु अत्यन्त शुष्क है और मरूभूमि सदृश है । हाँ पूर्वीय पाकिस्तान में वर्षा बहुत अधिक होती है। वहाँ का जलवायु नम है । परन्तु पश्चिमीय पाकिस्तान में वर्षा बहुत कम होती है वहाँ नदियों से नहरों को निकाल कर सिंचाई के साधनों की खूब उन्नति की गई है। सिंचाई के साधनों की दृष्टि से पश्चिमीय पाकिस्तान उन्नत है और इसी कारण यद्यपि वह प्रदेश अत्यन्त शुष्क है परन्तु वहाँ खेती खूब होती है।

नहरें

सीमाप्रान्त में केवल पेशावर का मैदान उपजाऊ बन गया है क्योंकि वहाँ काबुल और स्वात नदियों की नहरों से सिंचाई होती है । बलूचिस्तान में सिंचाई के साधन नहीं हैं तथा भूमि भी पथरीली है इस कारण यहाँ की भूमि खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। हाँ पश्चिमीय पंजाब तथा सिंध में नहरों के द्वारा सिंचाई के साधनों की विशेष उन्नति की गई है इस कारण यहाँ खेती की खूब उन्नती हुई है। पश्चिमीय पंजाब तथा सिंध की नीचे लिखी नहरे हैं

झेलम की दोनों नहरें ऊपरी झेलम नहर तथा निचली झेलम नहर, चिनाब की दोनों नहरें ऊपरी चिनाब नहर तथा निचली चिनाब नहर, तथा ट्रिपिल प्रोजेक्ट की बारी दोआब की निचली नहरें जिन प्रदेशों को सींचती हैं वे पश्चिमी पंजाब अर्थात पाकिस्तान में हैं । सतलज घाटी की नहरें भी अधिकतर पंजाब के उस भाग को जो दक्षिण-पश्चिम में है और पाकिस्तान में हैं तथा बहावलपूर राज्य को जो पाकिस्तान में हैं सींचती हैं । केवल थोड़ी सी भूमि सतलज की नहरों से बीकानेर राज्य में सींची जाती है। हाँ पश्चिमीय जमुना की नहर, सरहिंद की नहर, तथा बारी दोआब की बालाई नहर पूर्वीय पंजाब को सींचती हैं जो कि हिन्दोस्तान में हैं। सक्खर बांध की सब नहरें सिंध प्रान्त को सींचती हैं जो पाकिस्तान में है। अस्तु जहाँ तक सिंचाई के साधनों का प्रश्न है पश्चिमीय-पाकिस्तान में उन्नत सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं। सिंचाई के साधनों की दृष्टि के पाकिस्तान की स्थिति से अच्छी है। जहाँ पाकिस्तान में कुल भारत की जोती जाने वाली भूमि की २० प्रतिशत भूमि सींची जाती है वहाँ कुल सींची जाने वाली भूमि की लगभग ३२ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान में है।

कृषि तथा पैदावर

कृषि की दृष्टि से पाकिस्तान की स्थिति अच्छी है। भारत में कुल जोती जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल २० करोड़ ६० लाख एकड़ है इसमें से ४ करोड़ १८ लाख एकड़ पाकिस्तान में है। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल जोती जाने वाली भूमि की २० प्रतिशत भूमि पाकिस्तान में है जबकि पाकिस्तान की जनसंख्या कुल भारत की जनसंख्या की १५ प्रतिशत से कम है और पाकिस्तान का कुल क्षेत्रफल कुल भारत के क्षेत्रफल का केवल १७ प्रतिशत है। क्षेत्रफल तथा संख्या को देखते हुए पाकिस्तान के पास जोती जाने वाली भूमि का अपेक्षाकृत अधिक भाग पहुँच गया है।

जहाँ तक मुख्य फसलों का प्रश्न है पाकिस्तान की स्थिति हिन्दोस्तान की तुलना में अच्छी है। भारत में जितनी भूमि पर चावल उत्पन्न होता है उसकी २६०२७ भूमि पाकिस्तान में चली गई। पाकिस्तान में पूर्वीय पाकिस्तान में चावल अधिक होता है उसके अतिरिक्त पश्चिमीय पंजाब और सिंध में भी नहरों के प्रदेश में चावल उत्पन्न होता है। गेहूँ उत्पन्न करने वाली २१% प्रतिशत भूमि पाकिस्तान में चली गई है। पश्चिमीय पंजाब के नहर प्रदेश तथा सक्खर बाँध के द्वारा सींचे जाने वाले सिंध प्रान्त में मुख्यतः गेहूँ उत्पन्न होता है।

पाकिस्तान में गन्ना उत्पन्न करने वाली भूमि, उसके क्षेत्रफल तथा जनसंख्या की तुलना में कम है। अर्थात वहाँ केवल १५४१ प्रतिशत गन्ने की भूमि है और वह भी केवल पूर्वीय बंगाल में है। जहाँ तक तिलहन का प्रश्न है पाकिस्तान का हिस्सा उसके क्षेत्रफल तथा जनसंख्या को देखते कम है।

जूट और कपास और ऊन को दृष्टि से पाकिस्तान की स्थिति अच्छी है। पाकिस्तान में कुल जूट की उत्पत्ति का लगभग ७२ प्रतिशत जूट उत्पन्न होता है। जहाँ तक कपास का प्रश्न है पाकिस्तान में कपास उत्पन्न करने वाली कुल भूमि की केवल १३ प्रतिशत भूमि है। परन्तु वहाँ की कपास की विशेषता यह है कि वहाँ लम्बे फूल वाली बढ़िया अमेरिकन जाति की कपास उत्पन्न होती है। जूट पूर्वीय पाकिस्तान में और कपास पश्चिमीय पंजाब तथा सिंध में उत्पन्न होती है। इस संबंध में यह बात ध्यान में रखने की है कि पाकिस्तान में एक भी जूट मिल नहीं है और सूती कपड़े की भी बहुत थोड़ी फैक्टरियाँ हैं। सीमाप्रान्त बलूचिस्तान, और पश्चिमीय पंजाब में भेड़ चराने का धंधा विशेष रूप से होता है इस कारण वहाँ अच्छा ऊन भी उत्पन्न होता है।

जहाँ तक भविष्य में खेती की वृद्धि का प्रश्न है पाकिस्तान में खेती की वृद्धि की अधिक सम्भावना है। क्योंकि पाकिस्तान में २ करोड़ ३० लाख एकड़ जोती जा सकने वाली भूमि है। सम्पूर्ण भारत में जोती जा सकने वाली बंजर भूमि का क्षेत्रफल ६ करोड़ ४० लाख एकड़ है। सिंचाई की दृष्टि से तो पाकिस्तान की स्थिति अच्छी है ही वह हम ऊपर ही कह आये हैं। पाकिस्तान में सारे भारत की जोती जाने वाली भूमि की २० प्रतिशत है जबकि वहाँ कुल भूमि की लगभग ३२% प्रतिशत सींची जाने वाली भूमि है। उसे देखते वहाँ सिंचाई के साधन अधिक हैं।

यद्यपि गेहूँ, चावल, जूट और कपास की दृष्टि से पाकिस्तान की स्थिति अच्छी है। परन्तु ज्वार बाजरा, और मक्का इत्यादि की दृष्टि से उसकी स्थिति अच्छी नहीं है और निर्धन जनता का यही मुख्य भोजन है। शक्कर भी पाकिस्तान में बहुत कम होती है और उसके लिए पाकिस्तान को भारत पर ही निर्भर रहना होगा।

जहाँ तक कहवा और रबर का प्रश्न है पाकिस्तान उन्हें बिलकुल उत्पन्न नहीं करता। जो कुछ भी कहवा और रबर उत्पन्न होती है वह भारत के दक्षिणी भाग में ही उत्पन्न होती है। बंगाल में २०३१००० एकड़ भूमि पर चाय उत्पन्न होती है उसमें से केवल ७७०० एकड़ पाकिस्तान में आते हैं। हाँ आसाम के उस भाग में जो पाकिस्तान में सम्मिलित होगया है कुछ चाय उत्पन्न होती है परन्तु फिर भी चाय की दृष्टि से पाकिस्तान निर्धन है।

बिलूचिस्तान और सीमाप्रान्त में फल यथेष्ट उत्पन्न होते हैं। बात यह है कि यहाँ भूमध्य सागर से उठने वाली तूफानी हवायें जाड़ों में वर्षा करती हैं अस्तु यहाँ के कुछ प्रदेशों का जलवायु भूमध्य सागरी जलवायु के समान है जो फलों की पैदावार के लिए उपयुक्त है। सीमाप्रान्त में पेशावर के मैदानों में तथा बिलूचिस्तान में कलात, क्वेटा, मस्तंग इत्यादि प्रसिद्ध स्थानों पर फलों के बहुत बाग हैं। यहाँ विशेष कर अँगूर, सेव, जैतून, नारंगी और छुहारे उत्पन्न होते हैं।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक खेती के धंधे का प्रश्न है पाकिस्तान की स्थिति अच्छी है।

उद्योग-धंधे

उद्योग-धंधों की दृष्टि से पाकिस्तान दिवालिया है। नीचे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जावेगा। हम नीचे लिखी हुई तालिका में हिन्दोस्तान और पाकिस्तान में भिन्न-भिन्न धंधों के कारखानों की संख्या देते हैं।

धंधे	हिन्दुस्तान में कारखानों की संख्या	पाकिस्तान में कारखानों की संख्या
सूती वस्त्र	४१९	१२
जूट	९७	×नहीं
लोहा और इस्पात	१४	×नहीं
इंजिनियरिंग	५६१	२७
सीमेंट	२०	३
रसायनिक पदार्थ	५५	३
ऊनी कपड़ा	१६	२
कागज़	२०	×नहीं
शक्कर	१६६	२
दियासलाई	१६	३
शीशा	७९	×नहीं
रेशम	६	×नहीं

पाकिस्तान की औद्योगिक निर्धनता का पता तो इसी से प्रगट होता है कि हिन्दुस्तान में उद्योग-धंधों में जितने श्रमजीवी काम करते हैं उनके केवल २ प्रतिशत मज़दूर पाकिस्तान में हैं और ९८ प्रतिशत मज़दूर हिन्दोस्तान में हैं।

पाकिस्तान में उद्योग धंधों की उन्नति की सम्भावना

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि जहाँ तक खनिज पदार्थों का प्रश्न है पाकिस्तान अत्यन्त निर्धन है। लोहा, कोयला, मैंगनीज़, मैंगनेसाइट बाक्साइट इत्यादि महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ जो उद्योग-धंधों की उन्नति के लिए आवश्यक हैं पाकिस्तान में उपलब्ध नहीं हैं।

शक्ति के साधनों (Power Resources) की भी पाकिस्तान में कमी है, कोयला तो पाकिस्तान में है ही नहीं। पैट्रोलियम भी नाम मात्र को ही है। हाँ पश्चिमीय पंजाब तथा पूर्वीय बंगाल में जल-विद्युत् उत्पन्न करने की सम्भावनायें अवश्य हैं। यद्यपि अभी तक वहाँ जल-विद्युत् को उत्पन्न नहीं किया जा सका है।

किन्तु औद्योगिक उन्नति के लिए पूंजी (Capital) की बहुत अधिक आवश्यकता होगी। पाकिस्तान में पहले ही पूंजी नहीं थी। विभाजन के उपरान्त हिन्दू और सिक्ख व्यवसायी और पूंजीपति पाकिस्तान छोड़ कर हिन्दोस्तान चले आये। अस्तु पूंजी और व्यावसायिक बुद्धि की दृष्टि से पाकिस्तान

पूंजी की कमी

दिवालिया है। जलविद्युत् उत्पन्न करने तथा कारखानों की स्थापना करने के लिए उसे विदेशों से ऋण लेना होगा और इस प्रकार उसके ऊपर पूंजीपति राष्ट्रों का प्रभाव बढ़ जावेगा। यही नहीं पाकिस्तान में कुशल कारीगरों इंजिनियरों की भी बहुत कमी है। सारांश पाकिस्तान एक निर्धन खेतिहर राष्ट्र के रूप में रहेगा।

गमनागमन के साधन और बंदरगाह

गमनागमन के साधनों की दृष्टि से भी पाकिस्तान अत्यन्त अवनत है। पाकिस्तान में केवल ६७४८ मील रेलवे लाइन है और उसमें भी बंगाल आसाम रेलवे तथा यन डब्लू आर वे रेलवे हैं जिनसे वर्ष में हानि होती है। सड़कें भी पाकिस्तान में बहुत कम हैं। पाकिस्तान में केवल दो बंदगाह हैं करांची और चिटागाँव किन्तु करांची को छोड़कर और कोई महत्वपूर्ण बंदरगाह पाकिस्तान में नहीं है। पाकिस्तान के दो भाग पूर्वीय और पश्चिमीय एक दूसरे से इतनी दूर हैं कि उनका एक दूसरे से आर्थिक और व्यापारिक सम्बंध स्थापित होने में कठिनाई होगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—पाकिस्तान के प्राकृतिक साधनों का संक्षेप में वर्णन कीजिए और बतलाइए कि वह प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से कहाँ तक धनी है?

२—"पाकिस्तान एक खेतिहर राष्ट्र रहेगा" विस्तार पूर्वक इस कथन की विवेचना कीजिए।

३—पाकिस्तान तथा हिन्दोस्तान के प्राकृतिक साधनों की तुलना कीजिए।

४—पाकिस्तान और हिन्दोस्तान की औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से तुलना कीजिए।

५—पाकिस्तान में कपास, जूट, गेहूँ, फल और चावल कहाँ कहाँ उत्पन्न होते हैं विस्तार पूर्वक बतलाइए।

६—पाकिस्तान की औद्योगिक उन्नति की सम्भावना के सम्बंध में एक छोटा सा लेख लिखिए।

७—पाकिस्तान के अन्तर्गत कौन कौन से प्रदेश सम्मिलित हैं उनका वर्णन कीजिए।

८—पाकिस्तान की नहरों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। क्या यह सच है कि पाकिस्तान में सिंचाई के साधन उन्नत दशा में हैं?